सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय

३१

(जून-नवम्बर १९२६)

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मन्त्रालय

मई १९६९ (ज्येष्ठ १८९१)

साढ़े सा

10.00

निदेशक, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली – १ द्वारा प्रकाशित
और शान्तिलाल हरजीवन शाह, नवजीवन प्रेस, अहमदाबाद–१४ द्वारा मुद्रित

भूमिका

प्रस्तुत खण्डमे १५ जूनसे ५ नवम्बर, १९२६ तककी सामग्री आ जाती है। यह वही अवधि है जिसमे गांधीजीने एक वर्षके लिए ऐसे सभी सार्वजनिक कामोंसे संन्यास ले लिया था जो अनिवार्य नही थे। स्वेच्छासे लिया गया यह संन्यास विश्राम और मननके विचारसे लिया गया था। और इसका भंग केवल दक्षिण आफ्रिकाके प्रवासी भारतीयोकी समस्याके सम्बन्धमे, जब वे दो बार बम्बई गये, तभी हुआ। सत्याग्रह आश्रम, साबरमतीमे रहते हुए गांधीजीने कब्जियतका उपचार ढूंढ़नेकी दृष्टिसे फलाहारका प्रयोग जारी रखा और वे इस अवधिमे 'भगवद्गीता' और 'रामायण' पर कक्षाएँ भी लेते रहे। यद्यपि उन्होंने अपने कार्यकलापको आश्रमतक ही सीमित कर रखा था, तथापि वे देश-विदेशके लोगोसे पत्र-व्यवहार करते थे और 'नवजीवन' तथा 'यंग इंडिया' के द्वारा तत्कालीन सार्वजनिक और राजनीतिक जीवनपर अपने विचार प्रकट करते रहे। इन पत्रोंके माध्यमसे वे उन पत्रलेखकोंको भी अपने कार्यकलापोंके विषयमें सूचनाएँ देते रहे, जो उनके प्रति जिज्ञासा रखते थे।

इस अवधिमे उन्होने विधानसभाओंमें होनेवाले काम और हिन्दू-मुस्लिम दंगोंके विषयमे मौन ही रखा। किन्तु वे अस्पृश्यता-निवारण, खादी और राष्ट्रीय-शिक्षाके विपयमे सोचते-विचारते और अपना मत व्यक्त करते रहे। उनके लेखे चरखे तो ईश्वरके ही चक्र है और वे "ईश्वरके चक्र धीरे-धीरे लेकिन निहायत कारगर तौरपर चलते है।" (पृष्ठ ३८३) सूत कातकर वे भगवानके साथ एकात्मताका अनुभव करते थे, क्योंकि भगवान उनके लिए गरीबों और दलितोंकी सेवाका ही दूसरा नाम था। वे मानते थे कि खादीके प्रसारसे विदेशी वस्त्रका बहिष्कार होगा और परिणामस्वरूप वह भारतीयोंमें स्वावलम्बनकी भावना और अधिक शक्ति लाएगी तथा करोड़ों रुपया प्रतिवर्ष बचेगा। गाधीजी मानते थे कि समूची भारतीय जनताका कल्याण चरखेसे सम्बद्ध है। "उद्देश्य मनुष्यसे कही बड़ा होता है। सचमुच चरखा मुझसे अधिक महत्त्वका है।" (पृष्ठ ५०) अपनी इस दृढ़ श्रद्धाके अनुसार गांधीजी निष्ठापूर्वक सदाकी तरह इस अवधिमे भी कातते रहे और कताईके विषयमे विचार करते रहे।

गाधीजीने अस्पृश्यताको एक अनन्त सिरवाला असुर कहा और यह चाहा कि यह असुर जब-जब सिर उठाये, उसका दमन किया जाना चाहिए। समाजमे फैले हुए ऊँच-नीचके भाव उनकी दृष्टिमे अस्पृश्यताके रोगसे ही निःसृत और अस्पृश्यताके चिह्न थे। उन्हें यह देखकर बड़ा दुःख होता था कि अस्पृश्यताके विरुद्ध लगातार पाँच

वर्षोतक समझाते-बुझाते रहनेपर भी अभीतक ऐसे शिक्षित लोग बचे हुए हैं जो इस अनीतिपूर्ण कुप्रथाका समर्थन किये ही चले जा रहे हैं। गांधीजीने थोड़े दुःखके साथ लिखा: "यदि किसी धार्मिक ग्रन्थमें किसी प्रसिद्ध पुरुषके पाप करनेका उल्लेख हो तो क्या उससे हमें भी पाप करनेकी आज्ञा मिल जाती है? यदि हमसे उन्होंने केवल एक बार ही यह कह दिया कि इस संसारमें केवल सत्यकी ही सत्ता है और सत्य परमेश्वरके तुल्य है तो हमारे लिए इतना ही बहुत है।" (पृष्ठ २२०-२१)

"शब्दोंका अत्याचार" नामक एक लेखमें गांधीजीने लिखा कि तर्क और तर्क-बुद्धिसे भी पहले आते हैं श्रद्धा और प्रार्थना। इनका स्थान पहला है। उनके विचारसे जब तर्क-बुद्धि अपने-आपको सर्वशक्तिमान मानने लगती है तो वह एक आसुरी वृत्ति बन जाती है, क्योंकि "श्रद्धा और विश्वासके बिना जो काम किया जाता है वह उस कागजी फूलके समान होता है, जिसमें सुवास नहीं होती।" (पृष्ठ ५१९) तर्क अथवा तर्क-बुद्धिकी परवाह न की जाये, ऐसा वे नहीं चाहते थे, किन्तु वे यह अवश्य चाहते थे कि बुद्धिको पवित्र बनानेवाले विश्वासको आवश्यक स्थान दिया ही जाना चाहिए। प्रार्थना तो उनके जीवनका एक अविच्छिन्न अंग ही था। वे भोजनके बिना रह सकते थे प्रार्थनाके बिना नहीं। "बिना खाये तो मनुष्य काफी दिनों जीवित रह जाता है परन्तु ईश्वराराधनाके बिना वह एक पल भी जीवित नहीं रह सकता। इस तथ्यको चाहे वह न माने, किन्तु इसे न मानना वैसा ही होगा, जैसा किसी बेसमझ व्यक्तिका अपने शरीरमें फेफड़ोंके अस्तित्व अथवा रक्तके प्रवाहको न मानना।" (पृष्ठ १०८) एक सज्जनको पत्र लिखते हुए उन्होंने कहा, "प्रार्थना तो नित्य शुद्धिके लिए की जाती है। शरीर-शुद्धिके लिए नित्य स्नानका जो महत्त्व है, हृदय और मस्तिष्कके लिए वही महत्त्व प्रार्थनाका है।" (पृष्ठ २३५) वे प्रार्थनाको याचना नहीं, आत्माकी पुकार मानते थे। 'यंग इंडिया'के स्तंभोंमें किसी राष्ट्रीय संस्थाके प्रधानाचार्यको, जिनका प्रार्थनामें विश्वास नहीं था, गांधीजीने उत्तर देते हुए लिखा: "ईश्वरका अस्तित्व सिद्ध नहीं किया जा सकता और न उसे सिद्ध करनेकी जरूरत ही है। ईश्वर तो है ही।" (पृष्ठ ४५८) यही वह निष्ठा है जिसके बलपर गांधीजी कठिनसे-कठिन परिस्थितियोंमें भी आन्तरिक शान्ति बनाये रखकर सरल मार्गको अपना पाते थे।

अहिंसाके तत्त्वसे ओतप्रोत तथा सत्य और अहिंसाको अपनी एक-एक साँस खींचनेके लिए फेफड़ोंकी तरह आवश्यक माननेके कारण उन्होंने नित्य अधिकाधिक रूपमें अहिंसाकी अपारशक्ति सम्बन्धी अपने विश्वासको स्पष्ट रूपमें देखा और यह भी देखा कि आदमी स्वयं कितना नगण्य है। उन्होंने 'यंग इंडिया'में लिखा: "सबसे बड़ी ताकत जो मानवको प्रदान की गई है, अहिंसा है। सत्य उसका एकमात्र लक्ष्य है। क्योंकि ईश्वर सत्यसे इतर कुछ और नहीं है। लेकिन सत्यकी प्राप्ति अहिंसाके अतिरिक्त

किसी अन्य उपायसे नही हो सकती; कभी नही होगी।" (पृष्ठ १४८) वे चाहते थे कि संसारका एक-एक व्यक्ति इस बातको समझ ले।

अहिंसाके बिना, जिसे वे प्रेमका कानून कहते थे, संसारमें सच्ची शान्ति सम्भव नहीं है। शस्त्रके बलपर लोगोंको चुप तो रखा जा सकता है, किन्तु यदि करोड़ों स्त्री-पुरुषोंके मन अहिंसाके भावसे ओतप्रोत नही होते, तो शान्तिकी पुकार अरण्य-रोदन ही सिद्ध होगी।

वे अहिंसाको कायरता छिपानेका साधन नही मानते थे। वे तो यह कहते थे *कि यह वीरका बडेसे-बड़ा गुण है। शस्त्र-कौशलकी अपेक्षा अहिंसाकी पद्धतिसे काम* लेना अधिक वीरताकी अपेक्षा रखता है। अहिंसा और कायरतामें कोई सामंजस्य ही नही हो सकता। जिसमे हिंसा करनेकी शक्ति है, अर्थात् जो शरीरसे भी सबल है, वही आदमी जब सोच-समझकर बदला लेनेकी अपनी प्रवृत्तिका निरोध करता है और हाथ उठानेसे बाज आता है, तभी वह वास्तविक अहिंसा कहलाती है। "निष्क्रिय होकर औरतो-जैसे असहाय बनकर आत्मसमर्पण करनेसे तो बदला लेना ही कही अच्छा है। बदला लेनेसे क्षमा करना बड़ी चीज है। बदला लेना भी एक कमजोरी ही है।" (पृष्ठ ३०३)

"*क्या यह जीवदया है?*" शीर्षकसे लिखी गई लेखमालामें गांधीजीने आवारा कुत्तोंको मारनेकी पैरवी विना किसी लाग-लपेटके की, मित्रभावसे अथवा क्रोधसे की गई तत्सम्बन्धी अपनी आलोचनाओंको निरस्त करनेका उन्होंने पूरा प्रयत्न किया। उनके सामने अनेक ऐसे अवसर आते रहते थे जब लोग ऐसा मानते थे कि गांधीजी गलतीपर है। ऐसी परिस्थितियोंमें वे अपनी कथनी और करनीमें विरोध नही पाते थे और दृढ़ रहते थे। यदि गुस्सेमे आकर कोई असंगत ढंगसे तर्क प्रस्तुत करता था, तो वे उससे विचलित नही होते थे। *क्योंकि उनका कहना था कि क्रोध आ जाना* तो हिंसा करना है। "क्रोध तो अहिंसाका वैरी है और अभिमान है उसे खा जाने-वाला राक्षस।" (पृष्ठ. ५०९) गांधीजीकी अहिंसामें पागल कुत्ते या हत्याकर्ममें आनन्द लेनेवाले व्यक्तिके नाशको स्थान है और वे मानते थे कि उनकी यह राय अहिंसा-सम्बन्धी उनके विचारसे पूर्णतया सुसंगत है। संसार हिंसासे भरा हुआ है, और इसमें अहिंसाके मार्गपर चलना तलवारकी पैनी धारपर चलने जैसा है। (पृष्ठ ५०९)

अहिंसक असहयोगमें उनकी *अविचल निष्ठा* इस *अवधिमें लिखे गये उनके लेखों* तथा उन पत्रोंमें व्यक्त होती रही जो उन्होंने मित्रों अथवा अपरिचितोंको लिखे। वे कहते रहे कि जिन्हें इस विचारमे विश्वास है, वे इसका अनुभव कर सकते है कि यह कोई निष्प्राण तत्त्व नहीं है, बल्कि एक अत्यन्त जीवन्त तत्त्व है और जब

क्षितिजपर घनेसे-घने काले बादल छा जायेंगे, तब यह विचार अपनी उपयोगिताको भली-भाँति सिद्ध करके दिखायेगा। लोग उस समय देखेंगे कि यह भारतकी आशाका बड़ेसे-बड़ा सहारा है। (पृष्ठ ९)

भारतका मानवताके आनन्दमें सर्वाधिक योगदान यह होगा कि वह शान्ति तथा सत्यमय साधनोंके द्वारा अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त कर ले। ऐसा कब होगा, सो कहना तो गांधीजी कठिन मानते थे और यहाँतक कि सतहपर जो-कुछ दिख रहा था, उससे इस प्रकारके विश्वासका खण्डन ही होता था, तथापि उन्होंने कहा कि भारत जब आजाद होगा, शान्ति और सत्यके मार्गपर चलकर ही होगा, अन्य किसी मार्गपर चलकर नहीं। साध्य और साधनका घनिष्ठ सम्बन्ध है, अपने इस विश्वासको उन्होंने बार-बार दोहराया और उसे कार्यरूप देकर प्रमाणित किया। अर्थात् उन्होंने इस बातपर जोर दिया कि दोषपूर्ण साधनोंसे निर्दोषकी प्राप्ति कदापि नही हो सकती।

गांधीजी द्वारा भारतकी जो सेवा हो रही थी, वह वास्तवमें उनके द्वारा होनेवाली समूची मानवताकी सेवाका एक अंश ही थी। "जो निःस्पृह होकर निःस्वार्थ भावसे एक ही सेवा करता है, वह सबकी सेवा करता है।" (पृष्ठ १२८) मानवताकी सेवाके बिना त्याग असम्भव है, इसलिए आत्मत्याग उनके लेखे बड़ेसे-बड़ा आचार-नियम था। उन्होंने सभी भारतीयोंको, चाहे वे देशके भीतर हों, चाहे दक्षिणी आफ्रिका आदिमें देशके बाहर, यही सलाह दी कि अन्ततोगत्वा सफलताका दारोमदार खुद उन्हींपर है। उन्होंने कहा कि स्वावलम्बनसे बढ़कर अन्य कोई अवलम्बन नही है। दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंको उन्होंने सलाह दी कि वे अपनी माँगोंको बढा-चढ़ाकर पेश न करें, एक स्वरमें बोलें और सत्यके रास्तेसे तिल-भर भी न हटें। उन्होंने यह भी कहा कि वहाँके भारतीयोंको समझौतेमें स्वयंसे सम्बन्धित भागको पूरी-पूरी तरह निभाना चाहिए अर्थात् उन्हें स्वच्छता और इमारतों सम्बन्धी सारे नियमोंका पालन करना चाहिए और "उद्देश्यके हेतु सामुदायिक रूपसे एक-समाज बने रहकर, कष्ट झेलनेके लिए तैयार" रहना चाहिए। (पृष्ठ ४७९) क्योंकि बिना कष्ट सहे छुटकारा है ही नही।

यद्यपि गांधीजी इस अवधिमें हिन्दू-मुस्लिम प्रश्नके प्रति तटस्थ-से बने रहे, किन्तु वे इस समस्यापर विचार तो करते ही रहे। वे मानते थे कि अंशतः यह समस्या ब्रिटिश शासनकी बनाई हुई समस्या है, क्योंकि ब्रिटिश शासन अविश्वासपर आधारित है। अविश्वास पक्षपातको जन्म देता है और पक्षपात विभिन्न पक्षोंमें फूट पैदा करता है। इसे सिद्ध करनेके लिए उन्हें इस बातकी कोई आवश्यकता महसूस नही होती थी कि वे सरकारी अधिकारियोंके मनमें निहित बुरे उद्देश्यको सिद्ध करें। उन्होंने साम्प्रदायिक झगड़ोंके लिए मुख्यतया लोगोंको ही दोषी ठहराया और कहा कि यदि

लोग अपने झगड़े आपसमें नहीं निपटाते, तो बाहरकी कोई भी शक्ति ऐसे झगड़ोंका अन्त नहीं कर सकती। सरकार और जनताके स्वार्थोंमें विरोध होनेके कारण सरकार तो फूट डालकर शासन करनेकी नीतिपर चले बिना रह नहीं सकती और इसमें भी कोई सन्देह नहीं है कि हिन्दू-मुस्लिम ऐक्यके बिना स्वराज्य एक असम्भव चीज है — गांधीजी नित्य इस बातके प्रमाण देखते थे। वे यह भी मानते थे कि परिस्थिति देखनेमें ही कठिन है। भीतर उनके मनमें यह पक्का विश्वास था कि किसी न किसी दिन लोग अपनेको अधिक बलवान और निष्कलंक देख पायेंगे, क्योंकि कुछ लोग तो ऐसे हैं ही जो ऐसे पारस्परिक झगड़ोंको हृदयसे नापसन्द करते हैं और जो अहिंसाको अपना अन्तिम सहारा मानते हैं। उन्हें भरोसा था कि हम चाहें या न चाहें, एकता होकर रहेगी, क्योंकि जहां आदमीके प्रयत्न बेकार हो जाते हैं, वहां ईश्वरकी कृपा फलीभूत हो सकती है। क्योंकि भगवानका शासन भेद-नीतिपर आधारित नहीं है। (पृष्ठ ३०१)

"अनीतिकी राहपर" शीर्षक लेख-मालामें गांधीजीने वासनाओंके नंगे नाचकी निन्दा की, तथा नैतिक संयम और ब्रह्मचर्यपर जोर देते हुए सन्तति-निरोधको सफल बनानेकी सलाह दी। उन्होंने एम० पॉल ब्यूरोकी फ्रांसीसी भाषाकी पुस्तक 'ला इनडिस्प्लिने डेस मोर्स' से लम्बे-लम्बे उद्धरण दिये। इस पुस्तकमें उक्त समस्याका वैज्ञानिक विवेचन किया गया था और अन्तमें उन्होंने 'टॉम मान' के इस वचनसे लेखमाला समाप्त की "जो जातियां आचारवान् रहेंगी, भविष्य उनके साथ रहेगा।" (पृष्ठ. ३२४)

इस अवधिमें गुजरात राष्ट्रीय विद्यापीठके विद्यार्थियोंको गांधीजी 'न्यू टेस्टामेंट' पढ़ाते थे। अनेक पत्र-लेखकोंने इनके लिए गांधीजीकी आलोचना की। "'बाइबिल' पढ़नेका गुनाह'" नामक लेखमें गांधीजीने बलपूर्वक कहा कि हर सदाचारवान् स्त्री अथवा पुरुषको चाहिए कि वह सारे संसारके धर्म-शास्त्रोंका श्रद्धा और सहानुभूतिके साथ अध्ययन करे। उन्होंने स्वयं सनातनी हिन्दू होनेका दावा किया और कहा कि अन्य धर्मोंका श्रद्धासे अध्ययन करनेके फलस्वरूप "मैं हिन्दू धर्म-ग्रन्थोंके गूढ़ अर्थोंको अधिक अच्छी तरह समझ सका हूं।" (पृष्ठ ३६४)

उन्हीं दिनों 'यंग इंडिया' में गांधीजीकी 'आत्मकथा' के अध्याय क्रमशः प्रकाशित हो रहे थे और तभी "गुरुकी तलाश" नामक जो अध्याय प्रकाशित हुआ था, उसे लेकर अनेक पत्रलेखकोंने गांधीजीको अपने-अपने सुझाव भेजे। किन्तु गांधीजीके सामने गुरुकी जो मूर्ति थी, वह साधारण नहीं थी। केवल कोई पूर्ण पुरुष ही उनकी आत्माको सन्तोष दे सकता था। उन्हें तो ऐसे गुरुकी तलाश थी, जो शरीरमें रहते हुए भी निर्विकार हो, वासनाएँ जिसे छू न पाती हों, जो द्वन्द्वोंसे परे हो, जो सत्य

और अहिंसाका साकार स्वरूप हो और इसलिए न जो स्वयं किसीसे डरता हो और न जिससे कोई दूसरा डरता हो। उन्होंने नम्रतापूर्वक कहा: मुझे (ऐसे किसी) देहधारी गुरुको प्राप्त करनेके पहले खुद पूर्ण बननेका प्रयत्न करना चाहिए। (पृष्ठ ९) तथापि वे मनमे गुरुके गुणोंका चिन्तन करते रहे। मार्ग तो वे जानते ही थे। वे जानते थे कि मार्ग सरल है, किन्तु वह तलवारकी धारकी तरह संकीर्ण और पैना है और उसपर चलना आनन्दका विषय है।

१० अक्तूबर, १९२६ को गाधीजीने जो वसीयतनामा लिखा था, वह इस खण्डका विशिष्ट दस्तावेज है। उन्होंने वसीयतनामेमे लिखा. "मेरे पास मेरी अपनी कोई मिल्कियत नही है, फिर भी यदि मेरी मृत्युके बाद किसी वस्तुको मेरी निजी मिल्कियत माना जाये तो मैं सत्याग्रहाश्रमके ट्रस्टियों...को...उसका वारिस नियुक्त करता हूँ। मैंने जो-जो पुस्तके लिखी हैं, जो भी लेख लिखे हैं और इसके बाद जो-जो पुस्तकें अथवा लेखादि लिखूंगा उनका वारिस भी मैं उक्त ट्रस्टियोंको नियुक्त करता हूँ। मैं उन्हे अपनी मृत्युके बाद उन सारी हलचलोंके संचालनका भार भी सौपता हूँ, जिन्हें मेरे मरणके बाद मेरे नामसे चलाना आवश्यक हो जाये। साथ ही उक्त पुस्तकों और लेखों अथवा उनके स्वत्वाधिकारसे जो-कुछ आमदनी होगी तथा जो मेरी निजी मिल्कियतकी तरह जो-कुछ माना जायेगा, उस सबका उपयोग उक्त ट्रस्टीगण सत्याग्रहाश्रमके उद्देश्योको सफल बनानेकी दृष्टिसे इस रीतिसे करेगे, जो उन्हें उस कार्यकी दृष्टिसे योग्य जान पड़े।" (पृष्ठ ५११–१२) इस तरह हम देखते हैं कि जो उद्देश्य उन्हें प्रिय था, वे उसके प्रति जितने समर्पित थे, उतने ही पूर्ण रूपसे अनासक्त भी थे।

आभार

इस खण्डकी सामग्रीके लिए हम सावरमती आश्रम संरक्षक और स्मारक न्यास (सावरमती आश्रम प्रिजर्वेशन ऐंड मेमोरियल ट्रस्ट) तथा संग्रहालय; नवजीवन ट्रस्ट और गुजरात विद्यापीठ ग्रन्थालय, अहमदाबाद; गांधी स्मारक निधि और संग्रहालय, नई दिल्ली; राष्ट्रीय अभिलेखागार (नेशनल आर्काइव्ज ऑफ इंडिया), नई दिल्ली; श्री परशुराम मेहरोत्रा, नई दिल्ली; श्री घनश्यामदास बिड़ला, कलकत्ता; श्रीमती तेहमीना खम्भाता, बम्बई; श्री महेश पट्टणी, भावनगर; श्री हरिभाऊ उपाध्याय, बम्बई; श्री विष्णु दयाल, अजमेर; श्री गजानन कानिटकर, पूना; श्री मुन्नालाल जी० शाह, सेवाग्राम; श्री राधानाथ रथ, कटक; श्रीमती मीराबहन, गाडेन, ऑस्ट्रिया; श्री डाह्याभाई म० पटेल, अहमदाबाद; 'पाँचवें पुत्रको बापूके आशीर्वाद', 'माई डियर चाइल्ड', 'रोमाँ रोलाँ बर्थ डे बुक', पुस्तकोंके प्रकाशकों और निम्नलिखित समाचार-पत्रों तथा पत्रिकाओंके आभारी हैं: 'गुजराती', 'नवजीवन', 'फॉरवर्ड', 'बॉम्बे क्रॉनिकल', 'यंग इंडिया', 'सर्चलाइट', 'हिन्दी नवजीवन' और 'हिन्दू'

अनुसन्धान और सन्दर्भ सम्बन्धी सुविधाओंके लिए अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी पुस्तकालय, गांधी स्मारक संग्रहालय, इंडियन कौंसिल ऑफ वर्ल्ड अफेयर्स पुस्तकालय, सूचना तथा प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्लीके अनुसन्धान तथा सन्दर्भ विभाग, साबरमती संग्रहालय, गुजरात विद्यापीठ ग्रन्थालय, अहमदाबाद और प्यारेलाल नैयर, नई दिल्ली और कागजातोंकी फोटो-नकलें बनानेके लिए हम सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालयके फोटो-विभागके आभारी हैं।

पाठकोंको सूचना

हिन्दीकी जो सामग्री हमें गांधीजीके स्वाक्षरोंमे मिली है उसे अविकल रूपमे दिया गया है। किन्तु दूसरो द्वारा सम्पादित उनके भाषण अथवा लेख आदि मे हिज्जोंकी स्पष्ट भूले सुधार दी गई है।

अंग्रेजी और गुजरातीसे अनुवाद करते समय उसे यथासम्भव मूलके निकट रखनेका पूरा प्रयत्न किया गया है, किन्तु साथ ही भाषाको सुपाठ्य बनानेका भी पूरा ध्यान रखा गया है। जो अनुवाद हमे प्राप्त हो सके हैं, हमने उनका मूलसे मिलान और संशोधन करनेके बाद उपयोग किया है। नामोको सामान्य उच्चारणके अनुसार ही लिखनेकी नीतिका पालन किया है। जिन नामोंके उच्चारणके बारेमे संशय था उनको वैसा ही लिखा गया है जैसा गांधीजीने अपने गुजराती लेखोमे लिखा है।

मूल सामग्रीके बीच चौकोर कोष्ठकमे दिये गये अंश सम्पादकीय हैं। गांधीजीने किसी लेख, भाषण आदिका जो अंश मूल रूपमे उद्धृत किया है वह हाशिया छोड़कर गहरी स्याहीमे छापा गया है। भाषणोंकी परोक्ष रिपोर्ट तथा वे शब्द जो गांधीजीके कहे हुए नही है, बिना हाशिया छोड़े गहरी स्याहीमे छापे गये हैं। भाषणों और भेटकी रिपोर्टोंके उन अंशोमे जो गांधीजीके नही हैं, कुछ परिवर्तन किया गया है और कही-कही कुछ छोड़ भी दिया गया है।

शीर्षककी लेखन-तिथि दाये कोनेमे ऊपर दे दी गई है; जहाँ वह उपलब्ध नही है वहाँ अनुमानसे निश्चित तिथि चौकोर कोष्ठकोमे दी गई है और आवश्यक होनेपर उसका कारण स्पष्ट कर दिया गया है; जिन पत्रोंमे केवल मास या वर्षका उल्लेख है उन्हे आवश्यकतानुसार मास या वर्षके अन्तमे रखा गया है। शीर्षकके अन्तमे साधन-सूत्रके साथ दी गई तिथि प्रकाशन की है। गांधीजीकी सम्पादकीय टिप्पणियाँ और लेख जहाँ उनकी लेखन-तिथि उपलब्ध है अथवा जहाँ किसी दृढ़ आधारपर उसका अनुमान किया जा सका है, वहाँ लेखन-तिथिके अनुसार और जहाँ ऐसा सम्भव नहीं हुआ है वहाँ उनकी प्रकाशन-तिथिके अनुसार दिये गये हैं।

साधन-सूत्रोमें 'एस० एन०' संकेत, साबरमती संग्रहालय, अहमदाबादमे उपलब्ध सामग्रीका, 'जी० एन०' गांधी स्मारक निधि और संग्रहालय, नई दिल्लीमें उपलब्ध कागज-पत्रोंका और 'सी० डब्ल्यू०' सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय (कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी) द्वारा संगृहीत पत्रोंका सूचक है।

सामग्रीकी पृष्ठभूमिका परिचय देनेके लिए मूलसे सम्बद्ध कुछ परिशिष्ट दिये गये हैं। अन्तमे साधन-सूत्रोंकी सूची और इस खण्डसे सम्बन्धित कालकी तारीखवार घटनाएँ दी गई हैं।

विषय-सूची

१. पत्र : जमनालाल बजाजको

आश्रम
साबरमती
मंगलवार [१५ जून, १९२६][1]

चि० जमनालाल,

आज तुममें से किसीका भी पत्र नहीं मिला। देवदासके पत्रकी अवश्य उम्मीद की थी। यदि तुम २६ तारीखको नहीं आ सकते तो कोई हर्ज नहीं देखता। लेकिन यह केवल स्वास्थ्यकी दृष्टिसे ही। भाई अमृतलाल सेठने[2] आज मुझे एक सूची भेजी है। तुम जब यहाँ आओगे तब तुम्हें चार-पाँच दिनके लिए काठियावाड़ जाना होगा, यह निश्चित ही समझो।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (जी० एन० २८६७) की फोटो-नकलसे।

२. पत्र : गंगाबहन मजमूदारको

ज्येष्ठ सुदी ५, १९८२ [१५ जून, १९२६]

पूज्य गंगाबहन,

आपका पत्र मिला। देखता हूँ कि मैं अभीतक आपको समझानेमें असमर्थ रहा हूँ। आपके सामने मैंने पंच नियुक्त करनेका सुझाव रखा है। आप यदि इसे भी स्वीकार नहीं करतीं और जिस मनुष्यको मैं भेजता हूँ उसे मालकी जाँच भी नहीं करने देतीं तो मैं लाचार हूँ। आप जैसे सोचती हैं वैसे माल खरीदनेके लिए मैं किसी भी तरह बँधा नहीं हूँ। आपको जो दस हजार रुपया दिया गया है उसे बचाना मेरा धर्म है। आपसे यह मेरी अन्तिम प्रार्थना है; लेकिन यदि आप किसी भी तरह तैयार नहीं होतीं तो लाचार होकर मुझे वकीलका आश्रय लेना पड़ेगा।

बापू

गुजराती पत्र (एस० एन० १०९४२) की माइक्रोफिल्मसे।

१. यह पत्र सम्भवतः १० जूनके पत्रके पश्चात् लिखा गया होगा, देखिए खण्ड ३०, पृष्ठ ६०३। इसका जमनालाल बजाजने जो उत्तर दिया था उसपर १८-६-१९२६ की तारीख है।

२. गुजराती पत्रकार और सार्वजनिक कार्यकर्त्ता; काठियावाड़ राजनीतिक परिषद्के एक नेता।

३. पत्र : मूलचन्द उत्तमभाई पारेखको

आश्रम
साबरमती
मंगलवार, १५ जून, १९२६

भाईश्री ५ मूलचन्द,

आपका पत्र मिला। मैंने आपके मसविदेमें छोटा-सा सुधार किया है। यदि कभी आश्रम बन्द हो जाये तो भवनका क्या होगा, यह बात मसविदेसे स्पष्ट नहीं होती। तब क्या जमीनके साथ भवन भी दरबारका ही हो जायेगा? यदि कोई ऐसा ख्याल हो तो उसे दूर किया जाना चाहिए। उस हालतमें भवनकी कीमत पंचों द्वारा तय की जानी चाहिए और उसका आधा हमें वापस दिया जाना चाहिए। न्यासियोंके नाम ठीक हैं। आपका भेजा हुआ मसविदा वापस कर रहा हूँ।

गुजराती प्रति (एस० एन० १२१८९) की माइक्रोफिल्मसे।

४. तार : डा० सुन्दरी मोहन दासको[1]

[१६ जून, १९२६ या उससे पूर्व]

समारोहकी पूर्ण सफलता चाहता हूँ।

गांधी

[अंग्रेजीसे]
फॉरवर्ड, १६-७-१९२६

१. यह तार चित्तरंजन दासकी प्रथम बरसीके अवसरपर — जिसे "चित्तरंजन अस्पताल दिवस" के रूपमें मनाया जा रहा था — भेजा गया था।

५. पत्र : वी० एस० श्रीनिवास शास्त्रीको

आश्रम
साबरमती
१६ जून, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र[1] मिला। इसके लिए कोशिश कर रहा हूँ। बात केवल इतनी ही है कि धन एकत्रित करनेकी मेरी क्षमता अब उतनी नहीं रह गई है और वह समाजको होनेवाली इस क्षति जैसे मौकोंपर, मुझे थोड़ी अखरती है।

आपने सेठ अम्बालालको[2] पत्र लिखा है, यह जानकर हर्ष हुआ। मैं भी उन्हें पत्र लिख रहा हूँ। जमनालालजी यहाँ कुछ ही दिनोंमें आनेवाले हैं। इसलिए उन्हें लिखनेका इरादा नहीं है।

हृदयसे आपका,

माननीय वी० एस० श्रीनिवास शास्त्री
सर्वेंट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी
डेकन जिमखाना डा०
पूना

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०९३६) की फोटो-नकलसे।

६. पत्र : सी० विजयराघवाचारियरको

आश्रम
साबरमती
१६ जून, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। धन्यवाद। हकीम साहबने[3] अभीतक मुझे पत्र नहीं लिखा। आपसे उनके वादेके सिवाय उनका पत्र वैसे भी अबतक आ जाना चाहिए था। आपने कहा है कि राजनीतिक विषयोंके बारेमें अब कहनेके लिये कोई नई बात तो है

१. यह पत्र पूना स्थित भारत सेवक समाज (सर्वेंट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी) के आगसे क्षतिग्रस्त छापाखानेके विषयमें था। गांधीजी इस विषयमें उन्हें तीन और पत्र ३० मई, ४ जून और ११ जून, १९२६ को लिख चुके थे। देखिए खण्ड ३०, पृष्ठ ५४४-५४५, ५६८ और ६०५।

२. अम्बालाल साराभाई।

३. हकीम अजमलखाँ।

नहीं, इसलिए मैं इनसे सम्बन्धित बहसोंमे पड़नेमे उकताता होऊँगा। बात बहुत ठीक है। कौंसिलोंको लेकर मेरे मनमे कोई उत्साह पैदा नही हो सकता। मेरी राजनीति तो चरखा, अस्पृश्यता-निवारण और हिन्दू-मुसलमान इत्यादिकी एकताकी प्रार्थनातक सीमित है। इन तीनोंमें मेरा सारा समय और ध्यान खप जाता है। जिन चीजोको मैं महत्त्व नही देता, जिन्हें मैं समझता भी नहीं और जिनसे मुझे अरुचि-सी है, उनमे रुचि लेनेसे क्या लाभ? इसलिए आपकी समझमे आ जायेगा कि उकताहट मुझे आपसे नहीं होती। अगर आप आये और चरखेकी उपयोगिता तथा उसके आशाभरे सन्देशके प्रचारके तरीकोंके बारेमे मुझसे बाते करें, कताईकी कलाके तकनीकी पहलूपर मुझे कुछ सिखाये तो मै आपकी बातचीतसे कभी नही ऊबूंगा। परन्तु यदि आप मुझे देशके भिन्न-भिन्न कौंसिल-दलों या उसके उम्मीदवारोके गुण-दोषोंका वर्णन सुनाने बैठ जाये तो उसमे भाग लेनेकी मेरी उतनी ही कम इच्छा होगी जितनी कि प्रतिस्पर्द्धी घुड़सवारों (जोकियों)की चर्चामें लेनेकी हो सकती है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत सी० विजयराघवाचारियर
फेयरी फॉल्स व्यू
कोडाईकनाल ऑब्जरवेटरी
दक्षिण भारत

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०९३८) की फोटो-नकलसे।

७. पत्र : गिरधारीलालको

आश्रम
साबरमती
१६ जून, १९२६

प्रिय लाला गिरधारीलाल,

जानकारी देनेवाले एक सह-पत्रके[1] साथ आपका पत्र[2] मिला। मैं उन दोनोंको गौरसे पढ़ गया। सह-पत्रके बारेमें कुछ कह नहीं सकता। आपके अपने पत्रमे जो

१. सह-पत्रमें साम्प्रदायिक समस्याके सम्बन्धमें ११ जूनको जारी किया गया एक लम्बा वक्तव्य था; यह मोतीलाल नेहरूको सम्बोधित किया गया था। (एस० एन० ११०७०)।

२. पत्र-लेखकने १२ जूनके इस पत्रमें लाहौरमें साम्प्रदायिक शान्ति स्थापित करनेके सिलसिलेमें मुसलमानोंके साथ हुई अपनी समझौता-वार्ताका उल्लेख किया था और आग्रह किया था, "ज्यादा अच्छा वातावरण बनानेके लिये प्रयत्न किये जाने चाहिए। हम इसके लिए स्वयं प्रयत्न नहीं करेंगे तो समूचे देशपर कोई भारी विपत्ति हमें इसके लिये विवश कर देगी।" उन्होंने इस सम्बन्धमें गांधीजीसे परामर्श माँगा था। (एस० एन० ११०७०)।

मुद्दे उठाये गये हैं, उनके बारेमें मुझे यह कहना है कि दोनों सम्प्रदायों, हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच आज जो मनमुटावकी खाई ज्यादा चौड़ी होती दिखाई दे रही है, आप सभी उसे पाटनेकी कोशिशें अवश्य करें; लेकिन मैं अपने पहलेके मत-पर दृढ़ हूँ; अर्थात् इस दिशामें मेरे अपने प्रयत्नसे फिलहाल कोई वास्तविक हल नहीं निकलेगा। चारों ओर अविश्वासका बोलबाला दिखाई पड़ता है। शान्तिपूर्ण वातावरण उत्पन्न हो, दुर्भाग्यसे इसके पहले अभी कुछ और लड़ाई-दंगे होंगे, ऐसा लगता है। जब एक पक्ष दूसरेको नीचा दिखानेकी फिक्रमें रहता हो तब शान्ति असम्भव ही है। इसके अलावा मेरे मनमें यह विश्वास घर कर गया है कि कौंसिल-प्रवेशसे अव्वल तो कोई लाभ होनेवाला है नहीं, यदि हो भी तो उसकी उपयोगिताके आजकल जो लम्बे-लम्बे गीत गाये जा रहे हैं और उसका महत्त्व जो बहुत बढ़ा-चढ़ा कर बताया जा रहा है, इसीसे दोनों सम्प्रदायोंके बीच मेल स्थापित नहीं हो पा रहा है। आज जो भी व्यक्ति कौंसिलोंके बाहर रह जाता है यही सोचता है कि मैं घाटेमें हूँ। और जो बात व्यक्तिके बारेमें सच है वही सम्प्रदायोंके बारेमें भी सच है। यही कारण है कि हर सम्प्रदायके लोग इसी भाग-दौड़में लगे हुए हैं कि उसको ही यथासम्भव अधिक प्रतिनिधित्व प्राप्त हो और सम्प्रदायवादके हमारे जितने प्रतिनिधि कौंसिलोंमें पहुँच जायें, उतना ही अच्छा। यदि आपको ऐसे वातावरणमें प्रयास करनेसे कोई शुभ परिणाम निकलता दीख पड़ता है तो मैं यही कहूँगा कि आपका जोश और आपकी विश्वसनीयता सराहनीय है। परन्तु इस प्रकारके किसी भी प्रयासके प्रति मेरे मनमें उत्साह पैदा नहीं हो सकता। खेद है कि मैं आपको इससे अधिक आशा बँधानेवाला अथवा यों कह लीजिए कि इससे कम निरुत्साहित करनेवाला पत्र नहीं भेज सकता।

आप जलियाँवाला बागके सम्बन्धमें जो-कुछ भी कहना या पूछना चाहें, उसके सम्बन्धमें मैं आपको अधिक उत्साहके साथ परामर्श दे सकूँगा।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

लाला गिरधारीलाल
चैम्बरलेन रोड
लाहौर

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ११०७१) की फोटो-नकलसे।

८. पत्र : 'पीपुल' के सह-सम्पादकको

आश्रम
साबरमती
१६ जून, १९२६

प्रिय मित्र,

आप जानना चाहते हैं कि मैं कभी 'पीपुल' पढ़ता हूँ या नहीं। मेरी इच्छा तो यही है कि मैं कह सकूँ कि पढ़ता हूँ। परन्तु हकीकत यह है कि मैं शायद ही कभी कोई साप्ताहिक पत्र देख पाता हूँ। मैं एक-दो दैनिक तो सरसरी नजरसे जरूर देख लेता हूँ, परन्तु अन्य समाचारपत्रों अथवा मासिक पत्रोंमें क्या छपा है यह जाननेके लिए मुझे अपने सहायकपर ही अवलम्बित रहना पड़ता है।

आप इसकी वर्षगाँठपर बधाईके दो शब्द भी चाहते हैं, मैं सहर्ष कामना करता हूँ कि ईश्वर लालाजीकी[1] इस सन्तानको दीर्घायु बनाये।

हृदयसे आपका,

सह सम्पादक
'पीपुल'
१२, कोर्ट रोड
लाहौर

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९६२१) की माइक्रोफिल्मसे।

९. पत्र : मुहम्मद हासम चमनको

आश्रम
१६ जून, १९२६

भाईश्री ५ मुहम्मद हासम चमन,

जिसे अहिंसाकी पूरी समझ हो जाती है, जिसके हृदयमें आत्मिक ज्ञान उत्पन्न हो जाता है, जो करुणासे आप्लावित हो उठता है वह अवश्य ही खाना-पीना छोड़ रामनामका जप करता हुआ इस शरीरको त्याग सकता है। आपने गोचर भूमिके लिए पाँच खेत देकर सचमुच बहुत अच्छा काम किया है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (एस० एन० १९९१६) की माइक्रोफिल्मसे।

१. लाला लाजपतराय।

१०. पत्र : हसन अलीको

आश्रम
१६ जून, १९२६

भाईश्री ५ हसनअली,

. . .[1] मैं जो फल लेता था वे मुख्यत: केले, खजूर, टमाटर, मूँगफली और नीवू थे। इस आहारका आध्यात्मिक परिणाम मैंने यह देखा है कि मैं उस समय अपने जीवनमें सभी प्रकारके विकारोसे ज्यादासे-ज्यादा रहित था। जव विलायतमे मेरी पसलियोंमे तेज दर्द[2] उठा तव मुझे इस आहारमे परिवर्तन करना पड़ा। यह दर्द मेरी ही भूलसे उठा था। मैं इसके वाद हिन्दुस्तान आया और अपनी ही भूलके कारण पेचिशसे पीडित हुआ।[3] उसके वाद तो जो प्रयत्न सम्भव थे सभी किये; किन्तु मेरा विगड़ा हुआ स्वास्थ्य ठीक नही हुआ। इसलिए मैंने वकरीका दूध पीना शुरू किया और वह आजतक चलता है। ऐसा करनेका दु:ख तो मुझे हमेशा रहेगा; लेकिन मैंने जो काम हाथमे लिया था उसे करनेके लिए मैं जीना चाहता था। यह मोह मुझे आज भी है। इसीके कारण मैंने फिर दूध पीना शुरू किया था और वह दूध पीना आज भी जारी है। डाक्टर लोग अपनी शोवमे केवल शरीरका ही विचार करते हैं। इससे उनके कुछ, वल्कि वहुतसे प्रयोग आत्माके लिए घातक सिद्ध होते हैं। . . .[4]

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजराती पत्र (एस० एन० १९९१७) की माइक्रोफिल्मसे।

११. टिप्पणियाँ

देशबन्धुकी वरसी

आज[5] देशवन्धु दासकी मृत्युको एक वर्ष पूरा हो गया; आज उनकी प्रथम वरसी है। उनकी मृत्यु कर्मरत, पूर्ण गौरवयुक्त अवस्थामे हुई, क्योंकि उनका हृदय आस्थासे भरपूर था। उन्हे अपने और अपने देशपर भरोसा था, क्योंकि उन्हे ईश्वर-पर भरोसा था। अन्तिम दिनतक भी उन्होंने अपने लाभका विचार नही किया।

१. साधन-सूत्रमें यहाँ कुछ छूटा हुआ है।
२. १९१४ में, देखिए खण्ड १२।
३. १९१८ में; देखिए खण्ड १५।
४. साधन-सूत्रमें यहाँ कुछ छूटा हुआ है।
५. १६ जून, १९२६।

अन्तिम क्षणतक वे देशका ही विचार करते रहे। उन्होंने एक आदर्शके लिए प्राण-त्याग किया और अपने आदर्शके जरिए वे आज भी जीवित हैं; वह आदर्श उनके बाद आज भी वर्तमान है। बंगालका मतभेद और भारतमें जो भ्रातृघाती युद्ध हो रहा है, वह उनके आदर्शको नकारता है। परन्तु मैं यह मानता हूँ कि यह बाधा आदर्शपर पहुँचनेके उस कार्यमें एक क्षणिक बाधा ही है। आत्मशुद्धिके मार्गमें हमें ऊँचे शिखर चढने होंगे, गहरी खाइयाँ पार करनी होंगी। आवश्यकता हुई तो खाइयों पर पुल बाँधकर और चट्टानोंको काटकर अपना मार्ग बनाना होगा। मुझे इस बातका पूरा भरोसा है कि हम इन सब कठिनाइयोंको दूर कर सकेंगे। हमें वे बड़ी महँगी पड़ रही हैं तथा और भी महँगी पड़ सकती हैं। परन्तु जिस मुक्तिको प्राप्त करनेके लिए श्री लोकमान्य, देशबन्धु और उनके भी अग्रगामी नेताओंने अपना जीवन अर्पण कर दिया था, उसे प्राप्त करनेके लिए कोई भी कीमत क्यों न देनी पड़े, वह महँगी नहीं हो सकती।

असहयोगियोंकी स्थिति

एक मित्र पूछते हैं:

> आज देशमें इतने दल हो गये हैं कि उनमें हमें कहाँ पैर जमाना चाहिए यही हमारी समझमें नहीं आता। जब इतने दल बन रहे हैं, तब जो आज भी कौंसिलोंके बहिष्कार, हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य इत्यादि कार्योंमें विश्वास रखते हैं, उनका अपनी शक्तियोंको एकजुट करना और अपने आदर्शोंका फिरसे उद्-घोष करना क्या वांछनीय न होगा? स्वराज्यसे पीठ फेर लेनेका अपराध हम लोगोंपर लगाया जाता है और हमारे अहिंसाके सिद्धान्तकी खुलेआम खिल्ली उड़ाई जाती है। कदम-कदमपर हम लोगोंपर फब्तियाँ कसी जाती हैं कि हम अपना समय और शक्ति नष्ट कर रहे हैं। मैं यह स्वीकार करता हूँ कि हमें इन बातोंकी जरा भी परवाह नहीं करनी चाहिए। परन्तु यह तो जरूरी लगता है कि हम अपना संगठन करें और जो हमारे विचारके हों उन्हें अपने साथ शामिल होनेके लिए कहें। हम कबतक चुप बैठे रहें? कबतक हम अपने विश्वासकी परीक्षा होते रहने दें?

धैर्य अन्तिम समयतक वैसेका-वैसा बना रहेगा, तभी तो उसका कुछ मूल्य होगा। जीवन्त विश्वास तो भयंकरसे भयंकर तूफान होनेपर भी जैसाका-तैसा ही बना रहता है। अहिंसाकी कार्य-प्रणाली हिंसाकी कार्य-प्रणालीसे बिलकुल ही भिन्न होती है। मैं कोई नया दल बनानेकी सलाह नहीं दे सकता। किसी संगठित दलके बिना अहिंसात्मक असहयोग टिका रह सकता है और उसे टिका रहना चाहिए भी। अहिंसात्मक असहयोगकी आज कसौटी हो रही है। जिसे अदालत, कौंसिल इत्यादिके बहिष्कारोंपर विश्वास हो, वह अपने जिलेमें अकेला ही क्यों न हो, उसे इसपर दृढ़ बने रहना चाहिए। जिन्हें कुछ कामकी आवश्यकता है, वे खादी और राष्ट्रीय शालाके कामसे सन्तोष मानें। प्रति सप्ताह मैं जुदे-जुदे केन्द्रोंसे प्राप्त रिपोर्टोंके जो आँकड़े

और अन्य बातें प्रकाशित करता रहता हूँ, उससे खादीकी जो धीरे-धीरे परन्तु दृढ़तापूर्वक प्रगति हो रही है। उसपर किसी भी शंकाशील हृदयको यकीन हुए बिना न रहेगा। और अब जो प्रगति हो रही है, वह किसी क्षणिक उत्साहके कारण नहीं, परन्तु खादीमें बुद्धिपूर्वक दृढ़ विश्वास होनेके कारण ही हो रही है। यदि असहयोगियोंको अहिंसात्मक असहयोगपर विश्वास है तो उन्हें यही प्रतीति होगी कि वह नष्ट नहीं हुआ है, वह जिन्दा है और जब सारा आकाश काले घोर बादलोंसे ढँक जायेगा, तब वह अपनी करामात दिखायेगा। उस समय यही प्रतीत होगा कि भारतकी आशाओंका वही एक आधार है।

गुरुकी तलाश

'सत्यके प्रयोग अथवा आत्मकथा'के[1] भाग २के प्रथम अध्यायमें मैंने लिखा था कि मैं अब भी गुरुकी तलाशमें हूँ। इसके उत्तरमें कई हिन्दू, मुसलमान तथा ईसाई महाशयोंने मुझे बड़े लम्बे-लम्बे पत्र लिखे हैं और मुझे यह बतानेका प्रयत्न किया है कि गुरुकी प्राप्ति कैसे की जाये। अभी पत्र आते ही जा रहे हैं। कुछ लोगोंने तो मुझे कहाँ जाना चाहिए और किससे मिलना चाहिए इत्यादि बातें भी लिखी हैं। कुछ लोग मुझे अमुक किताबें पढ़नेके लिए लिखते हैं। मैं इन पत्र-लेखकोंका, जिन्हें मेरी इतनी चिन्ता है, बड़ा ही उपकार मानता हूँ। परन्तु उन्हें और दूसरे लोगोंको भी यह जान लेना चाहिए कि मेरी कठिनाई तो मूलभूत है। उसका मुझे कोई दु:ख भी नहीं है। वह मूलभूत है शायद इसलिए कि गुरुके सम्बन्धमें मेरा आदर्श कोई साधारण आदर्श नहीं है। पूर्णता प्राप्त व्यक्तिके बिना मुझे किसीसे भी सन्तोष न होगा। मैं तो ऐसे गुरुकी तलाशमें हूँ जो देहधारी होनेपर भी अविकारी है, जो विकारोंसे निर्लिप्त है, स्त्री-पुरुषके भावसे मुक्त है और जो सत्य और अहिंसाका पूर्ण अवतार है। और इसलिए न वह किसीसे डरता है और न कोई दूसरा ही उससे डरता है। जैसे गुरुके लिए प्रयत्न किया जाता है और अन्वेषक जिस योग्य होता है वैसा ही गुरु उसे मिलता है। मुझे जैसे गुरुकी चाह है वैसा गुरु प्राप्त करनेकी कठिनाई तो स्पष्ट ही है। परन्तु उसकी मुझे कोई चिन्ता नहीं, क्योंकि मैंने ऊपर जो बात कही है, उसका स्वाभाविक परिणाम यही हो सकता है कि मुझे देहधारी गुरु प्राप्त करनेके लिए खुद पूर्ण बननेका प्रयत्न करना चाहिए और अभी तो केवल मुझे ऐसे गुरुके आदर्शका ही चिन्तन करना चाहिए। सत्यके लिए सच्चे हृदयसे सतत और विनम्र प्रयत्न करनेमें ही मुझे मेरी सफलता दिखाई देती है। मैं अपना मार्ग जानता हूँ। वह मार्ग सीधा और सँकरा है। वह तलवारकी धारके समान है। मुझे उसपर चलनेमें आनन्द मिलता है। जब मैं कभी उसपरसे फिसल जाता हूँ तो रोता हूँ। 'जो प्रयत्न करता है उसका कभी नाश नहीं होता।' इस कथनपर मुझे अटल श्रद्धा है। इसलिए अपनी दुर्बलताके कारण मैं चाहे हजार बार भी असफल क्यों न हो जाऊँ, मैं अपनी इस श्रद्धाका त्याग न करूँगा; बल्कि यही आशा

१. गांधीजीकी आत्मकथा **यंग इंडिया**के ३०-१२-१९२५के अंकसे क्रमबद्ध प्रकाशित हो रही थी।

करूँगा कि जब मेरी देहका सम्पूर्ण दमन होगा — जैसा कि एक दिन उसे होना ही चाहिए — तब मुझे प्रकाशके दर्शन होंगे। मेरे कृपालु पत्र-लेखक महाशय मेरी स्थितिको समझकर मेरी चिन्ता करना छोड़ दें; परन्तु जबतक उन्हें यह सन्तोष न हो कि वह प्राप्त हो गया है, उसे ढूँढनेमे तबतक मेरा साथ दें।

गोशालाके व्यवस्थापकोंको

कुछ दिनों पहले अखिल भारतीय गोरक्षा मण्डलके मन्त्रीने जानकारी इकट्ठी करनेके उद्देश्यसे मुख्य-मुख्य गोशालाओं और पिंजरापोलोंके व्यवस्थापकोंको प्रश्नावलीके साथ एक पत्र भेजा था। अबतक बहुत कम लोगोंने उसका उत्तर दिया है। प्रश्नावली हमारे पास है। जो चाहें वे मन्त्री, गोरक्षा मण्डल, साबरमतीके पतेपर लिखकर उसे मँगा ले सकते है। श्री चौंडे महाराजने महाराष्ट्रकी अधिकाश गोशालाओंमे स्वयं जाकर उनका विस्तृत विवरण मण्डलको भेजनेका भार उठा लिया है। मै उम्मीद करता हूँ कि वहाँके व्यवस्थापक लोग उनको पूरा विवरण देंगे। मुझे यह कहनेकी तो कोई जरूरत नही है कि अखिल भारतीय गोरक्षा मण्डलका उन गोशालाओंपर किसी प्रकारका अधिकार जमानेका तनिक भी इरादा नही है। मण्डलकी यही इच्छा है कि वह सारे विवरणोंको मिलाकर और सुसम्बद्ध ढंगसे उन्हे प्रकाशित करके सारे न्यासियों और व्यवस्थापकोंके पास भेजे और मुनासिब सलाह देकर उनकी मदद करे। यदि गोशालाएँ चाहे तो अपनेको मण्डलसे सम्बद्ध कर सकती है और उससे सलाह भी ले सकती है। इसके साथ-साथ मण्डल गोशिक्षा-विशारदोंकी शीघ्र ही सेवा प्राप्त करनेकी जो आशा रखता है उससे भी लाभ उठाया जा सकेगा। परन्तु गोशालाएँ तथा पिंजरापोल मण्डलसे अपनेको सम्बद्ध करें या न करें, मण्डल इसे अपना कर्त्तव्य समझता है कि उसके पास गोरक्षा सम्बन्धी जो-कुछ भी जानकारी आये, उसे वह इन गोशालाओंको पहुँचाए। यह लिखनेकी जरूरत नही कि यदि ये १,५०० गोशालाएँ सुनियोजित ढंगसे प्रयत्न करें और अपनी व्यवस्थाको कार्यक्षम बनाये तो इनसे आज जितने जानवरोंकी रक्षा होती है, इससे कही ज्यादाकी रक्षा हो सकेगी। यह सच है कि मण्डलके साथ जुड़ जानेवाली संस्थाओंपर कुछ जिम्मेदारी आ जायेगी। अपने हित और व्यवस्थाके लिए बनाये हुए नियमोंका उन्हें पालन करना होगा और अपनी आयका एक हिस्सा अ० भा० गो० मण्डलको देना पड़ेगा। परन्तु वे मण्डलके साथ सम्बद्ध हों या न हों, यह उनकी खुशीकी बात है। यह टिप्पणी तो विवरण प्राप्त होनेकी दृष्टिसे ही लिखी गई है।

दक्षिण आफ्रिकी कानून

श्री एन्ड्रयूजने और मैंने जो चेतावनी दी थी यदि उसपर जोर देनेकी जरूरत बाकी रह गई हो तो यहाँ मैं दक्षिण आफ्रिकासे प्राप्त एक पत्रका अंश देता हूँ :

> मैं यह अनुभव करता हूँ कि सरकार रंगभेद प्रतिबन्ध सम्बन्धी विधेयकको पास करके भारत सरकार और भारतीयोंको दिया गया अपना वचन भंग कर रही है। उसने इससे भी आगे बढ़कर नेटाल प्रान्तीय शिक्षा अध्यादेश जारी कर दिया है। यदि यह अध्यादेश पास कर दिया गया तो इसका अर्थ यह होगा

कि हमें शिक्षाके सम्बन्धमें इस समय जो चन्द अधिकार प्राप्त भी हैं, वे सभी छिन जायेंगे। अर्थ-व्यवस्थाकी दिशामें हम यह देखते हैं कि १९२१ के संघ समझौता अधिनियमके अन्तर्गत लकड़ीकी चीजें बनाने, छपाई करने और इमारतें बनाने जैसे उद्योगोंमें संयुक्त परिषदें बनाई गई हैं। इन परिषदोंके अधीन हजारों भारतीय आ जाते हैं, किन्तु भारतीय कर्मचारियों और नियोजकोंको उन मजदूर संघों अथवा मालिक संघोंके सदस्य बननेकी अनुमति नहीं है जो कर्मचारियों और मालिकोंकी तरफसे बातचीत करते हैं और जो संयुक्त परिषदोंके चुनावमें भाग लेते हैं। उनको इन संयुक्त परिषदोंमें मत देनेकी अनुमति भी नहीं है। कर्मचारियोंके लिए वेतन और दूसरी सुविधाओंकी दरें ये संयुक्त परिषदें ही तय करती हैं। इसमें शक नहीं कि मजदूरोंकी हालत सुधारनेके लिए कानून बनानेमें हमें कोई आपत्ति नहीं; किन्तु हमें मजदूरीकी दरें तय करनेके तरीकेपर आपत्ति है। इसके अन्तर्गत दरें तय करनेमें भारतीय कर्मचारियों और मालिकोंकी कोई आवाज नहीं है, फिर भी उनको ये दरें माननी पड़ती हैं। यह भारतीय कर्मचारियों और मालिकोंके प्रति न्याय नहीं है। इसका असर यह होगा कि भारतीय कर्मचारी और मालिक दोनों ही बरबाद हो जायेंगे।

इससे यह बात बिलकुल स्पष्ट हो जाती है कि हवाका रुख किधर है। वर्गीय क्षेत्र विधेयकके विरुद्ध बहुत आपत्ति उठाई गई थी, इसलिए वह अभी स्थगित कर दिया गया है; किन्तु संघ सरकार दूसरे सैकड़ों तरीकोंसे, जिनका उदाहरण इस पत्र-लेखकने दिया है, उसी नीतिपर चल रही है जो इस कानूनके मूलमें निहित है। इसलिए दक्षिण आफ्रिकामें परिस्थितियाँ जो रूप ले रही हैं उनके प्रति अधिकसे-अधिक सजग रहना आवश्यक है।

अप्रैलके आँकड़े

पिछले अप्रैल मासमें खादीने जो प्रगति की है उसके अतिरिक्त आँकड़े नीचे दिये जाते हैं। ये आँकड़े बंगाल और गुजरात प्रान्तोंके हैं। इनसे खादीकी प्रगतिकी अधिक सही जानकारी मिलती है:

	उत्पादन	बिक्री
बंगाल	रु० ३४,६७०–०–०	रु० ३४,४७०–०–०
गुजरात	रु० ९,७३५–०–०	रु० १७,०५२–०–०
योग	रु० ४४,४०५–०–०	रु० ५१,५२२–०–०

पहले मिली हुई रिपोर्टोंके अनुसार दूसरे प्रान्तोंके उत्पादन और विक्रयका जोड़:

	रु० ९२,५४२–०–०	रु० २०९,०८८–०–०
पूर्ण योग	रु० १,३६,९४७–०–०	रु० २,६०,६१०–०–०

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १७-६-१९२६

१२. कुछ उलझे हुए प्रश्न

ब्रह्मदेशसे एक डाक्टर मित्र लिखते हैं :

आप खादीपर ही क्यों जोर देते हैं, स्वदेशीपर क्यों नहीं? क्या स्वदेशी मूल सिद्धान्त और खद्दर उसकी केवल एक तफसील ही नहीं है?

मैं खद्दरको स्वदेशीका विस्तार नही मानता। स्वदेशी भाववाचक शब्द है और खद्दर स्वदेशीकी मूर्त और केन्द्रभूत वस्तु है। बिना खद्दरके स्वदेशी ऐसी है जैसी आत्माके बिना देह, जो केवल अन्त्येष्टिके योग्य होती है। केवल खादी ही स्वदेशी वस्त्र है। इस देशके करोड़ो मनुष्योंकी भाषामे स्वदेशीका अर्थ करना हो तो स्वदेशीका सार — हर साँसमे हवाकी तरह उपयोगी — खादी ही है। स्वदेशीकी कसौटी यह नही है कि स्वदेशीके नामसे प्रचलित किसी वस्तुका सार्वत्रिक उपयोग हो। परन्तु यह है कि उस वस्तुको तैयार करनेके काममे सभी लोग अपना-अपना हिस्सा बँटा सकते हैं या नही। इस प्रकार विचार करनेपर मिलका कपड़ा एक सकुचित अर्थमे ही स्वदेशी हो सकता है; क्योंकि उसे तैयार करनेमे भारतके करोड़ो लोगोमे से एक बहुत ही नगण्य सख्याके लोगोके श्रमका ही उपयोग हो सकता है। परन्तु खादीको तैयार करनेमे तो करोडों लोगोंकी मेहनतका उपयोग होता है। लोग जितने अधिक होंगे उतना ही अधिक आनन्द आयेगा। मेरे विचारमे तो खादीके साथ करोडो मनुष्योंका कल्याण जुडा हुआ है। इसलिए स्वदेशीमे सबसे मुख्य चीज खद्दर ही है और वही उसका सच्चा रूप है। अन्य सभी बाते इसीमे निकलती हैं। यदि हम भारतमे बने पीतलके बरतन और दंतखोदनीका इस्तेमाल न करे तो भी भारत जीवित रह सकता है। परन्तु यदि हम खादी तैयार करने और उसे पहननेसे इनकार कर देंगे तो भारत जीवित नही रह सकेगा। भारतके करोड़ों लोगोके खाली समयके उपयोगके लिए कोई अधिक लाभप्रद कार्य मिल जानेपर ही खादीको इतना अधिक महत्त्व दिया जाना बन्द हो सकता है।

परन्तु डाक्टर साहब कहते हैं :

अच्छी खादी तो बड़ी महँगी और साधारण खादी भद्दी होती है।

मैं इससे इनकार करता हूँ कि किसी भी किस्मकी खादी भद्दी होती है। मशीनसे बने कपड़ोंमे जो जीवनहीन समानता होती है, उसका अभाव भद्दापन नही है; बल्कि यह तो जीवनका सूचक है, जैसे एक वृक्षके लाखों-करोडों पत्तोंमे पूरी-पूरी समानताका अभाव कोई भद्देपनकी निशानी नही है। सच बात तो यह है कि पत्तोंकी असमानता ही वृक्षको जीवनमयी शोभा देती है। मैं मशीनसे बनाये गये किसी वृक्षकी कल्पना कर सकता हूँ। उसके सब पत्ते एक ही आकारके होंगे। परन्तु वह बड़ा भयानक मालूम होगा, क्योंकि अभी हमने स्वाभाविक वृक्षसे प्रेम करना त्याग नही दिया है। और खादीकी कीमतके बारेमें वह अच्छी या बुरी जैसी भी हो, हमें

चिन्ता क्यों होनी चाहिए? हम यह जानते हैं कि उसका जितना भी दाम हम देंगे उसकी कौड़ी-कौड़ी भूखों मरनेवाले गरीबोंको ही मिलेगी। मेरा अनुभव तो यह है कि जहां लोगोंने खादीको स्वीकार किया है वहां बहुसंख्यक लोगोंकी कपड़ेके विषयमें रुचि ही बदल गई है। मैनचेस्टरके कपड़ोंकी बनिस्बत खादी दूनी महंगी भले ही हो, परन्तु अनावश्यक और अधिक कपड़ेके त्यागके द्वारा महंगेपनकी यह क्षतिपूर्ति हो जाती है। जो लोग बारीक खादी पहनना चाहें, वे अब उसे सभी मुख्य केन्द्रोंमें पा सकते हैं।

ये डाक्टर मित्र कताईकी आवश्यकताके विषयमें प्रश्न करते हैं और बड़ी गम्भीरतासे दलील पेश करते हैं कि यदि सभी कातने लगेंगे तो उन गरीब लोगोंको हानि होगी जो कताईको ही अपनी आजीविकाका आधार बनाये हुए हैं। परन्तु वे यह भूल जाते हैं कि जिनसे त्यागके तौरपर कातनेके लिए कहा जाता है वे खद्दरके लिए अनुकूल वायुमण्डल तैयार करते हैं और उनसे कताईको और भी अधिक सरल बनानेकी सम्भावना पैदा होती है। वे अपनी छोटी-छोटी खोजों और ईजादोंके द्वारा उसके उत्पादनको अधिक लाभप्रद भी बनाते हैं। त्याग-कर्मके तौरपर की गई कताईसे पेशेवर सूत कातनेवालोंकी मजदूरीको कोई हानि नहीं पहुंच सकती।

ये मित्र फिर यह पूछते हैं:

> क्या डाक्टरोंको विदेशी दवाएं देना छोड़ देना चाहिए और उसके बदले आयुर्वेदिक और यूनानी दवाओंका उपयोग सीख लेना चाहिए?

स्वदेशीके नामपर किसी भी परिस्थितिमें हर प्रकारकी विदेशी चीजका त्याग कर देना आवश्यक है, ऐसा मैंने कभी खयालतक नहीं किया है। स्वदेशीकी मोटी व्याख्या यह है: स्वदेशीके मानी घरके बने कपड़ोंका इस्तेमाल करना और अपने गृहउद्योगकी रक्षाके लिए जिन विदेशी चीजोंके बहिष्कारकी आवश्यकता हो उनका बहिष्कार करना; और उनमें भी खासकर उन उद्योगोंकी रक्षाके लिए जिनके बिना भारत दरिद्रताका ग्रास बन जायेगा। इसलिए मेरी रायमें तो जिस स्वदेशीमें सभी विदेशी चीजोंका — चाहे वे कितनी ही लाभप्रद क्यों न हों और उनसे किसीको कोई हानि भी न होती हो — विदेशी होनेके कारण ही बहिष्कार करना आवश्यक हो तो स्वदेशीकी वह व्याख्या बड़ी ही संकीर्ण है। यदि दवा लेना ही आपत्तिकी बात न हो तो जहां विदेशी दवाएं अधिक कारगर हों और उनके विषयमें कोई दूसरी आपत्ति भी न हो, वहां मैं बिना किसी हिचकिचाहटके विदेशी दवाओंका उपयोग करूंगा। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि पश्चिमकी डिग्री-प्राप्त ऐसे भी बहुतसे डाक्टर हैं जो आयुर्वेदिक और यूनानी दवाइयोंकी बुराई करना फैशन समझते हैं। मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं कि आयुर्वेदिक और यूनानी दवाइयोंमें भी ऐसी दवाइयां हैं जो बड़ी गुणकारी होते हुए भी सस्ती होती हैं। इसलिए जिन्हें पाश्चात्य आरोग्य-शास्त्रकी शिक्षा मिली है वे यदि आयुर्वेदिक और यूनानी पद्धतियोंकी उपयोगिताके बारेमें शोध करनेकी कोशिश करें तो वह एक बड़ी शुभ और वांछनीय बात होगी।

इस मित्रका जो अन्तिम प्रश्न है उसका तो इन पृष्ठोंमें कई बार उत्तर दिया जा चुका है। "क्या आप सब प्रकारके यन्त्रोंके विरुद्ध हैं?" मेरा स्पष्ट उत्तर है:

"नहीं"। परन्तु मैं उसकी विवेकहीन वृद्धिके विरुद्ध हूँ। मैं तमाम नाशकारी यन्त्रोंके सर्वथा विरुद्ध हूँ। परन्तु सादे औजार, ऐसे साधन और यन्त्रोंका मैं अवश्य स्वागत करूँगा जो व्यक्तियोकी मजदूरीको बचाते हैं और झोंपड़ियोमें रहनेवाले करोड़ों लोगोका बोझ हलका करते हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १७-६-१९२६

१३. खादी-केन्द्रोंके व्यवस्थापकोंसे

देशके विभिन्न खादी-केन्द्रोंके बारेमे अभी हालमे मैंने जो दिलचस्प जानकारी प्रकाशित की है उसे पाठकोने पढ़ा होगा, अब मैं खादी-केन्द्रोंसे इतनी तफसील और चाहता हूँ:

(१) केन्द्रमें कतैयोंको रोजी मिल रही है? कतैयोंका मजहब, वे पुरुष हैं या स्त्री, और यदि सम्भव हो तो यह भी लिखे कि उनमें से प्रत्येक की उम्र क्या है? कताईसे उनको औसतन कितनी मासिक कमाई हो रही है? वे किस अंकका सूत कात रहे हैं? महीनेमें कुल कितना सूत आ जाता है? काम कितने गाँवोंमे फैला है?

(२) यदि कपासकी ओटाई हाथसे की जाती है, तो कितनी कपास ओटाई गई और किस दरसे? कितने ओटनेवाले लगाये गये? उन्हें कुल कितनी रकम मिली?

(३) यदि रुई पेशेवर धुनियो द्वारा धुनवाई जा रही है, तो कितने धुनियों और कितने पूनी बनानेवालोसे काम लिया गया? धुनाईकी दर, उनको मजदूरीके रूपमे प्रति मास कुल कितनी रकम मिली?

(४) कितने बुनकरोंसे काम लिया गया? उनको बुनाई किस दरसे दी गई? बुनाईके रूपमे कुल मिलाकर उन्हे कितना रुपया मिला? केन्द्रमें कुल कितनी खादी (गजोंमे) तैयार हुई? उसका अर्ज क्या था और वह तौलमें कितनी थी?

(५) शुरूसे लेकर बुनाईतक खादीकी कुल लागत और उसका विक्रय मूल्य, स्थानिक बिक्री कुल मिलाकर कितनी हुई? अन्य बिक्री?

(६) दफ्तरका खर्च। कितने पुरुष और स्त्री वेतन लेकर या अवैतनिक रूपसे उस केन्द्रमें काम कर रहे हैं?

आशा है कि जिनकी नजरसे यह अनुच्छेद गुजरेगा वे सभी अधीक्षक कृपा करके अपने कार्यका विवरण भेज देगे। मेरा अनुरोध है कि खादी-प्रचार आन्दोलनके लिए उपयोगी अन्य जानकारी भी व्यवस्थापकगण लिख भेजनेकी कृपा करें।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १७-६-१९२६

१४. नीलगिरि जिलेमें खादी

नीलगिरी जिलेमे फेरी लगाकर खादी बेची जा रही है। एक धनी जमीदारने खादीका स्टाक रखने और दौरेके दौरान खादीके कार्यकर्त्ताओंके ठहरनेके लिए अपना बंगला दे दिया है। मालूम हुआ है कि यहाँ नीलगिरीके कृषि उद्यान सघके तत्वावधानमे सरकारी वनिस्पति उद्यानमे एक प्रदर्शनी की गई थी। कहते हैं कि प्रदर्शनीके मन्त्रीने जनताको विश्वास दिलाया था कि प्रदर्शनीको विराट् बनानेके विचारसे वहाँ ऐसे प्रदर्शन भी रखे जा सकेंगे जो स्पर्धाके लिए न हो। किन्तु प्रदर्शनार्थ खादी और चरखे रखनेके लिए दी गई दरख्वास्तका प्रदर्शनीके मन्त्रीने यह उत्तर दिया था कि चूंकि जगह कम है इसलिए प्रदर्शनीमे प्रदर्शनके लिए ये चीजें नही रखी जा सकती।

यद्यपि यह विश्वास करना कठिन जान पड़ता है कि इस प्रकारका खुला निमन्त्रण देनेके बावजूद कोई मन्त्री खादीको प्रदर्शनीमे रखनेसे इनकार करनेका बचपना दिखायेगा; फिर भी मुझे जैसी खबर मिली है मैं उसे प्रकाशित कर रहा हूँ। यदि मन्त्री महोदय ऊपर बताये गये आचरणके सम्बन्धमे कोई स्पष्टीकरण देना चाहे, तो मै उसे प्रसन्नतापूर्वक प्रकाशित करूँगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १७-६-१९२६

१५. पशु-धन

श्री वालजी देसाईके 'गाय' विषयक लेखोंको यदि पाठकोंने ध्यानपूर्वक पढ़ा होगा तो उन्हें यह मालूम हुए विना न रहेगा कि संसारमे भारतके सिवा और किसी भी देशमें, देश या उसके लोगोके लिए उसके मवेशी भारस्वरूप नही होते। और यह भी कि दूसरे देशोंमे अधिकांश लोग इन पशुओंको काट डालनेमे कुछ भी बुरा नहीं मानते; यही नहीं वे जानबूझकर अनावश्यक पशुओको काट डालते हैं। इसके सिवाय यह भी कहा जा सकता है कि ऐसे देशोंमे अनावश्यक पशु होते ही नही, क्योंकि वहाँ पशुओंको काटनेके लिए पालते भी हैं। दलीलके तौरपर इसमे बेशक बहुत वजन है। परन्तु इन पृष्ठोंमे इस विषयपर जो-कुछ भी लिखा गया है उसका उद्देश्य यही दिखाना है कि भारतके बहुसंख्यक लोग खुराकके लिए पशुओंको नही मारेंगे; किन्तु फिर भी यदि वे काफी विचार करें और उनकी अच्छी व्यवस्था करें तो देशके मवेशी देशके लिए भारस्वरूप न होंगे; और उन्हें काटना इतना महँगा बनाया जा सकेगा, जिससे कि सिर्फ वही लोग उनको काट सकेंगे जो कि स्वादके लिए या धर्मके नामपर उनको हलाल करना चाहेंगे। 'यंग इंडिया'के लेखोंका उद्देश्य यही दिखाना है कि आजकल बूचड़खानोंमे जो पशु जाते है, वे केवल हमारी अपनी

लापरवाही और अज्ञानके कारण ही जाते हैं। हमारा उद्देश्य यह दिखाना भी है कि एक बहुत-बड़ी संख्यामें पशुओंकी रक्षा करनेके प्रश्नकी महत्ता धार्मिकके बनिस्बत आर्थिक ही विशेष है; अथवा यह दिखाना है कि अर्थशास्त्र और धर्मशास्त्रमें कोई अन्तर्विरोध नहीं है। मैंने तो इससे भी आगे बढ़कर कहा है कि जो धर्म अर्थशास्त्रके मूल सिद्धान्तोंका विरोधी है, बुरा है और इसका उलटा, अर्थात् वह अर्थशास्त्र भी, जो धर्मके मूल सिद्धान्तोंका विरोधी है, उतना ही बुरा है।

खुराकके लिए जानवरोंको काटनेकी बात छोड़ दें तो भी पाश्चात्य देशोंसे सम्बन्धित अर्थव्यवस्थासे हम बहुत-कुछ सीख सकते हैं। यदि राष्ट्र अथवा कहो हिन्दू लोग, पशु-पालनसे कोई आर्थिक लाभ न उठाना चाहें तो यह आत्मत्याग ही पशुओंके निर्वाहके लिए उनके स्वाभाविक जीवनके अन्ततक, जब वे दूध देने और मेहनत करने लायक न रहें तब भी, काफी होगा। हेनरी और मॉरिसनकी 'फीड्स ऐंड फीडिंग' नामक पुस्तककी भूमिकासे उद्धृत किये निम्नलिखित अनुच्छेदोंसे मालूम होगा कि अमेरिकामें गो-धनको किस दृष्टिसे देखा जाता है।[1]

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १७-६-१९२६

१६. खादीकी फेरी

खादीके सभी महत्त्वपूर्ण केन्द्रोंमें इस तरहके सराहनीय प्रयत्न किये जा रहे हैं कि उनमें जितनी खादी तैयार होती है वह सब उनके आसपासके क्षेत्रोंमें खप सके। तमिलनाडमें गत मार्चतक डेढ़ सालके अर्सेमें फेरी लगाकर जो खादी बेची गई उसकी रिपोर्टमें से मैं ये अंश दे रहा हूँ।[2]

आन्ध्रकी रिपोर्टसे लिये गये निम्न उद्धरणोंसे[3] उस प्रान्तके फेरीवालोंके अनुभव मालूम होते हैं। यह रिपोर्ट १० महीनेके अर्सेकी है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १७-६-१९२६

१. पशु-पालनसे सम्बधित ये उद्धरण यहाँ नहीं दिये जा रहे हैं।

२. यहाँ नहीं दिये जा रहे हैं। उनमें फेरीवालों द्वारा देहातों और शहरोंमें की गई खादीकी बिक्रीका विवरण दिया गया है और गांवोंमें ज्यादा अच्छे प्रचारकी आवश्यकतापर जोर दिया गया है।

३. यहाँ नहीं दिये गये हैं। उनमें कुछ जिलोंमें की गई खादीकी बिक्रीके आंकड़े थे।

१७. पत्र : परशुराम मेहरोत्राको

सावरमती आश्रम
१८ जून, १९२६

चि० परशुराम,

अव मैं जानना च्हाता हु तुमारा आना कव हो सकता? आखरकी तारीखका मुझको तार दे देना। हिंदी नवर्जीवनके लीए मे तुमारा उपयोग करना च्हाता हु और कार्य शीघ्रतासे ही होना चाहीए।

बापूके आशीर्वाद

मूल पत्र (जी० एन० ६१००) की नकलसे।

१८. पत्र : किशनसिंह चावड़ाको

आश्रम
सावरमती
ज्येष्ठ सुदी ८, १९८२ [१८ जून, १९२६]

भाईश्री ५ किशनसिंह,[1]

आपने मुझे पत्र लिखा, यह अच्छा किया। पत्र डायरीमे ही रह गया था। आपके जानेके वाद ही मैं अन्य कार्योमे फँस गया। मुझे उनसे फुर्सत नही मिली तथा पत्रकी याद भी नही आई। इसके लिए मुझे क्षमा करें।

मैं इसके साथ कुछ[2] लिखकर भेज रहा हूँ।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९४००) की माइक्रोफिल्मसे।

१. गुजराती लेखक और समाज सेवक।
२. उपलब्ध नहीं है।

१९. पत्र : फूलसिंहको

आश्रम
साबरमती
ज्येष्ठ सुदी ८, १९८२ [१८ जून, १९२६][1]

भाईश्री ५ फूलसिंहजी,

आपका पत्र मिला। इसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ और आपका आभार भी मानता हूँ। आपकी आलोचना मुझे सर्वथा उचित लगी है। बात यह है कि नवजीवन प्रकाशन मन्दिरमें हिज्जोंको सुधारनेके कामपर जितना चाहिए उतना पैसा नहीं लगाया गया है। पुस्तकें निकालनेके प्रयत्नमें, जैसे दोष आपने बताये, रह गये हैं। मैंने यह बात अपने बचावमें नहीं लिखी है, वरन् दोषोंपर जोर देनेके हेतुसे लिखी है; क्योंकि मेरी मान्यता यही है कि इस संस्थाकी ओरसे पुस्तकें निर्दोष प्रकाशित की जानी चाहिए। मैं इस बारेमें स्वामीसे विस्तारके साथ बातचीत करूँगा। आपने जो भी अशुद्धियाँ देखी हों, उनका शुद्धिपत्र बनाकर मुझे भेज दें।

मोहनदासके वन्देमातरम्

भाईश्री फूलसिंहजी
मार्फत चरोतर शिक्षा मण्डल
आनन्द

गुजराती पत्र (जी० एन० २८८) की फोटो-नकलसे।

२०. पत्र : देवदास गांधीको

आश्रम
साबरमती
शुक्रवार, ज्येष्ठ सुदी ८ [१८ जून, १९२६][2]

चि० देवदास,

तुमने पत्र न लिखनेकी प्रतिज्ञा कर ली जान पड़ती है। बम्बईसे तो तुम नियमसे पत्र भेजते रहते थे; किन्तु तुमने मसूरीसे सारे आश्रमके लिए एक ही पत्र भेजा है। आलस छोड़ दो। यदि जमनालालजी २६ तारीखको न आ सकें तो आनेका लोभ

१. डाककी मुहरमें "अहमदाबाद २०-६-१९२६" है।

२. पत्रमें देवदास गांधी और लालजीके मसूरीमें स्वास्थ्य लाभ करनेकी चर्चासे मालूम होता है कि यह १९२६ में लिखा गया था।

रखनेकी आवश्यकता नहीं।[1] उनकी तबीयत भी कुछ ढीली तो है ही। इसलिए बिलकुल चंगा हो जाना जरूरी है। क्या लालजीके घाव अभी पूरे नहीं भरे?

मथुरादास पंचगनीमें रम गया है।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९६२२) की माइक्रोफिल्मसे।

२१. सन्देश : नेलौर आदि-आन्ध्र सम्मेलनको[2]

[१९ जून, १९२६ या उससे पूर्व]

सम्मेलनके लिए मेरा सन्देश यह है। ईश्वर करे सम्मेलन पूर्णतया सफल हो। इस सम्मेलनको पल्लिपाड सत्याग्रह आश्रमके अहातेमें आयोजित करना, राष्ट्रके काममें निःस्वार्थ भावसे अपना जीवन खपा देनेवाले देशभक्त स्व० डी० हनुमन्तरावकी स्मृतिके प्रति सम्मान प्रकट करना है।

आशा है कि उस स्थलपर जो अनेक सम्मेलन होने जा रहे हैं उनमें हाथ-कताई और खद्दरको आवश्यकतापर जोर दिया जायेगा। मुझे यह आशा भी है कि इस सम्मेलनके प्रयाससे नेलौर जिलेके माथेपरसे अस्पृश्यताका वह कलंक भी मिटा दिया जायेगा जो अपनी पिछली यात्राके अवसरपर मुझे वहाँ दिखाई दिया था।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, २१-६-१९२६

२२. पत्र : वीरेन्द्रनाथ सेनगुप्तको

आश्रम
साबरमती
१९ जून, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मेरे विचारसे तो जबतक मनुष्यके मनमें काम-वासना मौजूद है तबतक दिव्य ज्ञान प्राप्त करना असम्भव है। यदि कोई व्यक्ति अपने निश्चयको सर्वथा उचित माने तो वह पत्नी या पतिके आगे झुकनेके लिए बाध्य नहीं है। मेरे

१. अखिल भारतीए चरखा संघकी बैठकमें भाग लेनेके लिए।

२. यह पत्र पल्लिपाड सत्याग्रह आश्रमके मन्त्रीको भेजा गया था। सम्मेलन हराला देवेन्द्रुडु, एम० एल० सी० की अध्यक्षतामें हुआ था और उसमें **आन्ध्र पत्रिकाके** डी० के० नागेश्वरराव पन्तुलुने उक्त सन्देश पढ़कर सुनाया था।

खयालके मुताबिक हर हालतमे दोनोंकी रजामन्दी होनी ही चाहिए। निश्चय ही राष्ट्रीय कार्यकर्त्ताओंके लिए मेरी सलाह पूरी तरह संयमशील होनेकी है। परन्तु मै जानता हूँ कि यह एक आदर्श स्थिति है और इसपर अमल करना आसान नहीं है। इसीलिए प्रत्येक व्यक्तिको अपनी क्षमता देखकर स्वयं ही अपने बारेमे निर्णय करना चाहिए।

समाजमें अव्यवस्था और किंकर्त्तव्यमूढ़ता हो और फिर भी यदि कोई व्यक्ति अपने कर्त्तव्यका यथाशक्ति पालन करता हो तो उसे निराश होनेकी जरूरत नही है। अगर विद्यार्थी लोग तकनीकी प्रशिक्षण चाहते है तो उन्हे बढ़ईगीरी या फिर लुहारगीरी सीखनी चाहिए। उनको सिखानेके लिए यूरोपीय ढंगके साज-सामानसे लैस कोई बड़ा कारखाना दरकार नहीं, बल्कि वे किसी साधारण बढ़ई या लुहारकी देखरेखमे काम सीख सकते है। और जब वह हुनर उन्हे बखूबी आ जाये तब वे यूरोपीय ढंगके कारखानोंमें नये तरीकों और औजारों इत्यादिका प्रशिक्षण प्राप्त करके उसमें से जो-कुछ आवश्यक हो, उसे हृदयंगम कर सकते हैं। ऐसा प्रशिक्षण कम खर्चीला और अधिक कारगर भी होगा।

मेरा खयाल है कि आप सिर्फ फ़ौरी कामोंकी ओर ध्यान दें। ईमानदारी और एकाग्रताके साथ काम करते रहनेपर सार्वजनिक शिक्षाकी व्यवस्था अपने-आप हो जायेगी।

गुजरात विद्यापीठमे कोई गड़बड़ी नहीं है। हाँ, इतना जरूर है कि उसके कुछ ऐसे शिक्षकोंको जो वास्तवमें शैक्षणिक कार्यके क्षेत्रमे भी असहयोगी नहीं हैं, त्यागपत्र देना पड़ा है।

बाबू रामदास गौड़के बारेमे आपने जो-कुछ लिखा है उसे पढ़कर दुःख हुआ। हमें चाहिए कि हम सब लोग बहुत ही विनम्रतापूर्वक उनसे प्रार्थना करें कि वे अपना अनुसन्धान कार्य[1] बन्द रखे। हम उन्हें बढ़ावा न दें।

हृदयसे आपका,

बाबू वीरेन्द्रनाथ सेनगुप्त
बिहार विद्यापीठ
डा० दीघाघाट, पटना

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०९४३) की माइक्रोफिल्मसे।

१. प्रेत-विद्याके सम्बन्धमें।

२३. पत्र : ए० एस० डेविडको

आश्रम
सावरमती
१९ जून, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र[1] मिला। मैं आपका आशय समझ गया हूँ, किन्तु खेदके साथ कहना पड़ता है कि आपका यह सबसे हालका पत्र तो मुझे और भी कम पसन्द आया है। फिर भी मैं वहसमें नहीं पड़ना चाहता। मैं फिर अपनी पिछली वारकी सलाह ही दोहराता हूँ, आप कोई भी कदम उठानेसे पहले यहाँ खुद आकर सब चीजें स्वयं देख लें।

श्री ए० एस० डेविड
७१, दिलकुशा, लखनऊ

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०९४४) की फोटो-नकलसे।

२४. पत्र : एस० रामनाथनको

आश्रम
सावरमती
१९ जून, १९२६

प्रिय रामनाथन,

मगनलालने आपके नाम जो पत्र लिखा था वह मैंने पढ़ लिया है। तमिलनाडकी खादी अब घटिया किस्मकी बनने लगी है। इस सम्बन्धमें मेरे पास बड़ी शिकायतें आ रही हैं। खादी घटिया किस्मकी हरगिज न बनने पाये, इसकी हर हालतमें व्यवस्था की जानी चाहिए। आजकल जो खादी आपके यहाँ तैयार की जा रही है, उसके वारेमें वहुतसे लोगोंने जो अपनी राय व्यक्त की है उसे अगर आप ठीक मानते हैं तो यह आवश्यक है कि आप इस खामीको स्वीकार करें और उसका स्पष्टीकरण करें। इस सम्बन्धमें आई हुई शिकायतके वारेमें मैंने श्री जेराजाणीको[2] पत्र लिखा था और यह कहा था कि इस सम्बन्धमें मेरा पथप्रदर्शन करें। उन्होंने जो उत्तर मुझे भेजा है उसमें से आपके लाभार्थ एक अनुच्छेद यहाँ दे रहा हूँ। वे कहते हैं :

१. ए० एस० डेविडने १० जूनको लिखे अपने पत्रमें रोटीके लिये किये जानेवाले शरीर-श्रमके सिद्धान्तमें अपनी दिलचस्पी और आश्रममें शामिल होनेकी इच्छा व्यक्त की थी। उन्होंने मिशनरी कार्यसे नाता तोड़नेकी अपनी मंशा जाहिर करते हुए गांधीजीसे मार्गदर्शन और सहायता माँगी थी। (एस० एन० १०९१७)। देखिए खण्ड ३०, पृष्ठ ५७२-७३ भी।

२. विट्ठलदास जेराजाणी।

तिरुपुरकी खादीमे जो बढ़ियापन पहले नजर आता था अब नही दिखाई पड़ता। परन्तु इस वर्ष थोड़ा सुधार देखनेमे आया है। तिरुपुरकी खादी-उत्पादक संस्थाने इस साल अपनी खादीके बड़े-बड़े दोष दूर करनेकी कोशिश की है। परन्तु अभी बहुत सुधार हो सकता है। उस संस्थाने तानेके प्रति चौथाई इंचमे दस तार रखनेका दस्तूर बना लिया है, परन्तु बानेके लिए उन्होने कोई निश्चित पैमाना स्थिर नही किया है। इसका नतीजा यह होता है कि बुनकर लोग प्रति इंच अपनी मर्जीके मुताबिक ज्यादा या कम तार भर लिया करते हैं। इसके फलस्वरूप करघेसे कमजोर और ढीली-ढाली खादी उतरती है।

कृपया इस मामलेकी छानबीन कीजिए और यदि आप वर्तमान खादीके घटिया-पनका आरोप स्वीकार करते है तो आप सब कैफियत सही-सही लिख भेजिए। अगर ऐसा है तो वर्तमान खादीकी किस्ममे गिरावट कैसे और किस हदतक पहुँची है, इस दोषको दूर करनेके लिए कौन-कौनसे कदम उठाये जाने चाहिए? यह भी लिखिए कि इस गिरावटके लिए कौन जिम्मेवार है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एस० रामनाथन
मन्त्री
अखिल भारतीय चरखा संघ (तमिलनाड शाखा)
इरोद

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११९११) की माइक्रोफिल्मसे।

२५. पत्र: च० राजगोपालाचारीको

आश्रम
साबरमती
१९ जून, १९२६

मैं इसके साथ उस पत्रकी प्रतिलिपि संलग्न कर रहा हूँ जो मैंने रामनाथनको[1] लिखा है। मैं जानता हूँ कि आप यथासम्भव सब-कुछ करेंगे ही।

इस माहके अन्ततक आप यहाँ आयेंगे ऐसी आशा है।

हृदयसे आपका,

संलग्न: १

श्रीयुत च० राजगोपालाचारी
गांधी आश्रम
पुडुपालयम, तिरुच्चङ्गोड

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १११९०) की माइक्रोफिल्मसे।

१. देखिए पिछला शीर्षक।

२६. पत्र : डी० एन० बहादुरजीको

आश्रम
साबरमती
१९ जून, १९२६

प्रिय मित्र,

नरगिसबहनने मेरे पास आपका काता हुआ सूत परीक्षार्थ भेजा है। वह खराब तो था ही नहीं। उसकी मजबूती ५०के लगभग और उसकी इकसारता ४०से ऊपर थी। नौसिखियेके लिए और एक बैठकमें कई घंटे चरखा न चलानेवालेके लिए यह बहुत अच्छी शुरुआत है। मैं चाहता हूँ कि आप मजबूती ७० तक ले जाइए। सूतकी इकसारता ४५से ऊपर होनी चाहिए। अभीतक मजबूती ७९ तक और इकसारता ४९ तक पहुँच पाई है।

आशा है श्रीमती बहादुरजी स्वस्थ होंगी। उनपर मेरे एक पत्रका उत्तर उधार है।

हृदयसे आपका,

श्री डी० एन० बहादुरजी
रिज रोड
मलाबार हिल डा०, बम्बई

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९६२३) की माइक्रोफिल्मसे।

२७. पत्र : शान्तिसुधा घोषको

आश्रम
साबरमती
१९ जून, १९२६

प्रिय बहन,

तुम्हारा पत्र मिला। यह कहना निश्चय ही गलत है कि १९ वर्षकी अवस्थामें कोई लड़की अपने जीवनके तौर-तरीकेमें परिवर्तन करना और आत्मसंयमसे रहना शुरू नहीं कर सकती। हकीकत यह है कि ये दोनों ही बातें किसी भी अवस्थामें की जा सकती हैं — अवस्था ढल चुकनेपर करनेकी बात ही नहीं उठती। जरूरत केवल एक बातकी है। वह है ईश्वरमें पूर्ण विश्वास रखना और आवश्यक परिवर्तन लानेका भार उसीपर छोड़ देना।

मेरा यह विश्वास अवश्य है कि मस्तिष्कका शरीरसे बहुत गहरा ताल्लुक है। यदि तुम्हें शरीर सम्बन्धी कोई रोग व्याप गया है तो उसका इलाज करना उचित

होगा; परन्तु यदि दिमागकी कमजोरीके कारण ही शरीर कमजोर रहता है तो तुम्हारे तन्दुरुस्त होनेका मार्ग यही है कि तुम ईश्वरपर तथा स्वस्थ करनेकी उसकी क्षमतापर विश्वास रखो।

हृदयसे तुम्हारा,

श्रीमती शान्तिसुधा घोष
द्वारा श्री के० एन० घोष, एम० ए०
अलीकोंडा (वारीसाल)

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९६२४) की फोटो-नकलसे।

२८. पत्र: गंगाबहन मजमूदारको

१९ जून, १९२६

पूज्य गंगाबहन,

आपका पत्र मिला। आपके लगाये गये आरोप और आपकी भाषा ऐसी नहीं कि उनका उत्तर दिया जाये। किन्तु चूँकि आप पंच नियुक्त करनेकी बात स्वीकार करती हैं, अतः पंचनामा तो होना ही चाहिए; लेकिन लगता ऐसा है कि पंचनामा लिखे जानेमें भी विघ्न आयेंगे। फिर भी अगर आप पंचनामा मेरे पास भेजेंगी तो मैं उसपर विचार कर सकूँगा। ऐसा लगता है कि इस बारेमें आपको किसी वकीलकी सलाह लेनी पड़ेगी।

गुजराती प्रति (एस० एन० १०९४२) की माइक्रोफिल्मसे।

२९. पत्र: घनश्यामदास बिड़लाको

सत्याग्रहाश्रम
साबरमती
ज्येष्ठ शुक्ल ९ [१९ जून, १९२६][1]

भाई घनश्यामदासजी,

सर्वेन्ट्स ऑफ इंडिया सोसाइटीको जो नुकसान पहुंचा है यह आप जानते ही हैं। श्रीनिवास शास्त्रीजीने इस बारेमें भिक्षा माँगनेका मुझको भी कहा है। ऐसा कहनेका उनको अधिकार है। मैंने 'यंग इंडिया' में तो लिखा हि है परंतु शास्त्रीजी च्हाते हैं मैं मित्रवर्गको भी लिखुं यद्यपि सोसाइटीकी राजनैतिक काररवाईको में

१. सर्वेंट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी (भारत सेवक समाज) को नुकसान पहुँचनेके उल्लेखसे यह पत्र १९२६ में लिखा गया जान पड़ता है। देखिए "भारत सेवक समाज सहायता-कोष", २४-६-१९२६।

नापसन्द करता हुं तदपि सोसाइटीके कर्मचारिओंका सदाचारको, उन्का देशाभिमानको, उन्की त्यागवृत्तिको मैं भूल नही सकता हु और इस कारण उन्की हस्तीको कायम रखना प्रत्येक स्वदेशाभिमानीका कर्त्तव्य समझता हु। यदि आप भी यही अभिप्राय रखते हैं तो कुच्छ न कुच्छ भी सहाय भेज दे और दूसरे मित्रोको भी वन पड़े तो देनेका कहे।

आपका,
मोहनदास

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ६१२९) की फोटो-नकलसे।
सौजन्य: घनश्यामदास बिड़ला

३०. विविध

मरणोत्तर भोज

मृत्यु होनेपर जो भोज दिया जाता है उसे मैं अगम्यता मानता हूँ। इसपर एक सज्जनका कहना यह है:[1]

मैं कई बार लिख चुका हूँ कि सस्कृतमे लिखी गई सारी ही कृतिया धर्मशास्त्र है, ऐसा नही मानना चाहिए। इसी तरह यह भी नही मानना चाहिए कि धर्मशास्त्र माने जानेवाले 'मनुस्मृति' आदि प्रमाण ग्रन्थोमे जो-कुछ आज हम पढते है वह सब मूलकर्त्ताकी कृति है, और यदि यह उसकी कृति हो तो वह आज भी अक्षरश: प्रमाण-रूप है; मैं स्वय तो ऐसा कतई नही मानता। कुछ सिद्धान्त अवश्य सनातनी सिद्धान्त है और उन निश्चित सिद्धान्तोको माननेवाला सनातनी है। मगर उन सिद्धान्तोको आधार मानकर जो आचार विभिन्न युगोके लिए बनाये गये थे वे सब अन्य युगोंमे भी उपयुक्त ही होने चाहिए, ऐसा माननेका कोई कारण नही है। स्थान, काल और सयोगोके कारण आचार बदला करता है। पहले जमानेमे मरणके बाद दिये जानेवाले भोजमें चाहे कुछ अर्थ भले ही हो, लेकिन इस जमानेमे उसकी सार्थकता समझमे नही आ पाती। जिस विषयमे बुद्धिका प्रयोग किया जा सकता है वहाँ श्रद्धाकी गुजाइश नही होती। जो बाते बुद्धिसे परे है उन्हीमे श्रद्धाका उपयोग है। इस मामलेमें तो हम बुद्धिसे समझ सकते है कि मरणके पीछे भोज देनेमे धर्मकी कोई बात नही है। हम देखते है कि दूसरे धर्मोंमे इस प्रथाका प्रचलन नही है। मरणोपरान्त भोजको रूढ़ रहने देनेके लिए संस्कृत श्लोकोके अतिरिक्त हमारे पास हिन्दूधर्मके और भी दूसरे सबल प्रमाण होने चाहिए। हिन्दू धर्मशास्त्रके अथवा कह सकते है कि

१. पत्र यहाँ नहीं दिया गया है। पत्र लेखकने इसमें गांधीजीसे पूछा था, "आप तो अपने आपको सनातनी हिन्दू कहते हैं। तब आप मृत्युके पश्चात् जातिभोजकी निन्दा क्यों करते हैं? इसका विधान तो शास्त्रोंने भी किया है।"

किसी भी अन्य धर्मशास्त्रके सिद्धान्तोंके साथ ऐसे भोजोंका कोई मेल नहीं बैठता और इनसे होनेवाली हानियाँ तो हमें स्पष्ट नजर आती हैं। प्रत्यक्ष प्रमाणोंके सामने संस्कृत भाषामें लिखे गये श्लोकोंका क्या उपयोग हो सकता है? मरणके पीछेके भोजको बुद्धि भी कबूल नहीं करती, हृदय भी कबूल नहीं करता और न वैसा अन्य देशोंमें ही कहीं देखा जाता है। ऐसे भोजोंको असभ्यता माना जाये, इसके लिए इससे अधिक कारण मेरे पास नहीं हैं। और किसीके पास होंगे ऐसी आशा भी नहीं रखी जा सकती। जैसे प्राचीन सब बुरा ही है ऐसा माननेवाले भूल करते हैं, वैसे ही समस्त प्राचीनको साधु माननेवाले भी भूल करते हैं। प्राचीन हो या अर्वाचीन, सब बातें बुद्धिकी कसौटीपर जाँची जानी चाहिए। जो बातें उसपर खरी नहीं उतर पातीं उनका सर्वथा त्याग कर देना चाहिए।

शराबकी दूकानें और पारसी

एक पारसी भाई लिखते हैं:[1]

उस लेखकने तो मुझे दुहरा अवसर दिया है। यद्यपि मैं प्रायः शराबके सम्बन्धमें नहीं लिखता फिर भी मेरा विश्वास शराबबन्दीमें कम नहीं है। इस पत्रके कारण एक तो मुझे यह बतानेका अवसर मिला और साथ ही इसका उत्तर देते हुए एक भ्रम भी दूर किया जा सकता है। इस भ्रमको दूर करनेकी बात ही पहले लें। मैंने यह कभी नहीं कहा कि केवल पारसी ही शराबके ठेके छोड़ें। मेरी मान्यता तो यह है कि सभी जातियोंके लोगोंको शराबकी बिक्रीसे होनेवाला आर्थिक लाभ छोड़ देना चाहिए। ईमानदारीसे रोजी कमानेके ऐसे दूसरे बहुतसे साधन हैं जिनपर कोई आपत्ति नहीं कर सकता। यदि कोई इन धन्धोंको छोड़कर शराबके धंधेमें लगता है तो मुझे अवश्य ही उससे दुःख होता है। यदि मेरे हाथमें सत्ता हो तो भारतमें शराबकी एक भी दूकान न रहे। शराब पीना कोई हक नहीं है; इसलिए शराब-बन्दी करनेसे लोगोंका हक छीने जानेका कोई भय नहीं है। चोरीका धन्धा जितना बड़ा अपराध है, शराब बेचनेका धन्धा करना भी उतना ही बड़ा अपराध है। माना ऐसा ही जाना चाहिए। यदि मैंने पारसी भाइयोंको सम्बोधन करके लिखा है तो इसका इतना ही अर्थ है कि वे अधिक समझदार हैं। मैं उनसे अधिक अपेक्षा करता हूँ। किन्तु ऊँचा या नीचा कोई भी हिन्दू अथवा किसी भी अन्य सम्प्रदायका व्यक्ति शराब बेचनेका धन्धा करे, मैं उसका समर्थन कर ही नहीं सकता। अब हम पहले प्रश्नपर आते हैं। मैंने शराबकी बुराईके सम्बन्धमें जो विचार १९२०–२१ में व्यक्त किये थे, वे आज भी ज्योंके-त्यों कायम हैं। मैं ज्यों-ज्यों विचार करता जाता हूँ और ज्यों-ज्यों अवलोकन करता जाता हूँ मुझे त्यों-त्यों शराबसे होनेवाली हानियाँ अधिकाधिक भयंकर लगती जाती हैं। कितने ही अपराधोंका मूल कारण मद्यपान होता

१. यहाँ नहीं दिया गया है। पत्रलेखकने लिखा था कि पारसियोंका खयाल है कि आप पारसियोंसे शराबकी दूकानें बन्द करनेका अनुरोध करते हैं किन्तु हिन्दुओंसे ऐसा नहीं कहते और जब पारसी शराबकी दूकानें छोड़ देते हैं तो हिन्दू उन्हें ले लेते हैं। मेरी प्रार्थना है कि आप इस सम्बन्धमें अपना विचार बतायें।

है। इसलिए शराबकी बुराईको दूर करनेके लिए जो भी योग्य कदम उठाये जा सकते हैं, मैं उन्हें उठानेके लिए अधीर हूँ। किन्तु हमारी मजबूरी इतनी अधिक है कि हम शराबबन्दी-जैसे अच्छे कार्योंमें भी जल्दी कुछ नहीं कर सकते। यदि मैं लोगोंको अहिंसापर दृढ़ रहनेकी बात समझा सकूँ तो आज ही फिर शराबकी दूकानों-पर धरना देनेका आन्दोलन शुरू कर दूँ। किन्तु आज तो ऐसा जान पड़ता है मानो हम तलवारकी ताकतको ही पूजते हों। ऐसी स्थितिमें कोई आशु उपाय काममें लाने-की हिम्मत नहीं होती।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २०-६-१९२६

३१. सूरतमें खादी

जहाँ-जहाँ खादीकी बिक्रीके लिए फेरी लगाई जा रही है वहाँ सब जगह वह सफल होती दिखाई देती है। भाई भरुचा लिखते हैं:[१]

मेरा दृढ़ विश्वास है कि अन्य सब स्थानोंपर भी सूरतके समान ही हो सकता है। आवश्यकता केवल परिश्रम और कौशलकी है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २०-६-१९२६

३२. नेपालमें यज्ञ-चक्र

अगर चरखा यज्ञका साधन हो, यदि वह इस युग और देशकी सभी जातियों और सब वर्णोंके लिए यज्ञ (कुरबानी) हो तो उसे यज्ञ-चक्रकी संज्ञा देनेमें कोई त्रुटि नहीं है। नीचे दिया गया पत्र पढ़नेपर यह नाम सहज ही लेखनीसे निकल गया। पत्रलेखक[२] एक नेपाली आश्रमवासी हैं। उसे आश्रममें दाखिल होनेके लिए बहुत तपश्चर्या करनी पड़ी थी। उसने चरखा-शास्त्रका अभ्यास भलीभाँति करके नेपालमें जाकर वहाँके गरीबोंमें चरखेका प्रचार करनेका निश्चय किया है। उसे वहाँ पहुँचे अभी करीब तीन माह हुए होंगे। इस बीचमें उसने जो काम किया है उसके बारेमें उसने मुझे हिन्दीमें निम्न पत्र लिखा है:[३]

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्रलेखकने लिखा था कि उन्होंने साढ़े तीन दिन फेरी लगाकर २,८०० रुपयेकी खादी बेची है।

२. तुलसी मेहर।

३. पत्र यहाँ नहीं दिया गया है।

यह हर चरखा प्रेमीके लिए अनुकरणीय है। इस खादी-सेवकमें त्याग है, निश्चय है, अपने शास्त्रका ज्ञान है, विवेक है और नम्रता है। ये गुण जिसमे हो उसे दूसरी सम्पत्ति सहज ही प्राप्त हो जाती है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २०-६-१९२६

३३. पत्र : कृष्णदासको

आश्रम
साबरमती
२० जून, १९२६

प्रिय कृष्णदास,

बहुत इन्तजारके बाद, आखिर तुम्हारा पत्र आ ही गया। फिनलैंड[1] न जानेके मेरे निर्णयसे मुझे निश्चय ही बड़ी राहत और शान्ति मिली। वहाँ जानेका लालच तो जबर्दस्त था, परन्तु मुझे ऐसा लगा कि यह निमन्त्रण ऐसा नही है जिससे भारतसे बाहर जानेका उत्साह पैदा हो। यदि मै जाता भी तो मै वहाँ अपना राजनीतिक सन्देश न सुनाता; बल्कि वहाँके विद्यार्थी समाजके साथ सम्पर्क स्थापित करता और उनसे नीतियुक्त जीवन व्यतीत करनेकी बात ही कहता। मुझे शुरू-शुरूमें वहाँ जानेका मोह इसीलिए हुआ था। परन्तु जब मुझे यह मालूम हुआ कि निमन्त्रण स्वयं-स्फूर्त न होकर किसीके सुझावपर भेजा गया है, तब मैंने सोचा कि मेरे हृदयमें जानेकी इच्छा उत्पन्न कर सकने योग्य निमन्त्रण नहीं है। मैं गुरुजीकी[2] इस रायसे पूर्णतया सहमत हूँ कि जबतक किसी व्यक्तिका अपने आसपासके वातावरणमे ही प्रभाव न हो तबतक देशके बाहर जानेसे कोई लाभ न होगा। अपने घरमे सफल हो जानेपर ही अन्यत्र सफल होनेकी आशा की जा सकती है।

अपने खयालसे तो मुझे इस बातका बहुत दुःख है कि तुम फिलहाल कुछ अर्से तक यहाँ नहीं आ सकोगे; लेकिन अपने गुरुजीकी सेवाके उद्देश्य और माताके इच्छा करते ही वहाँ उपस्थित हो सकनेके खयालसे तुमने वहाँ रुके रहनेका जो निर्णय किया है, वह ठीक है। जब कभी तुम्हे रुपयोंकी जरूरत पड़े, संकोच छोड़कर मुझे लिख भेजना।

१. ६ अप्रैल, १९२६को के० टी० पालने गांधीजीको 'यंग मैन्स क्रिश्चियन एसोसियेशन'की ओरसे फिनलैंडमें स्थित हेलसिंगफोर्समें अगस्तमें होनेवाले अखिल विश्व सम्मेलनमें शामिल होनेके लिए निमन्त्रित किया था। काफी पत्र-व्यवहारके बाद अन्तमें गांधीजीने यह कहकर वहाँ जाना अस्वीकार कर दिया था कि अभी मेरे लिए देशके बाहर जानेका समय नहीं आया है। देखिए खण्ड ३०, पृष्ठ ५८२।

२. सतीशचन्द्र मुकर्जी।

मैं चंगा हूँ। देवदास मसूरीमें लालाजीके पास है और बीमारीसे आई हुई उसकी कमजोरी दूर हो रही है। जमनालालजी तथा लक्ष्मीदासभाई भी वहीं हैं। शायद जमनालालजी यहाँ २६ ता० को आ रहे हैं। 'इंडियन रिव्यू' में प्रकाशित कविता पढ़ी थी। क्या अब तुम पहलेसे अधिक स्वस्थ हो? मेरा खयाल है कि तुम इस बातको जानते हो कि तुलसी मेहर नेपालमें बहुत अच्छा कार्य कर रहा है। मथुरादास अस्वस्थताके कारण डाक्टर मेहताके आदेशपर पंचगनी गये हुए हैं। प्यारेलाल उन्हींके पास है।

तुम्हारा,

श्रीयुत कृष्णदास
द्वारा श्री एस० सी० गुह
दरभंगा

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९६२५) की माइक्रोफिल्मसे।

३४. पत्र : तुलसीदासको

आश्रम
सोमवार, २१ जून, १९२६

भाईश्री तुलसीदास,

गिरधारीने लिखा है कि उसे भी [अस्पतालसे] छुट्टी मिल गई है। इसलिए अब मेरा कुछ लिखनेका मन होता है। क्या मैं आपका उपकार मानूं? मेरे साथियोंके प्रति आपने जो स्नेह व्यक्त किया है, हममें से कोई भी उसका अधिकारी न था, यह बात मैं अच्छी तरह समझता हूँ। मैं ऐसे स्नेहका बदला कैसे चुका सकता हूँ? यदि ये युवक और मैं जीवनपर्यंत देशसेवामें रत रह सके तो उससे कुछ सन्तोष होगा। ईश्वर आपका भला करे।

मोहनदासके वन्देमातरम्

सर हरकिशनदास अस्पताल

गुजराती पत्र (एस० एन० १९९१८) की माइक्रोफिल्मसे।

३५. पत्र : डॉ० दलालको

आश्रम
सोमवार, २१ जून, १९२६

भाईश्री,

आज गिरधारीने लिखा है कि उसे [अस्पतालसे] छुट्टी मिल गई। इसलिए क्या मैं दो शब्द लिखकर आपको धन्यवाद दूं? मैं जानता हूँ कि इससे उपकारकी कीमत कम होती है। आप और मैं दोनों ही कामकाजी मनुष्य हैं। इससे आपका समय नष्ट होता है। आपकी इस सेवाका बदला तो एक हदतक ये युवक और मैं कदाचित् जीवनपर्यंत देशसेवामें जुटे रहकर ही चुका सकते हैं। आपकी सादगीके बारेमें देवदासने मुझे बहुत-कुछ बताया है और उससे मुझे बहुत प्रसन्नता हुई है।

मोहनदासके वन्देमातरम्

डॉ० दलाल
चौपाटी
बम्बई

गुजराती पत्र (एस० एन० १९९१९) की माइक्रोफिल्मसे।

३६. पत्र : पट्टाभि सीतारमैयाको

आश्रम
साबरमती
२२ जून, १९२६

प्रिय डॉ० पट्टाभि,

आप जानते हैं कि इस महान् दुःखमें मुझे आपसे हार्दिक सहानुभूति है।[1] सुदक्षिणाके देहावसानके बारेमें मुझे कुछ भी पता नहीं था। यद्यपि उस लड़कीका चेहरा मुझे याद नहीं रहा; किन्तु इतना तो भलीभाँति याद है कि उसने मुझे हाथकी चूड़ियाँ प्रसन्न मनसे दे दी थीं। जैसे ही सम्भव हो, आप अवश्य आश्रम आयें और कुछ समय हम लोगोंके बीच बितायें।

१. गांधीजीके एक पोस्टकार्डके उत्तरमें पट्टाभि सीतारमैयाने अपनी आठ वर्षीय पुत्रीकी मृत्युका समाचार दिया था और यह भी लिखा था कि जब वह लड़की ३ वर्षकी थी तब उसने गांधीजीको सार्वजनिक कार्यके लिए अपनी चूड़ियाँ दी थीं। (एस० एन० १०९३५)

अब केशूके बारेमें। मैंने मगनलालकी[1] ओरसे नहीं लिखा था। आजकल जो लोग मेरी परिचर्यामें रहते हैं, चूंकि केशू उनमें से एक है इसलिए वह मुझे सब बातें बता देता है। मुझे मालूम नहीं कि मगनलालको यह विदित भी है या नहीं कि मैं केशूके बारेमें आपसे पत्र-व्यवहार कर रहा हूं। ऐसा नहीं कि उसे यह बताना जरूरी ही न हो; लेकिन हम सब लोग यहां इतने व्यस्त रहा करते हैं कि हमें और बातें करनेका अवसर ही नहीं मिल पाता। हमें केवल जरूरी बातें करनेका समय ही मिल पाता है। और चूंकि केशूकी शिक्षा-दीक्षाके बारेमें मगनलालसे सलाह-मशविरा करना ऐसा जरूरी नहीं है; इसलिए जिस योजनाको मैं तैयार कर रहा हूँ उसके बारेमें मैंने उससे बात नहीं की। परन्तु मगनलाल इतना जरूर जानता है कि केशूके मनमें यान्त्रिक ज्ञान सम्बन्धी अपनी योग्यता बढ़ानेकी बड़ी इच्छा है। क्या मैसूर राज्यमें तकनीकी शिक्षाका कोई प्रतिष्ठान है? यदि है तो क्या आप उसके बारेमें कुछ जानते हैं? क्या आपके प्रान्तकी वह संस्था ही आपकी निगाहमें भारतकी सर्वश्रेष्ठ संस्था है? इस बातके उत्तरके साथ-साथ यह भी लिखनेकी कृपा कीजियेगा कि आपकी संस्थामें वर्षमें सत्र होते हैं अथवा आपकी संस्था भरतीके लिए बारहों महीने खुली रहती है और विद्यार्थीगण जब भी प्रवेशके लिए आ जाते हैं, उनको भरती कर लिया जाता है?

हृदयसे आपका,

डॉ० पट्टाभि सीतारमैया
मसूलीपट्टम

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०९४९) की फोटो-नकलसे।

३७. पत्र : एन० एस० वरदाचारीको

आश्रम
साबरमती
२२ जून, १९२६

प्रिय वरदाचारी,

आपका पत्र मिला। बड़ी राहत मिली। मैं जानता हूं कि आपका संकल्प आपकी कठिनाइयां दूर करेगा। वेतन-वृद्धिका प्रश्न तो कोई मुख्य प्रश्न नहीं। वह तो एक गौण-सा प्रश्न है। जिस आशयका पत्र आपने भेजा है मेरे पास उसी आशयके बहुतसे पत्र आये हैं; उनसे उत्पन्न होनेवाले प्रश्नोंके बारेमें मैंने अपने विचार जिस रीतिसे

१. तकनीकी शिक्षाके बारेमें गांधीजी द्वारा लिखी बातको डा० सीतारमैयाने गलत समझकर मगनलाल गांधीके प्रतिभापूर्ण मस्तिष्ककी सराहना करते हुए कहा था कि कारखानेके अनुभवसे वह और भी तीक्ष्ण हो जायेगा। देखिए "पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको", २२-६-१९२६।

व्यक्त किये हैं, उससे आप शंकित अथवा भयभीत न हों। अभी हाल ही में मेरे पास इसी ढंगके अनेक पत्र आये हैं; इसलिए मेरे मनमे यह विचार आया कि मैं इस समस्यापर सामान्यरूपसे 'यग इडिया' में ही लिखूँ।

आपको च० रा०[1] ने जो पत्र लिखा है उसे मैं पढ़ गया हूँ। शंकरलालके बम्बईमे होनेके कारण कल ही उसे देखनेका मौका मिल पाया। रामनाथनके मामलेसे तथा उन्हें दी गई वेतन-वृद्धिसे आपका कोई वास्ता है — यह विचार मुझे कभी जमा ही नही। इसके विपरीत, शकरलालने मुझसे कहा था कि आपकी आर्थिक कठिनाइयाँ रामनाथनकी कठिनाइयोंसे पहलेकी हैं, या कमसे-कम उनकी जानकारीमे वे पहले आ चुकी थीं। खैर कुछ भी हो आपके प्रति मेरा बहुत ऊँचा खयाल है, इसलिए आपके विषयमे यह शंका तो उठ ही नहीं सकती कि आप किसी परिस्थितिका अनुचित लाभ उठाना चाहेंगे।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११११४) की माइक्रोफिल्मसे।

३८. एक पत्र[2]

आश्रम
साबरमती
२२ जून, १९२६

प्रिय मित्र,

आप ऐसा क्यों कहते हैं कि मेरा रवैया देखनेमे या किसी दूसरी तरहसे भी, आपके अथवा आपके उद्देश्यके प्रति उदासीनताका है? मैंने आपको अपनी कठिनाई बतलादी है। चरखा संघने जो सामान्य विधि निर्धारित कर दी है, मैं उसका पालन किये बिना अर्थ-सम्बन्धी कोई कदम नहीं उठा सकता। यदि चरखा संघ-कोषमे से मैं कोई रकम किसी व्यक्ति या संस्थाको अपने मनसे दे दूँ, तो समूचा संगठन अव्यवस्थित हो जायेगा। इसलिए निवेदन है कि आप सतीशबाबूपर अविश्वास न करें, बल्कि जैसा वे कहे वैसा करें। ऐसा करनेसे अन्ततः आपको जिन-जिन सुविधाओंकी आवश्यकता है, वे सब सुलभ हो जायेगी। सतीशबाबूपर विश्वास न रखनेका कारण क्या है? आपने जो दो पत्र मुझे भेजे हैं, वे काफी स्पष्ट हैं। परन्तु यदि आपकी उनसे न पटती हो तो आप अभय-आश्रममें काम करने लगें। यदि हमें खादीके कामको निकट भविष्यमें किसी महान सफल कार्यके रूपमें देखना है, और ऐसा होना ही चाहिए — तो हमें मिलजुलकर काम करना सीखना चाहिए। इसकी खातिर हमें अपने विचारोंको अहं और अपनी रुचियोंको आड़े नहीं आने देना चाहिए। सिद्धान्त

१. चक्रवर्ती राजगोपालाचारी।
२. यह पत्र किसे लिखा गया था यह ज्ञात नहीं है।

सम्बन्धी मतभेद तो यदा-कदा ही उपस्थित होते हैं। आप अपने ही मामलेको ले लीजिए। उसमें किसी भी सिद्धान्तकी बात आड़े नहीं आ रही है। आप खादी-कार्यके अपने तरीकेको किसी अन्य व्यक्ति द्वारा सुझाये गये तरीकेसे बेहतर मानें, यह सम्भव है। परन्तु निःसन्देह इसमें वैमनस्य और झगड़े-बखेड़ेका तो कोई औचित्य नहीं — हाँ एक बात है — आपकी . . .।

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११६९५ आर०) से।

३९. पत्र : मुहम्मद शफीको

आश्रम
साबरमती
२२ जून, १९२६

प्रिय शफी साहब,

आपका लम्बा, दिलचस्प और उम्मीदबख्श खत[1] मिला। आप बिहारमें जो-कुछ कर रहे हैं वह बराबर मेरी नजरमें है। आप जो कर रहे हैं सही जानिबमें है। आपने अपने खतमें कुछ ऐसे खयाल जाहिर किये हैं जिनसे दिलको सदमा पहुँचता है। आपने अपने खतमें लिखा है कि मुसलमानोंके खिलाफ हिन्दुओंकी कोई साजिश थी। अगर यह बात सही निकले, तो मेरे दिलको बड़ी चोट पहुँचेगी।

मैं यह मान लेता हूँ कि आपके खतके मजमूनके बारेमें राजेन्द्रबाबूसे मशविरा करनेकी मुझे इजाजत है।

अब रही मेरी बात। जिस पल मुझे खुदाका हुक्म मिलेगा कि अब तू अपने घोंघेमें से बाहर निकल, मैं उसी पल बाहर निकल आऊँगा। मैं आज जो-कुछ कर रहा हूँ वह काम-जैसा नहीं दिखता, लेकिन फिलहाल तो मेरा वही काम है।

दिलसे आपका,

श्री मुहम्मद शफी
मुजफ्फरपुरवाले
बिहार शरीफ

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११०७३) की फोटो-नकलसे।

१. पत्रमें मुहम्मद शफीने बिहारके हिन्दू व मुसलमान कार्यकर्ताओंके बीच किसी प्रकारका समझौता करानेकी अपनी कोशिशोंका जिक्र करते हुए गांधीजीको इस बातकी याद भी दिलाई थी कि ५ और ६ मई, १९२६ को वे उनसे अहमदाबादमें मिले थे। उन्होंने यह भी सूचित किया था कि ८, ९ और १० जूनको छपरामें हिन्दू-मुस्लिम एकताके लिए काम करनेवाले कार्यकर्ताओंकी बैठक हुई थी और 'जनतामें शान्ति कायम करनेके खयालसे' खास-खास हिन्दुओं और मुसलमानोंका एक शिष्टमण्डल बिहारका दौरा भी कर चुका है। शफी साहबने गांधीजीसे कहा था कि अब वह समय आ गया है कि एकता कायम करनेके कामको अधिक उत्साहसे, अधिक बड़े क्षेत्रमें और ज्यादा जाने-माने लोगोंके सहयोगसे किया जाये। (एस० एन० ११०७३)

४०. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

आश्रम
साबरमती
२२ जून, १९२६

प्रिय सतीशबाबू,

दो कामोंमें मैं आपकी मदद चाहता हूँ; इनका सम्बन्ध आपके खादीकार्यसे नहीं है। आप जानते ही हैं कि केशूकी मशीनी काममें स्वाभाविक रुचि है। वह इसमें और तरक्की करना चाहता है; उसका खयाल है कि यह तभी सम्भव हो सकता है, जब उसे किसी मेकेनिकल इंजीनियरिंग संस्था या कारखानेमें काम करनेका अवसर मिले। मैं उसकी यह अभिलाषा पूरी करना चाहता हूँ। परन्तु मुझे यह नहीं मालूम कि उसके लिए कहाँ व्यवस्था करनी चाहिए। मैंने आन्ध्र राष्ट्रीय संस्थानकी पाठ्यक्रम सम्बन्धी पुस्तिकाके लिए मसूलीपट्टम पत्र[1] लिखा था। वह आ भी गई है। परन्तु मुझे मालूम है कि इस विषयमें आपकी राय सबसे अच्छी रहेगी। यह हुई एक बात।

दूसरी बात साबुनसे सम्बन्धित है। चूँकि साबरमती आश्रमकी बस्ती बढ़ती जा रही है, साबुनपर होनेवाला खर्च बढ़ रहा है। बदनमें लगानेवाले साबुनकी एक टिकिया ४ से ६ आने तकमें मिलती है। कपड़े धोनेके साबुनकी बट्टी दो आनेकी मिलती है। अगर कोई व्यक्ति शरीर या कपड़ा साफ करनेके लिए पानीके अतिरिक्त अन्य कोई पदार्थ चाहे तो क्या इसके लिए कोई और सस्ता साधन उपलब्ध नहीं हो सकता? अगर आप साबुन बनानेकी सरल विधि लिख भेजें और यह भी कि उसमें कौन-कौन-सी चीजें दरकार हैं, तो यह विचार करनेके पश्चात् कि इस प्रकार तैयार किया गया साबुन अपेक्षाकृत सस्ता पड़ता है या नहीं, मैं निश्चय ही उसे आश्रममें बनवाने लगूँगा। आप काफी बड़े परिमाणमें साबुन बना चुके हैं। इसलिए शायद आप मुझे बता सकेंगे कि क्या करना चाहिए। मुझे डॉ० रायके ढंगका नुस्खा चाहिए। दंतमंजनके सम्बन्धमें उन्होंने जो कुछ कहा था सो आपको याद होगा। उनके शब्द थे, "बंगाल केमिकल वर्क्समें बनाया जानेवाला मंजन मूर्खोंके लिए है; मुझ-जैसे बुद्धिमान व्यक्तियोंके लिए तो खड़िया मिट्टी या पिसा हुआ लकड़ीका कोयला ही सबसे अच्छा दंतमंजन है।" क्या बुद्धिमान व्यक्तियोंके लिए कोई ऐसा ही सादा-सा नुस्खा साबुनके बारेमें भी है?

मुझे मालूम हुआ है कि हेमप्रभा देवीने 'आश्रम भजनावली' की १२ प्रतियाँ मँगवाई हैं। अभीतक प्राप्त संस्करण लगभग समाप्त हो गया है और उसमें अनेक अशुद्धियाँ भी हैं। नवजीवन छापाखानेका यह सबसे अधिक लोकप्रिय प्रकाशन है। अब इस पुस्तकको एक समिति बहुत सावधानीके साथ संशोधित कर रही है। आशा

१. देखिए "पत्र: पट्टाभि सीतारमैयाको", २२-६-१९२६।

है, थोड़े ही दिनोंमें संशोधित और दोषरहित संस्करण प्रकाशित हो जायेगा। तब वे चाहे जितनी प्रतियाँ मँगा सकती हैं।

यदि आपका काम वहाँसे हटनेकी इजाजत नहीं देता, तो आपका न आना मुझे नहीं अखरेगा। आपके व्यक्तिगत खर्चके बारेमें मैं आपसे कुछ नहीं कहूँगा। जब तक आप दोनोंका तन और मन बिलकुल ठीक रहे, मैं हर प्रकारसे सन्तुष्ट हूँ।

आपका,

श्री सतीशचन्द्र दासगुप्त
खादी प्रतिष्ठान
१७०, बहूबाजार स्ट्रीट
कलकत्ता

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९६३०) की फोटो-नकलसे।

४१. पत्र : पेरीन कैप्टेनको

आश्रम
साबरमती
२२ जून, १९२६

क्या तुम्हें कुमारी हॉर्सडिंगकी याद है। भूल तो नहीं गईं? वे आगामी शुक्रवारको तुमसे मिलेंगी। पिछले सप्ताह मैंने उनके पत्रकी आशा की थी। परन्तु तब नहीं मिला। अब उनके पत्र आ रहे हैं। जैसा कि उन्होंने लिखा है 'रँजमँक' नामक जहाजसे उनके आनेकी सम्भावना है। अगर अबतक पहुँच गई हों तो मुझे तार द्वारा सूचित करना, ताकि मैं उन्हें लेनेके लिए किसीको अहमदाबाद स्टेशनपर भेज सकूँ।

तुम्हारा,

श्रीमती पैरीन कैप्टेन[1]
इस्लाम क्लब बिल्डिंग्ज
चौपाटी
बम्बई

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९६३१) की माइक्रोफिल्मसे।

१. दादाभाई नौरोजीकी पौत्री।

४२. पत्र: के० टी० मैथ्यूको

आश्रम
साबरमती
२२ जून, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मेरा तो यह खयाल है कि यदि केवल आप भी त्यागपत्र देकर पुनः चुनाव लड़ें तो उससे जनताको कुछ-न-कुछ शिक्षण अवश्य मिलेगा। आपका सत्याग्रह करना तो निश्चय ही अप्रस्तुत होगा।

मोटे तौरपर तो वकालतके पेशेके बारेमें यही कहा जा सकता है कि वह कोई आत्मोन्नति करनेवाला पेशा नहीं है। परन्तु उस पेशेमें अपने सिद्धान्तोंकी रक्षा करते हुए किसीके लिए केवल जीविकोपार्जन करना कठिन नहीं है। जिस प्रकारकी सहायताकी आपको आवश्यकता है, उस प्रकारकी सहायता किसी सार्वजनिक संस्थासे प्राप्त हो सकना कठिन होगा। साथ ही, आपने कानूनकी जो योग्यता प्राप्त कर ली है, जीविकाके लिए उसका उपयोग न कर पाना दुखकी बात होगी। मेरा पक्का विश्वास है कि आप-जैसे व्यक्तियोंके लिए कोचीनमें ही सार्वजनिक सेवाके क्षेत्रमें काफी गुंजाइश है।

हृदयसे आपका,

श्री के० टी० मैथ्यू
सदस्य, विधान परिषद्
कुन्नमकुलम
कोचीन राज्य

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११२२६) की माइक्रोफिल्मसे।

४३. पत्र : वी० वी० दास्तानेको

आश्रम
साबरमती
२२ जून, १९२६

प्रिय दास्ताने,

आपका पत्र मिला। कौंसिलकी बैठक २६ तारीखको होगी, २२ को नहीं। यह कौंसिलकी पहली बैठक नहीं है। कई बैठकें हो चुकी हैं।

क्या आपने जो स्मरण दिलाया है, वह २ हजार गज सूत सम्बन्धी शर्त या नियममें परिवर्तन किए जानेके बारेमें है? यदि हाँ, तो मेरा खयाल है कि नियमोंसे छेड़छाड़ करनेका समय अभीतक नहीं आया है। यद्यपि मैं आपकी इस रायसे सहमत हूँ कि यदि हम २,००० गज सूत और नित्य आधा घंटा कातनेकी बात तय कर लें तो अच्छा हो। मेरा खयाल है कि अनेक सदस्योंपर बहुत-सा सूत बकाया है। अनियमितता हमारे जीवनका अभिशाप है।

यद्यपि मैंने आपके ५०० रु० कर्ज लेनेकी बातका जिक्र नहीं किया है, तथापि यह बात नहीं कि मैंने उसके बारेमें पूछताछ न की हो। शंकरलालसे मालूम हुआ है कि जमनालालजी कोषकी रकमको अन्य मदोंमें खर्च किये जानेके पक्षमें नहीं हैं। आप उन्हें पत्र लिखें। २६ तारीखको उनके यहाँ पहुँचनेकी सम्भावना है।

आपका,

श्रीयुत वी० वी० दास्ताने
जलगाँव

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११९९२) की माइक्रोफिल्मसे।

४४. पत्र : तीरथराम तनेजाको

आश्रम
साबरमती
२२ जून, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। धन्यवाद। मेरा खयाल है कि विलायती रंगोंको इस्तेमाल करनेमें बहुत कुशलताकी जरूरत नहीं पड़ती। क्या यह बात सच नहीं कि विलायती रंगोंकी लोकप्रियताके कारणोंमें से एक कारण यह भी है कि उनको बड़ी सुविधाके साथ काममें लाया जा सकता है? इसलिए वे लोग, जिन्हें विलायती रंग इस्तेमाल करनेकी जरूरत रहा करती है, उन्हें प्रयोगमें लाते ही रहे हैं। परन्तु अखिल भारतीय

चर्खा संघ-जैसी संस्थाका काम तो देशी रंगोंके बारेमें ही अनुसंधान करनेका है। वह ज्यादासे-ज्यादा इतना ही कर सकती है कि विलायती रंगोंका बहिष्कार न करे।

इस बातमे मेरी राय आपसे मिलती है कि हाथकताईका प्रचार और भी व्यापक हो, इसके लिए यह आवश्यक है कि काता जानेवाला सूत आजकी वनिस्वत अधिक मजबूत और इकसार हो। मेरा खयाल यह है कि हाथकताईकी तुलनामें हाथ बुनाईकी कला करोड़ों लोगों द्वारा नही अपनाई जा सकती। ऐसा चाहे इसी कारण हो कि यह करोड़ो लोगोंको सहज सुलभ नही है। इसके सिवा हाथबुनाई इतनी जटिल है कि करोड़ो लोग उसे सीख भी नही सकते। हाथकताई ही एक ऐसी चीज है जिसे प्रत्येक व्यक्ति कर सकता है। इसलिए हमे अपना ध्यान हाथकताई — केवल हाथकताई — पर ही केन्द्रित करना चाहिए।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११९९३) से।

४५. पत्र: भूपेन्द्रनारायण सेनको

आश्रम
साबरमती
२२ जून, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। यह जानकर कि आप आरामबाग वापस जा रहे हैं, प्रसन्नता हुई। आपमे मलेरियाके प्रतिरोधकी शक्ति आनी चाहिए। तारिणी बाबूके त्यागपत्रके बारेमे मुझे कोई जानकारी नही है। मैं पूछताछ करूँगा। पर मान लो कि वे निरीक्षकका काम करना स्वीकार कर ले और आप कोई दूसरा काम करें, तो फिर आरामबागमे मुख्य काम कौन करेगा? यदि मात्र निर्वाहकी ही बात हो तो मुझे तो जगह-जगह भटकते फिरना ही गलत मालूम पड़ता है। नही तो आप खादी प्रतिष्ठानमें शामिल होकर उसीकी अधीनतामे आरामबागमे रहकर काम क्यो न करें? यदि आप खादी-प्रतिष्ठानको महत्त्व न दे, तो फिर अभय आश्रममे शामिल क्यो न हो जायें? यदि आप चिकित्सकका काम सीखना चाहते हैं, तो फिर सवाल यह है कि आरामबागमे कौन काम करेगा? मैं तो यही ठीक समझता हूँ कि आपको वही रहना चाहिए जहाँ आपका काम है; नही तो आप कोई प्रगति न कर सकेंगे। हो सकता है कि आपने अपने पत्रमें जो-कुछ कहा है मैं उसका पूरा-पूरा अर्थ न समझ पाया होऊँ। ऐसी हालतमे आप मुझे पूरी बात समझा दे।

आशा है कि प्रफुल्लकी आँखें अब अच्छी हो गई होंगी। मुझे इसमे किंचित् भी सन्देह नही कि एक ऐसा समय आ रहा है जब देशवासी पूरी तरह समझ जायेंगे कि उनके सम्मुख करने योग्य कार्य केवल रचनात्मक कार्य ही है। इससे

ठोस कार्यका एक असीम क्षेत्र हमारे सामने खुल जाता है। इस रास्तेसे चलकर ही हम कमसे-कम समयमें स्वराज्य ले सकते हैं। फिर इस बहससे कोई लाभ नहीं कि यह स्वराज्य आज मिलेगा या कल।

मुझे इस वर्ष अवश्य ही साबरमतीसे बाहर जानेके किसी प्रलोभनमें नहीं फँसना है। अगले वर्ष तो मेरे लिए ईश्वर कोई और मार्ग बना देगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत भूपेन्द्रनारायण सेन
२३, नन्दराम सेन स्ट्रीट
हाटखोला डा०
कलकत्ता

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११९९६) की माइक्रोफिल्मसे।

४६. पत्र : चम्पाबहन मेहताको

आश्रम
साबरमती
मंगलवार,[1] ज्येष्ठ सुदी ११, २२ जून, १९२६

चि० चम्पा,[2]

तुम्हारा पत्र मिला। बच्चोंके स्वास्थ्यका हालचाल बहुत दिनोंसे नहीं मिला था। भाई मणिलाल अहमदाबाद ही हैं। उन्होंने भी तुम्हारा पत्र मिलनेकी बात कही थी। मैं यह पत्र तो, तुमसे जो अपेक्षा करता हूँ, उसके बारेमें लिख रहा हूँ। मैंने सुना है कि चि० रतिलाल बहुत खर्च करता है। अब उसने मुझसे रुपये मँगाये हैं। मैंने उसे लिखा है कि डाक्टरकी अनुमतिके बिना रुपये नहीं दिये जा सकते। मैं उसे जो पत्र लिखता हूँ वे तुम्हें पढ़नेके लिए मिलते हैं अथवा नहीं; मैं नहीं जानता; मिलते ही होंगे, मैं ऐसा माने लेता हूँ। मैं तुमसे यह अपेक्षा करता हूँ कि तुम उसे फिजूल खर्च बिलकुल नहीं करने दोगी, रुपये पैसेका पूरा हिसाब रखोगी या रखवाओगी। मैं उम्मीद करता हूँ कि तुम अपने चरित्रबल और संयमसे चि० रतिलालपर इतना नियन्त्रण कर लोगी कि जिससे वह अपने समस्त दोषोंको सुधार सके। यह कार्य सुशील स्त्रीके सामर्थ्यके बाहर नहीं है, यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ। रतिलालके मनकी दुर्बलताको तुम्हारे अलावा और कोई दूर नहीं कर सकता और यदि तुम चाहो तो दूर कर सकती हो। तुमसे मुझे ऐसी आशा बँधी है।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९६२६) की माइक्रोफिल्मसे।

१. साधन-सूत्रमें मंगलवार दिया हुआ है तथापि १९२६ में ज्येष्ठ सुदी ११ को सोमवार था।
२. डॉ० प्राणजीवनदास मेहताकी पुत्रवधू।

४७. पत्र : मथुरादास त्रिकमजीको

आश्रम
साबरमती
मंगलवार, २२ जून, १९२६

चि० मथुरादास,

तुम्हारा पत्र मिला। तुमने बंगला लेकर ठीक ही किया। सर प्रभाशंकर पट्टणीने फिर लिखा है कि उनका बंगला रखे रहनेमें हमें किसी संकोचकी जरूरत नहीं है। लेकिन मुझे लगा कि हमें उनका बंगला लम्बे अर्सेतक नहीं रखना चाहिए। तुमने माथेरान जानेका विचार किया है, यह ठीक ही है। किन्तु यदि पंचगनीमें पर्याप्त लाभ होता दिखे तो मेरे खयालसे वहाँसे जाना ठीक न होगा। पंचगनीमें रहनेका कारण तो उसकी ऊँचाई है। तात्पर्य यह है कि माथेरानमें ठंड तो मिल सकती है, लेकिन वहाँ रहनेमें यह दोष है कि वह उतनी ऊँचाईपर स्थित नहीं है। और फिर सितम्बरके बादकी बात अभी करनेसे क्या लाभ? बम्बईमें तो किसीकी मददकी जरूरत नहीं पड़ेगी न? पंचगनीमें महादेवकी जरूरत जान पड़े तो लिखना। पंचगनी बड़ा शहर है। दुकानोंकी सुविधा तो देवलाली-जैसी ही है; इसलिए मैं नहीं समझता कि प्यारेलालको वहाँ कोई भी दिक्कत होगी।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९६२८) की माइक्रोफिल्मसे।

४८. पत्र : दूदाभाईको

आश्रम
साबरमती
मंगलवार, २२ जून, १९२६

भाई दूदाभाई,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हें अभीतक वेतन नहीं मिला, इस बारेमें भाई बलवन्तरायको पत्र लिख देना। तुम्हें जो भी दिक्कत हो उसके सम्बन्धमें उन्हें पत्र लिखते रहना। यह आवश्यक है। उन्होंने भी यही कहा है। तुमने स्कूल न छोड़नेका जो निश्चय किया है वह मुझे बहुत अच्छा लगा है। मैंने तुम्हारे वेतनके बारेमें भाई बलवन्तरायसे बात कर ली है। बहुत करके अब कोई दिक्कत न होगी। चि० लक्ष्मीके कपड़ोंके बारेमें फट जानेपर तुरन्त सूचना देना, और यदि उन्हें यहाँ सिलवाना हो तो माप भी भेजना।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९६२९) की माइक्रोफिल्मसे।

४९. पत्र : विष्णु करन्दीकरको

आश्रम
साबरमती
२३ जून, १९२६

प्रिय मित्र,

सहपत्रों सहित आपका पत्र मिला। सहपत्र मेरे कामके नहीं, क्योंकि आप जानते ही हैं कि 'यंग इंडिया' कोई समाचारपत्र नहीं है। एक मित्रने इसे विचारपत्र कहा है और उसका यह कहना उपयुक्त ही है। इसलिए मैं उसमें आपकी टिप्पणियोंको स्थान नहीं दे सकता। इसके लिए तो मुझे पत्रका पूरा स्वरूप ही बदलना पड़ेगा; और मुझे ऐसा तो अवश्य ही नहीं करना है।

मैंने सत्याग्रह आश्रमके प्रबन्धकसे कहा है कि यदि उपलब्ध हों तो वे आपको आश्रमके कुछ चित्र भेज दें। इनका पैसा भेजनेकी जरूरत नहीं। आपने मेरे हालके जितने भी चित्र देखे होंगे, वे सभी अकस्मात् लिये हुए हैं। मैंने पिछले दस वर्षोंमें किसी भी फोटोग्राफरसे खास तौरपर अपना चित्र नहीं खिंचवाया है।

मैं इसका प्रबन्ध कर दूँगा कि 'यंग इंडिया' की एक प्रति निःशुल्क आपको नियमित रूपसे मिलती रहे। मैं अपने लेख लगभग हमेशा पत्र छपनेके आखिरी दिन ही लिखा करता हूँ और प्रकाशनकी तिथि इस प्रकार रखी जाती है कि पत्र उस सप्ताह जानेवाली यूरोपकी डाकमें भेजा जा सके। इसलिए मेरे लिए आपको अपने लेखोंकी अग्रिम प्रति भेजना सम्भव नहीं।

विष्णु करन्दीकर
६१, फ्लीट स्ट्रीट
लन्दन, ई० सी० ४

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०७७३) की फोटो-नकलसे।

५०. पत्र : एस्थर मेननको

आश्रम
साबरमती
२३ जून, १९२६

रानी बिटिया,

तुम्हारा पत्र मिला। मेरी फिनलैंडकी बहुचर्चित यात्राके सम्बन्धमें अबतक तुमको सारी बातें मालूम हो गई हैं। मुझे ऐसा लगा कि वहाँ जानेका उपयुक्त समय अभी नहीं आया है। मुझे कोई निश्चित और स्पष्ट प्रकाश नहीं दिखा। निस्सन्देह यदि मैं फिनलैंड जाता, तो डेनमार्क भी अवश्य जाता। मैं ऐन मेरीको इसका निश्चित वचन दे चुका था और तब तुम्हारा घर भी देखना चाहता; लेकिन ऐसी भवितव्यता नहीं थी।

मीराबहन बिलकुल अच्छी है और बहुत अच्छी तरह यहाँकी गर्मी बरदाश्त कर रही है। खुशीकी बात है कि तुमको एक सहायक मिल गया है। तुमने अभीतक मुझे यह नहीं बताया कि तुम्हें पुरानी खादी किस किस्मकी और कितने गज भेजी जाये। लेकिन मगनलालने एक पार्सल बना दिया है। यह आज तुम्हारे दिये हुए 'क्रैगलिया' के पतेपर भेजा जा रहा है। मैं समझता हूँ कि 'क्रैगलिया' शायद कोडाईकनाल सदनका नाम है। बीमारोंकी सेवा-सुश्रुषा करना मेननके स्वभावके सर्वथा अनुरूप ही है। तुमने जिन दस रुपयोंका उल्लेख किया है, वे अभीतक यहाँ नहीं मिले हैं। कुछ भेजनेकी जरूरत भी नहीं है।

तुम्हारा,
बापू

श्रीमती एस्थर मेनन
'क्रैगलिया'
कोडाईकनाल

माई डियर चाइल्ड तथा राष्ट्रीय अभिलेखागारमें सुरक्षित अंग्रेजी पत्रकी फोटो-नकलसे।

५१. पत्र : वी० ए० सुन्दरम्‌को

आश्रम
साबरमती
२३ जून, १९२६

प्रिय सुन्दरम्,

तुमने तमिल भजन इस तरह भेजे कि मुझे ऐन मौन दिवसको मिल गये। यह तुम्हारा बड़ा सौजन्य है। मैंने उनको काफी आसानीसे पढ़ लिया और इसमें तुम्हारे अनुवादसे भी बहुत मदद मिली। भजन ऐसे लगते हैं मानो 'भगवत्‌गीता' के श्लोकोंका या 'बाइबिल' की पंक्तियोंका छायानुवाद किया गया हो।

तुम्हारा,
बापू

अंग्रेजी प्रति (जी० एन० ३१९२) की फोटो-नकलसे।

५२. पत्र : नाजुकलाल नन्दलाल चोकसीको

आश्रम
साबरमती
ज्येष्ठ सुदी १३, १९८२, २३ जून, १९२६

भाईश्री नाजुकलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हें और मोतीको[1] मेरे पिछले पत्रका उत्तर अभी देना ही है, तुम्हें इस बातका ध्यान है न? मगनभाईके बीमार पड़ जानेके कारण "आश्रम समाचार" पिछले सप्ताह प्रकाशित नहीं हुआ था। बहुत करके इस सप्ताह प्रकाशित होगा। भाई लक्ष्मीदासके[2] समाचार लगभग नित्य ही मिल जाते हैं। केवल आज ही उनका पत्र नहीं आया है। उनका स्वास्थ्य बहुत अच्छा रहता है। उन्हें वहाँ बुखार नहीं आता। वे अच्छी तरह घूम-फिर भी लेते हैं। आनन्दीको[3] दो दिन बुखार आया था, किन्तु अब ठीक है। मोतीसे कहना कि वह आलस्य छोड़े और मुझे पत्र लिखे।

१. नाजुकलालकी पत्नी।
२. लक्ष्मीदास आसर, मोतीके पिता।
३. नाजुकलालकी साली।

अब तो सभी बरसातकी राह देख रहे हैं।

बापूके आशीर्वाद

भाईश्री नाजुकलाल
सेवाश्रम
भड़ौंच

गुजराती पत्र (एस० एन० १२१२९) की फोटो-नकलसे।

५३. पत्र : जगजीवनको

आश्रम
साबरमती
ज्येष्ठ सुदी १३, १९८२, २३ जून, १९२६

भाई जगजीवन,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम जिस स्कूलमें हो उसे एकदम छोड़ना ठीक न होगा। इसके अतिरिक्त तुम्हारा प्रबन्ध कहीं और करनेसे पहले मुझे अमृतलाल सेठसे अवश्य पूछना चाहिए। मेरी सलाह तो यही है कि जो भी कठिनाइयाँ हैं, उनको बता दो और जहाँ हो वहीं बने रहो।

द्वारा अन्त्यजशाला
रानपुर

गुजराती प्रति (एस० एन० १९६३३) की माइक्रोफिल्मसे।

५४. पत्र : शम्भूशंकरको

आश्रम
साबरमती
ज्येष्ठ सुदी १३, १९८२, २३ जून, १९२६

भाईश्री शम्भुशंकर,[1]

आपका पत्र मिला। वेतनके बारेमें आपका निश्चय मुझे स्वीकार और पसन्द है। जुलाई मासतक तो आपको ५० रुपये मिलेंगे; इसलिए परिवर्तन अगस्तकी पहली तारीखसे होगा। भाई जगजीवनदासका पत्र अभी मुझे नहीं मिला। आपके हस्ताक्षरोंके लिए भेजे गये इकरारनामेकी प्रतिलिपि आपने मुझे नहीं भेजी है; लेकिन जो-कुछ लिखा है उससे मुझे लगता है कि यदि आप इकरारमें बँधना चाहें तो

१. गारियाधार, सौराष्ट्रके एक खादी-कार्यकर्ता।

स्थावर सम्पत्तिको उसमें सम्मिलित कर लेनेमें कोई आपत्ति नही देखता। मै तो समझता हूँ कि आपकी गफलतसे जो नुकसान होगा आपपर उसीको पूरा करनेकी जवाबदेही होगी; दूसरी तरहके नुकसानको पूरा करनेकी नही। आपके साथ काम करनेवाला एक और व्यक्ति होना चाहिए, यह तो मै भी मानता हूँ। ऐसा मनुष्य किन शर्तोपर रखा जाये, इसपर हमें विचार करना होगा। हमे मान लेना चाहिए कि ईश्वरकी कृपासे वर्षा अवश्य होगी। चौमासेमें क्या-क्या काम होगा अथवा हो सकता है, इस बातका विचार करके मुझे लिखें। भाई माणिकलाल और छगनलालके साथ खादीके सम्बन्धमे आप स्वय ही वातचीत करे तो ज्यादा अच्छा होगा। उनके पास ऐसी कितनी खादी होगी? यदि ज्यादा हो तो उसपर विचार करनेकी आवश्यकता होगी। भाई विजयशंकर जो खादी वेचते है, उसे वे किसके नामपर बुनवाते है? उन्होने कितनी खादी बुनवाई है? वे तो राज्यकी ओरसे हाणोदमे नियुक्त है न? खादीकी प्रवृत्तिका एक ही उद्देश्य है। हिन्दुस्तानमे करोड़ो लोगोके पास खेतीके अलावा और कोई धन्धा नही है। खेतीसे करोडो लोगोको पूरी आजीविका नहीं मिल सकती। और खेती में उनका पूरा समय भी नही खपता। उनके पास कोई पूरक धन्धा होना ही चाहिए और वह धन्धा हाथ कताई है। इसीलिए हम सभी जगह उसका प्रचार कर रहे है और इसीलिए उससे तैयार होनेवाली खादी कताई-प्रचारका एक अग है। कातने, पीजने और बुननेवालोके बहुतसे छल-कपटको हम बरदाश्त कर लेते है; परन्तु जब वे बरदाश्त करनेकी स्थितिसे आगे बढ जाये तब हम उनसे काम लेना बन्द कर देते है। उन्हे निष्कपट बनानेका वही मार्ग सही है जो तुमने लिखा है। हमें स्वय निष्कपट अर्थात् पवित्र, त्यागी और उद्यमी बनना चाहिये।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९६३४) की माइक्रोफिल्मसे।

५५. पत्र : नानाभाई भट्टको

आश्रम
साबरमती
ज्येष्ठ सुदी १३, १९८२, २३ जून, १९२६

भाईश्री ५ नानाभाई,

इसके साथ भाई गोकुलभाईका पत्र भेज रहा हूँ। इससे मेरी समझमे कुछ नही आता। जब वल्लभभाई आयेंगे तब उनसे बातचीत अवश्य करूँगा। आपकी अपनी जो राय हो, सो बतायें। यदि हम अनुमति देना भी चाहें तो क्या समितिकी बैठक किए बिना दे सकते है।

द्वारा-राष्ट्रीयशाला
बम्बई

गुजराती प्रति (एस० एन० १९६३५) की माइक्रोफिल्मसे।

५६. अन्य देशोंमें चरखा

कोयम्बटूरके श्री वालाजीरावने 'पीपुल्स ऑफ ऑल नेशन्स' नामक पुस्तकमें से बड़ी मेहनतके साथ कुछ उद्धरण एकत्रित करके उनको छपवाकर बाँटा है। उनमें बतलाया गया है कि अन्य देशोंके लोगोंके घरोंमें प्राचीन कालमें चरखेका क्या स्थान था। मैं उन्हींको थोड़ा सक्षिप्त करके उद्धृत करता हूँ:[1]

ऊपरके उद्धृत अशोंको पढ़नेके बाद केवल ऐसे ही लोग चरखेकी शक्तिसे इनकार करेंगे जिनके दिमागोंमें कुछ पूर्वग्रह जमे हुए हैं — अवश्य ही हम यह मानकर चल रहे हैं कि मूल संग्रहमें लिए गये वक्तव्य प्रामाणिक हैं। सबसे अधिक गलत यह एक धारणा बैठी हुई है कि चरखा कातनेवालेको बहुत कम मजदूरी मिलती है। यदि हम इसे अपनी दृष्टिसे न देखकर भूखसे मरते हुए करोड़ों लोगोंकी दृष्टिसे देखें तो स्पष्ट हो जायेगा कि जिसे हम बहुत कम समझते हैं, वह उन गरीबोंके लिए एक बड़ी रकम है। यह भी मालूम हो जायेगा कि करोड़ों लोग तो अपनी रोजानाकी आमदनीमें केवल कुछ पैसे ही जोड़ सकते हैं और उनकी दैनिक आय कुछ पैसे रोजसे अधिककी नहीं होती है। यह सालमें अधिकसे-अधिक ४० रुपये अर्थात् रोजाना सात पैसे हो पाती है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २४-६-१९२६

५७. भारत सेवक समाज सहायता-कोष

श्रीयुत शास्त्रीने[2] जनतासे नीचे लिखी अपील की है। मैं इसे प्रसन्नतासे प्रकाशित करता हूँ:[3]

> आर्य भूषण प्रेस और ज्ञान प्रकाश प्रेसमें आग लगनेसे ये दोनों नष्ट हो गये और इससे भारत सेवक समाजको भारी हानि उठानी पड़ी। . . . इस मुख्य आधारसे वंचित होनेपर इस संकटकालमें समाजके सदस्योंके सम्मुख एक ही मार्ग रह गया है कि वे अपने देशवासियोंसे रुपयेकी तत्काल और उदारतापूर्ण सहायता माँगें। . . . सभी ओरसे लोग सहायता भेज रहे हैं और सहानुभूति प्रकट कर रहे हैं और जो लोग सार्वजनिक मामलोंमें हमसे प्रायः

१. यहाँ नहीं दिये गये हैं। उनमें आफ्रिका, यूरोप, एशिया और दक्षिण अमेरिका इत्यादि विभिन्न देशोंमें कताई उद्योगका स्थान दर्शाया गया है।

२. श्रीनिवास शास्त्री।

३. अंशतः उद्धृत।

सहमत नहीं होते, वे भी अपनी ही ओरसे सद्भाव दिखा रहे हैं। यह सब देखकर हमें अपने हृदयमें अतिशय प्रसन्नता होती है।

हमारा अनुमान है कि हमें अपना कार्य फिर प्रारम्भ करनेके लिए दो लाख रुपयोंकी जरूरत होगी। . . . हमारे सदस्य विभिन्न स्थानोंमें घूमेंगे; किन्तु उनकी संख्या बहुत नहीं है और वे हर जगह नहीं जा सकते। हम अपने सहायकों और हमदर्दोंसे, जो देशके सभी भागोंमें फैले हुए हैं, व्यावहारिक सहायताकी अपेक्षा रखते हैं। . . . हम छोटीसे-छोटी रकमका स्वागत करेंगे; वास्तवमें छोटी-छोटी रकमें, यदि वे काफी संख्यामें दी जायें तो हमें बहुत प्रसन्नता होगी और उससे हम यह समझेंगे कि हम लोग जिनकी सेवा करना चाहते हैं उनका बहुत बड़ा भाग हमें जानता है और हमारी सेवाकी कद्र करता है।

इस अपीलके वितरित किये जानेके वक्ततक २६,००० रुपये इकट्ठे किये जा चुके हैं। मुझे आशा है कि पूरे दो लाख रुपयोंकी रकम जो इन दोनों छापाखानोंको जमानेके लिए और अखबारोंको चलानेके लिए जरूरी है, इन पंक्तियोंके प्रकाशित होनेतक इकट्ठी हो चुकेगी। भारत सेवक समाज-जैसी सार्वजनिक संस्थाओंका सच्चा बीमा यही है कि जनता उनके प्रति सद्भाव रखे और उसको मूर्त रूप दे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २४-६-१९२६

५८. आत्मत्याग

मुझे बहुत-से नौजवानोंके इस आशयके पत्र मिलते रहते हैं कि उनपर कुटुम्ब-निर्वाहका बोझ इतना ज्यादा है कि देश-सेवाके कार्यसे जो वेतन उन्हें मिलता है, वह उनकी जरूरतोंके लिए बिलकुल काफी नहीं होता। उनमें से एकने कहा है कि मुझे तो अब यह काम छोड़कर, रुपया उधार लेकर या भीख माँगकर यूरोप जाना पड़ेगा जिससे ज्यादा कमाई करना सीख सकूँ। दूसरे एक भाई किसी ऐसे धन्धेकी तलाशमें हैं जिससे काफी पैसा मिल सके। इनमें से हरएक नौजवान ईमानदार, सच्चरित व आत्मत्यागी कार्यकर्त्ता है। किन्तु एक उलटा प्रवाह चल पड़ा है। कुटुम्बकी आवश्यकताएँ बढ़ गई हैं। खद्दर या राष्ट्रीय शिक्षाके कार्यसे उनका पूरा नहीं पड़ता। वेतन अधिक माँग कर ये लोग देशसेवाके कार्यपर भार बनना पसन्द नहीं करते। परन्तु इस विचारसे अगर सभी यह काम छोड़कर पैसा कमानेमें लग जायें तो नतीजा यह होगा कि या तो देश सेवाका कार्य बिलकुल ही बन्द हो जायेगा, क्योंकि वह तो ऐसे ही स्त्री-पुरुषोंके परिश्रमपर निर्भर रहा करता है, या हो सकता है कि आम तौरपर सभीके वेतन पर्याप्त बढ़ा दिये जायें; तो उसका नतीजा भी वैसा ही खराब होगा।

असहयोगकी कल्पना इसीलिए की गई थी कि हमे अपनी स्थितिके मुकाबलेमे अपनी जरूरतें हदसे ज्यादा तेजीसे बढ़ती हुई मालूम पड़ी थी। इसीसे यह स्पष्ट है कि असहयोग व्यक्तियोंसे नही, वरन् उस मनोदशासे होना चाहिए जिसपर नागपाशकी तरह हमे अपनी जकड़मे बाँध रखनेवाला तन्त्र कायम है और जिससे हमारा सर्वनाश होता चला जा रहा है। इस तन्त्रने उसमे फँसे हुए हम लोगोके रहन-सहनका ढंग जितना बढ़ा-चढ़ा दिया है वह देशकी आम हालतको देखते हुए सर्वथा अनावश्यक है। हिन्दुस्तान दूसरे देशोके शोषणपर जीनेवाला देश नही है। इसलिए हमारे यहाँ मध्यम वर्गके लोगोके बढ़नेका अर्थ हुआ सबसे निचले वर्गके लोगोंका नष्ट हो जाना। फलस्वरूप छोटे-छोटे गाँव जीवनस्तरके इस दुःसह भारको सह ही नही पाये, और मिटते चले गये। सन् १९२० में यह बात साफ-साफ नजर आने लग गई थी। इसे रोकनेवाला आन्दोलन अभी आरम्भिक अवस्थामे है। हमें उसके विकासको किसी जल्दबाजीमे रोक नही देना चाहिए।

जरूरतोंकी अपनी इस कृत्रिम वृद्धिने हमे विशेष हानि इस कारण पहुँचाई कि जिस पाश्चात्य ढंगको अपनानेके कारण हमारी जरूरते बढ़ी है, वह हमारे यहाँकी पुराने जमानेसे चली आनेवाली सम्मिलित परिवारकी प्रथाके अनुकूल नही है। सम्मिलित परिवारकी प्रथा निर्जीव हो चली, इसलिए उसके दोष ज्यादा साफ-साफ नजर आने लगे और उसके सहज गुणोंका लोप हो गया। इस तरह एक बुराईके साथ दूसरी बुराई भी आकर मिल गई।

ऐसी दशामें हमारा आत्मत्याग ऐसा होना चाहिए जैसा कि देशके लिये अपेक्षित है। ऊपरी सुधारोंके बजाय भीतरी सुधार ज्यादा जरूरी हैं। भीतरी अवस्था यदि बुरी हो और ऊपरसे निर्दोष रचना थोपी गई हो तो वह फरेब ही होगा।

इसलिए हमे आत्मशुद्धिकी क्रिया पूरी-पूरी करनी होगी। आत्मत्यागकी भावना बढ़ानी पड़ेगी। आत्मत्याग बहुत किया जा चुका है सही, मगर देशकी दशाको देखते हुए वह कुछ भी नही है। परिवारके समर्थ स्त्री या पुरुष अगर काम न करना चाहे तो हमे उनका पालनपोषण करनेकी हिम्मत नही करनी चाहिए। निरर्थक, अंधविश्वासपूर्ण रीतिरिवाजों, जातिभोजों या विवाह आदिके बड़े-बड़े खर्चोंके वास्ते एक पैसा भी हम नहीं निकाल सकते। कोई विवाह या मौत हुई कि बेचारे परिवारके संचालकके ऊपर एक अनावश्यक और भयंकर बोझ आ पड़ता है। ऐसे कार्योंको आत्मत्याग माननेसे इनकार करना चाहिए। बल्कि उन्हें तो अनिष्ट समझकर हमे हिम्मत और दृढ़तासे इनका विरोध करना चाहिए।

शिक्षा-प्रणाली भी हमारे लिए बेहद महँगी है। करोड़ोको जब पेटभर अनाज भी नहीं मिलता, जब लाखों आदमी भूखसे मरते जा रहे हैं, ऐसे वक्त हम अपने परिवारके बच्चोंको एक बेहद महँगी शिक्षा दिलानेका विचार कैसे कर सकते हैं? मानसिक विकास तो कठिन अनुभवसे ही होगा; उसका मदरसे या कालिजमे पढ़नेसे होना जरूरी नही है। जब हममें से कुछ लोग खुद अपने और अपनी सन्तानके लिए ऊँचे दर्जेकी मानी जानेवाली शिक्षा दिलाना त्याग देंगे, तभी सच्ची ऊँचे दर्जेकी शिक्षा

पाने व देनेका उपाय हमारे हाथ लगेगा। क्या ऐसा कोई मार्ग नही है, या नही हो सकता है, जिससे कि हरएक लड़का अपना खर्च खुद निकाल सके? शायद ऐसा कोई मार्ग न भी हो; किन्तु हमारे सामने प्रस्तुत प्रश्न भी यह नही है कि ऐसा मार्ग कोई है या नही। इसमे जरूर कोई शक नही है कि जब हम इस महँगी शिक्षा प्रणालीका त्याग करेंगे तभी, अगर ऊँचे दर्जेकी शिक्षा पानेकी अभिलाषा इष्ट वस्तु मान ली जाये तो, हमे अपनी परिस्थितिके अनुरूप उसे प्राप्त करनेका मार्ग मिल सकेगा। ऐसे किसी भी प्रसंगपर काम आनेवाला महामन्त्र यह है कि जो वस्तु करोड़ों आदमियोको न मिल सकती हो उसका हम खुद भी त्याग करें। इस तरहका त्याग करनेकी योग्यता सहसा तो हममे नही आ सकती। पहले तो हमे ऐसा मानसिक रुझान पैदा करना पड़ेगा कि जिससे करोड़ोको प्राप्त न हो सकनेवाली चीजे और सुविधाएँ लेनेकी इच्छा ही पैदा न हो। उसके बाद हमे शीघ्र ही अपने रहन-सहनका ढंग उसीके अनुकूल बना डालना चाहिए।

ऐसे आत्मत्यागी वह दृढ़ प्रतिज्ञ कार्यकर्त्ताओंकी एक बड़ी सेनाके बिना आम लोगोंकी तरक्की मुझे असम्भव दिखती है। और उस तरक्कीके बिना स्वराज्य-जैसी कोई चीज नहीं मिल सकती। गरीबोकी सेवाके हितार्थ अपना सर्वस्व त्याग करनेवाले कार्यकर्त्ताओंकी सख्या जितनी बढ़ती जायेगी उतने ही दर्जेतक हम स्वराज्यकी ओर बढ़ते जायेगे, ऐसा मानना चाहिए।

[अग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २४-६-१९२६

५९. 'महात्माजीका हुक्म'

एक अध्यापक लिखते हैं:

> **मेरी पाठशालामें लड़कोंकी एक छोटी टोली है जो नियमित रूपसे कई महीनोंसे चरखासंघको १,००० गज अपना हाथकता सूत भेजा करती है। वे इस तुच्छ सेवाको आपके प्रति अपने उत्कट प्रेमके कारण ही करते हैं। यदि उनसे चरखा चलानेका कोई कारण पूछता है तो वे उत्तर देते है कि 'यह महात्माजीका हुक्म है। इसे तो मानना ही है।' मै समझता हूँ कि लड़कोंमें इस प्रकारकी प्रवृत्तिको हर तरहसे प्रोत्साहन देना चाहिए। गुलामीके भावमें और इस प्रकारकी वीर-पूजा अथवा निःशंक आज्ञापालनमें बड़ा अन्तर है। इन लड़कोंकी बड़ी लालसा है कि उनको आपका अपने हाथों लिखा हुआ सन्देश मिले, जिससे वे उत्साहित हो सकें। मुझे पूर्ण विश्वास है कि उनकी यह प्रार्थना स्वीकृत होगी।**

मैं नही कह सकता कि जो मनोवृत्ति इस पत्रसे झलकती है वह वीर-पूजा है अथवा अन्धभक्ति है। मै ऐसे अवसरोंको समझ सकता हूँ जब किसी आज्ञाका पालन

करनेके कारणोंकी जरूरतपर तर्क-वितर्क न करके उसे मान लेना ही आवश्यक हो। यह सिपाहीके लिए अत्यन्त आवश्यक गुण है। कोई जाति उस समयतक विशेष उन्नति नहीं कर सकती जबतक उसकी बहुसंख्यक जनतामे यह गुण वर्तमान न हो। पर इस प्रकारके आज्ञापालनके अवसर सुव्यवस्थित समाजमे बहुत ही कम होते हैं, और होने कम ही चाहिए। पाठशालामे बच्चोके लिए सबसे बुरी बात जो हो सकती है वह यह है कि जो कुछ अध्यापक कहे उसे उन्हें आँख बन्द करके मानना ही पड़ेगा। बात यह है कि यदि अपने अधीन लड़के और लड़कियोंकी तर्क शक्तिको अध्यापक तेज करना चाहता है तो उसको चाहिए कि उनकी बुद्धिको हमेशा काममे लगाता रहे और उन्हें स्वतन्त्र रूपसे विचार करनेका मौका दे। जब बुद्धिका काम खतम हो जाता है तभी श्रद्धाका काम आरम्भ होता है। पर दुनियामे बहुत ही कम काम इस प्रकारके होते हैं, हम बुद्धि द्वारा जिनके कारण नही समझ सकते। यदि किसी स्थानमे कुएँका जल गन्दा हो और वहाँके विद्यार्थियोंको उबला और साफ किया हुआ जल पीना पड़े और उनसे इस प्रकारके जल पीनेका कारण पूछा जाये और वे कहे कि किसी महात्माका हुक्म है इसलिए हम ऐसा जल पीते हैं तो कोई भी शिक्षक इस उत्तरको पसन्द नही कर सकता। और यदि यह उत्तर इस कल्पित अवस्थामे गलत है तो चरखा चलानेके सम्बन्धमे भी लड़कोंका यह उत्तर बिलकुल गलत है। जब मैं अपनी महात्माकी गद्दीसे उतार दिया जाऊँगा — जैसा मै जानता हूँ कि बहुतेरे घरोंमे उतार दिया गया हूँ, (बहुतेरे पत्र-प्रेषकोंने कृपा कर मेरे प्रति अपनी श्रद्धा घट जानेकी सूचना मुझे भी दे दी है) — तब मुझे भय है कि चरखा भी उसके साथ ही साथ नष्ट हो जायेगा। बात यह है कि उद्देश्य मनुष्यसे कही बड़ा होता है। सचमुच चरखा मुझसे अधिक महत्वका है। मुझे बड़ा दुःख होगा यदि मेरी किसी भद्दी गलतीसे अथवा मुझसे लोगोंके नाराज हो जानेसे लोगोंका मेरे प्रति सद्भाव कम हो जाये और इस कारण चरखेको भी नुकसान पहुँचे। इसलिए बहुत अच्छा हो यदि लड़कोंको उन सब विषयोंपर स्वतन्त्र विचार करनेका मौका दिया जाये जिनपर वे इस प्रकार विचार कर सकते हैं। चरखा मूलतः एक ऐसा ही विषय है जिसपर उनको स्वतन्त्र रूपसे विचार करना चाहिए। मेरे विचारमे इसके साथ भारतकी जनताकी भलाईका सवाल जुड़ा हुआ है। इसलिए छात्रोंको यहाँकी जनताकी भयंकर दरिद्रताको जानना चाहिए। उनको ऐसे गाँवोंको अपनी आँखों देखना चाहिए जो नष्ट होते जा रहे हैं। भारतकी कितनी आबादी है, उनको जानना चाहिए। उनको यह जानना चाहिए कि यह कितना बड़ा देश है और यहाँके करोड़ों निवासी अपनी थोड़ी आमदनीमें थोड़ी-सी वृद्धि किस प्रकार कर सकते हैं। उनको देशके गरीबों और पददलितोंके साथ अपनेको मिला देना सीखना चाहिए। उनको यह सीखना चाहिए कि गरीबसे-गरीब आदमीको जो नहीं मिल सकता उसे जहाँतक हो सके वे अपने लिए भी न लें। तभी वे चरखा चलानेके गुण समझ सकेंगे। तभी उनकी श्रद्धा प्रत्येक प्रकारके आघातको — जिसमें मेरे सम्बन्धमें विचार-परिवर्तन भी शामिल है — बर्दाश्त कर सकेगी। चरखेका आदर्श इतना बड़ा और महान है कि उसे किसी एक व्यक्तिके

प्रति सद्भावपर निर्भर नहीं रखा जा सकता। यह ऐसा विषय है जिसपर विज्ञान और अर्थशास्त्रकी युक्तियों द्वारा भी विचार किया जा सकता है।

मैं जानता हूँ कि हम लोगोंके बीच इस प्रकारकी अन्धभक्ति बहुत है और आशा करता हूँ कि राष्ट्रीय पाठशालाओंके शिक्षक मेरी इस चेतावनीपर ध्यान रखेंगे और अपने विद्यार्थियोंको — अपने कामको बिना परखे केवल किसी ऐसे मनुष्यके कहनेके कारण ही, जिसे लोग बड़ा समझते हों — आलस्यवश करनेसे बचानेका प्रयत्न करेंगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २४-६-१९२६

६०. अखिल भारतीय चरखा संघके सदस्योंके लिए

खादी भण्डार, प्रिंसेस स्ट्रीट, बम्बई और अखिल भारतीय चरखा संघ खादी भण्डार १४, दादी सेठ, अग्यारी लेन, कालबादेवी रोड, बम्बईके व्यवस्थापकोंने मुझे सूचित किया है कि अखिल भारतीय चरखा संघके सदस्य अपनी सदस्यताका प्रमाण-पत्र भेजकर इन भण्डारोंके सदस्य बिना कोई चन्दा दिये ही बन सकते हैं और उन्हीं रियायतोंका लाभ उठा सकते हैं जो चन्दा देनेवाले सदस्योंको दी जाती हैं। सदस्यों-को मिलनेवाले सारे गश्तीपत्र और खरीदपर छूट भी इन रियायतोंमें शामिल है। उन्होंने यह भी घोषित किया है कि जुलाईके महीनेमें दोनों भण्डारोंमें घटी हुई दरोंपर माल बेचा जायेगा। सभी चीजोंपर ६¼ प्रतिशतकी आम छूट होगी किन्तु कुछ चीजोंपर २५ प्रतिशत और कुछपर ५० प्रतिशततक छूट दी जायेगी। घटी हुई दरोंका लाभ अगले महीनेके अन्ततक उठाया जा सकेगा।

इस प्रकारकी योजनाएँ और बिक्री खादी-प्रचारका एक तरीका है। सब खादी-प्रेमी इन्हें प्रोत्साहन दें और इनसे लाभ उठायें।[1]

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २४-६-१९२६

१. यह अनुच्छेद **नवजीवन**, २७-६-१९२६ से लिया गया है।

६१. टिप्पणियाँ

ग्राम-संगठन

प्राध्यापक नारायणदास मलकानीने अभी हालके बारडोली ताल्लुकेके अपने दौरेका जो विवरण लिखा है वह मनोरंजक और शिक्षाप्रद भी। पाठक देखेंगे कि उसमें बारडोली ताल्लुकेके पिछड़े हुए वर्गोंमें ग्रामसुधार-कार्यका जो प्रयोग सन् १९२१ से चल रहा है उसका संक्षिप्त विवरण भी है। वहाँ यह कार्य तब शुरू किया गया था जब देशमें मद्य-निषेध आन्दोलनकी लहर चल रही थी। इस छोटी-सी पट्टीमें चरखेके प्रचारसे यहाँके रहनेवाले सीधे-सादे लोगोंके जीवनमें धीरे-धीरे, किन्तु निश्चित तौर-पर एक क्रान्ति हो रही है। यदि चरखा न होता तो इन गाँवोंमें मद्य-निषेधके कार्य-कर्त्ताओंके लिए कोई आधार ही न होता। इसके अतिरिक्त यदि कार्यकर्त्ता इन गाँवोंके लोगोंसे कई दूसरे तरीकोंसे सम्पर्क न बनाये रखते और उनके खाली वक्तके लिए एक उपयोगी काम न जुटाया होता, तो गाँवोंके लोगोंपर उनका कोई असर भी न होता। कार्यकर्त्ताओंको गाँवके लोगोंका ध्यान शराबकी ओरसे हटाने और उनकी दिलचस्पी सूत कातनेमें पैदा करनेमें सफलता मिली है। इन लोगोंके बाल-बच्चोंको पढ़ाने-लिखानेका प्रयत्न किया जा रहा है। उनको जो शिक्षा दी जा रही है वह पुराने ढंगकी कदापि नहीं है। वह उनके वातावरणके अनुरूप है और उसका उद्देश्य यह है कि उससे उनकी समस्त शक्तियोंका विकास हो। उसके मूलमें यह खयाल नहीं है कि वे पढ़-लिखकर बाबू बन जायें, बल्कि यह है कि वे ऐसे नागरिक बनें जो अपने पैरों-पर खड़े हो सकें और अपने खेती, सूत-कताई, कपड़ा-बुनाई और ऐसे ही दूसरे पुश्तैनी धन्धोंको अच्छी तरह चालू रख सकें। किन्तु, अभी तो यह प्रयोग प्रारम्भिक दौरमें है। बच्चे ही बड़े होकर पिता बनते हैं। और प्रयोगकी इस शैशवास्थामें भी अबतक जो-कुछ किया गया है उससे इसका भविष्य उज्ज्वल होगा, यह आशा बँधती है, क्योंकि हाथसे सूत कातना शुरू करनेके साथ-साथ लोगोंमें उसको कायम रखनेके लिए आवश्यक दूसरे धन्धे भी धीरे-धीरे पुनर्जीवित किये जा रहे हैं। यह आशा कोई एकदम बे-हिसाब आशा नहीं है कि लोगोंमें यह जो क्रान्ति हो रही है वह उन्हें उन लोगोंसे, जिन्हें प्राध्यापक मलकानीने देशी अफसर कहा है, मुक्त करा सकेगी; और सो भी हिंसात्मक साधनोंसे नहीं, बल्कि विशुद्ध अहिंसात्मक साधनोंके बलपर ही। उन साधनोंसे इन देशी अफसरोंपर जोर-जबर्दस्ती नहीं होगी, बल्कि उनका हृदय परिवर्तन होगा। लोगोंको साहूकारों और शराबके ठेकेदारोंसे स्वतन्त्र करने-भरकी आवश्यकता है; इतना होते ही वे साहूकारोंसे कर्ज और शराबके ठेकेदारोंसे शराब न लेते ही स्वतन्त्र हो सकते हैं।

एक विडम्बना

संघके[1] मन्त्री डॉक्टर मलानने जिस प्रणालीको 'स्वैच्छिक वापसी' कहा है, वह स्वैच्छिक तो कदापि नहीं है। उसके लिए लोगोंको उकसाया जाता है, सहायता दी जाती है अथवा प्रलोभन दिया जाता है। यदि यह प्रक्रिया रोकी नहीं गई तो सम्भव है कुछ समयमें ही यह वापसी अनिवार्य हो जाये। कहा जाता है कि जो लोग वापस भेजे गये हैं उनमें से ज्यादातर लोगोंका जन्म उस उपनिवेशमें ही हुआ था। उपनिवेशमें पैदा हुआ कोई भी भारतीय अपनी इच्छासे भारत नहीं लौटेगा, क्योंकि उसके लिए तो भारत एक भौगोलिक शब्द-मात्र है। फिर जब वापस जानेवाले भारतीयोंकी भरतीके लिए गुमाश्ते नियुक्त किये जाते हैं, और शायद उन्हें उनके कार्यके परिणामके अनुसार वेतन दिया जाता है एवं जब इन भरती किये हुए लोगोंको वापस जानेतक बाड़ोंमें बन्द रखा जाता है, तब यह वापसी स्वैच्छिक नहीं रह जाती। मुझे ऐसा लगता है कि यदि इन लोगोंको बाड़ोंमें बन्द करनेका मामला जाँचके लिए अदालतमें ले जाया जाये, तो सम्भवतः वह गैरकानूनी करार दे दिया जायेगा; क्योंकि बिना पहरेके लोगोंको बन्द रखनेसे उद्देश्य नहीं सधेगा और स्वतन्त्र और निर्दोष लोगोंको पहरेमें रखना गैरकानूनी हिरासतके बराबर होगा। मैं जानता हूँ कि सन् १९१४ में वहाँ कोई ऐसा कानून नहीं था जिसके अनुसार ऐसे लोगोंको बाड़ोंमें बन्द रखा जा सके और उनपर पहरा बैठाया जा सके। यदि उपनिवेशीय भारतीयोंकी वापसी स्वैच्छिक रखनी है तो उसे भरती करनेवाले गुमाश्तोंकी कष्टप्रद निगरानीसे मुक्त रखना चाहिए और उन लोगोंको बाड़ोंमें या शिविरोंमें बन्द नहीं रखना चाहिए।

सच्चा गुरु

मैंने जिस टिप्पणीमें[2] 'गुरु' की व्याख्या की थी उसके समर्थनमें एक पत्रलेखकने यह दिलचस्प जानकारी भेजी है:

> गुरुकी आपकी की हुई परिभाषाको देखकर मुझे सन्त कवि रामदासकी ये सुन्दर पंक्तियाँ याद हो आईं। वे कहते हैं:
>
> विवेका ऐसा गुरू, चित्ता ऐसा शिष्य चतुरू।
> जीवा ऐसा मित्र उदारु, भुवनत्रयी मिळेना।।
>
> 'सत्य और असत्य, न्याय और अन्याय अथवा सद् और असद्में अन्तर करनेकी शक्ति — विवेकसे अच्छा कोई गुरु नहीं हो सकता। चित्त अथवा मनसे अच्छा दूसरा शिष्य नहीं है और जीव या आत्मासे अच्छा दूसरा मित्र नहीं है।' असलमें रामदास कहते हैं कि 'मनुष्यको गुरुकी खोजमें बाहर जानेकी आवश्यकता नहीं है। ईश्वरमें पूर्ण श्रद्धा रखनेसे जो विवेक-शक्ति प्राप्त हो उसके

१. दक्षिण आफ्रिकी।
२. देखिए "टिप्पणियाँ", १७-६-१९२६ का उपशीर्षक "गुरुकी तलाश"।

अनुसार चलिये, अपने मनको इस शक्तिके वशमें रखिये और उदात्त भावसे आत्मत्याग करिये।' महाराष्ट्रके इस सन्तकी सलाहका सार यही है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २४-६-१९२६

६२. "हिन्दी नवजीवन" के पाठकोंसे

मुझे इस बातका हमेशा दुःख रहा है कि मैं 'हिन्दी नवजीवन' मे न कुछ लिख पाता हूँ और न उसे देख ही सकता हूँ। श्री हरिभाऊ उपाध्यायके खादी कार्यमे व्यस्त हो जानेके बाद 'हिन्दी नवजीवन' की भाषाके बारेमे मेरे पास बहुत शिकायते आई है। कोई कहते है, 'भाषा बिगड़ गई है, व्याकरण-दोष बहुत होते हैं और उसमे दूसरी भाषाकी ध्वनि भी रहती है।' कोई कहते हैं, 'अर्थका अनर्थ भी होता है।' ये सब बाते सम्भव है। अनुवादक अपना कार्य बड़े प्रेमसे और परिश्रमसे करते हैं फिर भी उनके गुजराती भाषा-भाषी होनेके कारण हिन्दीकी त्रुटियाँ रह जानेकी पूरी सम्भावना है। मैं किसी हिन्दी प्रेमी सज्जनकी खोजमे हूँ; उनके मिलनेपर त्रुटियोंके दूर होनेकी आशा रखता हूँ। परन्तु साथ-साथ यह कहना भी अनुचित नहीं होगा कि 'हिन्दी नवजीवन' आखिर अनुवादके रूपमे ही प्रकाशित होता है। अर्थ हानि कही भी न होने पाये, ऐसी कोशिश मैं अवश्य करूँगा। किन्तु सच तो यह है कि हिन्दीमे 'नवजीवन' निकालनेकी योग्यता मुझमे नहीं है; न मेरे पास निरीक्षण करनेका समय है और न मुझमें हिन्दीका आवश्यक ज्ञान है। केवल मित्रोंके प्रेमके वश होकर और इस मोहके कारण कि मेरे विचारोंसे हिन्दी भाषा जाननेवाले भी अनजान न रहे, मैंने 'हिन्दी नवजीवन' का प्रकाशन स्वीकार किया है। पाठकोंकी सहायतासे ही यह कार्य चलता रह सकता है। वे दो प्रकारकी मदद दे सकते हैं। एक तो त्रुटियोंको बताकर और दूसरे, जब त्रुटियाँ असह्य हो जायें तब 'नवजीवन' खरीदना बन्द करके। 'नवजीवन' अर्थ-लाभकी दृष्टिसे नहीं निकलता। उसके प्रकाशनमे केवल पारमार्थिक दृष्टि ही सामने रखी गई है। यदि भाषाके अथवा दूसरे किसी दोषके कारण 'नवजीवन' सेवाक्षम न रह जाये तब उसको बन्द करना कर्त्तव्य हो जायेगा।

इस अंकमे जो अनुवाद दिये गये है, उन सभीके अनुवादकोंकी मातृभाषा हिन्दी है। नवजीवन-प्रेमी इस अंकके दोषोंको बताकर मुझे कृतार्थ करें

हिन्दी नवजीवन, २४-६-१९२६

६३. पत्र : देवी वेस्टको

आश्रम
साबरमती
२४ जून, १९२६

प्रिय देवी[१]

तो अब तुम अनाथ हो गई। लेकिन अनाथ क्यों? तुम्हारे पिता काफी पकी उमरमें उठे हैं और तिसपर इस परम सन्तोषके साथ कि उन्होंने नेक जिन्दगी बिताई और उनके साथके लोगोंने उन्हें अपना स्नेह दिया। इसलिए मुझे लगता है कि तुम और तुम्हारे परिवारके अन्य लोग बहुत शोकाकुल न हुए होंगे। कब्रपर अंकित करनेके लिए यह उक्ति कितनी सुन्दर है : पीछे छूटनेवालोंके हृदयोंमें जीवित रहना मरना नहीं होता।'

यह सच है कि भारत आज इन पागलपनसे भरे दंगोंके कारण दो हिस्सोंमें बँट गया है। ईश्वरके तरीके हमारी समझसे परे हैं। आशा है कि दंगाई इस लड़ाईसे जल्दी ही ऊब जायेंगे। इन झगड़ोंका कारण निरा पागलपन है।

हम लोग मामूली अच्छे हैं। मामूली अच्छे मैंने इसलिए कहा कि आजकल राधा और रुखी बीमार हैं। वे मौसमी बुखारसे पीड़ित हैं। देवदासका अभी-अभी "एपेंडिक्स" का ऑपरेशन हुआ है और वह स्वास्थ्य लाभ कर रहा है। मणिलाल अभीतक फिनिक्समें ही है। रामदास खादीका काम कर रहा है। भाई कोतवालसे इधर कई महीनोंसे मुलाकात नहीं हुई।

क्या मैंने तुम्हें यह बात लिख दी है कि आश्रममें इस समय एक अंग्रेज बहन भी रहती है। उनका नाम है—कुमारी स्लेड। हमने उनका भारतीय नाम रखा है—मीराबाई। इस हफ्ते शायद एक जर्मन महिला भी आये।

तुम्हारा,

देवी
२३, जॉर्ज स्ट्रीट
लाउथ लिंक
लन्दन

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९६३९) की फोटो-नकलसे।

१. दक्षिण आफ्रिकामें गांधीजीके सहकर्मी, एल्बर्ट वेस्टकी बहन।

६४. पत्र : विलियम पैटनको

आश्रम
साबरमती
२४ जून, १९२६

प्रिय मित्र,

आपके पत्रके लिए धन्यवाद। मैंने कहा तो था कि अगर कोई बाधा न आई तो मैं हेलसिंगफोर्स आऊँगा; पर आखिर बाधा आ ही गई। यदि मैं फिनलैंड आता तो इंग्लैंड भी अवश्य आता। मुझे आपके निमन्त्रणसे पहले भी अनेक कृपालु मित्रोंके निमन्त्रण मिल चुके थे।

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि नये वाइसराय वही करना चाहते हैं जो उचित हो और वे सच्चे विश्वाससे प्रेरित हैं।

हाँ, एन्ड्रयूजने दक्षिण आफ्रिकामें सचमुच बहुत अच्छे ढंगसे काम किया। यदि वे उद्योग न करते तो परिषद ही न हो सकती।

आपको और आपकी पत्नीको मेरा सादर अभिवादन।

हृदयसे आपका,

रेवरेंड विलियम पैटन, एम० ए०
१, वॉर्ली रोड
साउथ एल्बान्स (इंग्लैंड)

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०७७५) की फोटो-नकलसे।

६५. पत्र : सी० एफ० एन्ड्रयूजको

आश्रम
साबरमती
२४ जून, १९२६

प्रिय चार्ली,

शिमलामें तुम्हारा एक पत्र मिला था। उसके बाद कोई पत्र नहीं मिला। मैंने इसका अर्थ यही लगाया है कि स्टोक्सके साथ तुम्हारी खूब छन रही है। आशा है उस यात्रासे तुम्हें विश्राम और शान्ति मिली होगी।

शंकरलालने मुझे बताया है कि तुम इस बातसे बहुत दुःखी हो कि मैंने तुम्हारे ईसाईयतके प्रति पक्षपातको लेकर तुम्हें खरी-खोटी सुनाई है। परन्तु मुझे आशा है कि अब तुम वह दुःख भूल गये होगे और वह घटना तुम्हारे लिये सुखद बन

गई होगी। क्या यह आनन्दका विषय नही है कि तुम्हारे ऐसे भी मित्र हैं जो तुमसे सदा गम्भीर बाते ही नही करते?

मैं अपने फिनलैंड न जानेपर बहुत खुश हूँ। मुझे अपने इस फैसलेपर मित्रोंकी ओरसे बधाईके कई पत्र मिले हैं। मेरे इन मित्रोमे एक पंजाबी ईसाई भी हैं जो स्वयं यहाँ आये थे और हेलसिंगफोर्सको रवाना होनेसे पहले एक रात यहाँ ठहरे थे। वे वहाँ प्रतिनिधिके रूपमें गये है।

दक्षिण आफ्रिकाकी घटनाओंको देखकर अधिक आशा नही होती कि गोलमेज परिषदके कार्यका परिणाम सन्तोषप्रद निकलेगा।[1]

यह पत्र अगर तुमको कोटगढमे मिल जाये तो स्टोक्स और उनकी पत्नी और ग्रेगको[2] मेरा स्नेह कहना।

तुम्हारा,

रेवरेंड सी० एफ० एन्ड्रयूज
द्वारा श्री एस० ई० स्टोक्स
कोटगढ़, शिमला हिल्स

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९६४०) की फोटो-नकलसे।

६६. पत्र : लक्ष्मीदास आसरको

आश्रम
साबरमती
ज्येष्ठ सुदी १४, १९८२, २४ जून, १९२६

चि० लक्ष्मीदास,

तुम्हारा पत्र मिला। आनन्दीके बारेमे तुम्हे लिख ही चुका हूँ। डॉ० कानूगाको बुलाया था। वे कुनैन देना चाहते थे। उन्होने दवा स्वयं भेजनेकी बात भी कही थी; लेकिन चूँकि अब ये बहुत बेचैन रहती है इसलिए मैंने डॉ० कानूगासे ही दवा मँगानेका आग्रह नही रखा। छगनलाल एक बार उनके यहाँ गया था; लेकिन वे मिले नहीं, इसलिए अब उसे कुनैन यहीसे नियमपूर्वक दी जा रही है। अब बुखार तो उतर गया है। कुनैन अभी चालू रहेगी। स्नान करनेके बारेमें तुमने ठीक ही लिखा है। मैं उससे इस बारेमे भी सावधानी बरतनेके लिए कहूँगा। यहाँ अभी बारिशकी एक बूँद भी नहीं पड़ी है। वर्षा न होनेसे चिन्ता हो रही है।

१. दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंकी स्थितिके बारेमें एक गोलमेज परिषद् केपटाउनमें होनेवाली थी। देखिए "वह गोलमेज परिषद्", २२-७-१९२६।

२. रिचर्ड बी० ग्रेग।

राधा[1], रुखी[2] और कुसुम[3] बुखारमें पड़ी हैं। कुसुम तो बम्बईसे आनेके बाद बीमार ही रहती है।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९६३६) की माइक्रोफिल्मसे।

६७. पत्र : प्रभालक्ष्मीको

आश्रम
साबरमती
ज्येष्ठ सुदी १४ १९८२, २४ जून, १९२६

चि० प्रभालक्ष्मी,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारी इच्छाके अनुसार तुम्हारी अनुमतिके बिना मैं तुम्हारे पत्रका उपयोग नहीं करूँगा। यदि लोग चर्चा करें तो उनका मुँह कैसे बन्द किया जा सकता है? जहाँ हमारा दोष नहीं है, अगर वहाँ हमपर दोषारोपण किया जाये तो उससे हमें हँसी ही आयेगी। और जहाँ हमारा दोष हो वहाँ दूसरे लोग हमारे प्रति कठोर हों तो हमें अपने ऊपर उनसे भी ज्यादा कठोरता बरतनी चाहिए। इससे हमें उनकी कठोरता कभी बुरी न लगेगी। ईश्वर तो सर्वव्यापक, निरंजन और निराकार है। इसलिए हमें उसे अपने हृदयमें अंकित करके उसका ध्यान करना चाहिए। हम सब लोग बड़े या छोटे, अच्छे या बुरे, बुद्धिशाली या मूढ़, जैसे भी हैं, अपने पूर्व कर्मोंके फलस्वरूप हैं। किसने अच्छे कर्म किये हैं; हम किस कारण अच्छे बने हैं, आदि प्रश्नोंका निर्णय हम करें तो यह ईश्वरत्वका दावा करना हुआ; ऐसा दावा करनेसे यह प्रश्न कभी नहीं सुलझता। इस सम्बन्धमें जब बुद्धिका उपयोग व्यर्थ हो जाता है तब श्रद्धाका जन्म होता है। मेरी दृष्टिमें तुम्हारा तात्कालिक कर्त्तव्य यह है कि तुम शान्त रहो, जो हुआ है उसे भूल जाओ और तुम्हारे हाथमें जो कार्य है, उसे भली-भाँति सम्पन्न करो।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९६३७) की माइक्रोफिल्मसे।

१ और २. मगनलाल गांधीकी पुत्रियाँ।

३. आश्रमकी एक छात्रा।

६८. पत्र : देवदास गांधीको

आश्रम
साबरमती
बृहस्पतिवार, ज्येष्ठ सुदी १४, [२४ जून, १९२६][1]

चि० देवदास,

तुम्हारा पत्र मिला। महादेवको लिखा तुम्हारा पत्र मैंने पढ़ा था। मेरी डाँटकी चिट्ठी उससे पहले जा चुकी थी। तुम्हारा पत्र मुझे रास्तेमें मिला, यह बात तो तुम मेरे चक्रवृद्धि ब्याजके उल्लेखसे जान गये होगे। गिरधारी अस्पतालसे छुट्टी पाकर आ गया है; लेकिन यह नहीं कह सकते कि उसकी तन्दुरुस्ती अब बहुत अच्छी हो गई है। उसे यहाँ आ जाना चाहिए। जमनालालजी भी लगभग उसी समय यहाँ पहुँचेंगे। उसके बाद मैं विचार करके उसे वहाँ भेजना होगा तो भेज दूंगा। गिरधारीके अस्पतालसे आनेके तुरन्त बाद मैंने डॉ० दलाल और भाई तुलसीदासको पत्र[2] लिखा था। मैंने लिखा था कि हम सब सेवारत रहे तो अंशतः उनके ऋणसे उऋण हो सकते हैं। उसके उत्तरमें डॉ० दलालका पत्र मिल गया है। उसे मैं इसके साथ भेज रहा हूँ।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९६३८) की फोटो-नकलसे।

६९. पत्र : देवदास गांधीको

आश्रम
साबरमती
शुक्रवार [२५ जून, १९२६][3]

चि० देवदास,

इसके साथ भाई तुलसीदासका पत्र है। कल रातसे बेलाबहन[4] फिर बीमार पड़ गई हैं। उनका पुराना रोग फिर उखड़ आया है। वे इसे बम्बईसे साथ लाई हैं। भाई लक्ष्मीदाससे कहना कि चिन्ता करनेका कोई कारण नहीं है। राजेन्द्रबाबू आज आ गये हैं और २९ या ३० तारीखतक रहेंगे। वे चरखा संघकी बैठकमें भाग लेनेके लिए आये हैं। यह बैठक कल होगी। उस जर्मन बहनको यहाँ कल आ जाना

१. गिरधारीके अस्पतालसे छुट्टी पाकर घर आनेके उल्लेखसे मालूम होता है कि यह पत्र १९२६ में लिखा गया था।

२. देखिए "पत्र: तुलसीदासको", २१-६-१९२६ तथा "पत्र: डॉ० दलालको", २१-६-१९२६।

३. २६ जून, १९२६ को हुई अखिल भारतीय चरखा संघकी बैठकके उल्लेखसे लगता है कि यह पत्र २५ जून, १९२६ को लिखा गया था।

४. लक्ष्मीदास आसरकी पत्नी।

चाहिए। किशोरलालका पत्र मिला है कि गिरधारी यहाँ कल पहुँचेगा। वह बिलकुल स्वस्थ हो गया है, ऐसा तो नहीं कहा जा सकता।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९६४१) की फोटो-नकलसे।

७०. पत्र: मोतीबहन चोकसीको

आश्रम
साबरमती
शनिवार, ज्येष्ठ बदी १, १९८२, २६ जून, १९२६

चि० मोती,

बहुत दिनोंके बाद और याद दिलानेपर तुम्हारा पत्र आया तो सही। तुम्हारा वह आलस्य कभी दूर भी होगा या नहीं? आनन्दीको बुखार आ गया था; वह अब टूट गया है। इस बीच बेलाबहनको भी बुखार आ गया था। वह आज ठीक है। राधा और कुसुम अभी बिस्तरमें पड़ी हैं।

तुम्हारा पढ़नेका नियम चलता है अथवा आलस्यके कारण अब वह भी छोड़ दिया है? और क्या कातनेके बारेमें भी पूछ सकता हूँ?

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (एस० एन० १२१३३) की फोटो-नकलसे।

७१. पत्र: गोकलदास हीरजी ठक्करको

आश्रम
२६ जून, १९२६

भाईश्री ५ गोकलदास,

आपका पत्र मिला। मेरे पास लिखनेके लिए चरखा और ऐसे ही अन्य विषयोंके अलावा कोई दूसरी बात नहीं है। आपका अखबार मैंने बिलकुल नहीं देखा। अपरिचित अखबारके लिए लेख लिखना मुझे अच्छा भी नहीं लगता; इसलिए मैं आपसे क्षमा चाहता हूँ।

मोहनदास गांधी

श्री गोकलदास हीरजी ठक्कर
मन्त्री, 'सेवक-मण्डल'
सेवक-मण्डल कार्यालय
डाकघरके सामने, जामनगर

गुजराती पत्र (एस० एन० १९९२१) की माइक्रोफिल्मसे।

७२. शंकाका भूत

"एक मुसाफिर"ने निम्न गुमनाम पत्र लिखा है।[1]

ऐसे पत्रपर ध्यान नहीं दिया जाना चाहिए, लेकिन कितने ही राष्ट्रीय कार्यकर्ताओंके बारेमें इस तरहके सन्देह किये जाते होंगे। इसमें जो मुद्दे उठाये गये हैं वे ध्यान देने योग्य हैं। पत्र आते ही मैंने पूछताछ की और मुझे मालूम हुआ कि "एक मुसाफिर" जो-कुछ लिखते हैं, वास्तविकता उससे बिलकुल भिन्न है। जिस सेवकके बारेमें यह शिकायत की गई है उसका काम ऐसा है कि यदि वह, जैसा कि ऊपर बताया गया है वैसी टिकटकी चोरी करे तो उसका काम ही नहीं चल सकता। इसके अतिरिक्त उसपर अधिकारियोंकी आख भी रहती है। यदि वह एक बार भी बिना टिकट यात्रा करता हुआ पकड़ा जाये तो उसके सेवाकार्यमें अवरोध उत्पन्न हो जाये। यह सेवक सामान्यतः तीसरे वर्गमें ही यात्रा करता है; लेकिन मोरवीसे एक अन्य मित्रने उसे दूसरे वर्गका टिकट खरीद कर दिया। इसलिए वह दूसरे वर्गमें बैठा। उसने मुलीसे थोड़ी दूरतक तीसरे वर्गमें यात्रा की उसका कारण यह था कि उसे तीसरे वर्गमें बैठे किसी मित्रसे बातचीत करनी थी। उसके पास दूसरे वर्गके टिकटका नम्बर अभी मौजूद है। सामान्य रूपसे कोई इस तरह नम्बर नहीं रखता, लेकिन जैसा मैंने ऊपर लिखा अधिकारियोंकी उसपर कड़ी नजर रहती है और उसकी टिकटकी जाच बहुतसे स्थानोंपर की जाती है, इससे वह स्वयं भी अपने टिकटका नम्बर लिख लेता है। "एक मुसाफिर"ने इस सेवकका टिकट देखने अथवा उससे पूछनेका कष्ट किया हो, ऐसा नहीं लगता।

यह तो हुआ तथ्योंके बारेमें।

इस पत्रमें शिकायत की गई है; इससे सेवकको जितना गर्वका अनुभव करना चाहिए उतना ही उसे सावधान भी रहना चाहिए। गर्व इसलिए कि खादी पहननेवाले सेवकसे लोग पूर्ण निर्दोष रहनेकी आशा रखते हैं। सावधानी इसलिए कि खादी पहननेवाले सेवकको अनुचित काम करनेसे बचना चाहिए। तथापि इतना स्वीकार करना चाहिए कि खादीका दुरुपयोग अनेक स्वार्थी तथाकथित 'सेवकों'ने किया है। खादी पहनकर और लोगोंको यह विश्वास दिलाकर कि वे त्यागी हैं, ऐसे लोग कौमको धोखा देते हैं और उसके साथ न्याय भी नहीं करते। ऐसे खादी पहननेवाले खादीको बदनाम करते हैं।

यह अनुमान तो बिलकुल ठीक है कि जो व्यक्ति टिकटके लिए रेलवे कम्पनीको धोखा देगा, वह अन्तमें अपने स्वार्थके लिए देशको भी लूटेगा। ऐसा होनेपर भी अनेक लोगोंको ऐसा लगता है कि रेलवे कम्पनी आदिको धोखा देनेमें कोई दोष नहीं है

१. यहाँ नहीं दिया गया है। इसमें कहा गया था कि सौराष्ट्रके एक प्रमुख कार्यकर्ता उचित भाड़ा दिये बिना रेलमें सफर कर रहे थे।

और अनेक लोग जिस वर्गका टिकट लेते हैं उससे ऊँचे वर्गमें मुसाफरी करते हैं। खादी पहननेवाले और अन्य सब देशसेवकोंसे ऐसे दोषोंसे मुक्त रहनेकी अपेक्षा की जाती है। लोगोंको यह भी समझ लेना चाहिए कि न तो खादी पहननेवाले सब लोग साधु हैं और न खादी पहननेवाले सब लोग असाधु हैं। खादीको वस्त्रके रूपमें अच्छे-बुरे सब पहनते हैं। जो उसे पवित्र मानकर उसकी पवित्रता कायम रखेंगे वह उनकी उतनी विशेषता कहलायेगी। इस विशेषताके साथ जगतका कोई सम्बन्ध नहीं है। लोगोंको तो सबकी परीक्षा करके ही उनका विश्वास करना चाहिए।

अन्तमें सब लोगोंको इतना जान लेना चाहिए कि मेरा कोई चेला नहीं है; अथवा यदि कोई है तो वह मैं स्वयं ही हूँ। स्वयं अपना निर्माण करनेमें मेरा सारा समय लग जाता है; इसलिए चेलेकी जरूरत भी नहीं रहती।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २७-६-१९२६

७३. टिप्पणियाँ

सणोसलीमें कताई

सणोसली, पंचमहाल जिलेमें कालोल ताल्लुकेका एक गाँव है। भाई रणछोड़दास शाहने वहाँकी कताई-प्रवृत्तिके बारेमें कुछ जानने योग्य बातें लिखी हैं, मैं उन्हें नीचे देता हूँ।[1]

यहाँ चरखोंकी संख्या इतनी ज्यादा नहीं है कि उसे कोई विशेष महत्व दिया जाये। लेकिन उनपर जितना सूत काता जा रहा है, उसकी तादाद प्रति चरखा अच्छी कही जा सकती है। इस पत्रमें जानने लायक बात तो यह है कि कातनेवाले अपने लिए रुई स्वयं पींज लेते हैं और पूनियाँ भी बना लेते हैं। इतना सुधार जहाँ-जहाँ हो सकता हो, वहाँ यह तुरन्त कर लिया जाना चाहिए। पींजनेकी क्रिया बहुत आसान है; जो व्यक्ति अपनी रुई स्वयं पींज लेता है वह अच्छा, महीन और ज्यादा सूत कात सकता है जबकि पिंजारोंकी पिंजी रुईसे जैसा चाहो वैसा सूत कातनेमें कठिनाई होती है। इसमें दूसरी जानने योग्य बात यह है कि जो किसान अपनी कपास स्वयं ही लोढ़ लेता है वह अपनी कमाईमें बहुत वृद्धि कर सकता है। स्वयं कपास लोढ़नेकी क्रियाका फिरसे प्रचलन तभी हो सकता है जब कताई भी स्वयं घरमें ही की जाये। इसलिए हाथ कताईके फिर प्रचलित होनेसे अन्य अनेक उद्योगोंका, जो आज खत्म हो गये हैं, जीर्णोद्धार सहज ही हो जाता है और चतुर किसान अपनी कमाईमें अच्छी खासी वृद्धि कर सकता है।

१. यहाँ नहीं दी जा रही है।

चोधराओंमें[1] आत्मशुद्धि

गुजरात महाविद्यालयके अध्यापक नारायणदास मलकानी बारडोली ताल्लुकेमे वेडछीके आस-पासके भागोंमे चोधराओंमे जो काम चल रहा है उसे देखकर लौटे है और उन्होंने उसके बारेमे अपनी टिप्पणी 'यंग इंडिया' मे प्रकाशनार्थ भेजी है। यहाँ मै उसका सारांश ही दूंगा, क्योंकि मूल लेखकी बहुत-सी बाते गुजरातसे बाहरके पाठकोके लिए है।

सन् २१ मे तो काफी बड़ी सख्यामे गाँव शराबसे मुक्त हो गये थे। बादमे बहुतसे गाँवोंमे लोगोंने फिर मदिरापान आरम्भ कर दिया। अब इन भागोंमे स्थायी रूपसे बसे कार्यकर्त्ताओंके अथक परिश्रमके परिणामस्वरूप जो प्रवृत्ति चल रही है, वह जानने योग्य है। श्री नारायण मलकानी 'शुद्ध' मदिराकी बातपरसे 'शुद्ध' गाँवोंकी बात कर रहे हैं।

चोधरा कालीपरजोंमे ऊँचे माने जाते हैं, वे जमीन जोतते हैं लेकिन उनके शराब आदिके व्यसनके कारण दारू बेचनेवाले और साहूकार उनके मालिक बन गये हैं। ये लोग वहाँकी देशी सरकार हैं। यदि वे इस देशी सरकारके पंजेसे छूट जाये तो कहा जायेगा कि उन्हें स्वराज्य मिल गया।

वेडछी आश्रमने[2] खादी कार्यके माध्यमसे मद्यनिषेधके कार्यको मजबूत किया है। आज वहाँ ४०० चरखे चल रहे है, अर्थात् ८०० लोग सूत कात रहे हैं। कातने-वालोंमे पुरुषोंकी संख्या ज्यादा है। पहले साल २५० सेर सूत काता गया और गत वर्ष ८०० सेर काता गया। इससे लगभग ४,००० वर्गगज खादी बुनी गई। रुई लोग स्वयं ही इकट्ठी करते है, पींजते और कातते हैं। वेडछीमें इसे चोधरा लड़के ही बुनते हैं। बुनाई केवल दो आना प्रति वर्गगज ली जाती है और बुनकरको इस तरह मिलनेवाली रोजीके अलावा कुछ ऊपरसे भी दिया जाता है। कुछ एक गाँवोंमे इस प्रवृत्तिके अन्तर्गत लोगोंको बढ़ईका काम भी मिला है। अच्छा चरखा दो रुपयेमे मिल जाता है। इस तरह खादी पहननेवालेको खादी दो आना गज पड़ रही है और जहाँ एक भी दूसरा धन्धा न था वहाँ बुनाई और बढ़ईगिरीका धन्धा पैदा हो गया है।

दो वर्ष पहले मैं जब वहाँ गया था तब मैंने लोगोंसे पूछा था कि उन्हे चरखेसे वर्ष-भरमे कितना फायदा हुआ है। तब एक वृद्धने उल्लासपूर्वक बताया था, "१० रुपयेका।" श्री नारायण मलकानी इसकी तफसील देते है: एक चोधरा कुटुम्बको वर्षमे ३४ गज कपड़ा चाहिए — १० गज बच्चोंको और २४ गज पति-पत्नीको। यह ३४ गज कपड़ा लोगोंको सवा चार रुपयेमे पड़ जाता है। पहले इतने ही कपड़ेका उन्हें २२ रुपया पड़ता था, इस तरह कपड़ा तैयार करनेवाले कुटुम्बको लगभग पौने अठारह रुपयेका फायदा होता है। हाँ, इसमे कपासकी कीमत नही गिनी गई है। इतनी ही रुईसे बेचारे चोधरोंको बाजारमे कितना मिलता है? १४ सेर रुईकी कीमत उन्हें

१. दक्षिण गुजरातकी अनुसूचित जाति।
२. गुजरातके सूरत जिलेमें। इसकी व्यवस्था जुगतराम दवे किया करते थे।

सात रुपये मिलती है। इसलिए शुद्ध नफा ११ रुपयेका हुआ। यह तो उनके लिहाजसे बहुत भारी कमाई है। फिलहाल सभी परिवार अपनी जरूरतकी १४ सेर रुई रखकर उसे कात लेते हों, सो बात नहीं है। लेकिन यह कहा जा सकता है कि इस दिशामे काम शुरू हो गया है।

ग्राम-व्यवस्था

हमने ऊपर देखा कि चरखेके द्वारा चोधरा-जैसे गरीब लोगोमे धीरे-धीरे परन्तु क्रमशः परिवर्तन हो रहा है। यदि कार्यकर्ता मद्यनिषेधके बारेमे भाषण-भर देते और चरखेके सहारे गाँवके लोगोंके सम्पर्कमे न आते और लोगोंको अपना तमाम समय लाभ-दायक काममे लगानेका रास्ता न सुझाते तो उनकी बातका असर भी क्या होता? कार्यकर्ताओंने लोगोको मद्य पीनेसे रोका और उनके हाथमे चरखा दिया। इन लोगोके बच्चोके लिए स्कूलोंकी स्थापना की। इन स्कूलोंमे वर्तमान चालू ढगकी बाबू बनानेवाली शिक्षा नही दी जाती, अपितु ऐसी शिक्षा दी जाती है जिससे वे अच्छे तरीकेसे खेती कर सके, सूत कात सके, कपड़ा बुन सके और समाजके अच्छे सदस्य बन सके। यह प्रयोग अभी नया है; लेकिन "पूतके पाव पालनेमें ही दिखाई दे जाते है।" जो काम शुरू हुआ है उससे भविष्यमे भी अच्छा काम होनेकी आशा की जा सकती है, क्योकि कताईके साथ-साथ उससे सम्बन्धित अन्य धन्धोका भी जीर्णोद्धार हो रहा है।

हम उम्मीद करते है कि इस प्रवृत्तिके परिणामस्वरूप ये लोग जिसे अध्यापक मलकानी "देशी सरकार" कहते हैं, उसके पजोंसे मुक्त हो जायेगे। और वह भी उन्हे बलपूर्वक हटाकर नही, अपितु उनका हृदय परिवर्तन करके और उन्हें जाग्रत करके, क्योंकि उद्यमी बनकर लोग साहूकारसे व्याजपर पैसा और मद्य विक्रेतासे मद्य लेना बन्द कर देगे और इस तरह दोनोंसे पीछा छुड़ा लेगे।

भूल-सुधार

महुधा खादी कार्यालयके बारेमे १३ जूनके 'नवजीवन' मे जो टिप्पणी दी गई है, उसके सम्बन्धमे एक भाई लिखते हैं।[1]

यदि इस तरह ध्यानसे पढ़नेवाले पाठक और ग्राहक ज्यादा हो तो 'नवजीवन' थोड़े ही समयमे दोषरहित पत्र बन जाये। मेरी खुदकी यह इच्छा है कि उसमे तथ्य-दोष, एक भी अनुचित शब्द और भाषा-दोष न हो। लेकिन मै जानता हूँ उसमे भाषा-दोष रह ही जाता है और अनेक बार तथ्य-दोष भी अनजाने ही आ जाता है। केवल इतना ही दावा किया जा सकता है कि कलमपर काबू रहता है। तथ्य-दोषके निराकरणके लिए पाठकोंकी मदद चाहिए। भाषा-दोषको दूर करनेके लिए छापेखानेमे अधिक कुशल व्यक्ति होने चाहिए और 'नवजीवन' की सामग्री लिखनेवाले लोग भाषा-शास्त्री होने चाहिए। ये साधन मेरे पास जितने चाहिए उतने नही है, तथापि 'नवजीवन' को चालू रखनेका लोभ तो है ही। फिलहाल तो जिन्हे 'नवजीवन' प्रिय है, ऐसे पाठकोंको 'नवजीवन' के दोषोंको दरगुजर करना ही होगा।

१. यहाँ नहीं दिया गया है। टिप्पणीके लिए देखिए खण्ड ३०, पृष्ठ ६१७-१८।

उपर्युक्त पत्रलेखकने गुणाका जो दोष बताया है वह सही है। २० मन सूतकी कितनी खादी हुई उस बारेमें भाई मोहनलाल पण्ड्या लिखते हैं :

> **वैशाखमें २० मन सूत तैयार हुआ और खादीके ६५ थान बुने गये। इसका अर्थ यह नहीं कि पूरे २० मन सूतके केवल ६५ थान ही बुने गये। ६५ थानोंके लिए अधिकसे-अधिक ११ मन सूत चाहिए। बाकी सूत जमा रहा है। हर महीने बुनकरोंकी संख्यानुसार जमा सूतमें घटती-बढ़ती होती रहती है।**

'नवजीवन' के पाठक उसे ध्यानपूर्वक पढ़ते हैं, इसलिए रिपोर्ट भेजनेवाले सज्जनोंको मुझे यह सलाह देनेकी तो जरूरत ही नहीं है कि वे अपने आँकड़े तैयार करनेमें सावधानीसे काम लें और ठीक-ठीक तथ्य दें।

सच्चा गुरु

गुरुकी व्याख्या सम्बन्धी टिप्पणीकी पुष्टिमें एक सज्जनने निम्न पत्र लिखा है।[1]

रामदास स्वामी तो स्पष्ट रूपसे यह कहते हैं कि मनुष्यको अपने बाहर गुरुकी खोज करनेकी जरूरत ही नहीं है। ईश्वर-श्रद्धाजनित विवेक जो मार्ग बताये उसपर चलो, इस विवेकके ही अधीन रहो और यज्ञार्थ सारी प्रवृत्तियाँ करो। इतनेमें ही इस महाराष्ट्रके सन्तने कहने लायक सब सारी कह दी है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २७-६-१९२६

७४. पत्र : जी० डी० चटर्जीको[2]

आश्रम
साबरमती
२७ जून, १९२६

प्रिय मित्र,

आपने श्री स्पेंडरके लेखकी ओर मेरा ध्यान आकर्षित करनेके लिए जो पत्र लिखा था, वह मुझे मिल गया है। मैं सोच रहा हूँ कि मैं आपके उद्धृत अंशोंके सम्बन्धमें 'यंग इंडिया' में कुछ लिखूँ।[3]

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्रीयुत जी० डी० चटर्जी
लाहौर

अंग्रेजी पत्र (सी० डब्ल्यू० ७७४०) तथा जी० एन० ८७७८ से भी।
सौजन्य : परशुराम महरोत्रा

१. यहाँ नहीं दिया गया है। देखिए "टिप्पणियाँ", १७-६-१९२६ का उपशीर्षक "गुरुकी तलाश" तथा "टिप्पणियाँ", २४-६-१९२६ का उपशीर्षक "सच्चा गुरु"।

२. यह पत्र श्री चटर्जीको नहीं मिल सका था, अतः यह बेपता-पत्र कार्यालयसे लौटकर आ गया था।

३ देखिए "रंगभेद बनाम स्वदेशी", १-७-१९२६।

७५. पत्र : सी० विजयराघवाचारियरको

आश्रम
साबरमती
२७ जून, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। श्री मगरिज[१] जब भी चाहें खुशीसे आ सकते हैं।

मैं तो चाहता हूँ कि मन्दिरके मामलेमें आपकी रायसे सहमत हो सकूँ। परन्तु दुर्भाग्यसे मेरे हृदयमें उसके प्रति कोई उत्साह पैदा नहीं हो पाता[२]। मेरा मन्दिर तो आजकल चरखा ही है। मुझे तो यदि भारतके नष्ट होते हुए घरोंके उद्धारकी कोई आशा दिखाई देती है तो चरखोंके जरिए ही दिखाई देती है।

आपने देवदासके स्वास्थ्यके बारेमें जो पूछ-ताछ की है उसके लिए धन्यवाद। वह मसूरीमें एक मित्रके यहाँ रहकर स्वास्थ्य-लाभ कर रहा है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत सी० विजयराघवाचारियर
कोडाईकनाल

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १२०६१) की फोटो-नकलसे।

७६. पत्र : एस० शंकरको

आश्रम
साबरमती
२७ जून, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मैं तो अब भी यही मानता हूँ कि आपको अपनी नौकरी छोड़कर मेरे पास नहीं आना चाहिए। अच्छा हो आप बम्बईमें रहते हुए आश्रमके नियमोंका पालन करें। बम्बईमें हिन्दी तथा संस्कृत सीखनेमें कोई कठिनाई नहीं होनी

१. अलवाईके यूनियन क्रिश्चियन कालेजके मालकम मगरिज, देखिए "राष्ट्रीयता और ईसाई धर्म", २२-७-१९२६।

२. विजयराघवाचारियरने ८ जुलाईको इसका उत्तर देते हुए शिकायत की थी कि गाँववालोंके लिए एक मन्दिर बनवानेके उनके प्रयत्नका गांधीजी द्वारा समर्थन न करने और उनकी सार्वजनिक आलोचना करनेके कारण उन्हें अनुसूयाबाई-जैसे कुशल और तत्पर समर्थकोंकी सहायतासे वंचित होना पड़ा था। . . . देखिए "पत्र : सी० विजयराघवाचारियरको", ९-७-१९२६।

चाहिए। वहाँ कई कक्षाएँ चलती हैं। नरहरि शास्त्री कालवादेवी रोडपर संस्कृतकी एक निःशुल्क कक्षा चलाते हैं और हिन्दी आप बड़ी आसानीसे किसीके पास जाकर सीख सकते हैं।

यदि आप माडुगाँवकी अछूत बस्तीमें जाकर देखें तो फिर आपको अछूतों और सवर्णोंमें भेद करनेमें कोई कठिनाई नहीं पड़ेगी। माटुंगामें अछूतोंकी एक पाठशाला चलती है। आप चाहें तो उस पाठशालामें अपना कुछ समय दे सकते हैं। यदि आप व्यक्तिगत रूपसे उनकी कोई सेवा न कर सकें और आपके पास कुछ पैसे बचते हों तो आप उनको अलग रख लें और कथित अछूतोंकी सेवा करनेवाले कार्यकर्त्ताओंको दे दें।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९६४२) की माइक्रोफिल्मसे।

७७. पत्र : डी० एन० बहादुरजीको

आश्रम
साबरमती
२७ जून, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। ५० अंककी मजबूतीका मतलब है जितनी होनी चाहिए उससे आधी। मजबूतीका अर्थ है सूतका बल। ठीक तरहसे बल दिया हुआ सूत बिना टूटे एक निश्चित भार उठा सकता है और इस मानकका सूत सौ अंक मजबूतीका सूत कहलाता है। और अगर सूत मानक भारसे आधा ही भार उठा सके, तो उसे पचास अंक मजबूतीका सूत कहते हैं। लेकिन पचास अंककी मजबूतीका सूत बुनकरके लिए उतना अच्छा नहीं रहता। मिलका सूत भी कदाचित ही सौ अंककी मजबूतीका होता है। सत्तर अंककी मजबूतीका सूत सामान्यतः अच्छा रहता है। उससे बुनकरको बुनाई करनेमें किसी कठिनाईका सामना नहीं करना पड़ता। सूतकी एकसारीके लिए पचास मानक अंक रखा गया है। अच्छी तरह बल दिया हुआ सूत इकसार न हो तो राछमें से निकलते समय टूट जाता है। राछमें से सैकड़ों तार निकलते हैं, और वह कपड़ेके अर्जके बराबर चौड़ा होता है। सूत अगर इकसार न हो तो बार-बार टूटता रहता है। इसलिए सूत जितना इकसार होगा, बुनाईमें उतना ही अच्छा रहेगा। इसीलिए सूतकी इकसारीका अंक कमसे-कम पैंतालीस होना चाहिए। कताई समाप्त करनेके बाद लच्छीको लगातार देखनेसे सूतकी इकसारी और धागेको तोड़कर मोटे तौरपर उसके बलका अन्दाज लगाया जा सकता है। समय-समयपर अपने सूतकी जाँच करवाते रहनेसे आप उन आवश्यक सुधारोंको करने योग्य बन सकते हैं जो सावधानीसे प्रगति करते चले जानेपर होते हैं। आशा है कि अब मेरा

आशय स्पष्ट हो गया होगा। आप मुझ-जैसे नाचीज व्यक्तिके काममे इतनी रुची ले रहे हैं यह देखकर मन बड़ा प्रसन्न हुआ। मै इसके लिए आपका बहुत कृतज्ञ हूँ। चरखा हमारे देशमें गरीबसे-गरीब लोगोके सामने एक व्यावहारिक हल पेश करता है और यदि हम इस कार्यसे अपना तादात्म्य स्थापित कर सक तो उससे हमारे जीवनमे चुपचाप ही कितनी बड़ी क्रान्ति हो जाये।

हृदयसे आपका,

श्री डी० एन० बहादुरजी
बम्बई

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९६४३) की फोटो-नकलसे।

७८. पत्र : भगवानजी मेहताको

आश्रम
ज्येष्ठ बदी २, १९८२ [२७ जून, १९२६]

भाईश्री ५ भगवानजी,

आपका पत्र मिला। आपने यह क्यों मान लिया कि मुझे आपके खिलाफ भर दिया गया है। यदि आपकी दलील मेरे गले नहीं उतरती तो उसका मतलब यह तो नहीं है कि मेरे मनमे आपके प्रति कोई पूर्वग्रह है? विवाहित होनेके कारण ही मैं विषयोंसे विरत हो सका हूँ, ऐसा मैंने अनुभव नही किया। तब फिर मैं यह स्वीकार कैसे करूँ? मेरी मित्र मण्डलीमें अनेक स्त्री-पुरुष ऐसे है जो आजन्म ब्रह्मचारी हैं। तब मैं सन्देह क्यों करूँ?

ईश्वरके सम्बन्धमे फुर्सत मिलनेपर कभी 'नवजीवन' मे लिखूँगा। कारण यह है कि आपने जो प्रश्न पूछा है वह प्रायः पूछा जाता है। उसके सम्बन्धमे मैं जो उत्तर दूँगा उसमे कोई नवीनता नही होगी; लेकिन आपके प्रति सम्मान भावके कारण मैं प्रयत्न करूँगा। आपकी प्रामाणिकताके बारेमे मैंने कभी सन्देह नहीं किया है।

मोहनदासके वन्देमातरम्

श्री भगवानजी अनूपचन्द मेहता
सदर
राजकोट

गुजराती पत्र (एस० एन० १९९२४) की फोटो-नकलसे।

७९. पत्र : लक्ष्मीदास पु० आसरको

आश्रम
साबरमती
ज्येष्ठ वदी २, १९८२, २७ जून, १९२६

चि० लक्ष्मीदास,

तुम्हारे पत्र मुझे नियमपूर्वक मिलते रहते हैं। बेला बहन अब ठीक है, लेकिन देखता हूँ कि उसकी खूब सार-सँभाल रखनी होगी। आनन्दी दौड़ने लगी है। मणिने अपनी नाककी बाली मुझे सौंप दी है और अपनी सोनेकी कंठी भी मुझसे ही तुड़वाई है। चरखा संघने यह प्रस्ताव स्वीकार किया है कि व्यवस्था और वितरणका खर्च पूरा करनेके लिए चरखा संघ द्वारा तैयार कराई गई खादीके दाम ६¼ प्रतिशतसे लेकर १२½ प्रतिशततक बढ़ाये जा सकते हैं; लेकिन उसने यह निश्चय भी किया है कि इस प्रस्तावको अमलमें लानेसे पूर्व एजेन्टोंकी सलाह भी ले ली जानी चाहिए। यह अच्छा किया कि तुमने पैदल चलनेका अपना नियम बना लिया। यहाँ आनेमें तनिक भी उतावली न करना। मुझे सूतमें ८३ अंककी मजबूतीसे सन्तोष हो जाये, सो बात नहीं है। मेरी इच्छा तो १०० प्रतिशत मजबूती लानेकी है; लेकिन कसर कहाँ रह जाती है, मैं अभीतक यह नहीं समझ सका हूँ। यदि सूतकी मजबूती १०० प्रतिशत हो तो सूतकी समानता भी १०० प्रतिशत होनी चाहिए, क्योंकि मैं देखता हूँ कि मेरे सूतकी मजबूतीमें वृद्धि होनेके साथ-साथ उसकी समानतामें अपने आप वृद्धि होती है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (एस० एन० १९६४५) की फोटो-नकलसे।

८०. पत्र : देवदास गांधीको

आश्रम
साबरमती
ज्येष्ठ वदी २, १९८२, २७ जून, १९२६

चि० देवदास,

तुम्हारा पत्र मिला। मोतीलालजीके साथ तुम्हें क्या काम करना पड़ा, यह तुमने नहीं लिखा। काम चाहे जो हो, लेकिन तुम्हें उनकी सेवा करनेका अवसर मिला, यह बात मुझे बहुत अच्छी लगती है। यहाँ फिलहाल आना ठीक नहीं है, यह तो मैं भी कह सकता हूँ। यहाँ बहुत ज्यादा गरमी पड़ रही है। हाँ, कल बारिश हो गई है, इसलिए अब मौसम कुछ ठण्डा हो जायेगा। आज धूप बहुत तेज है और

वह होनी भी चाहिए। वारिशके बिना पशु तो क्या, लोग भी मर रहे थे। अभी तो वारिश और बहुत होनी चाहिए।

राजेन्द्र बाबू इस समय जा रहे हैं। इस बारके 'नवजीवन' मे उनका योगदान बहुत है। तुम तीनों खूब घूमते हो, यह बहुत अच्छी बात है। मैं तो यह चाहता हूँ कि तुम यहाँ खूब स्वस्थ होकर ही आओ। जबतक थोड़ेसे भी खद्दरपोश, निष्काम भावसे सेवारत रहेंगे तबतक खादीको निश्चय ही मान मिलेगा। मैंने हार्डीकी पुस्तक कोई नहीं पढ़ी। वे एक अच्छे उपन्यासकार थे, अथवा हैं, उनके बारेमें मैं केवल इतना ही जानता हूँ। मैं उस जर्मन बहनसे अभी अच्छी जान-पहचान नहीं कर पाया हूँ, क्योंकि मैं बहुत कार्यव्यस्त रहता हूँ। आज मिलनेकी बात सोची थी; परन्तु मिल नहीं सका।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९६४६) की फोटो-नकलसे।

८१. पत्र : राय प्रभुदास भीखाभाईको

आश्रम
२७ जून, १९२६

भाईश्री प्रभुदास,

आपका पत्र मिला। आप जो-कुछ लिखना चाहे निश्शंक होकर लिखे। मैं उसका यथामति यथाशक्ति उत्तर दूंगा। 'गीता' मे योगाभ्यासके बारेमें जो लिखा है वह प्रास्ताविक है, ऐसा मैं मानता हूँ। क्रियाएँ सिखाना उसका उद्देश्य नहीं है। क्रियाएँ योग्य योगाभ्यासियोसे सीखनी चाहिए। मैं स्वयं इन क्रियाओंको क्रमसे नहीं जानता। मेरे जिन मित्रोंने प्राणायामका अभ्यास किया है, मैंने आपको उन्हींके प्रमाण दिये हैं। यदि केवल प्राणायामसे ही ब्रह्मचर्य साधा जा सके तो महान समस्याका समाधान हो जाये; लेकिन इसके साथ ही ब्रह्मचर्यकी कीमत भी कम हो जायेगी। प्राणायाम आदि क्रियाओंसे साधकके लिए ब्रह्मचर्य साधना आसान हो सकता है, ऐसा मैं अवश्य मानता हूँ और जिन्हें ऐसा अनुभव हो उनके पास मैं अपने साथी ब्रह्मचारियोंमें से किसीको भेजनेके लिए तैयार हूँ। आप मेरे कहनेका कहीं ऐसा अर्थ तो नहीं करेंगे कि मैं आपसे आपका अभ्यास छुड़वाना चाहता हूँ। मेरी इच्छा तो यह है कि आपको अपने अभ्यासमे पूर्ण सफलता मिले।

मोहनदासके वन्देमातरम्

श्रीयुत राय प्रभुदास भीखाभाई
कठाना लोट
कठलाल डा०
वरास्ता नडियाद

गुजराती पत्र (एस० एन० १९९२२) की माइक्रोफिल्मसे।

८२. पत्र : बासन्तीदेवी दासको

आश्रम
साबरमती
२९ जून, १९२६

प्रिय बहन,

आशा है आपको भोम्बलके बारेमें तार[1] मिल गया होगा। समझमें नहीं आता कि आपको क्या कहूँ या कैसे सान्त्वना दूं। मैं जब भी बेचारी सुजाताके और आपके बारेमें सोचता हूँ, मेरे सामने दु:खका पूरा चित्र खिंच जाता है। आशा यही है कि आपके अन्तरका सहज साहस आपको सँभाले रहेगा, इतना ही नहीं बल्कि सुजाता और आपके आसपास मौजूद परिवारके अन्य सदस्योंके लिए भी शक्तिका स्रोत सिद्ध होगा। यदि लिख सकें तो मुझे एक-दो पंक्तियाँ अवश्य लिखें।

आपका,

श्रीमती बासन्तीदेवी दास
द्वारा सुधीर राय
२, बेलटोला रोड
कलकत्ता

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९६४४) की फोटो-नकलसे।

८३. पत्र : नारणदास आनन्दजीको

आश्रम
२९ जून, १९२६

भाईश्री ५ नारणदास,

आचार्य गिडवानीने आज मुझे यह भयंकर बात बताई है कि आप जिन अंगूरोंको मुझे अत्यन्त स्नेहभावसे भेज रहे हैं उन अंगूरोंकी बेलोंमें खास तौरसे बकरेको काटकर अथवा कसाईखानेमें जो पशु कटते हैं उनका रक्त सींचा जाता है। उन्होंने बताया कि उन्हें यह जानकारी भाई रणछोड़दाससे मिली है और भाई रणछोड़दास खुद बगीचेमें जाकर इन अंगूरोंको लाते हैं। मेरा मन इस बातको नहीं मानता। ऐसा लगता है, इस बारेमें कुछ गलतफहमी हुई है तथापि चूँकि अब यह शंका उठी है, अतः इसका समाधान भी होना ही चाहिए। मैंने आपको तार देनेका

१. उपलब्ध नहीं है; देखिए "पत्र : उर्मिलादेवीको", ३०-६-१९२६।

विचार किया था; लेकिन खुलासेके लिए उसके बजाय यह पत्र लिखा है। मुझे उत्तर तो तारसे ही दें। यदि यह बात सच हो तो आप अंगूर भेजना बन्द कर दें।

बापूके आशीर्वाद

भाईश्री नारणदास आनन्दजी
कराची

गुजराती पत्र (एस० एन० १९९२३) की माइक्रोफिल्मसे।

८४. पत्र : मोतीलालको

आश्रम
२१ जून, १९२६

भाईश्री ५ मोतीलाल

आपका पत्र मिला। सद्गुरुकी शोध करनेवालेको निर्दोष और निर्विकार होना चाहिए, ऐसी मेरी मान्यता है। निर्दोष और निर्विकारका अर्थ पूर्ण पुरुष नहीं है। गुरुकी आवश्यकता माननेमें नम्रता निहित है। गुरु देहधारी ही हो, ऐसा नियम नहीं है। जो पूर्ण तो नहीं है लेकिन जो ऊँची कोटिमें पहुँच गये हैं, ऐसे अनेक लोगोंको आज भी मैं अपना मार्गदर्शक समझता और मानता हूँ। पूर्ण पुरुष और ईश्वरमें क्या अन्तर है, यह प्रश्न पूछने योग्य नहीं है क्योंकि इसका जो भी उत्तर दिया जायेगा वह अपूर्ण ही होगा। अतः यह आवश्यक है कि इस प्रश्नका उत्तर प्रत्येक मनुष्य अपने अनुभवसे प्राप्त करे।

मोहनदास गांधीके वन्देमातरम्

श्रीयुत मोतीलाल
द्वारा सर्वश्री कुँवरजी उमरशी ऐंड कम्पनी
कूपरगंज
कानपुर

गुजराती पत्र (एस० एन० १९९२५) की माइक्रोफिल्मसे।

८५. पत्र: उर्मिला देवीको[1]

आश्रम
साबरमती
३० जून, १९२६

आपका पत्र मिला। उसके बाद मुझे भोम्बलकी मृत्युकी खबर भी मिल गई। यद्यपि उसकी मृत्युसे बहुत बड़ा आघात लगा है, लेकिन उसके लिए इस चोलेको छोड़ना शायद अच्छा ही रहा। पता नहीं सुजाता दुःखके इस पहाड़को कैसे उठा रही होगी। लड़केके अन्तिम क्षण कैसे बीते, यह मुझे अवश्य लिखे उसमे त्रुटियाँ तो कई थी, परन्तु उसके स्वभावमे एक तरहका सौजन्य भी था, जो बहुत ही भला लगता था। परन्तु उसमे अपने आन्तरिक दोपसे लड़नेकी शक्ति नही रही थी।

बंगालकी राजनीतिकी बात सोचकर मैं खिन्न और दुःखी हो जाता हूँ।[2] इतनी दूर बैठकर उसकी पेचीदगियाँ समझना कठिन है। दासके सबसे अधिक विश्वस्त लोग अलग क्यो हो गये? मुझे तो कुछ ऐसा ही लगता है कि यदि आप इस झगड़ेसे अलग रहती तो अच्छा होता। परन्तु आप तो वही है। इसलिए यह फैसला आप ही कर सकती है कि आपके लिए ज्यादासे-ज्यादा ठीक क्या है।

देघापतियाकी[3] मृत्यु भी बहुत ही दुःखजनक है। मुझे याद पड़ता है कि उनसे मेरी मुलाकात दार्जिलिगमे हुई थी। कब हुई थी यह आप जानती है। जान-पहचान बहुत कम समयकी ही थी, इसलिए मैंने उनके परिवारके सदस्योंको सवेदनाका पत्र नही लिखा। अब यदि आप ठीक समझे, तो उन्हे मेरी सवेदना सूचित कर दे। और उनका बेटा, उसका क्या हाल है?[4] बडी ही दुःखद बात है। जिन बातोंपर मनुष्यका कोई नियन्त्रण नही उनके बारेमे जब वह सोचता है तो अपने आपको अत्यन्त असहाय अनुभव करता है।

हाँ, देवदास अब बिलकुल ठीक है और जमनालालजीके मित्रोके साथ मसूरीमें रहकर स्वास्थ्य-लाभ कर रहा है। आश्रममे एक जर्मन महिला अभी हालमे ही आई है। कैसी चलेगी, मै नही जानता। अभी कुछ कहा नही जा सकता।

आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०९५४) की फोटो-नकलसे।

१. चित्तरंजन दासकी बहन।

२. उर्मिलादेवीने २१ जून, १९२६ के अपने पत्रमें अन्य बातोंके साथ-साथ लिखा था कि सेनगुप्त गुट और तथाकथित धनिकोंके गुटके बीच लगातार झगड़े चलते रहते हैं। धनिकोंके गुटमें टी० सी० गोस्वामी, एन० आर० सरकार, एस० सी० बोस और डॉ० बी० सी० राय-जैसे नेता हैं। पत्रमें कहा गया था कि इस गुटने कांग्रेस बिलकुल त्याग-दी है और शरारती लोगोंके साथ साठ-गाँठ कर ली है (एस० एन० १०९४६)।

३. देघापतियाके राजा।

४. उर्मिलादेवीने लिखा था कि राजाका अट्ठाईस वर्षीय पुत्र बहुत बीमार है और मरणासन्न है।

८६. पत्र : इग्नेशियसको

आश्रम
साबरमती
३० जून, १९२६

प्रिय इग्नेशियस,

आपका पत्र मिला और पुस्तक भी। पुस्तक भेजनेपर अपने मित्रको मेरी ओरसे धन्यवाद दे दें। मैंने पुस्तक पढ़ ली है। मेरे पास इसकी एक प्रति भी है; इसलिए मैं इसे आपको लौटा रहा हूँ। मैंने यह पुस्तक यरवदा जेलमें पढ़ी थी और एक प्रसिद्ध कैथोलिक ईसाईने शायद देहरादूनमें मुझे उसकी एक प्रति दी थी। मुझे यह पुस्तक इसलिए अच्छी लगी कि उसमें एक साधु प्रवृत्तिकी बालिकाने बड़ी ही मोहक, सहज और सरल शैलीमें अपनी जीवन-कथा लिखी है और अपनी आशा-अभिलाषाओंको चित्रित किया है। उसके अतिमानव प्रसंगोंमें मेरी कोई रुचि नहीं। उसने मठमें प्रवेश पानेके लिए जो लगन दिखाई, उसके कारण मेरे मनमें उसके प्रति आदर और प्रशंसाका भाव है। उसके चरित्रकी शुचिता स्तुत्य है, और उसका कठोर आत्मनिरीक्षण प्रेरणास्पद। सन्तोंमें उसकी गणना आदि बातोंमें मुझे कोई दिलचस्पी नहीं।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १११९८) की माइक्रोफिल्मसे।

८७. पत्र : च० राजगोपालाचारीको

आश्रम
साबरमती
३० जून, १९२६

प्रिय च० रा०,

तिरुपुरकी खादीके बारेमें आपका पत्र मिला। शिकायत इस मौसममें बनी खादीको लेकर नहीं है। तुलना गत वर्ष और इस वर्षके उत्पादनके बीच की गई है। पत्र-लेखक स्वयं एक खादी प्रेमी हैं और तिरुपुरकी खादीके प्रशंसक हैं। उनका कहना यह है कि वहाँकी खादीकी किस्म दिन-ब-दिन खराब होती जा रही है। आप जानते हैं कि जेराजाणीने[1] भी एक हदतक इस बातकी पुष्टिकी है। सार्वजनिक रूपसे कोई बयान चाहे न दिया जाये, पर इसकी जाँच और बारीकीसे कराना जरूरी है।

१. विट्ठलदास जेराजाणी।

यदि गर्मीके मौसममें खादीमें खरावी पैदा होती है तो हमें या तो गर्मीका प्रभाव दूर करनेका कोई उपाय निकालना चाहिए या जनतासे साफ कह देना चाहिए कि उसे मौसमोंके कारण दो किस्मकी खादी मिलेगी और इसलिए दोनों किस्मोंके दाम भी अलग-अलग होंगे।

अब रही आपके दौरेकी बात। मुझे तो इस वर्ष दौरेकी करीब-करीब कोई आशा नहीं रही है। इसके लिए कोई भी दोषी नहीं है। आप सबको एक साथ तैयार करना बहुत मुश्किल है। और यदि सब तैयार हो जायें तो उसके बाद, जिस यात्राका आपने मुहूर्त निकाला है उसे, आप ऐन वक्तपर कोई भी जरूरी काम बताकर स्थगित कर देंगे। मैं तो कहता हूँ कि जबतक आपमें इतना साहस नहीं आता कि अकेले जा सकें, तबतक आप दौरेका विचार बिलकुल ही छोड़ दें। मणिलाल कोठारी पहली सितम्बरतक नहीं जा सकेंगे। वे रेलवे एसोसिएशनका काम स्थगित करते आ रहे हैं। वे जब अपने एसोसिएशनके कामके कारण दौरेपर जानेमें अपनी असमर्थता बताते हैं, तब मैं उसपर जोर भी नहीं दे सकता। जमनालालजी एक बार स्वीकार कर लेनेके बाद फिर अपना कोई कार्यक्रम स्थगित नहीं करते, लेकिन उन्हें किसी अपरिवर्तनीय कार्यक्रममें बांधना उनके और अपने उद्देश्यके प्रति भी अन्याय करना होगा। मैंने इसीलिए उनको सभी जिम्मेदारियोंसे मुक्त कर दिया है। यदि उनसे बन पड़ेगा तो आप जब भी तैयार होंगे, वे आपके साथ हो जायेंगे। आपको साथ लिये बिना कोई भी दौरेपर नहीं जाना चाहता। इसलिए मुख्य व्यक्ति आप ही हैं। और चूंकि आपकी गतिविधियाँ अनिश्चित-सी रहती हैं और आपके नियन्त्रणसे बाहर होती हैं, इसलिए यह आप ही बतायेंगे कि आप कब दौरेपर जायेंगे और तब जो भी लोग इकट्ठे हो सकेंगे, आपके साथ हो लेंगे। यदि आप इन शर्तोंपर यह काम करना नहीं चाहते तो फिर इस वर्ष दौरेका विचार ही त्याग दें। बस इतना याद रखें कि महाराष्ट्रके दौरेका कार्यक्रम आपके निश्चित निर्देशोंके अनुसार ही बनाया गया है। परन्तु यदि आपने वे निर्देश यह मानकर दिये हों कि मणिलाल कोठारी और जमनालालजी आपके साथ जायेंगे ही, तो फिर आप महाराष्ट्रका दौरा भी रद कर दें। अपना फैसला कृपया तार द्वारा सूचित करें और यदि दौरे करना आपके बसकी बात न हो, तो बिना हिचक वैसा लिख दें, भले ही आपकी इस बेवसीका कारण आपकी तिरुच्चेङ्गोडकी कुछ कठिनाइयाँ हों या कोई अन्य कठिनाइयाँ। किसी कामको बिना योजना बनाये यों ही संयोगपर छोड़नेमें कोई लाभ नहीं।

देवदास अब भी मसूरीमें है। वह शक्ति संचित कर रहा है और पण्डितजीकी[1] सहायता कर रहा है। सहायता किस रूपमें कर रहा है, यह उसने नहीं लिखा। लक्ष्मीदास और लालजी उसके साथ हैं। जमनालालजी यहाँ आये थे। वे अमृतलाल सेठका[2] काम देखने कुछ दिनके लिए रानपुर गये हैं। राजेन्द्र बाबू कल चले गये। प्यारेलाल अभी मथुरादासके साथ ही हैं। आप जानते ही हैं कि मथुरादास पंचगनीमें हैं और

१. मोतीलाल नेहरू।

२. जन्मभूमिके सम्पादक।

प्यारेलाल वहाँ जाकर उनकी काफी उपयोगी सहायता कर रहा है। अब यहाँ शनिवारको एक जर्मन महिला आ गई है। मतलब यह है कि आश्रम अब काफी भरा हुआ है। छोटालाल अब शान्त हो गया है और कताई-बुनाई इत्यादिमें विशेष कुशलता प्राप्त करनेकी कोशिश कर रहा है। इसलिए अब उसके लिए आपके साथ दौरेमें जानेका या आपके पास आनेका कोई सवाल नहीं उठता।

आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११११९)से।

८८. पत्र : सी० एफ० एन्ड्रयूजको

आश्रम
साबरमती
३० जून, १९२६

तुम्हारा कार्ड मिला। ताज्जुब है कि तुम, कारण कोई भी हो, बीमार कैसे पड़ गये। तुम्हें कोटगढ़में शान्तिसे विश्राम करना था। इसके बजाय वहाँ तुम्हारा रक्त विषाक्त[1] हो गया।

मैंने कुछ दिन पहले कोटगढ़के पतेपर एक लम्बा पत्र[2] लिखा था। विस्तारपूर्वक लिखो कि अब स्वास्थ्य कैसा है। यदि तबीयत हो तो यहाँ आ जाओ। तुम जानते ही हो कि यहाँ जैसी भी परिचर्या चाहोगे, सुलभ होगी।

तुम्हारा,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९६४७) की फोटो-नकलसे।

८९. अखिल भारतीय गोरक्षा मण्डलके आय-व्ययका ब्योरा

१९२६ की ३० अप्रैलतकका अ० भा० गोरक्षा मण्डलका आय-व्ययका ब्योरा नीचे दिया गया है :[3]

यह ध्यान देने योग्य है कि सूतकी बिक्रीसे बहुत थोड़े दाम[4] मिले हैं, क्योंकि सूत बहुत ही खराब था। यदि चन्दा देनेवाले अपने सूतमें सुधार करें तो बिना किसी विशेष कठिनाई और खर्चके वे अपनी दी हुई रकमको स्वयं ही बढ़ा सकेंगे।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, १-७-१९२६

१. किसी कीड़ेके काटनेसे सी० एफ० एन्ड्रयूजका रक्त विषाक्त हो गया था।
२. देखिए "पत्र : सी० एफ० एन्ड्रयूजको", २४-६-१९२६।
३. यहाँ नहीं दिया गया है।
४. ६,१५४ रुपयेकी कुल आयमें सूतकी बिक्रीसे केवल २६ रुपये कुछ पैसे ही प्राप्त हुए थे।

९०. रंगभेद बनाम स्वदेशी

श्री स्पेंडर लिखते हैं :

गांधी यूरोपके मालका बहिष्कार चाहते हैं; दक्षिण आफ्रिका निवासी एक कदम आगे बढ़कर हिन्दुस्तानियोंका बहिष्कार करना चाहते हैं। स्वदेशी और रंग-भेद विधेयक, दोनों एक ही विचारके दो पहलू हैं। दोनोंके मूलमें यह निराशावादी विचार है कि पूर्व और पश्चिम एक-दूसरेके जीवनकी विशिष्टताओं-को नष्ट किये बिना हिलमिल नहीं सकते। गांधी एक सन्त हैं, उनके हृदयमें दया और उदारता है। और मैं उनकी इस व्याख्याको सुनता रहा जब उन्होंने बड़े उत्साहसे यह बताया कि उन्हें वर्तमान परिस्थितिको हिंसात्मक अथवा आतंकवादी रीतिसे बदलनेके विचारसे कोई सहानुभूति नहीं है; तो भी जब वे यह कहने लगे कि पाश्चात्य उद्योगवादने हिन्दुस्तानके गाँवोंको किस प्रकार नष्ट-भ्रष्ट कर दिया है तो मुझे यह लगा कि यदि वे भारतके सम्राट् होते और उनको सभी अधिकार प्राप्त होते तो वे यूरोपवासियोंके हिन्दुस्तानमें दाखिल होने और वहाँ बसनेके सम्बन्धमें जो नियम बनाते वे उन नियमोंसे ज्यादा भिन्न नहीं होते जो आज दक्षिण आफ्रिकावासी हिन्दुस्तानियोंके खिलाफ बनानेका प्रयत्न कर रहे हैं। श्री गांधीके लिए मेरे हृदयमें सचमुच बड़ी श्रद्धा है और मैं जानता हूँ कि वे दोनों ही प्रकारकी असहिष्णुताके लिए किसी भी बहाने थोड़ी भी गुंजाइश नहीं छोड़ना चाहते। तथापि यह सच मानना ही पड़ेगा कि स्वदेशी और रंगभेद दोनों एक ही आध्यात्मिक कुलके वंशज हैं।[1]

श्री स्पेंडरके लेखका यह अंश एक दृष्टिसे बड़े मार्केका है। टॉल्स्टॉयने जिसे सम्मोहन विद्याकी संज्ञा दी है, यह उसका बड़ा अच्छा उदाहरण है। भारतमें अंग्रेज अफसरों द्वारा बनी-बनाई विचार पद्धतिके सम्मोहक प्रभावमें पड़कर श्री स्पेंडर दक्षिण आफ्रिकाके रंगभेद विधेयकों और भारतके खद्दर प्रधान स्वदेशीके आन्दोलनमें कोई अन्तर नहीं देख पाते। श्री स्पेंडर एक ईमानदार लिबरल हैं। भारतीयोंकी भावनाओं-के साथ उनको थोड़ी सहानुभूति भी है। पर अपने चारों ओरके घनिष्ठ वातावरणके प्रभावसे वे बच नहीं सकते। जो बात उनके विषयमें सच है, वह हम सबके विषयमें भी कही जा सकती है। इसीलिए असहयोगकी आवश्यकता पड़ती है। जब हमारे चारों तरफका वातावरण दूषित हो जाता है, तब हमें उससे अलग हो जाना चाहिए —कमसे-कम उसके साथ हमारा जो सम्बन्ध स्वैच्छिक हो, सो तो अवश्य समाप्त कर देना चाहिए।

१. "पत्र : जी० डी० चटर्जीको", २७-६-१९२६ भी देखिए।

पर श्री स्पेंडरके ये विचार चाहे वातावरणके सम्मोहक प्रभावके कारण बने हों अथवा यह उनके अपने स्वतन्त्र विचार हों, आइये, हम उनपर विचार करें। रंगभेद विवेयकका लक्ष्य मनुष्य है; कोई साधन या कार्य नहीं। स्वदेशी केवल कुछ साधनों और कार्योंके विरुद्ध है। रंगभेद कानून बिना विचार किये ही मनुष्यकी जाति अथवा रंगका विरोध करता है। स्वदेशीमें ऐसा कोई भेदभाव नहीं है। रंगभेद कानूनके पक्षपाती आवश्यकता पड़नेपर अपनी इच्छाको बलपूर्वक भी पूर्ण कर लेंगे। स्वदेशी हर प्रकारके बलप्रयोग का — मानसिक बलप्रयोगका भी — तिरस्कार करता है। रंगभेद कानूनका आधार विवेक नहीं है। खद्दरके रूपमें स्वदेशी एक वैज्ञानिक सूत्र है जिसको विवेक-बुद्धि प्रत्येक पगपर पुष्ट करती है। रंगभेदके अनुसार प्रत्येक भारतवासी चाहे वह कितना ही शिक्षित क्यों न हो और चाहे वह रहन-सहनमें पूरा पश्चिमी मनुष्य जैसा क्यों न हो गया हो, तो भी दक्षिण आफ्रिका निवासियोंके विचारमें वह वहाँ रहने देने योग्य नहीं है। रंगभेद कानूनका उद्देश्य ही हिंसापूर्ण है क्योंकि वह वहाँके आदि निवासियोंको और एशियाके नवागत लोगोंको बराबर अशिक्षित मजदूर ही बनाये रखना चाहता है; और चाहता है कि वे इस स्थितिसे कभी ऊपर न निकलने पायें। रंगभेद सभ्यताके नामपर और सभ्यताकी रक्षाके नामपर और भी अधिक विषम रीतिसे वही करना चाहता है जो हिन्दुओंने हिन्दू धर्मके नामपर उन लोगोंके साथ किया है जिनको वे अछूत कहते हैं। पर उल्लेखनीय बात यह है कि अस्पृश्यता — इसके विरुद्ध जो भी कहा जाये — बड़ी तेजीसे हिन्दुस्तानसे उठती जा रही है। जो लोग अस्पृश्यता हटानेमें लगे हैं वही लोग बड़े उत्साहके साथ चरखेको भी सर्वव्यापी बनानेका प्रचार कर रहे हैं। अस्पृश्यताको बुराई मान लिया है। पर रंग-भेदको दक्षिण आफ्रिकामें धर्मका दर्जा दिया जा रहा है। रंग-भेद विवेयक बे-गुनाह स्त्री-पुरुषोंको अकारण ही नुकसान पहुँचाते हैं और उनका धन हरण करते हैं। स्वदेशीका उद्देश्य एक भी प्राणीको नुकसान पहुँचाना नहीं है। यह इस देशके सर्वाधिक गरीब लोगोंको वह चीज लौटाना चाहता है जो उनसे जबर्दस्ती छीन ली गयी है। रंगभेद विवेयक लोगोंको पृथक् करना चाहता है। स्वदेशीमें इस प्रकार किसीको पृथक् करनेका भाव नहीं है। स्वदेशीकी इस विचारधाराके साथ कोई भी सहानुभूति नहीं है कि पूर्व और पश्चिम कभी मिल नहीं सकते। स्वदेशीका आन्दोलन सभी विदेशी अथवा यूरोपीय वस्तुओंका बहिष्कार नहीं करता; न तो वह मशीनों द्वारा बनी हुई सभी वस्तुओंका ही बहिष्कार चाहता है, और न वह देशमें बनी सभी वस्तुओंको वरेण्य मानता है। स्वदेशी ऐसी सभी विदेशी वस्तुओंकी आमदका स्वागत करता है जिनको हम हिन्दुस्तानमें तैयार नहीं कर सकते अथवा नहीं करना चाहते और जिनसे हिन्दुस्तानके लोगोंको लाभ है। उदाहरणार्थ स्वदेशी श्रेष्ठ साहित्यकी सभी विदेशी पुस्तकोंको, विदेशी घड़ियोंको, विदेशी सुइयों, सिलाईकी विदेशी मशीनों और विदेशी आलपिनोंकी आमदको स्वीकार करता है। स्वदेशी सभी मादक वस्तुओंका — चाहे वह भारतमें भी बनी हों — वर्जन करता है। स्वदेशी आन्दोलन सभी प्रकारके विदेशी कपड़ेका और भारतकी मिलोंमें भी बने कपड़ोंका बहिष्कार करके चरखे और खद्दरके प्रसारपर ही अपनी सारी शक्ति लगाता

है। इसका बहुत ही सीधा, काफी सन्तोषजनक और नैतिक कारण यह है कि चरखेके नाशसे भारतके करोड़ों किसानोंका एकमात्र अनुपूरक धन्धा विनष्ट हो गया है और उसका स्थान कोई दूसरा धन्धा नही ले सका है। इसलिए खद्दर और चरखेकी पुनः प्रतिष्ठाके रूपमे स्वदेशी भारतके करोड़ो गरीबोके अस्तित्वके लिए अत्यन्त आवश्यक है। पर रंगभेद कानून उन चन्द यूरोपवासियोकी लोभपूर्तिका साधनमात्र है जो एक ऐसे देशका धन चूस रहे हैं जो उनका अपना नही है, जो दक्षिण आफ्रिकाके आदि-वासियोंका है। अतः जहाँतक मैं समझ सकता हूँ रगभेद कानूनका कोई भी नैतिक आधार नही है। दक्षिण आफ्रिकासे नवागत एशियावासियोको निकाल देना अथवा उनको खत्म कर देना किसी भी हालतमे आवश्यक नही है; न यह प्रमाणित किया जा सकता है कि ऐसा करना दक्षिण आफ्रिकाके यूरोपवासियोके ही अस्तित्वके लिए जरूरी है। फिर दक्षिण आफ्रिकाके आदिवासियोको पददलित करनेके पक्षमें तो कोई नैतिक तर्क जुटाया ही नही जा सकता। इसलिए श्री स्पेंडर-जैसे अनुभवी विद्वानका इस प्रकार खद्दर रूपी अत्यन्त ही नैतिकतापूर्ण स्वदेशी-तत्त्वको और रगभेद विधेयकको एक ही श्रेणीमे रखना आश्चर्यजनक और दुःखद है। ये दोनों समानशील नही है। आध्यात्मिक समानताकी तो बात ही नही उठती; ये दोनो एक-दूसरेसे बिलकुल भिन्न हैं; एक-दूसरेसे इतने दूर, जितने एक-दूसरेसे उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव है।

श्री स्पेंडरने अनुमान लगाया है कि यदि मैं भारतका निरंकुश शासक होता तो क्या करता। मैं इसका अनुमान शायद कुछ अधिक अधिकारपूर्वक कर सकता हूँ। यदि मैं भारतका सम्राट् होता तो मैं पृथ्वीके सभी मनुष्योके साथ धर्म, वर्ण और जातिका कोई भेद किये बिना मैत्री करता; क्योंकि मेरा दावा है कि समस्त मानव-जाति एक ही ईश्वरकी सन्तान है, जिसके छोटेसे-छोटे व्यक्तिको भी आत्म-साक्षात्कार या आत्मोत्कर्षका उतना ही अधिकार है जितना कि बड़ेसे-बड़े व्यक्तिको। भारतपर कब्जा रखनेके लिए जो सेना रखी गई है, उसे मैं प्रायः बिलकुल हटा देता; केवल इतनी पुलिस रखता जितनी यहाँके नागरिकोंकी चोरों और डाकुओसे रक्षा करनेके लिए आवश्यक है। मैं सीमा प्रान्तके कबीलोको घूस नही देता, जैसे आज दी जा रही है। मैं उनके साथ मैत्री करता और इस उद्देश्यसे उनके पास सुधारकोंको भेजता जो उनको अच्छे धन्धे सिखलानेके साधन खोज निकालते। भारतमे रहनेवाले प्रत्येक यूरोपवासी और उनके प्रामाणिक उद्यमोंकी रक्षाका मैं पूरा प्रबन्ध करता। सभी विदेशी कपड़ेकी आमदपर मैं इतना कर लगा देता कि वह भारतके अन्दर न आ सके और खद्दरको सरकारी नियन्त्रणमे लाकर ऐसी व्यवस्था करता कि सूत कातनेके इच्छुक प्रत्येक ग्रामवासीको यह विश्वास हो जाता कि उसके चरखेसे निकला माल खप जायेगा। मैं मादक द्रव्योंकी आमद एकदम रोक देता और शराब खीचनेकी हर भट्टीको बन्द कर देता। केवल उतनी ही शराब और अफीम तैयार होने देता जितनी कि दवाके लिए आवश्यक मालूम होती। हर प्रकारकी धार्मिक पूजाकी—जो मनुष्य मात्रके नैतिक संस्कारके विरुद्ध नही है, पूरी रक्षाकी गारंटी देता। जिनको हम अछूत समझते हैं उनको प्रत्येक सार्वजनिक मन्दिरमे, पाठशालामे, जहाँ दूसरे हिन्दू जा सकते हैं,

जानेकी स्वतन्त्रता दे देता। मैं हिन्दू और मुसलमान, दोनोंके प्रतिनिधियोको बुलवाता, उनकी जेबोंकी तलाशी लेकर, उनके पास जो-कुछ खानेकी वस्तु और घातक हथियार होते उन्हे उनसे छीनकर उनको एक घरमें बन्द कर देता और उसके दरवाजे उस समयतक नहीं खोलता जबतक वे आपसके झगड़ोंको तय नही कर लेते। इनके अतिरिक्त बहुतेरी और बाते हैं जिनको मैं यदि भारतका सम्राट् होता तो करता। पर मेरे सम्राट् होनेकी सम्भावना बिलकुल नही है। यों मैंने जो ऊपर कहा है वह उन कार्योंकी एक खासी झलक पेश कर देता है जो देशकी गरीबसे-गरीब जनताकी आवश्यकताओंको जानने-समझनेवाला एक व्यक्ति, जिसे लोग महज काल्पनिक समझनेकी भूल करते हैं और जो अपने-आपको व्यावहारिक व्यक्ति मानता है, शक्ति मिलनेपर करता।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १-७-१९२६

९१. अनीतिकी राहपर – १

कृत्रिम उपायोंसे सन्तानवृद्धि रोकनेके सम्वन्धमे जो लेख देशी समाचार पत्रोमे निकलते हैं कृपालु मित्र मेरे पास उनकी कतरने भेजते रहते हैं। नौजवानोसे चरित्र सम्वन्धी मेरा पत्रव्यवहार भी बढ़ता जा रहा है। पत्रव्यवहारमे उत्पन्न सारी समस्याएँ तो मैं इन पृष्ठोंमे हल नही कर सकता; यहाँ तो कुछ ही की चर्चा की जा सकती है। कुछ अमेरिकी सज्जन मेरे पास सम्बन्धित साहित्य भेजते रहते हैं और कुछ तो मुझसे कृत्रिम उपायोंका विरोध करनेके कारण नाराज भी है। उन्हे दुःख है कि कई बातोंमे प्रगतिशील सुधारक होते हुए भी सन्तति-नियमनके सम्वन्धमे मेरा विचार मध्ययुगीन है! इसके सिवाय देखता हूँ कि सभी देशोंके कुछ वड़े-बड़े विचारवान लोग भी कृत्रिम उपायोंके समर्थकोंमे से हैं।

यह सब देखकर मैंने सोचा कि कृत्रिम उपायोके पक्षमे अवश्य ही कुछ-न-कुछ विशेष बात होगी और इसलिए मुझे इसपर अधिक विचार करना चाहिए। मैं इस समस्यापर विचार कर ही रहा था और तत्सम्बन्धी साहित्य पढ़नेके लिए सोच ही मे था कि मुझे एक अंग्रेजी पुस्तक 'टुवर्ड्स मॉरल वैंकरप्सी' पढ़नेको मिली। इस पुस्तकमे इसी प्रश्नपर विचार किया गया है, और मेरी समझमे वहुत सुचारू रूपसे भी। मूल पुस्तक फ्रेंच भाषामे है और उसके लेखक हैं पॉल ब्यूरो। फ्रेंचमे किताबका नाम है 'ल'[1] इनडिसिप्लिन देस मॉरस' और इसका अर्थ हुआ 'नीतिके क्षेत्रमे अनुशासनहीनता' पुस्तकका अनुवाद कॉस्टेबिल कम्पनी द्वारा प्रकाशित है और उसकी भूमिका डॉ० शारलिव, सी० बी० ई०, एम० डी०, एम० एस० (लन्दन) ने लिखी है। पुस्तकमे ५३८ पृष्ठ और १५ अध्याय हैं।

पुस्तक पढ़कर मैंने यह सोचा कि लेखकके विचारोंपर अपनी सम्मति देनेसे पहले उचित है कि मैं इन उपायोंकी पुष्टि करनेवाले सभी मुख्य-मुख्य ग्रन्थोंको पढ़

१. साधन-सूत्रमें द' है।

लूँ। इसलिए मैंने इस विषयका जो साहित्य भारत सेवक समाजसे मिल सका, मँगाकर पढ़ा। काका कालेलकरने, जो इस विषयका अध्ययन कर रहे हैं, मुझे हैवलॉक एलिसकी खास तौरपर इस विषयका निरूपण करनेवाली एक पुस्तक दी और एक मित्रने 'प्रेक्टिश्नर' का एक विशेषांक मेरे पास भेज दिया, जिसमें इस विषयपर विख्यात डाक्टरोंने अपनी सम्मतियाँ प्रकट की हैं।

इस विषयपर साहित्य इकट्ठा करनेका प्रयोजन केवल यह था कि जहाँतक सामान्य व्यक्ति कर सकता है वहाँतक ब्यूरोके सिद्धान्तोंकी जाँच कर ली जाये। अक्सर देखा जाता है कि चाहे विशेषज्ञ ही किसी प्रश्नपर विचार क्यों न कर रहे हों, प्रश्नोंके दो पहलू रहते ही हैं और दोनोंपर बहुत-कुछ कहा जा सकता है। इसलिए मैं पाठकोंके सम्मुख ब्यूरोकी यह पुस्तक रखनेसे पहले कृत्रिम उपायोंके पक्षमें सारी युक्तियाँ जान लेना चाहता था। बहुत सोच-विचारकर मैं इस परिणामपर पहुँचा हूँ कि कमसे-कम भारतवर्षके लिए तो कृत्रिम उपायोंकी कोई आवश्यकता नहीं है। जो भारतवर्षमें इन उपायोंका प्रचार करना चाहते हैं वे या तो इस देशकी यथार्थ दशाका ज्ञान नहीं रखते या जानबूझकर उसकी परवाह नहीं करते। और फिर यदि यह सिद्ध हो जाये कि इन उपायोंका काममें लाया जाना पाश्चात्य देशोंके लिए भी हानिकारक है तब तो फिर भारतवर्षकी विशिष्ट स्थितिमें उनपर विचार करनेकी आवश्यकता भी नहीं रहती।

आइये; देखें ब्यूरो क्या कहता है। उसने फ्रांसकी दशापर ही विचार किया है। परन्तु यह भी हमारे लिये बहुत काफी है क्योंकि फ्रांस संसारके सबसे उन्नतिशील देशोंमें गिना जाता है; और जब ये उपाय वहाँ भी सफल नहीं हुए तो फिर और कहाँ हो सकते हैं?

असफलताके अर्थके सम्बन्धमें भिन्न-भिन्न रायें हो सकती हैं। इसलिए अच्छा है कि 'असफल' शब्दसे जो मेरा अर्थ है उसकी व्याख्या मैं कर दूँ। यदि यह बात सिद्ध कर दी जाये कि इन उपायोंका अवलम्बन करनेके कारण लोगोंके नैतिक आचार भ्रष्ट हो गये, व्यभिचार बढ़ गया और कृत्रिम सन्तति-नियमनके उपाय केवल स्वास्थ्य रक्षा अथवा गृहस्थोंकी आर्थिक दशा ठीक रखनेके लिए ही काममें नहीं लाये गये बल्कि वे वासनाओंकी पूर्तिके लिए काममें लाये गये तो इन उपायोंका असफल हो जाना सिद्ध हुआ मान लेना चाहिए। यह सामान्य स्थिति है। उत्कृष्ट नैतिक सिद्धान्त तो सन्ताननिग्रहके लिए गर्भनिरोधके कृत्रिम उपायोंको निन्दनीय ही ठहरायेगा क्योंकि उसके अनुसार विषयभोग केवल सन्तानोत्पत्तिकी इच्छासे ही किया जाना चाहिए जैसे कि भोजन केवल शरीर रक्षाकी दृष्टिसे। तीसरी तरहके भी मनुष्य हैं, जिनका कहना यह है कि "नैतिक आचार-विचार सब फिजूल हैं और यदि नैतिक आचार कुछ हैं ही तो वे यही हैं कि चाहे जितना विषयभोग करो, वही जीवनका उद्देश्य है; बस इतना ध्यान रहे कि स्वास्थ्य न बिगड़ने पाये, नहीं तो जो विषयभोग हमारा उद्देश्य है उसीमें बाधा पड़ जायेगी।" मैं समझता हूँ कि श्री ब्यूरोने यह पुस्तक ऐसे लोगोंके लिए नहीं लिखी है क्योंकि पुस्तकके अन्तमें टॉम मैनके यह शब्द दिये गये हैं: 'भविष्य सच्चरित जातियोंका है।'

पुस्तकके प्रथम भागमे श्री ब्यूरोने जो तथ्य हमारे सामने रखे है उन्हें पढ़कर हृदय कांप उठता है। उससे मालूम होता है कि फ्रांसमे कैसी बड़ी-बड़ी संस्थाएँ केवल लोगोंकी लम्पटतामे सहायता पहुँचानेकी दृष्टिसे स्थापित हो गई है। कृत्रिम उपायोंके पक्षपातियोंका सबसे बड़ा दावा यह है कि इनमे लुक-छिपकर किये जानेवाले गर्भपात और भ्रूणहत्याकी घटनाएँ समाप्त हो जायेगी। परन्तु तथ्योंके आगे उनका यह दावा भी गलत साबित हो जाता है। ब्यूरोका कहना है कि यद्यपि फ्रांसमे पिछले २५ वर्षोसे गर्भ-निरोधके उपाय लगातार काममे लाये जा रहे है परन्तु फिर भी गर्भपातके जुर्मोकी संख्यामे कोई कमी नही हुई है। उसकी राय है कि गर्भपात पहलेसे बढ़ गये है। उसका अनुमान है कि प्रतिवर्ष लगभग २,७५,००० से ३,२५,००० तक गर्भपात कराये जाते है। लोग अब ऐसी बाते सुनकर उतने दुःखी नही होते जैसे पहले होते थे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १-७-१९२६

९२. टिप्पणियाँ

बिहारमें खादी प्रदर्शनियाँ

बिहारमे हालमे हुई खादी प्रदर्शनियोंकी मेरे पास एक लम्बी-चौड़ी रिपोर्ट आई है। इस वर्ष दिल्लीमे अग्रवाल महासभाने एक ऐसी ही प्रदर्शनी की थी। उसको देखकर राजेन्द्रबाबूके दिलमे विचार उठा कि बिहारमे भी ऐसी खादी प्रदर्शनियाँ की जाये तो बड़ा लाभ हो। बिहारमे हुई प्रथम प्रदर्शनीका उद्घाटन कलकत्तेके खादी प्रतिष्ठानके बाबू सतीशचन्द्र दासगुप्तने किया। यह बहुत सफल रही और इस कारण बिहारके और स्थानोंमे भी ऐसी प्रदर्शनियाँ की गई। पहली प्रदर्शनी गंगाके किनारे, बिहार विद्यापीठके मैदानमे, पटनासे करीब तीन मीलकी दूरीपर हुई। दूसरी बिहार नवयुवक मण्डलने की और उसका उद्घाटन किया सिन्ध प्रदेशके साधु वास्वानीने। तीसरी आरा और चौथी मुजफ्फरपुरमे हुई और मौलवी मुहम्मद शफीने उसका उद्घाटन किया। पाँचवीं छपरामे हुई। मौलाना मजहर-उल-हकने उसका उद्घाटन किया। छठी छपरा जिलेके मैरनिया नामक एक छोटे-से गाँवमे और रिपोर्टमे उल्लिखित अन्तिम व सातवीं प्रदर्शनी ११ तारीखको गयामे हुई। गरमी बहुत पड़ रही थी परन्तु फिर भी गयामें सबसे ज्यादा लोग आये। लगभग ७,००० व्यक्ति आये और स्त्रियाँ भी उनमें बहुत-सी थीं। प्रदर्शनियोंमे कमसे-कम उपस्थिति २,००० रही।

विवरणमे कहा गया है कि 'इन प्रदर्शनियोंमे कांग्रेसी, गैर-कांग्रेसी, सरकारी कर्मचारी, जमींदार, वकील, छोटे-बड़े सौदागर सभी लोग आते हैं; और कहीं-कहीं तो यूरोपीय भी आ जाते हैं। मैरनियामें मध्यम वर्गके लोगोंके बजाय ज्यादातर सीधे-सादे ग्रामवासी ही आये।' हर प्रदर्शनीमे खादीकी औसत बिक्री करीब १,००० की

हुई। सबसे अधिक बिक्री २,००० की गयामें और सबसे कम ४००)की मैरनियामें हुई। विवरणके अनुसार 'इन प्रदर्शनियोंमें हिन्दू-मुस्लिम या राजनीतिक दलबन्दीके द्वेषके कहीं चिह्न भी नहीं दीखते थे।'

प्रदर्शनीका आयोजन करनेका तरीका यह था:

> संयोजक शुरूमें किसी जगह जाकर वहांके मुख्य-मुख्य लोगोंसे मिलते हैं और उनसे अपने स्थानमें खादी प्रदर्शनी रखनेकी प्रार्थना करते हैं। फिर किसी विशेष पुरुषके हाथों उसका उद्घाटन कराया जाता है। प्रदर्शनीका खूब विज्ञापन करते हैं और खास-खास लोगोंको निमन्त्रण भेजकर भी बुलाते हैं। शामको प्रदर्शनीके स्थानपर मैजिक लैटर्नसे चित्र दिखाकर और व्याख्यान देकर लोगोंको खादी आन्दोलनकी जानकारी दी जाती है। बड़ी तादादमें लोग इन व्याख्यानोंको सुननेके लिए आते हैं। प्रदर्शनी समाप्त हो जानेपर जिस नगरमें प्रदर्शनी होती है वहाँ खादी घूम-घूमकर बेची जाती है। आगे भी ऐसी प्रदर्शनियाँ करते रहनेका इरादा है और आशा है कि ८०,०००) का जो माल इकट्ठा हो गया है वह बेच दिया जाएगा।

इस विवरणसे मुझे पता चला है कि बड़े-बड़े प्रतिष्ठित लोगोंने खादी बेचनेमें भाग लिया है।

प्राध्यापकको खादी भेंट

अभी हालमें ही पटना कालेजके अर्थशास्त्र विभागके छात्रोंने अपने प्राध्यापक हैमिल्टनको अवकाश ग्रहण करनेपर वहींकी बनी खादीका एक थान भेंट किया। थान देते हुए छात्रोंके प्रवक्ताने 'सर्चलाइट'में प्रकाशित समाचारके अनुसार यह कहा:

> महोदय, मैं जानता हूँ कि आप स्वर्गीय आचार्य मार्शलके भक्त हैं और उन्होंने अपनी अर्थशास्त्रकी समस्त पुस्तकोंकी रचना इस मूल आधारपर की है: 'अर्थशास्त्र एक ओर जहाँ सम्पत्तिका अध्ययन है, वहाँ दूसरी ओर वह मनुष्यका आंशिक अध्ययन भी है और यही अधिक महत्वपूर्ण भी है। इसलिए आपके लिए खादीके इस थानसे अधिक अच्छा कोई दूसरा उपहार चुनना हमारे लिए सम्भव नहीं था। यह शुरूसे लेकर आखिरतक बिहारमें और यहीं पैदा हुई कोकटी कपाससे बनाया गया है। महोदय, इस तरह हमने आपके सामने अपने देशके द्वारा आर्थिक क्षेत्रमें किये जानेवाले प्रयत्न ही नहीं वरन् राष्ट्रका हृदय भी खोलकर रख दिया है। सम्पत्तिके उत्पादनपक्षकी हद तक इससे गरीब लोगोंकी थोड़ी-बहुत सम्पत्ति बढ़ती है; किन्तु इसका मानवीय पक्ष देखें तो यह उस संघर्षका प्रतीक है जो देशके भूखोंको रोटी देने और नंगोंकी लाज ढकनेके लिए किया जा रहा है।

हम चाहते हैं कि सरकारी कालेजके ही नहीं, अन्य कालेजोंके भी सभी छात्र पटना कालेजके छात्रोंकी भाँति खादीके अर्थशास्त्रको समझें और जब कभी किसीको भेंट देनेका अवसर आये, वे उनके इस कार्यका अनुकरण करें।

मैसूरमें खद्दर

एक पत्र-लेखक लिखते हैं:

> मैसूर नगरमें कुछ खादी प्रेमियोंने जुलाई १९२५ से एक सहकारी समिति आरम्भ की है। चूँकि यहाँ खादीका पर्याप्त उत्पादन नहीं होता इसलिए व्यवस्थापक अभी आन्ध्र, तमिलनाड और कर्नाटकसे खादी मँगाते हैं। समिति अपनी पूँजीको बढ़ाना चाहती है। इस समय उसके १०-१० रुपयेके ३६५ हिस्से किये जा चुके हैं। हिस्सेदारोंके लिए अपने हरएक हिस्सेपर एक रुपया प्रति-मास देना आवश्यक है। कुछ सदस्य अपनी पूरी रकम दे चुके हैं। समितिके १०३ सदस्य हैं। समितिकी दूकान यहाँ कते हुए सूतको १२ आने प्रति रतलके हिसाबसे खरीद लेती है और फिर वह उसे यहीं बुनवा लेती है। समिति दूकानके रख-रखाव और दूसरी मदोंपर सिर्फ ३२ रुपये माहवार खर्च करती है। जुलाई १९२५ और पिछली मईके बीच कुल जमा पूँजी २,०३६ रुपये थी। ८,३६५ रुपयेकी खादी खरीदी गई और ८,०८८ रुपयेकी खादी बेची गई।

इसमें सन्देह नहीं है कि मैसूर-जैसे शहरके लिए यह शुरुआत मामूली ही कही जायेगी; किन्तु यदि दूसरे शहर इसका अनुकरण करें और व्यवस्थापकगण योग्य और प्रामाणिक हों तो इसमें कोई सन्देह नहीं है कि मैसूरमें खद्दरका भविष्य बहुत उज्ज्वल है।

मान्यता कौन दे?

पूछा गया है कि गोशालाओंको मान्यता प्रदान करनेकी अखिल भारतीय गोरक्षा मण्डलकी शर्तें क्या है? अभीतक इसके लिए कोई नियम नहीं बनाये गये हैं; परन्तु मैं चौंड़े महाराजके इस सुझावको स्वीकार करता हूँ कि जो संस्था मान्यता चाहे वह अपनी आयका १) प्रति सैकड़ा मण्डलको दे। मान्यता पानेके लिए उसे पहले अपना सम्पूर्ण ब्यौरा देना, मण्डलका उद्देश्य स्वीकार करना और उससे सम्बन्धित गोशाला तथा हिसाब-किताबकी जाँच करने देना होगा। मान्य की गई संस्थाको मण्डलके विशेषज्ञोंकी सलाह प्राप्त करने, उसके पासके साहित्यका नि:शुल्क उपयोग करने और जो मदद वह कर सकता है या जो सलाह वह दे सकता है उसे प्राप्त करनेका अधिकार होगा। स्पष्ट है कि ये नियम अ० भा० गोरक्षा मण्डलकी समितिकी मंजूरी पर ही निश्चित माने जायेंगे। अतएव समितिके सामने इनके पेश किये जानेके पहले अन्य सुझावोंका स्वागत किया जायेगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १-७-१९२६

९३. अखिल भारतीय देशबन्धु स्मारक-कोष

एक पत्र-लेखकने मेरा ध्यान इस ओर खींचा है कि अखिल भारतीय देशबन्धु स्मारक कोषमें प्राप्त रकमोंकी सूची 'यंग इंडिया'मे सिलसिलेसे नही छापी गई है और इस हदतक कहा जा सकता है कि उसमे चुस्ती नहीं बरती गई। यह बात सच है, क्योंकि जैसे-जैसे मुझे मन्त्री या खजांचीसे रकमोके मिलनेकी सूचनाएँ मिलती गई, मैं उनको बिना जाँचें और उनके पिछले जोड़को बिना देखे, देता चला गया। इसलिए पत्र-लेखकको यह भी नहीं मालूम हो सका कि उनके द्वारा दी गई रकम अखिल भारतीय देशबन्धु स्मारक कोषमें वस्तुत: जमा भी हुई है या नहीं। इस पत्रके मिलनेपर मैंने कोषाध्यक्षको चिट्ठी[1] लिखी और अबतक मिले हुए चन्देकी पूरी सूची मँगवाई। मैं यह पूरी सूची[2] प्रकाशित कर रहा हूँ जिससे कोई गड़बड़ी या भूल न हो और चन्दा देनेवाला हरएक व्यक्ति स्वयं यह देख सके कि उसका चन्दा पहुँचा है या नहीं। पूरी सूचीको एक ही अंकमे देना सम्भव नहीं है क्योंकि इसका शेष भाग अभी जाँचा जा रहा है।

मुझे पाठकोंको यह भरोसा दिलानेकी जरूरत नहीं है कि कोषाध्यक्षके कार्यालयमें प्राप्त रुपयोंकी बड़ी सावधानी रखी जाती है और रकमें आते ही बैंकमें जमा कर दी जाती हैं। गड़बड़ी हिसाब-किताबके दोषपूर्ण तरीके या असावधानीके कारण नहीं हुई है, बल्कि इसलिए हुई है कि 'यंग इंडिया' के दफ्तरमे जितनी सूचियाँ आई हैं, वे छापी नहीं जा सकीं। यदि चन्दा देनेवाले लोग जो सूची अब प्रकाशित की जा रही है उसे देख लेंगे और उसमे नजर पड़नेवाली भूलकी ओर मेरा ध्यान खींचेंगे तो मैं उनका बहुत कृतज्ञ होऊँगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १-७-१९२६

१. उपलब्ध नहीं है।

२. यहाँ नहीं दी गई है।

९४. पत्र : सेवकराम करमचन्दको

आश्रम
साबरमती
२ जुलाई, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिल गया। स्वप्न-दोषको पूर्णतः बन्द करना सर्वथा सम्भव है। मुझे इसमें पूर्ण सफलता तो नहीं मिल पाई है; पर मैं जानता हूँ कि ऐसा सर्वथा सम्भव है। मैं बहुधा महीनोंतक इससे मुक्त रहा हूँ। और मुझे ऐसा भी याद है कि एक बार तो मुझे एक वर्षसे भी अधिक कालतक स्वप्नदोष नही हुआ। स्वप्नदोषसे मक्तिकी उस अवस्थामे विघ्न कैसे आया, उसकी एक लम्बी कहानी है। ये स्वप्न-दोष न तो स्वाभाविक हैं और न स्वास्थ्यप्रद। ये वास्तवमे स्वास्थ्यके पूर्ण विकासमे बाधक होते हैं और जब मनुष्यका मस्तिष्क हर प्रकारकी वासनासे पूर्णतः मुक्त रहता है तब स्वप्नमे वीर्यपात तो हो ही नहीं सकता। सभी मनुष्य ऐसी स्थिति प्राप्त कर सकते हैं। परन्तु इस स्थितिको प्राप्त करनेके लिए सतत और कष्टकर प्रयास दरकार है।

आपका दूसरा पत्र भी मिला। उसके बारेमे मैं बादमे 'यंग इंडिया' के पृष्ठोंमे लिखनेकी सोच रहा हूँ। मैं अर्सेसे आपके छात्रोके लिए अपने ही हाथसे एक पत्र लिखकर भेजना चाहता था, लेकिन कोई-न-कोई बाधा पड़ती ही रही। अब कुछ पंक्तियाँ लिख रहा हूँ।[1]

हृदयसे आपका,

संलग्न : १

श्रीयुत सेवकराम करमचन्द
अध्यापक
एम० ए० वी० स्कूल
पुराना सक्खर
(सिन्ध)

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९६४८) की माइक्रोफिल्मसे।

१. यह सहपत्र उपलब्ध नहीं है।

९५. पत्र : सतकौड़ीपति रायको

आश्रम
सावरमती
२ जुलाई, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका तार मिला। लेकिन ऐसी खबरें हमेशा ज्यादा तेजीसे फैल जाती हैं। भोम्बलकी मृत्युका समाचार मुझे आपके तारसे चौबीस घंटे पहले मिल चुका था। मैंने सुधीरको संवेदनाका तार भेजा था और वासन्तीदेवीको भी पत्र द्वारा यथासम्भव सान्त्वना दी थी।

आशा है कि आप स्वस्थ होंगे। बंगालकी स्थिति अब ठीक हो रही होगी।

हृदयसे आपका,

बाबू सतकौड़ीपति राय
भवानीपुर
कलकत्ता

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९६४९) से।

९६. पत्र : रामेश्वरदास पोद्दारको

आश्रम
साबरमती
शुक्रवार [२ जुलाई, १९२६][1]

भाई रामेश्वरजी,

आपका पत्र मिला। ईश्वर तो हमारी परीक्षा लेता है। 'रामनाम' लेते हुए सारा जन्म चला जाय तो भी क्या हुआ? इससे बढ़कर कोई इलाज नहीं है ऐसा विश्वास कर 'रामनाम' लेना चाहिए।

आपका,
मोहनदास

मूल पत्र (जी० एन० १९४) की फोटो-नकलसे।

१. डाककी मुहरसे।

९७. पत्र : द० बा० कालेलकरको

आश्रम
२ जुलाई, १९२६

भाईश्री ५ काका,

आपके दोनों पत्र मिले। मैं देखता हूँ कि आपने जो-कुछ लिखा है उसमें से बहुत-सा तो गलतफहमीमें लिखा है। मैं पीछे बिलकुल नहीं हटता। बात सिर्फ इतनी ही है कि मैं व्यवस्था समितिमें नहीं हूँ और मुझे उचित भी यही लगता है। जो भी नियम बनाये गये हैं, वे समितिने बनाये हैं। नामके चुनावमें भी मुझ अकेलेकी बात न मानी जाये। व्यवस्था समितिमें आवश्यकतासे अधिक सदस्य हैं, ऐसा मुझे नहीं लगता। मामा[1] और नरहरि[2] इस समय यहाँ आते ही नहीं। विनोबासे इस समय यह बात तय हुई है कि वे हर तीन महीनेमें यहाँ आयेंगे और कुछ समय रहेंगे। मैंने नियमोंकी एक-एक नकल मामा, नरहरि और अप्पाको[3] भेजनेका निर्देश दे दिया है।

आश्रमकी स्थापना करते समय[4] सिद्धान्तोंकी रचना हो गई थी इसीसे आप इन नियमोंमें सिद्धान्तोंका समावेश नहीं देखते। पण्डितजी[5] और छगनलाल जोशी[6] दोनों मण्डलमें रह सकते हैं। उनका आग्रह यही है कि वे इसमें न रहें। उनकी दलील मुझे मधुर लगी। वे मण्डलके बारेमें न तो निरुत्साही हैं और न उदासीन। मैं मण्डलको नितान्त आवश्यक मानता हूँ। हाँ, मेरा उद्देश्य यह अवश्य है कि मण्डलको बहुतसे नियमोंसे कदापि न जकड़ा जाये।

मैं यह मानता हूँ कि हम अभी कुटुम्बोंके मामलोंमें नहीं पड़ सकते। जो व्यक्ति आश्रममें पाँच वर्षतक रहा हो और उसके व्रतोंका पालन करनेका भारी प्रयत्न करता हो वह व्यवस्थापक बनाया जा सकता है। व्यवस्थापक मण्डलके सब विभागोंपर सबका सामान्य अधिकार है। यदि नियमोंका अर्थ जो आप करते हैं वही हो तो उनको बदलना पड़ेगा। मैंने स्कूलकी कल्पना तो आश्रमकी स्वराज्य-भोगी संस्थाके रूपमें की है। व्यवस्थापक मण्डलमें सदस्योंके अधिकारकी बात तो उठती ही नहीं। मैं तो आश्रममें रहना और अन्यत्र रहते हुए भी आश्रमका जीवन व्यतीत करना एक ही बात समझता हूँ।

१. वामन लक्ष्मण फड़के।
२. नरहरि द्वा० परीख।
३. अप्पा साहब पटवर्धन।
४. सन् १९१५ में।
५. शायद पं० नारायण मोरेश्वर खरे।
६. आश्रमकी शालाके प्रधानाध्यापक।

मैंने प्रार्थनाके बारेमें आपका मत पहले ही पढ़ लिया था, लेकिन मैंने आपको उसका उत्तर नही दिया था। समस्त विचारोंपर चर्चा की ही गई थी इसलिए मैंने समझा था कि आप इससे मेरे विचार जान गये होंगे। चर्चा सार्वजनिक रूपसे की गई थी और महादेवसे विशेष रूपसे अलग भी की गई थी। यदि आपके विचारोंसे सिद्धान्त-भेद होता तो मैं आपसे उसपर अवश्य विवाद करता।

आश्रमकी शालाके आदर्शके बारेमे आपके और मेरे विचारोमे भिन्नता है, ऐसा मैं नही मानता। आप मानते हैं, उसका कारण यह है कि मैं अनेकान्तवादी हूँ, इस बातको आप पूरी तरह नही समझ सके हैं। मेरा दृढ़ विश्वास है कि अभी हम बाहरसे विद्यार्थी लेनेके योग्य नहीं हैं और हम नित्य नये प्रयोग करते जा रहे हैं। प्रयोग करना अभीष्ट है। लेकिन उनमे हम बाहरके लोगोको वे चाहे तो भी, शामिल नहीं कर सकते। सौभाग्यकी बात तो यह है कि बाहरके लोग झट शामिल हो जायें, ऐसे भोले नही हैं। संसारके सारे लोग प्रचलित रूढिके भक्त होकर व्यवहार करते हैं; और यही ठीक भी है। हम या तो इतने ज्यादा आगे हैं या इतने पीछे हैं कि केवल थोड़ेसे ही लोग हमारा साथ दे पाते हैं। मेरे कहनेका तात्पर्य यह है कि हमारे पास शिक्षाके लिए जितना विस्तृत क्षेत्र है उतना विस्तृत क्षेत्र हिन्दुस्तानमे अन्यत्र कही नही है, क्योंकि हम विद्यार्थियोको और उनके माता-पिताओंको साथ लेकर काम करते हैं। ऐसा हो सकता है कि हम इस क्षेत्रको सँभाल न सकें; लेकिन मैं जो कहता हूँ, सत्य तो वही है। यदि बाहरके लोग आश्रमकी शालाकी तुलना अम्बालालभाईके स्कूलसे करें, तो इससे क्या होना है? हमारा दिल जो गवाही देता है, आखिर तो सत्य वही होता है। हम तो किसीका भी बहिष्कार करना नहीं चाहते। अन्त्यज तुलसीदासको तो यही स्थान दिया जा सकता है।

आपको मण्डलमे रखनेका उद्देश्य स्पष्ट है कि जब आप आश्रममें रहें तब सभीको आपकी सलाहकी आवश्यकता महसूस हो सकती है। मान भी लें कि मगनलालको यह आवश्यकता महसूस नही होती; किन्तु क्या आपको इसमे हिचकिचाना चाहिए? यदि मण्डलकी मेरी कल्पना सही है तो महादेव, किशोरलाल और मगनलाल उसका बोझ नहीं उठा सकते।

शालाका आदर्श यह है कि हम प्रयोगोंके द्वारा राष्ट्रीय शिक्षा क्या है, इसे ढूंढ़ निकालें और उसमे शिक्षक भी शिष्यके रूपमें रहें; क्योंकि वे स्वयं शोधक हैं और प्रयत्न-रत हैं। मैं आपको और अपने-आपको भी इसी पंक्तिमे रखता हूँ। आपने खादीके सम्बन्धमें जो कल्पना की है वही कल्पना शिक्षाके सम्बन्धमे भी सत्य है।

आपको जो करना है वह यह है कि आप नियमोंमें संशोधन-परिवर्धन करके भेजें। आपकी टीकाके उस भागको, जो सबको मान्य हो, नियमोंको रूप देते समय भुलाना असम्भव है। इसलिए मैं आपकी टीकाको आपके हाथों नियमोंमें समाविष्ट देखना चाहता हूँ। इससे सबको समझनेमे आसानी होगी। नही तो हम सब शास्त्रार्थ करने लग जायेंगे।

अपने स्वास्थ्यके बारेमें आपने कुछ भी नहीं लिखा। वहाँकी आबोहवाके सम्बन्धमें लिखें। शंकरने आपको बहुत पत्र लिखे; लेकिन आपने उनमें से एकका भी उत्तर नहीं दिया है; ऐसी है उसकी शिकायत। इसका कारण क्या है?

बापूके आशीर्वाद

श्रीयुत काकासाहब
यवतमाल

गुजराती पत्र (एस० एन० १९९२६) की माइक्रोफिल्मसे।

९८. पत्र: बी० आर० कोठारीको

आश्रम
साबरमती
३ जुलाई, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र[1] मिल गया। जमनालालजी इस समय यहीं हैं। मैंने इसके बारेमें उनसे बात कर ली है। उनकी राय यह है कि आपकी संस्था सामान्यत: अच्छी है। वह एक साधारण किस्मका छात्रावास है, जिसमें दलितवर्गके लगभग २५ बालकोंकी देखभाल की जाती है। मेरे मित्र इस कामके लिए मुझे जो पूंजी देते हैं, वह बहुत बड़ी नहीं है। मेरी और मेरे सहयोगियोंकी नजरमें इस प्रकारकी कई संस्थाएँ हैं और उनमें से कुछ अपेक्षाकृत अधिक अच्छा काम कर रही हैं। हम उनकी सहायता कर रहे हैं। आपकी संस्थाको १०,००० रुपये देनेका मतलब एक तरहसे उसकी इमारतका पूरा खर्च देना होगा। आपने जब अपनी योजना शुरू की थी तब आपको मेरे जरिए कोई सहायता मिलनेकी आशा नहीं थी। मुझे तो यही लगता है कि आपको स्वयं ही कोशिश करके कुछ अन्य ऐसे लोगोंकी सहायता प्राप्त करनी चाहिए जो ऐसे कामोंमें भी दिलचस्पी लेते हों। मेरे लिए यह ठीक नहीं होगा कि मैं अपने न्यासपर एक इतनी बड़ी मदका खर्च डालूं। मैं समझता हूँ कि ५,००० रुपयेकी राशि यदि इसी उद्देश्यके लिए इतनी ही जरूरतमन्द और कार्यक्षम कई संस्थाओंको दी जाये तो यह रकमका ज्यादा अच्छा उपयोग होगा। मैंने यह पत्र जमनालालजीको

[1] कोठारीने ९ मार्च, १९२६ को शोलापुर जिलेके दलितवर्गोंके लिए एक छात्रावास बनानेके लिए गांधीजी द्वारा दी गई ५,००० रुपयेकी सहायताका उल्लेख किया था और अधिक रुपयेकी सहायताका अपना अनुरोध दोहराया था। जमनालाल बजाज उनकी संस्था देखने गये थे (एस० एन० ११११०)। देखिए खण्ड ३० भी। कोठारीने २८ जूनको अपने अनुरोधकी याद दिलाते हुए गांधीजीको एक पत्र लिखा। (एस० एन० १११८८)।

दिया है। उन्हें भी दलितवर्गोंके कल्याणकी उतनी ही चिन्ता है जितनी मुझे; और वे ऐसे कामोंके लिए चन्दा जमा करनेमें मेरी सहायता करते हैं।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत वी० आर० कोठारी
पूना,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११२२७) की माइक्रोफिल्मसे।

९९. पत्र : शालिग्राम शास्त्रीको

आश्रम
साबरमती
३ जुलाई, १९२६

भाई शालिग्राम शास्त्री,

आपका पत्र मिला है। आपका तार भी मिला था। मेरा आखरका तार आपको पहुंच गया होगा। उसमें मैंने खबर दी है कि हरिहर शर्मा वापिस जाते हैं और १५ ऑगस्टके बाद आप किसी भी तारीख मुकरर करें। आपके इस वक्त नहीं आनेका कारन मैं अच्छी तरहसे समझ सकता हूं।

जो योजना पंडित हरिहर शर्माजीने स्थानिक कार्यकर्त्ताओंको मिलाकर बनाई है उसकी नकल मैं आपको भेजता हूं। उसको आप पढ़ें और यदि आवश्यक समझा जाय तो कमिटिके सामने भी रखें। और इसपर उनका अभिप्राय भी आप ले लें।

मूल पत्र (एस० एन० १९६५०) की माइक्रोफिल्मसे।

१००. गारियाधारमें खादी-कार्य

गारियाधारमें भाई शंभुशंकर परिषदकी[1] तरफसे काम कर रहे हैं। उनके कार्यका लेखा जानने योग्य है। उन्होंने गारियाधारके आसपासके ४१ गाँवोंमें ११०० कुटुम्बोंमें कपासका संग्रह करवाया और वहाँ खादी बुननेतककी सारी आवश्यक क्रियाओंकी सुविधा कर दी। कपासका संग्रह ३,००० मनके करीब हुआ। उसमें से ८०० मन कपास हाथोंकी चरखीसे ओटा ली गई। यहाँ धुनाईपर कर लगता है; परन्तु जिन धुनियोंने पूनियाँ बनानेके लिए यह रुई धुनी उनका धुनाई कर माफ कर दिया गया। इन कुटुम्बोंमें से केवल ११२ कुटुम्बोंने परिषदके प्रस्तावके अनुसार उससे मदद ली अर्थात् बुनाई और धुनाईका आधा खर्च लिया। इस खातेमें अबतक

१. काठियावाड़ राजनैतिक परिषद्।

केवल १६४ रुपये खर्च हुए हैं। इस जिलेमें अकाल-जैसी स्थिति थी, इसलिए सस्ती पूनियाँ भी काममें लाई गईं। करीब ५० कुटुम्बोंमें आठ मन पूनियाँ छः आने रतलके हिसाबसे बेची गईं। इनसे मुख्यतः स्त्रियोंके ही वस्त्र बनाये गये हैं। हिसाबके अनुसार इसमें ५० रुपयेसे अधिक नहीं लगाने पड़ेंगे। इसके अतिरिक्त अकालके ही कारण जीविका देनेकी दृष्टिसे कपासकी खरीद की गई और सूत कतवाया गया। अबतक २९५ मन कपास कार्यालयमें ही ओटी गई है। उसकी पूनियाँ बनाई गई हैं और अब उनसे सूत कतवाकर कपड़ा बुनवाया जा रहा है। कपासकी ओटाईपर ११० रुपये खर्च आया। कपासमेंसे ९३¾ मन रुई निकली और १९० मन बिनौले। सूत ४ से ८ अंकतक का काता जाता है। उसकी कताई प्रति अंक पाँच पाई दी जाती है। धुनाई और पूनियोंकी बनवाईका खर्च २¾ रु० मन दिया जाता है और बुनाईका ८ रुपया मन। खादीका अर्ज २४ से २७ इंच तक होता है। एक मन खादीकी लम्बाई ११० से ११५ गज होती है। जो खादी तैयार होती है उसे भाई शंभुशंकर अपने क्षेत्रमें ही बेचनेका प्रयत्न करते हैं। इस तरह उन्होंने सत्रह आनेकी छः हाथके हिसाबसे ९६२ गज खादी बेची है — इस हिसाबसे गजके पाँच आने हुए। एक मन सूत हर रोज बुना जाता है। इसके अतिरिक्त इस केन्द्रमें अमरेली खादी कार्यालयकी खादी भी बुनी जाती है। यह चौड़ाईमें ३० इंच होती है। इस कार्यालयका काम बहुत अच्छी तरह और थोड़े खर्चसे चलता है और उसका खास कारण भाई शम्भुशंकरका कातनेवालों, धुननेवालों और बुननेवालोंसे सम्पर्क और निकट सम्बन्ध जान पड़ता है। मेरे पास जितने खादी कार्यालयोंके आँकड़े आते हैं, मैं उन्हें छापता रहता हूँ। अभिप्राय यह है कि सब कार्यालय एक-दूसरेसे शिक्षा और शक्ति लें। उन सबमें आपसमें स्वस्थ और मीठी होड़ हो, यह सराहनीय है। यह क्षेत्र इतना बड़ा है कि इसमें हजारों सेवक अपनेको खपा दे सकते हैं और हजारों अपनी आजीविका कमा सकते हैं। जिनको इस कार्यसे प्रेम हो जाये और जो यह समझते हैं कि ग्रामीण जीवन इससे काव्यमय बन सकता है, वे इस कार्यमें पूर्ण आनन्द प्राप्त कर सकते हैं।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ४-७-१९२६

१०१. रजस्वला क्या करे?

एक विधवा बहन लिखती हैं :

> **मुझसे ऐसा कहा गया है कि रजस्वला स्त्रीको पुस्तक, कागज, पेन्सिल, स्लेट इत्यादि लिखने-पढ़नेकी वस्तुओंको नहीं छूना चाहिए, क्या इस बातको आप भी मानते हैं?**

ऐसा प्रश्न छुआछूतके कलकसे कलंकित इस अभागे देशमें ही उठ सकता है। रजस्वला स्त्रीके लिए छुआछूत सम्बन्धी कुछ ऐसे नियम हैं जिनका समर्थन आरोग्य और नीतिकी दृष्टिसे किया जा सकता है। इस अवधिमें स्त्री अधिक श्रम करनेके अयोग्य होती है। इस अवधिमें वह विकार-रहित रहे यह भी अत्यन्त आवश्यक है। सधवाके लिए पतिका संग इस समय बिलकुल त्याज्य और उसे शान्त भावसे रहना आवश्यक है। परन्तु इस समयमें उसके लिए अच्छी-अच्छी पुस्तकें पढ़ना और विद्याभ्यास करना अनुचित नहीं है; बल्कि मेरी समझमें ऐसा करना योग्य और आवश्यक है, बैठे-बैठे आरामसे करनेके और भी बहुत प्रकारके गृहकार्य सोचे जा सकते हैं, जिन्हें रजस्वला स्त्री मजेमें कर सकती है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ४-७-१९२६

१०२. गुजरात खादी प्रचारक मण्डल

गुजरात खादी प्रचारक मण्डलसे द्वितीय चैत्र मासकी जो रिपोर्ट आई है उसके अनुसार १५ कार्यालयोंमें काते गये सूतकी ३,८५४ वर्गगज खादी बुनी गई। एक कार्यालयकी मार्फत तैयार सूतकी ४१० वर्गगज खादी बुनी गई; और दस कार्यालयोंकी मार्फत ३,३४९ वर्गगज व्यापारिक खादी तैयार की गई। १५ कार्यालयोंको आधा आना प्रति बीसीके[1] हिसाबसे १,४३३ रुपयेकी मदद दी गई। ११ भण्डारोंसे ७,५८० रुपयेकी खादी बेची गई। इन कार्यालयोंमें कार्यकर्त्ताओंकी संख्या ४१ थी। पिंजारे १५, बुनकर ११७, अपने लिए कातनेवाले १७२ और मजदूरीके लिए कातनेवाले ६८३ थे। कुल ११ मासका हिसाब इस तरह है: खुद काते हुए सूतकी अपने लिए बुनवाई गई खादी ३५,०३३ वर्गगज, तैयार सूतकी खादी ७,७५६ वर्गगज और केन्द्रोंके सूतसे बुनी गई खादी २०५९५ वर्गगज। आधा आनाके हिसाबसे १०,५८४ रुपयेकी मदद दी गई। भण्डारोंमें ८०,०६३ रुपयेकी खादीकी बिक्री हुई। इस हिसाबमें काठियावाड़के कार्यालयोंका हिसाब नहीं आता। द्वितीय चैत्र मासमें मण्डलकी ओरसे १९

१. बुनाईमें तानेके तारोंको गिनती।

चरखे, ५० तकलियाँ, ३२ तकुए, १०५ रतल पूनियाँ, ४० रतल सूत, रुई पींजनेकी ६० धुनकियाँ, २९ चरखे और ५६ अटेरन बेचे गये। उपर्युक्त हिसाबमें आने पाई छोड़ दिये हैं। विदेशी वस्त्रके बहिष्कारकी दृष्टिसे यह हिसाब भले ही उपहासास्पद जान पड़े; लेकिन खादीकी स्वतन्त्र प्रगतिकी दृष्टिसे, गरीबोंकी मददकी दृष्टिसे तथा मध्यम वर्गके उन स्त्री-पुरुषोंकी दृष्टिसे जो सेवा करके ही आजीविका प्राप्त करना चाहते हैं, यह हिसाब हास्यास्पद नहीं है, आशाजनक है। जैसे-जैसे कार्य करनेकी शक्ति बढ़ती जायेगी, जैसे-जैसे आत्मविश्वास बढ़ता जायेगा, वैसे-वैसे खादीकी प्रगति तेजीसे होती चली जायेगी। यदि कोई वस्तु देश-व्यापक हो सकती है तो वह खादी ही है। जो लोग आलस्य छोड़कर विचार करेंगे वे अवश्य इसे समझ जायेंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ४-७-१९२६

१०३. पत्र: वी० ए० सुन्दरम्‌को

[साबरमती]
सोमवार [५ जुलाई, १९२६][1]

प्रिय सुन्दरम्,

तुम्हारा सुखद पत्र मिला। तो अब तुम मुझे हर सोमवारको तमिलका एक पाठ और कोई अच्छी बात लिखकर भेजोगे। तुमने जितने तमिल पाठ मुझे भेजे हैं, वे सब मैंने अलबत्ता तुम्हारी ध्यानपूर्वक तैयार की हुई व्याख्याके सहारे समझ लिये हैं।

तुम सबको प्यार। मैंने तुम्हारा प्रस्ताव देवदासको बता दिया है। लेकिन वह शायद ही आये। अब वह बिलकुल चंगा है।

तुम्हारा,
बापू

सुन्दरम्,
द्वारा श्रीमती स्टोक्स
कोटगढ़
बरास्ता शिमला

अंग्रेजी प्रति (जी० एन० ३१८२) की फोटो-नकलसे।

१. डाककी मुहरसे।

१०४. पत्र : 'हिन्दू' के सम्पादकको

आश्रम
साबरमती
५ जुलाई, १९२६

प्रिय मित्र,

यदि इसे लेखकी[1] सज्ञा दी जा सके, तो मेरा यह लेख 'हिन्दू' के लिए प्रस्तुत है।

हृदयसे आपका,

संलग्न : १

सम्पादक
'हिन्दू'
सिन्ध (हैदराबाद)

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९६५२) की माइक्रोफिल्मसे।

१०५. सन्देश : 'हिन्दू' के लिए

५ जुलाई, १९२६

भारतकी स्वतन्त्रताके लिए, जिसे मैंने एक मूलभूत सत्यके रूपमें पहचाना है, उस सत्यको बार-बार दुहराते हुए मुझे थकना नहीं चाहिए। इसलिए मैं 'हिन्दू' के पाठकोंके समक्ष चरखे और खद्दरको पेश कर रहा हूँ। मैं जानता हूँ कि सिन्धने इसकी जो घोर उपेक्षा की है वह बड़ी निराशाजनक है; परन्तु मैं यह भी जानता हूँ कि वह समय जल्दी आयेगा जब सिन्ध भी इस दिशामें सक्रिय होगा।

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९६५२) की माइक्रोफिल्मसे।

१. देखिए अगला शीर्षक।

१०६. पत्र : मणिलाल गांधीको

५ जुलाई, १९२६

चि० मणिलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारे यहाँ आनेपर तुम्हारे विवाहके प्रवन्धमे कोई असुविधा होगी, ऐसा मै नहीं मानता। लेकिन तुम्हारे यहाँ आनेसे पहिले अवश्य ही कुछ भी निश्चित नही किया जा सकता। तुम्हें यदि विवाह करना ही है तो तुम्हे अपनी खर्चीली प्रवृत्तिपर काबू पाना चाहिए। वहाँसे आनेवाले हर आदमीने इसकी शिकायत की है।

तुमने जो खुलासा भेजा है, उसे मै अधूरा ही मानता हूँ। लेकिन यह तो तुम अपनी प्रकृतिके अनुसार ही करोगे। मैं तुमपर दबाव नही डालना चाहता। तुम मुझे जितना बताओगे, मुझे उतना ही जानकर सन्तोष करना होगा।

तुम्हारी मँगाई पुस्तकें भेज दी गई हैं। उनका मूल्य तुरन्त भेजना। आश्रममे उधार-खाता नहीं रखा जा सकता, क्योंकि उसके पास उसकी कोई खानगी मिल्कियत नहीं है। यह तो बिलकुल समझमे आने लायक बात है न?

शान्ति वहाँ तुम्हें सन्तोष नही देता, मुझे यह बात तो पहली बार ही मालूम हुई है। तुम्हें डाह्यासे सन्तोष है, यह जानकर खुशी हुई।

मेरे द्वारा तैयार की गई पुराने अखबारोंकी कतरनोंकी जो फाइल वहाँ पड़ी है उसे भेज देना और उन अन्य पुस्तकोंको भी भेज देना जिनका वहाँ कोई उपयोग नहीं; या तुम उन्हें अपने साथ ले आओगे तो ठीक होगा।

देवदासका स्वास्थ्य अच्छा है। वह मसूरीकी हवा खा रहा है। रामदास अमरेलीमें हैं।

मैं हरिलालके बारेमें तो क्या लिखूँ? रामी[१] आश्रममे है।

महादेवभाईने तुम्हें कई लेख भेजे थे। तुमने उनका उपयोग नही किया लगता। खैर, यह मामूली बात है। पत्रमे क्या दे और क्या न दे, यह निश्चय करनेका पूर्ण अधिकार सम्पादकको होना ही चाहिए। लेकिन क्या सम्पादकको धन्यवादकी अथवा प्राप्ति स्वीकारकी दो पंक्तियाँ भी नहीं लिखनी चाहिए?

यहाँ आओ तो जेबमें यह नोटिस लेकर न आना कि "पन्द्रह दिनके भीतर मेरा विवाह कर दें, मुझे अगले जहाजसे आफ्रिका जाना है।"

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० १११८) की फोटो-नकल तथा जी० एन० ४७०५ से भी।
सौजन्य : सुशीलाबहन गांधी

१. हरिलाल गांधीकी पुत्री।

१०७. पत्र : तेहमीना खम्भाताको

आश्रम
साबरमती
मगलवार [६ जुलाई, १९२६][1]

प्रिय बहन,

तुम्हारा पत्र मिला। मैं इसकी बाट ही जोह रहा था। मैं जब-जब श्रीमती एडीकी[2] पुस्तक पढ़ने बैठता हूँ तब-तब मुझे भाई खम्भाता याद आते है। उनकी तन्दुरुस्ती सुधर रही है, यह जानकर मुझे बहुत खुशी हुई। जिस खुराक अथवा दवासे फायदा हो उससे ऊबना क्यों चाहिए? मैं श्रीमती एडीकी पुस्तकके बारेमें अपनी सम्मति देनेकी बात बिलकुल नही भूला हूँ। लेकिन चूँकि इसकी कोई जल्दी नही है, इस वजहसे अन्य कामोसे जितना वक्त बचता है उतना इस पुस्तकको पढ़नेमे लगाता हूँ।

बापूके आशीर्वाद

श्रीमती तेहमीना बहरामजी खम्भाता
२७५, हॉर्नबी रोड
फोर्ट
बम्बई

गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ४३६२)की नकलसे।
सौजन्य : तेहमीना खम्भाता

१. डाककी मुहरसे।

२. मैरी बेकर एडी (१८२१-१९१०), साइन्स एण्ड हैल्थ विद की टु द स्क्रिपचर्स (१८७५)की लेखिका।

१०८. सन्देश[1]

आश्रम
साबरमती
७ जुलाई, १९२६

मानव जातिके कल्याणमे भारतका सबसे बड़ा योगदान यही हो सकता है कि वह शान्तिपूर्ण और सत्यनिष्ठ साधनोसे स्वतन्त्रता प्राप्त कर ले। ऐसा कभी हो पायेगा या नही, यह कोई नही कह सकता। सचमुच ऊपरसे तो यही दिखता है कि ऐसा विश्वास फलित नही होगा। परन्तु मानव जातिके सुन्दर भविष्यमे मेरी आस्था इतनी गहरी है कि मेरे मनमें इस विश्वासके अतिरिक्त कोई अन्य विश्वास जमता ही नहीं कि भारत अन्य किसी भी साधनसे नही, केवल शान्तिपूर्ण और सत्यनिष्ठ साधनोंसे ही स्वतन्त्रता प्राप्त करेगा। इसलिए मेरी तरह ही विश्वास करनेवाले सभी लोगोंको इस परम उत्कर्षतक पहुँचनेमे भारतकी सहायता करनी चाहिए।

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९६५६ ए) की फोटो-नकलसे।

१०९. पत्र : नरगिस कैप्टनको[2]

आश्रम
साबरमती
७ जुलाई, १९२६

तुम्हारा लम्बा पत्र मिला। अदन छोड़नेके बारह घटे बाद जहाजपर जिस नवयुवकसे तुम्हारी मुलाकात हुई उसकी तुमने जो आलोचना की है, वह सही है किन्तु दुःखजनक है। अनेक शिक्षित भारतीय गोरक्षाके लिए जो इतना चीखते चिल्लाते हैं, वह झूठ है। लेकिन फिर भी वे तो हिन्दू जातिके अपार सागरमे एक बूँदके समान ही हैं और जहाँ एक ओर ये चन्द गोमास-भक्षी लोग है वहाँ दूसरी ओर ऐसे करोड़ों लोग हैं जो मर जायेगे; किन्तु गोमांसका स्पर्श भी न करेंगे। हमे उनके इस संयमकी कद्र करनी चाहिए क्योंकि हमारा उत्थान हमारे इस आत्मसंयमपर ही निर्भर है।

बेचारा यशवन्तप्रसाद अब भी बीमार है। उसे अभीतक पेटके कृमियोसे पूरी तरह छुटकारा नही मिला। वह भावनगरमें अपने हकीमका ही इलाज करा रहा है। जमना बहन भी वहीं है। मीरा बिलकुल ठीक चल रही है। और अब वह जर्मन

१. यह सन्देश किसको भेजा गया था यह ज्ञात नहीं है।
२. दादाभाई नौरोजीकी पौत्री।

बहन भी आ गई है जिसकी हम राह देख रहे थे। वह भी अब यहाँके जीवनकी अभ्यस्त हो गई है। मैं बिलकुल चंगा हूँ। देवदास मसूरीमें है। तुम जानते हो कि उसने एपेन्डिक्सका ऑपरेशन कराया था। वह अब बिलकुल ठीक हो गया है। तुम्हें अब यहाँ पूर्णतया स्वास्थ्य लाभ करके ही लौटना चाहिए।

तुमने श्री बहादुरजीका जो सूत जाँचके लिए भेजा था[1] वह घटिया तो नहीं था। जाँच करनेपर उसका मजबूतीका अंक करीब ५० निकला। बुनाईके लिए असलमें सूतका मजबूतीका अंक ६० दरकार है। हम लोग इन दिनों कातनेकी रफ्तार तेज करनेके बजाय सूतकी मजबूती बढ़ानेपर ही सारा ध्यान लगा रहे हैं। अब यहाँ ९० अंक मजबूतीका सूत निकलने लगा है। इस महीनेके अन्ततक हम शायद कोई १०० अंक मजबूतीका सूत भी निकालनेमें कामयाब हो जायें।

तुम्हारा,

नरगिस बहन
जेनेवा

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९६५३) की माइक्रोफिल्मसे।

११०. पत्र : आ० टे० गिडवानीको

आश्रम
साबरमती
७ जुलाई, १९२६

प्रिय गिडवानी,

आशा है कि अपना नया वातावरण तुम्हें अबतक ठीक बैठ गया होगा।

तुम्हें यह जाननेमें दिलचस्पी होगी कि जिस दिन तुमने मुझे अंगूरोंकी बाबत जानकारी दी थी, मैंने उसी दिन नारणदासको पत्र[2] लिख दिया था और उसे तार देनेको कहा था। उसने तार द्वारा सूचित किया है कि वह मेरे पत्रका जवाब दे रहा है। उससे मैंने उसी क्षण यह निष्कर्ष निकाला है कि तुमने जिस भयानक बातकी आशंका व्यक्त की थी, वह सच है। बादके बाद भी अबतक उत्तर नहीं आया। इसी बीच हातमका एक तार मिला। उसने कहा कि यदि मैं उपवास न करनेका वादा करूँ, तो मुझे पूरी जानकारी दे दी जायेगी। बेचारा सीधा-सादा हातम, मानो इस तारसे ही मुझपर वह सब स्पष्ट न हो गया हो जो मैं पहलेसे जानता था। मैंने अंगूर खाना तो नारणदासका तार पाते ही बन्द कर दिया था।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९६५४) की माइक्रोफिल्मसे।

१. देखिए "पत्र : डी० एन० बहादुरजीको", १९-६-१९२६।
२. देखिए "पत्र : नारणदास आनन्दजीको", २९-६-१९२६।

१११. पत्र : वी० बी० तैयरको

आश्रम
साबरमती
७ जुलाई, १९२६

प्रिय मित्र,

'सन्ध्या वन्दना' के सम्बन्धमें आपका लेख मुझे मिल गया है। लेख दिलचस्प है, लेकिन 'यंग इंडिया' के पाठकोंके कामका नही। वे इसे समझ नही सकेंगे। 'यंग इडिया' के पाठकोंके प्रति जिस प्रार्थनाका आग्रह किया जाता है, वह हृदयकी प्रार्थना है।

मै लेख लौटा रहा हूँ। शायद आपको इसकी जरूरत पड़े। आशा करता हूँ कि चरखेके काममे आपको सफलता मिल रही होगी।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत वी० बी० तैयर
मिलिटरी अकाउँट्स
मेम्यो
(बर्मा)

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९६५५) की माइक्रोफिल्मसे।

११२. पत्र : भूपेन्द्रनारायण सेनको

आश्रम
साबरमती
७ जुलाई, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। इससे आपकी योजनाएँ कुछ ज्यादा अच्छी तरह समझमें आई। लेकिन यह बताइये कि रचनात्मक कार्यक्रमकी कुछ मदोंको अपने ही ढंगसे चलानेकी आपकी योजनाएँ खादी प्रतिष्ठान और अभय आश्रमकी योजनाओंसे किस बातमे भिन्न हैं?

मलेरियाके बारेमे मेरे पास एक ही सुझाव है कि उसका फैलना रोका जाये। रोकथामके उपायोंकी सफलता एकदम निश्चित तो नही है; लेकिन मै समझता हूँ कि यदि व्यक्ति अपना शरीर स्वच्छ रखे, रक्त-संचार ठीक बनाये रखे और जल तथा आहारकी शुद्धताके बारेमे आम परहेज रखे तो उसके लिए मलेरियासे बचे रहनेकी

सम्भावना है। आपने मुझसे मेरे स्वास्थ्यके विषयमें सब-कुछ जानना चाहा है। लेकिन बताने लायक कुछ है नहीं; फिलहाल स्वास्थ्य बिलकुल ठीक लगता है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९९५६) की माइक्रोफिल्मसे।

११३. पत्र : कुमारी कैथरीन मेयोको

आश्रम
साबरमती
७ जुलाई, १९२६

प्रिय बहन,

आपका दूसरा पत्र[1] मुझे मिल गया है। संक्षिप्त टीपें आवश्यकतानुसार संशोधित-परिवर्धित करके आपको उनसे भेज दी गई थीं। आशा है वे आपको मिल गई होंगी। यदि न मिली हों तो कृपया सूचित कीजिए। मैं समझता हूँ कि मूल प्रति अभी सुरक्षित है। न मिली हों तो लिखिए, क्योंकि जो टीपें भेजी थीं उन्हें फिर विस्तारसे लिखा गया है। इसलिए यदि अबतक आपको न मिली हों तो आप कृपया परिवर्धित प्रतिका इन्तजार कीजिए।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०७७८) की फोटो-नकलसे।

११४. पत्र : प्रभाशंकर पट्टणीको

आश्रम
साबरमती
७ जुलाई, १९२६

सुज्ञ भाईश्री,

मैंने बहुत समयसे एक अच्छे ढेढ़ बुनकरके पत्रको सँभालकर रखा है और वह इसलिए कि उसका एक अवतरण मैं आपको भेजना चाहता था। आपके स्वास्थ्यकी वर्तमान अवस्थाको ध्यानमें रखते हुए कदाचित् मेरा आपको यह लिखना उचित नहीं

१. कैथरीन मेयोने अपने २६ मईके पत्रमें लिखा था कि उनके और उनके मित्रोंके समक्ष गांधीजी द्वारा किये गये प्रवचनके विवरणकी उनकी टीपें लौटाना गांधीजीके सचिव भूल गये थे। गांधीजीने वे टीपें माँगी थीं। कुमारी मेयोने लिखा था कि वे अब या तो उनके पास संशोधित-परिवर्धित करके भेज दी जायें या फिर गांधीजी लिखें कि वे सही हैं। (एस० एन० १०७५४)

है, लेकिन चूँकि आपने राज्य-कार्य भी अभी बिलकुल छोड़ा नहीं है; इसलिए उन भाईकी पुकार आपतक पहुँचाई जा सकती है। ये भाई लिखते हैं:[१]

भावनगरमें मरे पशुओंको उठानेकी व्यवस्था है, यह तो मैं नहीं जानता। इस बारेमें पूछताछ करके जैसा उचित लगे वैसी कार्रवाई करें। राज्य एक चर्मालय स्थापित करके मृत पशुओंको ठिकाने लगानेकी व्यवस्था खुद ही क्यों नहीं करता? वस्तुतः देखा जाये तो राज्यको एक आदर्श दुग्धशाला खोलकर बच्चोंके लिए बहुत सस्ते और स्वच्छ दूधकी व्यवस्था करनी चाहिए। वह वैसी व्यवस्था क्यों नहीं करता?

सर प्रभाशंकर पट्टणी
भावनगर

गुजराती प्रति (एस० एन० १९६५७) की फोटो-नकलसे।

११५. टिप्पणियाँ

भारत सेवक समाज (सर्वेन्ट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी) को सहायता

परम माननीय श्रीनिवास शास्त्रीकी अपीलपर कुल चन्दा लगभग ५०,००० रुपये आया है।[२] यह स्मरण रहे कि संस्थाको कमसे-कम दो लाख रुपयेकी जरूरत है; इतने रुपये मिल जाये तो संस्था अपने रुके हुए कार्यको फिर शुरू कर सकती है। उसके साप्ताहिक अखबार 'सर्वेन्ट ऑफ इंडिया' को निकालते जानेमें बड़ी कठिनाई हो रही है। आशा है कि यह पूरी रकम जल्दी ही मिल जायेगी और इसमें राजनीतिक विचारोंका खयाल नहीं किया जायेगा।

त्यागकी सीमा

एक राष्ट्रीय महाविद्यालयके भूतपूर्व आचार्य जो एम० ए० भी हैं, लिखते हैं:

'आत्मत्याग'[३] शीर्षक आपका लेख पढ़कर हृदयको बड़ी चोट लगी। जिन्होंने पहले ही अपना सब-कुछ देशपर वार दिया है और जो आज भी देशपर सर्वस्व निछावर कर देनेके लिए तत्पर रहते हैं, उनसे तो आप और त्यागकी अपेक्षा करते हैं परन्तु उन चेलोंको, जो आपके अनुयायी होनेकी आड़में राष्ट्रीय आन्दोलनसे निजी फायदा उठाते हुए नहीं लजाते, आप कभी नहीं फटकारते। यदि आप कुछ ऐसे अमीर आदमियोंको जुटा लें जिनमें से प्रत्येक

१. पत्र यहाँ नहीं दिया गया है। इसमें पत्रलेखकने एक ऐसे व्यक्तिके बारेमें, जिसे भावनगर राज्यने मृत पशुओंको उठानेका एकाधिकार प्रदान किया हुआ था, शिकायत की थी कि वह पशुओंकी अन्धाधुन्ध हत्या करने या करवानेका प्रयत्न करता है।

२. देखिए "भारत सेवक समाज सहायता-कोष", २४-६-१९२६।

३. देखिए "आत्मत्याग", २४-६-१९२६।

कमसे-कम छः सच्चे ग्राम संगठनका कार्य करनेवालोंका खर्चा उठानेका वादा करे तो यह ज्यादा बड़ी देश-सेवा होगी।

पत्र बहुत लम्बा था, पर उसमें से मैंने यह छोटा-सा ही अंश लिया है। मैं तो यह मानता हूँ कि त्यागकी कोई सीमा नहीं होती। त्याग यदि सोच-विचार और हिसाब लगाकर सौदेकी भांति किया जाये तो वह त्याग नहीं होता। लोगोंने दूसरे देशोंमें स्वतन्त्रताकी रक्षा या प्राप्तिके लिए जैसे त्याग किये है, उनसे अधिक तो मैंने कुछ नही मांगा। हमारे देशमें भी ऐसे अपूर्व आत्मत्यागके अगणित उदाहरण है। त्याग विश्वाससे होता है; हमारे देशवासियोमे आज विश्वासका अभाव है।

प्रपंची चेलोंसे मै क्या त्यागनेको कहूँ? उनसे तो कोई आशा ही नहीं है। ससारका यही नियम है कि त्यागी ही त्याग करते है; और किसीके दबाव या कहने-सुननेमे नहीं, बल्कि स्वेच्छासे। उनको तो त्याग करने में ही आनन्द आता है। सब-कुछ त्यागकर चुकनेपर भी उनको यही पछतावा रहता है कि हाय, हम अधिक त्याग नही कर सके।

मुझे अभीतक तो एक भी ऐसा उदाहरण नही मिला कि कोई सच्चा, मेहनती और बुद्धिमान कार्यकर्त्ता कामके अभावमे भूखों मर रहा हो। कठिनाई तो तब उत्पन्न होती है जब कोई कार्यकर्त्ता शर्तें रखता है अथवा उसकी आवयश्यकताएँ ऐसी होती है कि यदि वह रीति-रिवाजोंकी परवाह न करे और भावुकताके वशीभूत न हो तो उन आवश्यकताओंका सवाल ही न उठे। और देशमें सामाजिक आन्दोलन तो थोड़ेसे अमीर देशभक्त ही चला रहे हैं। मेरा निजी अनुभव है कि यदि सच्चे और योग्य आदमी किसी अच्छे कामको लेते है तो रुपया भी आ ही जाता है। दिन-प्रतिदिन गाँवोंमें कार्य करनेवाले नौजवानोंकी संख्या बढ़ रही है; फिर भी अभी इससे दसगुने कार्यकर्त्ताओंकी आवश्यकता है। काम और रुपयेकी कोई कमी नहीं है। हाँ, कमी ऐसे कार्यकर्त्ताओंकी है जो देशकी दशाके अनुसार अपने गुजारेके लिए थोड़ा वेतन लेकर सेवा कर सके। मेरी देखभालमे ही खादी, अछूतोद्धार, राष्ट्रीय शिक्षा, गो-पालन और चमड़ा पकाने इत्यादिके कई काम होते हैं। बहुतसे कार्यकर्त्ता तो उन्हींमे लग सकते है।

कुएँसे निकलकर

मद्रास सरकारने प्रारम्भिक शालाओंमे सूत कातनेसे सम्बन्धित नियमोंका मसविदा प्रकाशित कर दिया है। इससे जाहिर हो जाता है कि जहाँ सरकार लोकमतकी उपेक्षा कर सकती है वहाँ उत्तरदायी शासनमे भी क्या-क्या नही हो सकता। जो सरकार एक तरहसे जमींदारोके मतोपर निर्भर हो वह अपने मतहीन किसानोंकी माँगके साथ न्याय कैसे कर सकती है? उत्तरदायी शासन जब नाममात्रके लिए उत्तरदायी हो तब परिस्थिति बिलकुल निरंकुश सरकारके शासनसे भी बदतर हो जाती है। निरंकुश सरकार किसी वर्ग विशेषके मतोंपर निर्भर नही होती, इसलिए वह सबके साथ निष्पक्ष बरताव कर सकती है, किन्तु उत्तरदायी सरकारमे इतनी हिम्मत नही होती।

नियमोंका यह मसविदा बनाया तो शिक्षा-मन्त्रीने ही है; क्योंकि वह लोगोंके प्रति अर्थात् गिने-चुने मतदाताओंके प्रति उत्तरदायी माना जाता है। किन्तु चूँकि उसे प्रत्यक्षतः गाँवोंकी दशाका कोई ज्ञान नहीं है, इसलिए वह समझता है कि प्रारम्भिक शालाओंमें सूत कताई सिखाना अनावश्यक है। इसलिए सूत कातनेपर स्पष्ट प्रतिबन्ध लगानेके बजाय वह इस प्रकारका निर्णय देकर अड़ंगा लगाना चाहता है "सार्वजनिक शिक्षा-विभागके निदेशकसे पहले मंजूरी लिये बिना चौथे दर्जेसे नीचेके दर्जोंमें कोई क्रियात्मक शिक्षा शुरू न की जाये" क्रियात्मक शिक्षा "सामान्यतः उस क्षेत्र या उन छात्रोंके वर्गसे सम्बद्ध मुख्य धन्धे अथवा उद्योगसे सम्बन्धित होनी चाहिये" और "जबतक बुनाईकी व्यवस्था न हो तबतक ऐसी किसी संस्थामें सूत कातना एक विषयके रूपमें न रखा जाये।" यह अन्तिम शर्त किसी भी मामूली प्रारम्भिक शालामें सूतकी कताई रोकनेके लिए काफी है। क्योंकि मुश्किलसे ही कोई प्रारम्भिक शाला ऐसी होगी जो बुनाई-शिक्षकका खर्च उठा सके और जिसमें करघा लगाने लायक काफी जगह हो। असलमें अनुभवसे यह देखा गया है कि मामूली स्कूलके लिए चरखा भी महँगा पड़ता है और उसमें चरखा रखने लायक जगह भी नहीं होती। इसलिए अखिल भारतीय चरखा संघ सब शालाओंके शिक्षकोंको और नगरपालिका परिषदोंको यह सलाह दे रहा है कि वे अपनी शालाओंमें तकली शुरू करें। तकली सस्ती और सुविधाजनक होती है, उसको रखनेमें कोई जगह नहीं घिरती और वह आसानीसे खराब भी नहीं होती। यह बात आश्चर्यजनक भी है कि शिक्षामन्त्री और उसके सलाहकार यह अनुभव नहीं करते कि सूत कताईको दूसरे धन्धोंके स्तरपर रखकर नहीं देखा जा सकता और न उसे इस तरह देखा ही जाना चाहिए। जैसे कि श्री चक्रवर्ती राजगोपाला-चारीने मद्रास अहातेके स्थानीय निकायोंसे अनुरोध करते हुए कहा है, यह प्रधानतः एक सार्वजनिक राष्ट्रीय धन्धा है जिसे मृतप्राय हो जानेके कारण पुनर्जीवित करके लोगोंमें प्रचलित करना आवश्यक है। जो धन्धे चल रहे हैं, प्रारम्भिक शालाओंमें उनकी शिक्षा देना वक्त और रुपयेकी बेकार बरबादी करना होगा क्योंकि बच्चे उन उद्योगोंको उन शिक्षकोंसे, जिन्हें उनका सैद्धान्तिक ज्ञान है और जो उनकी तरफसे उदासीन हैं, सीखनेके बजाय अपने माँ-बापसे ज्यादा अच्छी तरह और जल्दी सीख सकते हैं। इसलिए मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि चित्तूर जिलेकी शिक्षा परिषदने इस मसविदेको नामंजूर कर दिया है। मैं आशा करता हूँ कि दूसरे स्थानीय निकाय भी ऐसा ही करेंगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ८-७-१९२६

११६. मनुष्यतासे पहले पशुता

२४ जूनके 'यंग इंडिया' में 'स्वाभाविक किसे कहेंगे?' शीर्षकसे जो लेख[1] प्रकाशित हुआ है, उसके सम्बन्धमें एक डाक्टर महोदय लिखते हैं:

> भीड़का रूप धारण करनेपर ही लोगोंकी हिंसात्मक प्रवृत्ति उमड़ उठती है। ऐसी अवस्थामें हिंसाका उपयोग बन्द करना एक तो लगभग असम्भव है, दूसरे मैं समझता हूँ कि इसे रोकनेका प्रयत्न पूरी तरहसे वांछनीय भी नहीं है। निश्चय ही यह मनुष्यकी प्रकृतिके विरुद्ध है। मनुष्य पहले तो पशु ही है, मनुष्यता उसमें बादमें आती है। आस्ट्रेलिया वासियोंके जंगली पूर्वजोंका ही उदाहरण लीजिए। कला, साहित्य, इत्यादिसे उनका कोई सम्बन्ध नहीं था। आदमी प्रारम्भमें जानवरोंको मारकर खाता और संकेतोंसे बातचीत करता था। हममें अभीतक पशुता भरी है; हमने नैतिक आचरणकी तो केवल एक झीनी-सी चदरिया ओढ़-भर रखी है। परमात्माकी खोज और प्राप्ति आदमीके लिए कोई स्वाभाविक बात नहीं है। उसके लिए परमात्माकी आराधना तो और भी कम स्वाभाविक है। यदि कोई व्यक्ति ऐसे वातावरणमें पाला जाये कि धर्म, ज्ञान या ईश्वर विषयक किसी बातकी भनक उसके कानमें न पड़े तो ईश्वरकी आराधनाका ध्यान आना उसके लिए अस्वाभाविक ही होगा। संसारमें लाखों और करोड़ों शिक्षित मनुष्य कभी किसी मन्दिर, गिरजा या मस्जिदमें कदमतक नहीं रखते। ईश्वराराधना तो एक डाली हुई आदत ही होती है। बुराई, भलाई, नीति-अनीतिका परमात्मासे कोई सम्बन्ध नहीं है। नीतिकी आवश्यकता तो समाज और संगठित जीवनके लिए पड़ती है; उमंगमें आकर परमात्मा थोड़े ही नीतिसे रहनेकी आज्ञा भेज देता है। परमात्माने मनुष्यको नहीं बनाया। मनुष्यने परमात्माको बनाया है। यदि आप अपनेको बन्दरका वंशज मान लें तो इससे आपके नीतिशास्त्रपर क्या असर पड़ता है। खाना-पीना और विषय-भोग करना तो मनुष्यके लिए बिलकुल स्वाभाविक ही है। हाँ, इन सबकी सीमा अवश्य है परन्तु वह सब सीमाएँ कुछ शरीर-रक्षा और स्वास्थ्यके कारण और कुछ रीति-रस्मके कारण रूढ़ हो गई हैं। विषय-भोगसे बिलकुल मुँह फेर लेनेका उपदेश कैसे दिया जा सकता है? आप यह क्यों नहीं सोचते कि विषय-भोगसे हमारा मन तभी विमुख हो सकता है जब हमारी इच्छाएँ पूरी तरह तृप्त हो जायें। आप कहते हैं कि मनुष्य प्रकृतिसे अहिंसात्मक है, हिंसात्मक नहीं। परन्तु यदि आपका ब्रिटिश मालका बहिष्कार ही सफल हो जाता तो

१. देखिए खण्ड ३०, पृष्ठ ६१५–१७।

आपने इंग्लैंडके मजदूरोंके प्रति कितनी बड़ी हिंसा की होती? किसीका सर लट्ठसे फोड़ डालना ही तो हिंसा नहीं है; उसको भूखों मारना भी तो हिंसा ही है। आपकी 'आत्मशक्ति' अथवा 'प्रेमशक्ति' केवल मनके लड्डू हैं। अहिंसा सभ्यताका तकाजा है; मनुष्यकी प्रकृति नहीं।

मैंने डाक्टर साहबके पत्रको संक्षिप्त कर लिया है। जिस पूर्ण विश्वाससे उन्होंने लिखा है, उसे देखकर मेरे तो होश उड़े जा रहे हैं। परन्तु हमारे डाक्टर महोदय जिन्होंने विलायतमें शिक्षा पाई है और जो लगता है बहुत दिनोंसे डाक्टरी कर रहे हैं वही बातें कहते हैं जो कि प्रायः पढ़े-लिखे लोग सोचते और कहा करते हैं। फिर भी उनकी बातें मेरी समझमें नहीं आतीं। आइये! उनके तर्कको जरा कसौटीपर कसें। वह कहते हैं कि जनता अहिंसा नही सीख सकती। हम देखते हैं कि ससारके रोजके सारे कार्य लोग इस तरह मिलजुल कर करते है मानो यह उनका सहज स्वभाव हो। अगर मनुष्य प्रकृतिसे ही हिंसात्मक हो तो संसार क्षणभरमे ही नष्ट हो जाये। पुलिस या और किसी दबावके बिना ही लोग शान्तिपूर्वक रहते हैं। जव बुरे लोग जनतामें आकर अस्वाभाविक विचार फैलाकर उसका दिमाग खराब कर देते हैं तभी जनता हिंसाकी तरफ मुड़ती है, अन्यथा नहीं। परन्तु फिर भी सारी हिंसा कर-करा कर लोग हिंसावृत्तिको भूल जाते हैं और अपने प्राकृतिक शान्त भावसे काममे लग जाते हैं। जबतक बुरे लोग उन्हें उकसाते रहते हैं तभीतक उनमे हिंसाका भाव जाग्रत रहता है।

अभीतक तो हमने यही सीखा है कि किसी प्राणीके जातिभेदका आधार दूसरोंसे भिन्न केवल उसके गुणोंपर रहता है। इसलिए यदि हम यह कहे कि घोड़ा पहले 'पशु' है और फिर 'घोड़ा' तो यह ठीक न होगा। यह तो ठीक है कि घोड़ेमे और अन्य पशुओंमे कुछ समानता है; परन्तु घोड़ा अपने 'घोड़ेपन' को छोड़कर पशु भी नहीं रह सकता। अपनी विशेषता छूट जानेपर वह अपनी पशुपनकी सामान्य अवस्थाको भी स्थिर नहीं रख सकता। इसी प्रकार यदि मनुष्य अपनी मानवताको छोड़ दे, पूँछ लगा ले, चारों हाथ-पैरोंसे चलने लग जाये और अपने हाथो और अपनी बुद्धिको प्रयोगमे न लाये तो वह केवल मनुष्य कहलानेके अधिकारसे ही नही पशु कहलानेके अधिकारसे भी वंचित हो जायेगा। बैल, गाय, भेड़ या बकरी, किसी भी प्राणि-समुदायमें वह सम्मिलित नहीं हो सकेगा। इसलिए मैं डाक्टर साहवसे कहता हूँ कि मनुष्य उसी समयतक पशु कहला सकता है जबतक उसमे मनुष्यके लक्षण हैं।

आस्ट्रेलियाके जंगली लोगोंका उदाहरण भी यहाँ ठीक नही बैठता। पशु, पशु ही है; और जंगली होनेपर भी मनुष्य, मनुष्य है। जंगली मनुष्यमे उन सव सद्गुणोके विकासकी सम्भावना है जो मनुष्यमे होते हैं परन्तु पशुमे उन गुणोका विकास सम्भव नहीं है। और फिर आस्ट्रेलियाके जंगलियोके उदाहरणकी आवश्यकता ही क्या है। इस बातसे कोई भी असहमत नहीं होगा कि हमारे भारतीय पूर्वज स्वयं आस्ट्रेलियाके जंगलियोंसे कुछ अधिक अच्छे नही थे। मैं डाक्टर साहवकी यह बात अक्षरशः मान लेता हूँ कि सभ्य पुकारे जानेवाले राष्ट्रोंमे भी अभीतक लोग जंगलियोंकी तरह ही

बरताव करते है। डाक्टर साहब भी यह तो मानते हैं कि यद्यपि हमारे पुरखा जंगली थे परन्तु कमसे-कम हम सभ्य लोग तो पशु सृष्टिसे भिन्न ही रखे जायेगे। पशुका पाशविक व्यवहार करना स्वाभाविक है परन्तु हम तो इस विशेषणको अवश्य पसन्द नही करेंगे।

डाक्टर साहब क्षमा माँगकर बहुत हिचकते हुए मुझसे कहते हैं कि 'यदि मैं बन्दरसे अपना दूरका सम्बन्ध मान लूँ तो इससे मेरे नीतिशास्त्रपर क्या असर पड़ता है?' मैं जिस नीतिपर चलता हूँ वह नीति वानर ही नही, घोड़ा और भेड, शेर, चीता, साँप और बिच्छू सबसे नाता और सम्बन्ध रखनेकी मुझे इजाजत ही नही देती बल्कि वह मुझसे ऐसी अपेक्षा भी करती है—मेरे ये नातेदार मुझे अपना सम्बन्धी समझे चाहे, न समझे। नीतिके जिन कठिन सिद्धान्तोको मै स्वय मानता हूँ तथा जिनको मानना मैं हर व्यक्तिका कर्त्तव्य समझता हूँ उनके अनुसार एकतरफा नातेदारी निबाहनेका यह अनिवार्य धर्म है। यही सब हमारा कर्त्तव्य इसीलिए है कि केवल मनुष्य ही परमात्माके स्वरूपका बनाया गया है। हममे से बहुतसे अपने इस स्वरूपको चाहे न पहचाने तो भी इससे इसके अतिरिक्त और कोई अन्तर नही पड़ता कि तब हम उस लाभको उठानेमे समर्थ नही हो सकेगे जो हमे अपना वास्तविक स्वरूप पहचाननेसे हो सकता है। जिस प्रकार भेड़ोंमे पला हुआ शेर यदि भूलकर अपना स्वरूप न पहचाने तो उसे अपने शेर होनेका लाभ भी नही मिल सकता। किन्तु वह है तो शेर ही और जिस क्षण वह अपना स्वरूप पहचान लेता है उसी क्षण वह भेड़ोका राजा हो जाता है। कोई भेड़ कितना भी प्रयत्न करे वह शेर कभी नही हो सकती। यह साबित करनेके लिए कि मनुष्य परमात्माके स्वरूपके अनुसार बना है इस बातकी आवश्यकता नही है कि हर मनुष्यमे हम परमात्माका स्वरूप दिखा दे। यदि हम एकमे भी परमात्माका स्वरूप दिखा दे तो हमारी बात सिद्ध हो जाती है। और क्या इस बातसे कोई इनकार करेगा कि जो-जो धार्मिक गुरु व नेता हुए हैं उनमे परमात्माका स्वरूप नही था?

परन्तु हाँ, हमारे डाक्टर साहब तो यह कहते हैं कि मनुष्यके लिए परमात्माका ज्ञान अथवा परमात्माकी प्राप्ति अस्वाभाविक है और इसीलिए वह कहते हैं कि मनुष्यने अपने स्वरूपके अनुसार परमात्माको बनाया है। इसके उत्तरमे मैं इतना ही कह सकता हूँ कि अभीतक संसारके परिव्राजकोंकी साक्षी इसके विरुद्ध है। प्रतिदिन यही बात अधिकाधिक स्पष्ट होती जा रही है कि चाहे जितने असंस्कृत ढंगकी क्यों न हो, ईश्वराराधना ही मनुष्यको पशुसे अलग करती है। इसी गुणके कारण वह परमात्माकी सृष्टिमे राज्य करता है। करोड़ों मनुष्योंके मन्दिर, गिरजा और मस्जिदमे कभी कदम न रखनेसे इसमे कोई अन्तर नही पड़ता। ईश्वराराधनाके लिए वहाँ जाना न स्वाभाविक ही है, न आवश्यक। भूत-प्रेत और पत्थर पूजनेवाले भी अपनेसे महान् किसी शक्ति ही की पूजा करते है। आराधनाका यह ढग बेढंगा और बुरा होनेपर भी है ईश्वराराधना ही। मिट्टीसे ढँका हुआ सोना, सोना ही है। तपकर और साफ होकर वह चमक उठता है और फिर अज्ञानी भी उसे सोनेके रूपमें पहचान लेता

है। परन्तु लोहा, कितना ही तपाइये और साफ कीजिए सोना नही बन सकता। निस्सन्देह ईश्वराराधनाके सुन्दर ढंग मनुष्यके प्रयत्नोंके फल है। असंस्कृत ईश्वराराधना आदमके समयसे चली आती है; वह कमसे-कम उतना स्वाभाविक तो है जितना रोटी खाना या पानी पीना। बिना खाये तो मनुष्य काफी दिनों जीवित रह जाता है परन्तु ईश्वराराधना किये बिना वह एक पल भी जीवित नही रह सकता। इस तथ्यको चाहे वह न माने; किन्तु इसे न मानना वैसा ही होगा जैसा कि किसी बेसमझ व्यक्तिका अपने शरीरमें फेफड़ोंके अस्तित्व अथवा रक्तके प्रवाहको न मानना।

डाक्टर साहब विषयभोग और खाने-पीनेकी आवश्यकताओंको एक ही श्रेणीमे रखते हैं। यदि उन्होंने मेरा लेख ध्यानसे पढ़ा होता तो वह उसके उल्लेखके समय ऐसे भ्रममें न पड़ते। मैंने जो-कुछ कहा था उसे अब मैं फिर दुहराता हूँ। मैंने कहा था कि केवल स्वाद या आनन्दके लिए खाना मनुष्यके लिए स्वाभाविक नही है। जीवित रहनेके लिए खाना स्वाभाविक है। इसी प्रकार विषयभोग भी आनन्दके लिए नहीं, केवल सन्तानोत्पत्तिके लिए ही स्वाभाविक है।

मैं तो मरते दमतक विषयभोगसे दूर रहनेका ही प्रचार करूँगा। यह पहले डाक्टर साहब हैं जो कहते है कि विषयभोगसे तबतक प्रवृत्ति नही हट सकती 'जब-तक हमारी इच्छायें पूरी तरह तृप्त न हो जायें।' अन्य डाक्टरोंने तो मुझे यही बताया है कि विषयभोग द्वारा इच्छाओंको तृप्त करनेके प्रयत्नसे उसकी लालसा तो नहीं जाती उलटे सर्वनाशक नपुंसकता आ जाती है। विषयभोगसे विमुखता उत्पन्न करनेके लिए प्रयत्न तो बहुत लगता है; परन्तु फिर लाभ भी तो बहुत मिलता है। यदि विज्ञान आदिकी खोजमे, जिससे हमे केवल प्रत्यक्ष संसारका ज्ञान होता है, हम अपना जीवन बिता सकते हैं तो फिर क्या हम अपने जीवनकी गुत्थी सुलझानेके लिए आत्मज्ञान और ईश्वरके ज्ञानकी प्राप्तिके लिए अपना जीवन संयमित नही कर सकते।

जो आत्मनिग्रहके मार्गपर कुछ दूर चल चुका है उसे यह बतानेकी तो आव-श्यकता ही नहीं रहती कि अहिंसा (प्रेम) से, न कि हिंसा (द्वेष) से ही मनुष्यमात्र अथवा यों कहिये कि संसार संचालित है। कुछ उदाहरण देकर डाक्टर साहब यह सिद्ध करना चाहते है कि मैंने हिंसा की है। परन्तु इससे केवल उनकी मेरे कथनके बारेमें अनभिज्ञता प्रकट होती है। यह कोई जरूरी बात नही कि सब लोग मेरे लेख पढ़ते ही रहा करें; परन्तु कमसे-कम वे लोग तो पढ़ लिया करें जो मुझपर आक्षेप करनेका साहस करते हैं। मैंने केवल विदेशी कपड़ेका बहिष्कार करनेको कहा है। इस बहिष्कारके फलस्वरूप जिनका काम छूट जाये उन ब्रिटिश मजदूरोंके प्रति हिंसा कैसे हो जाती है? भारतवासी उन्हींका बनाया कपड़ा पहनते रहनेके लिए बाध्य नहीं हैं। हिंसा तो वे ही करते हैं। विदेशी कपड़ा ब्रिटिश मजदूरोंकी बात कहकर, उनकी आड़में भारतके सिर जबर्दस्ती मढ़ना हिंसा है। यदि कोई शराबी शराब पीना छोड़ दे तो क्या वह शराबकी दूकानवालेके प्रति हिंसा करना हुआ? वह तो अपना और उसका दोनोंका भला करता है। भारत भी जिस रोज विदेशी कपड़ेको काममे

लाना छोड़ देगा वह अपना और विदेशियो, दोनोंका भला करेगा। इससे विदेशी कारीगर भूखो नही मर जायेगे। उन्हे दूसरे उपयोगी धन्धे मिल जायेगे। यदि वे स्वयं ही भारतके लिए कपड़ा बनाना बन्द कर दे तो वे ससारके एक बड़े उपयोगी आन्दोलनमे सहायक बनेगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ८-७-१९२६

११७. अनीतिकी राहपर – २

ब्यूरो कहता है कि गर्भपातके प्रचलनके साथ-साथ बालहत्या, कुलके अन्दर ही व्यभिचार और अन्य कितने ही ऐसे पाप बढ़ गये हैं, प्रकृति जिन्हें बर्दाश्त नहीं कर सकती। अविवाहित अवस्थामें गर्भ स्थिर न होने देनेमें और गर्भपात करा देनेमें सब प्रकारसे सहायता पहुँचाई जाती है; फिर भी बालहत्या बहुत बढ़ गई है। सभ्य कहलानेवाले पुरुषोंके कानपर जूँ भी नहीं रेंगती और बालहत्याके अपराधी अदालतोंमें आमतौरपर 'बेकसूर' करारकर दिये जाते हैं।

ब्यूरो एक अध्याय केवल अश्लील साहित्यपर ही लिखता है। वह इसे साहित्य, नाटक और चित्र इत्यादिका जो मनुष्यके मनको आनन्द और स्वास्थ्य देनेके लिए है, अश्लील उद्देश्य साधनेके लिए एक बड़ा दुरुपयोग कहता है। जगह-जगह ऐसा साहित्य बेचा जाता है और कोने कोनेमे उसीकी चर्चा होती रहती है। बड़े-बड़े बुद्धिमान मनुष्य इस साहित्यकी तिजारत करते है और करोड़ो रुपये इस व्यापारमें लगे हुए है। और उसके प्रचारके लिए प्रयुक्त बेजोड़ तरीकोसे हमे अनुमान हो जाता है कि यह व्यापार कितना फैल चुका है। इस साहित्यका लोगोके हृदयोंपर बड़ा विषैला प्रभाव हुआ है और इस साहित्यने उनके मनमे विचारोका एक नया व्यभिचारपूर्ण संसार ही रचकर खड़ा कर दिया है।

फिर ब्यूरो श्री रुइसनका यह दर्दनाक वाक्य उद्धृत करता है:

> अश्लील और सम्भोग विषयक इस साहित्यकी बिक्रीका रहस्य इस मनोवैज्ञानिक बातमें है कि वह अनगिनत पाठकोंको अपनेमें गर्क करके उन्हें अपना गुलाम बना लेता है। इस साहित्यको पढ़नेवालोंकी नित्य बढ़ती हुई संख्यासे यह जाहिर हो जाता है कि पागलखानोंसे बाहर भी करोड़ों पागल रहते हैं। जिस प्रकार पागल अपनी एक निराली ही दुनियामें रहता है उसी प्रकार इसे पढ़नेवाले लोग अपनी कल्पनाके एक यौन संसारमें पहुँच जाते हैं। हमारी आजकी दुनियामें यह असम्भव नहीं है; क्योंकि समाचारपत्रों और किताबोंकी भरमारने हमारी चेतनाको, डब्ल्यू० जेम्सके शब्दोंमें, 'न जाने

कितने छाया-लोकोंने घेर कर रखा है,' जिसमें डूबकर हरएक अपनेको और अपने कर्त्तव्यको भूल सकता है।

यह बात कभी भुलाई नहीं जानी चाहिए कि इन सब दुष्परिणामोंका बस एक-मात्र कारण लोगोंका यह विचार ही है कि 'केवल विषयभोगके लिए विषयभोग एक मानवीय आवश्यकता है और इसके बिना पुरुष या स्त्री किसीका भी पूर्ण विकास नहीं हो सकता।' यह विचार जैसे ही मनुष्यके मनपर सवार हुआ, वह जिसको अबतक गलत मानता था उसे सही समझने लग जाता है और फिर अपनी पाशविक इच्छाओंकी उत्तेजना और उसकी पूर्तिके लिए नई-नई तरकीबोंकी उसकी खोज बढ़ती ही जाती है, उनका अन्त ही नहीं आता।

आगे चलकर ब्यूरो यह साबित करता है कि किस प्रकार दैनिक-पत्र, मासिक पत्रिकाएँ, पुस्तिकाएँ, उपन्यास, चित्र और रंगमंच इत्यादि दिन-ब-दिन लोगोंकी इस नीच प्रवृत्तिके पूरा करनेके लिए ही प्रयुक्त किये जा रहे हैं।

अभीतक तो ब्यूरोने केवल अविवाहित लोगोंकी दुर्दशा दिखाई है। आगे चलकर वह विवाहित लोगोंके भ्रष्टाचारका दिग्दर्शन कराता है। वह कहता है:

> अमीरों, किसानों और औसत दर्जेके लोगोंमें विवाह अधिकतर दिखावेके लिए या लोलुपताके कारण होते हैं। विवाह कोई अच्छी नौकरी पाने या दो जायदादोंको, विशेषकर दो जमींदारियोंको एक करनेके लिए, चले आ रहे सम्बन्धको कानूनी रूप देने, उत्पन्न सन्तानको वैध बनाने, बुढ़ापेमें या बीमारीमें देखभालके लिए एक साथी पाने आदिके उद्देश्यसे किये जाते हैं। लोग अपने पापपूर्ण जीवनसे थककर और उसकी जगह दूसरे प्रकारके यौन-जीवनको बितानेके लिए भी विवाह कर लेते हैं।

आगे चलकर ब्यूरो तथ्य और आँकड़े देकर यह दिखाता है कि ऐसे विवाहोंसे उच्छृंखलता कम होनेके बजाय और भी बढ़ जाती है। इस पतनमें वे तथाकथित वैज्ञानिक साधन और भी अधिक सहायता करते हैं जो व्यभिचारको तो नहीं, सन्तान उत्पन्न न होने देकर उसके परिणामको रोक देते हैं। मैं उन दुःखदायी अनुच्छेदोंको उद्धृत नहीं करूँगा जिसमें गत २० वर्षके अन्दर परस्त्री-गमनकी वृद्धि अथवा कचहरियों द्वारा स्वीकृत तलाकोंकी संख्याके दुगनी हो जाने जैसी बातोंका वर्णन आया है। पुरुष और स्त्रीके नैतिक स्तरोंमें समानताके सिद्धान्तानुसार स्त्रियोंको विषयभोग करनेकी स्वतन्त्रता दिये जानेके सम्बन्धमें भी मैं एक-दो शब्द ही कहूँगा। गर्भ स्थिर न होने देने अथवा गर्भपात करा देनेकी क्रियाओंमें जो कमाल हासिल कर लिया गया है उससे पुरुष अथवा स्त्री किसीको भी संयम करनेकी आवश्यकता ही नहीं रही है। तब फिर यदि लोग विवाहके नामपर हँसें तो इसमें अचम्भा ही क्या है? ब्यूरो एक जनप्रिय लेखकका यह वाक्य उद्धृत करता है:

> मेरे विचारमें विवाहकी प्रथा एक बड़ी ही जंगली और क्रूर प्रथा है। यदि कभी मनुष्यजाति बुद्धि और न्यायकी दिशामें प्रगति करेगी तो वह इस

कुप्रथाको अवश्य ही नेस्तनाबूद कर डालेगी . . . परन्तु मनुष्य इतने बुद्धू और स्त्रियाँ इतनी कायर हैं कि वह किसी ऊँचे सिद्धान्तका आग्रह ही नहीं कर सकते।

अब ब्यूरो इन दुराचरणोंके फलोंपर और उन सिद्धान्तोंपर जिनसे इन दुराचरणोंका मण्डन किया जाता है, सूक्ष्म विचार करनेके बाद कहता है:

> यह भ्रष्टाचार हमारी किस्मतको एक नई दिशामें ढकेलकर ले जा रहा है। उसका स्वरूप कैसा है? हमारा भविष्य प्रकाशमय होगा या अन्धकारमय? उन्नति होगी अथवा अवनति? वहाँ पहुँचकर हमारी आत्माको सौन्दर्यके दर्शन होंगे या कुरूपता और पशुताकी वह भयानक मूर्ति दिखाई देगी जो बलिदानपर बलिदान माँगते हुए अघाती नहीं है। यह क्रान्ति क्या वैसी कोई क्रान्ति है जो समय-समयपर देश और जातियोंके उत्थानसे पहले होती है और जिसमें उन्नतिका बीज छुपा रहता है और पीढ़ियाँ कृतज्ञ भावसे जिसे याद करती रहती हैं; अथवा यह वही क्रान्ति है जिसने आदमके हृदयमें उथल-पुथल मचा दी थी और जो जीवनके बहुमूल्य और आवश्यक सिद्धान्तोंके हृदयमें बल पकड़नेके विरुद्ध सिर उठाती है? हम जिस अनिष्टकर विद्रोहको देख रहे हैं क्या वह शान्ति और जीवनकी रक्षा करनेवाले अनुशासनके विरुद्ध ही तो नहीं है?

फिर ब्यूरो प्रचुर प्रमाणों सहित यह दिखाता है कि अबतक तो फल हर दृष्टिसे एकके बाद एक अनर्थकारक ही रहा है। लगता है इससे समूचा जीवन ही नष्ट हो जायेगा।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, ८-७-१९२६

११८. पत्र : पुरुषोत्तम रामचन्द्र लेलेको

आश्रम
साबरमती
८ जुलाई, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र[१] *मिला। मैं आपकी बात समझता हूँ और उसकी कद्र भी करता* हूँ; लेकिन आप मेरी लाचारी नहीं समझ सकते। फिलहाल मैं हताश नहीं हूँ। मुझे भरोसा है कि हालात बेहतर हो जायेंगे, लेकिन अभी इस समय तो मेरा खयाल है

१. इस पत्रमें लेलेने बताया था कि कैसे कुछ हिन्दुओंने एक बैलको तंग करनेके कारण मुसलमान लड़कोंको गालियाँ दी थीं। उनका ख्याल था कि हिन्दुओंको गोवध बन्द करनेकी माँग करनेका कोई हक नहीं है और उनके आन्दोलनको रोकनेकी जरूरत है।

कि गुस्सा निकल ही जाने दिया जाये। बहरहाल उस व्याधिके मेरे पास जो उपचार हैं, वे इस समय तो बेकार ही हैं। मै जानता हूँ कि उपद्रवियोंको मनमानी करनेका मौका मिला हुआ है और युवकोंके दिमागोंमे भी जहर काफी गहरा उतरता जा रहा है। यह सब-कुछ अनिवार्य-सा जान पड़ता है। निश्चय ही, यह न समझिए कि चूंकि मै लिखता-बोलता नही हूँ, इसलिए मै कुछ कर ही नही रहा हूँ।

आशा है कि दिल्ली आप और श्रीमती लेले दोनोंको माफिक आ गई होगी। आपने मुझे पत्र लिखा, यह खुशीकी बात है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत पुरुषोत्तम रामचन्द्र लेले
३००८, बर्न बेस्शियन रोड
दिल्ली

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११०७६) की फोटो-नकलसे।

११९. पत्र : वी० एस० श्रीनिवास शास्त्रीको

आश्रम
साबरमती
८ जुलाई, १९२६

प्रिय मित्र,

श्री अम्बालालने मेरे पत्रके[1] जवाबमे जो चेक[2] भेजा है सो साथमे भेज रहा हूँ। जमनालालजीने मुझे बताया कि वे जो-कुछ भेज सकते थे, उन्होंने आपको भेज दिया है। बिड़लाजीने अभी मुझे कोई जवाब नही दिया है। देख रहा हूँ कि रकमे धीरे-धीरे मिल रही है।

हृदयसे आपका,

संलग्न : एक पत्र और २०० रुपयेका एक चेक।

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९६५८) की माइक्रोफिल्मसे।

१. यह उपलब्ध नहीं है।

२. यह चेक शायद वही था जो अम्बालाल साराभाईने "भारत सेवक समाज सहायता-कोष" के लिए गांधीजीकी अपीलके उत्तरमें २७ जूनको भेजा था। देखिए "पत्र: वी० एस० श्रीनिवास शास्त्रीको", १६-६-१९२६।

१२०. पत्र : कृष्णदासको

आश्रम
साबरमती
८ जुलाई, १९२६

प्रिय कृष्णदास,

तुम्हारा पत्र पढ़कर मन दुःखी हो गया। आशा है कि अभी तुम जिन परेशानियोंसे घिरे हो, वे शीघ्र ही दूर हो जायेंगी; गुरुजी शीघ्र ही प्रकृतिस्थ हो जायेंगे और तुम्हारे पिता फिर अपनी खोई हुई शक्ति प्राप्त कर लेंगे। लेकिन मैं इसे बिलकुल ठीक मानता हूँ कि फिलहाल तुम्हें उन लोगोंके नजदीक ही रहना चाहिए जो बीमार हैं।

मैं चाहता हूँ कि तुम आर्थिक सहायता माँगनेके औचित्यके प्रश्नपर न जाओ। आखिर मैं ही तो ट्रस्टकी रकम बाँट रहा हूँ, और मैंने खूब सोच-विचार किये बिना राशियाँ नहीं बाँटी है। मैं जो भी मदद तुम्हें भेज पाऊँगा, उसका औचित्य ईश्वर और मानवके समक्ष सिद्ध कर दूँगा। इसलिए तुम्हें जितनी भी जरूरत पड़े मुझे बतानेमें हिचकना मत। मैं जानता हूँ कि गुरुजी मेरी इस बातका समर्थन करेंगे।

यदि कलकत्ताकी जलवायु उन्हें ज्यादा माफिक पड़ती हो तो मैं निश्चय ही उनको कलकत्ता जानेका सुझाव दूँगा। यदि स्वास्थ्य-सुधारके लिए उनका कलकत्ता रहना जरूरी ही हो तो उनको कलकत्तामें भी शान्ति मिल सकती है। यदि वे कलकत्ताके रहनेवाले न होते और वहाँ बरसों रहे न होते तो बात शायद दूसरी होती। लेकिन ज्यादा ठीक तो वे ही समझते हैं कि उन्हें कहाँ रहना चाहिए। मुझे अभीतक ऐसे किसी स्थानकी जानकारी नहीं जिसके लिए भरोसेसे कहा जाये कि वहाँ सिर्फ मुर्दार पशुके चमड़ेसे बने जूते ही मिलते हैं। हमारा कारखाना जब खुलेगा तो वह इस किस्मका पहला कारखाना होगा। मैं इसमें शीघ्रता करानेका प्रयत्न कर रहा हूँ, लेकिन माहिर कारीगरोंकी कमीसे मैं बड़ा लाचार हूँ।

जिन जर्मन बहनने १८ महीने पहले पत्र लिखा था, वे अब यहीं हैं और यहाँकी जलवायुकी लगभग अभ्यस्त हो गई हैं। वह बहुत सीधी-सादी और नेकदिल हैं। वह हर किसीसे मित्रता कर लेती हैं। श्री स्टेनली जोन्स[1] भी यहाँ एक सप्ताहके लिए ठहरे हैं। इस तरह आश्रम काफी भरा-पूरा है। कुछ नये लोग और हैं जिन्हें तुम नहीं जानते।

१. ई० स्टेनली जोन्स, अमेरिकी मिशनरी, **द क्राइस्ट ऑफ द इंडियन रोड**, आदिके लेखक।

हाँ, तुलसी मेहर आश्चर्यजनक रूपसे अच्छा काम कर रहा है।

तुम्हारा,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९६५९) की फोटो-नकलसे।

१२१. पत्र: प्रभाशंकर पट्टणीको

आश्रम
साबरमती
बृहस्पतिवार, ८ जुलाई, १९२६

मुरब्बी भाईश्री,

आपका पत्र मिला। मुझे तो थोड़े दिनोंके लिए आपके कन्धोंसे राज्यका भार उतारना था। वह अगर उतर जाये तो आपकी तबीयत बहुत जल्दी ठीक हो जाये, ऐसा मेरा ख्याल है। अब यहाँ कुछ-कुछ बरसात हुई कही जा सकती है! बादल तो हर समय छाये रहते हैं। इसलिए यदि आप बाहर निकले ही हैं तो यहाँ आपके आनेमें मुझे कोई कठिनाई नहीं दिखाई देती और फिर ध्रांगध्रा और अहमदाबादके मौसममें कोई भारी अन्तर तो होता भी नहीं है। इसलिए यदि आ सकें तो जरूर आयें। इसमें आपकी तबीयतकी कुछ जानकारी तो मुझे अवश्य ही मिलेगी और यदि आप मुझे कुछ छोटे-मोटे प्रयोग करने देंगे, जो आपको अनुकूल पड़ें, तो आहारमें ऐसे परिवर्तनके प्रयोग भी मैं करूँगा। यहाँ प्रार्थीको तो साथ नहीं लायेंगे न? लेकिन मुझे यहाँ आनेके लिए कोई शर्त थोड़े ही लगानी है? इसलिए आप यहाँ अपनी शर्तपर ही आयें; पर आयें जरूर।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजराती पत्र (जी० एन० ५८८८) की फोटो-नकलसे।

१२२. पत्र : लालचन्द जयचन्द वोराको

आश्रम
साबरमती
[८ जुलाई, १९२६][1]

भाई लालचन्द,

आपका पत्र मिला। मैं खादीके इस संक्रान्तिकालमें स्वतन्त्र लोगोंको केवल खादी भण्डारपर निर्भर रहनेका खतरा मोल लेनेकी सलाह नहीं दे सकता। उन्हें चरखा संघकी ओरसे अथवा किसी सार्वजनिक सस्थाकी ओरसे चलनेवाले भण्डारमें शामिल होकर काम करना चाहिए। इस तरह अनेक खादी प्रेमी काम कर रहे हैं।

मोहनदासके वन्देमातरम्

लालचन्द जयचन्द वोरा
सौराष्ट्र खादी भण्डार
४९, इजरा स्ट्रीट
कलकत्ता

गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ७७५२) की नकलसे।
सौजन्य : ला० ज० वोरा

१२३. पत्र : मोतीबहन चोकसीको

आश्रम
साबरमती
बृहस्पतिवार, ८ जुलाई, १९२६

चि० मोती,

तुम्हारा पत्र मिला। तुमने अपने आलसी होनेकी बात स्वीकार कर ली, मैं इससे भी थोड़ा-बहुत सन्तोष प्राप्त किये लेता हूँ। तबीयत ठीक रखनेके लिए दो बातें बहुत जरूरी हैं। नियमित निद्रा और सुपाच्य तथा परिमित आहार। पाखाना बिलकुल साफ आना चाहिए। उसके बिना इटलीकी दवाकी गोली भी काम नहीं देती, ऐसा मैंने सुना है। किन्तु यदि पाखाना बिलकुल साफ आये तो गोलीका लेना, न लेना बराबर है। उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। परन्तु गोली लेना ठीक ही है।

१. डाककी मुहरसे।

शरीर सह सके उतनी कसरत करनी चाहिए। पहले तुमने पढ़नेका जो क्रम रखा था वह अब भी चलता है या टूट गया!

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (एस० एन० १२१३०) की फोटो-नकलसे।

१२४. पत्र: जमनादास गांधीको

आश्रम
८ जुलाई, १९२६

चि० जमनादास,

तुम्हारा संक्षिप्त, खरा परन्तु डरावना पत्र मिला। लेकिन मैं तुम्हे बता चुका हूँ कि मै ऐसे पत्रकी परवाह करनेवाला नही हूँ। तुम जानते हो कि जब अन्तिम रूपसे तुमने कहा था कि मुझे छोड़ दो तो मैं तुम्हे छुट्टी देनेकी बात सोचने लगा था। लेकिन अब मैं कतई ऐसा नही करना चाहता। यदि कोई आदमी कोई जिम्मेदारी अपने ऊपर लेता है तो उसे उसको निभानेमें अपने प्राण भी दे देने चाहिए। व्यक्ति और राष्ट्र भी इसी प्रकार ऊपर उठते हैं। लड़्यानेसे दोनों बिगड़ते हैं। तुमने तो अभी-अभी एक नये आदमी अर्थात् जेठालालको रखा है सो क्या देखकर रखा है? मै तुम्हे तुम्हारी कितनी प्रतिज्ञाओकी याद दिलाऊँ? मैं तुम्हे कबतक बच्चा मानूं? मै जिस पत्रका उत्तर दे रहा हूँ, उस तरहके पत्रकी तुमसे फिर कभी अपेक्षा नहीं करता। जबतक मैं तुम्हारी बदली न करूँ तबतक तुम्हे वही दृढ़ होकर बैठना है। हम जो-कुछ चाहते हैं, इस जगत्मे वह हमे पूरा-पूरा कभी नही मिलता, लेकिन हम जिस परिस्थितिमे पड़े, हमे उस परिस्थितिको निभाना चाहिए। एक दृष्टिसे सभी अपनी-अपनी जगहके अयोग्य हैं और दूसरी दृष्टिसे जो अपने कार्यको मन लगाकर करते हैं, वे उसके लायक हैं। नालायक सिर्फ वे लोग हैं जो अपने धर्मको जानते हुए भी उसका पालन करना नही चाहते और सौंपे हुए कार्यको जान-बूझकर बिगाड़ते हैं। ऐसे नालायक तो तुम नही हो। फिर हमेशा बन्दूक ताने रहनेका क्या मतलब हो सकता है? इसलिए, तुम्हारे लिए एक ही आदेश है: चाहे कितने ही कष्ट सहने पड़े, तुम जहाँ हो तुम्हें वहीं रहना और कर्त्तव्यपरायण बनना है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (एस० एन० १९९२७) की माइक्रोफिल्मसे।

१२५. पत्र : श्रीमती आर० आर्मस्ट्रॉंग और श्रीमती पी० आर० हॉवर्डको

आश्रम
सावरमती
९ जुलाई, १९२६

प्रिय वहनो,

आपका पत्र[1] मिला। जितना आपको मालूम देता है, सत्य इतना सरल नहीं। 'हाथी और सात अन्धोंकी कथा' आप जानती हैं। सातो अन्धोने हाथीको सचमुच स्पर्श किया था। उन सातोंने अलग-अलग अंगोंको स्पर्श किया था, इसीलिए हाथीके उनके वर्णन भी एक-दूसरेसे भिन्न थे। अपनी-अपनी दृष्टिसे वे सब सही थे, और फिर भी प्रत्येक वर्णन अन्य शेष लोगोको असत्य लगता था; और सत्य उन सातोंके वर्णनसे अलग था। आप शायद मेरी इस बातसे सहमत होंगी कि हम सब पूरी तौरपर इन सात ईमानदार प्रेक्षकोंकी-सी स्थितिमे हैं। उनकी तरह अन्धे हम भी हैं। इसलिए हमे सत्यकी प्रतीति जिस रूपमें हो उसपर ही विश्वास करके सन्तुष्ट हो जाना चाहिए। आप यह तो नही चाहेगी कि मैं 'बाइबिल'की उक्तियोंकी प्रामाणिकता और व्याख्याके विषयमे कुछ चर्चा करूँ।

हृदयसे आपका,

श्रीमती रॉबर्ट आर्मस्ट्रॉंग
श्रीमती पॉल आर० हॉवर्ड
२२९३ ई० प्रोस्पेक्ट ५
किवानी, इलिनॉय
संयुक्त राज्य अमेरिका

अंग्रजी प्रति (एस० एन० १०७७९) की फोटो-नकलसे।

1. २० फरवरी १९२६ के एक पत्रमें श्रीमती आर्मस्ट्रॉंग और श्रीमती हॉवर्डने लिखा था : "चूँकि हमारा विश्वास है कि आप सत्यनिष्ठाको अच्छे आदमीका एक आवश्यक गुण मानते है, हम आपका ध्यान इस तथ्यको ओर दिलाना चाहती हैं कि ईसा मसीहने कहा था "मैं और मेरे पिता एक ही हैं (हम दोनोंमें कोई भेद नहीं) (जॉन, १० : ३०) और उन्होंने कुएँपर स्मेरिटन महिलाको बताया था कि मैं ही वह मसीह हूँ जिसकी तलाश की जा रही है" (जॉन, ४: २५-२६); इसलिए हमें ऐसा लगता है कि यदि आप किसी असत्याचरणवाले व्यक्तिको आदर्शकी तरह अपने सामने नहीं रखना चाहते, तो आप या तो ईसा मसीहको आदर्शके रूपमें स्वीकार कीजिए और उनके दावोंको सही मानिए या फिर आप उनको असत्याचरण करनेवाला पाखण्डी कहकर अपने मनसे बिलकुल निकाल दीजिए" उन्होंने अपने पत्रमें यह भी लिखा था कि वे नित्य ही ईश्वरसे प्रार्थना करती है कि वह विश्वके त्राता, ईसा मसीहको गांधीजीके सामने प्रकट कर दे और वे यह प्रार्थना तबतक करती रहेंगी जबतक कि उनको समाचारपत्रोंके माध्यमसे या स्वयं गांधीजीद्वारा पत्रके जरिए ऐसा शुभ समाचार नहीं मिल *जाता कि गांधीजीने "उस शाश्वत जीवनको"* अर्थात् ईसा मसीहको सचमुच पा लिया है। (एस० एन० १०७४३)।

१२६. पत्र : सी० विजयराघवाचारियरको

आश्रम
सावरमती
९ जुलाई, १९२६

प्रिय मित्र,

आपने मुझसे कहा है कि यदि मैं मन्दिरके बारेमे आपके सुझावका समर्थन न कर सकूँ तो आपको पत्र न लिखूँ। फिर भी मैं आपको यह लिखे बिना नहीं रह सकता कि मैंने इसके बारेमे किसीसे बातचीत नही की है। अनसूयाबाई परिवारकी एक सदस्या-जैसी हैं। वह आती है और हर बातमे मुझसे सलाह लेती है। उसने इस चीजका भी जिक्र किया था और मैंने इसके बारेमे उससे बातचीत की थी। लेकिन आपको शायद मालूम नही कि यदि वह चाहे तो भी खुद कुछ नही दे सकती और अपने भाईके लेन-देनमे वह कभी दखल नही देती।

मेरा खयाल है कि श्री मगरिजके बारेमे मैंने आपको लिखा[1] था कि वह जब भी आये, उनका स्वागत है। उनका एक पत्र भी मुझे मिला है जो अलवाईके क्रिश्चियन कालेजमे दिये गये उनके भाषणके[2] सम्बन्धमे है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०९५९) की फोटो-नकलसे।

१२७. एक पत्र[3]

आश्रम
सावरमती
९ जुलाई, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मुझे आपसे पूरी सहानुभूति है। यदि हालात वैसे ही हैं जैसे आप बताते हैं तो सचमुच दुःखकी बात है। मैं समझता हूँ कि जर्मनी जाकर अध्ययन पूरा करनेके आपके सुझावका मैं समर्थन नहीं कर सकता; हाँ, यह है कि उसके लिए रुपये-पैसेकी सहायता आपको दे सकता हूँ। जिन विद्यार्थियोंने असहयोग किया है, उन्हें केवल डाक्टरी पेशेकी या उन चीजोंकी बावत जो साधारणतया कालेजोंमे ही सीखी जाती हैं, नहीं सोचना चाहिए। यदि उन्होंने स्वतन्त्रता

१. देखिए "पत्र : सी० विजयराघवाचारियरको", १६-६-१९२६।

२. देखिए "राष्ट्रीयता और ईसाई धर्म", २२-७-१९२६।

३. पत्र किसको लिखा गया था यह ज्ञात नहीं है, लेकिन सम्भवतः यह वही छात्र है जिसका गांधीजीने "छात्र और असहयोग", १५-७-१९२६ में उल्लेख किया है।

और आत्म-निर्भरताकी सच्ची भावना अपने अन्दर पैदा कर ली है तो वे बहुतेरी ऐसी चीजें ही सीखे, जो वे अपने देशभाइयोंसे और स्कूलों तथा कालेजोंसे बाहर रहकर ही सीख सकते हैं; दूसरे शब्दोंमें कहें तो हमें अपने हाथ-पैरोंसे काम करना सीखना चाहिए। इसे हम अपने देशमें अपने ही कारीगरोंसे स्कूलों और कालेजोंसे बाहर सीख सकते हैं।

जहाँतक पशुचिकित्सा सम्बन्धी शिक्षाका सवाल है फिलहाल हम राष्ट्रीय संस्थाओंमें जो-कुछ सीख सकते हैं, उसपर ही सन्तोष करना चाहिए।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एम० एन० १९६६०) की माइक्रोफिल्मसे।

१२८. पत्र : प्यारेलाल नैयरको

आश्रम
साबरमती
शुक्रवार, ९ जुलाई, १९२६

चि० प्यारेलाल,

मैं तुम्हें पत्र लिखनेका हर रोज विचार करता हूँ, और वह काम हर रोज रह जाता है। तुमने यह तो बेशक नहीं समझा होगा कि ऐसा मेरी उदासीनताके कारण हो रहा है। मथुरादासने तुम्हें बहुत अच्छा प्रमाणपत्र दिया है, लेकिन सच्चा प्रमाणपत्र तो जो मैं तुम्हें दूँगा, वही माना जायेगा। और मैं तभी दूँगा जब मथुरादास थोड़ा सशक्त हो जाये और तुम्हारा स्वास्थ्य भी इतना सुधर जाये कि यहाँ आनेके पश्चात् मुझे तुम्हारी कोई चिन्ता न करनी पड़े। तुम जिस प्रकार गुजरातीका अंग्रेजी अनुवाद कर रहे हो, उसी प्रकार अंग्रेजी तथा गुजरातीका हिन्दी अनुवाद करो और उसे मेरे पास भेजो — यह फिलहाल केवल मेरे देखनेके विचारसे।

तुम वहाँ कितना घूमते हो? देवलाली तथा पचगनीके बाजारों और पचगनी तथा देवलालीके निवासियोंकी भी तुलना करना। पंचगनीमें चार या पाँच हाई स्कूल हैं। उन सबमें जाना और उनकी हालतको समझना। गुजराती हाई स्कूलकी स्थिति आजकल कैसी है, इस बारेमें भी पूछताछ करना। यहाँ जो नये लोग आये हैं, उनके समाचार तो मिलते ही होंगे। जर्मन बहन बहुत ही विनयशील तथा भली है। कृष्णदास इस समय प्रसन्न है। सतीश बाबू और उनके पिता दोनों काफी बीमार हैं; इसलिए यह सोचना है कि वे जहाँ रहते हैं वहीं अर्थात् चाँदपुरमें रहें या दरभंगामें। कृष्णदासको पत्र लिखना। उसका पता[1] है : द्वारा एस० सी० गुहा, दरभंगा

तुम्हारा निबन्ध मिल गया है, परन्तु मैं अभी उसे पढ़ नहीं सका हूँ।

गुजराती प्रति (एस० एन० १२१९६) की फोटो-नकलसे।

१. मूलमें पता अंग्रेजीमें है।

१२९. पत्र : कान्तिलालको

आश्रम
साबरमती
शुक्रवार, ९ जुलाई, १९२६

भाई कान्तिलाल,

तुम्हारे तीन पत्र मिले। आखिरी पत्रसे मालूम हुआ कि अबतक तुम्हारे यहाँ खूब पानी बरस चुका है। कहा जा सकता है कि यहाँ भी इस ऋतुका पहला पानी भरपूर गिर गया है और उससे दो बाढ़े भी आ गईं। तुम्हारे सम्मुख जो धर्म-संकट है उसके बारेमे मेरा मत तो यह है कि अभी तुम्हारी माँको जो दुःख हो रहा है, उसे तुम्हें अनिवार्य समझकर सहन कर लेना चाहिए। मेरा अपना अनुभव यह है कि जब कभी किसी अच्छे कार्यके सम्बन्धमे माता-पिता विरोध करते हैं तब यदि सन्तान अपने कार्यके बारेमे अत्यन्त दृढ़ और विनयी हो तो माँ-बाप विरोध करना बंद कर देते हैं। उनके विरोध और दुखमे वृद्धि तभी होती है जब संतान अपने कार्यके बारेमे अनिश्चित हो और माँ-बापका विश्वास यह हो कि अन्ततः प्रेमवश उनकी बात मान ली जायेगी। इसलिए यदि तुम्हे अपने कार्यके औचित्यके बारेमे तनिक भी शंका न हो और अपनी शक्तिमे भी उतनी ही आस्था हो तो तुम्हे अपनी माँको अपना निश्चय बता देना चाहिए और निश्चिन्त हो जाना चाहिए। यदि कुछ और पूछना हो तो पूछना।

आँकड़े आदि प्रकाशित करनेसे खादीकी प्रगति हो जायेगी, मैं यह विश्वास ही नहीं करता। मैं यह भी विश्वास नही करता कि गारियाधार-जैसी किफायत हर जगह की जा सकती है। लेकिन गारियाधारका काम जान लेने योग्य तो है। गारियाधारमे मैंने दो विशेषताएँ देखी हैं। एक तो कातने, बुनने और पींजनेवाले सभी शम्भुशंकरकी देखरेखमे काम करते हैं और दूसरी शम्भुशंकर स्वयं इन कारीगरों और उनके साथियोंको अच्छी तरह जानते हैं और उन्हें इन सबका प्रेम भी प्राप्त है। इसके लिए वे अपना बहुत-सा काम उनसे हाथों-हाथ करवा लेते हैं। यह सब अन्य सभी लोग नहीं कर सकते। हाँ, इससे वे जितना सार ग्रहण कर सकें उतना कर लें। अमरेली केन्द्रके बारेमे इतना काफी है कि वहाँ टीकाके लिए तनिक भी कारण न दिया जाये। मैं अज्ञानवश अथवा द्वेषभावसे की गई टीकाका सामना करना आसान कार्य मानता हूँ। वहाँ अभी हालमें जो खादी बिकी है वह अब्बास साहबके वहाँ जानेके कारण ही बिकी है, यह बात मैं अच्छी तरह जानता हूँ और समझता हूँ। जब लोग धर्म समझकर खादी खरीदने लगेंगे तब खादीके प्रसारमे तनिक भी समय न लगेगा। अभी तो इतना ही पर्याप्त है कि हम पूरी कार्यदक्षतासे और शक्तिभर

प्रयत्न करके खादीके उत्पादनमें वृद्धि करते जायें और उसकी किस्म सुधारते जायें। ऐसी धर्मवृत्ति भी उसीसे उत्पन्न हो सकेगी।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९६६१) की माइक्रोफिल्मसे।

१३०. पत्र : नानाभाई भट्टको

आश्रम
साबरमती
शुक्रवार, ९ जुलाई, १९२६

भाईश्री ५ नानाभाई,

मैं इसके साथ अनुवादार्थ पुस्तकोंकी सूची भेज रहा हूँ। भाई मुनिकुमार इनमें से जो पुस्तक अच्छी लगे, पसन्द कर ले। पारिश्रमिककी दर क्या है, यह तो मैं भूल ही गया हूँ। हमें एक ही दर रखनी चाहिए। उन्हें निश्चित अवधिमें अनुवाद करके हमें दे देना चाहिए। उसपर हमारा पूरा अधिकार होगा। इस पुस्तकमालाके सम्पादक काका हैं, यह तो आप जानते ही होंगे। इसलिए जब काका उसे स्वीकार कर लेंगे तभी उसका पारिश्रमिक दिया जायेगा। यदि आप इन शर्तोंमें कोई परिवर्तन कराना इष्ट समझें तो मुझे लिखें। उनमें कुछ वृद्धि करनी हो तो उससे भी अवगत करायें। अन्तिम करार भाई शंकरलाल और काकाकी सहमति लेकर करना है। इसका कारण यह है कि मैंने इस विषयकी सब बारीकियाँ नहीं समझी हैं; इसलिए मुझसे भूल होना बिलकुल सम्भव है।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९६६२) की माइक्रोफिल्मसे।

१३१. सन्देश : 'नायक' को[1]

[१० जुलाई, १९२६ या उससे पूर्व]

देशबन्धुकी स्मृतिका समादर करनेका सर्वोत्तम मार्ग यही है कि चरखा और खादीको लोकप्रिय बनायें और इस प्रकार विदेशी वस्त्रोंका बहिष्कार सम्पन्न करें।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, १२-७-१९२६

१. बॉम्बे क्रॉनिकलमें छपी फ्री प्रेसकी रिपोर्टके अनुसार यह सन्देश एक बंगाली समाचारपत्र नायकके देशबन्धु अंकके लिए भेजा गया था, जो ११ जुलाई, १९२६ को प्रकाशित हुआ था।

१३२. पत्र : वी० आर० कोठारीको

आश्रम
साबरमती
१० जुलाई, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र[1] मिला। आपकी बात मैं समझता हूँ। मैं इस पत्रके साथ जमनालालजी द्वारा भुगतानके लिए २,५०० रु०का एक चेक भेज रहा हूँ। आप कृपया वह पत्र[2] जिसका आपने वचन दिया है मुझे यथासमय भेज दें।

हृदयसे आपका,

संलग्न : १ हुण्डी
श्रीयुत वी० आर० कोठारी
शुक्रवार पेठ
पूना

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११२२९) की माइक्रोफिल्मसे।

१. कोठारीने ५ जुलाईको अपने पत्र (एस० एन० ११२२८) में समझाया था कि पहलेके ५,००० रुपयेके अनुदानके आधारपर फिर उतनी ही राशि पानेकी आशासे उन्होंने अपना खर्च फैला दिया था जिसे निबटानेमें अब कठिनाई हो रही थी। उन्होंने सुझाव दिया था कि केवल २,५०० रु० भेज दिये जायें और बाकी वे स्वयं चन्देके रूपमें इकट्ठा कर लेंगे। उन्होंने इस आश्वासनका पत्र भी भेजनेका प्रस्ताव रखा था कि पूंजीगत व्ययके लिए वे अपने न्यासियोंसे और रकम नहीं माँगेंगे (एस० एन० ११२२८ एम)।

२. कोठारीने हैरॉल्ड एच० मैन, एक न्यासीके निर्देशपर आश्वासनका यह पत्र ६ अगस्तको भेजा था। (एस० एन० ११२३२-४)।

१३३. पत्र : ए० ए० पॉलको

आश्रम
सावरमती
१० जुलाई, १९२६

प्रिय मित्र,

प्रस्तावित चीन-यात्राके विषयमें आपका पत्र[1] मिला। यदि सचमुच ही चीनको मेरी जरूरत हो और यदि सन्तोषजनक निमन्त्रण प्राप्त हो तो जहातक मनुष्य निश्चित रूपसे कह सकता है, मैं निश्चय ही अगले साल चीनकी यात्रा करूँगा। परन्तु मेरे जैसे विविध कार्य करनेवाले कार्यकर्त्ताओंके बारेमें १२ महीने बाद होनेवाली बातोंके बारेमें कुछ भी निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता। केवल इसी कारणसे मैं सावधानीके साथ जवाब दे रहा हूँ। हो सकता है कि मेरे वशसे बाहर परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जायें और मेरा भारत छोड़ना असम्भव हो जाये।

यदि वे इसी साल मुझे बुलाना चाहते हों तो अब चूंकि मैं फिनलैंड[2] नहीं गया हूँ। मेरा कुछ अधिक निश्चित जवाब दे सकना आसान होगा। लेकिन उस हालतमें कुछ ही दिनोंकी यात्रा हो सकती है। मुझे कांग्रेसके लिए समयपर लौटना जरूरी है। इसलिए मैं अपने चीनी मित्रोंको सलाह दूंगा कि वे अगले वर्ष आनेकी सम्भावनामें थोड़ी अनिश्चितताकी गुंजाइश रखकर उसे ही ठीक मानें। लेकिन इसका फैसला उन्हींको करना है।

हृदयसे आपका,

श्री ए० ए० पॉल
स्केड्वाक
किलपॉक
मद्रास

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११३७५) की फोटो-नकलसे।

१. ए० ए० पॉलने भारत, बर्मा और श्रीलंकाकी "स्टूडेंट क्रिश्चियन एसोसिएशन" की ओरसे गांधीजीको चीन यात्राके लिए आमन्त्रित करते हुए सर्वप्रथम २४ फरवरी, १९२६ को एक पत्र लिखा था (एस० एन० ११३६२)। गांधीजीने इस सम्बन्धमें उन्हें जो पत्र लिखे उनके लिए देखिए खण्ड ३०, "पत्र: ए० ए० पॉलको", ३-३-१९२६, १५-३-१९२६, ९-५-१९२६ और ३०-५-१९२६।

२. हैलसिंगफोर्समें वाई० एम० सी० ए० के विश्व सम्मेलनके सिलसिलेमें गांधीजीके जानेकी बात थी। गांधीजीने अन्तमें उसमें जानेसे इनकार कर दिया था। देखिए खण्ड ३०।

१३४. पत्र: मु० रा० जयकरको

आश्रम
साबरमती
१० जुलाई, १९२६

प्रिय श्री जयकर,

कुछ दिन पहले श्री भरुचा यहाँ आये थे और आपके बारेमें बातचीत हुई थी। जब उन्होंने बताया कि आपको कुछ ऐसा लगा है कि मैं आपको कोई महत्व नहीं देता और हमेशा आपके प्रति उदासीन रहता हूँ, तो मुझे आश्चर्य हुआ। उन्होंने मुझे आपसे इस बातका उल्लेख करनेकी अनुमति भी दे दी थी। मुझे तो ऐसा कोई मौका याद नहीं आता जब मैं या तो आपके या आपके कामके प्रति उदासीन रहा होऊँ या मैंने उसपर ध्यान न दिया हो। इसके विपरीत जबसे मुझे आपको जाननेका सौभाग्य मिला, मैंने आपकी महान योग्यता, खरे चरित्र और आपकी देशभक्ति तथा सज्जनताको सराहा है। मेरी दृष्टिमें आपका जो दर्जा रहा है उसमें हमारे मतभेदोंके कारण कोई फर्क नहीं पड़ा। इसलिए अपने मनसे इस तरहकी हर भावना निकाल दीजिये — जैसी कि श्री भरुचा बताते हैं कि आपने उनसे व्यक्त की थी। मैं यह पत्र श्री भरुचाके जानेके बाद तुरन्त ही लिखना चाहता था परन्तु मेरी व्यस्तताके कारण यह काम रुका रहा।

आशा है, आप स्वस्थ होंगे। समाचारपत्रोंमें आपके बारेमें समाचार है कि आपको न्यायाधीशका पद ग्रहण करनेका प्रस्ताव था और आपने इन्कार कर दिया। यदि यह सच है तो यही तो मैं . . .![1]

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९६६३) की फोटो-नकलसे।

१३५. पत्र: गोपालदास मकनदासको

आश्रम
१० जुलाई, १९२६

आपका पत्र मिला। मुझे तो लगता है कि मूर्तिकी प्रतिष्ठा किसी दूसरे स्थान-पर की जानी चाहिए। उत्तर देनेमें विलम्ब हुआ, इसके लिए क्षमा करें।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजराती पत्र (एस० एन० १०९१४) की माइक्रोफिल्मसे।

१. इसके बादका अंश उपलब्ध नहीं है।

१३६. कातनेका अर्थ

एक महाशयने कताईकी दृष्टिसे सदोष, मैला और खराब अटेरा हुआ सूत भेजा है। उन्होंने उसकी लम्बाईका माप भी स्वयं नहीं निकाला है और लिखा है:

> आपने चरखा संघमें बहुतसे यज्ञार्थ सूत कातनेवालोंकी माँग की है; इसलिए मैं भी सूत कातना चाहता हूँ। मैं अपना सूत भेज रहा हूँ। यह कितने गज है, लिखें। कम होगा तो और भेजकर पूरा कर दूँगा। यहाँ पूनियाँ मिलनेमें बड़ी मुश्किल पड़ती है। क्या पूनियाँ आप भेजेंगे?

मान लीजिये कि हमारे इस मुल्कमें लोगोंने रोटियाँ बनाकर खाना बन्द कर दिया हो और जापानसे छोटी-छोटी अनेक सुन्दर आकृतियोंकी, रंग-बिरंगी कलापूर्ण और मुलायम रोटियाँ मँगाकर खाने लगे हों और मान लीजिए कि मुझ-जैसा कोई दूरदर्शी इसमें हिन्दुस्तानका नाश ही देख रहा हो और चूँकि हम सब रोटियाँ बेलना, बनाना और पकाना भूल गये हों, वह इस बुराईको मिटानेके लिए रोटी बनानेको यज्ञ बताये और हम सबमें इस यज्ञके लिए रोटियाँ माँगे और कोई भारत-सेवक देशके हितकी आकांक्षासे प्रेरित होकर किसीसे आटेकी लोई माँग लाये और फिर उसकी तिकोनी कच्ची-पक्की और कुछ जली हुई तथा कुछ कच्ची होनेके कारण रास्तेमें फफूँदी हुई रोटियाँ भेजे और उसके साथ पत्र लिखे, 'आपके रोटी-यज्ञके आह्वानपर मैंने भी उसमें अपना हिस्सा देनेका निश्चय किया है। आज कुछ रोटियाँ भेज रहा हूँ। उनकी तोल निकालकर मुझे लिखें। कम होगी तो पूरी कर दूँगा। यहाँ आटेकी लोइयोंकी व्यवस्था नहीं है। क्या आप मुझे लोइयाँ नहीं भेज सकेंगे?' यदि कोई रोटी-यज्ञार्थी यह लिखे तो रोटी-शास्त्रको जाननेवाले सब इस यज्ञार्थीके यज्ञपर हँसेंगे और कहेंगे कि इस भाईको भारतके प्रति प्रेम तो है; परन्तु उसे उस प्रेमको कार्यरूपमें व्यक्त करनेकी युक्ति ज्ञात नहीं है। मैंने रोटी-यज्ञके सम्बन्धमें जो यह लिखा है उसका औचित्य तो सभी स्वीकार करेंगे। परन्तु इसको सब शीघ्र स्वीकार नहीं करेंगे कि चरखेके यज्ञार्थी भाईने जो काम किया है वह ठीक इस काल्पनिक रोटी-यज्ञार्थीके समान ही है। यह दीर्घकालीन स्वभावसे उद्भूत अज्ञानका चिह्न है। हम चरखेके विषयमें सब-कुछ भूल गये हैं और जैसे हम रोटी बनानेकी कला भूल जायें तो भूखों मरेंगे, यह फौरन सबकी समझमें आ जाता है, वैसे ही चरखेके अभावमें हम आज भूखों मर रहे हैं, यह बात आसानीसे सबकी समझमें नहीं आती।

सच बात तो यह है, कातनेका अर्थ यह नहीं है कि किसी भी तरह चलते-फिरते खेल करते हुए जब चाहा तब सूतके मोटो-झोटे कुछ धागे निकाल लिये जायें। कातनेका अर्थ तो यह है कि कातनेके पहलेकी सब आवश्यक क्रियाएँ सीख ली जायें और स्वस्थचित्त होकर अच्छा एकसार सूत नियमपूर्वक आसनबद्ध होकर काता जाये। कते सूतपर पानीके छींटे मारना चाहिए। उसकी लम्बाई मालूम करनी चाहिए,

उसका वजन मालूम करना चाहिए, उसकी अच्छी लच्छियाँ बनानी चाहिए, और यदि कहीं भेजना हो तो उसे अच्छी तरह बाँधकर उसपर कपासकी किस्म, सूतका अंक, लम्बाई और वजनकी चिट लगा देनी चाहिए और यज्ञकर्त्ताका नाम-पता आदि अच्छे सुवाच्य अक्षरोंमें एक पुर्जेपर लिखकर उसके साथ बाँध देना चाहिए। इतना करनेपर उस दिनका चरखा-यज्ञ पूरा हुआ माना जा सकेगा। कातनेके पहिले कपास ओटना और धुनना, ये दो क्रियाएँ अवश्य होती हैं। चरखा-यज्ञकी तुलना रोटी-यज्ञसे की जाये तो कपास ओटना अर्थात् गेहूँ पीसना यदि घरके बाहर हो तो भी सहन किया जा सकता है, परन्तु आटा गूँधकर लोई बनानेकी क्रिया रुई धुनने-जैसी है। जैसे आटेकी लोइयाँ बनानेकी क्रिया दूसरी जगह नहीं की जा सकती, यह तो जहाँ रोटी वेली जाती है और सेकी जाती है वहीं की जायगी, उसी प्रकार रुई धुननेकी क्रिया भी वहीं की जानी चाहिए जहाँ कातनेका काम होता है। केवल इतनी ही स्वतन्त्रता दी जा सकती है कि एक कुनबेके लोगोंमें से एक भाई या बहन आटा गूँधकर तैयार करे और उसकी लोइयाँ बनाये और दूसरे सब लोग रोटियाँ बेलें और सेकें। इससे अधिक स्वतन्त्रता दी जायेगी तो रोटियाँ बिगड़ जायेंगी और यज्ञ भी दूषित हो जायेगा। उसी तरह सुविधाके लिए धुननेका काम भी जहाँ कातनेका काम होता है वहीं किसी एक ही मनुष्य द्वारा किया जाये, परन्तु इससे अधिक स्वतन्त्रता देनेमें तो सूत खराब होगा और चरखा-यज्ञ भी दूषित होगा। रुई धुननेकी क्रिया बड़ी ही सरल है। धुनकी बड़ी आसानीसे तैयार की जा सकती है और आसानीसे मँगाई भी जा सकती है। जहाँ बाँस मिलना सहज हो वहाँ घरमें काम लायक धुनकी फौरन बना ली जा सकती है। परन्तु जिसे चरखा-यज्ञकी लगन न लगी हो, वह चाहे तो धुनकी मँगा ले। लेकिन हरएक कातनेवालेको धुननेकी क्रिया तो सीख ही लेनी चाहिए। शायद मुझे यह कहनेकी आवश्यकता तो नहीं है कि धुननेकी क्रियामें धुनी हुई रुईसे पूनियाँ बनानेका काम भी शामिल है। धुनकर तैयार की गई रुई गूँधे हुए आटेकी पिंडी है और पूनियाँ उससे तैयार की गई लोइयाँ हैं। मैं समझता हूँ कि जिन भाई-बहनोंके विचार उपर्युक्त लेखकके जैसे रहे होंगे वे अब कातनेका अर्थ समझ गये होंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ११-७-१९२६

१३७. एक पत्र[1]

११ जुलाई, १९२६

आपके पत्र तथा समाचारपत्रकी कतरनोंके लिए धन्यवाद। निश्चय ही आपने सामान्य क्रम उलट दिया है। लोग पहले कुछ अच्छा काम करते हैं और बादमें कुछ अच्छा लेखन-कार्य करते हैं। लगता है कि आप पहले एक अच्छे लेखक बनना चाहते हैं और उसके बाद एक अच्छे कार्यकर्त्ता। परीक्षण सचमुच दिलचस्प रहेगा।

मो० क० गां०

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९९३०) से।

१३८. पत्र: धरमशी भानजी खोजाको

आश्रम
साबरमती
११ जुलाई, १९२६

भाईश्री ५ धरमशी भानजी,

आपके बहुत सावधानीसे पूछे गये प्रश्नोका[2] उत्तर मैं आज दे पा रहा हूँ। मैं इतने सारे प्रश्नोंकी चर्चा 'नवजीवन' मे करना नही चाहता। आपके प्रश्न मुझे बहुत अच्छे लगे हैं। मैं उनका उत्तर क्रमशः दे रहा हूँ।

जो मनुष्य सत्यकी खातिर आत्मोत्सर्ग करनेके लिए तैयार होता है वह शरीर-रक्षाकी झंझटमे नही पड़ता, अपितु शरीरकी रक्षा सत्यकी अनुभूतिके लिए जिस हदतक आवश्यक हो उसी हदतक करता है। नैतिक उद्देश्यसे किये गये उपवासका शारीरिक परिणाम जाननेके लिए अपना वजन लेते रहनेमे मैं कोई दोष नहीं देखता; लेकिन इसमे कोई सन्देह नही कि ऐसा करते हुए मोह हो सकता है। मैं ऐसा करते हुए मोहके वश हुआ था अथवा नही, यह तो दैव ही जाने। मैंने यह क्षेत्र-संन्यास केवल आरोग्य-लाभके हेतुसे ही लिया है। ऐसे हेतुसे स्वीकार की गई क्षेत्र-मर्यादाको क्षेत्र-संन्यास कहना भूल हो तो हम उसे क्षेत्र-मर्यादा ही कहें। इस मर्यादामे नीतिका विचार नही किया गया है। इसलिए इसमें स्थूल अथवा सूक्ष्म भ्रमकी गुंजाइश नही।

१. यह पत्र श्रीलंकामें किसको लिखा गया था यह ज्ञात नहीं है।
२. ध० भा० खोजाने २१ मई, १९२६ को गांधीजीको लिखे अपने पत्रमें ये प्रश्न पूछे थे।

जैसे हम कितने ही कार्योंके परिणामोंकी कल्पना नही कर सकते तथापि उन्हे करते है वैसे ही हम आहारके सम्बन्धमे भी प्रयोग करते हैं। संयमकी दृष्टिसे भी आहारमे उचित अथवा अनुचितका विचार करनेकी पूरी गुंजाइश है।

मैं भारतकी सेवा करता हूँ। जगतके प्राणियोंकी सेवा उसीमे आ जाती है, क्योंकि मेरी सेवा अहिंसामयी है। जो निःस्पृह होकर निःस्वार्थ भावसे एक ही सेवा करता है, वह सबकी सेवा करता है।

मुझे किसीको लड़नेकी अनुमति देनेकी आवश्यकता नही होती। मैं तो जो लड़ना चाहते हैं उन्हे अपनी बुद्धिके अनुसार यही बताता हूँ कि उनका धर्म क्या है। उसका परिणाम अवश्य ही प्रारब्धके अनुसार आता है; लेकिन हम त्रिकालदर्शी नही हैं; इसलिए हमे तो परिणामकी चिन्ता किये बिना सुप्रयत्न करते जाना चाहिए। जब रामराज्य आ जायेगा तब मेरा कर्त्तव्य यह होगा कि मै अपनी आजीविका स्वयं कमानेका पूरा प्रयत्न करूँ और इस तरह किसीपर भाररूप न बनूँ। मैंने व्यवहारमे ऐसे धर्मपर आचरण होते नही देखा।

धर्मको व्यवहारके अनुरूप ढालनेकी अपेक्षा हम व्यवहारको धर्मके अनुरूप ढालनेकी बात क्यो न करें? जो व्यवहार धर्मविरुद्ध है, वह त्याज्य है। मै जिस सत्यको मानता हूँ, वह जगतकी मान्यतापर कतई निर्भर नही है। मै तो उसी सत्यको मानता हूँ जो मेरा अनुभूत है। किसी शास्त्रमे, धर्ममे अधर्मकी जितनी मिलावट होती है वह उतना ही कम सम्माननीय होता है।

मैं यह मानता हूँ कि प्रकृति और उसके नियन्ताके स्वरूपको कोई बिरला व्यक्ति जान सकता है; लेकिन उसका वर्णन तो कोई नही कर सकता। ऐसी स्थिति होनेके कारण मैं मानता हूँ कि उनके वर्णनोंमें विविधता तो अन्ततक रहेगी ही।

जिस पुरुषने अनेक स्त्रियोंसे विवाह किया हो यदि वह पुरुष भी राग-द्वेष रहित हो जाये और सब स्त्रियोको माँ-बहनके समान मानने लग जाये तो वह अवश्य मोक्षका अधिकारी बन सकता है।

इन्द्रियोंमे निहित वासना मनुष्य-स्वभावके विरुद्ध है; अतः वह त्याज्य है। स्त्री और पुरुष दोनों स्वतन्त्र है। इसी कारण मनुष्य विषयवासनाके अधीन होकर उनकी पराधीनतामे जो आचरण करे, हम उसे व्यभिचार न कहें तो और क्या कहे? यदि विवाहोपरान्त पति-पत्नीके मनका मेल नही बैठता तो इसमे सम्बन्ध विच्छेद करनेकी क्या बात है? जिस तरह पिता-पुत्रका परस्पर मेल न बैठे तो भी उनका सम्बन्ध रह सकता है, उसी तरह मै पति-पत्नीके सम्बन्धको भी अविच्छेद्य मानता हूँ। वे मेल न खानेपर एक-दूसरेसे असहयोग कर सकते हैं; लेकिन विवाह-सूत्रमे बँधनेके बाद उस सूत्रको धर्मके अनुसार किसी भी अवस्थामें तोड़ नही सकते। एक पुरुष केवल एक स्त्रीसे और एक स्त्री केवल एक पुरुषसे तथा वह भी केवल सन्तानोत्पत्तिके विचारसे संसर्ग करे; मेरी दृष्टिमे तो उनकी स्वतन्त्रताकी सीमा इतनी ही होनी चाहिए।

काल तो अपना काम करता ही रहता है। पुरुषार्थ इसीमे है कि हम उसके परिवर्तनोंका पहलेसे ही अनुमान कर लें और तदनुसार आचरण करनेका प्रयत्न करें।

हम जिन लोगोंके बारेमें यह समझते हैं कि उन्होंने मोक्ष प्राप्त कर लिया है यह पूर्णतः सम्भव है कि उन्होंने वस्तुत. मोक्ष प्राप्त न किया हो। लेकिन जिन्होंने सचमुच मोक्ष प्राप्त कर लिया है वे तो भगवानके ही स्वरूप है; क्योंकि परमात्मासे भिन्न उनकी कल्पना ही नहीं की जा सकती । इससे अगले प्रश्नको मै समझ नहीं सका हूँ । मै स्त्रियोंके द्वारा घूँघट निकाले जानेके विरुद्ध हूँ क्योकि इससे पुरुषकी अपनी पामरता प्रकट होती है और यह अबला स्त्री-जातिपर अत्याचार है। मैं जो कदम उठाता हूँ अथवा उठानेके लिए कहता हूँ, हो सकता है, वह भविष्यमें सुखकर बननेके बजाय भयावह बन जाये। परन्तु मेरा तो यही दृढ़ विश्वास है कि मेरे प्रत्येक कदमका परिणाम भविष्यमे सुखकर ही होगा । यदि मेरा विश्वास ऐसा न हो तो मेरा सत्य दूषित हो जाये और मुझे कर्मतः आत्महत्या करनी पड़े, क्योंकि मौन रहकर भी मै अपनी कल्पनामे अनेक संसारोंका सृजन करता रहूँगा। मुहम्मद साहबके जीवनमे उनके दयाभावके अनेक दृष्टान्त मिलते हैं। महावीर भगवान द्वारा धर्म और व्यवहारके अलग-अलग बाड़े बनाये जानेकी मुझे खबर नहीं है। जहाँतक मै जैन धर्मको जानता हूँ वहाँतक मुझे तो ऐसा लगता है कि उसमे ऐसे बाड़े नहीं है और भाषा जहाँ-जहाँ भेदसूचक देखनेमे आती है वहाँ-वहाँ उस भाषाका, मै जो-कुछ कहता हूँ उससे मेल बिठाया जा सकता है। उदाहरणार्थ महाव्रत और अणुव्रत धर्म ढोल बजा-बजाकर कहते है कि हम सबको महाव्रतोंका ही पालन करना चाहिए। लेकिन यदि हम उनका पालन न करें तो पापी बननेके बजाय अन्ततः अणुव्रतोंका पालन तो करें ही।

बन्दूक बनानेवाला बन्दूकसे होनेवाली प्राणहानिके लिए थोड़ा-बहुत उत्तरदायी अवश्य होता है। मनुष्य जन्मका उद्देश्य तो यह दिखता है कि वह आत्माके स्वरूपको पहचाने । जो रूढि मनुष्य-स्वभावके विरुद्ध है वह रूढ़ि तो तोड़ी ही जानी चाहिए, क्योंकि वह अन्ततः एक-न-एक दिन तो टूटेगी ही । यदि कोई छोटा बच्चा आगमे हाथ देने लगे तो माँ-बापको और अन्य लोगोंको भी उसका हाथ आगके पाससे खींच लेनेका अधिकार है। इससे अधिक अधिकार किसीको नहीं।

जब ईश्वरने मनुष्यको किसीको जीवन देनेकी शक्ति प्रदान नहीं की है तब उसे किसीके प्राण लेनेकी शिक्षा देनेका अधिकार कैसे हो सकता है? मुझमे हस्तमैथुनकी कुटेव कभी रही ही नहीं। आज भी यह बात मेरी समझमे नहीं आती। मै इसकी चर्चासे ही काँप जाता हूँ। हस्तमैथुनकारी मनुष्यके शरीर और मन दुर्बल हो जाते हैं, इसमे मुझे तनिक भी सन्देह नहीं। मै ऐसे अनेक मनुष्योंके उदाहरण जानता हूँ। इस कुटेवको दूर करनेका उपाय तो यही है कि ऐसे मनुष्य, जो इस कुटेवको छोड़ना चाहें, एक पलके लिए भी अकेले न रहें, हाथ और शरीरपर यथाशक्ति संयम रखें, जो पच सके ऐसा सात्विक आहार करें, खुली हवामे घूमें-फिरें और रामनाम जपें।

इस कुटेवसे मुक्त होनेका उपाय विवाह कर लेना नहीं है । पाँच-सात अथवा दस वर्षके बालकमे यह कुटेव पड़ जानेका कारण विवाह न होना थोड़े ही है? मैं तो बालविवाहसे उत्पन्न अपरिमित दुःखोंको कदम-कदमपर देख पाता हूँ । बाल-विवाहोंसे कोई भी लाभ हुआ है, ऐसा मेरे देखनेमे नहीं आया।

मैं आपके प्रश्नोंको इसलिए वापस भेजता हूँ कि आपको उनसे मेरे उत्तर समझनेमें सहायता मिले।

मोहनदास गांधीके वन्देमातरम्

गुजराती पत्र (एस० एन० १९८३३) की फोटो-नकलसे।

१३९. पत्र : नौतमलाल एम० खण्डेरियाको

आश्रम
११ जुलाई, १९२६

आपका पत्र[1] मिला। यदि आप गुजराती [मूल] में पर्याप्त रस पाते हैं तो खासी अच्छी अंग्रेजी जाननेवाले बहुतसे लोगोंने भी महादेवके अनुवादकी बड़ी प्रशंसा की है। अतः मैं परिवर्तन करनेकी कोई आवश्यता नहीं देखता।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजराती पत्र (एस० एन० १०९४१) की माइक्रोफिल्मसे।

१४०. पत्र : अम्बालाल साराभाईको

आश्रम
११ जुलाई, १९२६

सुज्ञ भाईश्री,

मुझे आपका लम्वा पत्र मिला। मैंने वह ध्यानपूर्वक पूरा पढ़ लिया है। आपने पत्र लिखा, सो ठीक ही किया। मुझे यह बात वहुत अच्छी लगी; क्योंकि पत्रमें आपने अपने हृदयके उद्‌गार प्रकट किये हैं। दूसरे आपने मुझे अपने विचार सम्यक् चिन्तनके बाद व्यवस्थित रूपमें लिखकर भेजे हैं। इन्हें मैं मैत्रीका लक्षण मानता हूँ। इस प्रकार मैं हर दृष्टिसे आपके पत्रका स्वागत करता हूँ। मैं इसका उत्तर गुजरातीमें दे रहा हूँ, क्योंकि मैं एक गुजराती-भाषीको अंग्रेजीमें उत्तर देनेका साहस नहीं कर सकता। मैं इसे बोलकर लिखवा रहा हूँ, क्योंकि आपको मेरी लिखावट पढ़नेमें कठिनाई होगी, दूसरे उससे डाक्टरके इस निर्देशका भंग भी होगा कि मैं हाथसे लिखनेका काम यथासम्भव कम करूँ। आप विश्वास रखें कि आपके विषयमें मेरी

१. श्री खण्डेरियाने १८ जून, १९२६ के अपने पत्रमें सुझाव दिया था कि गांधीजी की आत्मकथाका, जो धारावाहिक रूपमें **यंग इंडिया**में प्रकाशित हो रही थी, अंग्रेजी अनुवाद वालजी गोविन्दजी देसाई करें तो अच्छा हो।

धारणा जो पहले थी, आज भी वही है। आप जैसे थे वैसे ही अब भी हैं। यदि कोई बदला ही हो तो मैं ही बदला हूँ। परन्तु मैं भी बदला नहीं हूँ। मेरे भीतर जो कुछ था वह बिना किसी प्रसंगके एक साथ कैसे व्यक्त हो सकता था? मैं अवसर आनेपर असहयोगी बन गया। दूसरे इसे मुझमें परिवर्तन मान सकते हैं। किन्तु मेरे लिए तो यही सत्य है। मेरा असहयोग अवसरके अनुरूप मेरे स्वभावकी ही अभिव्यक्ति है। कोई मनुष्य, जिसने मुझे गरमीमें उघाड़े शरीर देखा है, सर्दीमें मुझे कपड़े पहने देखकर यह अनुमान भले लगाये कि मैं बदल गया हूँ; लेकिन वास्तविकता तो यही है कि मैं बदला नहीं हूँ। मैं परिवर्तित परिस्थितियोंमें अपनेको उनके अनुकूल बना लेता हूँ। परन्तु हममें परस्पर चाहे कितना भी मतभेद हो, फिर भी आपके प्रति मेरा आकर्षण जिन गुणोंके कारण है उन गुणोंके कारण वह बना रहेगा।

मेरे कुछ कार्योंसे आपने यह अनुमान लगा लिया है कि मैं साध्यकी सिद्धिके लिए चाहे जैसे साधनोंका उपयोग कर लेता हूँ। ऐसा करना मेरे स्वभावके नितान्त विरुद्ध है। मैं यह बात कई बार लिख चुका हूँ और अपने आचरणसे कई बार प्रमाणित भी कर चुका हूँ कि मैं साध्य तथा साधनके बीच गहरा सम्बन्ध मानता हूँ अर्थात् मेरी मान्यता है कि पवित्र साध्य अपवित्र साधनोंसे कदापि नहीं सध सकता। मैंने खिलाफतको अपनानेसे पूर्व अपने कार्यके विषयमें पूरी तरह विचार कर लिया था। यदि मेरा विश्वास खिलाफतकी नीतिमें न होता तो मैं मुसलमानोंका साथ देनेके लिए कभी तैयार न होता। इसका अर्थ यह नहीं है कि अपने धर्मका पालन करनेके लिए खिलाफतकी सहायता करना मेरे लिए आवश्यक था अथवा आवश्यक है; लेकिन मेरी मान्यता यह अवश्य थी और अब भी है कि मुसलमानोंका वह आन्दोलन उनके अपने दृष्टिकोणसे उचित था और मुझे उसमें नैतिक दृष्टिसे देखनेपर कोई दोष दिखाई नहीं दिया। अतः मुझे उनके दुःखमें हिस्सा बँटाना हिन्दुओंका कर्त्तव्य लगा। मैं अपने इस विचारपर अब भी दृढ़ हूँ और मैंने खिलाफतमें मुसलमानोंकी जो सहायता की, उसके लिए मुझे तनिक भी पश्चात्ताप नहीं है। मैं यह भी नहीं मानता कि उनकी मदद करनेसे हिन्दुओंकी हानि हुई है। असहयोगके विषयमें भी मेरी मान्यता ऐसी ही है। असहयोग एक महान् सिद्धान्त है, इसको हम अभीतक पूरी तौरपर समझ नहीं सके हैं। परन्तु यदि कभी शान्तियुग आयेगा तो वह शान्तिमय असहयोगसे ही आयेगा। मैंने अपने असहयोगमें जरा भी ढील नहीं की है। मैं गवर्नरसे असहयोगके दिनोंमें भी वैसे ही मिलता था, जैसे अभी मिला हूँ।[1] मैं दस्तावेजोंकी रजिस्टरी जैसे अब कराता हूँ वैसे तब भी कराता था और कांग्रेसका रुपया खानेवाले लोगोंपर दावा करनेकी सलाह जैसे अब देता हूँ वैसे ही तब भी देता था, क्योंकि मेरा यह असहयोग मर्यादित था और है। जिस प्रकार देहधारी मनुष्यके लिए सम्पूर्ण अहिंसाका पालन असम्भव होनेपर भी अहिंसा-धर्मपर लांछन नहीं आता, उसी प्रकारकी बात शान्तिमय असहयोगके विषयमें भी है। अपनी भूल स्वीकार करनेमें

1. गांधीजी बम्बईके गवर्नरसे 18 मई, 1926 को शाही कृषि-आयोगके सम्बन्धमें मिले थे।

मुझे कभी लज्जा नहीं आई। यदि मैं ऐसा मानूँ कि असहयोगकी प्रवृत्ति चलाना भूल थी और वह प्रवृत्ति निष्फल गई है तो मैं श्री रायकी सलाह मानकर अवश्य ही सार्वजनिक रूपसे अपनी वह भूल स्वीकार कर लूँ। परन्तु मेरा तो दृढ़ विश्वास है कि असहयोगकी प्रवृत्तिसे भारतको असीम लाभ हुआ है और यदि हम गहराईसे देखें तो यह प्रवृत्ति व्यर्थ नहीं गई है। यह सच है कि हमें राजनैतिक सत्ताके रूपमें स्वराज्य नहीं मिला है; परन्तु इसे तो मैं नगण्य मानता हूँ। लोगोंके हृदयोंमें परिवर्तन हुआ है, वे सतर्क हो गये हैं और उनमें हिम्मत आ गई है। यह परिणाम कोई छोटा-मोटा परिणाम नहीं है। इस प्रवृत्तिका मूल्य तो हम बादमें आँक सकेंगे। आज हम इसके इतने समीप हैं कि इसके मूल्यका अनुमान नहीं कर सकते। जब मेरी मान्यता ऐसी है, तब मैं सार्वजनिक रूपसे क्या विचार करूँ? यह तो हो सकता है कि मेरा यह विश्वास भ्रमपूर्ण हो। लेकिन जबतक मैं स्वयं इसे भूल नहीं समझता, तबतक सत्यका पुजारी होनेसे इसे कैसे स्वीकार कर सकता हूँ? मुझे तो अपनी राजनैतिक प्रवृत्तियोंके द्वारा भी आत्मशुद्धि ही करनी है — धर्मका पालन ही करना है। और किसी भी मनुष्यका धर्म वही तो हो सकता है जो स्वयं उसे सूझे। ऐसा कोई स्वतन्त्र धर्म जिसे सब लोग अपना-अपना धर्म समझ सकें, आजतक किसीने नहीं जाना। वह तो अवर्णनीय है। हम सब उसकी झलक-मात्र पा सकते हैं और इसी कारण हम उसे भिन्न-भिन्न रूपोंमें व्यक्त करते हैं। मेरा अभिप्राय यह है कि साधन-मात्रके ऊपर हमारा अधिकार है; अतः साधनोंकी पवित्रता बनाये रखनेमें ही हमारी सफलता निहित है।

मुझे लगता है कि कांग्रेसके विषयमें भी आपको कुछ भ्रम है। कांग्रेसमें कौन रहे और कौन न रहे, यह तय करना किसी एक मनुष्यके अधिकारमें नहीं है। यदि मैं कांग्रेसको अपनी इच्छाके अनुकूल बना सकूँ तो कांग्रेसका रूप कुछ और ही हो। और अगर कांग्रेसमें किसी एक मनुष्यकी सत्ता चल सके तथा लोकमतकी अवहेलना की जा सके तो वह एक लोकतन्त्रात्मक संस्था न मानी जाये, बल्कि एक व्यक्ति द्वारा संचालित संस्था मानी जाये। अभी तो और बहुत-कुछ कहना शेष है। आपने जो अन्य प्रश्न उठाये हैं और अन्य तर्क प्रस्तुत किये हैं मैं उनका उत्तर भी दे सकता हूँ। परन्तु मैंने तो कुछ प्रमुख प्रश्नोंका ही उत्तर देनेका प्रयत्न किया है। इन उत्तरोंको लिखाते हुए मेरा आग्रह ऐसा भी नहीं है कि मेरी बात ही ठीक है और आपकी बात ठीक नहीं। अपनी-अपनी दृष्टिसे हम दोनोंकी बात ठीक हो सकती है। यदि हमें सत्यके पथपर चलना है तो स्वतन्त्र रूपसे, सच्चा कौन है यह हम आज कैसे कह सकते हैं? यह तो भविष्यमें ही जाना जा सकेगा। परन्तु विविध अनुभव करनेके बाद मैंने इतना जरूर जान लिया है कि हम सब एक मतके तो नहीं हो सकते, परन्तु एक दूसरेके विचारोंको सहन अवश्य कर सकते हैं। और यदि हम पारस्परिक विचारोंको सहन करके एक-दूसरेके साथ विचार-विनिमय करें तो जो-कुछ भी भ्रम हो उसे दूर कर सकते हैं। मैं इसी कारण आपके पत्रका महत्त्व समझ सका हूँ और इसी विचारसे मुझे इस पत्रका उत्तर देनेकी प्रेरणा मिली है।

मैंने आपका शास्त्रीजीको[1] लिखा पत्र पढ़ा। मुझे जितना अच्छा आपका मेरे नाम लिखा गया पत्र लगा, उतना अच्छा शास्त्रीजीको लिखा गया पत्र नहीं लगा। मुझे लगता है कि उनके संकट-कालमें उनकी याचनाके उत्तरमें आपने उन्हें जो पत्र लिखा, आप उसे यदि न लिखते तो अच्छा होता। आपने मुझे जो चेक भेजा था वह मैंने शास्त्रीजीको भेज दिया था; परन्तु उससे सम्बन्धित पत्रकी जो प्रति आपने मुझे भेजी थी मैंने उसके विषयमें उन्हें कुछ नहीं लिखा था। समाजके[2] बारेमें आपने जो विचार व्यक्त किये हैं, यदि उन्हें मैं पहले जानता तो मैं आपको सहायता देनेके लिए न लिखता। ऐसे विचार होते हुए भी आपने जो दान दिया है, मैं उसे महत्व-पूर्ण समझता हूँ, और इसी कारण आपका चेक शास्त्रीजीको भेजनेमें मुझे जरा भी झिझक नहीं हुई। मैं तो यह भी समझता हूँ कि आपने शास्त्रीजीको जो पत्र लिखा है वह भी शुभ हेतुसे ही लिखा है।

श्री अम्बालाल साराभाई
माल्डन हाउस
मैरीन लाइन्स
बम्बई

गुजराती प्रति (एस० एन० १९९२८) की माइक्रोफिल्मसे।

१४१. पत्र : च० राजगोपालाचारीको

आश्रम
साबरमती
१२ जुलाई, १९२६

आपका पत्र मिला। मुसीबतका सामना तो आपको करना ही पड़ेगा। लेकिन तिरुच्चङ्गोडमें आपकी मौजूदगी और वहाँ पानीकी कमी होनेके बीच तो उतना ही सम्बन्ध है जितना कि अन्य किसी नवागन्तुकके उस जिलेमें आने और जलके कष्टके बीच हो सकता है। जो आपपर प्रतिद्वन्द्विताका आरोप लगाते हैं वे अनजाने ही आपकी उपस्थितिको अत्यधिक महत्त्व देते हैं; आप उसके पात्र नहीं हैं। लेकिन इससे आपके अभिमानसे फूल उठनेका ज्यादा खतरा नहीं है; इसलिए उन भले आदमियोंको, जो आपपर ऐसा दोष लगाते हैं, अपनी धारणापर प्रसन्न हो लेने दीजिए।

फिनलैंड जानेके विचारने दम तोड़ दिया है और अब वह दफना भी दिया गया है। डॉ० दलालको सन्देह है कि देवदासके अण्डकोषमें वृद्धि हो गई है। इसके लिए अगर ऑपरेशन करना भी पड़ा तो ऑपरेशन छोटा ही होगा। मुझे इसके

१. वी. एस. श्रीनिवास शास्त्री।
२. भारत सेवक समाज।

सम्बन्धमे कोई चिन्ता नही है; मुझे चिकित्सककी छुरीसे कदाचित् उतना भय नही जितना दवासे लगता है।

बेचारे सन्तानम्। लगभग ऐसा लगता है कि हम भारतीयोके हिस्सेमे घरेलू परेशानियाँ कुछ ज्यादा ही आ गई हैं। और इस मामलेमे दक्षिणका अहाता भारतमे सबसे पहला है।

मै यात्रा-सम्बन्धी प्रबन्धके बारेमे शंकरलालसे बातचीत करूँगा।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०९२९) की फोटो-नकलसे।

१४२. पत्र : बनारसीदास चतुर्वेदीको

आश्रम
साबरमती
मंगलवार [१३ जुलाई, १९२६]

भाई बनारसीदासजी,

आपका पत्र मिला। मेरा ऐसा ख्याल है कि अब नातालसे कोई हिन्दी ब्रिटिश गियाना नहीं जाते हैं। यदि जाते ही हैं तो कोई अच्छे हिंदी इस काममें शरीक नहीं होते हैं। दक्षिण निवासी हिंदीओंके साथ मेरा पत्र-व्यवहार तो चल ही रहा है। और क्या करना चाहिए? आपके दुसरे खतकी जिसका उल्लेख आपके खतमें है मैं राह देखुंगा।

आपका,
मोहनदास गांधी

श्रीयुत बनारसीदास चतुर्वेदी
फीरोजाबाद
(यू० पी०)

मूल पत्र (जी० एन० २५७०) की फोटो-नकलसे।

१४३. सन्देश : 'सर्चलाइट' को

[१४ जुलाई, १९२६ या उससे पूर्व][1]

यदि मैं मौजूदा असन्तोषपर सर्चलाइट फेंकूं और इस [असन्तोष] का कोई उपचार जानना चाहूँ तो मुझे चरखा ही मिलता है। जो लोग गम्भीरतापूर्वक इसे अपनाते है, वे देखेंगे कि उनके मनोविकार इससे शान्त होते हैं और वे स्वराज्यकी इमारत और ऊँची खड़ी करनेमें ठोस योग भी दे रहे हैं।

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
सर्चलाइट, वार्षिक विशेषांक, १९२६

१४४. एक पत्र[2]

आश्रम
साबरमती
१४ जुलाई, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मुझे इस बातका अन्दाज नहीं है कि आप क्या संगठित करना चाहते हैं। क्या आप अपने क्षेत्रकी उस गरीब जनताके लिए, जिसके पास साल भरके लिये पूरा काम नहीं रहता और जिसके पास काफी अवकाश बच रहता है, कताईके कामकी कोई योजनाके बारेमें सोच रहे हैं? या हो सकता है कि आपका विचार मध्यमवर्गमें खादीको लोकप्रिय बनाने और स्वैच्छिक कताई द्वारा खादीको सस्ती करानेके लिए कातनेवालोंकी एक स्वैच्छिक संस्था संगठित करनेका हो या फिर आप ये दोनों ही काम साथ-साथ करना चाह रहे हों। तब फिर चरखोंकी व्यवस्थाके अलावा आप यह भी चाहेंगे कि वे जब कभी बिगड़ जायें तो उन्हें ठीक करनेकी सुविधा हो। आपको पूनियोंकी जरूरत होगी और इसके लिए धुनकरोंकी सहायता भी अपेक्षित होगी। यदि आपके पासके क्षेत्रमें कपास पैदा होती हो तो उस अवस्थामें आप रुई ओटनेकी अपनी अलग व्यवस्था करना चाहेंगे। इसके लिए आपको हाथ-ओटनी-की जरूरत होगी। एक धुनिया दस कतैयोंको प्रति कतैया १०० तोला रुई दे

१. सर्चलाइटका यह वार्षिक विशेषांक १४-७-१९२६ को छपा था।

२. सम्भव है कि यह पत्र बलरामपुरम आश्रमके प्रबन्धकको लिखा गया हो। देखिए अगले शीर्षककी पाद टिप्पणी २।

सकता है। एक ओटनीसे ६ मझोले आकारकी धुनकियोंपर कामके लायक ढाई-ढाई पौंड रुई मिल सकती है। एक हाथ-ओटनीकी लागत ७ रु० पड़ती है और एक मंझोले आकारकी धुनकीकी लागत ५ रु०। ये दोनों ही चीजें वहीं तैयार की जा सकती हैं। इन्हें बनवा लिया जाना चाहिए। यदि प्रतिवर्ष कमसे-कम १० रु०की खादी अवश्य खरीदनेवाले ४०० भी स्थायी ग्राहक हों, तो मैं आपको एक छोटासा खादी-भण्डार खोलनेका सुझाव दूँगा। ये १० रु० पेशगी जमा करा लिये जायें। यदि ऐसा हो जाये तो भण्डारमें आप एक कतैया, एक धुनिया और एक रुई ओटनेवाला रख सकते हैं, ताकि स्वैच्छिक कतैयोंके सामने कताईकी तीनों प्रक्रियाओंका प्रदर्शन किया जा सके। मजदूरी लेकर कातनेवालोंकी दृष्टिसे भारतके हरएक हिस्सेमें अलग-अलग तरहका रिवाज है। कुछ कातनेवाले पूनियाँ अर्थात् कातनेके लिए धुनी-धुनाई रुईको दोनों तख्तियोंपर लपेटकर गोल की हुई पूनियाँ तैयार माँगते हैं। कहीं-कहीं कातनेवाले रुई ले जाते हैं और उनकी धुनाई आदि खुद करते हैं।

मेरे लिए यहाँसे कोई प्रशिक्षक भेज सकना कठिन है। मैं आपको सुझाव दूँगा कि आप श्री रामनाथनसे सम्पर्क स्थापित करें। वे तमिलनाडमें अखिल भारतीय चरखा संघके प्रतिनिधि हैं। उनका पूरा नाम व पता है: श्रीयुत एस० रामनाथन, अखिल भारतीय चरखा संघ (तमिलनाड शाखा) ईरोड।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९६६४) की माइक्रोफिल्मसे।

१४५. पत्र: च० राजगोपालाचारीको

आश्रम
साबरमती
१४ जुलाई, १९२६

मुझे आपके दो तार मिले। मैं जानता था कि आपके यहाँ आनेमें ऐसी कोई न कोई अड़चन आयेगी। आपके कलके तारमें आनेकी बात बिलकुल निश्चित तौर पर कही गई थी। मुझे लगा आप कहीं दौरेपर निकल रहे हैं; हो सकता है कुछ दिन यहीं गुजारने आ रहे हों। लेकिन मैं यह भी जानता था कि दास्ताने एकदम निराश हो चुका है। उसे कई बार निराश होना पड़ा है। इस बार उसने आप सबके वहाँ पहुँचनेकी बड़ी आशा लगा रखी थी। वह चाहता है कि या तो सब पहुँचें या फिर कोई भी नहीं। इसलिए मैं समझता हूँ कि उसने आपको तार दिया। अतः यह सचमुच मजबूरी है।

मणिलाल और जमनालालजी सितम्बरमें अपना समय खाली रखनेके लिए राजी हो गये हैं और यदि आप भी तभी निश्चित तौरपर सुलभ हो सकते हों, तो आप इस साल एक या दो दौरे कर सकते हैं। लेकिन यदि सितम्बरमें आपको समय न

मिल सके, तो एक भी दौरा न हो पानेकी बातसे मैंने अपने मनमें समझौता कर रखा है। यदि हमारे पास जो काम है उसे ही हम पूरे कामकाजी ढंगसे व्यवस्थित रूपमें कर सकते हों तो कोई दौरा न कर सकनेकी कमी काफी हदतक पूरी हो जायेगी। इसलिए मैंने आपको आज एक तार[1] भेजा है और उसमें अपने ही खास कामको आगे बढ़ानेकी सलाह दी है।

बलरामपुरम् आश्रमके सचालकका पत्र और मेरे जवाबकी नकल[1] साथमें भेज रहा हूँ, जो अपने आपमें स्पष्ट हैं। कृपया इस विषयमें जो-कुछ जरूरी है सो कीजिए। और यदि आप सचालकको जानते हैं तो उसके पत्र लिखनेसे पहले आप उसे पत्र लिख दीजिए।

हृदयसे आपका,

सहपत्र : १ (४ पृष्ठ)

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९६६५) की फोटो-नकलसे।

१४६. पत्र : शंकरलाल बैंकरको

आश्रम
साबरमती
बुधवार, १४ जुलाई, १९२६

भाईश्री ५ शंकरलाल,

मैंने कल गुलजारीलालसे[3] आपको पत्र लिखनेके लिए कह दिया था और राजगोपालाचारीको तार दे दिया था। आज उनका तार आ गया है। मैं उसे इस पत्रके साथ रख रहा हूँ। उसका उत्तर पीछे लिखा है। अतः यह निश्चित है कि वे अब १६ तारीखको तो नहीं आयेंगे। यदि आपको इसके अतिरिक्त कोई अन्य व्यवस्था सूझे तो आप जैसा उचित समझें वैसा राजगोपालाचारीको लिख दें।

यहाँ जोरकी बारिश हो रही है। मेरी तबीयत अच्छी है।

गुजराती प्रति (एस० एन० १२१९७) की फोटो-नकलसे।

१. उपलब्ध नहीं है।
२. अनुमानतः इससे पहलेवाला शीर्षक।
३. गुलजारीलाल नन्दा, जो उस समय अहमदाबाद मजदूर संघके मन्त्री थे।

१४७. एक महान् हृदय

समाचारपत्रोंसे खबर लगी है कि कुमारी एमिली हॉबहाउस नही रही। वे एक बहुत ही नेक और बडी ही बहादुर स्त्री थी। वे सदा व्यक्तिगत लाभ-हानि सोचे बिना सेवा करती थी। उनकी सेवा ईश्वरार्पित समाजसेवा होती थी। वे एक ऊँचे अग्रेज कुलमे उत्पन्न हुई थी। वे अपने देशसे प्रेम करती थी; और इसी कारण उसके द्वारा अन्यायका किया जाना उन्हे बर्दाश्त नही होता था। उन्होंने बोअर युद्धके अनौचित्य और उसमे निहित अत्याचारको समझ लिया था। वे पूरी तरह इंग्लैंडको गलतीपर मानती थी। उन्होने ऐसे समयमे जब इग्लैड विक्षिप्त होकर लड रहा था, उस युद्धकी निन्दा अत्यन्त कडी भाषामे की। वे दक्षिण आफ्रिका गईं और वहाँ उन शिविर कारागारोके खडे किये जाने तथा उनमे पराजित वीरोके बाल-बच्चोंको जबर्दस्ती लाकर रखनेकी पशुताका उन्होंने घोर विरोध किया, जिनको लॉर्ड किचनरने युद्धमे विजय प्राप्त करनेके लिए आवश्यक ठहराया था। उसी समय विलियम स्टेडने भी अग्रेजोंकी पराजयके लिए गिरजोंमे प्रार्थना सभाओका आयोजन किया था। यद्यपि एमिली हॉबहाउस शरीरसे दुर्बल थी, फिर भी वे शारीरिक असुविधाओका कुछ भी खयाल न करके दुबारा दक्षिण आफ्रिका गईं और वहाँ उन्होने अपने प्रति अपमान तथा उससे भी गये-गुजरे बर्तावका जोखिम उठाया। वे वहाँ कैद कर ली गईं और उन्हे वापस देश भेज दिया गया। इस सबको उन्होने एक सच्ची बहादुर स्त्रीकी भाँति सहन किया। उन्होंने बोअर जातिकी स्त्रियोंको ढाढस बँधाया और कहा कि उन्हें आशा तो किसी भी हालतमे नही छोड़नी है। उन्होने उनसे यह भी कहा कि यद्यपि इंग्लैंड मदमे चूर दिखाई देता है, तथापि वहाँके अनेक पुरुषों तथा स्त्रियोंमें बोअर लोगोंके प्रति सहानुभूति है और किसी न किसी दिन उनकी बात सुनी जायेगी। यही हुआ भी। सर हेनरी कैम्बेल बैनरमेन आम चुनावमे जबर्दस्त बहुमतसे लिबरल दलके नेता चुने गये और बोअर लोगोंकी युद्धमें हुई क्षतिकी यथासम्भव पूर्ति की गई।

युद्धकी समाप्तिपर, उन दिनों जबकि दक्षिण आफ्रिकाका सत्याग्रह जारी था मुझे कुमारी हॉबहाउससे परिचित होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। हमारे परिचयने धीरे-धीरे आजीवन मैत्रीका रूप ले लिया। हिन्दुस्तानियों तथा दक्षिण आफ्रिकाकी सरकारके बीच १९१४मे जो समझौता हुआ, उसमें उनका कोई कम हाथ न था। उन दिनों वे जनरल बोथाकी मेहमान थी। जनरल बोथाने कई बार मुलाकात विषयक मेरे प्रस्तावोंपर टाल-मटोल की और हर मरतबा 'गृह सचिव'के सामने अपनी बात पेश करनेको कहा। परन्तु कुमारी हॉबहाउसने जनरल बोथासे आग्रह किया कि वे मुझसे मिलें। उन्होंने केपटाउनमे जनरल साहबके निवास-स्थानपर जनरलसे मेरी मुलाकातका प्रबन्ध कराया और जनरल बोथाकी पत्नी तथा स्वयं कु० हॉबहाउस वहाँ उपस्थित रही। बोअर लोगोंपर उनके नामका बड़ा प्रभाव था। उन्होंने अपने इस सारे प्रभावको हिन्दुस्तानी दावेके पक्षमें लगाकर मेरा मार्ग सरल बना दिया था। जब मैं हिन्दुस्तान

आया तब रौलट अधिनियम सम्बन्धी आन्दोलनके दिनोमे उन्होंने यह लिखा कि मुझे यदि फाँसीपर झूलकर नही, तो कारागारमे भी अपने जीवनका अन्त करना पड़े; तब भी उन्हें अफसोस नही होगा। खुद उनमें इस प्रकारका त्यागकर सकनेकी पूरी-पूरी शक्ति मौजूद थी। यह तो उनकी अटल धारणा ही थी कि कोई भी आन्दोलन, उसके समर्थकोके बलिदानके बिना सफल नही हुआ करता। अभी पिछले साल ही उन्होंने लिखा था कि दक्षिण आफ्रिका निवासी भारतवासियोके पक्षमें अपने मित्र जनरल हर्टजोगसे उनकी खूब लिखा-पढी चल रही है। उन्होने मुझे यह भी लिखा था कि मैं जनरल हर्टजोगके प्रति कुपित न होऊँ और उनसे जो आशा रखता हूँ, उसका मै एक अन्दाजा उन्हे दूँ। हिन्दुस्तानकी स्त्रियोंको इस अंग्रेज महिलाका उदाहरण याद रखना चाहिए। उन्होंने विवाह नही किया था। उनका जीवन स्फटिककी भाँति स्वच्छ था। उन्होने अपनेको ईश्वरके प्रति समर्पित कर रखा था। स्वास्थ्य तो उनका बिलकुल ही गया बीता था, उनको लकवेकी बीमारी थी; परन्तु उनके उस दुर्बल और रोग-ग्रस्त शरीरमें एक ऐसी आत्मा दैदीप्यमान थी जो राजाओं और शहंशाहोंके ससैन्य बलको भी चुनौती दे सकती थी और चूँकि उनको केवल ईश्वरका भय था, वे किसी मनुष्यसे नही डरती थी।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १५-७-१९२६

१४८. छात्र और असहयोग

मैं नीचे एक राष्ट्रीय महाविद्यालयके किसी छात्र द्वारा लिखी गई एक लम्बी चिट्ठीका सार दे रहा हूँ:

> आप जानते हैं कि सन् १९२०में समस्त भारतमें बहुतसे छात्रोंने सरकार द्वारा नियन्त्रित संस्थाओंको छोड़ दिया था। उस समय अनेक राष्ट्रीय सस्थाएँ खोली गई थी। इनमें से कुछ बन्द हो गई हैं। एक संस्था, जिसे मैं जानता हूँ, बड़ी खराब हालतमें है। कहा जा सकता है कि यह राष्ट्रीय नियन्त्रणमें विदेशी संस्था ही है, अन्तर इतना ही है कि इसमें अनुशासन भी नही है। हमारे कई अध्यापक यह भी नही जानते कि खादी और विदेशी मिलके बने देशी कपड़ेमें क्या अन्तर है। वे साहबी पोशाकमें रहते हैं और यद्यपि स्वयं विदेशी कपड़े पहनते हैं; किन्तु फिर भी हमसे स्वदेशीकी बात करते नही सकुचाते। उनको देखकर उस शराबीकी याद आती है जो दूसरोंको शराब छोड़नेकी सलाह देता है। वे अपने पुत्रों और अन्य आत्मीयोंको तो सरकार द्वारा नियन्त्रित विद्यालयों या महाविद्यालयोंमे भेजते हैं, किन्तु दूसरोंसे राष्ट्रीय संस्थाओके महत्त्वकी और त्यागभावकी बात करते हैं। वस्तुतः हम लोगोके बीच प्रेमभावका अभाव ही है। इस स्थितिमें यदि बहुतसे छात्र सरकारी संस्थाओमें चले गये हो तो क्या आप इसमें आश्चर्य मानेंगे? हममें से कुछ छात्र अभी

तक नही गये हैं; किन्तु हम भी कबतक यहाँ पढ़ते रह सकते है? मैं अध्ययनके लिए जर्मनी जाना चाहता हूँ, किन्तु मेरी आर्थिक स्थिति ऐसी नही है कि जर्मनी जा सकूँ। क्या आप मुझे बर्लिन विश्वविद्यालय या यूरोपके किसी अन्य विश्वविद्यालयमे भेज सकते हैं?

पत्र-लेखकने मुझे अपना पूरा नाम, अपनी संस्थाका नाम और अन्य उपलब्ध विवरण भेजा है। मैंने संस्थाका नाम और अन्य विवरण जानबूझकर नही दिया है, क्योंकि मुझे उसकी पर्याप्त जानकारी नही है और मैं किसी संस्थाका अध्ययन किये बिना उसकी निन्दामें भाग नही ले सकता। छात्र-द्वारा की गई उसकी आम शिकायत को छाप देनेसे सार्वजनिक हेतु पर्याप्त रूप से पूरा हो जाता है और जिन संस्थाओं-पर यह शिकायत लागू होती हो, वे इसके आधारपर अपना आत्मनिरीक्षण कर सकती हैं और शिकायतके सभी कारणोको हटा सकती हैं। इसमे कोई सन्देह नहीं है कि अनेक राष्ट्रीय संस्थाओंमें, जितनी अच्छी होनी चाहिए उतनी अच्छी स्थिति नहीं है। इन संस्थाओके प्रमुख और अन्य अध्यापकोने कांग्रेसके राष्ट्रीय कार्यक्रमकी प्रारम्भिक राष्ट्रीय संस्थाओसे सम्बन्धित शर्ते पूरी नही की हैं। जो अध्यापक स्वयं अहिंसा या सत्य या असहयोगमें विश्वास नही करते वे अपने छात्रोंमे इनमे से किसी भी बातकी भावनाका संचार नही कर सकते। यदि वे अपने बच्चोंको सरकारी स्कूलोंमें भेजते है तो वे छात्रोंसे यह आशा नहीं कर सकते कि वे राष्ट्रीय संस्थाओके सम्बन्धमें उत्साह दिखायेंगे। यदि वे स्वयं चरखा नही चलायेंगे या खादी नहीं पहनेंगे तो वे अपने छात्रोंमें चरखे या खद्दरके प्रति प्रेम पैदा करनेकी आशा भी नहीं कर सकते। यह कहनेकी जरूरत नही है कि इस पत्र-लेखकने अपनी संस्थाकी अवस्थाका जो विवरण दिया है, सभी राष्ट्रीय संस्थाएँ वैसी नहीं हैं। किन्तु इस पत्रके सिलसिलेमें जिस बात-पर मैं जोर देना चाहता हूँ वह यह है कि किसीको भी अपने त्यागपर दुःखी नहीं होना चाहिए। जिस त्यागपर दुःख किया जाता है उसकी पवित्रता चली जाती है और व्यक्ति प्रतिकूल परिस्थितिमे उससे विरत हो जाता है। मनुष्य उन बातोंको छोड़ता है जिनको वह हानिकर समझता है। इसलिए उन्हें छोड़ते हुए उसे सुख मिलना चाहिए। उनके स्थानमे जो विकल्प ग्रहण किया जाता है वह प्रभावकारी है या नही यह एक बिलकुल अलग बात है। यदि वह विकल्प प्रभावकारी हो तो निस्सन्देह वह एक अच्छी परिस्थिति है। किन्तु यदि वह प्रभावकारी न भी हो तो भी वही अच्छा है। कालान्तरमे वह उससे भी अच्छा विकल्प ढूँढ़नेका प्रयत्न करेगा; किन्तु जिस चीजको उसने पूरी तरह सोच-समझकर उसके हानिकारक रूपको अनुभव करके छोड़ा है वह निश्चय ही फिर उसे स्वीकार नही करेगा। बर्लिन विश्वविद्यालय या यूरोपके किसी दूसरे विश्वविद्यालयमें जानेकी लालसा असहयोगकी भावनाका द्योतक नही है। यह ऐसा ही है जैसे इंग्लैंडके बने कपड़ेकी जगह जापानका बना कपड़ा स्वीकार करना। हम इंग्लैंडका बना कपड़ा इसलिए नही छोड़ते कि वह इंग्लैंडका बना है, बल्कि इसलिए छोड़ते है कि उससे गरीबोंका पुश्तैनी धन्धा छूटता है और इसके कारण वे और भी गरीब होते चले जाते हैं।

जापानी कपड़ेके हमारे उपयोगसे भी उनपर वैसी ही गरीबी आती है जैसी अंग्रेजी कपड़ेके उपयोगसे। इसी प्रकार सरकारी सस्थाओंको छोड़नेका हमारा कारण उनका राष्ट्रीयतामें बाधक होना है। इसलिए यह नहीं हो सकता कि हम दूसरे नामसे उसी चीजको फिर स्वीकार करें; और यह विश्वास भी करते रहें कि हम असहयोगी हैं। असहयोगका अर्थ यह है कि ऐसी सब बातोंसे सहयोग करना जो भारतीयताकी भावनाकी दृष्टिसे श्रेष्ठ ठहरे। हम बर्लिनमें रहकर ऐसी रुचिका विकास नहीं कर सकते। हमें अपने समस्त प्रयोग भारतमें ही करने चाहिए। जबतक हमें कोई परिपूर्ण और प्रभावकारी विकल्प नहीं मिल जाता तबतक हमें पहले कदमके रूपमें सरकारी संस्थाओंका त्याग करना चाहिए; यह बात बिलकुल स्पष्ट है। इसलिए जिन छात्रोंने वह कदम उठाया उन्होंने यदि उसे यह समझकर किया हो कि वे क्या कर रहे हैं तो उन्होंने बहुत ठीक किया। ऐसे ही छात्रोंका त्याग समय बीतनेपर देशके लिए अधिकाधिक लाभप्रद होगा। किन्तु जो छात्र अपने कियेपर पछता रहे हैं या अपनी स्थितिसे असन्तुष्ट हैं उनको निश्चय ही सरकारी सस्थाओंमें वापस जानेमें नहीं झिझकना चाहिए। आखिर यह आदर्शोंका विरोध है। और यदि असहयोगका आदर्श अच्छा है और भारतकी स्थितियोंमें हितकर है तो वह हर तरहकी बाधाओंके आनेपर भी अन्तमें सफल होगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १५-७-१९२६

१४९. अनीतिकी राहपर – ३

विवाहित पुरुषोंका, आत्मसंयम द्वारा सन्ताननिग्रह करना एक बात है और सम्भोगके साथ-साथ तथा उस सम्भोगके परिणामसे बचानेवाले साधनोंकी सहायतासे सन्ताननिग्रह करना बिलकुल दूसरी। पहली सूरतमें लोगोंको लाभ ही लाभ है और दूसरी सूरतमें नुकसानके अलावा और कुछ नहीं। श्री ब्यूरोने आँकड़ों और मानचित्रोंकी सहायतासे दिखाया है कि पाशविक वृत्तियोंकी लगाम ढीली करने और फिर सम्भोगके स्वाभाविक परिणामोंसे बचनेके अभिप्रायसे गर्भाधानको रोकनेके कृत्रिम साधनोंके अधिकाधिक प्रयोगका फल यही हुआ है कि न केवल पेरिसमें, बल्कि समस्त फ्रांसमें, मृत्यु-संख्याकी अपेक्षा जन्म-सख्यामें बहुत कमी हो गई है। ८७ भागोंमें से, जिनमें कि फ्रांस विभाजित है, ६८ में पैदाइशकी औसत मौतकी औसतसे कम है। लॉटमें जन्म और मृत्युका अनुपात सौपर एक सौ बासठ है। तेर्नएगारोनमें यह अनुपात १००पर १५६ है। उन १९ क्षेत्रोंमें जहाँ मृत्युकी अपेक्षा जन्मकी औसत अधिक है यह अन्तर बहुत ही थोडा है। केवल दस ही क्षेत्र ऐसे हैं जहाँ मृत्युसे जन्मका अनुपात पर्याप्त अधिक है। अल्पसे-अल्प मृत्यु-संख्या मौर्बिआँ और पास-डि-कैलेमें पाई जाती है; वहाँ जन्म-संख्याके साथ इसका ७२ : १००का अनुपात है। ब्यूरोके अनुसार आबादी कम होते जानेका यह क्रम, जिसे कि वह 'आत्महत्या' कहता है, अभीतक रुका नहीं है।

तदुपरान्त ब्यूरो फ्रांसके प्रांतोंकी दशाका, सभी पहलुओंसे निरीक्षण करता है और सन् १९१४में लिखे हुए एक ग्रन्थसे नॉरमैंडीके बारेमें निम्नलिखित वाक्य उद्धृत करता है:

> नॉरमैंडीकी जनसंख्यामें गत ५० वर्षोंमें ३ लाखकी कमी हो गई है; इसका अर्थ यह है कि उसकी उतनी आबादी, जितनी कि समस्त और्न जिलेकी है, कम हो गई है। हर बीस वर्षमें फ्रांसकी उसके एक सूबे जितनी जनसंख्या घट जाती है। और चूंकि उसमें केवल पाँच ही सूबे हैं, इसलिए सौ वर्षोंमें तो उसके हरे-भरे खेतोंमें फ्रांसके निवासी बच ही नहीं रहेंगे — मैं यहाँ "फ्रांस-निवासी" शब्दका जानबूझकर प्रयोग कर रहा हूँ; क्योंकि तब दूसरे लोग अवश्य ही वहाँ आकर बस जायेंगे — और यदि ऐसा न हुआ तो वह भी एक शोचनीय स्थिति होगी। जर्मन लोग कैंके आसपासकी लोहेकी खानें चला रहे हैं और हमारे देखते-ही-देखते वहाँ चीनी मजदूर आ गये हैं, जहाँसे कि विजेता विलियमने इंग्लैंडके लिए प्रस्थान किया था।

ब्यूरो उक्त वाक्यपर टिप्पणी देते हुए लिखता है, "दूसरे भी अनेक प्रान्तोंकी दशा इससे अच्छी नहीं है।"

वह आगे चलकर यह दिखलानेका प्रयत्न करता है कि जनसंख्यामें इस ह्रासके फलस्वरूप राष्ट्रकी सैनिक शक्तिका पतन हुआ है। उसकी यह धारणा है कि फ्रांसके लोगोंका फ्रांससे आजकल कम बाहर जाना भी इसीका परिणाम है। तदुपरान्त वह इसीको फ्रांसके जातिगत विकास, उस देशके व्यापार, उसकी भाषा और सभ्यताके ह्रासका कारण भी सिद्ध करता है।

इसके अनन्तर ब्यूरो पूछता है:

> क्या फ्रांसीसी लोग, जिन्होंने प्राचीनकालमें रूढ़ विषयके प्रति अपने संयमको त्याग दिया है, सांसारिक सुख, आर्थिक उत्कर्ष, शारीरिक स्वास्थ्य तथा संस्कृति प्राप्त करनेमें पहलेकी अपेक्षा अधिक उन्नत हो गये हैं?

उत्तरमें वह कहता है:

> स्वास्थ्यके विषयमें दो-चार शब्द ही पर्याप्त होंगे। सभी बातोंका, नियमबद्ध रूपसे उत्तर देनेकी हमारी इच्छा चाहे जितनी प्रबल क्यों न हो, फिर भी यह कहना कि निरंकुश विषय-भोगसे शारीरिक स्वास्थ्य सुधरना सम्भव है — ठीक नहीं। चारों ओर किशोर और युवा-पुरुष दोनोंकी शक्ति क्षीण होते जानेकी चर्चा सुनाई देती है। युद्धके समय सैनिक-विभागके अधिकारियोंको रंगरूटोंकी शारीरिक योग्यताकी शर्त ढीली करनी पड़ी थी। सारे राष्ट्रमें सहनशक्तिमें भी बहुत कमी आ गई है। निस्सन्देह यह मान लेना कि असंयमने ही यह हीनावस्था उत्पन्न की, न्यायसंगत न होगा परन्तु इतना अवश्य है कि उसका इस मामलेमें खासा बड़ा हाथ है। मद्यपान, अस्वच्छ रहन-सहन इत्यादि

भी इसके जिम्मेवार हैं। यदि हम ध्यानसे सोचें, तो यह बात हमारी समझमें आसानीसे आ जायेगी कि इस भ्रष्टाचार और उसकी पोषक भावनाओंका इन अन्य विपत्तियोंसे घनिष्ट सम्बन्ध है। . . . गुह्य अंग सम्बन्धी रोगोंकी भयंकर व्यापकतासे जनसाधारणके स्वास्थ्यको बड़ी भारी क्षति पहुँची है।

माल्थसकी तरह कुछ लोग इस विचारके पोषक हैं कि जिस समाजमें जन्म-मर्यादाका ध्यान रखा जाता है, जन्मवृद्धिपर रखे गये नियंत्रणके अनुपातमें सम्पत्ति बढ़ती जाती है, लेकिन ब्यूरो इस विचारसे सहमत नहीं है। वह अपने मतका समर्थन जर्मनी और फ्रांसकी परिस्थितिके आधारपर करता है। जर्मनीमें जहाँ औसतन पैदाइश अधिक है और मृत्यु कम, आर्थिक ऐश्वर्य बढ़ता जा रहा है; और फ्रांसमें जहाँ कि पैदा होनेवालोंकी संख्या मरनेवालोंकी संख्याकी अपेक्षा कम है, धनका अभाव बढ़ता जा रहा है। उसका कथन है कि जर्मनीके व्यापारका आश्चर्यजनक फैलाव अन्य देशोंकी तरह ही हुआ है; जर्मनीमें मजदूरोंका दूसरी जगहसे कोई अधिक शोषण नहीं हुआ है। वह रौसिन्नौताके एक वाक्यको उद्धृत करता है:

> जर्मनीमें, जिस समय उसकी आबादी केवल ४,१०,००,००० थी, लोग भूखों मर गये थे। जबसे उसकी आबादी ६,८०,००,००० हुई है, तबसे वह दिन-प्रतिदिन सम्पन्न ही होता जा रहा है।

उसका यह भी कथन है:

> वे लोग जो कि किसी भी प्रकारसे संयमी नहीं हैं, सेविंग बैंकोंमें प्रतिवर्ष धन जमा करनेमें समर्थ हुए। और सन् १९११ में यह धन बाईस अरब फ्रैंक (फ्रांसका सिक्का) हो गया था, जबकि सन् १८९५ में केवल ८ अरब ही बैंकोंमें जमा था—यानी प्रतिवर्ष उनके हिसाबमें साढ़े आठ करोड़ अधिक जमा होते गये।

जर्मन जाति द्वारा की गई तकनीकी प्रगतिका विवरण देनेके बाद ब्यूरो जर्मन संस्कृतिके सामान्य विकासके बारेमें जो कहते हैं उसका निम्न उद्धरण पाठकोंको दिलचस्प लगेगा।

> समाज-शास्त्रका ज्ञान प्राप्त किये बिना भी यह बात बिलकुल स्पष्ट होनेके कारण भली-भाँति समझी जा सकती है कि यदि ज्यादा कुशल कारीगर और उच्च शिक्षा प्राप्त फोरमैन या पूर्णतया प्रशिक्षित इंजीनियर न मिलते तो ऐसी तकनीकी प्रगति सम्भव न थी। . . . औद्योगिक स्कूल तीन प्रकारके हैं: व्यावसायिक शिक्षा देनेवाले, जिनकी संख्या ५०० है और जिनमें ७०,००० विद्यार्थी हैं; तकनीकी स्कूल; इनकी संख्या और भी अधिक है और इनमें से कुछ स्कूलोंमें तो १,०००से भी ऊपर विद्यार्थी हैं। सबसे बादमें आते हैं उच्च शिक्षा देनेवाले वे कालेज जो विश्वविद्यालयोंकी तरह 'डाक्टर'की स्पृहणीय उपाधि देते हैं और जिनमें विद्यार्थियोंकी संख्या १५,००० है। . . . ३६५ व्यावसायिक स्कूलोंमें ३१,००० विद्यार्थी भरती होते हैं और कृषि सम्बन्धी प्रशिक्षण देनेवाले

स्कूलोंमें ९०,००० विद्यार्थी शिक्षा पाते हैं। इस प्रकार उत्पादनके विभिन्न क्षेत्रोंमें शिक्षा पानेवाले ४,००,००० विद्यार्थियोंके मुकाबले हमारे सभी व्यावसायिक स्कूलोंमें शिक्षा पानेवाले ३५,००० विद्यार्थी क्या चीज हैं। हमारे देशमें १७,७०,००० लोगोंकी आजीविकाका साधन कृषि है और उसमें भी ७,७९,७९८ लोग अट्ठारहसे कम आयुके हैं। तब फिर हमारे कृषि सम्बन्धी विशेष स्कूलोंमें पढ़नेवाले विद्यार्थियोंकी संख्या ३,२२५ ही क्योंकर है?

ब्यूरोने इस बातको जरूर कुबूल किया है कि जर्मनीकी इस तमाम आश्चर्यजनक उन्नतिका कारण केवल जन्मसंख्याका मृत्यु-संख्यासे अधिक होना ही नही है। उसका यह आग्रह है — और वह ठीक है — कि अन्य प्रकारकी सुविधाओंके होते हुए यह तो बिलकुल स्वाभाविक ही है कि जन्मसंख्याके बढ़नेके फलस्वरूप राष्ट्रीय उन्नति भी हो। वास्तवमें जो बात वह सिद्ध करना चाहता है, वह यह है कि जन्मसंख्याके बढ़ते जानेसे आर्थिक तथा नैतिक उन्नतिका रुकना लाजिमी नहीं है। जन्म-प्रतिशतकी हदतक हम हिन्दुस्तानियोंकी स्थिति फ्रांसकी स्थिति जैसी नहीं है। फिर भी कहा जा सकता है कि हिन्दुस्तानमें जन्म-प्रतिशतका बढ़ते जाना जर्मनीकी तरह हमारे राष्ट्रीय जीवनके लिए सहायक नहीं है। परन्तु मैं ब्यूरोके आँकड़ों, उसके सतर्क विचारों तथा निष्कर्षोंको दृष्टिमें रखते हुए हिन्दुस्तानकी परिस्थितिपर फिर कभी विचार करूँगा।

जर्मनीकी परिस्थितियोंपर, जहाँ कि जन्मका प्रतिशत अधिक है, विचार करनेके अनन्तर ब्यूरो कहता है:

> क्या हम यह नहीं जानते कि यूरोपमें फ्रांस चतुर्थ स्थानपर है और राष्ट्रीय सम्पत्तिके लिहाजसे वह तृतीय स्थानवाले देशसे बहुत नीचे है? फ्रांस राष्ट्रकी अपनी सालाना आमदनी पच्चीस अरब फ्रेंककी है जबकि जर्मन लोगोंकी पचास अरब फ्रेंक है।... हमारे राष्ट्रको पैंतीस वर्षोंमें, यानी १८७९ से १९१४ तक, चालीस अरब फ्रेंककी कमी सहनी पड़ी है। और उसकी सम्पत्ति बानवे अरब फ्रेंककी न रहकर बावन अरब फ्रेंककी रह गई है। देशके समस्त अंचलोंमें खेतोंमें काम करनेवाले आदमियोंकी कमी है और किन्हीं-किन्हीं जिलोंमें तो बूढ़ोंको छोड़कर आदमी ही दिखाई नहीं देते।

वह आगे लिखता है:

> भ्रष्टाचार और प्रयत्नपूर्ण वंध्यत्वका अर्थ है समाजकी स्वाभाविक शक्तियोंको क्षीणता और सामाजिक जीवनमें वृद्ध पुरुषोंकी निर्बाध प्रधानता...। फ्रांसमें बच्चे तथा युवक मिलाकर एक हजारमें केवल १७० हैं, जबकि जर्मनीमें २२० और इंग्लैंडमें २१० हैं। युवा पुरुषोंकी अपेक्षा वृद्ध पुरुषोंका अनुपात ज्यादा है। इसके अतिरिक्त बचे हुए लोगोंमें भी अपने भ्रष्टाचारसे जवानीमें ही बुढ़ापा आ जानेके कारण नैतिक रूपसे तेजहत किसी जातिमें पाई जानेवाली सारीकी सारी कापुरुषता विद्यमान है।

लेखक यह भी कहता है :

फ्रांसीसी लोगोंमें से ज्यादातर लोग अपने शासकोंकी इस शिथिल नीतिके प्रति उदासीन हैं; क्योंकि वे यह मानते हैं कि लोगोंको — आदमीकी निजी जिन्दगी कैसी है, कैसी नहीं — इसे जाननेकी क्या गरज पड़ी है?

वह लियोपाल्द मोनोका यह निम्नलिखित कथन बड़े खेदके साथ उद्धृत करता है :

अत्याचारियोंको भला-बुरा कहने और उनके द्वारा पीड़ित लोगोंको अत्याचारसे बचानेके लिए लड़ना हो तो सराहनीय है; लेकिन उन लोगोंका क्या किया जाये जो भय अथवा लालचके कारण अपने विवेककी रक्षा नहीं कर सके हैं, जिनका साहस पीठ ठोके जाने या त्योरी बदलनेसे बढ़ या घट जाता है या उन आदमियोंका क्या करें जो शर्म और लिहाजको ताकपर रखकर, अपने कृत्योंका बखान करते हैं और उस वचनको तोड़ते हैं, जो कि उन्होंने अपनी यौवनावस्थामें स्वतःप्रेरणा और संजीदगीके साथ अपनी पत्नीको किया था; या उन आदमियोंका जो अपनी गृहस्थीको निरंकुश स्वार्थका शिकार बनाकर उसे दुःखमय बना डालते हैं? ऐसे मनुष्योंसे भला किसको क्या सहायता मिल सकती है?

फिर लेखक निष्कर्ष रूपमें कहता है :

इस प्रकार हम चाहे जिधर दृष्टि डालें हमें एक तो यह मालूम होगा कि हमारे नैतिक असंयमके कारण व्यक्ति, परिवार और समाजको भारी चोट पहुँची है; दूसरे यह कि हमने अपने सिर जबर्दस्त आफत मोल ले रखी है। हमारे युवकोंके व्यभिचारने, गन्दी पुस्तकों तथा तसवीरोंने, धनके लालचमें विवाह करने मिथ्याभिमान, विलासिता तथा तलाकने, कृत्रिम वन्ध्यत्व और गर्भपातने राष्ट्रको अपंग बना दिया है तथा उसकी बढ़ोतरी रोक दी है। व्यक्ति अपनी शक्तिको संचित नहीं रख सका है और बच्चोंकी जन्म-संख्यामें कमीके साथ-साथ सन्तान क्षीण और दुर्बल उत्पन्न होने लगी है। "यदि बच्चे पैदा कम हों तो वे अधिक स्वस्थ होंगे" यह उक्ति किसी कारणसे उन लोगोंको प्रिय लगा करती थी, जिन्होंने अपने आपको वैयक्तिक और सामाजिक जीवनके स्थूल भावमें परिमित मानकर यह समझ रखा था कि मनुष्योंके उत्पादनको भेड़-बकरियोंके नस्ल सुधारके समकक्ष माना जा सकता है। ओग्युस्त कौम्तने बड़े तीव्र कटाक्षके साथ कहा है कि सामाजिक दोषोंके ये नकली चिकित्सक व्यक्तियों तथा समाजके मानसकी गूढ़ जटिलताको समझनेमें सर्वथा असमर्थ हैं; यदि वे पशुओंके चिकित्सक होते तो अच्छा होता।

सच तो यह है कि अपनी उन तमाम मनोवृत्तियों, निर्णयों और आदतोंमें एक भी ऐसी नहीं है जो मनुष्यकी शख्सी और जमायती जिन्दगीपर इतना असर डालती हो जितना कि विषयभोगके साथ सम्बन्ध रखनेवाली वृत्ति, निर्णय

इत्यादि डालते हैं। चाहे वह उनकी रोकथाम करे चाहे वह स्वयं उनके प्रवाहमें बहने लग जाये, उसके कृत्योंकी प्रतिध्वनि सामाजिक जीवनके कोने-कोनेमें सुनाई पड़ेगी, क्योंकि यह प्राकृतिक नियम है कि गुप्तसे-गुप्त कार्य भी अपना असर डाले बिना नहीं रह सकता।

इसी रहस्यके बलपर हमारा किसी प्रकारकी अनीति करते समय यह मानना कि हमारे कुकृत्यका कोई दुष्परिणाम न होगा, एक प्रवंचना ही है। कोई असामाजिक कृत्य करते हुए हम अपनी हदतक तो स्वयं उसमें कोई दोष नहीं मानते क्योंकि हमारे कृत्योंका हेतु हमारा स्वार्थ या कोई सुख-लिप्सा ही होती है और समाजके विषयमें मन ही मन यह सोचते हैं कि उसे हम जैसे नगण्योंपर ध्यान देनेकी जरूरत ही क्या है, वह हमारे कुकृत्योंकी ओर देखेगा भी नहीं; और तिसपर हम इस बातकी आशा भी बनाये रखते हैं कि अन्य लोग तो विवेकशील रहकर साफपाक और सदाचारी ही बने रहेंगे। सबसे बुरी बात तो यह है कि हमारी यह खामखयाली, जबतक हमारा आचरण हमारे लिए सामान्य नहीं हो जाता, अपवाद-स्वरूप ही होता है तबतक, प्रायः सच ठहरती है और फिर इस प्रकार सफलता मिल जानेपर उसके मदमें आकर हम अपना वह दुराचरण रूढ़ कर लेते हैं और कोई उँगली उठाता है तो हम उसे न्यायसंगत ठहराते हैं। परन्तु ध्यान रहे कि पतनको पतन न गिनने योग्य मनकी स्थिति बन जाना ही हमारी सबसे बड़ी सजा है।

फिर कोई दिन ऐसा आता है कि जब इस सम्बन्धमें हमारा आचरण दूसरोंके लिए कर्त्तव्यच्युत होनेका उदाहरण बन जाता है। हमारा हरएक कुकृत्य दूसरोंके मनमें सदाचारके प्रति उस प्रेमको अधिक कठिन और धैर्यका काम बना देता है जिसे हम 'दूसरों' में विद्यमान देखते रहना चाहते हैं। फल यह होता है कि हमारा पड़ोसी भी धोखा खाते-खाते ऊब कर हमें आदर्श मानकर चलनेके लिए तत्पर हो उठता है। बस, अधःपतन प्रारम्भ हो जाता है और हर आदमीको अपने कुकृत्योंके परिणामोंका अनुमान होने लगता है और वह यह भी जान सकता है कि उत्पन्न परिस्थितिमें उसका उत्तरदायित्व कहाँतक है. . .।

वह गुह्य कार्य अपनी उस गुफासे — जिसमें हम उसे बन्द समझते थे, निकल पड़ता है। एक प्रकारकी अ-भौतिक गतिसे, अणुके टूटने जैसे-ढंगसे वह सभी क्षेत्रोंमें व्याप्त हो जाता है और हर आदमीको एक-दूसरेके कियेका फल भोगना पड़ता है तथा सड़ी मछली सारे तालाबको गन्दा कर देती है। प्रत्येक कृत्यका सामाजिक जीवनके सुदूर कोनों-कोनोंमें भी वैसा ही असर होता है जैसे किसी जलाशयमें पत्थर फेंकनेसे पानीकी सारी सतहपर मण्डल बनते और फैलते चले जाते हैं।

अनीतिसे जातिके रसस्रोत अविलम्ब सूख जाते हैं और उसके युवक क्षीण हो जाते हैं; वह उनका नैतिक और शारीरिक सत्व चूस लेती है।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, १५-७-१९२६

१५०. एक महान देशभक्त

श्री उमर सोवानी अचानक अकाल मृत्युके ग्रास हो गये। एक महान देशभक्त और कार्यकर्त्ता हमारे बीचसे उठ गया। एक समय वम्वईमें श्री उमर सोवानीकी तूती बोलती थी। उनके दिन बिगड़नेसे पहले वम्वईका कोई भी सार्वजनिक कार्य ऐसा न होता था जिसमे उनका हाथ न हो। वह कोई वक्ता न थे। उन्हे भाषण देना सख्त नापसन्द था; वह कभी मंचपर सामने नहीं आते थे, मंचको तैयार भर कर देते थे। वम्वईके सौदागरोमे वे वहुत प्रिय थे। उनकी सूझ प्रायः वहुत तीक्ष्ण और वेलाग हुआ करती थी। उनकी उदारता दोपकी हदतक पहुँच जाती थी। पात्र-कुपात्र सभीको वे मुक्तहस्त दान दिया करते थे। प्रत्येक सार्वजनिक कार्यके लिए उनकी थैलीका मुँह खुला रहता था। उन्होंने जैसा कमाया वैसा ही खर्च भी किया। उमर सोवानी जो काम करते हद दर्जेतक करते। उन्होंने सट्टेका काम भी हद दर्जेतक किया और इसीसे उनपर तवाही आ गई। एक महीनेमे ही उन्होंने अपनी आमदनीको दुगना कर लिया और दूसरे ही महीने उनका दिवाला भी निकल गया। उन्होंने अपनी हानिको तो वहादुरीसे सह लिया, परन्तु उनके स्वाभिमानने उन्हें सार्वजनिक कार्योसे हटा लिया, क्योकि अव इन कामोंमे खर्च करनेके लिये उनके पास लाखों रुपया नही वच रहा था। वह मध्य मार्गपर चलना जानते ही नही थे। यदि चन्देकी फेहरिस्तमे सवसे पहले वे नही रह सकते तो वस फिर वे उस फेहरिस्त-की तरफ आँख उठाकर भी नही देखेंगे। इसीलिए गरीवीके आते ही वे सार्वजनिक कार्योसे हाथ खीचकर वैठ गये। जहाँ-कही और जव-कभी कोई सार्वजनिक कार्य होगा उमर सोवानीका नाम याद आये विना न रहेगा और न उनकी देशसेवा ही कोई भूल सकेगा। उनका जीवन हर अमीर नौजवानके लिए आदर्श और चेतावनी दोनो है। उनका जोशभरा देशभक्तिका कार्य आदर्श वनानेके योग्य है। उनका जीवन हमे वताता है कि रुपये-पैसेवाला आदमी भी एक अच्छा आदमी हो सकता है और अपने पैसेको सार्वजनिक कामोंमे लुटा सकता है। उनका जीवन अमीर नौजवानोको जो वड़े-वड़े काम करनेकी धुनमे रहते है, चेतावनी भी देता है। उमर सोवानी कोई मूर्ख व्यापारी नही थे। जिस समय उनको व्यापारमे हानि हुई उस समय और भी वहुतसे व्यापारियोंको हानि हुई थी। उन्होंने रुईकी जो अन्धाधुन्ध खरीद की थी उसको हम मूर्खता नहीं कह सकते। वे वम्वईके व्यापारियोंमे अच्छा स्थान रखते थे। फिर भी उन्होने इस प्रकार रुपया क्यों लगाया? वे तो देशभक्तकी हैसियतसे प्रतिष्ठित वने रहना अपना कर्त्तव्य समझते। उनका जीवन और उनका नाम जनताकी जागीर था

और उन्हें बहुत सोच-समझकर काम करना चाहिए था। जो चला गया है उसके बारेमें कुछ कहना नहीं चाहिए इस बातको मैं जानता हूँ। और फिर काम बिगड़ जानेके बाद सब लोग अक्लमन्दीकी बातें बताया करते हैं; परन्तु मैं यह सब उनके दोष ढूँढ़नेके अभिप्रायसे नही कह रहा हूँ। मै तो इतना ही चाहता हूँ कि हम सब इस देशभक्तके जीवनसे शिक्षा लें। आनेवाली पीढ़ियोको किसी कामके बिगड़ जानेसे शिक्षा लेनी ही चाहिए। दूसरोकी गलतियोसे भी हमें कुछ सीखना ही चाहिए। हम सबको उमर सोबानीकी तरह अपने हृदयमे देशप्रेम रखना चाहिए। हमे दान देनेमे उमर सोबानी बनना चाहिए। हम सबको उनकी तरह धार्मिक द्वेषसे दूर रहना चाहिए। परन्तु हमें उनकी तरह बेपरवाह और असावधान होनेसे बचना चाहिए। यही इस देशभक्तने हम सबके लिए वसीयत छोड़ी है और हमे उस वसीयतसे लाभ उठाना चाहिए।

मेरी उनके वृद्ध पिता और उनके परिवारके साथ अत्यन्त सहानुभूति है और मैं उनके साथ उनके शोकमे सम्मिलित हूँ।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, १५-७-१९२६

१५१. अहिंसा — सबसे बड़ी ताकत[1]

[१५ जुलाई, १९२६][2]

सबसे बड़ी ताकत जो मानवको प्रदान की गई है, अहिंसा है। सत्य उसका एकमात्र लक्ष्य है। क्योंकि ईश्वर सत्यसे इतर कुछ और नही है। लेकिन सत्यकी प्राप्ति अहिंसाके अतिरिक्त किसी अन्य उपायसे नही हो सकती; कभी नही होगी।

जो गुण मानव और अन्य सभी पशुओके बीचका अन्तर स्पष्ट करता है, वह मानवमें अहिंसक रह सकनेकी क्षमता; और मानव जिस हदतक अहिंसाका पालन करता है, उसी हदतक अपने लक्ष्यके निकटतक पहुँचता है। उससे आगे नही। निस्सन्देह, उसको कई और गुण भी प्रदान किये गये हैं। परन्तु यदि वे मुख्य गुण अर्थात् अहिंसाकी भावनाके विकासमे मदद नहीं देते तो वे उसे पशुसे भी निचले उस स्तरतक घसीट कर ले जानेका काम ही करते हैं, जिस स्तरसे वह अभी-अभी उठकर ऊपर आया ही है।

जबतक अहिंसाकी भावना करोड़ों स्त्री-पुरुषोंमे प्रधान नहीं बन जाती तबतक शान्ति-शान्तिकी गुहार एक अरण्यरोदन ही रहेगी।

राष्ट्रोंके सशस्त्र संघर्षसे हम भयाक्रान्त हो जाते हैं। लेकिन आर्थिक संघर्ष उस सशस्त्र संघर्षसे किसी तरह कम नहीं है। सशस्त्र संघर्ष मानो एक शल्य-चिकित्सा है और

१. यह लेख **वर्ल्ड टुमॉरो** के अक्तूबर अंकसे हिन्दूमें उद्धृत किया गया था।
२. यह लेख १५-७-१९२६ को किर्बी पेजको लिखे गये पत्रके साथ भेजा गया था। देखिए अगला शीर्षक।

आर्थिक संघर्ष दिनोंतक चलनेवाली पीड़ा। युद्धसाहित्य कहलानेवाले साहित्यमें युद्धके जो परिणाम वर्णन किये जाते हैं, इसके दुष्परिणाम उनसे कम भयानक नहीं हैं। हम इस दूसरे युद्ध (आर्थिक) को अधिक महत्त्व नहीं देते क्योंकि हम इसके घातक प्रभावोंके आदी हो गये हैं।

भारतमें हममें से बहुतेरे लोग रक्तपात होते देखकर काँप उठते हैं। हममें से बहुतेरे गोवधको लेकर नाराज होते हैं, लेकिन धीरे-धीरे लगातार जो यन्त्रणा मनुष्यों और पशुओंको लोभके वश होकर दी जा रही है, उसपर हमारी दृष्टि ही नहीं जाती। तिल-तिल होनेवाली इस मौतके हम आदी हो गये हैं और इसको कुछ गिनते ही नहीं।

युद्ध-विरोधी आन्दोलन सर्वथा उचित है। मैं उसकी सफलताकी कामना करता हूँ। लेकिन मैं अपने मनको कुरेदनेवाली यह आशंका व्यक्त किये बिना भी नहीं रह सकता कि यदि यह आन्दोलन समस्त बुराइयोंके मूल कारण — मनुष्यके लोभपर कुठाराघात नहीं करता तो वह असफल हो जायेगा।

क्या अमेरिका, इंग्लैंड और पश्चिमके अन्य महान राष्ट्र तथाकथित अधिक दुर्बल या असभ्य जातियोंका शोषण जारी रखते हुए भी उस शान्तिको हासिल करनेकी आशा कर सकते हैं जिसके लिए सारा संसार ललक रहा है? या क्या अमेरिका आदि एक-दूसरेका शोषण और व्यावसायिक स्पर्धा जारी रखते हुए भी विश्वको शान्ति बनाये रखनेका आदेश देनेकी धृष्टता करेंगे?

जबतक भावना नहीं बदल जाती, बाह्य स्वरूप भी नहीं बदला जा सकता। बाह्य स्वरूप तो भीतरी भावनाकी अभिव्यक्ति मात्र है। ऊपरी तौरसे हम स्वरूप बदल सकनेमें शायद सफल हो जायें, लेकिन यदि भीतरी भावना अपरिवर्तित रहे तो वह परिवर्तन अवास्तविक — नाममात्रका ही होगा। पुती हुई शुभ्र दिखाई देनेवाली कब्र आखिरकार गल रहे मांस और अस्थियोंको ही ढांकती है।

पश्चिममें युद्धकी भावनाको निर्मूल करनेका जो महान प्रयत्न किया जा रहा है मेरा मंशा उसे महत्त्व न देने या कम महत्त्व देनेका कदापि नहीं है। मेरा मंशा तो एक ऐसे समानधर्मी सहकर्मीके नाते सतर्क रहनेकी सलाह देना-भर है, जो स्वयं भी अपने विनम्र ढंगसे इसी उद्देश्यकी प्राप्तिके लिए प्रयत्नशील है, भले ही उसका ढंग कुछ भिन्न है और क्षेत्र निस्सन्देह अपेक्षाकृत सीमित है। फिर भी यदि मेरा प्रयोग इस अपेक्षाकृत छोटे क्षेत्रमें सफलता प्राप्त करले और जो लोग व्यापक क्षेत्रमें काम कर रहे हैं यदि वे तबतक उतने सफल न हो पायें तो इससे और कुछ नहीं तो बड़े क्षेत्रमें वैसे ही प्रयोगके लिए रास्ता तो तैयार हो ही जाता है।

मैं जिस सीमित क्षेत्रमें काम कर रहा हूँ, उसमें मैंने देखा कि जबतक मैं स्त्री-पुरुषोंके दिलोंको नहीं छूता तबतक मैं कुछ नहीं कर सकता। मैं यह भी मानता हूँ कि जबतक घृणाकी भावना किसी-न-किसी रूपमें बनी रहती है, तबतक शान्ति स्थापित कर सकना, या शान्तिपूर्ण उपायों द्वारा अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकना असम्भव है। यदि हम अंग्रेजोंसे घृणा करते हैं तो हम आपसमें एक-दूसरेसे भी प्रेम नहीं कर सकते। हम जापानियोंसे प्रेम और अंग्रेजोंसे घृणा नहीं कर सकते। हमें पूरी तरह प्रेमके नियमके अधीन होना होगा, या फिर उसे बिलकुल तिलांजलि देनी पड़ेगी।

यदि हमारे आपसी प्रेमका आधार दूसरोंके प्रति घृणा हो तो वह तनिक-सा बोझ पड़ते ही टूट जायेगा। सच तो यह है कि ऐसा प्रेम कभी सच्चा प्रेम नहीं होता। वह तो शस्त्र-रक्षित शान्ति जैसा है। ऐसा ही पश्चिमके युद्धविरोधी महान आन्दोलनका हाल भी हो जायेगा। युद्ध केवल तभी बन्द होगा जब मानवकी अन्तरात्मा इतनी ऊँची उठ जायेगी कि जीवनके हर क्षेत्रमें मानव प्रेमके नियमको ही निर्विवाद रूपसे सर्वशक्तिमान स्वीकार कर लेगा। कुछ लोगोंका कहना है कि ऐसा कभी नहीं होगा। अपने भौतिक अस्तित्वके रहते मैं अपना यह विश्वास कायम रखूँगा कि कभी-न-कभी ऐसा अवश्य होगा।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, ८-११-१९२६

१५२. पत्र: किर्बी पेजको

आश्रम
साबरमती
१५ जुलाई, १९२६

प्रिय मित्र,

आपके ५ मईके पत्र तथा मेरे ९ जूनके तारके[1] सिलसिलेमें मैं आपको अहिंसाके विषयपर अपना लेख[2] भेज रहा हूँ।

आप मुझसे २,५०० शब्दका लेख चाहते हैं। मैं अभी इतना बड़ा लेख लिखनेकी नहीं सोच सकता। इसलिए जो-कुछ थोड़ा-बहुत मैं लिख सका हूँ, उसे ही भेज देनेके लिए आप मुझे क्षमा करेंगे। लेकिन यह लेख मैं आपके दिये हुए समयसे काफी पहले भेज रहा हूँ, इसलिए आशा है कि आपको उसके छोटे होनेसे असुविधा नहीं होगी। यों सच पूछे तो मैंने जितना लिखा है, उससे मैं सन्तुष्ट नहीं हूँ। यदि हो सकता तो मैं उसे और भी सारगर्भित संक्षिप्त रूपमें रखता।

हृदयसे आपका,

संलग्न: १ (३ पृष्ठ)
श्री किर्बी पेज
सम्पादक
"द वर्ल्ड टुमारो"
३४७, मडिसन एवेन्यू
न्यूयॉर्क
संयुक्त राज्य अमेरिका

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०७८१) की फोटो-नकलसे।

१. उपलब्ध नहीं है।
२. देखिए पिछला शीर्षक।

१५३. पत्र : कुरूर नीलकण्ठन नम्बूद्रिपादको

आश्रम
साबरमती
१५ जुलाई, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र और आपका तैयार किया हुआ निबन्ध मिला। क्या आप 'यंग इंडिया' नही पढ़ते? उसमे खादीकी पिछले पाँच वर्षोकी प्रगतिपर प्रकाश डालते हुए तथ्य और आँकड़े दिये गये हैं। यदि आप चालू वर्षकी ही 'यंग इंडिया'की अपनी फाइल उठा कर देख ले, तो आपको उसमे सभी आँकड़े मिल जायेंगे। 'यंग इंडिया' के पृष्ठोसे सारे आँकड़े यही इकट्ठे कराना यहाँके लोगोंकी कार्य-शक्तिपर अतिरिक्त भार डालना होगा, जबकि उनको अपने रोजके कामसे ही फुर्सत नहीं मिल पाती।

स्कूलोंमे वैज्ञानिक ढंगसे जो प्रयोग किया जा रहा है, वह श्रीमती अनसूयाबाईकी देखरेखमें चलनेवाले २४ स्कूलोमें हो रहा है। इन स्कूलोंमें १,६०० लड़के-लड़कियोंकी उपस्थिति है। सारी कताई तकलीसे की जाती है। यद्यपि स्कूलोके सभी शिक्षक तकलीसे कातना जानते हैं, फिर भी उन्हें सब बच्चोंकी तरह कातना पड़ता है। उनके कातनेके लिए कुछ निश्चित समय अलग रखा गया है। और इस. तरह काते हुए सूतको खादीका रूप दे दिया जाता है, जिसे कई जगहोंपर तो खुद बच्चे ही इस्तेमाल करते है।

अनुभवसे हमने यही सीखा है कि स्कूलोके लिए तकली ही सबसे अच्छी रहती है। तकली हल्की रहती है। वह बिगड़ती नही है। सस्ती है और ज्यादा जगह नहीं घेरती है तथा हजारों लोग उससे एक साथ कताई कर सकते हैं; और यद्यपि चरखेकी अपेक्षा एक तकलीपर प्रति घंटा सूत बहुत कम काता जाता है, कुल मिलाकर तकलीपर कताईका परिणाम स्कूलोंमे चरखेकी कताईके परिणामकी अपेक्षा केवल इस कारण बहुत ज्यादा होता है कि सभी बच्चोसे एक साथ चरखेपर कताई नही कराई जा सकती; और एक स्कूलमे केवल कुछ सीमित संख्यामें ही चरखे मुहैया किये जा सकते है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत कुरूर नीलकण्ठन नम्बूद्रिपाद
त्रिचूर
(कोचीन राज्य)

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११२०१) की माइक्रोफिल्मसे।

१५४. पत्र : सलिवतीश्वरन्‌को

[१५ जुलाई, १९२६][1]

प्रिय मित्र,

आपका पत्र[2] मिला। मैं नहीं समझता कि आपके सुझाये हलमें कोई नई बात है।

हृदयसे आपका,

[सलिवतीश्वरन्
७३, इस्साजी स्ट्रीट
राममंदिरके समीप
वडगादी
बम्बई ३]

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११०७८) की फोटो-नकलसे।

१५५. पत्र : बी० जी० हॉर्निमैनको

आश्रम
साबरमती
१५ जुलाई, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र[3] मिला। मुझे आपको तार[4] देना ही पड़ा; और नहीं तो मात्र इसलिए कि मैं किसी अप्रत्याशित घटना या स्वास्थ्य-सम्बन्धी हेतुके अतिरिक्त अन्य

१. सलिवतीश्वरन्‌का १४ जुलाई, १९२६ का पत्र उसपर दी गई टिप्पणीके अनुसार १५ जुलाईको मिला था। अनुमानतः उसका उत्तर उसी दिन लिखा गया था।

२. सलिवतीश्वरन्‌ने हिन्दू-मुस्लिम एकताकी समस्याका उन्हें जो हल सूझा उसके बारेमें कुछ पंक्तियाँ लिखकर गांधीजीकी दो टूक राय मांगी थी जिससे उनको ऐसी समस्याओंके अध्ययनमें और उनके हल निकालनेमें प्रोत्साहन मिल सके।

३. हॉर्निमैनने १३ जुलाईको पत्र लिखते हुए गांधीजीसे आग्रह किया था कि वे उमर सोबानीकी स्मृतिके सम्मानमें १९ जुलाईको होनेवाली सभाकी अध्यक्षता करें।

४. यह उपलब्ध नहीं है।

किसी भी कारणसे अहमदाबादसे बाहर कदम न रखनेके लिए प्रतिज्ञाबद्ध हूँ। आशा है आप मेरी स्थितिको समझकर, मुझे क्षमा देंगे[1]।

हृदयसे आपका,

श्री बी० जी० हॉर्निमैन
'इंडियन नेशनल हैरॉल्ड'
नवसारी बिल्डिंग
हॉर्नबी रोड
बम्बई

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०९६२) की फोटो-नकलसे।

१५६. पत्र : आ० टे० गिडवानीको

आश्रम
साबरमती
१५ जुलाई, १९२६

प्रिय गिडवानी,

आपका पत्र और तकुआ भी मिला। मैंने तकुओंके बारेमें उप-प्रधानाचार्यको भी लिखा है। तकुए जितने अच्छे बनने चाहिए, ये उतने अच्छी किस्मके नहीं हैं। यदि अच्छे तकुए वहाँ बनने लगें तो बड़ी सुविधा हो जायेगी।

मुझे खुशी है कि आप वहाँ कताई शुरू करा रहे हैं। आपके यहाँके सभी शिक्षकोंको तकलीपर कातना सीख लेना चाहिए। लड़कोंको उनसे ज्यादा अच्छी तरह कोई और व्यक्ति कातना नहीं सिखा सकता। यदि आपको एक शिक्षककी सचमुच जरूरत है तो आप बाबू ब्रजकृष्ण,[2] कृष्ण-निवास, कटरा खुशालराय, दिल्लीको लिखिए और मुझे भरोसा है कि वह आयेंगे और आपकी मदद करेंगे। वह बड़े उत्साही व्यक्ति हैं। शायद आप उन्हें जानते हैं। वह बड़े ही भले आदमी हैं और कुछ दिनोंके लिए सहर्ष आ जायेंगे। आप निश्चय ही बालकोंसे आग्रह कीजिए कि वे स्वयं रुई धुनें और अपनी पूनियाँ बनायें। कताईके साथ-साथ रुईकी धुनाईका काम चलना ही चाहिए।

आपने भोजनके बारेमें मुझसे एक सवाल पूछा है। मैं समझता हूँ कि आहारके शरीरपर जो प्रभाव पड़ते हैं, वे तो परिणाम ही हैं, उनको मांसाहारसे दूर रहनेके कारणोंके रूपमें तो नहीं रखा जा सकता। क्योंकि यदि यह साबित भी किया जा

१. हॉर्निमैनने गांधीजीको फिर आग्रह करते हुए लिखा था कि मामलेपर पुनः विचार करें; देखिए "पत्र : बी० जी० हॉर्निमैनको", १७-७-१९२६।
२. ब्रजकृष्ण चाँदीवाला।

सके कि मांसाहारसे शरीरपर कोई बुरा प्रभाव नही पड़ता, तब भी अहिंसाके सिद्धान्तके आधारपर उसका निषेध तो किया ही जायेगा।

आशा है कि अबतक आपको नरहरिभाईकी[1] रिपोर्ट मिल गई होगी।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत आ० टे० गिडवानी
प्रेम महाविद्यालय
वृन्दावन

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११२६७) की माइक्रोफिल्मसे।

१५७. पत्र : देवरत्नको

आश्रम
साबरमती
१५ जुलाई, १९२६

भाई देवरत्नजी,

आपका पत्र मिला। हिंदु मुस्लीम प्रश्नके लिये मैं बहुत सोचता हूं, परंतु मैं जानता हूं कि इस वक्त मेरा कुछ भी कहना निरर्थक है। अब निश्चय रखें कि जब मुझको ऐसा प्रतीत होवे कि मैं कुछ भी कर सकता हूं तब तो मैं अवश्य वह उपाय जनताके सामने रखूंगा। हां, इतना मैं जानता हूं सही कि हिन्दुधर्मकी रक्षा बगैर तपश्चर्याके हरगीज न होगी। उसके लिये मैं यथोचित विचार और कार्य कर रहा हूं।

मूल प्रति (एस० एन० १२२००) की फोटो-नकलसे।

१५८. पत्र : बलवन्तराय भगवानजी मनियारको

आश्रम
साबरमती
बृहस्पतिवार, १५ जुलाई, १९२६

भाई बलवन्तराय,

लगता है, तुम्हारे पास पैसेकी बहुतायत है। परन्तु तुम कोई निश्चय भी कर सकते हो, ऐसा मुझे नहीं लगता। आश्रम नियमावलिकी प्रतियाँ समाप्त हो गई हैं। लेकिन यहाँका कार्यक्रम यह है:

चार बजे उठना। पाँच बजेतक प्रार्थनामें भाग लेना। छः बजेतक स्वाध्याय करना। जो स्वयं अपना भोजन बनाते हों, वे अपना भोजन बना लें। सात बजेसे

१. नरहरि परीख।

सामुदायिक काम शुरू हो जाता है। उसमें टट्टी साफ करना, कातना, बुनना, रास्तोंकी सफाई करना, भोजन पकाना और अन्य कई कार्य आते हैं। साढ़े दस बजे खानेकी घंटी बजती है और बारह बजेतक सब लोग भोजनसे निवृत्त हो जाते हैं। उसके बाद फिर काम शुरू होता है जो साढ़े चार बजेतक चलता है। साढ़े चार बजेसे सात बजेतक फिर भोजन पकाना और खाना-पीना होता है। सात बजेसे आठ बजेतक सायंकालीन प्रार्थना होती है। उसके बादके एक घंटेमें जो पढ़ना चाहे पढ़े अथवा चिन्तन करना चाहे चिन्तन करे। नौ बजे सबको सो जाना होता है। आश्रममें रहनेवालोंको सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अन्य यम-नियमोंका मनसा-वाचा-कर्मणा पालन करनेका प्रयत्न करना चाहिए। उन्हें खादी पहननेका व्रत भी पालना चाहिए। सभीको यज्ञके रूपमें कमसे-कम आधा घंटा सूत कातना चाहिए और अस्पृश्यताको अधर्म मानकर उसका त्याग करना चाहिए, आदि, आदि।

गुजराती प्रति (एस० एन० १२१९८) की माइक्रोफिल्मसे।

१५९. पत्र : हरिभाऊ उपाध्यायको

आश्रम
साबरमती
१५ जुलाई, १९२६

भाई हरिभाऊ,

आपको अध्यापक प्यारेलालजीका खत भेजता हूं। उस बारेमें तलाश करके कितने अंशमे सत्य है लिखें।

उज्जैनसे आपका खत मिल गया था। मैंने मैसोर दिवानका संमतिके लिये खत भेजा था। संमति मिल गई है। क्या मैं वह रिपोर्ट आपको भेज दू या पुस्तकेजीको?

चि० मार्तण्डने कल खत लिखा होगा। उसके लिये निश्चित रहना।

मूल प्रति (एस० एन० १२२०१) की माइक्रोफिल्मसे।

१६०. पत्र: एस्थर मेननको

आश्रम
साबरमती
१६ जुलाई, १९२६

रानी बिटिया,

तुम्हारा पत्र मिला। १० रुपयेके बारेमें इतनी सारी सफाई क्यों? मुझे १० रु० या कुछ भी भेजनेके लिए यदि तुम काट-कसर करोगी तो मुझे इससे दु:ख होगा। मैंने तुमको इसके बारेमें सिर्फ इसलिए लिखा था कि आश्रममें यह प्रश्न उठा था और इसकी चर्चा चली थी कि रुपया आया है या नहीं और यदि आया है तो क्या वह गलतीसे कहीं रख दिया गया है। यदि तुम उस खद्दरको रख लो और उसकी कीमत भेजनेकी बात न सोचो तो मुझे अधिक प्रसन्नता होगी। आखिरकार तुम्हें आश्रमवासियोंके भण्डारसे पुराना खद्दर ही तो भेजा गया है। यदि तुम्हें और खद्दरकी आवश्यकता हो तो निस्संकोच लिखना।

नैनीके[1] विकासके बारेमें जानकर मुझे खुशी हुई। मगर बड़ी होकर वह तीनों भाषाएँ समानरूपसे अच्छी बोल सके, तो यह एक बड़ी सफलता होगी। मुझे लगता है कि उसने जिद्दीपन अपनी माँसे पाया है और मृदुलता अपने पितासे। तुम तो शायद इससे उल्टा ही कहोगी?

अभीसे यह कहना कठिन है कि अगले वर्ष मैं क्या करूँगा। लेकिन यदि मैं दक्षिण आया तो पोर्टो नोवो अवश्य आऊँगा।

तुम सबको स्नेह,

तुम्हारा,
बापू

श्रीमती एस्थर मेनन
(पोर्टो नोवो)
एस० आई० आर०

नेशनल आर्काइव्ज ऑफ इंडियामें सुरक्षित अंग्रेजी पत्रकी फोटो-नकलसे।
माई डियर चाइल्ड

1. एस्थर मेननकी बड़ी कन्या।

१६१. पत्र : जफर-उल-मुल्क अल्वीको

आश्रम
साबरमती
१६ जुलाई, १९२६

प्रिय दोस्त,

आपका खत मिला। आश्रममें अपने आनेकी बाबत आपने जो-कुछ लिखा है उसपर मैंने गौर किया।

आपने जो योजना भेजी है उससे तो मुझे यह अकादमी एक अर्ध-सरकारी संस्था लगती है। सच पूछिये तो आपको क्या करना चाहिए इसका सबसे अच्छा फैसला तो आप खुद ही कर सकते हैं। अगर मैं आपकी जगह होता तो ऐसी संस्थामें, चाहे वह कितनी ही फायदेमन्द क्यों न होती, कभी शामिल न होता। हमारे असहयोगका रहस्य यही है कि हम इस पद्धतिकी उन सुख-सुविधाओंको त्याग दें जिनका भोग करना हमारे लिये जरूरी नहीं है। हमने असहयोग शुरू करते समय स्वेच्छासे कुछ सुख-सुविधाओंका त्याग करना तय कर लिया था। शिक्षा-संस्थाएँ उनमें से एक थीं। लेकिन मौजूदा हालातमें जबकि असहयोग व्यक्तियोंतक ही सीमित है, हर आदमीको अपने लिये स्वयं ही निर्णय करना चाहिए। और जिस कामको करनेमें किसीकी अन्तरात्मा कचोटती न हो, उस मामलेमें उसे असहयोग करना निस्संकोच छोड़ देना चाहिए।

यदि मैं हरएक स्वराज्यवादीके दिलमें कौंसिल छोड़नेके लिए जोश पैदा कर सकता तो मैं अपना सारा जोर इसीमें लगा देता। मैं जानता हूँ कि इससे लाभ भी बहुत होता। इसी तरह जो अपरिवर्तनवादी फिरसे अदालतमें जाकर वकालत करते हैं या कौंसिलोंमें जाते हैं वे अपरिवर्तनवादी नहीं हैं। लेकिन मैं नहीं चाहता कि आप आँख मूँदकर असहयोगका पालन करें या किसी भी संस्थाके, चाहे आप उसकी कितनी ही इज्जत क्यों न करते हों, 'फतवे'को ही सिरमाथे लेकर चलें। अपने हर कामको जमीरकी कसौटीपर कसें-परखें और जिसके लिए आपका दिल गवाही दे उसीको बेहिचक करें।

हृदयसे आपका,

श्री जफर-उल-मुल्क अल्वी
लखनऊ

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११०७७ ए) की माइक्रोफिल्मसे।

१६२. पत्र : डी० एन० बहादुरजीको

आश्रम
साबरमती
१६ जुलाई, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मेरे पास मार्गदर्शिका जैसी कोई चीज नहीं है जिससे आप यह जान सकें कि सूतमें अपेक्षित मजबूती किस प्रकार लाई जा सकती है। सूतके बलकी मजबूती मापनेका सरलतम तरीका यही है कि कातते समय सूतकी कूकड़ी जितनी कस कर लपेट सकें, लपेटें। यदि कता सूत इस कसावको सहने लायक मजबूत नहीं है तो कसी कूकड़ी बनाना असम्भव है। चरखेके चक्कर गिननेकी शायद ही जरूरत पड़ती हो। मेरे बताये तरीकेसे[1] सूतकी जाँच करनेके बाद आप अपने-आप मजबूत सूत कातने लगेंगे। इसमें सन्देह नहीं कि चरखेके अधिक चक्कर कातनेवालेकी गति बढ़ा देते हैं, लेकिन जरूरी नहीं कि इससे सूतकी मजबूती भी बढ़े। कितने अन्दाज और तनावके साथ आप सूत खींचते हैं, उसीपर सूतकी मजबूती रहती है। और बल तो सूतके खींचनेके साथ-साथ पड़ते जाते हैं। तकुएपर निर्भर सूत लपेटनेके पहले चरखेके अन्तिम दो-एक चक्करसे बल पूरे हो जाते हैं।

सूत इकसार है या नहीं, यह तो देखनेसे ही पता चल सकता है। सूतका महीन होना बढ़िया तकुए, रुईके रेशे और पूनियाँ कैसी बनी हैं, इसीपर निर्भर करता है।

क्योंकि, आप वैज्ञानिक ढंगसे कताई कर रहे हैं, इसलिए मेरा सुझाव है कि आप धुनाई भी सीख लें। मेरी रायमें, धुनना श्रमसाध्य होनेपर भी बढ़िया धन्धा है।

आपने कातना कैसे आरम्भ किया, इसका विवरण बहुत रोचक है। आपका परोक्ष उद्देश्य कुछ भी हो, जिस बातसे आपको कातनेकी प्रेरणा मिली है वह हर-एकके लिए पूर्णतः प्रेरणास्पद होनी चाहिए। मुझे खुशी है कि आप करोड़ों निरीह लोगोंके लिए चरखेके आर्थिक महत्त्वको समझते हैं। जब भी आप चाहें अपना सूत जाँचके लिए मेरे पास भेजनेमें संकोच न करें।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९६६७) की माइक्रोफिल्मसे।

१. देखिए, पत्र : डी० एन० बहादुरजीको, २७-६-१९२६।

१६३. पत्र : जमनालाल बजाजको

आश्रम
साबरमती
शुक्रवार, आषाढ़ सुदी ६, १६ जुलाई, १९२६

चि० जमनालाल,

गिरजाशंकर जोशीकी जमीन, जिसे खरीदनेका हमारा विचार था, आज ले ली गई होगी। यह जमीन कुल मिलाकर १९ बीघा है। वे उसमें से बिलकुल छोरकी एक बीघा जमीन अपने पास रखना चाहते हैं। १८ बीघा जमीन और इमारतें २१,००० रुपयेमें खरीदनी हैं। यदि यहाँ वे स्वयं अथवा उनका कोई किरायेदार रहे तो हमारे कुएँसे पानीका उपयोग वे कर सकेंगे। जब वे शेष एक बीघा जमीन भी बेच देंगे तो पानीके उपयोगका यह अधिकार समाप्त हो जायेगा। बेचनेसे पहले पंच जितनी कीमत निश्चित करें, हम उसे उतनेमें ले सकेंगे। बयानेके रूपमें ५,००० रुपये अभी देने हैं और बाकी १६,००० एक महीनेमें। जमीन किसके नाम लेनी है, बयनामेमें यह अभी नहीं लिखा गया है। मुझे तीन बातें सूझती हैं — (१) आश्रमके नाममें, (२) गोरक्षा खातेमें, (३) तुम्हारे नाममें। तुम लेना चाहो तो तुम ले लो। मेरा विचार यह है कि यह जमीन आश्रमके नाम ले ली जाये और डेरीके अथवा ठीक लगे तो चमड़ेके कामके लिए इसका उपयोग किया जाये। यह भी हो सकता है कि आश्रमकी किसी दूसरी जमीनमें गोशाला या चर्मालय आदि खोले जायें, और यह जमीन रहने और खेती करनेके काममें लाई जाये। यहाँ अभी तो मकानकी बहुत तंगी है। जमीन चाहे जिसके नाम ली जाये परन्तु रुपयोंका बन्दोबस्त तो तुम्हें ही करना होगा।

इस बारेमें जुगलकिशोरजी[1] और घनश्यामदासजीसे मिलना ठीक लगे तो मिल लेना। ऐसा लगता है कि चौमासा बीत जानेपर कुछ और मकान तो बनवाने ही पड़ेंगे। रुपयेके लिए क्या करना होगा और किसके नाम दस्तावेज लिखाया जायेगा, इस विषयमें तार देना। यहाँ बरसात बहुत अच्छी हुई है। लगभग रोज ही बाढ़ आ जाती है।

वहाँ[2] हिन्दू-मुस्लिम कलह दिनपर-दिन बढ़ता ही जाता है। इसके निवारणका उपाय निकाल सको तो निकालो। मुझे सब स्थिति सविस्तार लिखो।

गुजराती प्रति (एस० एन० १२२०२) की फोटो-नकल तथा जी० एन० २८६८ से भी।

१. जुगलकिशोर बिड़ला।

२. जमनालालजी उन दिनों कलकत्तामें थे।

१६४. पत्र : मोहनलाल पण्ड्याको

आश्रम
साबरमती
शुक्रवार, १६ जुलाई, १९२६

भाईश्री ५ मोहनलाल पण्ड्या,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम गुणाव हो आये हो या अभी जानेवाले हो? मैंने तुम्हारा पत्र वल्लभभाईको दिखाया था। इस बारेमे क्या किया जा सकता है, उन्हे सूझा ही नही। तुमने मुझे कुम्हारोके विषयमे लिख दिया यह अच्छा किया। हतोत्साह हो जानेपर भी हम उस समय दो काम तो कर ही सकते है: एक तो हम उनमे न्याय और स्वतन्त्रताकी भावना जगा सकते है। जब उन लोगोने बेगार बन्द कर दी है तब मेहरबानीकी कोई उम्मीद नही की जानी चाहिए। कोई मनुष्य उनसे अपने निजी कामके लिए मिट्टी मँगाये तो उन्हे नही लानी थी। मुझे लगता है कि अधिकारके रूपमे तो केवल खपरैल बनानेके लिए ही मिट्टी माँगी जा सकती है। इसलिए कुम्हारोंको इन विषयमे पूरे तौरपर अपने सम्मानकी रक्षा करनी चाहिए। उन्हे आत्मसम्मानकी रक्षा करनेकी शिक्षा दी जानी चाहिए। मेरे विचारसे उनका मिट्टी खोदनेकी अनुमति लेना आवश्यक है। यदि खेतोमे से कोई भी मनुष्य चाहे जहाँसे मिट्टी खोद ले तब तो खेत एकके बाद एक नष्ट होते चले जायेंगे।

दूसरी बात यह है कि हमे अधिकारियोंको अपना शत्रु नही समझना चाहिए। हमें उनके साथ मित्ररूपमे बात करनेमे कोई संकोच नही करना चाहिए। जहाँ सरासर अन्याय किया जा रहा हो वहाँ मुझे उनको समझानेमे कोई दोष नही दिखाई देता। अगर हम सत्याग्रह करते है तो भी हमारा पहला कदम तो समझाना ही हो सकता है। फिर बेचारे कुम्हार असहयोगी तो है नही। इसलिए उनके हितकी भावनासे अधिकारियोंको समझानेमे कोई आपत्तिकी बात नही है। इतना ही नही, बल्कि कुछ अंशोंमे और कुछ स्थितियोमे उनको समझाना हमारा कर्त्तव्य होता है। अत: आप इन सब बातोंपर विचार करके जो-कुछ करना उचित समझें सो करें।

गुजराती प्रति (एस० एन० १२२०३) की फोटो-नकलसे।

१६५. पत्र : आदम सालेहअलीभाईको

आश्रम
साबरमती
१६ जुलाई, १९२६

भाईश्री आदम सालेहअलीभाई

आपका पत्र मिला। मैं सभी धर्म-पुस्तकोंको सन्तोंकी वाणी मानता हूँ। वैसा ही 'कुरान शरीफ' को भी समझता हूँ। मैं हर धर्म-पुस्तकका भाव समझनेका प्रयत्न करता हूँ, उसके प्रत्येक शब्दपर आग्रह नहीं करता। मैं हजरत मुहम्मदको अनेक धर्म-शिक्षकोंमें से एक धर्म-शिक्षक मानता हूँ। मैं तो इस समय साकार गुरुके दर्शन करना चाहता हूँ। मेरे पास ऐसी कोई कसौटी नहीं है जिससे मैं जान सकूँ कि मेरे विचार ठीक ही हैं। मैं तो फूंक-फूंककर कदम रखनेवाला एक तुच्छ प्राणि-मात्र हूँ। परन्तु यदि मुझे मरणपर्यन्त गुरु न मिले तो मेरा जीवन व्यर्थ चला जायेगा, मैं ऐसा नहीं मानता। मेरा काम तो केवल प्रयत्न करना है। फल देनेवाला तो परमात्मा ही है। मैं अपनी शंकाओंके निवारणके लिए गुरुकी खोज नहीं करता। मुझे तो सन्तजनोंकी सेवा करना अच्छा लगता है; इसलिए वह मुझे प्रिय है। सारा हिन्दुस्तान चरखेके विरुद्ध नहीं है; लेकिन यदि विरुद्ध हो तो भी जबतक मेरी अन्तरात्मासे यह आवाज आती रहेगी कि चरखा चलाना ठीक है तबतक मैं चरखेपर अवश्य कायम रहूँगा।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजराती पत्र (एस० एन० १९९३१) की माइक्रोफिल्मसे।

१६६. पत्र : बी० जी० हॉर्निमैनको

आश्रम
साबरमती
१७ जुलाई, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र और तार[1], दोनों मिल गये हैं। जब तार मिला तो इतना समय नहीं था कि आपको समयसे तार द्वारा जवाब दे सकता, इसीलिए मैं डाकसे उत्तर

१. गांधीजीके १५ जुलाई, १९२६ के पत्र और तार प्राप्तिकी सूचना देते हुए श्री हॉर्निमैनने यह आशा व्यक्तकी थी कि गांधीजी इस बातसे सहमत होंगे कि उमर सोबानीका निधन अप्रत्याशित था। और उन्होंने आगे लिखा था : मेरा, मेरे सह-सचिव और जमनादास, शंकरलाल, तैरसी, नरीमन, सबका साग्रह अनुरोध है कि आप आनेका भरसक प्रयत्न करें। (एस० एन० १०९६३)।

भेज रहा हूँ। आपको और इतने मित्रों तथा सहयोगियोंको निराश करनेपर मुझे अत्यन्त खेद है। क्या प्रियजनोंका देहावसान कभी अप्रत्याशित होता है? सच तो यह है कि मैंने श्रीमती नायडू, पंडितजी और अन्य मित्रोंके सामने जब यह संकल्प किया था तो मैंने अपने मनमें ऐसी परिस्थितियोंकी कल्पना भी कर ली थी जिनको अप्रत्याशित कहा जा सकता था, और तब मैंने अपने आपसे यही कहा था कि दिवंगत मित्रोंकी शोकसभाओंके लिए मुझे अपना क्षेत्र-संन्यास नही छोड़ना चाहिए। अपने आप संकल्पित संयमको यदि हम एक बार ढीला करना आरम्भ कर दे तो फिर ढिलाईकी सीमा निर्धारित करना अत्यन्त कठिन हो जाता है। मै भारत आया, उससे कही पहले उमरने देशसेवा प्रारम्भ कर दी थी। उनकी पुण्यस्मृतिमे आयोजित सभाकी सफलताके लिए मेरा समर्थन आवश्यक नही है। मै चाहता हूँ कि आप मेरा दृष्टिकोण समझे और मेरे साथ सहमत हों।

कृपया क्षमा करें।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०९६४) से।

१६७. पत्र: मोतीबहन चोकसीको

आश्रम
साबरमती
शनिवार, १७ जुलाई, १९२६

चि० मोती,

तुम्हारा पत्र मिला। बिगड़े हुए स्वास्थ्यको सुधारना भी एक काम है। परन्तु यदि कोई स्वभावसे आलसी है तो वह स्वास्थ्य सुधारनेमें भी आलस्य करता है। तुम ऐसा तो नही करती? तुम्हें सावधान रहकर शीघ्र स्वस्थ हो जाना चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (एस० एन० १२१३१) की फोटो-नकलसे।

१६८. पत्र : शंकरलाल बैंकरको

आश्रम
साबरमती
शनिवार, आषाढ़ सुदी ७, १७ जुलाई, १९२६

भाईश्री ५ शकरलाल,

आपका पत्र मिला। मुझे लगता है कि हमें पजीयन कराये बिना ही काम चलाना पड़ेगा। अधिकारी जिन शब्दोको छोड़नेपर जोर देते हैं वे उन कार्योको बताते है जो हमारी प्रवृत्तिके आवश्यक अंग है। अत: हम उन्हे किसी भी प्रकार छोड़ नही सकते, क्योकि वे तो काग्रेसके प्रस्तावके अंग है। किन्तु मेरे विचारसे भूलाभाई और अन्य लोग उनका जो अर्थ लगाते है, वह अर्थ ठीक नहीं है। मान लो 'काग्रेसका संगठन'[1] के स्थानपर 'इस सरकारका सगठन'[2] शब्द हो, तो उसके अन्तर्गत होनेपर भी सभी परोपकारी संस्थाओका पजीयन हो सकता है। तब मेरी समझमे यह नही आता कि काग्रेसके इस एक अंगका, जिसकी मुख्य प्रवृत्ति परोपकार है, पंजीयन क्यों नही किया जा सकता। लेकिन हम अधिकारियोको तर्कोसे थोड़े ही समझा सकते हैं? कार्यालयके बारेमे भाई नारणदास कल मुझसे भी मिले थे। उनका तर्क यह है कि अभीतकका खर्च तो लगभग सब बेकार ही गया है। लेकिन चार-पाँच दिनोके लिए ही उतावली नही करनी चाहिए। अत: हम अब आरामसे बैठकर बातचीत करेंगे और तब इसका निर्णय करेंगे।

हॉर्निमैनने 'भाई'के[3] विषयमे सार्वजनिक सभा करनेके बारेमे फिर तार दिया है और पत्र भी लिखा है। मैं उन्हें फिर इनकार लिख रहा हूँ। मेरे सिरमे दो-चार दिन थोड़ा दर्द रहा था। अब बिलकुल नही है। परन्तु जब था तब भी अधिक नही था।

गुजराती प्रति (एस० एन० १२२०४) की फोटो-नकलसे।

१, २. मूलमें यहाँ अंग्रेजी शब्द है।
३. उमर सोबानी।

१६९. पत्र : गुलबाई और शीरींबाईको

आश्रम
साबरमती
शनिवार, आषाढ़ सुदी ७, १७ जुलाई, १९२६

प्यारी बहनो,

आपका पत्र मिला। आश्रममे रहनेके लिए मुख्य रूपसे इन बातोंकी तैयारी करनी होती है। खाने और पहननेमें सादगीका अभ्यास करना, शरीर-श्रमके लिए मनको तैयार करना, पीजना सीखना, नित्य चरखा चलाना, सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य और अन्य यम-नियम पालनेका पूरा प्रयत्न करना, टट्टी साफ करनेमें घिन न मानना, वरन् टट्टी साफ करनेको अपना कर्त्तव्य मानना।

गुलबाई तथा शीरीबाई बहरामजी कराडिया
नवसारी

गुजराती प्रति (एस० एन० १२२०५) की माइक्रोफिल्मसे।

१७०. एक अटपटा सवाल

एक शिक्षक पूछते हैं :[1]

मैं भी एक तरहसे शिक्षक हूँ और शिक्षाके क्षेत्रमें मैंने अनेक प्रयोग किये हैं और कर भी रहा हूँ; इसलिए इस प्रश्नका उत्तर देनेका साहस करता हूँ। यह प्रश्न एक सहयोगीने किया है। बहुत दिनोंसे मैंने इस और इस जैसे अन्य प्रश्नोंको सँभालकर रख छोड़ा था। उक्त सहयोगीने ऐसी कोई माँग नही की है कि इन प्रश्नोंके उत्तर 'नवजीवन' की मारफत ही दिये जायें, किन्तु मैं बहुत-से शिक्षकोंके सम्पर्कमें आता हूँ और उनमें से अनेकोंके लिए मेरे विचार सहायक हो सकते हैं इस आशासे मैंने इनका उत्तर 'नवजीवन' के माध्यमसे देना निश्चित किया है।

मैं स्वयं पुराणोंको धर्मग्रन्थोंके रूपमें मानता हूँ। देवी-देवताओंको भी मानता हूँ। किन्तु यह मैं जानता हूँ कि पुराणपन्थी उन्हें जिस रूपमें मानते हैं अथवा जिस तरह हमसे मनवाना चाहते हैं, मैं उन्हें उस तरह नही मानता। आजकलका समाज उन्हें जिस तरह मानता है, उस तरह भी मैं नही मानता। इन्द्र, वरुण इत्यादि देव आकाशमे रहते हैं और वे अलग-अलग व्यक्ति हैं अथवा सरस्वती आदि देवियाँ कोई वास्तविक व्यक्ति हैं, ऐसा भी मैं नही मानता। किन्तु मैं ऐसा अवश्य मानता हूँ कि

१. प्रश्न यहाँ नहीं दिये जा रहे हैं। वे पुराणोंमें आये हुए देवी-देवताओंके प्रतीकोंसे सम्बन्धित प्रश्न थे। पूछा गया था कि पुराण-कथाओंके सम्बन्धमें बच्चोंको उन्हें समझाते हुए शिक्षक क्या रुख अपनायें।

देवी-देवतागण अनेक शक्तियोंके सूचक हैं। उनका यह वर्णन काव्य है। धर्ममें काव्य-को स्थान है। हम जिन बातोंको अपने ढंगसे मानते हैं उन बातोंको हिन्दू-धर्मने शास्त्रका रूप दे दिया है। एक तरहसे वे सब लोग जो यह मानते है कि ईश्वरकी अनन्त शक्तियाँ हैं, देवी-देवताओंको मानते ही हैं। जिस प्रकार ईश्वरकी अनेक शक्तियाँ हैं उसी प्रकार उसके अनन्त रूप भी हैं। जिसे जैसा रुचता है वह उसे उस गुण और रूपसे युक्त मानकर पूज सकता है। मुझे तो इसमे कोई दोष नही जान पड़ता। जहाँ-जहाँ आवश्यक हो वहाँ-वहाँ विद्यार्थियोंको रूपक और प्रतीकोको स्पष्ट करके उनका रहस्य समझानेमें तो मुझे संकोचका कोई कारण नही दिखाई देता। मैंने इसका कोई अनिष्ट परिणाम होते हुए भी नही देखा। मैं बालकोंको भ्रमित तो अवश्य ही नहीं करूँगा। मुझे यह माननेमें कोई कठिनाई महसूस नही होती कि हिमालय पर्वत भगवान् शिव हैं और गंगा पार्वती हैं और उनकी जटाओसे प्रवाहित हैं। इतना ही नही इनसे ईश्वरके विषयमे मेरी भावनाको बल मिलता है और मैं यह भली-भाँति समझ पाता हूँ कि सब-कुछ ईश्वरमय है। समुद्र-मंथन इत्यादिके विषयमें भी जिसे जैसा योग्य लगे ऐसा नीतिमे वृद्धि करनेवाला अर्थ बैठा सकता है। पण्डितोंने अपनी-अपनी मतिके अनुसार इन सब रूपकोके अर्थ लगाये हैं। उनके इतने ही अर्थ निकल सकते हैं, ऐसी कोई बात नहीं है। शब्दों, वाक्यो इत्यादिके अर्थमें उसी प्रकार विकास होता रहता है जिस तरह मनुष्यमें। जैसे-जैसे हमारी बुद्धि और हृदय विकसित होते हैं, वैसे-वैसे शब्द और वाक्य इत्यादिके अर्थ भी विकसित होने चाहिए और होते ही रहते हैं। जहाँ लोग अर्थोको मर्यादित कर डालते हैं, उनके आसपास दीवारे खींच देते हैं वहाँ समाजका पतन हुए बिना नही रहता। अर्थकार और अर्थ इन दोनोंका साथ-साथ विकास होता है। सभी अपनी-अपनी भावनाके अनुसार अर्थ निकालते ही रहेंगे। व्यभिचारीको 'भागवत' में व्यभिचार दिखाई पड़ेगा। एकनाथने उसीमें से आत्मदर्शन प्राप्त किया। मेरा दृढ़ विश्वास है कि भागवतकारने 'भागवत' का लेखन व्यभिचार-वृद्धिके ध्यानसे नहीं किया। किन्तु आजका आदमी यदि इन पुस्तकोंमें ग्रहण करने योग्य कोई बात न देख पाये तो वह उन्हें अवश्य छोड़ दे। इसके सिवा जो-कुछ छपा हुआ है, और विशेषत: संस्कृतमें, उस सबको यदि हम धर्म ही मान बैठें, तो यह धर्मान्धता अथवा जड़ता ही होगी।

इसलिए इस प्रश्नको हल करते हुए मैं तो एक ही स्वर्ण-नियम लागू करता हूँ और वही शिक्षकोंके सामने रख देना चाहता हूँ; हम जो-कुछ पढ़ते हैं, फिर चाहे वह 'वेद' मे हो, चाहे 'पुराण' में अथवा किसी अन्य पुस्तकमें, किन्तु यदि उससे सत्यको आघात पहुँचता हो अथवा हम जिसे सत्य मानते हैं उसपर आघात करता हो, अथवा दुर्गुणोंका पोषक जान पड़ता हो तो उसका त्याग कर देना हमारा धर्म है। मुझपर जेलमें जो-कुछ बीता वह मैं यहाँ लिखना चाहता हूँ। मैंने कई लोगोसे कई बार जयदेवकृत 'गीत-गोविन्द' की तारीफ सुनी थी और मेरी इच्छा थी कि मैं उसे कभी-न-कभी पढ़ूँगा। इस काव्यसे सम्भव है, किसीका उपकार हुआ हो किन्तु मेरे लिए तो इसका पठन शिक्षादायी सिद्ध नही हुआ। पढ़ तो मैं गया किन्तु उसके वर्णन पढ़कर मुझे दु:ख

हुआ। मुझे यह मानते हुए कोई संकोच नहीं है कि सम्भव है इसमें दोष मेरा ही हो। मैं तो यहाँ केवल पाठकोंके सामने अपनी स्थिति रख रहा हूँ। 'गीत-गोविन्द' का मेरे ऊपर अच्छा असर नहीं हुआ, इसलिए मेरे लेखे तो वह त्याज्य ही रहा। मैं उसे त्याज्य मान सका, उसका कारण यह है कि मेरे पास अपना एक मानदण्ड है। जो वस्तु मुझे निर्विकार कर सकती है, मेरे राग-द्वेष आदिको नरम बना सकती है, जिस वस्तुका मनन मुझे शूलीपर चढते हुए भी सत्यपर दृढ़ रखनेमें सहायक हो सकता है वही वस्तु मेरे लेखे धार्मिक शिक्षण हो सकती है। 'गीत-गोविन्द' इस कसौटीपर खरा नहीं उतरा और इसलिए मेरे लेखे वह पुस्तक त्याज्य ही है।

आज हमारे बीच ऐसे बहुतसे युवक और वयोवृद्ध सज्जन हैं जो मानते हैं कि अमुक वस्तु शास्त्रमे है इसलिए करणीय है। इस मान्यतासे सहज ही हमारी अधोगति हो सकती है। हम यह भी नहीं जानते कि शास्त्र किन्हें कहें। यदि हम इस बातमें विश्वास करें कि जो-कुछ शास्त्रोंके नामसे प्रचलित है वह धर्म है और इसलिए हमें तदनुसार आचरण करना चाहिए तो उसका परिणाम अनर्थकारी ही होगा। 'मनुस्मृति' को ही लें। मै नही जानता कि 'मनुस्मृति' में क्या क्षेपक है और क्या वास्तविक। इसमें कुछ श्लोक तो ऐसे है जिनका धर्म कहकर समर्थन किया ही नही जा सकता। ऐसे श्लोकोंको हमे त्याज्य ही मानना चाहिए। मैं तुलसीदासका पुजारी हूँ, 'रामायण' को उत्तमसे-उत्तम ग्रन्थ मानता हूँ, किन्तु 'ढोल, गँवार, शूद्र, पशु, नारी, ये सब ताड़नके अधिकारी' में जो विचार निहित है, मै उसे सम्माननीय मान ही नही सकता। तुलसीदासने अपने जमानेमें जो रूढ़ि पड़ी हुई थी उससे प्रभावित होकर यह लिख दिया। इसलिए मेरा अपनी पत्नी, पशु अथवा जिन्हें मै शूद्र मानता हूँ उनको मेरे मतानुसार वर्तन न करनेपर मार बैठना सदाचरण नही हो सकता।

मै सोचता हूँ कि अब उपर्युक्त प्रश्नोंका उत्तर स्पष्ट हो गया होगा। जहाँतक देवी-देवताओंकी बात नीतिपोषक हो, उस अंशतक उसे माननेमें मुझे कोई अड़चन दिखाई नही देती। मैं ऐसा नही मानता कि रूपकोंको खोलकर बालकोंके सामने रखनेमें उनका रस नष्ट हो जाता है। किन्तु यदि ऐसा होता ही हो तो सत्यका नाश करके रसके पोषणकी रूढ़िको माननेवालोंमें मै नहीं हूँ। हमें तो विद्यार्थियोंके सामने वही रस प्रस्तुत करना चाहिए जो सत्यमें निहित है। यह प्रकट किया जा सकता है, ऐसा मेरा अनुभव है। बालकोंको यह बात समझा देनेके बाद कि दस सिरवाला राक्षस आजतक संसारमें न हुआ है, न आगे होगा, रावणके विषयमें यह मानकर कि वह हुआ है रावणकी बातें समझाना मुझे सत्य अथवा रसके लिए हानिकारक नहीं लगता। बालक समझ ही जाता है कि दस सिरवाला रावण हमारे हृदयमें रहनेवाली दस नही, हजार सिरवाली दुष्ट वासनाएँ हैं। ईसपकी कहानियोंमें पशु-पक्षी बोलते हैं। बालक जानते हैं कि पशु-पक्षी बोल नहीं सकते, फिर भी वे उन कहानियोंको पढ़ते है और उससे उत्पन्न होनेवाले आनन्दमें कोई कमी नही होती।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १८-७-१९२६

१७१. सूतका बल और प्रकार

मैं पहले लिख चुका हूँ कि हम जिस तरह ३ अंकके सूतसे आज ८० अंकके सूतपर आ गये हैं, जैसे प्रति घंटा २०० गजकी गतिसे ८०० गजकी गतिपर आ गये हैं और सूतकी आँटी बनानेमें भी सुधार कर सके हैं वैसे ही हमें सूतकी मजबूती और समानतामें भी सुधार करनेकी आवश्यकता है। जैसे-जैसे सूतकी मजबूती और समानतामे सुधार होगा वैसे-वैसे उससे कपड़ा बुननेमें आसानी होगी और इसलिए बुनाई भी सस्ती होगी। हमें इतनी तरक्की तो करनी ही चाहिए कि जितनी प्रसन्नतासे आज बुनकर मिलका सूत लेते हैं वे उतनी ही प्रसन्नतासे हाथका सूत भी लेने लग जायें। हमारा ध्येय तो यह होना चाहिए कि हाथका सूत मिलके सूतकी अपेक्षा अधिक मजबूत और समान हो। इस दृष्टिसे आजकल हम गुजरातमें सूतकी किस्म सुधारनेके प्रयोग कर रहे हैं, और थोड़े ही दिनोंमें हमने सूतकी पर्याप्त समानता और मजबूती प्राप्त कर ली है।

गुजरात खादीप्रचारक मण्डलसे मदद लेकर खादी तैयार करनेवाली संस्थाओंमें-से आठ संस्थाओके सूतकी अच्छाईके आँकड़े मुझे प्राप्त हुए हैं। जिनका सूत मण्डलके पास आया था, वे सब यज्ञार्थ[1] कातनेवाले हैं। कठलाल, नडियाद, धर्मज, भादरण, नापाड, वराड, सरभोण और अहमदाबादसे ७१ लोगोके सूतकी किस्मका पत्रक मेरे समक्ष है। ऐसा देखनेमें आता है कि सबके पास बड़ी धुनकीसे धुनी हुई रुईकी पूनियाँ थी। रुई वाकड, गोजी, नडियादकी देशी, बारडोली और सूरती किस्म की थी। इन सबमें मजबूतीका अंक ज्यादासे-ज्यादा ५२$\frac{3}{4}$ देखनेमें आया। किसी-किसीका सूत तो १५ तक नीचे गया है। सबसे ज्यादा औसतन मजबूती अहमदाबादके सूतमें दिखाई देती है और वह ४२ है। ७१ लोगोंमें ५२$\frac{3}{4}$ से आगे कोई नहीं गया है। और ज्यादातर तो ४० से नीचे ही हैं। यह मजबूती बहुत कम मानी जायेगी। ५० से नीचेकी मजबूतीका सूत बुननेमें बहुत मुश्किल होती है। सबके सूतकी मजबूती ६०से ऊपर तो होनी ही चाहिए। ७० मजबूती सामान्य कही जा सकती है। समानताका औसत ४२$\frac{1}{2}$ आता है। यह ज्यादासे-ज्यादा ५० तक अर्थात् सम्पूर्णता तक गई है। समानताका यह मान उचित माना जा सकता है। कमसे-कम समानता १३ अंककी देखनेमें आती है और यह बहुत ही कम है। समानता ४०से कम तो होनी ही नही चाहिए, क्योकि ऐसा असमान अर्थात् मोटा-पतला सूत बुनना अत्यन्त कठिन है। ऐसे सूतसे केवल रस्सियाँ ही बन सकती है।

आजतक गुजरातमे चल रहे प्रयोगोंका परिणाम यह हुआ है कि मजबूती १०४ तक जा सकी है। १०४ मजबूतीका तात्पर्य है मिलके सूतकी अधिकतम मजबूतीसे ज्यादा। इन प्रयोगोंका विवरण कुछ दिनों बाद ही प्रकाशित किया जायेगा। लेकिन

१. देखिए "भूल सुधार", १-८-१९२६।

इस बीच यज्ञार्थ कातनेवाले सब लोगोंका ध्यान सूतकी किस्मको सुधारनेकी ओर आकर्षित करनेकी आवश्यकता है। किस्म सुधारनेकी इच्छा रखनेवाले लोगोंको दो बातें ध्यानमें रखनी चाहिए। सूतकी किस्म सुधारनेकी इच्छा रखनेवाले मनुष्यको टूटे हुए धागेको जोड़नेका विचार फिलहाल छोड़ देना चाहिए। दोनों हाथ जब एक साथ काम करेंगे तब सूत टूटेगा ही नहीं; लेकिन टूटा हुआ सूत फेंक देना सूतकी अच्छाई बढ़ानेके लिए बहुत आवश्यक है। यदि आँटी कसकर बनाई जायेगी तो सूतकी मजबूतीका पता चल जायेगा, क्योंकि कसकर आँटी तैयार करनेपर सूतकी मजबूतीकी परीक्षा हो जाती है। यदि सूत ताननेपर टूट जाये तो समझना चाहिए कि उतने तारमें समान और पूरे बल नही लगे हैं। अटेरनपर अटेरा हुआ सूत पानी छींटे बिना कभी उतारना नहीं चाहिए। पानी छींटनेके बाद उसे सूखने देना चाहिए, जिससे पानीकी नमी सूतमें पैठ जाये और उसे पक्का कर दे। पानी छींटनेका अर्थ है सूतके रेशे-रेशेमें नमी पहुँचाना। उसपर मामूली पानी छींटना काफी नहीं है, उसे पूरी तरह भिगो ही देना चाहिए। उसके लिए कदाचित् सहजसे-सहज तरीका यह है कि सूत एक अलग अटेरनपर उतारा जाये और वह अटेरन पानीमें डुबा दी जाये और तबतक पानीमें रहने दी जाये जबतक सूत पूरी तरह पानी न सोख ले। तात्पर्य यह है कि दो-तीन मिनटतक अटेरन पानीमें रहनी चाहिए। अन्य सहज उपाय जो सूझ सकें उनकी खुशीसे खोज करें। लेकिन मैंने जो मूल बात कही है उसे ध्यानमें रखें। अटेरनपर से उतारे हुए सूतको पानीमें डुबानेका प्रयोग तो कोई नही करेगा, ऐसी मैं आशा रखता हूँ क्योंकि यदि बिना पानी छींटे सूत अटेरनपर से उतार लिया जाये तो कुछ हदतक उसके बल निकल जायेंगे। और इस तरहसे निकले हुए बल सूतमें फिर कभी नहीं आयेंगे। सूतमें लगे बलोंको पक्का करना यह पानी छींटनेकी क्रियाका उद्देश्य है। और यह उद्देश्य तभी पूरा हो सकता है जब पानी अटेरनपर चढ़े सूतपर ही छींटा जाये।

अन्तमें यज्ञार्थ कातनेवाले सब लोग याद रखें कि उनकी कुशलतासे मजदूरी-पर कातनेवाले लोगोंके सूतमें सुधार हो सकता है। यह सुधार उनकी कुशलतापर ही निर्भर है। मजदूरीसे कातनेवालोंके सूतमें जितना सुधार होगा उनकी आयमें उतनी ही वृद्धि होगी।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १८-७-१९२६

१७२. टिप्पणी

पाँच तलावड़ामें कपास संग्रह

भाई छगनलाल और माणिकलाल पाँच तलावड़ामें काठियावाड राजनीतिक परिषद्की ओरसे काम करते है; उन्होंने जो हिसाब भेजा है वह निम्नलिखित है. कार्य ३२ गाँवोमे फैला हुआ है। उनमे ७४५ मन रुई इकट्ठी हुई है। इसमे से २१६ मन रुई हाथसे लोढ़ी गई और ५२९ मन लुढाई-कारखानेमे । उसके २,६८१ थान अर्थात् ५३,६२० गज खादी तैयार हुई । वहाँ अबतक लगभग २० रुपयेकी मदद देनी पड़ती है। अनेकोको उनकी मितव्ययताके कारण मदद देनेकी जरूरत नही पड़ी। इसके अतिरिक्त पैसा देकर जो सूत कतवाया और बुनवाया गया उसकी २,५८८ गज खादी तैयार हुई। उपर्युक्त कपासका संग्रह ६४० परिवारोमे हुआ। कपास-संग्रहके अन्तर्गत २० पिंजारे और १०० बुनकर काम करते थे। पिंजारोके घरमे लगभग १,२०० रुपये और बुनकरोके घरमे लगभग ४,००० रुपये गये। ये रकमे किसानोंकी ओरसे ही चुकवाई गईं। ६४० परिवारोमे पैसेकी मदद लेनेवाले केवल ७४ परिवार[१] थे। इसपर टिप्पणी करते हुए ये दोनों सज्जन लिखते हैं कि हमारे कार्यकी सफलता कपासके संग्रहमें निहित है, क्योकि इस कार्यको करवाते समय हमे अपने देशकी गरीबीका ध्यान आता है। इससे इस बातका अनुभव होता है कि हमारा वास्तविक कार्य गाँवोंमे ही है। गाँवोके लोगोमें उसके अन्तर्गत अन्य सामाजिक कार्य भी किया जा सकता है। निठल्ला बैठना कितना भयंकर रोग है, लोगोको यह बात चरखेकी मार्फत अच्छी तरह समझाई जा सकती है। जहाँ स्वयंसेवक सेवाभावसे काम करते है वहाँ भ्रातृभाव उत्पन्न होता है। कपासका संग्रह करवानेसे खादी बेचनेकी मुश्किल दूर हो जाती है।

उपर्युक्त संग्रह-कार्यके अतिरिक्त इन भाइयोने मजदूरी देकर १०० स्त्रियोसे सूत कतवाया। कताईकी मजदूरी प्रति नम्बर ६ पाई रखी गई थी। प्रत्येक स्त्रीकी मासिक कमाई ढाई रुपयेसे लेकर ३ रुपये तक थी। उन्होंने ४ नम्बरसे लेकर आठ नम्बर तकका सूत काता। इतनी स्त्रियोके लिए पूनियाँ तैयार करनेमें दो पिंजारों और २० बुनकरोंने काम किया। पिंजाईकी दर प्रति मन २ रुपये १० आना दी गई। बुनकरोंको २४ से २७ इंच पनेकी खादीकी बुनाई एक मनपर ८ रुपये और ३० इचकी खादीकी बुनाई एक मनपर १० रुपये दी गई। २१६ इंच पनेकी पगड़ीकी खादीकी बुनाई प्रति मन १२ रुपये दी गई। पगड़ीकी लम्बाई १८ हाथ होती है। इस तरह कताईमे रु० १८५–८–०; पिंजाईमें रु० ६५–४–०; बुनाईमे रु० २३२–८–० और लुढाईमें रु० ४–०–०; तथा कुल मिलाकर रु० ४८७–४–० खर्च हुए।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १८-७-१९२६

१. यहाँ ७ होना चाहिए, यह भूल **नवजीवन**के अगले अंकमें सुधार ली गई थी।

१७३. पत्र : जमनालाल बजाजको

सोमवार [१९][1] जुलाई, १९२६

चि० जमनालाल,

तुम्हारा तार मिल गया है। इसीलिए यह पत्र काशीसे लिख रहा हूँ। पिछले सप्ताह तुम्हें एक पत्र कलकत्तेके पतेपर लिखा था। गिरजाशंकर जोशीकी जमीन २१,००० रुपयेमें ले ली है। इसके अतिरिक्त फुटकर सामानका १,००० रुपयेसे कम देना होगा। कुल जमीन १९ वीघा है। उसमेंसे एक बीघा उनके लिए छोड़ देनी है। ५,००० रुपये बयानेके दे दिये हैं। शेष १६,००० रुपये एक महीनेके अन्दर देने जरूरी हैं। अब सवाल यह है कि जमीन किसके नाम लिखाई जाये? तुम्हारे नाम, आश्रमके नाम अथवा गोरक्षाके खाते? मुझे ऐसा लगता है कि जमीन आश्रमके नाम लिखा ली जाये। बादमें जिस कामके लिए इस्तेमाल करनी होगी उसके लिए करेंगे। पर मैं यह काम तुम्हारी इच्छाके अनुसार करना चाहता हूँ। जमीन चाहे किसीके नाम ली जाये, परन्तु रुपयोंका इन्तजाम तुम्हें करना होगा। बिड़ला-बन्धुओंसे बातचीत करनी हो तो करना। क्या करना है, यह सूचना तारसे दे देना। मैंने कहा है कि रुपया जितनी जल्दी दिया जा सकेगा उतनी जल्दी दे दिया जायेगा। इसलिए उसका भी बन्दोबस्त तुरन्त हो जाये, ऐसा प्रयत्न करना।

कलकत्तेके दंगोंकी बात सुनकर जानकीबहन[2] कुछ घबराती हैं। किन्तु उन्हें मैंने समझाकर शान्त कर दिया है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (जी० एन० २८६९) की फोटो-नकलसे।

१. यह पत्र जमनालाल बजाजको भेजे गये १६-७-२६ के पत्रके बाद लिखा गया लगता है।

२. जमनालाल बजाजकी पत्नी।

१७४. पत्र : डाह्याभाई मनोरदास पटेलको

आश्रम
साबरमती
सोमवार [१९ जुलाई, १९२६][1]

भाईश्री ५ डाह्याभाई,

आपका पत्र तो मैंने कल शामको ही पढ़ा। मेरी कामना है कि आपका स्वास्थ्य जल्दी ठीक हो जाये। अकेले या दुकेले, जिस स्थितिमें भी रहना पड़े, उस स्थितिमें काम करनेकी शक्ति हममें होनी चाहिए। जब हम दृढ़तापूर्वक किसी काममें लग जाते हैं तभी उसका अच्छा परिणाम निकलता है। आप हारकर कभी न बैठें।

मोहनदासके वन्देमातरम्

भाईश्री ५ डाह्याभाई मनोरदास पटेल
वैद्य जयशंकर लीलाधरका दवाखाना
अहमदाबाद

गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० २६१६) से।
सौजन्य : डाह्याभाई म० पटेल

१७५. पत्र : चमन कविको

आश्रम
सोमवार, १९ जुलाई, १९२६

भाईश्री चमन,

तुम्हारा सूत सामान्यतः ठीक ही कहा जा सकता है। तुम्हें रुई पीजना सीख लेना चाहिए। तुम अब खादीपर कायम रहना।

मेरी दुर्बलताओंका क्या कोई अन्त है?

कह सकता हूँ कि मुझे कभी सम्मानका मोह था।

मेरे मनमें परस्त्रीको देखकर एक बार नहीं, अनेक बार कामवासना उभरी है।

कुविचारोंको दूर करनेका एक उपाय है। हम रो-रोकर प्रभुसे प्रार्थना करें कि हम सद्विचार ही करें और वह इसमें हमारा सहायक हो। क्या तुम प्रार्थना करते हुए

१. डाककी मुहरसे।

कभी रोये हो? प्रार्थना-प्रार्थनामें भी अन्तर होता है। एक प्रार्थना ऐसी होती है, जो प्रभुको माननी ही पड़ती है।

बापूके आशीर्वाद

खेड़ा, कच्छ

गुजराती पत्र (एस० एन० १९९३२) की माइक्रोफिल्मसे।

१७६. पत्र: नानाभाई भट्टको

आश्रम
सोमवार, १९ जुलाई, १९२६

भाई नानाभाई,

आपका पत्र तो मेरे लिए एक अभ्यास ही है। भाई नरहरिने अपने पत्रके उत्तरमें लिखित महादेवके पत्रका एक अंश आपको भेजा है। उन्होंने लिखा था कि हमारी गर्ज न बालकोंको है और न उनके माता-पिताओंको। वे सभी सरकारी स्कूलोंमें चले जायेंगे। उनमेंसे कोई भी खादी पहननेवाला या आपके सन्देशको सुनने-वाला नहीं है। इस तरहकी बातका मेरा उत्तर यही हो सकता है कि जो बालक हमारे नियमोंका पालन नहीं करते वे हमारी शालासे चले जायें। नियमोंमें खादी, अस्पृश्यता-निवारण आदि शामिल हैं। मैंने इसी स्थितिमें महादेवसे यह लिखवाया था कि नरहरि सूरतमें अपनी इच्छासे रह रहे हैं। मैंने तो उनकी सेवाएँ तीन-चार महीनेके लिए ही माँगी थी। मैं नरहरिके चंचल स्वभावसे परिचित हूँ। 'स्वधर्म अल्प हो तो भी उसका पालन श्रेयस्कर है', इस महावाक्यके आधारपर ही मैंने कहा था कि उनके लिए सरभोण ही ठीक स्थान है। लेकिन वे अपनी इच्छासे सूरत रहना चाहें तो रहें। इतना कहकर मैं तो अपने दायित्वसे मुक्त हो गया। मैं कोई आदेश नहीं देता। मैं तो सलाह देता हूँ। आदेश देनेका काम तो मैंने आपको सौंपा है। यदि मैं स्वयं शिक्षक होऊँ तो क्या करूँ, मैंने तो यही बताया था। दूसरे लोग उसमेंसे जितना कर सकें उतना करें; और यदि कुछ न कर सकें तो कुछ न करें। मैं तो कन्यादान कर चुका, अब उनकी गृहस्थी चलाना मेरा काम नहीं है। फिर भी मैं कन्याके पिताके नाते सीख जरूर दे सकता हूँ। लेकिन मैं आपके और अपने बीचके मतभेदको समझ गया हूँ। आप कहते हैं कि राष्ट्रीय शिक्षा और खादी इत्यादि। जबकि मैं कहता हूँ कि राष्ट्रीय शिक्षा अर्थात् खादी इत्यादि। आपने यह मतभेद पहली बार स्पष्ट किया है। आप जब यहाँ आयें तब मुझे स्वयं बतायें या पत्रसे बताना चाहें तो पत्र द्वारा बतायें कि इन तीनोंके बिना राष्ट्रीय शिक्षाका अर्थ क्या है?

मैं न तो ईसाई धर्म-प्रचारकोंका तरीका अपनाना चाहता हूँ और न वह तरीका जो मुसलमानोंका तरीका कहा जाता है। मुझे मेरा धर्म तीसरा ही मार्ग दिखाता है। मैं तो जो-कुछ देना है, वह बता देता हूँ और उसका मूल्य भी बता देता हूँ। तब

उसे लेनेकी जिसमें हिम्मत हो, वह उसे ले ले। इस तरह अधिकारीका निर्णय हो जाता है और सत्यकी नीव भी दृढ़ हो जाती है। मेरी गुनियाका माप परिस्थितिके अनुसार नही वदलता। यदि लोग उस मापमे ठीक नहीं वैठते तो उसमे न तो मापका दोप है, न मेरा और न लोगोंका। परन्तु ये सव वातें तो व्यर्थ है। आप मेरी वात सुन अवश्य ले; किन्तु करे वही जो स्वयं तय करे। नरहरि सूरतमे रहना चाहें तो रह सकते हैं। खादीके विपयमें आप और वे जितना चाहे उतना आग्रह रखें। आप जव तक मेरे विचारको नही वदल पाते तवतक वे जैसे है वैसे ही रहेगे।

मामाने अद्भुत कार्य किया है। उन्हें लिख दें कि यह प्रश्न कृषि और अकृपिका है भी और नहीं भी है। मुझे कृपि अप्रिय नहीं है। परन्तु मैं उसे अन्त्यज-सेवाका अग नही मानता; इसी कारण मुझे उसके लिए एक पाई भी खर्च करना अखरता है, क्योंकि इस प्रकार हम अपने कार्यक्षेत्रके वाहर चले जाते हैं।

वापू

[पुनश्च :]

. . .मेरे अक्षर न पढ सके तो जव हवाई जहाज चलने लगे, तव इन्हें पढ़नेके लिए मुझे वुला लें। आप यह पत्र नरहरिको भेज सकते है। मामाको केवल यही [सम्वन्वित] अंश भेजें।

गुजराती पत्र (एस० एन० १९९३३) की माइक्रोफिल्मसे।

१७७. पत्र : के० राजगोपालाचारीको

आश्रम
सावरमती
२० जुलाई, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मैं आपकी कठिनाई समझता हूँ। इस समय आश्रम खचाखच भरा है लेकिन यदि आप असुविधायें सह सकते हो तो आप जव कभी आना चाहें जरूर आयें और जितने दिन चाहे रहे।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्री के० राजगोपालाचारी
मन्त्री-चित्तूर जि० कां० क०
तिरुपति

अंग्रेजी पत्र (जी० एन० ५६६९) की फोटो-नकलसे।

१७८. पत्र: सी० वी० रंगनचेट्टीको

आश्रम
साबरमती
२० जुलाई, १९२६

प्रिय मित्र,

चरखा और आपका बिल मुझे मिल गये हैं। अपने उस पहले पत्रकी शर्तोंके मुताबिक जो मैंने चरखा मँगानेके लिए लिखा था, मुझे यह [चरखा] वापस करना पड़ेगा। परन्तु आपके साथ कोई अन्याय न हो, इसलिए ऐसा करनेसे पहले मैं इसके विषयमें अपने विचार आपको बता देना चाहता हूँ।

यह चरखा बहुत ही हलका-फुलका है। इसका लकड़ीका भाग तो ठीक है पर तारकी तीलियाँ और आड़ एकदम बेकार हैं, क्योंकि वे इस्पातकी नहीं हैं। जरा-सा दबाव पड़ते ही ये तार मुड़ जाते हैं, जबकि खादी-प्रतिष्ठानके चरखेमें ये सब तार इस्पातके हैं। धुरी पाओंपर सीधी नही बैठती, नतीजा यह है कि चरखेकी माल बीचमें न रहकर चरखेके एक ओर हो जाती है। तकुआ बिलकुल निकम्मा है क्योंकि एक ओर झुका रहनेके बजाय वह सिरोंपर नुकीला सीधा तार-मात्र है। आप उसपर आसानीसे कात नही सकते। गरारी भी बिलकुल निकम्मी है, उसमें हत्था तो है ही नही। अतएव जो चरखा आपने मुझे भेजा है वह जैसा आपका दावा है, खादी-प्रतिष्ठानके चरखेसे अच्छा तो है ही नही, वह उससे कही घटिया है। आपने जो मूल्य बताया था, वह बहुत कम था। इसी कारण मैंने आपके चरखेको परीक्षणके लिए मँगवाया था। खादी प्रतिष्ठानके चरखेका मूल्य मेरी सलाहसे, काफी सोच-विचारके बाद और ठीक-ठीक लागतका हिसाब लगाकर ही निर्धारित किया गया था। आपको इसका कोई अन्दाज नहीं है कि किसी वस्तुको बनाते समय छोटी-छोटी चीजोंको एकदम ठीक बनानेमें, जैसी वे खादी-प्रतिष्ठानके चरखेमें हैं, कितनी लागत आती है। चरखा भेजनेसे पहले उसके हर पुर्जेकी जाँच की जाती है। मैं यह बात साफ समझ गया हूँ कि आप स्वयं चरखा नहीं चलाते। और जबतक कोई स्वयं चरखा चलाना नही जानता, वह बनावटकी ऊपरी समानतासे आसानीसे धोखा खा सकता है।

अब आप मुझे बताइये कि आपके चरखेका मैं क्या करूँ? मैं आपको एक पैसेका भी नुकसान नहीं पहुँचाना चाहता। इसलिए मैं खुशीके साथ वह चरखा आपको वापस भेज दूंगा। लेकिन यदि आप चाहते हैं कि मैं इस चरखेको कहीं और भेज दूं, तो वह भी मैं सहर्ष अपने खर्चपर कर दूंगा। अथवा यदि आपकी इच्छा हो कि किसी और तरहसे मैं इसे आजमाकर देखूँ तो वह भी मैं खुशीसे करूँगा। और यदि

यह किसी भी प्रकार सन्तोषप्रद हो सका तो मैं इसे रख लूँगा और आपका बिल चुका दूँगा।

हृदयसे आपका,

सी० वी० रंगनचेट्टी
नारायणवरम

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११२०४) की माइक्रोफिल्मसे।

१७९. पत्र : सर हैरॉल्ड मैनको

आश्रम
साबरमती
२० जुलाई, १९२६

प्रिय सर हेरॉल्ड मैन,

पूनाकी आगामी प्रदर्शनीमें हाथ-कताई प्रदर्शनके लिए मुझे आमन्त्रित करनेवाले आपके पत्रके[1] लिए धन्यवाद। मुझे प्रदर्शन करना बहुत प्रिय लगता, लेकिन दो कारणोंसे मैं यह नहीं कर सकता। मैंने यह प्रण कर रखा है कि २० दिसम्बर तक, अत्यधिक महत्त्वके अनपेक्षित सार्वजनिक कार्य अथवा स्वास्थ्य सम्बन्धी कारणोंके अलावा मैं अहमदाबादसे बाहर नहीं जाऊँगा। दूसरे मैं जरा सावधानी और सतर्कताके साथ चलना चाहता हूँ और इसलिए मैं ऐसे आयोजनोंसे, जो गैर-सरकारी होते हुए भी सरकारी छाप लिये होते हैं या सरकारी संरक्षणमें होते हैं, अपनेको बहुत सम्बद्ध नहीं रखना चाहता। जबतक मैं वर्तमान व्यवस्थाको अनिष्टकारी समझता हूँ तबतक ऐसा करना ही मेरे लिये अधिक उचित है। मैं जानता हूँ कि मैं आपको इस प्रकार निस्संकोच और स्पष्ट लिख सकता हूँ कि आप इसे किसी भी रूपमें अशिष्टता नहीं मानेंगे।

जो प्रदर्शन करनेवाले आपके पास भेजे जायेंगे उन्हें आप पूरी तरहसे कार्यक्षम पायेंगे और प्रदर्शन भी वैज्ञानिक ढंगपर किया जायेगा। हम लोग वैज्ञानिक तरीकेसे ही इसपर अनुसन्धान कर रहे हैं, इसलिए किसी भी प्रमुख कार्यकर्त्ताके न तो कोई पूर्व-निर्धारित विचार हैं और न ही किसी प्रकारके पूर्वग्रह। हम यह अनुभव करते हैं कि डूबते हुए किसानोंको विनाशसे बचानेका एकमात्र साधन चरखा ही है और इसी कारण इसको सुधारने और इसे सफल बनानेमें हम अपनी समस्त शक्ति लगा रहे हैं।

आपने 'डेरी' की जो योजना मुझे भेजी है, उसपर मैं विचार कर रहा हूँ। अहमदाबादके पास ऐसी किसी जमीनका मुझे मिल सकना सम्भव तो नहीं दिखता; परन्तु यदि आप उस विशेषज्ञको, जो आपकी नजरमें हैं, भेज सकें तो वह आश्रमसे लगी हुई जमीनको जो हमारे पास है, देख सकते हैं। यदि उनकी रायमें यहाँ छोटे

१. १४ जुलाईके अपने इस पत्रमें सर हैरॉल्ड मैनने गांधीजी द्वारा कताई-प्रदर्शनको "ग्रामीणोंको कताईके लिए प्रोत्साहन देनेका सबसे कारगर साधन" कहा था। (एस० एन० ११२००)।

पैमानेपर एक डेरी स्थापित की जा सकती हो तो जमीनका कुछ भाग इस कामके लिये अलग रखा जा सकता है। अगर यह ठीक नहीं बैठता तो अहमदाबादसे कुछ दूर जमीन खरीदनेके बारेमें मुझे उनसे सलाह-मशविरा करना होगा। मैं स्वयं यहाँ एक छोटी डेरी चला रहा हूँ; इसीको और बढ़ाना भी सम्भव हो सकता है। जो सज्जन डेरीके विषयमें सब-कुछ जानते हैं उनसे स्वयं बातचीत किये बिना कुछ भी निश्चय नहीं किया जा सकता।

हृदयसे आपका,

सर हैरॉल्ड मैन
कृषि निदेशक
पूना, बी० पी०

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११२०५) की माइक्रोफिल्मसे।

१८०. पत्र : उर्मिलादेवीको

आश्रम
साबरमती
२० जुलाई, १९२६

प्रिय बहन,

आपका विस्तृत परन्तु हृदयविदारक पत्र मिला। यद्यपि आपने वह पत्र जल्दीमें और व्याकुल मनसे लिखा था, फिर भी वह स्पष्ट और सुसम्बद्ध है और उसमें कोई भी चूक नहीं है। मुझे यह जानकर दुःख हुआ है कि वासन्ती देवी मोन्टूकी मृत्युके आघातसे विचलित हो उठी हैं। देशबन्धुके निधनके बाद ही इतनी जल्दी, और मोना तथा बेबीकी बीमारीके साथ [यह आघात लगनेपर] उनका टूट जाना अजब नहीं है। परन्तु मैं आशा करता हूँ कि अब वे कुछ ठीक हुई होंगी और उन्होंने 'ईश्वरेच्छा' मानकर अपने मनको बहुत-कुछ समझा लिया होगा।

मुझे यह जानकर तसल्ली हुई है कि सुजाता इस स्थितिमें अपेक्षित सहनशक्ति दिखा रही है और हिम्मतके साथ अपना दुख सह रही है। काश इस संकटके समय मैं वहाँ होता। लेकिन यह सम्भव नहीं है। प्रभु आप सबको शान्ति दे।

आपका,

श्रीमती उर्मिला देवी
४ ए, नफरकुण्डू रोड
कालीघाट
कलकत्ता

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १३६६८) की फोटो-नकलसे।

१८१. पत्र : बासन्तीदेवी दासको

आश्रम
साबरमती
२० जुलाई, १९२६

प्रिय बहन,

आप मुझे कभी पत्र नही लिखती; और मुझे आपसे यह आशा भी नही करनी चाहिए कि इस स्थितिमें आप मुझे पत्र लिखेंगी। उर्मिला देवीने अभी मुझे एक विस्तृत पत्र भेजा है जिसमे उन्होंने आपके दुख और इस बार आप कैसी शोकाकुल हो उठी है, इसका वर्णन किया है। इसपर मुझे कोई आश्चर्य नहीं हुआ। मोना तथा बेबी बीमार हैं और भोम्बलकी इतनी आकस्मिक और दारुण मृत्यु! साहसीसे-साहसी व्यक्ति भी ऐसे शोकसे टूट जाता है। लेकिन मुझे विश्वास है कि आप अपने नही तो कमसे-कम उनके लिए जिन्हें भोम्बल पीछे छोड़ गया है, शीघ्र ही अपनी विह्वलतापर काबू पा लेंगी।

कृपया साथका पत्र[1] सुजाताको दे दीजिएगा। आशा है मोना और उसका बच्चा दोनो ठीक होंगे और बेबी पूर्णतया स्वस्थ हो गई होगी। मैं समझता हूँ कि भास्कर भी अब स्वस्थचित्त हो गया होगा।

आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९६६९) की फोटो-नकलसे।

१८२. पत्र : सुजाताको

आश्रम
साबरमती
२० जुलाई, १९२६

प्रिय सुजाता,

उर्मिलादेवीने मुझे लिखा है कि तुम अपना दुख धीरजके साथ सहन कर रही हो। मैं जानता हूँ कि तुम एक बहादुर लड़की हो। तुम कैसी हो इस बारेमे दो-एक पंक्तियाँ मुझे अवश्य भेजना। ईश्वर तुम्हारी मदद करे।

तुम्हारा,

श्रीमती सुजाता
कलकत्ता

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९६६९) की फोटो-नकलसे।

१. देखिए अगला शीर्षक।

१८३. पत्र : सी० एफ० एन्ड्रयूजको

आश्रम
साबरमती
२० जुलाई, १९२६

प्रिय चार्ली,

कल मैं 'यंग इंडिया' के लिए दक्षिण आफ्रिकाके आगामी सम्मेलनके सम्बन्धमे लिखा तुम्हारा लेख पढ़ रहा था। मुझे लगा कि तुमने यह लेख पूरी तरह सोच-विचार कर नही लिखा। स्पष्टतः तुम्हे स्वयं ही ऐसा लगा है और इसी कारण पाठकोपर पड़नेवाले प्रभावको हलका करनेके लिए तुमने अपनी लिखावटमे छः पंक्तियाँ जोड़ दी हैं। परन्तु इससे तो बात और भी उलझ गई है। तुम्हारी राय है कि दक्षिण आफ्रिकामे मौजूदा पूर्वग्रहका मूल कारण केवल रंगभेदकी भावना है। यदि तुम अपने अनुभवोपर पुनर्विचार करो तो तुम्हे पता चलेगा कि यह अर्ध सत्य ही है। अगर यही पूर्ण सत्य हो तो फिर गोलमेज परिषद्से इसका कोई हल नही निकल सकेगा। तब तो, समय रहते हमे दक्षिण आफ्रिकासे प्रत्येक भारतवासीको हटा लेना चाहिए। गोरोंके और हमारे अपने हकमे भी यही होना चाहिए। दो यूरोपीयोकी जो उक्तियाँ तुमने उद्धृत की हैं; यदि दक्षिण आफ्रिकाके आम गोरोकी विशिष्ट और लगभग सार्वत्रिक भावना वही है तो क्या उस भावनाका प्रतिरोध करना उचित है? क्या सरकार, चाहे वह कितनी भी शक्तिशाली क्यों न हो, एकसे-एक कठोर कानून बनानेके अलावा कुछ और कर सकती है? यह भावना एकदम अनुचित हो सकती है; लेकिन क्या मनुष्य अपन पूर्वग्रहोंको जीत सकता है? और दक्षिण आफ्रिकाके गोरोंके, विशेषकर नेटालके गोरोंके मनमें आम तौरपर यदि यह पूर्वग्रह घर कर गया है, जैसा कि तुम कहते हो, तो क्या हमारे-तुम्हारे जैसे लोगोंका — जिनके लिए सत्यका आचरण ही परमधर्म है — यह कर्त्तव्य नही है कि हम यथार्थ स्थितिको देखें-पहचाने और धीरे-धीरे दक्षिण आफ्रिकासे प्रत्येक भारतीयको सम्मानपूर्ण तथा शोभनीय ढंगसे हटानेके लिए जमीन तैयार करे। यदि रंगभेद सम्बन्धी पूर्वग्रहके विषयमें मेरा विचार तुम्हारी तरह होता तो मैं निश्चय ही लोगोंके वापस लौटनेकी बातकी ताईद करता; भले ही कोई और मेरा समर्थन न करता। लेकिन सच तो यह है कि मैं तुम्हारे निष्कर्षोंसे सहमत नहीं हूँ। पहली बात तो यह है कि मैं यह नही मानता कि दक्षिण आफ्रिकाके लोगोंकी मनोवृत्ति इतनी अधिक दूषित हो गई है। मेरा विचार यह है कि इस पूर्वग्रहके साथ बहुत-सी बाते जुड़ी हुई हैं। अगर पूर्वग्रह उतना ही प्रबल होता, जितना तुम सोचते हो, तो गोरे लोग भारतीयोंके लिए स्थिति इतनी कठिन बना देते कि उनका वहाँ क्षण-भर भी रहना-ठहरना असम्भव हो जाता। उसके लिए कोई कानून बनानेकी भी आवश्यकता न पड़ती। याद रखो कि अब भी भारतीयोंका व्यापार यूरोपीय लोगोंपर ही अवलम्बित है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि सामाजिक जीवनमें

रंगभेद सभी जगह मौजूद है। यह एक ऐसा व्यवधान है जिसे समय ही समाप्त करेगा। इसको खत्म करनेके लिए कोई कानून जरूरी नही है। यों देखा जाये तो यह भेदभाव दक्षिण आफ्रिकाकी अपेक्षा शायद यहाँ कही अधिक है। लेकिन मै इस तर्कको और आगे नहीं बढ़ाना चाहता। मैं सिर्फ इतना कहना चाहता हूँ कि तुम अपनी लेखनीपर थोड़ा अंकुश रखो, क्योकि जो-कुछ तुम लिखते हो उसका प्रभाव अवश्य पड़ेगा और पड़ता है। तुम्हारा यह लेख इतना असंगत है कि मै इसे लौटा रहा हूँ ताकि तुम इसपर फिर विचार कर सको। यदि मै गलतीपर हूँ, तो बताना। 'अफीम' के विषयपर जो लेख तुमने भेजा था वह भी मैने प्रकाशित नही किया। वह इतनी जल्दीमे लिखा गया है कि वह कामका नही बन पाया है। वह बड़ा ही असम्बद्ध-सा है और उसमे जानकारी भी पर्याप्त नही दी गई। परन्तु ये दोनों लेख तुम्हारी अत्यधिक मानसिक क्लान्तिके द्योतक हैं। क्या तुम अपनेको थोड़ा रोकोगे नही; या तुम सोचते हो कि प्रभुका आदेश यही है कि तुम्हारी लेखनी अविराम चलती रहे? ग्रेगने लिखनेकी तुम्हारी इस झकको एक पंक्तिमे व्यक्त कर दिया है। उनका कहना है "कीड़ेके काटनेसे हुआ जहरबाद तुम्हारे लिए भगवानका दिया वरदान था, क्योकि उससे मजबूरन तुम्हे कलम उठाकर रख देनी पड़ी थी।" कुछ भी कहो, जबतक तुम्हें कुछ आराम नही मिल जाता, तबतक 'यंग इंडिया' के लिये कुछ लिखनेके दायित्वसे मैं तुम्हे बरी करता हूँ। और यदि तुम अन्य समाचारपत्रोसे भी इस प्रकारकी मुक्ति चाहते हो, तो उसे दिलानेका जिम्मा मै अपने ऊपर लेता हूँ। मै तुम्हें इस बातका विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि तुम्हारे लेख लिखना बन्द करनेसे आसमान नही गिर पड़ेगा। शायद ही कोई ऐसा समाचारपत्र मै देखता हूँ जिसमे एक ही विषयपर तुम्हारे लम्बे-लम्बे लेख न होते हो। यदि ये समाचारपत्र तुम्हारे लेखोके बिना नही चल सकते तो उनको बन्द हो जाने दो। मुझे इस बातसे दुख होता है कि आवश्यक न होनेपर भी तुम निरन्तर लिखनेमे जुटे रहते हो।

हार्दिक प्रेम।

तुम्हारा,

रेवरेंड सी० एफ० एन्ड्रयूज
शान्तिनिकेतन

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९६७०) की फोटो-नकलसे।

१८४. पत्र : ए० एम० सिम्सनको

आश्रम
साबरमती
२० जुलाई, १९२६

प्रिय मित्र,

नियमावलिके साथ आपका पत्र मिला। मुझे तो सिन्डीकेटका एकमात्र उद्देश्य तिलहन खरीदना ही लगता है। इस बातका कही भी उल्लेख नही है कि इस उद्योग-को प्रारम्भ करनेवाले लोग कौन हैं और शुरू-शुरूमे इसके लिए किसने पूँजी लगाई है। जबतक मुझे और अधिक ठीक-ठीक जानकारी नही मिलती, तबतक मै अपनी राय नही दे सकूँगा।

हृदयसे आपका,

श्री ए० एम० सिम्सन
सचिव
कोऑपरेटिव वेजीटेबल आयल सिन्डीकेट लिमिटेड
इन्दौर (सेंट्रल इंडिया)

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९६७१) की माइक्रोफिल्मसे।

१८५. पत्र : परमानन्द कुँवरजीको

आश्रम
साबरमती
मंगलवार, आषाढ़ सुदी १०, २० जुलाई, १९२६

भाईश्री परमानन्द,

आपका पत्र मिला। शब्दोंके विषयमें आपके तर्कको मैं समझता हूँ और उसका महत्व भी जानता हूँ। जब एक शब्द अनेक अर्थोमें प्रयुक्त होता है तब उससे बहुत गलतफहमी पैदा होती है। परन्तु मेरा विश्वास है कि इससे मेरे लेखोंका भावार्थ समझनेमें कोई मुश्किल नही होती।

मैं माधुरीके मामलेमें आपका दोष मानता हूँ। हम बालकोंको किसी वातावरणमें रखें और फिर यह मानें या चाहें कि उस वातावरणका स्पर्श उन्हें न हो, यह कितने आश्चर्यकी बात है। मैं ऐसे दृष्टान्त जगह-जगह देखता रहता हूँ। यदि आप माधुरी-को शौकीन नहीं बनाना चाहते तो आपको उसे सादे वातावरणमें रखना चाहिए।

परन्तु यदि आप वह जहाँ है उसे वहीं रखकर उससे विदेशी वस्त्र न पहननेका आग्रह करेंगे तो यह तो जबर्दस्ती करने जैसा होगा।

माधुरीकी बातको लेकर आपने जो सिद्धान्तका प्रश्न उठाया है उसका उत्तर यह है कि बालकोंके ऊपर माँ-बापका अंकुश होना आवश्यक है। बालक जो-कुछ करे, हम उन्हें वह-सब नहीं करने दे सकते। हमारी दक्षता इसीमें है कि हम कमसे-कम दबाव डालकर उनसे काम ले सकें। बच्चा कुएँकी ओर दौड़े, माजूम-पाक खाना चाहे, हदसे ज्यादा खाना खाना चाहे और ज्वरसे पीड़ित होनेपर भी पूरी-पकौड़ी माँगे तो जैसे उसकी इनमें से एक भी इच्छा हमें पूरी नहीं करनी चाहिए, इसी प्रकार नैतिक प्रश्नोंके सम्बन्धमें भी हमें वैसा ही करना चाहिए।

लेकिन स्त्री-पुरुषका प्रश्न भिन्न प्रकारका और अत्यन्त कठिन है। यदि मांसाहारी कुटुम्बमें पुरुष निरामिषाहारको धर्म समझकर निरामिषाहारी हो जाये तो क्या किया जाये? क्या स्त्रीसे भी जबर्दस्ती पुरुषका धर्म स्वीकार कराया जाये? मुझे तो लगता है कि यदि पुरुषने भोगेच्छाका त्याग कर दिया हो और पत्नी अपने लिए माँस न ला पाती हो तो पतिको चाहिए कि वह तटस्थ भावसे उसके मांसाहार करनेमें मदद दे। यदि पुरुष विषयासक्त रहते हुए भी धर्मकी दृष्टिसे मांसाहार तो छोड़ दे परन्तु अन्य विषयोंमें असंयत बना रहे तो उसे अपनी पत्नीसे अलग रहने लगना चाहिए और उसे भरण-पोषणके लायक धन देना चाहिए। यदि स्त्री स्वधर्मावलम्बी किसी अन्य पुरुषसे फिर विवाह करना चाहे तो उसे इसका विरोध नहीं करना चाहिए। इतना ही नहीं, वरन् उसकी सहायता करनी चाहिए। मेरा अहिंसा धर्म मुझे यही बताता है। इसमें अनेक सिद्धान्त एक साथ आ जाते हैं परन्तु इन सबका स्रोत अहिंसाके सिद्धान्तमें ढूँढ़ा जा सकता है।

जिसने खादीको धर्म मानकर स्वीकार किया है वह खादीको स्वीकार न करनेवाली अपनी पत्नीके साथ कैसा व्यवहार करे यह प्रश्न भी इसी तरह सहज ही हल किया जा सकता है। किन्तु इतनेसे ही हमारा काम नहीं चलता। हिन्दू समाजमें पति, पत्नीका मित्र ही नहीं, शिक्षक और अभिभावक भी होता है। यदि वह अपने इस कर्त्तव्यको समझता हो तो जो-कुछ मैंने पतिके कर्त्तव्यके बारेमें ऊपर लिखा है उसमें कुछ परिवर्तन करना होगा। परन्तु मुझे इसका विवेचन करनेकी आवश्यकता नहीं है।

ये सब बातें मैंने बहुत ही संक्षेपमें लिखी हैं, अतः मैं नहीं चाहता कि इनका सार्वजनिक उपयोग किया जाये।

श्री परमानन्द कुँवरजी
१३७, शराफ बाजार
बम्बई

गुजराती प्रति (एस० एन० १०९६६) की फोटो-नकलसे।

१८६. पत्र: सैयद हैदर रजाको

आश्रम
सावरमती
२१ जुलाई, १९२६

प्यारे दोस्त,

आपका खत[1] मिला। जेलसे रिहा होनेके वाद मैंने जो-कुछ कहा था वह एक दस्तखत शुदा दस्तावेजकी[2] शक्लमें मौजूद है। उसकी एक नकल मैं आपको भेज रहा हूँ। मुझे यह खुशफहमी जरूर थी कि जेलसे मेरी रिहाईसे एका पैदा होगा लेकिन मेरी उम्मीदपर पानी फिर गया। हालाँकि मुझे आपकी इस वातसे इत्तिफाक है कि गलती हमारी है, फिर भी मुझे इसमें कोई शक नहीं कि विदेशी हुकूमत हमारी कमजोरियोंका फायदा उठाती है और अपना उल्लू सीधा करती है। आप मुझसे कहते हैं कि मैं कुछ करूँ। जो-कुछ भी मेरे लिए मुमकिन है वह सब मैं कर रहा हूँ। लेकिन मैं अपनेको निहायत वेवस और नाकाविल महसूस करता हूँ। जो इलाज मेरे पास है वह दोनोंमें से किसीको भी मंजूर नहीं है। इसलिए मैं तो ठीक वक्तके इन्तजारमें वस एक तरफ खड़ा देख रहा हूँ और दुआ माँग रहा हूँ। मुझे पूरा यकीन है कि किसी-न-किसी रोज लोगोंके दिमाग रोशन होंगे।

हृदयसे आपका,

सैयद हैदर रजा साहव
९, वाइकहम रोड
हेस्टिंग्स

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११०८२) की फोटो-नकलसे।

१. श्री रज़ाने ३० जूनके अपने पत्रमें भारतमें हिन्दू-मुस्लिम उपद्रवोंसे सम्बन्धित अंग्रेजी समाचार-पत्रोंके विवरणका जिक्र किया था। उन्होंने लिखा था: "मैंने गौर किया है कि ये उपद्रव आपकी गिरफ्तारीके साथ शुरू हुये थे। और मैंने उम्मीद की थी कि आपकी रिहाईके बाद ये खत्म हो जायेंगे। लेकिन वे तो अब भी वेरोकटोक चल रहे हैं।" श्री रज़ाने आगे लिखा था: "इस देशके अखबारोंका कहना है कि रिहा होनेपर आपने यह कहा, जो उनके मुताबिक आपने खुले-आम कहा था, कि दोनों कौमोंके जजबात इतने उभरे हुए हैं कि इसका एक हल यही है कि दोनों डटकर लड़ लें जिससे उनका गुस्सा खत्म हो जाये और दिमाग दुरुस्त हो जाये। मुझे यकीन है कि यह बात, जो आपकी कही बताते हैं—पूरी सच नहीं है।"। (एस० एन० ११०७४)

२. दस्तावेजसे अभिप्राय मुहम्मद अलीको लिखे पत्रसे है जिसे गांधीजी रिहा होनेपर "देशवासियों-के नाम सन्देश" के रूपमें प्रसारित करना चाहते थे। देखिए खण्ड २३, पृष्ठ १७४-७५।

१८७. पत्र : आर० बी० ग्रेगको

आश्रम
साबरमती
२१ जुलाई, १९२६

प्रिय गोविन्द,

तुम्हारा पत्र मिला। यदि मैं चमत्कारमें विश्वास करता होता, तो मैं यही कहता कि मेरा फिनलैंड न जाना एक चमत्कार है। वास्तवमें, मैं तो अन्तिम स्वीकृतिका पत्र और तार भी लिखा चुका था, परन्तु 'पुस्तकालय' जानेका मेरा संयोग और सहसा मनमें एक विचार कौंध उठनेसे पाँच मिनटके अन्दर ही पूरी स्थिति बदल गई।

यदि मुझे राह साफ दिखाई दे तो मैं निश्चय ही चीन जाना चाहूँगा, लेकिन तुमने जिनका जिक्र किया है उन कारणोंसे नहीं। विदेशोंमें धाक या प्रतिष्ठा जमनेकी बातपर मेरा विश्वास नहीं है। इस कारण मुझे नहीं लगता कि चीनियोंद्वारा इसे स्वीकार कर लेनेसे, वैसे मुझे इसकी आशा भी नहीं है, भारतमें मेरा रास्ता कुछ अधिक सुगम हो जायेगा। जो चीज मुझे चीनके प्रति आकर्षित करती है वह है हम दोनोंकी स्थितिकी समानता। दोनों ही देश विदेशी सत्ताके अधीन हैं। ट्रान्सवालमें चीनी बस्तीके साथ मेरा बहुत ही निकटका सम्पर्क रहा था। सच तो यह है कि मैं जहाँ फिनलैंडमें बुद्धिजीवियोंको आसानीसे अहिंसाका कायल बना सकता था वहाँ चीनियोंसे, चाहे वे संस्कृत हों या असंस्कृत, ऐसी स्वीकृति पाना मेरे लिये अत्यन्त ही कठिन होगा। लेकिन जिस प्रकार मुझे यहाँ इसकी कोई परवाह नहीं कि लोग अहिंसाको अपनाते हैं या नहीं, उसी प्रकार इस बातकी भी कोई चिन्ता नहीं है। यूरोप और अमेरिकाकी ओरसे जो भय मुझे है वह है उनका सरक्षकके भावसे मिलना। चीनसे मुझे ऐसी कोई आशंका नहीं है। मेरी इस बातमें तुमको शायद गर्वका किंचित् आभास दिखाई पड़े। ऐसा लगे तो वह ज्यादा गलत नहीं होगा। स्थिति यही है।

किसी मित्रने "द आर्म ऑफ गॉड" पुस्तक मुझे भेजी जरूर थी। मैं नहीं समझता कि मैंने उसे ध्यानसे पढ़ा था। पर तुम उसे इतनी अच्छी बताते हो इसलिये मैं अपने पुस्तकालयाध्यक्षसे उसे निकालकर भिजवानेको कहूँगा।

अहिंसाके[1] विषयपर लिखनेके पहले तुम शौकसे खद्दरके सम्बन्धमें अपने अर्थ-शास्त्रीय तर्कोंको सुव्यवस्थित कर लो। जब तुम मुझे प्रश्न भेजोगे, मैं उनका उत्तर देनेका प्रयत्न करूँगा।

इस समय मुझे साबरमतीके बाहर नहीं जाना चाहिये। मेरी तबीयत ठीक चल रही है। मैं केवल फलोंपर रहनेका प्रयोग कर रहा हूँ। आज नवाँ दिन है।

१. श्री ग्रेगने इसके बाद **इकॉनॉमिक्स ऑफ खद्दर** तथा **पॉवर ऑफ नॉनवॉयलेन्स** लिखी थी।

मैं कमजोरी अनुभव नहीं कर रहा हूँ। अनिश्चित कालतक केवल फलोंपर रहकर मैं अपनी शक्ति बनाये रख सकूँगा, ऐसा मैं नहीं सोचता। कब्ज ठीक करनेके लिये ही मैंने यह प्रयोग आरम्भ किया है। और अब तो मैं आनन्दके लिये इसे किये जा रहा हूँ। एक बार मैं दूध भी छोड़ना चाहता हूँ। इस समय मेरा आहार आम और अंगूर है।

सुन्दरम्से कहना कि उसका साप्ताहिक सुन्दर उपहार मुझे मिल गया है और यदि वह एक सप्ताह न भी भेजे तो चिन्तित न हो।

सबको स्नेह,

हृदयसे तुम्हारा,

श्री आर० बी० ग्रेग
द्वारा श्री एस० ई० स्टोक्स
कोटगढ़
शिमला हिल्स

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९६७२) की फोटो-नकलसे।

१८८. पत्र: घनश्यामदास बिड़लाको

आश्रम
साबरमती
२१ जुलाई, १९२६

भाई घनश्यामदासजी,

खादी प्रतिष्ठानके बारेमें आपका जुन मासका पत्र मिला था। मेरा ख्याल यही रहा है कि मैंने आपको उसका उत्तर दे दिया था। आपने जो कुछ भी कीया है उस बारेमें मुझे कुछ भी कहना न था: जो कुछ भी सहाय खादी प्रतिष्ठानको आप दे सकें उस्में मेरी संमति ही हो सकती है। मेरा विश्वास है कि बंगालमें जो खादी-प्रवृत्ति चल रही है वह चलानेवाले सात्विक भावसे और शुद्ध बुद्धिसे और चतुराईसे चलाते हैं। बंगालमें चरखासंघके मारफत आजतक जो कुछ द्रव्य दिया गया है उसका हिसाब इसके साथ रखता हुं। अखबारोंसे पता मीलता है हिंदु-मुसलमानका झगड़ा वहाँ प्रतिदिन बढ़ रहा है तदपि अब मुझको बड़ा आघात नहिं होता है और मेरा विश्वास कायम है कि इसीमेंसे भी एक दिन — और वो भी शीर्घतासे आयगा — इकट्ठे हो जायेंगे। सबसे ज्यादे दंगा बंगालमें होता है उसका भेद आपने पाया है?

मोहनदास

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ६१३०) की फोटो-नकलसे।
सौजन्य: घनश्यामदास बिड़ला

१८९. पत्र : बनारसीदास चतुर्वेदीको

आश्रम
साबरमती
बुधवार, आषाढ सुदी ११, [२१ जुलाई, १९२६][1]

भाई वनारसीदासजी,

आपका पत्र मिला है। सब दलसे अलग रहनेकी नीति ही आजकल अच्छी लगती है। प्रवासी विभागके लिये कटु अनुभव मिला उससे मुझे दुःख होता है किन्तु आश्चर्य नही होता है। यह अखतरा करनेके लिये मुझको दु.ख हो ही नही सकता है। अनुभव ज्ञान उसके सिवाय मिल ही नही सकता है। और मेरा वाक्य जो उद्धृत किया है उसका सत्य मैं प्रतिक्षण अनुभवता हूँ। और यह भी विलकुल ठीक लिखा है कि प्रवासी विभागके निष्फलताके लिये महासभाके अधिकारीओको दोषित न माने जाये। डा० सुधीन्द्र बोसका दुःखप्रद किस्सा है।

मोहनदासके
बं० मा०

श्रीयुत वनारसीदास चतुर्वेदी
फीरोजावाद
(यू० पी०)[2]

मूल पत्र (जी० एन० २५६७) की फोटो-नकलसे।

१९०. पत्र : नाजुकलाल नन्दलाल चोकसीको

आश्रम
साबरमती
बुधवार, आषाढ़ सुदी ११, [२१ जुलाई, १९२६][3]

भाई नाजुकलाल

तुम्हारा पत्र मिला। मोतीका पत्र भी मिल गया है। ऐसा लगता है कि मोती यह मानती है कि दवा लेनेमें आलस्य न करने-मात्रसे ही स्वास्थ्यकी पूरी देखभाल हो जाती है, जवकि दवा लेना तो एक वहुत छोटी वात है। खाने-पीने, व्यायाम करने, सोने-वैठने इत्यादिमें नियमोंका उल्लंघन करनेसे ही व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं। इन

१. डाककी मुहरसे।
२. मूल पत्रमें पता अंग्रेजीमें दिया गया है।
३. डाककी मुहरसे।

नियमोंका सावधानीसे पालन करना ही स्वास्थ्यकी रक्षाका उद्योग करना है, और इनका पालन न करना घोर आलस्य है। यह बात तुम मोतीको समझा दो।

मैं हिन्दू-मुस्लिम दंगोंको चिकित्सककी शल्यक्रिया-जैसा मानता हूँ। यदि इसके बिना काम चल सकता तो उत्तम बात होती, परन्तु स्पष्ट है कि हमारा यह सामाजिक अंग विषाक्त हो गया था और उसे पट्टी आदिसे ठीक करना सम्भव नहीं था। इन उपद्रवोंके बाद किसी दिन तो हममें एकता कायम होगी ही। और यदि समाजकी देह जर्जर ही हो गई है तो वह नष्ट हो जायेगी। किन्तु इनमें हानि भी क्या है? हम सब घोर निद्रामें थे; उससे आजकी स्थिति बुरी नहीं है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (एस० एन० १२१३२) की फोटो-नकलसे।

१९१. पत्र: रेवाशंकर ज० झवेरीको

आश्रम
साबरमती
बुधवार, आषाढ़ सुदी ११, २१ जुलाई, १९२६

आदरणीय रेवाशंकरभाई,

आपका पत्र मिला। रतिलालके[1] बारेमें दृढ़ रहना नितान्त आवश्यक है। मैंने तो उससे कह दिया है कि उसे हिसाबसे अधिक एक पाई भी नहीं मिलेगी। डाक्टरकी रकम तो हमें सीधी मँगा लेनी चाहिए। मैंने खर्च ज्यादा करनेके बारेमें चम्पाको भी कड़ा पत्र लिखा है, परन्तु वह उसका उत्तर टाल गई है। मैं उसके यहाँ आनेकी राह देख रहा हूँ।

पूंजाभाईको[2] परसों चक्कर आ गया था और वे गिर गये थे। इस समय उनकी हालत कहीं आने-जाने लायक नहीं है। लगता है आपने उन्हें छगनलाल मनसुखलालकी पेढ़ीके कामके सम्बन्धमें आनेके लिए लिखा था। मुझे तो इस समय पूंजाभाईको इस मामलेमें तकलीफ न देना ही ठीक लगता है। पूंजाभाईकी इच्छा है कि जो-कुछ करना हो उसे आप ही वहाँ कर लें। मुझे भी यही उचित लगता है।

यह तो स्पष्ट ही है कि आपका हर गर्मीमें किसी ठण्डी जगह जाना जरूरी है।

लेबर्नम रोड
गामदेवी
बम्बई

गुजराती प्रति (एस० एन० १२२०८) की फोटो-नकलसे।

१. रतिलाल प्राणजी मेहता, प्रेषीके भतीजे।
२. अहमदाबादके पूंजाभाई हीराचन्द शाह।

१९२. पत्र : प्रभुदास भीखाभाईको

साबरमती
२१ जुलाई, १९२६

प्रिय प्रभुदास भीखाभाई,

आपका पत्र मिला। मैं मानता हूँ कि प्राणनिग्रहसे वीर्यनिग्रह हो सकता है; परन्तु उससे ब्रह्मचर्य पालनका कठिन प्रश्न हल नही हो सकता। ब्रह्मचर्यका अर्थ है सभी इन्द्रियोंका संयम। आपको कदाचित् यह ज्ञात नही कि आजकल शल्यक्रिया की सहायतासे वीर्यनिग्रह किया जा सकता है; परन्तु क्या ऐसे मनुष्यको आप ब्रह्मचारी मानेंगे? एक शास्त्रीने मुझे यह बताया कि संस्कृतमें वीर्यनिग्रह करनेका अर्थ है उर्ध्वरेता होना। उन्होंने यह भी कहा कि 'भागवत' के भगवान् कृष्ण उर्ध्वरेता थे और इसलिए कितनी ही स्त्रियोसे स्वच्छन्द व्यवहार कर सकते थे। इससे क्या आप उन्हें ब्रह्मचारी माननेके लिए तैयार है? अब आप समझ जायेंगे कि केवल प्राणायामसे साधे गये ब्रह्मचर्यका मूल्य बहुत नही है। उसका मूल्य तो, इन्द्रियोंका दमन करनेमें जो महाप्रयास करना पड़ता है, उसमें निहित मानना चाहिए। और ऐसा प्रयास करते-करते इन्द्रियोंकी गति आत्मोन्मुख होनेसे उनमें जो शक्ति सृजित होती है वह समस्त ब्रह्माण्डमें व्याप्त हो सकती है। मेरा यह अडिग विश्वास है कि ऐसा ब्रह्मचर्य कभी बाह्य साधनोके द्वारा नही साधा जा सकता। 'गीता' के दूसरे अध्यायमे अनुभवी कृष्णने कहा है कि निराहारी मनुष्यके विषय भले ही शान्त हो जायें; परन्तु विषयोंका रस नहीं जाता।[1] यह वासना तो ईश्वरके साक्षात्कारसे ही जाती है और ईश्वरका साक्षात्कार करनेमे तो कई जन्म लग जाते है। शंकराचार्यका कहना है कि यदि कोई मनुष्य समुद्रके किनारे बैठकर तिनकेसे एक-एक बूँद उलीचनेका धैर्यपूर्वक महाप्रयास करे और उस पानीको समा लेने योग्य कोई स्थान हो तो अंकगणितके हिसाबसे कई करोड़ वर्षोमें समुद्रको खाली किया जा सकना सम्भव भले ही हो, परन्तु इसके लिए जितना धैर्य चाहिए उससे कही अधिक धैर्य ईश्वरका साक्षात्कार करनेके लिए चाहिए। 'भगवद्गीता' के वचनके अनुसार ब्रह्मचर्यका अर्थ है ईश्वरका साक्षात्कार। इसमे प्राणायामकी अवगणना कदापि नही है। मैं प्राणायामको सहायक वस्तु मानता हूँ; परन्तु यह उसका सम्पूर्ण साधन नही। यह ब्रह्मचर्य पालनके मार्गका केवल एक छोटा-सा भाग हो सकता है। मेरी आपसे यही शिकायत है कि आप इसे जितना महत्व देना उचित है, उससे अधिक महत्व देते जान पड़ते हैं।

मोहनदासके वन्देमातरम्

कठलाल

गुजराती पत्र (एस० एन० १९९३५) की माइक्रोफिलमसे।

१. विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः। २-५९

१९३. राष्ट्रीयता और ईसाई धर्म

यूनियन क्रिश्चियन कालेज अलवाईके श्री मालकम मगरिजके एक भाषणका सारांश मेरे पास प्रकाशनार्थ भेजा गया है। वह संक्षेपमें नीचे दिया जाता है।[१] यह भाषण लाभदायक है, क्योंकि इससे यह प्रकट होता है कि ईसाई मतको माननेवाले हिन्दुस्तानियोंमे राष्ट्रीय जागृति हो रही है। आश्चर्य तो इस बातका है कि यह काम इतने दिनों रुका क्यों रहा? यह बात हमारी समझमे बिलकुल नही आती कि कोई भी धार्मिक पुरुष अपने निकटस्थ पड़ोसियोके मनोरथसे सहानुभूति रखे बिना किस प्रकार रह सकता है। अन्तर्राष्ट्रीयतामें राष्ट्रीयताका भाव विद्यमान है—लेकिन यह वह राष्ट्रीयता नही है जो सकीर्ण, स्वार्थमय या लोभपूर्ण होते हुए भी प्रायः 'राष्ट्रीयता' के नामसे पुकारी जाती है—वल्कि यह वह राष्ट्रीयता है जो अपनी उन्नति और स्वतन्त्रताके उद्देश्यपर दृढ़ रहते हुए भी दूसरे राष्ट्रोंको नुकसान पहुँचाकर उसे हासिल करना अपनी प्रतिष्ठाके विरुद्ध समझती है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २२-७-१९२६

१९४. वह गोलमेज परिषद्

आखिर, यह घोपणा हुई है कि दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंकी स्थितिके बारेमें होनेवाली परिषद केपटाउनमे होगी और यह भी सूचित किया गया है कि दक्षिण आफ्रिकासे एक आयोग हिन्दुस्तानका लोकमत समझनेके लिए यहाँ आनेवाला है। भूतपूर्व मन्त्री श्री मलान आयोगके एक सदस्य होगें।

इस सबका परिणाम अच्छा तो होना चाहिए।

यह एक ठीक बात है कि परिषद दक्षिण आफ्रिकामें होने जा रही है। वहाँकी संघ सरकार, चूँकि उत्तरदायित्वपूर्ण सरकार है, इसलिए उसके प्रत्येक कामके पीछे लोकमतका वैसा बल होना जरूरी होता है जैसा बल हासिल करनेकी भारतीय सरकार जरूरत नही समझती। और फिर, भारतवर्षमें भारतीयोंकी माँगोके बारेमें लोकमत पैदा करनेकी जरूरत भी नही है, क्योंकि वह तो यहाँ उनके पक्षमें मौजूद ही है। दक्षिण आफ्रिकामे भारतीयोंकी स्वत्वरक्षाके औचित्यपूर्ण होनेके सम्बन्धमें यूरोपीय लोकमतको सुधारनेके लिए जो-कुछ किया जाये, सो थोड़ा ही है। इसलिए यदि संघ सरकार नेकनीयतसे काम लेगी और यदि हिन्दुस्तानी प्रतिनिधियोंको विवेकके साथ चुना जायेगा तो परिषदमें जो प्रस्ताव पास होंगे उनको ध्यानमें न रखते हुए भी

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

यह कहा जा सकता है कि यह परिषद यूरोपीय मतको ठीक दिशामें प्रवाहित कर सकेगी।

और दक्षिण आफ्रिकासे एक आयोगके हिन्दुस्तान आनेकी बात भी एक अच्छी बात है। जो बातें केवल खुद आनेसे ही मालूम की जा सकती हैं, आयोगको वे बातें तभी मालूम होगी। पुस्तकें या समाचारपत्र चाहे कितने ही क्यो न पढे जायें और प्रतिनिधियोंसे चाहे कितनी मुलाकातें क्यों न ली जाये, उस सबसे उतनी जानकारी हरगिज प्राप्त नही हो सकती जितनी सम्बन्धित स्थानपर पहुँचकर वहांके लोगोको रूबरू देख-समझकर की जा सकती है।

यह भी अच्छा है कि इस आयोगमें ऐसे अग्रगण्य लोग है जो इस मामलेके जानकार माने जाते है। हमारा पक्ष इतना न्यायपूर्ण है कि कोई जितना ही इसके अन्दर पैठेगा, उससे हमारा उतना ही हित होगा। यदि इस सम्बन्धमें सूक्ष्म छानबीन और तथ्योंका व्यापक प्रचार होता है तो उससे हमारा कोई नुकसान होनेवाला नही है। दक्षिण आफ्रिकासे लोग जितना हमारे यहां आयें हमारे लिये उतना अच्छा है। समझौतेके मार्गमें सबसे बड़ी कठिनाई यही तो है कि भारतीय प्रश्नके बारेमें नेकसे-नेक दक्षिण आफ्रिकानिवासी भी अनभिज्ञ हैं। वे तो केवल स्वार्थी गोरे व्यापारियोकी माँगें क्या है, इतना ही जानते है। वे भारतीयोंके पक्षकी तो कोई भी बात नही जानते। यदि इस परिषदके फलस्वरूप इस प्रश्नपर गम्भीरतासे विचार होने लगा तो यह भय कि हिन्दुस्तानी लोग आफ्रिकामें छा जायेंगे या यह कि जो भारतीय वहाँ पहलेसे ही बसे हुए हैं वे गोरोंके प्रतिस्पर्धी बन जायेंगे, क्षणभरमें जाता रहेगा।

लेकिन परिस्थितिका दूसरा भी एक पहलू है। जनरल हर्टजोगके जो भाषण हुए है, वे चिन्ताजनक हैं। यदि वहीके निवासियोके साथ इन्साफ नहीं किया गया है तो मुझे यह सम्भव नहीं जान पड़ता कि हिन्दुस्तानियोंके प्रति न्याय किया जायेगा। दोनों जातियोंके सम्बन्धमें गोरोकी मनोवृत्ति तो एक ही सी है; बल्कि असंदिग्ध रूपसे हिन्दुस्तानियोके बारेमें वह कही ज्यादा खराब है। कहा जाता है कि वतनी लोग तो गोरोकी कृपादृष्टि पानेका कुछ हक भी रखते हैं; किन्तु हिन्दुस्तानी लोग तो वहाँ सिर्फ बाहरसे आकर जम जानेवाले विदेशी-भर हैं। लोग यह बिलकुल भूल ही जाते है कि पहले-पहल हिन्दुस्तानी लोग ही गोरोके निमित्त शारीरिक श्रमका काम करनेके लिए दक्षिण आफ्रिका जानेके लिए फुसलाकर वहाँ बुलाये गये थे; और उनसे यह वादा भी किया गया था कि तुम लोग वहाँ सुविधाके साथ सदाके लिए बस कर रह सकोगे। लेकिन अब प्रश्न यह नही है कि उनको उस समय क्या-क्या वचन दिये गये थे, बल्कि अब सवाल यह है कि इस समय वहाँके भारतीयोके प्रति गोरोकी वृत्ति क्या है। और चूंकि गोरोंके मनमें हिन्दुस्तानियोंके प्रति बहुत कटुता है इसलिये यदि वतनी लोगोंके साथ अन्याय किया गया है तो हिन्दुस्तानियोंके साथ इन्साफ किये जानेकी आशा नही की जानी चाहिए। इसी बातको हम इस प्रकार भी कह सकते है कि वहाँके निवासियोके साथ न्याय करनेकी इच्छाका आधार स्वार्थ है; यदि हम जरा नीचे तहमें उतरें तो हमको मालूम होगा कि दूसरेके हक छीन

कर न्याय किसीके साथ नही किया जा सकता। 'सर्वेऽपि सुखिन: सन्तु' में निहित कामना करते हुए ऋषिने अनायास ही एक वैज्ञानिक तथ्यको प्रकट किया था।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २२-७-१९२६

१९५. अनीतिकी राहपर – ४

भ्रष्टाचार तथा कृत्रिम साधनोंके उपयोगके कारण उसमें हुई वृद्धि एवं उसके भयंकर परिणामोंकी चर्चा कर चुकनेके बाद लेखक उनके निवारण करनेवाले उपायोंका निरीक्षण करता है। मै उस हिस्सेको छोड़ देता हूँ जिसमें कायदे-कानून, उनकी जरूरत तथा उनके सर्वथा अशक्य होनेका जिक्र है। आगे चलकर वह लोकमतको शिक्षित करनेके द्वारा विवाहित पुरुषोके लिए ब्रह्मचर्यको धर्मके रूपमे अख्त्यार करनेकी आवश्यकतापर विचार करता है। वह विवाहित व्यक्तियोके उस बड़े समुदायके कर्त्तव्य पर भी विचार करता है, जो सदाके लिए अपनी पशुवृत्तिका दमन नही कर सकते, किन्तु जिन्हें एक बार विवाह कर लेनेके बाद यह समझ लेना चाहिए कि हम दम्पत्ति आपसमे एक-दूसरेके साथ वफादारीका बरताव रखेंगे और विषयभोगमें अतिशयता न करेंगे। वह शुद्धाचारके विरुद्ध इस दलीलकी परीक्षा करता है कि इसका आचरण 'पुरुष या स्त्रीकी प्राकृतिक वृत्तिके विरुद्ध एवं उसकी तन्दुरुस्तीमे फर्क डालनेवाला है'; और यह उपदेश 'किसी व्यक्तिकी स्वतन्त्रता, सुखपूर्वक रहने तथा अपनी इच्छानुसार जीवन व्यतीत करनेके हकपर असह्य आक्रमण है।'

लेखक इस सिद्धान्तका विरोध करता है कि अन्य इन्द्रियोंकी भाँति जननेन्द्रियको भी अपने विषयकी अपेक्षा है। उसका कथन है कि

> 'यदि ऐसा होता तो संकल्प-बलकी उस निर्विवाद शक्तिको जो कि उसपर पूर्ण अंकुश रखती, कैसे समझाया जा सकता है? इच्छाका जाग्रत होना, जिसे कि कट्टर नास्तिक एक यौन आवश्यकता बतलाते हैं, उन अगणित उत्तेजनाओंका फल है, जिन्हें हमारी सभ्यता युवकों और युवतियोंके सामने सामान्य रूपसे उनके बालिग होनेके बहुत पहले ही उपलब्ध कर देती है।'

मैं यहाँ उस वैद्यकी बहुमूल्य सम्मति देनेका लोभ संवरण नहीं कर सकता जो ब्यूरोकी पुस्तकमे इस मतके प्रतिपादनमें दी गई है कि आत्मनिग्रह न केवल हानि रहित है, बल्कि स्वास्थ्यको बढ़ानेके लिए अत्यावश्यक तथा नितान्त सम्भव भी है।

> टूबिंगन विश्वविद्यालयके अस्टर्लेनका कथन है कि 'कामवासना इतनी प्रबल नहीं होती कि उसे विवेक या नैतिक बलसे रोका न जा सके या उसका पूर्णतया दमन न किया जा सके। लड़कियोंकी तरह लड़कोंको योग्य अवस्था प्राप्त करनेके पूर्वतक संयमसे रहना सीखना चाहिए। उन्हें जान लेना चाहिए

कि उन्हें इस आत्मत्यागका पुरस्कार हृष्टपुष्ट शरीर तथा दिनपर-दिन बढ़ती हुई स्फूर्तिके रूपमें मिलेगा।'

यह बात जितनी बार कही जाये थोड़ी है कि 'ब्रह्मचर्य और परिपूर्ण पवित्रताका शरीर-शास्त्र और नैतिकताके नियमोंसे पूरा-पूरा सामंजस्य है और यह भी कि विषयभोगको जिस तरह नैतिक अथवा धार्मिक आधारपर उचित नहीं ठहराया जा सकता उसी प्रकार उसे शारीरिक या मानसिक आधारपर भी उचित नहीं ठहराया जा सकता।'

लन्दनके रायल कालेजके प्रोफेसर सर लायनेल बिल कहते हैं कि 'श्रेष्ठसे-श्रेष्ठ और शरीफसे-शरीफ पुरुषोंके उदाहरणने यह अनेक बार सिद्ध कर दिया है कि बड़ेसे-बड़े विकार भी सच्चे और मजबूत दिलसे तथा रहन-सहन और पेशेके बारेमें उचित सावधानी रखनेसे रोके जा सकते हैं। यदि संयमका पालन कृत्रिम साधनोंसे ही नहीं, बल्कि स्वेच्छासे आदतमें दाखिल करके किया जाता है तो उससे नुकसान नहीं पहुँचता। संक्षेपमें कौमार्य कोई बड़ी कठिन बात नहीं है; अलबत्ता उसे किसी मनोवृत्तिका स्थूल परिचायक होना चाहिए।... पवित्रताका अर्थ कोरा विषय-निग्रह ही नहीं है, बल्कि विचारोंमें शुचिता तथा वह शक्ति भी है, जो कि अटल विश्वासका ही परिणाम है।'

स्वीडनका तत्ववेत्ता फॉरल अपने ज्ञानके अनुरूप संयमके साथ यौन विकृतियोंको समझाते हुए कहता है कि 'व्यायामसे सभी प्रकारकी स्नायविक दुर्बलता हटकर शक्ति बढ़ती है। उसके विपरीत किसी क्षेत्र विशेषकी अप्रवृत्ति उसके उत्तेजित करनेवाले उन कारणोंके प्रभावको दबा देती है जो प्रवृत्तिके साथ उत्पन्न होते हैं।'

विषय-सम्बन्धी सभी उत्तेजक बातें इच्छाको अधिक प्रबल कर देती हैं। उन बातोंसे बचनेका फल यह होता है कि वे मन्द हो जाती हैं और इस प्रकार इच्छा धीरे-धीरे कम हो जाती है। युवक लोग यह समझते हैं कि विषय-निग्रह असाधारण एवं असम्भव है वे लोग जो संयमसे स्वयं रहते हैं, सिद्ध करते हैं कि पवित्रताका जीवन तन्दुरुस्तीको कोई भी हानि पहुँचाये बिना बिताया जा सकता है।

रिबिंग कहता है, 'मैं २५–३० वर्षके और इससे भी अधिक आयुके ऐसे लोगोंको जानता हूँ जिन्होंने पूर्ण संयम रखा है और ऐसे लोगोंको भी जानता हूँ जो विवाहके पूर्व पूरे संयमी रहे हैं। ऐसे पुरुषोंकी कमी नहीं है। यह जरूर है कि वे अपना ढिंढोरा नहीं पीटते।'

मन और शरीरसे पूरी तरह स्वस्थ बहुत-से विद्यार्थियोंने खानगी रूपसे मुझे बताया है और उन्होंने इस बातपर आपत्ति की है कि मैंने विषय संयमके सुखसाध्य होनेपर काफी जोर नहीं दिया है।

डॉ० एक्टनका कथन है कि 'विवाहके पूर्व युवकोंको पूर्ण संयमसे रहना चाहिए और वे रह भी सकते हैं। इंग्लैंडके राजचिकित्सक सर जेम्स पैगटकी धारणा है कि संयमसे जैसे आत्माको क्षति नहीं पहुँचती, उसी प्रकार शरीरको भी उससे कोई हानि नहीं होती। संयमपूर्ण आचरण सर्वश्रेष्ठ आचरण है।'

डा० इ० पैरियर कहते हैं कि 'पूर्ण संयमके नुकसानदेह होनेकी कल्पना एक मिथ्या कल्पना है और इसके निर्मूल किये जानेकी चेष्टा करनी चाहिए, क्योंकि यह बच्चों ही के मनमें नहीं उनके माता-पिताओंके मनमें भी घर कर लेती है। शारीरिक, मानसिक तथा नैतिक -- तीनों दृष्टियोंसे ब्रह्मचर्य नवयुवकोंकी रक्षा करनेवाली वस्तु है।'

श्री एन्ड्र्यू क्लार्क कहते हैं कि 'संयमसे कोई क्षति नहीं होती। वह बाढ़को रोकता नहीं है; वरन् स्फूर्तिको बढ़ाता है और बुद्धिको तीव्र करता है। असंयमसे आत्मानुशासन समाप्त हो जाता है और आलस्यकी कुटेव बढ़ जाती है; इतना ही नहीं हमारा समूचा अस्तित्व कुण्ठित एवं पतित हो जाता है और शरीरके ऐसे रोगोंसे ग्रसित होनेका खतरा पैदा हो जाता है, जो पुश्त-दर-पुश्त चलते रहते हैं। यह कहना कि असंयम नवयुवकोंके स्वास्थ्यके लिए आवश्यक है -- त्रुटिपूर्ण ही नहीं क्रूरतापूर्ण भी है। यह बात झूठ होनेके साथ-साथ खतरनाक भी है।'

डॉ० सरब्लडने लिखा है कि 'असंयमके दुष्परिणाम निर्विवाद और सर्व-विदित हैं; परन्तु संयमके दुष्परिणाम कपोल-कल्पित ही हैं। पहली बात को प्रमाणित करनेवाले बड़े और गम्भीर ग्रन्थ पड़े हुए हैं; दूसरी बातको सिद्ध करनेवाले अभीतक तो सामने नहीं आये। प्रमाणोंसे हीन अस्पष्ट दावे ही अबतक किये गये हैं और वे भी खुले आम नहीं, दबे छुपे ढंगसे बातचीतके दौरान। उन्हें कभी सिद्ध नहीं किया जा सकेगा।'

डॉक्टर मौंटेगजा अपनी एक पुस्तकमें[1] लिखते हैं कि 'ब्रह्मचर्यके द्वारा उत्पन्न होनेवाला कोई रोग मैंने नहीं देखा. . . .। आम तौरपर सभी लोग और विशेष रूपसे नवयुवकगण ब्रह्मचर्यके तात्कालिक लाभोंका अनुभव कर सकते हैं।'

बर्नमें स्नायु ज्ञानके आचार्य डाक्टर ड्यूबाय इस बातकी पुष्टि करते हुए कहते हैं कि 'उन आदमियोंकी बनिस्बत जो कि पशुवृत्तिके चंगुलसे बचना जानते हैं, वे लोग स्नायुविक दुर्बलताके शिकार अधिक होते हैं, जो कि विषय-शमनके लिए अपनी लगाम बिलकुल ढीली किये रहते हैं।' उनकी इस बातका पूरा-पूरा समर्थन ब्रिस्टी अस्पतालके चिकित्सक, डाक्टर फैरीके इस

१. ला फीजियालॉजी द लामोर।

कथनसे होता है कि जिनका मन शान्त है वे अपने स्वास्थ्यके बारेमें किसी प्रकारकी शंका किये बिना संयमका पालन कर सकते हैं। स्वास्थ्यका आधार विषयभोगकी इच्छाको शान्त करना कदापि नहीं है।

प्रोफेसर एल्फ्रेड फोर्नियर लिखते हैं, 'आत्मसंयमसे युवकोंके लिए सम्भाव्य खतरोंको लेकर अनुचित और बे-सिरपैरकी बातें कही जाती हैं।' आपसे मैं कहता हूँ कि इन खतरोंके अस्तित्वसे मैं बिलकुल अनभिज्ञ हूँ। यद्यपि अपने पेशेके दौरान उनके बारेमें जानकारी होनेके पूरे मौके होते हुए भी एक चिकित्सककी हैसियतसे मेरे पास उनके अस्तित्वका कोई प्रमाण नहीं है।

इसके अतिरिक्त, शरीर-शास्त्रका ज्ञाता होनेकी हैसियतसे मैं तो यह कहूँगा कि २१ वर्ष या लगभग २१ वर्षकी अवस्थाके पहले सच्ची वीर्य-पुष्टता आती ही नहीं है और उसके पहले विषयभोगकी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती—खास तौरपर जबकि असमय ही कुत्सित उत्तेजनाओंसे कुवासनाको उभारा न गया हो। कच्ची उम्रमें विषयकी इच्छा प्रायः अस्वाभाविक है और यह अयोग्य लालन-पालनका फल है।

कुछ भी हो, यह तो निश्चित ही है कि खतरा स्वाभाविक प्रवृत्तिके संयमकी अपेक्षा उसको उत्तेजन करनेमें अधिक है। आप मेरा आशय समझ गये होंगे।

हम ऐसे कितने ही विश्वस्त प्रमाण देते चले जा सकते हैं किन्तु अब अन्तमें, हम उस प्रस्तावका उद्धरण यहाँ देना चाहते हैं जो कि सन् १९०२ में ब्रसेल्स नगरमें आयोजित एक परिषद्के[1] अवसरपर १०२ सदस्योंकी उपस्थितिमें, जिसमें कि संसार-भरके विशेषज्ञ आये हुए थे, स्वीकृत हुआ था। 'सबसे जरूरी बात तो तरुणोंको इस बातकी शिक्षा देना है कि पवित्रता और संयम किसी भी अवस्थामें हानिप्रद नहीं हैं; बल्कि ये ऐसे सद्गुण हैं जिन्हें खालिस वैद्यकीय और स्वच्छता सम्बन्धी दृष्टिसे भी उपयोगी होनेके कारण मनःपूर्वक प्रचारित किया जाना चाहिए।'

कुछ वर्ष पूर्व एक ईसाई विश्वविद्यालयके चिकित्सा विभागके आचार्योंने भी सर्वसम्मतिसे यह घोषित किया था कि 'ब्रह्मचर्यको स्वास्थ्यके लिए हानिकारक कहना निराधार है। हम सभीका यही अनुभव है। हममें से किसीने इस प्रकारके जीवनसे कोई हानि होते नहीं देखी है।'

मामला पूरी तरह सामने रख दिया गया है और अब नीतिविद् तथा समाज-शास्त्र धुरंधर रूसिन द्वारा लिखी गई इस सर्वविदित बातका अनुमोदन कर सकते हैं कि भोजन आदि शारीरिक आवश्यकताओंकी तरह 'विषयभोगकी

१. इंटरनेशनल कांफ्रेंस ऑफ सेनिटरी ऐंड मॉरल प्रोफिलेक्सिसका दूसरा अधिवेशन।

इच्छाकी तनिक-सी तृप्ति भी अनिवार्य नहीं है।' यह बिलकुल सच है कि इक्के-दुक्के व्यक्तियोंकी बात छोड़कर सामान्य पुरुष या स्त्री बिना किसी बड़ी उथल-पुथलके — यहाँतक कि बिना किसी असुविधाका अनुभव किये ब्रह्मचर्यमय जीवन बिता सकते हैं। यह कहा जा चुका है और चूँकि एक अति सामान्य नियमकी इतनी अधिक उपेक्षा होती रहती है, इसे जितनी बार कहा जाये उतना ही कम है कि संयमके कारण कभी कोई रोग उत्पन्न नहीं होता और समाजमें सामान्य शारीरिक दशावाले लोग ही तो अधिक होते हैं। यह भी सच कहा गया है कि असंयमसे बहुत-सी ऐसी बीमारियाँ जिनको सब लोग जानते हैं और जो बड़ी ही खतरनाक होती हैं, उत्पन्न होती हैं। प्रकृतिने बिलकुल ही सहज और निश्चित विधिसे हमारे शरीरमें भोजन द्वारा उत्पादित आवश्यकतासे अधिक शक्तिका पूरा प्रबन्ध कर दिया है; मासिकधर्म या अनायास स्खलन इस अतिरिक्त शक्तिके प्रकट रूप हैं।

"डा० वीरीका इसे सहजात प्रकृति अथवा कोई शरीरगत आवश्यकता माननेसे इनकार करना ठीक ही है। वे कहते हैं, 'यह सभी जानते हैं कि अगर भूख न बुझाई जाये अथवा श्वासकी गति बन्द हो जाये तो क्या होगा। लेकिन यह तो किसीने नहीं लिखा कि अस्थायी या स्थायी संयमके फलस्वरूप अमुक हलका या भारी रोग पैदा हो जाता है। . . . अपने दैनिक जीवनमें हमने ब्रह्मचर्यका पालन करनेवाले लोगोंको देखा है। वे न तो चारित्र्य-बलमें किसीसे न्यून हैं, न शारीरिक दृष्टिसे कम स्फूर्तिवान अथवा कम बलवान हैं। यदि वे विवाह करें तो सन्तानोत्पत्तिके लिए भी वे कम योग्य नहीं हैं। जो आवश्यकता इस प्रकार परिस्थितियोंके अनुसार बदल सकती है और जो इच्छा तृप्तिके अभावमें भी शान्त बनी रह सकती है, वह न तो आवश्यकता कही जा सकती है और न सहजात प्रकृति ही।'

जो लड़का बड़ा हो रहा है उसके शारीरिक विकासके लिए यौन सम्बन्ध आवश्यक नहीं है। बात इसके बिलकुल विपरीत है। शरीरकी साधारण बाढ़के लिए परमावश्यक है कि पूर्ण संयमका पालन किया जाये और जो ऐसा नहीं करते, वे अपने स्वास्थ्यको गहरी क्षति पहुँचाते हैं। युवावस्थाकी प्राप्ति होते-होते बहुत परिवर्तन होते हैं; अनेक शारीरिक क्रियाओंमें भारी उलट-फेर होने लगता है और शरीर विकसित होता चलता है। किशोरका इस समय अपनी समस्त शक्तिको संचित रखना जरूरी हो जाता है; क्योंकि इस कालमें शरीरकी रोग-निरोधक शक्ति प्रायः घट जाती है। इस अवस्थामें छुटपनकी अपेक्षा रोग और मृत्युका अनुपात अधिक होता है। शरीरकी बाढ़ या अवयवोंके विकास अथवा और किसी भी प्रकारके शारीरिक परिवर्तनोंमें, जिसके अन्तमें किशोर

तरुणावस्थामें पाँव रखता है, प्रकृतिको बहुत परिश्रम करना पड़ता है। उस अवसरपर विषयभोग और विशेषतया असमय यौन सम्बन्ध हानिकारक है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २२-७-१९२६

१९६. कोचीनमें हाथ-कताई

कोचीनकी विधान परिषदने पिछले साल एक प्रस्ताव पास किया था। प्रस्तावमें यह सिफारिश की गई थी कि राज्यकी शालाओंमें हाथ-कताईकी शिक्षा दाखिल की जाये। इस प्रस्तावको सरकारने भी स्वीकार कर लिया था। किन्तु स्पष्ट जान पड़ता है कि शिक्षा विभागने इस सम्बन्धमें अभीतक कुछ नहीं किया है। मुझे मालूम हुआ है कि कोचीन विधान परिषदके अगले अधिवेशनमें इस प्रस्तावपर चर्चा की जायेगी। आशा है कि इस प्रस्तावके सम्बन्धमें कोई अमली कार्रवाई की जायेगी। यदि ऐसा नहीं होता तो उसको रद कर दिया जाना चाहिए। जिन प्रस्तावोंपर अमल नही किया जाता, विधान परिषदोंमें उनके पास किये जानेसे और उनपर सरकारोंकी मंजूरी मिलनेसे कोई फायदा नही है। हाथ-कताई ऐसी चीज है जिसके लिए सतत और अविराम उद्योग करना, निगरानी रखना, संगठन करना और प्रयोग करना जरूरी होता है। हाथ-कताईका प्रस्ताव पास करनेवालोंको चाहिए कि वे तत्सम्बन्धी नीति निर्धारित करें, योजनाएँ सुझाएँ और उनपर अमल करनेमें सहायता भी दें। कोचीनमें शायद २ कालेज, ३५ हाईस्कूल, ७८ निम्नतर माध्यमिक स्कूल, ३६९ सरकारी या सरकारी सहायता पानेवाले प्राथमिक स्कूल, २८९ सहायता न पानेवाले स्कूल, २० उद्योग-शालाएँ, १३ रात्रिशालाएँ और ४ विशेष शालाएँ हैं। इनमें १,०८,१५८ लड़के और लड़कियाँ हैं। इन स्कूलोंमें हाथ-कताईको विधिवत् लोकप्रिय बनानेकी बहुत गुंजाइश है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २२-७-१९२६

१९७. पत्र : नॉर्मन लीजको

आश्रम
सावरमती
२३ जुलाई, १९२६

प्रिय मित्र,

पत्रके[1] लिए कृतज्ञ हूँ। मैं चाहता हूँ कि आगेसे आप अपनी कही किसी भी वातके लिये क्षमा न माँगें। मैं आपको आश्वस्त करता हूँ कि आपको गलत नहीं समझूँगा।

आपने मेरे पास प्रमाण स्वरूप जो लेख भेजा है, वह लन्दनके एक मित्रने पुस्तकके रूपमें मुझे भेज दिया था। यह एक अच्छा और तर्कपूर्ण, सुसंगत लेख है। कुछ दिन पहले मैं 'यंग इंडिया' के पृष्ठोंमें विस्तारसे इसकी चर्चा कर चुका हूँ।

अब आपका प्रश्न लें। मेरी समझमें इस समय भारतकी स्थिति निराशाजनक देखनेमें ही लगती है। और इसके निराशाजनक होनेका कारण यह नहीं है कि विभिन्न दलोंके पास कोई सुसम्बद्ध कार्यक्रम नहीं है। कारण यह है कि किसी भी दलके पीछे शस्त्रोंकी या अन्य किसी प्रकारकी ऐसी ताकत नहीं है जिसके वलपर वह सरकार द्वारा ठुकरा दिये जानेपर अपनी नीतिको दृढ़तासे लागू करा सके। सरकार तो हर वार हर दलके कार्यक्रमको ठुकराती ही रही है। मैं आपको याद दिला दूँ कि यहाँ-के दलोंमें माँगोंको लेकर जो मतभेद है वह सिद्धान्तका नहीं वल्कि इसको लेकर है कि किस माँगको कितनी प्रमुखता दी जाये और किससे कितनी शीघ्र सफलता मिलेगी। नरमदल अपनी माँगें कम रखता है, तो वह ऐसा इसलिए नहीं करता कि वह अधिकको पचा नहीं सकता, वल्कि इसलिए कि उससे अधिक मिल नहीं सकता। परन्तु यदि सरकार, मान लीजिए स्वराज्य दलकी ही सभी माँगोंको मंजूर कर लेती है तो अन्य दल भी उसके साथ हो जायेंगे। हाँ, यह जरूर है कि यह वात मैं साम्प्रदायिक झगड़ोंको, जिनके वारेमें मैं आगे लिखूँगा, अलग रखकर कह रहा हूँ। अतएव यदि इंडिपेंडेंट लेवर पार्टी भारतके सबसे अधिक प्रगतिशील दलके साथ सलाह-मशविरा करके एक ऐसा संविधान वनाती है, जिसे ब्रिटिश संसद स्वीकार कर ले तो आप देखेंगे कि सभी दल उसका स्वागत करेंगे। इसलिए यदि मैं आपकी जगह होता और मुझसे इंडिपेंडेंट लेवर पार्टीका मार्गदर्शन या नेतृत्व करनेको कहा जाता तो मैं भारत जाता, वहाँके प्रगतिशील दलका पता लगाकर उसके नेताओंसे परामर्श करता, एक कार्यक्रम वनाता और उसपर अनुकूल या प्रतिकूल सभी परिस्थितियोंमें डटा रहता।

१. २९ जून १९२६ के इस पत्रके लिए देखिए परिशिष्ट १।

परन्तु साम्प्रदायिक उपद्रव रास्ता रोके खड़े हैं। आपके ढंगसे सोचते हुए मैं आगे फिर इस प्रकार तर्क करता — "ये भारतीय — हिन्दू और मुसलमान — कुत्ते बिल्लियोंकी तरह आपसमें तो लड़-झगड़ रहे हैं, लेकिन मेरे देशके साथ, जो अतीतमें उनके साथ अन्याय कर चुका है और अब भी निरन्तर कर रहा है, लड़नेके लिए इनके पास न तो साधन हैं और न हिम्मत ही। मैं इस अन्यायमें अब और भागीदार नही बनना चाहता। वे तो लड़ेंगे। यदि मेरा देश इसे प्रोत्साहन न दे और जान-बूझकर या अनजानेमे उसे और न बढाये तो इन झगड़ोंके शीघ्र ही समाप्त हो जानेकी सम्भावना है। मुझे कानूनमें साम्प्रदायिताको कोई जगह नही देनी चाहिए। मैं सभी दलोंको समान अवसर दूँगा और संख्या अथवा अन्य किसी दृष्टिसे कमजोर दलोको शिक्षाके मामलेमे प्राथमिकता दूँगा। अतएव शिक्षाके मामलेमें ऐसी प्राथमिकता देनेके लिए कानूनी तौरपर व्यवस्था करूँगा। यदि आप इस दृष्टिसे समस्यापर विचार करेंगे तो आपको साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्वके सम्बन्धमें सभी दलोंके मतैक्यकी आवश्यकता नही रह जायेगी, वरन् आप शुद्ध न्यायके आधारपर ही इसका समाधान कर लेंगे। वर्तमान विक्षुब्ध स्थितिमें संविधान तैयार करनेका यही एक तरीका मुझे दिखाई देता है।

अब आपके अन्तिम प्रश्नपर आयें। मैं सचमुच यही मानता हूँ कि साम्प्रदायिक वैमनस्यके लिए अशतः सरकार जिम्मेदार है। मैं जानता हूँ कि दोष मूलतः हमारा है। यदि हम स्वयं झगड़ोपर आमादा न हों तो कोई भी बाहरी ताकत हमें नही लड़ा सकती। लेकिन जब एक विदेशी सत्ता — जिसका बल हमारी दुर्बलतामें ही है—हमारे मतभेद देखती है तो वह जाने या अनजाने उनका लाभ उठाती है। प्रत्येक भारत-वासी यह जानता है और इसके परिणामोंको महसूस भी करता है। कुछ ईमानदार ब्रिटिश अधिकारियोंने तो मेरे सामने यह बात निस्संकोच स्वीकारतक की है, और कुछ अन्य अधिकारियोंने अपने असावधानीके क्षणोंमें कुछ ऐसी स्वीकारोक्तियाँ की या कुछ ऐसी बातें कह दी हैं जिनसे इस नीतिका राज खुल जाता है। पर मैं इस बातपर बहुत जोर नही दूँगा। मैं भलीभाँति जानता हूँ कि यदि आप इसे मान लें तो भी इस बुराईको दूर करनेके लिए कुछ कर नही सकते। इसका उपचार पूरी तरह हमारे ही हाथोंमे है। आप इतना ही कर सकते हैं कि यदि आपके पास अधिकार हो तो हमें एक अच्छा और व्यवहार्य संविधान दें। लेकिन आपके जो प्रतिनिधि यहाँ हैं उन्हें आप निस्सन्देह अपने नियन्त्रणमें नही रख सकेंगे। वे प्रतिनिधि स्वयं भी जानते हैं कि नाम उनका गुमाश्ता है मगर असलमें तो मालिक वे ही हैं। इससे पहले मैं सरकारकी प्रशासनिक सेवाओं (सिविल सर्विसेज)को संसारकी विशालतम और सबसे सशक्त गुप्त संस्था कह चुका हूँ। "मैसोनिक ब्रदरहुड"की भाँति इसके भी अपने संकेत-चिह्न और लिपिहीन भाषा है जिसके माध्यमसे इसके सदस्य परस्पर सम्पर्क रखते हैं। और इसपर किसीको आश्चर्य भी नही होना चाहिये। एक लाख व्यक्तियोंके लिये ३० करोड़ लोगोंके बीच रहना, उनपर शासन जमाना तथा उनकी इच्छाके विरुद्ध उनसे अपना स्वार्थ साधना, बिना अनुचित साधनोका सहारा लिये सम्भव ही नही।

शायद इसमें आपके सभी मुद्दोंकी चर्चा हो गई है। आशा करता हूँ कि आपको मेरा पत्र सुस्पष्ट लगेगा। सम्भव है कि मैं सभी बातोंमें आपको अपने दृष्टिकोणसे सहमत न बना पाया होऊँ। अगर आप कहेंगे तो खुशीके साथ बहसको जारी रखा जा सकेगा।

इस महत्वपूर्ण समस्याका, जो हमारे जीवन-मरणका प्रश्न है, अत्यन्त सतर्कता और सहृदयताके साथ अनुशीलन करनेके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ।[1]

हृदयसे आपका,

डा० नॉर्मन लीज
ब्रेल्सफोर्ड
डर्बीके समीप

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १२१६९) की फोटो-नकलसे।

१९८. पत्र: ई० स्टेनले जोन्सको

आश्रम
साबरमती
२३ जुलाई, १९२६

प्रिय मित्र,

रोचक टिप्पणियों-युक्त आपका पत्र मिला। धन्यवाद। आपके आनेसे हम सबको बड़ी ही प्रसन्नता हुई। काश! आप हम लोगोंके साथ और अधिक रह सकते। तब शायद आश्रमके बारेमें आपने जो-कुछ लिखा है उसे आप थोड़ी नरम भाषामें लिखते और उसके स्वावलम्बी बननेके विषयमें अपनी आलोचनापर भी पुनर्विचार करते। जबतक हम चरखे और अस्पृश्यता आदिके विषयमें जनसाधारणके बीच प्रचार और शिक्षाका प्रसार करनेका काम हाथमें लेकर चल रहे हैं, तबतक आश्रमको आत्म-निर्भर बनाना हमारा ध्येय नहीं है।

कबूतरोंके लिए काबुक बनानेका सुझाव एक और मित्रने भी दिया था। हमने यह इसलिए नहीं बनाया क्योंकि कहा यह गया कि इससे और कबूतरोंका आना शुरू हो जायेगा। जिन्होंने कुटियोंकी छतोंको अड्डा बना लिया है वे वहीं बने रहेंगे। क्या आपने इसे सफलताके साथ आजमाया है?

जो "साइंस ऑफ पॉवर" पुस्तिका आपने मेरे लिए मँगवाई है, मैं उसे पढ़नेका प्रयत्न करूँगा।

१. डा० नॉर्मन लीजने इस पत्रका उत्तर ९ अगस्त, १९२६ को दिया था। (एस० एन० १२१७०) देखिए परिशिष्ट २।

लेखन-मात्रसे मुझे गहरी अरुचि हो गई है, मैं जिन समाचारपत्रोंका सम्पादन कर रहा हूँ यदि उनको बन्द किया जा सकता तो मैं उन्हें भी बन्द कर देता। किन्तु यह तो मैं सिरपर ले चुका हूँ, अब इससे जी नहीं चुराया जा सकता इसलिए मैं अगर "फेलोशिप ऑफ फ्रेन्ड्स ऑफ जीसस" के लिए कुछ नहीं लिखता तो आप कमसे-कम इस समय तो मुझे क्षमा कर ही देंगे।

हृदयसे आपका,

श्री ई० स्टेनले जोन्स
सीतापुर
(यू० पी०)

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९६७३) की फोटो-नकलसे।

१९९. पत्र : अ० बा० गोदरेजको

आश्रम
साबरमती
शुक्रवार, आषाढ़ सुदी १३, २३ जुलाई, १९२६

भाईश्री ५ गोदरेज,

आपका पत्र मिला। मैंने आपको जिस पत्रके खो जानेकी बात लिखी थी वह पत्र यहीं कहीं रखा रह गया था। पत्र लिखानेके बाद पता-भर लिखानेको रह गया था और टंकनकर्त्ताने उसे कोरे कार्डोंमें रख दिया था। सार्वजनिक पैसा सरकारी बैंकोंमें रखना मुझे बिलकुल अनुचित लगता है। फिर भी इस समय हमारे पास कोई ऐसा साधन नहीं है जिससे हम पैसेको कहीं सरकारके नियन्त्रणसे बाहर सुरक्षित रख सकें। हमें याद रखना चाहिए कि हम पूरे तौरपर असहयोगी नहीं हैं। यदि हम सरकारके द्वारा नियन्त्रित बैंकोंसे अलग रहना चाहते हैं तो हमें रुपये पैसोंसे सम्बन्ध नहीं रखना चाहिए। सच बात तो यह है कि अन्यायी राज्यतन्त्रमें धनका स्वामित्व गुनाह है। परन्तु हम अनिवार्य मानकर यह गुनाह कर रहे हैं।

श्री अ० बा० गोदरेज
गैस कम्पनीके पास
तिजोरीका कारखाना
परेल, बम्बई

गुजराती प्रति (एस० एन० १२२०९) की फोटो-नकलसे।

२००. पत्र : लक्ष्मीदास पु० आसरको

आश्रम
साबरमती
शुक्रवार, आषाढ़ सुदी १३ [२३ जुलाई, १९२६][1]

चि० लक्ष्मीदास,

मैंने एक पत्र भाई रामजीके बारेमें लिखा है, वह तुम्हें मिला होगा। आज उसके सम्बन्धमें खुशालभाईका जो उत्तर मिला है उसे तुम्हें भेजता हूँ। इसे पढ़नेके बाद मैंने भाई रामजीको लिखा है कि वे शान्त रहें और जरूरत जान पड़े तो दूसरा पाखाना बनवा लें। तुम्हारे पत्र नियमित रूपसे मिलते हैं। तुमने घनश्यामदासको जो दलील दी वह मुझे पसन्द आई है। मुझे उसमें कोई कमी नहीं दिखाई देती। रुईके बारेमें जो जानकारी चाहते हो उसे इकट्ठा करूँगा और तुम्हें भेजूंगा। तुम्हारा पहला लेख इस सप्ताहके 'नवजीवन' में प्रकाशित होगा। तुम देखोगे कि मैंने उसमें से दो छोटे-छोटे अनुच्छेद निकाल दिये हैं और एक छोटासा सुधार भी किया है।

जयाजीराव कॉटन मिल
ग्वालियर

गुजराती प्रति (एस० एन० १२२१०) की फोटो-नकलसे।

२०१. पत्र : पूँजाभाई शाहको

आश्रम
साबरमती
२३ जुलाई, १९२६

भाई पूँजाभाई,

तुम्हारा सन्देश मिलनेपर मैंने रेवाशंकरभाईको पत्र लिखा था। उसका जवाब इसके साथ है। जब तुममें पूरी ताकत आ जाये और तुम किसीको साथ लेकर जा सको तो दो-एक दिनके लिए बम्बई चले जाना। उम्मीद है, अब तुम्हारी तबीयत अच्छी हो गई होगी।

गुजराती प्रति (एस० एन० १२२११) की फोटो-नकलसे।

१. पत्रमें उल्लिखित लक्ष्मीदास पु० आसरका यह लेख २५-७-१९२६ के नवजीवनमें प्रकाशित हुआ था।

२०२. पत्र : गोपालराव कुलकर्णीको

आश्रम
साबरमती
शनिवार, आषाढ़ सुदी १४, २४ जुलाई, १९२६

भाईश्री ५ गोपालराव,

आपका पत्र बहुत दिनों बाद मिला। अच्छा लगा। आपने पैसा बचाने और उसका जो उपयोग करनेका निश्चय किया है वह आपको शोभा देता है। आहार भी ठीक है। उसमे कोई फेरफार नही सूझता। इस समय खादीके बारेमें जितना जोर दिया जा रहा है उससे अधिक नही दिया जाना चाहिए; आपका यह विचार उचित है। आप विद्यार्थियोंसे कहे, मै दक्षिणामूर्तिके विद्यार्थियोंसे ऐसी आशा रखता हूँ कि वे सब पूरी तरहसे खादी पहनकर अन्य स्कूलोंके सम्मुख आदर्श उपस्थित करेंगे। जो लापरवाहीके कारण अपने भागका सूत न कात सके उसे चाहिए कि वह बादमे दुगना कातकर उसका प्रायश्चित्त करे। जो ऐसा न करे उसे मिठाससे समझाया जाना चाहिए। इससे ज्यादा कुछ करनेकी आवश्यकता हो सकती है, ऐसा मुझे नही लगता। आपकी यात्रा करनेकी इच्छा होती है, तो उसे रोकनेकी जरूरत नही है; लेकिन खर्च करके यात्रा करनेकी कोई आवश्यकता नही। रेलगाड़ीसे यात्रा करनेवाला मनुष्य पैदल यात्रीसे ज्यादा नही देखता; बल्कि कम ही देखता है। मेरी यात्राके बारेमें आपने कहा है; उसमे तो पैसा खर्च करनेकी तनिक भी आवश्यकता नही। सुरेन्द्रने एक वर्ष पैदल यात्रा की, यह तो आप जानते है न? और वह ठेठ उत्तरकाशीतक हो आया। इससे मै यह नही कहना चाहता कि आपको रेलकी सवारी करनी ही नही है। वह भी करना। मुझे तो लगता है कि जिन्हें खादीका आग्रह है उन्हे नाटकमें अभिनयके निमित्त मुफ्त मिलनेपर भी विलायती कपडे नही पहनने चाहिए, क्योकि उन्हे पहननेसे विलायती कपड़ोंका महत्व बढता है। लोगोंकी यह धारणा है कि नाटकमे अभिनय एक ऐसा कार्य है जिसमे विदेशी वस्त्र पहनने ही पड़ते हैं। नाटकोंका अभिनय एक ऐसा प्रसंग है जिसमे आनेवाले लोग विलासी होते हैं। उन्हे अनेक बार खादीकी कोई जानकारी नही होती। नाटकमे विलायती कपड़ोंका इस्तेमाल कर हम ऐसे लोगोंमें खादी-प्रेम जगानेका अवसर ही खो बैठते हैं। जबतक वहाँ रहना अनुकूल लगे तबतक आप वही रहे। आपने मुझे पत्र लिखा सो ठीक ही किया।

श्री गो० कुलकर्णी
दक्षिणामूर्ति, भावनगर

गुजराती प्रति (एस० एन० १२२१३) की फोटो-नकलसे।

२०३. पत्र : मगनलाल सुन्दरजीको

आश्रम
२४ जुलाई, १९२६

भाईश्री ५ मगनलाल सुन्दरजी,

आपका पत्र मिला। मेरा तो यह विचार है कि हम जिस मन्दिरमें जायें, वहाँ जानेपर उसके वातावरणके अनुरूप ही उपासना करें। इसलिए जहाँ कृष्णकी मूर्ति है वहाँ उसमें महादेवका आरोपण करना उचित नही लगता।

मोहनदास गांधी

द्वारा श्री धीरजलाल लक्ष्मीचन्द चोकसी
मांडवी चौक
राजकोट

गुजराती पत्र (एस० एन० १९९३६) की माइक्रोफिल्मसे।

२०४. पत्र : विट्ठलभाई झ० पटेलको

आश्रम
साबरमती
२५ जुलाई, १९२६

प्रिय विट्ठलभाई,

आपके पत्र और सब मिलाकर ७,५७५ रु० के चेक मिले; जिसमें विधानसभाके प्रमुखके रूपमें आपके तीन महीनोंके वेतनका अंश और आपको भेंट की गई ५,००० रु० की थैलीकी बचत है। आप मुझे यह रकम किसी ऐसे देशोपकारी काममें खर्च करनेको कहते हैं, जिसे मैं पसन्द करूँ। उस पत्रके[1] बाद आप उदारतापूर्वक दिये गये अपने दानके उपयोगके विषयमें मुझसे चर्चा कर चुके हैं। उस रकमका सचमुच मैं क्या उपयोग करूँ, मैं इसपर खूब विचार करके अन्तमें इस निश्चयपर आया हूँ कि अभी हालमें तो मैं उसे जमा होते रहने दूँ। इसलिए मैं उसे आश्रमके एजेन्सी खातेमें ६ महीनेकी बँधी मुद्दतके लिए जमा करता जा रहा हूँ, जिससे सूदकी अच्छी रकम

१. १० मई, १९२६ के अपने पत्रके साथ विट्ठलभाई पटेलने १६२५ रुपयेका चेक भेजा था (देखिए खण्ड ३० परिशिष्ट १) और फिर ३१ मई, १९२६ को ४३२५ रुपयेका। दूसरे चेकमें वेतनकी बचतके अलावा बम्बई नगर निगम द्वारा भेंटमें दी गई थैलीकी बची हुई रकम भी थी। इस रकमके उपयोगके विषयमें गांधीजीने मोतीलाल नेहरूको भी पत्र लिखा था। इस पत्रके लिए देखिए खण्ड ३०, पृष्ठ ४९१-९२।

इकट्ठी हो सके और पक्ष-विपक्षका झगड़ा खत्म होते ही कुछ मित्रोंकी सहायतासे आपकी और उनकी सलाहके अनुसार उस रकमको किसी अच्छे राष्ट्रीय काममें लगाऊँ।

इस बीच मैं आपको इस उदार भावके लिए, जिससे आप अपने वेतनका एक बड़ा भाग सार्वजनिक कामके लिए दे देते हैं, आपको साधुवाद देता हूँ। मैं आशा करता हूँ कि और लोग आपका अनुकरण करेंगे।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्रीयुत विट्ठलभाई पटेल
शिमला

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ११३२१) की फोटो-नकलसे।
यंग इंडिया, १७-३-१९२७

२०५. पत्र : विट्ठलभाई झ० पटेलको

आश्रम
साबरमती
२५ जुलाई, १९२६

प्रिय विट्ठलभाई,

संलग्न इस छोटेसे पत्रको[1] करीब-करीब रोज ही टालते रहना पड़ा। कुछ-न-कुछ हो जाता था और मैं इसे भेज नहीं पाता था। यदि पत्रके भावार्थसे आप सहमत हों तो तार द्वारा सूचित कीजिए। मैं आपके पहले पत्र और अपने पत्रकी प्रतिलिपियाँ प्रकाशित कर दूँगा। यदि आप कुछ परिवर्तन करना चाहें, तो आपका तार न आनेका अर्थ मैं यही लगाऊँगा कि पत्र-व्यवहार प्रकाशित नहीं किया जाना है। तब मैं आपके सुझावोंकी प्रतीक्षा करूँगा।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११३२२) की फोटो-नकलसे।

१. देखिए पिछला शीर्षक।

२०६. पत्र: रामदास गांधीको

आश्रम
साबरमती
आषाढ़ सुदी १५, १९८२ [२५ जुलाई, १९२६]

चि० रामदास,

तुम्हारा पत्र मिला। मुझे तो ऐसा खयाल है कि तुम्हारा कोई भी पत्र उत्तर देनेके लिए बाकी नहीं है। सम्भव है, तुम्हारे अन्तिम पत्रका उत्तर देना रह गया हो पर मुझे याद नहीं आता। मेरा तो यही खयाल है कि मैं तुम्हारे अन्तिम पत्रका उत्तर भी तुम्हें भेज चुका हूँ। खेती सम्बन्धी तुम्हारे विचारोंको मैं बिलकुल समझ गया हूँ। मेरे कहनेका अर्थ यह नहीं है कि प्रत्येक धनी मनुष्य मजदूरोंको सताता ही है। काठियावाड़में तुमने जैसा देखा है, अवश्य ही अनेक स्थानोंपर वैसा दिखाई देता है; परन्तु करोड़ो लोगोंकी खेती, जैसा मैंने लिखा है, उसी तरह चलती है। लेकिन इसका मतलब यह तो नहीं है कि खेतीमें मजदूरोंको चूसना जरूरी ही हो। कोई मनुष्य खेतीका अच्छा जानकार और पूरा-पूरा अनुभवी होता है। वह मजदूरोंको उचित मजदूरी देकर भी अपना निर्वाह करके जरूरतके लायक पैसा बचा सकता है। मेरी समझमें ऐसा करनेवालेके पास अच्छी-खासी पूँजी होनी चाहिए। मेरा तथा अन्य लोगोंका यह अनुभव है।

मैंने खादीके बारेमें 'नवजीवन' में जो जानकारी माँगी है उसे तुम मुझे जितनी जल्दी भेज सको उतनी जल्दी भेजो। और जब तुम्हारे प्रयोग पूरे हो जायें तब उन-पर अपनी एक टिप्पणी भी लिख भेजो।

हरिलाल आया है और तीन दिनसे यहाँ है। अभी कितने दिन और रुकेगा सो निश्चित नहीं। राजकोटके घरके दस्तावेजोंपर तुम्हारे हस्ताक्षर हो गये हैं या नहीं? यदि न हुए हों तो मुझसे पूछकर करना। ऐसा लगता है बुआजीकी स्थिति अधिक दृढ़ करनेकी आवश्यकता है। यदि हस्ताक्षर कर दिये हों तो कोई हानि नहीं।

पट्टणी साहब यहाँ चार-पाँच दिन रहनेके बाद कल चले गये।

श्री रामदास गांधी
खादी कार्यालय
अमरेली

गुजराती प्रति (एस० एन० १२२१४) की फोटो-नकलसे।

२०७. पत्र : काकूको

आश्रम
साबरमती
२५ जुलाई, १९२६

चि० काकू,

चि० हरिलाल आखिर यहाँ पहुँच गया है। तुम्हारा तार मुझे मिला था। मैंने सोचा था कि उसके आनेकी खबर मुझे दी जायेगी। इसीलिए मैंने मंगलवारको किसीको स्टेशन नहीं भेजा। हरिलाल अचानक ही आ गया। बुआजीके चिन्तातुर पत्र आते रहते हैं। उन्हें तुमपर विश्वास नहीं। वे चाहती हैं कि कुछ निश्चित व्यवस्था हो जाये। इसलिए चाहो तो भाड़ेके जितने पैसे मिलें उतने पैसे ब्याजपर उठा दो और वह ब्याज उन्हें मिले ऐसी व्यवस्था कर दो। इससे तुम सब भाइयोंका भला होगा और बुआजी निश्चिन्त रहेंगी। यदि ऐसा न हो तो उनके नामपर कोई भी मकान लम्बी अवधिके लिए किरायेपर ले लो और उन्हें वहाँ रखो। चाहे जो करो, लेकिन बुआजीको निश्चिन्त करो, ऐसी मेरी इच्छा है। तुम यहाँ आये और भाई जीवनलालके पास रहे, यह बात तो मुझे हरिलालसे मालूम हुई।

गुजराती प्रति (एस० एन० १२२१५) की फोटो-नकलसे।

२०८. पत्र : बलवन्तराय भ० मनियारको

आश्रम
साबरमती
आषाढ़ सुदी १५, २५ जुलाई, १९२६

भाईश्री ५ बलवन्तराय,

आपका पत्र मिला।

अब मैं आपकी स्थितिको ज्यादा अच्छी तरह समझ गया हूँ। पहले तो आपको अपनी स्त्री और अपने भाईसे सारी बातें स्पष्ट कर लेनी चाहिए। लेकिन इससे पहले आपको खुद अपनी आँखोंसे आश्रम देख लेना चाहिए। आश्रममें भंगियोंको रखा जा सकता है। आजकल दो अन्त्यज बालक रहते हैं और सब एक ही पंक्तिमें बैठकर खाते हैं। वे रसोईमें प्रवेश कर सकते हैं और खाना पकानेमें भाग ले सकते हैं। पाखाना सभी हाथसे साफ करते हैं। तात्पर्य यह है कि कोई यह नहीं कह सकता कि हम पाखाना साफ नहीं करेंगे। सभीको मुख्य रूपसे अपना समय शरीर-श्रममें लगाना पड़ता है। यह सब कदाचित् आपको मान्य हो; लेकिन आपकी स्त्री और आपके भाईको मान्य होगा या नहीं, यह विचार लेना चाहिए। यह मान्य हो और

जब आप इसे अपने-आप देख लें और इसका अनुभव कर लें तभी आपको कोई कदम उठाना चाहिए, उसके पहले नही।

मेरा अनुभव यह है और मैंने यह देखा है कि जो मलिन वातावरणमें अपनी स्वच्छताको नही बनाये रख सकते, वे तथाकथित स्वच्छ वातावरणमे जाकर भी अधिक स्वच्छ नही रह पाते। 'आप भला तो जग भला' यह कहावत विचार करने योग्य है। इसलिए यहां आनेके बाद आप निर्भय हो जायेंगे, ऐसा आपको नहीं मान लेना चाहिए। यहां रहनेवाले सब लोग पवित्र हैं अथवा पवित्र हो गये हैं, ऐसा भी न मान लें। घर-घरमे मिट्टीके चूल्हे होते हैं। यहांके बारेमे इतना ही कहा जा सकता है कि कुछ-एक लोग आत्मशुद्धिके लिए भगीरथ प्रयत्न कर रहे हैं।

श्री बलवन्तराय भगवानजी मनिगार
नागर चकला
जामनगर

गुजराती प्रति (एस० एन० १२२१६) की माइक्रोफिल्मसे।

२०९. पत्र: ए० आई० काजीको

आश्रम
साबरमती
२६ जुलाई, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मुझे बड़ा खेद है कि आपके नामका महत्वपूर्ण पत्र जर्मनी और जर्मनी भेजा जानेवाला पत्र आपके पास पहुँच गया। अब मैं यही कर सकता हूँ कि अपने पत्रकी एक प्रति, जो सौभाग्यसे मेरे पास है, आपको भेज दूं।

श्री एन्ड्रयूजको लिखा गया आपका पत्र मैंने पढ लिया है। उम्मीद है कि श्री एन्ड्रयूज अक्तूबरमें किसी समय दक्षिण आफ्रिकामें पहुँच जायेंगे। मै जानता हूँ कि आप चिन्ताकुल हैं। जो-कुछ भी शक्य है वह सब यहाँ किया जा रहा है। परन्तु आपने श्री एन्ड्रयूजके नाम पत्रमें लिखा है कि दोष स्वयं हमारा ही है; यह ठीक भी है, फिर भी मैं आशा लगाये हुए हूँ कि आगामी सम्मेलनका कुछ-न-कुछ सुफल अवश्य निकलेगा।

हृदयसे आपका,

श्री ए० आई० काजी
महामन्त्री,
द० अ० भा० कांग्रेस
१७५, ग्रे स्ट्रीट, डर्बन

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १२०१७) की माइक्रोफिल्मसे।

२१०. पत्र : जी० एन० कानिटकरको

सोमवार [२६ जुलाई, १९२६]

भाई कानिटकर,

यह मेरा सन्देशा और लिखनेका समय मेरे पास नहीं है।

मोहनदास

ता० क०

स्वावलम्बनमें तुमने ठिकाना नहीं दिया है।

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ९५८) की फोटो-नकलसे।
सौजन्य : जी० एन० कानिटकर

२११. सन्देश : महाराष्ट्रकी जनताके नाम

साबरमती
सोमवार, आषाढ़ कृष्ण १, [२६ जुलाई, १९२६]

में महाराष्ट्रके और महाराष्ट्रीयोंकी आशा कभी नहि छोड सकता हूँ। जिस महाराष्ट्रने निरंतर भारतभूमिको त्यागका और ज्ञानका पाठ सिखाया है वह महाराष्ट्र गरीबोंके चर्खाका और खादीका अनादर कभी नहि करेगा। मैंने तो कहा है "स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध हक है" मंत्र सिखाकर भारतवर्षको लोकमान्यने श्लोकार्ध दिया। स्वराज्य पानेका साधन चर्खा और खादी है कह कर मैंने उत्तरार्ध दिया है। इस साधनके स्वीकारमें महाराष्ट्र कब प्रथम स्थान लेगा ?

मोहनदास गांधी

मूल (सी० डब्ल्यू० ९६०) की नकलसे।
सौजन्य : जी० एन० कानिटकर

२१२. पत्र: गंगाधरराव देशपाण्डेको

आश्रम
साबरमती
२७ जुलाई, १९२६

प्रिय गंगाधरराव,

आपकी गतिविधियोंकी जानकारीसे भरा-पूरा पत्र मिला। मुझे इस पत्रमें आशा और निराशा दोनों ही दिखी। अगर हमारे प्रयोग पूरे हो जाते है — अर्थात् हमे मूल सिद्धान्तोंके ही अनुसार उसमे सफलता मिल जाती है तो निराशाका कोई भी कारण नही बचता।

गरीब जनता जड़ बन गई है क्योंकि उसके लिए जीवनमें कोई रस ही नहीं बचा। जब हम काफी लम्बे अरसेतक उसके बीचमे रहकर काम करेंगे तभी उसे जीवनमे रुचि पैदा होगी। यदि हमे यह विश्वास रहे कि जनसाधारणकी समस्याको सुलझानेका एकमात्र उपाय हमारा सोचा हुआ काम ही है तो हम इसके पूर्ण सुफलके लिए युगोतक प्रतीक्षा कर सकते हैं। अपनी अनास्था और अधैर्यके कारण ही हम बहुधा एकसे दूसरे निदानकी ओर भागते है और फलस्वरूप कुछ भी जम नहीं पाता तथा हालत बदसे बदतर होती जाती है।

जुलाहे हाथकते सूतसे कपड़ा नही बुनना चाहते। इसके दो कारण हैं। पहला कारण तो यह है कि हमारा सूत मिलके सूत जैसा मजबूत नहीं होता, दूसरे जुलाहोंको इस बातका यकीन नही है कि हाथ-करघोंका काम स्थायी रूपसे चलता रहेगा। उनमें अपेक्षित विश्वास तो समयके साथ ही पैदा होगा। और हमें सूतकी किस्म बेहतर बनानेके लिए लगातार परिश्रम करते रहना चाहिए। दिन-प्रतिदिन हमें बढ़िया सूत काते जानेपर आग्रह करना चाहिए। हमें कातनेवालोंके चरखोंकी जाँच करनी चाहिए, उनकी खामियाँ ठीक करनी चाहिए, ताकि वे बढ़िया सूत अधिक गतिसे कात सकें। हमारे चरखोंमें सुधारकी गुंजाइश तो है ही।

हम लोग आश्रममें सूतकी किस्म सुधारनेके प्रयोग कर रहे है। हर पखवारे इसकी जाँच की जाती है। जो-कुछ सुधार हो पाया है, वह सचमुच आश्चर्यजनक है। उसके आँकड़े मै प्रकाशित करूँगा।

जो जानकारी आपने मुझे दी है, उसका सावधानीके साथ सीमित उपयोग मै 'यंग इंडिया' के पृष्ठोंमें करनेवाला हूँ। जो तालिका[1] इस सप्ताह छप रही है उसे

१. देशपाण्डेने ४ अगस्तको इसके उत्तरमें लिखा था कि उनको अपने कार्यसे लेशमात्र भी निराशा नहीं है। उनको इस बातका पक्का विश्वास है कि जनसाधारणकी समस्याको हल करनेका एकमात्र यही मार्ग है और यह भी कि वे धैर्यपूर्वक अपना काम जारी रखेंगे और गांधीजीके सुझावोंको कार्यरूपमें परिणत करेंगे। (एस० एन० ११२१७)।

आप अवश्य देख लें। मैं चाहता हूँ कि आप मुझे तालिकाके अनुसार जानकारी भेजें। प्रत्येक खादी उत्पादक संगठनका ब्यौरा देकर मैं इस तालिकाको विस्तृत बनाना चाहूँगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत गंगाधरराव देशपांडे
बेलगाँव,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११२०९) की माइक्रोफिल्मसे।

२१३. पत्र : सुरेशचन्द्र बनर्जीको[1]

आश्रम
साबरमती
२७ जुलाई, १९२६

प्रिय सुरेश बाबू,

बैंकसे उधार लेनेके बारेमें आपका पत्र मिला। मुझे ऐसा तो कोई भी पत्र नहीं मिला जिसमें बैंक द्वारा रखी गई शर्तोंका उल्लेख हो। मैं बैंकके इकरारनामेके मसविदेका इन्तजार करूँगा। मैं मानता हूँ कि संघकी अनुमति लिये बिना आप इसे पक्का नहीं करेंगे। स्वीकृति मिलनेमें कोई कठिनाई नहीं होगी, परन्तु औपचारिक रूपसे अनुमति लेनी जरूर चाहिए।

मैं चाहता हूँ कि आप मुझे इस सप्ताह 'यंग इंडिया' में प्रकाशित तालिकाके अनुसार जानकारी भेजें। यदि सब संगठन अपेक्षित सूचना भेज दें, तो यह तालिका खादी-प्रेमी और खादीका उपहास उड़ानेवाले, दोनों ही के लिए जानकारीका एक भण्डार बन जायेगी।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ११२१०) की माइक्रोफिल्मसे।

१. इस पत्रकी एक प्रति अखिल भारतीय चरखा-संघको भेजी गई थी।

२१४. पत्र : जनकधारी प्रसादको

मंगलवार [२७ जुलाई, १९२६][1]

प्रिय जनकधारी बाबू,

मैं आपको कैसे भूल सकता हूँ? आपके पत्रसे मन दुःखी हुआ फिर भी आपने लिखकर ठीक ही किया। मैं इस विषयमें 'यंग इंडिया' में लिखूंगा। इस बीच आप राजेन्द्रबाबूसे परामर्श कर ले और यदि आपको लगे कि रचनात्मक कार्यक्रम चलानेका कोई उपयोग नही दिखता, तो आप सब एक साथ इस्तीफा दे सकते है। परन्तु इसका मतलब यह है कि चाहे आप अकेले हो या बहुत, आप कांग्रेस संगठनका काम, केवल अहिंसात्मक ढंगसे, ईमानदारीके साथ जारी रखेंगे। यदि आप इसे स्पष्टतया न समझ सकें और समय कम हो तो आप पदाधिकारियोंका चुनाव तो कर ही लें। अगर सन्तोषजनक रूपमें आप काम नहीं कर पायेंगे तो इस्तीफा तो बादमे चाहे जब दिया जा सकता है। उतावलीमें कोई काम न करें।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी पत्र (जी० एन० ५९) की एक फोटो-नकलसे।

२१५. पत्र : जमनालाल बजाजको

आश्रम
साबरमती
आषाढ़ बदी [३][2], १९८२, २७ जुलाई, १९२६

चि० जमनालाल,

गिरिजाशंकर जोशीको जमीनके पैसे चुकानेकी अन्तिम तारीख १५ है, यह याद रखना। १५ तारीखसे पहले रकम मेरे पास आ जानी चाहिए।

कल हिसारके लाला श्यामलाल अपनी पत्नीको लेकर आये थे। अभी दम्पतीको आश्रममें एक साथ रखनेकी कोई जगह नही है; इसलिए उनकी पत्नी जानकीदेवीके

१. यह पत्र जनकधारी प्रसादको १ अगस्त, १९२६ को मिला था। उससे पहले मगलवार २७ जुलाईका था।

२. मूलमें २ है पर आषाढ़ बदी २, क्षय तिथि होनेसे २७ जुलाई आषाढ़ बदी ३ की थी।

साथ ठहराई गई हैं। मालूम होता है, लाला श्यामलाल तुम्हें अच्छी तरह जानते हैं। ओम बीमार पड़ गई थी इसलिए यहाँ आई है। अब बिलकुल ठीक है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (जी० एन० २८७०) की फोटो-नकलसे।

२१६. पत्र : प्रभाशंकर पट्टणीको

आश्रम
साबरमती
मंगलवार, आषाढ़ बदी [३],[1] २७ जुलाई, १९२६

सुज्ञ भाईश्री,

उम्मीद है, आपकी तबीयत अच्छी रहती होगी। खुराकमें कोई परिवर्तन न होने दें। लगता है, वे दो पुस्तकें आपके साथ चली गई हैं। यदि आपके साथ चली गई हों तो पढ़नेके बाद भेज दें। दोनों विभिन्न मित्रोंकी हैं।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजराती पत्र (जी० एन० ५८८९) की फोटो-नकलसे।
सौजन्य : महेश पी० पट्टणी

२१७. पत्र : जगजीवन तलेकचन्द दरबारीको

२७ जुलाई, १९२६

क्या पत्रिकाओंमें उल्लिखित महाजनके[2] नाराज होनेकी बातके सही होनेके तुम्हारे पास प्रमाण हैं? क्या तुम्हारे पास मूल लेख है? यदि हों तो मुझे देखनेके लिए भेजना।

शराबके ठेकोंके सम्बन्धमें आन्दोलन दो तरहसे किया जाना चाहिए। एक तो दरबारसे अनुरोध करके और दूसरे शराब पीनेवाले लोगोंको भली-भाँति समझा-बुझाकर। उनके शराब पीनेके कारण ढूँढ़ने चाहिए और उनके जीवनमें प्रवेश करना चाहिए। इसके लिए हमें अच्छे चरित्रवान स्वयंसेवक चाहिए।

गुजराती प्रति (एस० एन० १०९७०) की फोटो-नकलसे।

१. मूलमें २ है पर आषाढ़ बदी २ क्षय तिथि होनेके कारण आषाढ़ बदी ३ मंगलवार को थी।

२. किसी समुदाय अथवा व्यावसायिक दलके कारोबारको देखनेवाली पंचायत या प्रतिनिधि संस्था। जगजीवन तलेकचन्द दरबारीने गांधीजीको लिखे २२ जुलाई, १९२६ के अपने पत्रमें मांगरोलके महाजन के बारेमें प्रकाशित दो पत्रिकाओं की चर्चा की थी।

२१८. पत्र : रमणलाल भोगीलाल चिनायको

आश्रम
२७ जुलाई, १९२६

भाईश्री ५ रमणलाल,

आपका पत्र मिला। यदि मेरा चीन आना हुआ तो जहाँ निमन्त्रण देनेवाले लोग ठहरायेंगे मैं वहीं ठहर सकूँगा। वहाँ भी आप खादीका उपयोग करना चाहें तो अवश्य कर सकते हैं। यदि बाहर पहननेके कपड़ोंमें नहीं तो घरमें तो खादी आसानीसे उपयोगमें लाई जा सकती है।

मोहनदास गांधीके वन्देमातरम्

गुजराती पत्र (एस० एन० १२१९२) की माइक्रोफिल्मसे।

२१९. पत्र : नानाभाई भट्टको

आश्रम
२७ जुलाई, १९२६

भाईश्री ५ नानाभाई,

इसके साथ मैं आपकी जानकारी और मनोरंजनके लिए एक पत्र भेजता हूँ। मैंने इसका उचित उत्तर दे दिया है। पत्र पढ़कर वापस भेज दें, क्योंकि इसमें से कुछ प्रश्नोंका उत्तर 'नवजीवन' में भी देना चाहता हूँ।

गुजराती प्रति (एस० एन० १२२१९) की फोटो-नकलसे।

२२०. पत्र : आनन्दानन्दको

आश्रम
साबरमती
२७ जुलाई, १९२६

भाईश्री ५ आनन्दानन्द,

इसके साथ वेणीलालका पत्र है। शनिवार अथवा रविवारमें जो भी आपको सुविधाजनक हो, उन्हें उस दिन आनेके लिए लिख दें, ताकि यह झगड़ा हमेशाके लिए तय हो जाये। उन्होंने हिसाबकी रकमें लिखकर तैयार रखनेका जो सुझाव दिया है वह मुझे बिलकुल उचित लगता है। मुझे तो रविवारको तीन बजेका समय अधिक अनुकूल होगा।

श्री स्वामी
नवजीवन कार्यालय
अहमदाबाद

गुजराती प्रति (एस० एन० १२२२२) की माइक्रोफिल्मसे।

२२१. पत्र : वीरसुत त्रिभुवनको

आश्रम
साबरमती
मंगलवार, आषाढ़ बदी [३][1], २७ जुलाई, १९२६

भाईश्री ५ वीरसुत,

आपका पत्र मिला। महाविद्यालय ग्रामसेवक तैयार करने लायक नहीं बना, यह बात सच है। विद्यार्थियोंकी रुचिके विचारसे कौनसे परिवर्तन किये जाने चाहिए, यह निर्णय अभीतक नहीं हो पाया है। स्नातकोंको अध्यापकके रूपमें नियुक्त करनेमें भूल नहीं हुई, ऐसी मेरी मान्यता है। आप जैसा सोचते हैं स्नातकोंकी स्थिति वैसी दयनीय नहीं है। प्रत्येक योग्य स्नातक सामान्य रूपसे स्वाभिमानपूर्वक अपनी आजीविका कमा लेता है, यह मैं अच्छी तरहसे जानता हूँ। मैं जो उत्तर देता हूँ वे मेरी दृष्टिसे तो व्यावहारिक होते हैं, लेकिन वे सबके लिए समाधानकारक न हों, मैं यह समझ सकता हूँ। आत्मबलको व्यावहारिक वस्तु माननेवाला और कर भी क्या सकता है? छात्रालयमें विद्यार्थी विलासी हैं, इसमें दोष किसका है? अध्यापक क्या कर

१. मूलमें २ है, पर आषाढ़ बदी २ क्षय तिथि होनेके कारण मंगलवारको आषाढ़ बदी ३ थी।

सकते हैं? इस स्थितिको तो स्वयं विद्यार्थी ही बदल सकते हैं। बालकोंको 'गीता', 'रामायण' आदि पढ़ानेका मेरा निजी अनुभव आपके मतसे भिन्न है। इसलिए मैं लाचार हूँ।

अब मैं हर शनिवारको महाविद्यालयमें आया करूँगा इसलिए आप जो भी पूछना चाहें मुझसे वहीं पूछें।

श्री वीरसुत त्रिभुवन
गुजरात विद्यापीठ
उस्मानपुरा, अहमदाबाद

गुजराती प्रति (एस० एन० १२२२३) की फोटो-नकलसे।

२२२. पत्र: छोटालाल मो० कामदारको

आश्रम
२७ जुलाई, १९२६

भाईश्री ५ छोटालाल,

आपका पत्र मिला। आज जिस तरहके दंगे होते है उस तरहके दंगोंसे किसी भी धर्मकी रक्षा नहीं होती। जहाँ परस्पर गहरा अविश्वास है, वहाँ आप जैसे लिखते हैं, वैसे काम नहीं हो सकता। साधुओंको किसी भी काममें लगाना कठिन है। जहाँ हर किस्मके भिक्षुकोंको भिक्षा देना धर्म माना जाता है, वहाँ जबतक स्थिति नही बदलती तबतक सुधार नहीं हो सकता। और यह स्थिति समयानुसार ही बदलेगी। मेरे कहनेका मतलब यह था, और है, कि जिस मालको हम नही बना सकते और जिसे बाहरसे मँगानेमें दोष नही है उसे बनानेकी आवश्यकता नहीं है। इसलिए कॉडलिवर ऑयल और शराब आदि अन्य वस्तुएँ बाहर बनें चाहे यहाँ, मेरी दृष्टिमें निषिद्ध हैं। मशीनोंमें जिस चरबीका उपयोग किया जाता है मैं उसका उपयोग निषिद्ध नहीं मानता।

मोहनदासके वन्देमातरम्

श्री छोटालाल मोहनलाल कामदार
पोस्ट बॉक्स नं० ३८९
रंगून

गुजराती पत्र (एस० एन० १९९३७) की माइक्रोफिल्मसे।

२२३. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

आश्रम
साबरमती
२८ जुलाई, १९२६

प्रिय सतीशबाबू,

साबुन बनानेके लिए उपयोगी पुस्तकोंके साथ आपका पत्र मिला।

हाँ, चार दिन पहले हेमप्रभादेवीका एक पत्र मुझे मिला था। मैं अभी अपने हिन्दी पत्रव्यवहारको निबटा नहीं पाया हूँ। क्योंकि लगभग मेरे सभी लेख बोलकर लिखवाये जाते हैं, इस कारण कभी एक चीज पिछड़ जाती है तो कभी दूसरी। उन्हें ज्वर नहीं आना चाहिए और फुन्सियां भी ठीक होनी चाहिए। फुन्सियोंका कारण क्या हो सकता है?

उत्कलका कार्य मन्त्रीके कार्यालयमें संचालित नहीं किया जा रहा है। नारायणदास इस सम्बन्धमें आगेके सारे पत्र-व्यवहारको देख रहे थे। आपको याद होगा इसे प्रारम्भमें मैं ही देखता था। किन्तु नारायणदास बम्बईके दो भंडारोंके स्टाककी जाँच करने बम्बई गये हुए हैं। जैसे ही वह आयेंगे, मैं उनसे इसके बारेमें और पूछताछ कर लूँगा। स्थिति चाहे जो हो, औपचारिक रूपसे आपको सूचनाकी कोई आवश्यकता नहीं, क्योंकि उत्कलकी जिम्मेवारी आपके कन्धोंसे हटानेका सवाल ही नहीं उठता।

दंगोंसे सारे बंगालकी बिक्रीपर असर पड़ा है या यह प्रभाव केवल कलकत्ते तक ही सीमित है? अवकाश मिलनेपर स्थितिके विषयमें अपने विचार मुझे लिख भेजें। इस भयंकर उपद्रवका मूल क्या है?

आपका,
बापू

श्रीयुत सतीशचन्द्र दासगुप्त
कलकत्ता

अंग्रेजी पत्र (जी० एन० १५६०) की एक फोटो-नकलसे।

२२४. पत्र: वी० ए० सुन्दरम्को

आश्रम
साबरमती
२८ जुलाई, १९२६

प्रिय सुन्दरम्,

तुम्हारा साप्ताहिक उपहार मिला। सावित्री भी कभी-कभी लिखती रहे जिससे मुझे पता चलता रहे कि उसने हिन्दीमें कितनी प्रगति की है। निश्चय ही तुम तो [आश्रमके] पुराने निवासी हो। सर्दीमें तुम्हारे आनेकी उत्सुकतासे राह देखूँगा।

हृदयसे तुम्हारा,
बापू

अंग्रेजी पत्र (जी० एन० ३१९५) की फोटो-नकलसे।

२२५. पत्र: डा० मुरारीलालको

आश्रम
साबरमती
२८ जुलाई, १९२६

प्रिय डा० मुरारीलाल,

बम्बईके राष्ट्रीय स्त्रीमण्डलकी कुमारी मीठूबहन पेटिटने मुझे लिखा है कि उन्होंने कांग्रेस सप्ताहके दौरान प्रदर्शनीमें बेचनेके लिये खादीके कसीदे आदिकी वस्तुएँ कुछ शर्तोंपर भेजी थी। वह बार-बार पूरा हिसाब लिखकर भेजती रही हैं, अभी तक कोई उत्तर नहीं मिला। कृपया आप इस विषयमें पूछताछ करें। हमें अनिश्चित समय तक उनके पैसे नहीं रोक रखने चाहिये।

यह मंडल चन्द समाजसेवी परोपकारी महिलाओं द्वारा चलाया जा रहा है। वे स्वयं कोई मुनाफा नहीं उठातीं। इसकी एक-एक पाई उन गरीब स्त्रियोंको ही जाती है जो कसीदे आदिका काम करती हैं। यह एक परोपकारी संस्था है। इस तथ्यको न लेवें, तो भी जिसका जो-कुछ हमें चुकाना है वह न चुकाना गैर कामकाजी ढंगसे काम करना कहलायेगा — हमें ऐसा नहीं करना चाहिए। मुझे पता चला है कि स्त्रीमण्डल और प्रदर्शनी-समितिके बीच एक लिखित करार हुआ था।

हृदयसे आपका,

डा० मुरारीलाल
कानपुर

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११२११) से।

२२६. पत्र : डब्ल्यू० एच० वाइज़रको

आश्रम
सावरमती
२८ जुलाई, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मैं ऑलिव श्राइनरको तो बहुत अच्छी तरहसे जानता हूँ, लेकिन मुझे खेद है कि श्री टिओ श्राइनरने उनके बारेमें जो पुस्तक लिखी है, उसे मैंने नहीं देखा है। अब चूँकि आपने इस पुस्तककी चर्चा की है, मैं दक्षिण आफ्रिकामें अपने एक मित्रको लिख रहा हूँ कि वे इस सम्बन्धमें पूछताछ करें और पुस्तक मुझे भेजें।

हृदयसे आपका,

श्री डब्ल्यू० एच० वाइज़र
मैनपुरी
संयुक्त प्रान्त

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९६७४) की माइक्रोफिल्मसे।

२२७. पत्र : सी० एफ० एन्ड्र्यूजको

आश्रम
सावरमती
२८ जुलाई, १९२६

तुम अपने दक्षिण आफ्रिका-सम्बन्धी लेखके बारेमें मुझसे सहमत हो, यह मुझे अच्छा लगा।[1] मैं तुम्हारे अफीम-सम्बन्धी लेखके बारेमें तुम्हें परेशान नहीं करना चाहता था, क्योंकि उसमें दक्षिण आफ्रिका-सम्बन्धी लेख-जैसी कोई त्रुटि नहीं थी।

मुझे विश्वास है कि निरन्तर लिखते रहनेके मानसिक श्रमसे तुम्हें यह जो अवकाश मिला है, उससे तुम्हें काफी फायदा होगा। हम सब सितम्बरमें तुम्हारे आनेकी उत्सुकतासे बाट जोहेंगे। देवदास अभीतक मसूरीमें है; वहाँ वह अच्छा चल रहा है और पण्डितजीकी मदद भी कर रहा है।

तुम्हारा,

रेवरेंड सी० एफ० एन्ड्र्यूज
शान्तिनिकेतन

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९६७५) की फोटो-नकलसे।

१. देखिए "पत्र सी० एफ० एन्ड्र्यूजको", २०-७-१९२६।

२२८. पत्र : सर हैरॉल्ड मैनको

आश्रम
साबरमती
२८ जुलाई, १९२६

प्रिय सर हैरॉल्ड मैन,

मुझे मालूम हुआ है कि माटुंगामें एक तकनीकी प्रयोगशाला है और आप उसके प्रधान हैं। क्या आप हमारे व्यवस्थापक मगनलाल खु० गांधीके लिए उस प्रयोगशालाके सुपरिटेंडेंटके नाम एक परिचय पत्र देनेकी कृपा करेंगे? श्री मगनलाल खु० गांधी मेरे चचेरे भाई हैं। वे उक्त प्रयोगशालामें कपास, सूत आदिकी जाँचके लिए प्रयुक्त विभिन्न उपकरणोंको देखना-समझना चाहते हैं।

हृदयसे आपका,

सर हैरॉल्ड मैन
कृषि-संचालक
बी० पी० पूना

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९६७६) की फोटो-नकलसे।

२२९. पत्र : हेमप्रभादेवीको

आश्रम
साबरमती
बुधवार, आषाढ़ कृष्ण ४, [२८ जुलाई, १९२६]

प्रिय भगिनी,

आपका पत्र चार रोजके पहले मिला। बुखार और गोरके उपद्रवकी बात पढ़कर मुझको दुःख हुआ। आराम हुआ होगा।

चरखा सिखानेका कार्य मुझको तो बड़ा प्रिय लगता है। परंतु मुझको यह डर है कि हमेशा शक्तिके बाहर काम करनेसे शरीर क्षीण होता जायगा। इसलिये मेरी तो आपके साथ यह शरत है कि शरीरको अच्छा रखकर जो कुछ भी काम करना है वह किया जाय। 'गीताजी' पर जो कुछ मैं कह रहा हूं उसका तात्पर्य किसी न किसी रोज हिंदीमें प्रगट होनेका संभव है। परंतु इस बातको देर होगी। शरीरका अच्छी तरहसे जतन करना हमारा धर्म है, इस बातको भूलना न चाहिए।

बापू

मूल पत्र (जी० एन० १६४८) की फोटो-नकल तथा एस० एन० १२२२४से।

२३०. पत्र : पानाचन्द शाहको

आश्रम
सावरमती
वुधवार, आषाढ़ वदी ४, २८ जुलाई, १९२६

भाईश्री पानाचन्द,

आपका पत्र मिला। गोरक्षाके लिए भेजे गये पैसोंकी रसीद इसके साथ है। दानी भाइयोंके नाम 'नवजीवन' में आ गये हैं। वहांके समाचार जानकर खुशी हुई। चरखा फिर चालू हो सके तो वहुत अच्छा होगा।

यदि राष्ट्रीय शालाओंकी पद्धतिके वारेमें कुछ प्रकाशित होगा तो मैं आपको भेज दूंगा। यदि पाठ्य-पुस्तकोंकी कोई सूची होगी तो उसे भी भेज दूंगा। आपको पूनियाँ वनाना वही सीख लेना चाहिए। भाई भगवानजी काम करना अच्छी तरह जानते हैं। उनकी मदद लेना उचित है। हथकते सूतकी खादी वहाँ न मिले तो यहाँसे मँगा लेनी चाहिए।

गुजराती प्रति (एस० एन० १०९७२ ए) की माइक्रोफिल्मसे।

२३१. पत्र : ए० वी० गोदरेजको

आश्रम
२८ जुलाई, १९२६

भाईश्री ५ गोदरेज,

आपका पत्र मिला। सामान्य रूपसे न्यासके पैसे व्यक्तिगत रूपसे लोगोंको उधार नहीं दिये जाते। जमनालालजी व्यक्तिगत रूपसे किसी अन्य सज्जनको और वह भी अपने किसी मित्रको जिस तरह पैसा उधार दे सकते हैं, उस तरह वे एक न्यासीके रूपमें न्यासके कोषमेंसे नहीं दे सकते। और यह उचित है। संसारका अनुभव भी यही है। दानी जरूरत पड़ जानेपर दान किये हुए अपने पैसेका उपयोग नहीं कर पाता, इसका उसे दु:ख नहीं करना चाहिए। उसे उसका उपयोग करनेकी इच्छा भी नहीं करनी चाहिए।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजराती पत्र (एस० एन० १२२१७) की फोटो-नकलसे।

२३२. अस्पृश्यता-रूपी रावण

किन्हीं विद्वान पण्डित महोदयने दक्षिणके देशी भाषाके पत्रोंमें अस्पृश्यताके समर्थनमें लिखा है। एक मित्रने उनकी दलीलोंका सारांश भेजा है।

(१) आदि शंकराचार्यने किसी चाण्डालको अपनेसे दूर रहनेको कहा था और त्रिशंकुको चाण्डाल हो जानेका शाप मिलनेके बाद सब उससे दूर-दूर ही रहते थे। ये बातें सिद्ध करती हैं कि अस्पृश्यताकी पैदाइश हालकी नहीं है।

(२) आर्यजातिसे बहिष्कृत लोग चाण्डाल हैं।

(३) स्वयं अछूत भी तो अस्पृश्यताका पालन करते हैं।

(४) अछूतोंको अछूत तो इसलिए माना जाता है कि वे पशुओंकी हत्या करते हैं और माँस, लहू, हाड, मलमूत्रादिका काम करते हैं।

(५) अछूतोंको उसी प्रकार अलग रखना चाहिए जिस प्रकार कसाई-खानों, शराब-ताड़ीकी दूकानों और वेश्यालयोंको दूर रखा जाता है या रखा जाना चाहिए।

(६) उन्हें परलोकके हकोंसे वंचित नहीं रखा गया है, उनके लिए तो यही काफी है।

(७) गांधी ऐसे व्यक्तियोंको छूते हैं या उपवास करते हैं तो ऐसा करें। हम लोगोंको न तो उपवास करना है और न उन्हें छूनेकी ही हमें जरूरत है।

(८) मनुष्यकी उन्नतिके लिए अस्पृश्यताका पालन अत्यन्त ही आवश्यक है।

(९) मनुष्यके पास विद्युत-शक्ति जैसी कोई शक्ति रहती है। इसे दूधके जैसा माना जा सकता है। गन्दी चीजोंके सम्पर्कसे सम्भवतः यह शक्ति जाती रहेगी। इसलिए यदि प्याज और कस्तूरीको एक साथ मिला कर रखना सम्भव हो तो ब्राह्मण और अछूतको भी एक साथ रखा जा सकता है।

पत्रलेखकने इन्हीं मुख्य-मुख्य बातोंकी सूची बनाकर भेज दी है। अस्पृश्यता हजार सिरोंवाला रावण है। इसलिए जब कभी यह अपना सिर उठाये हमें उसे कुचल देना होगा। यदि हम अपनी आजकी स्थितिपर उन कथाओंका अभिप्राय न समझें तो पुराणोंकी कुछ कथाएँ तो बहुत ही खतरनाक कही जा सकती हैं। यदि हम अपना जीवन शास्त्रोंमें कही हुई हरेक छोटी-बड़ी बातके अनुसार बनायें या हम उसमें वर्णित पात्रोंका ठीक-ठीक अनुकरण करने लगें तो ये शास्त्र हमारे लिए प्राण-घातक जाल ही बन जायेंगे। हमें उनसे तो केवल सिद्धान्तकी मुख्य-मुख्य बातें स्पष्ट करने या उन्हें ठीक-ठीक समझनेमें सहायता मिलती है। यदि किसी धार्मिक ग्रन्थमें किसी प्रसिद्ध पुरुषके कोई पाप करनेका उल्लेख हो तो क्या उससे हमें भी पाप करनेकी आज्ञा मिल जाती है? यदि हमसे उन्होंने केवल एक बार ही यह कह दिया

कि इस ससारम केवल सत्यकी ही सत्ता है और सत्य परमेश्वरके तुल्य है, तो हमारे लिए इतना ही बहुत है। यह कहना कि युधिष्ठिरको भी झूठ बोलना पड़ा था; अनुपयुक्त होगा। यह कहना उसकी अपेक्षा अधिक उपयुक्त होगा कि जब वे झूठ बोले, उन्हे उसी समय, उसी क्षण, कष्ट झेलना पड़ा और उनकी प्रसिद्धि और समाज-में बड़ा स्थान दण्ड पानेके समय आड़े न आये। उसी प्रकार हमारा यह कहना भी अप्रस्तुत ही होगा कि आदि शंकराचार्यने किसी चाण्डालको दूर रहनेको कहा था। हमारा यही जान लेना यथेष्ट होगा कि जिस धर्ममें यह सिखाया जाता है कि प्राणिमात्रके साथ आत्मोपम[1] व्यवहार करो, उस धर्मको किसी तुच्छ जीवके प्रति निष्ठुर व्यवहार भी असह्य है, बिल्कुल निर्दोष मनुष्योंके एक पूरे समाजकी बात तो दूर ही रही। इसके अलावा हमें वह सब मालूम भी तो नही है जिससे हम यह जान सके कि आदि शंकराचार्यने क्या किया था और क्या नही किया था। यहाँ चाण्डाल शब्दका किस अर्थमें व्यवहार हुआ है उसके बारेमें तो हमें और भी कम मालूम है। यह तो सभी मानते हैं कि इसके अनेक अर्थ हैं जिनमें से एक अर्थ है पापी। यदि सभी पापियोंको अछूत माना जाये तो भय है कि हम सभी अछूत बन जायेंगे और स्वयं हमारे पण्डितजी भी नही बच सकेंगे। अस्पृश्यताकी प्राचीनतासे कोई इनकार नही करता; परन्तु यदि इसे दोष मानना है तो फिर प्राचीनताके नामपर इसका समर्थन नही किया जा सकता।

आर्य जातिने यदि जाति-बहिष्कृत लोगोंको अछूत माना हो तो उनके लिए यह कोई शोभाकी बात नही है। और यदि आर्यजातिने अपने विकासके किसी कालमें कुछ लोगोके समाजको बतौर सजाके जातिच्युत माना था तो यह कोई कारण नहीं है कि वह सजा उन लोगोके वंशजोंपर भी लागू हो और इसका विचार भी न किया जाये कि उनके पूर्वजोंको सजा किस दोषके लिए दी गई थी।

अछूतोंमें भी अस्पृश्यताकी प्रथाका होना तो केवल यही सिद्ध करता है कि हम पापको किसी घेरेमें सीमित नही रख सकते; उसका जहर सर्वत्र फैल जाता है। इस प्रथाका अछूतोंमें भी पाया जाना तो एक और कारण है कि सभ्य हिन्दू समाजको इस महाव्याधिको शीघ्रसे-शीघ्र नष्ट कर देना चाहिए।

यदि अछूतोंको न छूनेका कारण है कि वे पशु-हत्या करते हैं और उन्हें माँस, लहू, हाड़ तथा मलमूत्रादिसे काम पड़ता है तो सभी डाक्टरों और परिचारिकाओं, इसी प्रकार ईसाइयो, मुसलमानों और बड़ी-बड़ी ऊँची जातिके नामधारी हिन्दुओंको भी, जो खानेके लिए या बलि देनेके लिए जानवरोंको मारते हैं, अछूत माना जाना चाहिए।

इस दलीलसे कि चूँकि कसाईखानों, ताड़ीकी दूकानों और वेश्यालयोंको अलग रखा जाता है इसीलिए अछूतोंको भी अलग रखना चाहिए, घोर द्वेषकी गन्ध आती है। कसाईखानों और शराबकी दूकानोंको अलग रखा जाता है; रखना उचित भी

१. आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन!।
सुखं वा यदि वा दुखं स योगी परमो मतः ॥ ६-३२
श्रीमद्भगवद्गीता।

है। परन्तु कसाइयों और कलालोंको तो कोई अलग नही रखता। वेश्याओंको अलग रखना ठीक है, उनका पेशा घृणित है और समाजकी उन्नतिके लिए बाधास्वरूप है। परन्तु अछूतोंका पेशा तो न केवल इष्ट ही है, बल्कि वह तो समाजके हितके लिए परमावश्यक है।

यह कहना तो गुस्ताखीकी हद है कि अछूतोंको परलोकके हक तो प्राप्त हैं। यदि परलोकके अधिकार भी छीन लेना अपने ही हाथमें होता तो बहुत सम्भव है कि अछूतपनकी राक्षसी प्रथाके समर्थक उनको वहाँ भी अलग ही छाँट देते।

यह कहना तो लोगोकी आँखोमे धूल झोंकना है कि गांधी अछूतोंको छू सकता है और अन्य लोग नही। मानो अछूतोंको छूना या उनकी सेवा करना इतने बड़े दोष हैं कि जिसके लिए वैसे ही आदमियोंकी जरूरत है जो अछूत रूपी रोगाणुओंसे अपनेको बचा लेनेकी विशेष शक्ति रखते हों। मुसलमानों, ईसाइयों तथा अन्य उन लोगोंको जो अस्पृश्यता नहीं मानते, कौन-सी नरक-यातना दी जायेगी, सो तो भगवान ही जाने।

शरीरमे विद्युतशक्ति होनेकी दलीलमें भी अतिशयोक्ति है। ऊँची जातिके सभी लोग न तो कस्तूरी-जैसे सुगन्धित हैं और न अछूत प्याज-जैसे दुर्गन्धयुक्त। ऐसे हजारों अछूत हैं जो तथाकथित ऊँची जातिके लोगोसे हजार गुना अच्छे हैं।

यह देखकर कष्ट होता है कि अस्पृश्यताके विरुद्ध ५ वर्षोंके लगातार प्रचारके बाद आज भी कितने ही ऐसे पढ़े-लिखे विद्वान् पुरुष मिल जाते हैं जो इस अनीतिमूलक और दूषित रिवाजका समर्थन करते हैं। विद्वानोमें अस्पृश्यता भावके रहनेसे अस्पृश्यताको प्रतिष्ठा नही मिलती; इससे तो केवल विद्या द्वारा चारित्र्य और समझदारीकी कुछ वृद्धि हो सकनेकी हमारी आशापर पानी-भर पड़ता है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २९-७-१९२६

२३३. शास्त्राज्ञा बनाम बुद्धि

वह शिक्षक, जिन्होंने अपने शिष्योंको चरखा चलाना इसलिए सिखाया था कि 'महात्माजीका हुक्म' है, लिखते हैं:

> २४ जून, १९२६ के 'यंग इंडिया' में 'महात्माजीका हुक्म' शीर्षक आपका लेख पढ़कर निम्नलिखित शंकाएँ मेरे मनमे उत्पन्न हुईं:
>
> आप विवेकको बहुत प्राधान्य देते हैं। क्या आपने 'यंग इंडिया' अथवा 'नवजीवन' में यह भी नहीं लिखा था कि विवेक इंग्लैंडके राजाकी तरह अपने इन्द्रियरूपी मन्त्रियोंके हाथोंकी कठपुतली है? क्या आदमी प्रायः उसी दिशामें तर्क नहीं करता, जिस दिशामें उसकी इन्द्रियाँ उसे ले जाती है? तब फिर आप बुद्धिको पथप्रदर्शक कैसे करार दे सकते है? क्या आपने यह नहीं कहा है कि तर्क, विश्वासानुसारी होता है? इसलिए यदि किसी व्यक्तिकी रुचि कातनेमें नहीं है, तो वह न कातनेके पक्षमें दलीलें भी ढूँढ़ लेगा। छोटे बच्चोंकी

विचारशक्तिपर अधिक जोर डालना कहाँतक वांछनीय है? महान् शिक्षाशास्त्री रूसोने कहा था कि बचपन बुद्धिकी सुषुप्तावस्था है। इसलिए वे बाल्यकालमें अच्छी आदतें सिखा देने-भरके पक्षमें थे। और निस्सन्देह, लड़कोंको किसी महात्माके हुक्मके मुताबिक काम करना सिखाना -- और फिर खास तौरपर तब, जबकि उस महात्माके उपदेशमें शारीरिक श्रमके लिए स्थान हो, एक अच्छी टेव डलवाना ही है। जब बच्चे बड़े होंगे, तब वे कातनेके पक्षमें तर्क भी ढूंढ़ निकालेंगे। लेकिन तबतकके लिए क्या उनमें 'अन्ध वीरोपासना' का भाव (जैसा कि आप उसे कहना चाहते हैं) जाग्रत करना ठीक न होगा? क्या हम लोगोंने आजकल बुद्धिको एक खिलवाड़-सा नहीं बना रखा है? सड़ी-सड़ी-सी बातोंके लिए हम लम्बी-चौड़ी दलील ढूंढ़नेमें माथापच्ची करते हैं और तब भी सन्तुष्ट नहीं होते। बुद्धिका बेशक एक स्थान है, परन्तु जो स्थान आजकल हम लोगोंने उसे दे रखा है, उससे कहीं नीचा।

जबतक कि किसी व्यक्तिको पक्के तौरपर वह सब याद न हो कि अमुक सम्बन्धमें पहले वह क्या कह चुका है और किस परिस्थितिमें; तबतक उसके ही विरोधमेंउसके वाक्य उद्धृत करना ठीक नही है। जो-जो बाते उक्त सज्जन मेरे द्वारा कही गई बतलाते हैं, वे बेशक मैंने किसी-न-किसी समय लिखी हैं -- परन्तु बिलकुल दूसरी ही परिस्थितिमें। यदि कोई बात कारण सहित इतनी अच्छी तरहसे बतलाई जा सकती हो कि बच्चे भी उसे आसानीसे समझ ले, तो किसी विद्वान्का नाम लेकर तदनुसार कार्य करनेको कहनेका कोई कारण नही है। अकसर ही यह तरीका गलत हुआ करता है। हरएक व्यक्तिकी अपनी रुचि और अरुचि होती है। किन्तु किसी 'वीर' के प्रति श्रद्धालु होकर व्यक्ति अपने विवेकको नमस्कार कर लेता है और अपने 'देवता' का अन्ध पूजक बन बैठता है। ऐसी श्रद्धाको मै अन्ध वीरोपासना कहता हूँ। वीरोपासना एक उत्तम गुण है। किसी राष्ट्र या व्यक्तिके सामने कोई आदर्श न हो तो वह उन्नति नहीं कर सकता है। 'वीर' उसे प्रकाश देता है और उसका उत्साह बढ़ाता है उससे भावनाको कार्यरूपमे परिणत करना सम्भव बनता है; और सम्भव है कि किसी आदर्श पुरुषके अभावमे लोग अपनी कमजोरीके कारण कार्य करनेपर उद्यत ही न हों। वह हमको निराशाकी दलदलसे उबारता है; उसके कृत्योंका स्मरण हममें असीम त्याग करनेका बल भरता है। परन्तु यह कदापि न होना चाहिए कि उसके कारण हम अपना विवेक खो दें और हमारी बुद्धि पंगु बन जाये। हममें से उत्कृष्टसे-उत्कृष्ट व्यक्तियोके कथन तथा कार्यों तकको हमे अच्छी तरह कसौटीपर कस लेना चाहिए, क्योंकि वे 'वीर' पुरुष भी आखिरकार मनुष्य है और नाशवान है। वह भी ठीक उसी तरह गलती कर सकते है जैसी हममे से अधम-से-अधम। उनकी श्रेष्ठता तो उनके निर्णय तथा काम करनेकी उनकी शक्तिमें है। इसलिए उनकी गलतीके परिणाम बड़े भयंकर होते है। अन्ध वीरोपासना जिसकी आदत हो, और जो बिना सोचे-समझे तथा बिना शंकातक किये अपने आदर्शकी सब बातोंको मान लेता हो वह व्यक्ति या राष्ट्र मिट्टीमे ही मिल जाता है, इसलिए वीरोपासनाके

प्रति अन्धभक्ति तर्कके प्रति अन्धभक्तिसे ज्यादा खराब है। सच बात तो यह है कि तर्कके प्रति अन्धभक्ति जैसी कोई चीज है ही नहीं।

परन्तु उक्त शिक्षककी तर्क सम्बन्धी चेतावनीसे एक निष्कर्ष अवश्य निकलता है। यह देखते हुए कि अधिकांश रूपसे तर्क व्यवहारका एकमात्र पथप्रदर्शक है, यह आवश्यक है कि उसके मन्त्री आज्ञाकारी एवं शुद्ध हों। इसलिए इन्द्रियोंको कठोर संयम द्वारा वशमें कर लिया जाना चाहिए। ताकि वे सही तर्कोंका खुशीसे पालन किया करें, न कि उलटे, विवेकको उनका निस्सहाय गुलाम होना पड़े।

माना, कि बच्चेकी विवेक-शक्ति सुषुप्तावस्थामें होती है, परन्तु एक सचेत शिक्षक उसे प्रेमसे जाग्रत करके उसे शिक्षित बना सकता है। वह बच्चेमें संयमकी टेव डाल सकता है, ताकि बुद्धि इन्द्रियोंके वशीभूत न होकर, बचपनसे ही उसकी पथ-प्रदर्शक बन जाये। बच्चोंसे किसी वीरका अनुसरण करनेको कहना कोई संयम नहीं है। इससे किसी आदतका बीजारोपण नहीं होता। वे बच्चे, जिन्हें किसी कामको बिना सोचे-समझे करना सिखा दिया जाता है, काहिल हो जाते हैं। और यदि दैवात् दूसरा कोई शिक्षक उन बच्चोंके चित्त-रूपी सिंहासनसे उस वीरको च्युत करा दे, जिसको पहला शिक्षक वहाँ आसीन कर गया था, तब तो अपने भावी जीवनमें किसी कामके नहीं बचते। यदि शुरूसे ही, जो कुछ उनसे कहा जाये, अच्छी तरह समझ कर कहा जाये और उनके सामने उन पुरुषोंके उदाहरण पेश किये जायें, जिन्होंने महान काम किये हैं ताकि उनके संकल्पमें दृढ़ता आये या विवेककी पुष्टि हो, तो सम्भव है कि वे शक्तिशाली और चारित्र्यवान नागरिक बनें और कठिन अवसरोंपर दृढ़ रह कर अपना मुख उज्ज्वल करें।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २९-७-१९२६

२३४. अखिल भारतीय तिलक स्मारक कोष

अवैतनिक कोषाध्यक्षों द्वारा अखिल भारतीय तिलक स्मारक कोषके[1] ३० सितम्बर १९२५ के अन्त तकके विस्तृत हिसाबका एक चिट्ठा प्रस्तुत किया गया है। इस चिट्ठेकी जाँच श्री दलाल और श्री शाहने की है। श्री दलाल और श्री शाह 'इंकॉरपोरेटेड अकाउंटेंट्स' (लन्दन)के लेखा-निरीक्षक हैं। उन्होंने कहा :

> हम मध्यप्रदेश (हिन्दुस्तानी), मध्यप्रदेश (मराठी), बरार, बर्मा और असमकी कमेटियोंके अतिरिक्त अन्य सब प्रान्तोंकी कमेटियोंके दफ्तरोंमें गये। यद्यपि हम केरल प्रान्तीय कमेटीके दफ्तरमें भी गये थे; किन्तु तबतक उसका हिसाब तैयार नहीं हुआ था, इसलिए हम उसके हिसाबकी जाँच नहीं कर सके। किन्तु मध्यप्रदेश (हिन्दुस्तानी), बरार, असम और बर्माकी प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियोंके

१. देखिए खण्ड २८।

मन्त्रियोंने अपना-अपना हिसाब भेज दिया है। हिसाब कमेटियोंके लेखानिरीक्षकों द्वारा उचित रूपसे जाँचे हुए हैं। उक्त कमेटियोंके हिसाबके चिट्ठे इस पत्रके साथ नत्थी हैं।

कमेटियोंने जो रुपया लगाया है और उसके पास जो ऋणपत्र हैं हमने उनकी काफी जाँच कर ली है। किन्तु चूंकि हमारे इन केन्द्रोंमें जानेसे कुछ पहले साल पूरा हो चुका था, इसलिए हम उनके पासकी रोकड़की जाँच नहीं कर सके हैं।

इस वर्ष भी कई कमेटियोंने अपने आय-व्यय पत्रक तथा आमदनी और खर्चके हिसाब तैयार नहीं किये हैं और केवल प्राप्त रकमों और खर्चकी रकमोंके ब्यौरे भेज दिये हैं। कई कमेटियोंने लेने और पावनेकी इससे पहलीकी रकमें नहीं जोड़ी हैं; इसलिए आय-व्यय पत्रक नहीं बन सके। आय-व्यय पत्रकोंके बिना प्राप्त रकमों और खर्चकी रकमोंके ब्योरेसे यह पता नहीं चलेगा कि किसी खास सालमें कमेटियोंकी स्थिति क्या थी। कमेटियोंकी सम्पत्तिकी भी शायद इस तरह ठीक जानकारी नहीं हो सकती।

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके प्रस्तावके अनुसार कुछ कमेटियोंने खादी विभाग अलग कर दिये हैं। हमें बताया गया है कि अन्य कमेटियाँ इस साल ये विभाग अखिल भारतीय चरखा संघको प्रान्तीय शाखाओंको सौंप देंगी।

विभिन्न कमेटियोंके खादी विभागोंमें बड़ी-बड़ी रकमें लगी हुई हैं; किन्तु हम देखते हैं कि इन रकमोंका ज्यादातर बड़ा हिस्सा वसूल नहीं किया जा सकता और उस रुपयेके बदले उनके पास कोई सम्पत्ति या तैयार माल भी नहीं है। इन रकमोंको या इन रकमोंके एक हिस्सेको जिनके बदले कोई ऐसी पूंजी नहीं है जिससे इनको वसूल किया जा सके और जो अब मिल नहीं सकती हैं, बट्टेखाते डाल लेना चाहिए। हमने इस बारेमें अपने दौरेके समय सम्बन्धित कमेटियोंका ध्यान इस ओर खींचा है।

कार्यकर्त्ताओं और जिला कमेटियोंको पेशगी दी गई रकमें, जो अब वसूल नहीं हो सकतीं या जो भत्तोंके रूपमें होनेसे वापस नहीं ली जा सकतीं, आयमें से निकाल देनी चाहिए और जैसा कि कई कमेटियोंने किया है, कमेटियोंकी पूंजीमें नहीं दिखाई जानी चाहिए।

अखिल भारतीय कोषाध्यक्षके दफ्तरमें सब प्रान्तीय कमेटियोंके आमदनी और खर्चका एक मिला-जुला चिट्ठा तैयार किया गया है। वह इसमें सम्मिलित है।

हम हिसाब रखनेके तरीकेके बारेमें एक अलग चिट्ठी भेज रहे हैं और आशा करते हैं कि इसमें दिये गये सुझावोंपर चालू सालमें अमल किया जायेगा।

यह चिट्ठा पहले निकाले गये तिलक स्मारक-कोषके उस चिट्ठेसे बिलकुल अलग है जिसमें कोषकी स्थापनाके दिनसे अबतकका हिसाब दिया गया है। इस चिट्ठेमें अबतकका अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके हिसाबके साथ-साथ प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियोंका हिसाब भी आ गया है। इस आय-व्यय पत्रकमें ३० नवम्बर, १९२५ तककी स्थिति आ जाती है।

आशा है, प्रान्तीय कमेटियाँ लेखा-निरीक्षकोंकी हिदायतोंपर अमल करेंगी। यदि केन्द्रीय और प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियाँ अपने आय और व्ययका हिसाब ठीक तरहसे रखें तो उससे कांग्रेस संगठनकी जड़ें जितनी मजबूत होंगी उतनी अन्य किसी बातसे न होंगी। इस चिट्ठेमें ६४ फुलस्केप कागजोंमें विभिन्न प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियोंका हिसाब सही-सही और प्रमाणित रूपमें दिया गया है। जिन लोगोंको कांग्रेसके पैसेके हिसाबमें दिलचस्पी है, उनके लिए सबसे अच्छी बात यह है कि वे दो आनेके डाक टिकट भेजकर इसकी एक प्रति श्रीयुत रेवाशंकर जगजीवन झवेरी, अवैतनिक कोषाध्यक्ष अ० भा० कांग्रेस कमेटी, झवेरी बाजार, बम्बईसे मँगा लें।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २९-७-१९२६

२३५. अनीतिकी राहपर – ५

ब्रह्मचर्यसे होनेवाले शारीरिक लाभोंपर विचार कर चुकनेके बाद महाशय ब्यूरो उसके नैतिक और मानसिक लाभोंपर प्रो० मॉन्टेगजाका अभिप्राय उद्धृत करते हैं :

> ब्रह्मचर्यके त्वरित लाभोंका अनुभव सभी कर सकते हैं — विशेषतः नवयुवक। इससे स्मरण-शक्ति स्थिर और संग्राहक, बुद्धि प्रसन्न और उर्वरा तथा इच्छाशक्ति तेजस्वी हो जाती है। समूचा जीवन ऐसा शक्तिशाली बन जाता है जिसका स्वेच्छाचारियोंको कभी अनुभव ही नहीं हो सकता। पवित्रतासे बढ़कर आसपासके दिव्य रंगोंको व्यक्त करनेवाला बिल्लौरी काँच दूसरा है ही नहीं। यह अपनी किरणोंसे जगत्की नगण्यतम वस्तुको भी दमका देता है। यह हमें शाश्वत सुख और शुचि आनन्दसे भरे एक ऐसे लोकमें पहुँचा देता है जिसे कोई कालिमा नहीं छूती और जो कभी फीका नहीं पड़ता। एक ओर ब्रह्मचारी नवयुवकोंकी प्रफुल्लता, शीलपूर्ण विनोद और जाज्वल्यमान आत्मविश्वास तथा दूसरी ओर इन्द्रियोंके दासोंकी अशान्ति, बेचैनी और घबराहटमें आकाश-पातालका अन्तर होता है। इसके बाद लेखक संयमशीलताके लाभ और वासना तथा अविचारके दुखदायी फलोंका मिलान करता है और कहता है कि क्या कभी किसीने इन्द्रिय-संयमसे किसी रोगके उत्पन्न होनेकी बात सुनी है, जबकि इन्द्रियोंके असंयमसे होनेवाले रोगोंको कौन नहीं जानता? इससे शरीर इतना गया-बीता बन जाता है कि उसका वर्णन नहीं हो सकता. . .मन और

बुद्धिका हाल तो उससे भी बुरा हो जाता है। फलस्वरूप हम चारों ओरसे चारित्र्यकी अवनति, उद्दाम प्रवृत्ति और स्वार्थपरताकी बाढ़का रोना सुनते हैं।

वासनाओंकी कथित पूर्तिकी आवश्यकता और परिणामतः विवाहसे पूर्व युवकोंके असंयमके विषयमें इतना कहा। इस तरहके असंयमके हिमायती कहते हैं कि इसपर रोक लगाना 'अपने शरीरका इच्छानुकूल व्यवहार करनेपर' रोक लगाना है। बेशक लेखकने विस्तृत रूपसे दलीलें देकर दिखाया है कि मानसिक और सामाजिक उन्नतिके लिए इसपर रोक लगाना आवश्यक है।

वह कहता है कि:

> समाज-शास्त्रियोंकी निगाहमें सामाजिक जीवन बहुविध सम्बन्धोंका एक जाल, कर्मोंके परस्पर आघात-प्रतिघातका नाम ही है। हमारी सारी क्रियाएँ एक-दूसरीसे कुछ ऐसी गुथी हुई होती हैं कि हमारा एक भी कर्म अन्य किसी कर्मसे विच्छिन्न या विलग नहीं कहा जा सकता। हम कुछ भी करनेकी कोशिश न करें, वह समाजके एकत्वके कारण हमारे अन्य भाइयोंपर असर डालने-वाला बन जाता है और हमारे गुप्तसे-गुप्त कर्म, विचार अथवा मनोभावका गम्भीर और दूरगामी प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। कई बार यह प्रभाव इतना गम्भीर और दूरगामी होता है कि हम उसकी पूर्वकल्पना भी नहीं कर सकते। समाजसे व्यक्तिका इस तरह जुड़ा रहना उसका सहजात गुण है। यह समाजमें कालान्तरमें रूढ़ नहीं हुआ है, बल्कि यह तो मनुष्यका सहज स्वभाव है, इसकी प्रतीतिका अंग है। व्यक्ति मनुष्य होनेके कारण सामाजिक प्राणी तो है ही। हमारे लिए सामाजिकता जितनी स्वाभाविक है उतना स्वाभाविक और कुछ भी नहीं है। हमारे शारीरिक और नैतिक, आर्थिक और राजनीतिक तथा बुद्धि और भावना सम्बन्धी सभी काम एक रूढ़ और अनिर्दिष्ट सार्वभौम पद्धतिके बन्धनसे बँधे हुए हैं। यह बन्धन इतना मजबूत है, इसका जाल इतना घना बुना हुआ है कि उसको समझनेकी कोशिशमें समाज-शास्त्रीको सर्वकाल और सर्वदेशसे आँखें चार करनी पड़ती हैं और वह हक्का-बक्का रह जाता है। क्षण-भरमें ही उसके सामने स्पष्ट हो जाता है कि कभी-कभी व्यक्तिका उत्तर-दायित्व कितना बड़ा हो सकता है और वह समझ जाता है कि यदि कोई समाज व्यक्तिको किसी विषयमें स्वतन्त्र छोड़नेका लोभ दिखाये और व्यक्ति उसे स्वीकार कर ले तो परिणामस्वरूप वह कितना छोटा बन जा सकता है।

इसके बाद लेखकने यह दिखलाया है कि:

> जब हमें सड़कपर चाहे जहाँ थूकने तकका अधिकार नहीं है, तब भला सन्तानोत्पत्ति जैसी महाशक्तिको जहाँ-तहाँ फेंकते रहनेका अधिकार कैसे मिल सकता है। ऊपर बतलाई हुई समस्त बातोंसे यह कोई अलग-थलग क्रिया नहीं है। उलटे इस क्रियाकी गुरुताके कारण समाजपर इसका प्रभाव और भी गहरा

होता है। यदि कोई नवयुवक और नवयुवती एक-दूसरेके प्रति आकर्षित होकर यह सोचें कि हम स्वतन्त्र हैं और हमारे स्वतन्त्र सम्बन्धसे किसीको कुछ लेना-देना नहीं है, यह तो केवल हम दोनोंका निजी मामला ही है तो उनका यह सोचना स्वतन्त्रताके विषयमें उनका भ्रम ही है। उनके पारस्परिक सम्बन्धका समाजसे सम्बन्धित न होना या समाजका उसपर कुछ भी नियन्त्रण न हो सकना एक नादानीका विचार है। उन्हें नहीं मालूम कि हमारे गुप्त और व्यक्तिगत कर्मोंका दूर-दूरतक जबरदस्त असर पड़ता है। समाजकी जो एकता व्यक्तियों, राष्ट्रों और समस्त मानवताको परस्पर बाँधती है वह सब प्रकारके व्यवधानोंसे परे है। हमारे ऐसे कामोंसे समाजकी व्यवस्था नष्ट हुए बिना नहीं रह सकती। कोई चाहे या न चाहे किन्तु केवल आनन्दके लिए कुछ दिनों साथ रहना या गर्भ-निरोध करते हुए यौन-सम्बन्ध स्थापित करनेके अधिकारकी कल्पना करना समाजके भीतर असामाजिकताके बीज बोना ही है। हमारी सामाजिक स्थिति वैसे ही स्वार्थ या स्वच्छन्दता भरे अनेक कामोंसे बिगड़ी हुई है। फिर भी सभी समाजोंमें अभीतक मान्यता तो यही है कि सन्तानोत्पत्तिकी शक्तिके व्यवहारसे जो जिम्मेदारी आ पड़ती है, लोग उसे सहर्ष स्वीकार करेंगे। इस जिम्मेदारीको माननेकी बातपर ही आज समाजमें पूँजी और श्रम, मजदूरी और विरासत, कर और सैनिक-सेवा तथा प्रतिनिधित्व आदिके अधिकार आदिका ढाँचा खड़ा हुआ है। इस जिम्मेदारीको अस्वीकार करनेवाला व्यक्ति समाजके सारे संगठनको अनायास ही हिला देता है। जो व्यक्ति सामाजिक जीवनके नियमोंका उल्लंघन करता है, वह दूसरेका बोझ बढ़ाकर स्वयं हलका बना रहना चाहता है; और इसलिए उसे किसी चोर, डाकू या लुटेरेसे कम नहीं माना जा सकता। समाजमें अपनी इस शारीरिक शक्तिका सद्व्यवहार भी हमारी वैसी ही एक जिम्मेदारी है, जैसा अपनी अन्य शक्तियोंका सद्व्यवहार। इस विषयमें समाज स्वयं तो निरस्त्र है और इसलिए उसके उचित उपयोगका भार उसने विवश होकर व्यक्तिकी समझदारीपर ही छोड़ रखा है। इस कारण यह जिम्मेदारी और भी बढ़ जाती है।

लेखक मानसिक आधारपर यही बात कहते हुए और भी अधिक दृढ़ताके साथ कहता है कि :

यह तो बहुत पहलेसे विश्रुत है कि स्वाधीनता बाहरसे सुख भले ही मालूम हो, किन्तु वास्तवमें वह एक भार ही है। यही इसकी खूबी भी है। स्वतन्त्रता बन्धनकारी है और कर्त्तव्योंके प्रति हमें अनिवार्य रूपसे जागरूक रहनेको कहती है। स्वतन्त्रता प्रत्येक व्यक्तिके कर्त्तव्यमें वृद्धि करती है। व्यक्ति स्वतन्त्र होना चाहता है और अपने अधिकार-क्षेत्रके विस्तारके लिए आतुर हो उठता है। पहले तो उसे लगता है कि व्यक्तिगत स्वतन्त्रता पाना एक आसान बात है।

किन्तु वह बहुत जल्दी समझ जाता है कि यह कोई सीधी-सादी बात नहीं है और इसे सुलझाना बहुत कठिन है। हम मन और विवेक, दोनोंको एक मान बैठते हैं। होनेको तो दोनोंमें हमारी ही शक्ति संचरित है, किन्तु इन दोनोंमें भेद बहुत है। तरह-तरहकी इच्छाएँ हमारे मनको उद्वेलित करती रहती हैं। हम सभी कुछ पाना चाहते हैं, पर साथ ही यह भी जानते हैं कि हमें कुछ-न कुछ छोड़ना पड़ेगा। मन और विवेक, दोनोंमें से हम किसकी मानें? महान् शिक्षाशास्त्री फोरेस्टरके शब्दोंमें विवेकसे जो विचार उत्पन्न होता है उसकी मानें या निम्नतम इन्द्रिय-लालसाकी? यदि समाजकी उन्नति वासनापर विवेककी विजय, विषयेच्छाके ऊपर आत्मबलकी विजयमें हो तो चुनाव करनेमें कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए। किन्तु आप कह सकते हैं कि मैं चुनाव-उनावके फेरमें नहीं पड़ना चाहता; मैं तो अपने अस्तित्वके सांग, सुगठित और संवादी रूपको पाना चाहता हूँ। बात तो बहुत अच्छी है, किन्तु याद रखिए कि यह संकल्प भी एक चुनाव ही है, क्योंकि सुसंवादिता स्थापित होती है संघर्षके माध्यमसे ही। गेटेने कहा, "मरकर जियो"। उन्नीस शताब्दी पहले कहे गये ईसाके इन वचनोंमें भी यही प्रतिध्वनित होता है। ईसाने कहा: अस्तु, मैं तुमसे कहता हूँ जबतक गेहूँका दाना भूमिमें गिरकर मिट नहीं जाता, वह अकेला बना रहता है। किन्तु वह एक जब मिट जाता है तो अनेक बन जाता है।

महाशय गेब्रियल सीलेस भी लिखते हैं: "यह कहना कि हम आदमी बनना चाहते हैं, सरल है; किन्तु हम इसे कहते हुए भूल जाते हैं कि हरएक अधिकार आगे-पीछे कर्त्तव्य, कठोर कर्त्तव्यका रूप ले लेता है और फिर इसके पालनमें पूरा-पूरा सफल तो कोई भी नहीं हो पाता। हम स्वतन्त्र होना चाहते हैं; धनकोके स्वरमें स्वतन्त्र होकर रहनेकी बात करते हैं। यदि इस स्वतन्त्रताका अर्थ अपनी इन्द्रियोंकी गुलामी हो तो फिर वह कोई गर्व करनेकी बात नहीं हो सकती। सच्ची स्वतन्त्रता पानेके लिए हमें कमर कसकर सतत संघर्षके लिए तैयार हो जाना चाहिए। हम सामाजिक एकताके साथ-साथ अपने व्यक्तित्व और स्वतन्त्रताकी दुहाई देते हैं और गर्वपूर्वक कहते हैं कि आखिरकार हम भी ईश्वरके अमर पुत्र हैं। किन्तु जब हम अपने इस अमर 'आपे'को मुट्ठीमें बाँधना चाहते हैं तो वह हमसे छूट-छूट जाता है और तब पता चलता है कि हमारे कितने ही असंगत और परस्परविरोधी स्वरूप भी हैं। हमारे आपेको कितनी ही विरोधी इच्छाएँ प्रतिक्षण विकल करती रहती हैं। ये विरोधी इच्छाएँ ही हमारे व्यक्तित्वको बनाती हैं। व्यक्तित्व (यदि उसके तात्त्विक रूपको छोड़ दें तो) रागद्वेषसे ही प्रभावित होता है। उसकी स्वतन्त्रता कृत्रिम है और सच कहें तो वह गुलामी है। अलबत्ता यह गुलामी ऐसी है जिसे वह समझ नहीं पाता और उसके बन्धनमें फँस जाता है।

जहाँ संयममें शान्ति है वहाँ असंयममें अशान्ति-रूप महाशत्रुका निवास है। कामेच्छाएँ तो सदा ही कष्टदायी हो सकती हैं, किन्तु तरुणावस्थामें यह महाव्याधि हमारी बुद्धि और हमारे सन्तुलनको बिलकुल ही बिगाड़ दे सकती है। जो नवयुवक किसी स्त्रीसे, यह समझकर कि वह कोई क्षणिक सम्बन्ध करने जा रहा है, सम्बन्ध स्थापित करता है वह नहीं जानता कि सचमुच वह अपने नैतिक, मानसिक और शारीरिक अस्तित्वके साथ खेल रहा है। वह नहीं जानता कि आगे चलकर घर और घरके बाहर सारे जीवन-भर यह क्षणिक व्यवहार उसपर हावी हो जायेगा; वह नहीं जानता कि इसीकी स्मृति रात-दिन उसके मनमें घूमती रहेगी और उसे अपनी इन्द्रियोंके सामने किसी बुरी तरह घुटने टेकने पड़ेंगे। सभी जानते हैं कि कितने ही होनहार युवक जिनसे आगे बहुत-कुछ आशा की जाती थी एक बारकी चूकके कारण गिरते ही चले गये और उनका जीवन पूरी तरह चौपट हो गया।

कविकी इन प्रसिद्ध पंक्तियोंमें किसी दार्शनिकके विचार ही प्रतिध्वनित हो रहे हैं:

मनुष्यका जीवन एक गहरा पात्र है
यदि उसमें थोड़ी भी अशुचिता रह जाये
तो उसमें समाहित पवित्रसे-पवित्र जल भी
अशुचि हो जायेगा

इंग्लैंडके प्रसिद्ध शरीर-शास्त्री महाशय जॉन जी० एम० कैंड्रिक, जो ग्लासगो विश्वविद्यालयमें शरीर-शास्त्रके आचार्य हैं, भी तो यही कहते हैं कि कामेच्छाकी सन्तुष्टि केवल नैतिक दोष ही नहीं है, वह शरीरपर भी भयानक आघात करता है। यदि एक बार भी ऐसी इच्छाके आगे झुक गये तो वह तुमपर निरंकुश होकर अत्याचार करने लगेगी। एक बारका अपराधी मन हर बार उसके हुक्मके आगे झुक जायेगा और वह इच्छा हर बार सबलतर बनती चली जायेगी। जितनी बार व्यक्ति इस निरंकुश आज्ञाके आगे झुकेगा, अभ्यासकी शृंखला उसे उतना ही जकड़ती चली जायेगी।

कई लोग इस शृंखलाको तोड़नेकी शक्ति ही खो बैठते हैं और फिर परिणाम होता है उनका शारीरिक और मानसिक विनाश। वे कुटेवके वशमें होकर रह जाते हैं और यह कुटेव कुविचारके बजाय अविचारसे उद्भूत होती है। इसलिए सबसे अच्छी बात तो यही है कि मनुष्य संयमका पालन करे और अपने समूचे अस्तित्वको अनुशासित रखे।

इसके बाद श्री ब्यूरो डॉ० फ्रेंकका यह वचन उद्धृत करते हैं:

हम कामेच्छाकी हदतक यह दावा करते हैं कि वह पूरी तरहसे बुद्धि और विवेकके द्वारा परिचालित होती है। इस इच्छाको कोई आवश्यक क्रिया

नहीं मानना चाहिए, इसे केवल इच्छा ही कहना चाहिए। क्योंकि क्रिया तो कोई भी ऐसी नहीं है जिसके बिना जीना खत्म हो जाये। सच कहें तो यह कोई आवश्यकता ही नहीं है। आदमीने इसे केवल ऐसा मान लिया है। वे अपनी इच्छाओंको जिस रूपमें देखते हैं उसके कारण सम्भोगको नितान्त आवश्यक मानने लगते हैं। किन्तु हम इसे प्राकृत नियमोंका विवश और तटस्थ पालन कदापि नहीं मान सकते, क्योंकि वास्तवमें यह स्वेच्छाप्रेरित किसी पूर्व संकल्पकी परिणति ही है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २९-७-१९२६

२३६. लगनका पुरस्कार

डोडाइच पश्चिम खानदेशके एक राष्ट्रीय विद्यालयके प्रधानाध्यापक लिखते हैं[1]:

इस विवरणसे साफ पता चलता है कि लगन क्या कुछ कर सकती है। १५० लडकोंके साथ यह विद्यालय केवल इसलिए राष्ट्रीय नही कहा जा सकता कि यह सरकारके सरक्षणमें नही चल रहा है। किसी विद्यालयको, राष्ट्रीय कहलानेके लिए, काग्रेसके द्वारा दी हुई परिभाषाके अनुसार होना चाहिए। इसके अनुसार, अन्य बातोके साथ, उसमें कताई भी होनी चाहिए और बालकों तथा बालिकाओंको खादी जरूर पहननी चाहिए। मातृभाषाके अतिरिक्त पाठशालामें उन्हें हिन्दी रखनी चाहिए। परन्तु अनेक ऐसे विद्यालय, जो कि यद्यपि काग्रेसकी इन शर्तोंके अनुसार नही चलते हैं, भूलसे राष्ट्रीय कहे जाते हैं। इसलिए अपने विद्यालयमें खादी और कताईको दाखिल करनेके उपलक्षमें प्रधानाध्यापक महोदय हमारी बधाईके पात्र हैं। मैं आशा करता हूँ कि इस विद्यालयकी समिति प्रधानाध्यापक महोदयके इस प्रयत्नको बढ़ावा देगी। प्रधानाध्यापकको भी यह जान लेना चाहिए कि यदि वे कताईका काम सफल होते देखना चाहते हैं, तो उनके विद्यालयमें लड़कों द्वारा रुईकी धुनाईको दाखिल करना भी निहायत जरूरी है। कताईके पहलेकी सब क्रियाएँ जाने बिना कोई सच्चा कतैया नही कहा जा सकता।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २९-७-१९२६

१. पत्र यहाँ नहीं दिया गया है। पत्रमें प्रधानाध्यापकने लिखा था कि उन्होंने उन विद्यार्थियों और शिक्षकोंमें जिनकी कातनेकी ओरसे रुचि हट गई थी, किस प्रकार फिरसे तकली-कताईको प्रिय बनाया।

२३७. टिप्पणियाँ

"कुछ बंगाली महिलाओं" से

यदि आप लोगोंने मुझे अपने नाम और पते लिख भेजे होते तो मैं आपको तत्काल पूरा उत्तर दे देता। आप मुझसे 'यंग इंडिया' के पृष्ठोंमें एक अत्यन्त नाजुक मामलेकी चर्चा करनेको कहती हैं। मुझे खेद है कि मैं ऐसा नहीं कर सकता। यदि जैसा आप कहती हैं तथ्य वे ही हों तो इसमें सन्देह नहीं है कि कहीं कोई बहुत बड़ी बुनियादी खराबी है। यह स्पष्ट है कि आपने जो-कुछ लिखा है सुन-सुनाकर लिखा है। मुझे तथ्य भेजे जाने चाहिए थे और अपना पता भी, जिससे मैं आपको पत्र लिख सकता और आपसे अतिरिक्त जानकारी मँगवा सकता। अब भी आप लोग ऐसा कर सकती हैं।

डटकर कताई

एक सज्जन लिखते हैं कि पचोरा (महाराष्ट्र) में एक व्यापारीकी स्त्रीने नौ महीनोंमें ३४ पौंड सूत काता और सो भी घरका सब कामकाज करनेके बाद ५ घंटे रोज कातकर। कता हुआ सूत ७, ८ अंकका है। कपासकी धुनाई पतिने कर दी थी। उन लोगोंका कपडेका सालाना खर्च १५० रुपये था, लेकिन जबसे घरमें चरखा चलने लगा, तबसे यह केवल ५० रुपये रह गया है। इसमें जरूरतसे ज्यादा कपड़ोंसे पिंड छुड़ा लेनेका हाथ भी प्रत्यक्ष ही है।

कातनेका कारण

एक वकील मित्र, जिनको कि मैंने उनके सूतके एकसारपनपर बधाई दी थी — यद्यपि वे नये कतैये हैं — लिखते हैं :

> मैं आपको इस भ्रममें नहीं डालना चाहता हूँ कि मैंने देशभक्ति या परोपकारकी किसी भावनासे प्रेरित होकर चरखा चलाना शुरू किया है। सन् १९२५ में. . . के. . . को बराबर कातते हुए देखकर मैंने, जैसा कि हम वकील आमतौरपर कहा करते हैं, एक बिलकुल ही लौकिक लाभकी दृष्टिसे कातना शुरू किया था। मुझे दुःख है कि मैं उस उद्देश्यकी पूर्तिमें असफल रहा। और मेरी यह दृढ़ धारणा हो गई कि मैं चाहे जितने अर्सेतक क्यों न कातता रहूँ, मेरा वह उद्देश्य कभी पूरा नहीं हो सकता। लेकिन जिस दिनसे मैंने कातना शुरू किया उस दिनसे मैं उसे पसन्द करने लगा। मैंने देखा कि कातना तो चिन्तित चित्तके लिए शान्तिदायक बूटी ही है। मैंने इसलिए उसे जारी रखा तथा जारी रखूँगा भी। चूँकि मैं कलके पुर्जेकी तरह उद्देश्यहीन कताई पसन्द नहीं करता, इसलिए मैं अपने उत्पादनको बेहतर बनानेकी दिशामें आपसे मार्गदर्शन

चाहता हूँ। मैं यह भी लिख दूँ कि मैंने आपके चरखा सम्बन्धी उपदेशको हमेशा व्यवहार्य एवं गरीब निस्सहाय देशवासियोंको उनकी वर्तमान शोचनीय अवस्थासे उबारनेवाला सस्ता साधन माना है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २९-७-१९२६

२३८. पत्र : पैन-एशियाटिक सोसायटी, पीकिंगको

आश्रम
साबरमती
२९ जुलाई, १९२६

प्रिय मित्र,

विभिन्न राष्ट्रोंमें भ्रातृभावनाको बढ़ावा देनेके लिए जो भी मुझसे हो सकता है वह तो मैं करूँगा ही, लेकिन मैं किसी भी ऐसी संस्थाका सदस्य बननेके बारेमें सावधानी बरतता हूँ, जिसे मैं अच्छी तरहसे नहीं जानता। किसी भी एशियाई संघमें भौतिक बलकी दृष्टिसे एक सशक्त और अन्य कई अशक्त जातिया शामिल रहेंगी। हालांकि जापानियोंने जो प्रगति की है उसमें बहुत-सी बातें सराहनीय हैं, लेकिन आप मुझे यह कहनेके लिए क्षमा करेंगे कि मैं उनकी इस प्रगतिपर मुग्ध नहीं हूँ। मैं यह सिद्ध करनेमें लगा हुआ हूँ कि भौतिक बलके आधिक्यको आत्मिक बलके द्वारा — यदि ऐसा कहना युक्त हो — जीतना सम्भव है। इसलिए आप मुझे अपने आन्दोलनमें शामिल न होनेके लिए क्षमा करें।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

पैन-एशियाटिक सोसाइटी
७०, ईस्ट ४८८
पीकिंग

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० १०७८६) की फोटो-नकलसे।

२३९. पत्र : एच० कैलेनबैकको

आश्रम
साबरमती
२९ जुलाई, १९२६

यह सही बात है कि आप मुझे एकाध-बार ही पत्र लिखते हैं, और मेरा भी यही हाल है। मगर चूँकि मैं किसी-न-किसीसे बराबर यह सुनता रहता हूँ कि आप यहाँ आनेवाले हैं, इसलिए मैं लगभग हरएक डाक गाड़ीसे आपके सशरीर यहाँ उपस्थित होनेकी आशा लगाये हूँ। जो गरजते है वे बरसते नही है — मैं चाहता हूँ कि आप इस कहावतको गलत सिद्ध कर दें।

लेकिन मैं यह पत्र आपको इसलिए लिख रहा हूँ कि आप टिओ श्राइनरकी उस पुस्तककी दो प्रतियाँ मेरे लिये कहीसे हासिल कर लें जिसमें उन्होंने ऑलिव श्राइनरके बारेमें लिखा है। एक अंग्रेज मित्रने[1] इस खयालसे कि मैं तो इस कृतिके बारेमें सब-कुछ जानता ही होऊँगा, मुझसे पूछा है कि क्या मै इसके विषयमें जानता हूँ और क्या मै यह कृति उन्हें दिला सकता हूँ। मुझे यह कहते हुए बड़ी शर्म महसूस हुई कि मै इसके बारेमें कुछ नही जानता, लेकिन मैंने उन्हें इस विषयपर पूछताछ करनेका वचन दे दिया और स्वभावतः मुझे आपका स्मरण हो आया।

मैं अपने काममें लगा हूँ। इस समय मेरा सारा काम आश्रममें और आश्रमका ही है। प्रतिदिन तीन कक्षाओंको 'भगवद्गीता' और 'रामायण' पढ़ाता हूँ। इस कार्यमें मुझे बड़ा आनन्द आता है। चरखा चलानेका काम धार्मिक नियमितताके साथ कर रहा हूँ। इस सबसे जो समय बचता है, उसे दोनों अखबारोंके सम्पादन और पत्र-व्यवहारमें लगाता हूँ। अब हमने आश्रमके प्रबन्धके लिए एक परिषद् बना दी है। इसमें बहुत समय निकल जाता है।

हृदयसे आपका,

कैलेनबैक
डर्बन

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०७८९) की फोटो-नकलसे।

१. देखिए "पत्र: डब्ल्यू० एच० वाइजरको", २८-७-१९२६।

२४०. पत्र : धनगोपाल मुकर्जीको

आश्रम
साबरमती
२९ जुलाई, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला।[1] आप जान गये होंगे कि मैं आखिरकार हेल्सिंगफोर्स जा नहीं सका।

'आत्मकथा' का प्रथम भाग पुस्तक रूपमें तुरन्त ही नवजीवन प्रेससे प्रकाशित होगा। मैं कह नहीं सकता कि इस 'आत्मकथा' की कोई बहुत बड़ी माँग होगी या नहीं; और मैंने यह तो सोचा ही नहीं कि कोई पाश्चात्य प्रकाशक इस पुस्तकको प्रकाशित करना चाहेगा। कुछेक ऐसे प्रकाशकोंने, जिन्हें मैं नहीं जानता, मुझसे पुस्तकका अधिकार पानेकी बात चलाई थी। लेकिन मैंने उन सबसे कहा कि मैं अभी तैयार नहीं हूँ। अमेरिकामें ग्रन्थस्वत्वके बारेमें रेवरेण्ड होम्सके साथ पत्र-व्यवहार चल रहा है; लेकिन अभी कुछ तय नहीं हुआ है।

मेरे विचारसे प्रार्थना और मनन अत्यन्त महत्त्वकी चीजें हैं।[2] मैं इन दो चीजोंको अलग-अलग नहीं मानता। मैं भोजनके बिना निर्वाह कर सकता हूँ परन्तु प्रार्थनाके बिना नहीं। सम्भवतः प्रार्थना सम्बन्धी हमारी धारणाएँ भिन्न हैं। हम आश्रममें जो प्रार्थना करते हैं उसमें ईश भजन आदि होता है। इसमें ईसाई प्रार्थनाकी तरह ऐसी कोई बात नहीं होती जिसमें लोग निश्चित बातोंकी माँग करते हों। प्रार्थना तो नित्य शुद्धिके लिए की जाती है। शरीर शुद्धिके लिए नित्य स्नानका जो महत्त्व है, हृदय और मस्तिष्कके लिए वही महत्त्व प्रार्थनाका है।

हृदयसे आपका,

श्री धनगोपाल मुकर्जी
नेशनल सिटी बैंक ऑफ एन० वाई०
४१, बुलेवर्ड होसमैन
पेरिस, फ्रांस

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०७९०) की फोटो-नकलसे।

१. इस पत्रमें गांधीजीकी सम्भावित यूरोप-यात्रा और **यंग इंडिया** में धारावाहिक रूपसे आत्मकथाके प्रकाशनपर हर्ष प्रकट किया गया था और आशा की थी कि वह शीघ्र ही पुस्तकके रूपमें भी प्रकाशित कर दी जायेगी और विदेशोंमें भी अच्छे प्रकाशकोंको उसके अधिकार दिये जायेंगे। उन्होंने इंग्लैंड और अमेरिकाके कुछ प्रकाशकोंके नाम भी सुझाये थे।

२. मुकर्जीने अपने पत्रमें दैनन्दिन जीवनमें प्रार्थनाके स्थानके विषयमें प्रश्न किया था (एस० एन० १०७९०)।

२४१. पत्र : एच० एस० वॉल्डो पोलकको

आश्रम
साबरमती
२९ जुलाई, १९२६

प्रिय वॉल्डो,[१]

तुम्हारा पत्र पाकर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई। तुम इतने बड़े और समझदार हो गये हो कि शायद मेरा तुम्हें यह याद दिलाना कि जब तुम बच्चे थे तब तुम मेरे साथ सोया करते थे, उचित न लगे।

तुम्हारी गति-विधियाँ,[२] निस्सन्देह, शाही हैं। ब्रिटिश फासिस्टोंका तुमने जो विवरण दिया है वह दिलचस्प है। चूँकि तुम अपना नाम इटलीके फासिस्टोंके साथ नही जुड़ने देना चाहते इसलिए अगर तुम अपनी गतिविधियोंके लिए कोई अन्य कार्यक्षेत्र चुनते तो कितना अच्छा होता।

वर्तमान मतदाताके बारेमें तुम्हारा जो अनुमान है वह बिलकुल सही है।[३] लेकिन जिस शिक्षित मतदाताको तुम वर्तमान मतदाताके स्थानपर देखना चाहते हो, उसके बारेमे मेरा अनुभव कोई बहुत आशाप्रद नही है। बड़े-बड़े बैरिस्टरतक अपनी रुचिके समाचारपत्रोंसे प्रेरणा ग्रहण करके अपना राजनीतिक दृष्टिकोण बनाते हैं। इस बुराईका मूल कारण जरूरी नहीं कि हमारी बुद्धिकी सीमाओमे निहित हो बल्कि यह है कि हमारे हृदय विकृत हो गये है। लेकिन मुझे तुम्हारे साथ बहस तो करनी नहीं है। मैं तुम्हें अपनी शुभ कामनाएँ भेजता हूँ। मेरी कामना है कि तुम दीर्घ, सुखी तथा उपयोगी जीवन व्यतीत करो।

तुम्हारा,
मो० क० गांधी

श्री एच० एस० वॉल्डो पोलक
३३, मोव्रे रोड
ब्रॉन्डसबरी
लन्दन, एन० डब्ल्यू०

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० १०७९१) की फोटो-नकलसे।

१. हेनरी पोलकके पुत्र।

२. वॉल्डो 'लन्दन स्कूल ऑफ इकानॉमिक्स' और 'मिडल टेम्पल' का विद्यार्थी था। वह 'फेडरेशन ऑफ ब्रिटिश यूथ' में सक्रिय रूपसे भाग लेनेके साथ-साथ ब्रिटेनके राष्ट्रवादी फासिस्टोंसे अलग 'ब्रिटिश फासिस्ट' नामकी संस्थाका सदस्य भी था। इस संस्थाका उद्देश्य उसने साम्राज्य और देशमें एकता स्थापित करना बताया था।

३. वॉल्डोने लिखा था कि साधारण मतदाता अध्ययनमें अरुचि और समयके अभावके कारण अखबार पढ़कर अपना मत स्थिर कर लेता है।

२४२. पत्र : ई० सी० कार्टरको

आश्रम
सावरमती
२९ जुलाई, १९२६

प्रिय मित्र,

२३ जूनका लिखा आपका पत्र मिला। मैं जानता हूँ कि मेरे हेल्सिंगफोर्स न जानेसे कितने ही मित्रोंको वड़ी निराशा हुई है। मैं भी कोई कम निराश नहीं हुआ। परन्तु जाने क्यों मेरे अन्तःकरणकी आवाजने यही कहा कि मुझे नहीं जाना चाहिए।

कुमारी नेली ली हॉल्टके[1] भारत आनेपर उनसे मिलकर मुझे वड़ी प्रसन्नता होगी। यदि वे इस वर्षमें आईं तव तो कोई दिक्कतकी वात नहीं है; क्योंकि २० दिसम्वरतक सावरमतीसे वाहर जानेका मेरा इरादा नहीं है। और यदि उन्हें आश्रमका सरल जीवन कष्टकर प्रतीत न हुआ तो वे निस्सन्देह आश्रममें ही ठहरेंगी। यदि वे चाहें तो लोगोंको अपने सभी पत्रोंके लिए आश्रमका पता दे सकती हैं।

हृदयसे आपका,

श्री ई० सी० कार्टर
१२९, ईस्ट ५२ स्ट्रीट,
न्यूयॉर्क (यू० एस० ए०)

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०७९२) की फोटो-नकलसे।

२४३. पत्र : मॉड चीजमैनको

आश्रम
सावरमती
२९ जुलाई, १९२६

प्रिय मॉड,

मेरे सामने तुम्हारा दूसरा पत्र है।[2] सचमुच टाईपराइटर मुझे भी विलकुल पसन्द नहीं है। मैं अपना सारा पत्र-व्यवहार अपने हाथसे ही करना चाहता हूँ। लेकिन मैंने इस मामलेमें अपेक्षाकृत एक कम खराव तरीकेका सहारा लिया है। जितनी शक्ति वचाकर रखी जा सकती है, उतनी शक्ति मैं वचानेका प्रयत्न कर रहा हूँ। उपायके रूपमें मैं पत्रोंको वोलकर लिखवाता हूँ, उन पत्रोंको भी, जिन्हें प्रेम पत्र

१. स्टीफेन्स कॉलेज, कोलम्बियाकी।

२. श्रीमती मॉडने अपने पत्रमें गांधीजीसे अपनी लिखावटमें पत्रका उत्तर पानेकी आशा की थी। लेकिन लिखा था, 'विलकुल पत्र न मिले इससे तो टाईप किया हुआ पत्र ही वेहतर है।' (एस० एन० १०७६९)

कहा जा सकता है। लोग साधारणतः बोलकर लिखवाये गये पत्रोंके द्वारा मित्रोंको फटकारते नहीं हैं। लेकिन मैं यह भी करता हूँ। तुम्हारे कुछ ज्यादा फटकारे जानेका खतरा नही है; इसलिए तुम्हें घबरानेकी कोई जरूरत नहीं है।

मैं कु० नोरा कर्नसे[1] अवश्य मिला था। हमारी बड़ी देरतक खूब बातचीत हुई। मुझे बिलकुल पक्की याद तो नहीं है; परन्तु मेरा खयाल है उसने मुझसे तुम्हारी कोई बात नही की।

आशा है अबतक तुमने काफी ताकत पा ली होगी और तुम्हारा स्वास्थ्य पहले जैसा हो गया होगा।

तुम दोनोंको स्नेह।

तुम्हारा,

श्रीमती मॉड चीजमैन

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०७९३) की फोटो-नकलसे।

२४४. पत्र: एस० पी० मेननको

आश्रम
साबरमती
२९ जुलाई, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आप मुझसे विस्तारपूर्वक लिखनेके लिए नहीं कहेंगे। मेरे सामने जो काम है उसके बाद मुझे बहुत कम समय मिल पाता है। परम माननीय श्री नारायण गुरुस्वामीके कार्यकी प्रशंसामें मैं जो-कुछ कह सकता हूँ वह सिर्फ इतना ही कि वे अपने इस कार्यमें सफल हों। जो व्यक्ति अस्पृश्यताके इस अभिशप्त वृक्षके मूलपर कुठाराघात करता है वह हिन्दुत्वकी ही नहीं मानवताकी भी भारी सेवा करता है। मैं यह भी जानता हूँ कि इस कार्यको स्वयं थिया लोगोंसे ज्यादा अच्छी तरह और कोई नहीं कर सकता। क्योंकि आखिरकार प्रत्येक व्यक्तिकी मुक्ति स्वयं उसके ऊपर निर्भर करती है; और जो बात व्यक्तिपर लागू होती है वही बात समुदायोंपर भी लागू होती है।

हृदयसे आपका,

श्री एस० पी० मेनन
सम्पादक
'स्नेहितन'
डा० वडकनचेरि
(कोचीन राज्य)

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११९३१) की फोटो-नकलसे।

१. मॉडकी सखी।

२४५. पत्र : प्रभाशंकर अभयचन्दको

आश्रम
साबरमती
गुरुवार, आषाढ़ बदी ५, २९ जुलाई, १९२६

भाई प्रभाशंकर

तुम्हारा पत्र मिला। तुमने दो बार पिताके अपराधको सहन किया; किन्तु यह सहन करना नहीं है। सहन करनेका मतलब अपराधको दरगुजर करना नही होता। यदि तुमने पहले ही अपराधको सहन न किया होता तो उसका जो दुष्परिणाम निकला वह न निकलता। सहन न करनेके दो मार्ग हैं, एक हिंसक और दूसरा अहिंसक। तुमने तीसरी बारके अपराधपर जो असहयोगका मार्ग अपनाया है, मुझे वही तो वास्तविक लगता है। लोकनिन्दासे डरनेका कोई कारण नहीं है। लेकिन पिताको त्यागनेका कारण छिपाना कदाचित् उचित न होगा; उनके अपराधकी डोडी पीटनेकी आवश्यकता नहीं है, परन्तु लोकलज्जाके कारण उसे छिपाना भी ठीक नही। धार्मिक व्यवहारमें इस तरहकी लज्जाको कोई स्थान नही है। तुमने नाम भेजा, यह ठीक ही किया; नहीं तो मैं तुम्हें उत्तर न दे पाता। मैंने तुम्हारा पत्र फाड़ दिया है।

श्री प्रभाशंकर अभयचन्द
क्लार्क, गोंडल रेलवे
रनिंग रोड
जेतलसर जंकशन

गुजराती प्रति (एस० एन० १२२२५) की माइक्रोफिल्मसे।

२४६. पत्र : पूँजाभाई शाहको

आश्रम
साबरमती
बृहस्पतिवार, २९ जुलाई, १९२६

भाई पूँजाभाई,

मैं इसके साथ दो पत्र भेजता हूँ। मुझे इस सम्बन्धमें कुछ सूझ नहीं पड़ता। तुम्हारी तबीयत अच्छी हो तो फुरसत मिलनेपर आ जाना। न आ सकोगे और मुझे लिखोगे तो मैं छगनलालको भेज दूंगा; जरूरी हुआ तो स्वयं आ जाऊँगा।

गुजराती प्रति (एस० एन० १२२२६) की माइक्रोफिल्मसे।

२४७. पत्र : शम्भुशंकरको

आश्रम
साबरमती
बृहस्पतिवार, आषाढ़ बदी ५, २९ जुलाई, १९२६

भाई शम्भुशंकर,

तुम्हें इसके साथ १५० रुपयेकी हुंडी भेज रहा हूँ। इस तरह वापसी डाकसे उत्तर मँगवानेका रिवाज न रखो। जो मनुष्य सट्टा करता हो उसपर किसी भी समय पैसेका संकट आ सकता है। लेकिन जो मनुष्य नियमित धन्धा करता हो उसे संकटका ज्ञान पहलेसे ही हो जाता है। भाई जगजीवनदाससे मिले रुपयोंके ब्याजका क्या हुआ? हुंडी भावनगरकी मिल सकी तो भावनगरकी भेजूँगा, नहीं तो बम्बईकी ही भेजूँगा। नकद भेजनेमें बड़ी झंझट है। खादी बेचनेके लिए तुम्हें विशेष प्रयत्न करना पड़ेगा; उसके लिए विशेष योग्यता भी होनी चाहिए। जिस बुनकरने मिलके सूतका उपयोग किया है, उसे मजूरी बिलकुल नहीं देनी चाहिए। हमारे लिए तो वह थान व्यर्थ ही गया समझो। ऐसे मामलोंमें हमें अपना सूत वापस मिल जाये, तो पर्याप्त है। यदि तुम बुनकरको जानते हो तो तुम्हें और बुनकरको, अथवा अकेले तुम्हींको, बिना क्रोध किये उपवास करना चाहिए, यही उचित है। न करो तो हानि कुछ नहीं है। उपवास सभी रोगोंकी दवा नहीं है। आत्मशुद्धिके अनेक मार्ग हैं। उपवास उनमें से एक है। बहुत-कुछ शुद्धि तो विचारोंपर अधिकार प्राप्त करनेपर ही हो सकती है और अन्ततः तो वही शुद्धि वास्तविक है।

गुजराती प्रति (एस० एन० १२२२७) की माइक्रोफिल्मसे।

२४८. पत्र : जी० एन० कानिटकरको

आश्रम
साबरमती
३० जुलाई, १९२६

प्रिय कानिटकर,

आपका पत्र मिला। मैंने 'स्वावलम्बन' का छठा और सातवाँ अंक नहीं देखा। शायद यह पत्रिका नवजीवन कार्यालयके पतेपर भेजी जा रही है। मेरी समझमें पत्र-पत्रिकाएँ यहीं भेजना ज्यादा ठीक होगा। सीधे नवजीवन कार्यालय पहुँचनेवाली चीजें मुझे तभी मिलती हैं जब मैं विशेष रूपसे उन्हें मँगाऊँ।

मैंने 'स्वावलम्बन' के पतेके लिए आवरण पृष्ठ और अन्तिम पृष्ठ देखा। पता न दिखनेपर मैंने सोचा कि वह कहीं दिया ही नहीं गया है। अब उसे विज्ञापनके

पृष्ठोमे देखा; वहाँ होगा इसका किसीको खयालतक नही हो सकता। शायद अब हालके अंकोमें विज्ञापन विलकुल नही है। लेकिन मेरे पास वे अंक नही हैं। मेरे पास तो वही है जो आपने मुझे पूनामे दिया था।

आपको भेजे अपने सन्देशमे[1] मैंने जो कहा है सो सोच-समझकर कहा है; इसलिए आपकी तरह, मैं भी यह आशा करता हूँ कि सारी कठिनाइयोके वावजूद आप खद्दरको महाराष्ट्रमें ग्राह्य वनानेके अपने कार्यमें सफल होगे।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी पत्र (सी० डब्ल्यू० ९५७) की फोटो-नकलसे।
सौजन्य : जी० एन० कानिटकर

२४९. पत्र : मोतीलाल रायको

आश्रम
सावरमती
३० जुलाई, १९२६

प्रिय मोतीवावू,

गजोमे खादीके उत्पादन और उसकी विक्रीके आँकड़ोके साथ आपका पत्र मिला। मैंने 'यग इंडिया' के मारफत कातनेवालो आदिके विपयमें जानकारी माँगी है। आप ऐसी सारी जानकारी मुझे भिजवा दीजिए। जिन विपयोंके बारेमें जानकारी चाहिए वे आपको. . . के[2] 'यग इंडिया' में मिल जायेंगे।

यह भी सूचित कीजिए कि क्या सघके सभी कार्यकर्त्ता नियमपूर्वक खादी ही पहनते हैं और यज्ञके रूपमे प्रतिदिन आधा घंटा सूत कातते हैं। अगर ऐसा हो तो क्या आप उस उत्पादनका कोई हिसाव रखते हैं? क्या आप समय-समयपर सूतकी मजवूतीकी जाँच करते हैं? क्या स्वेच्छया कातनेवालोके चरखे ठीक हालतमें रखे जाते हैं? क्या आप अपनी जरूरतके चरखे खुद ही तैयार करते हैं? क्या सघके सदस्य अखिल भारतीय चरखा संघके भी सदस्य हैं?

हृदयसे आपका,

वावू मोतीलाल राय
प्रवर्तक संघ
चन्द्रनगर

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११२१३) की माइक्रोफिल्मसे।

१. देखिए "सन्देश : महाराष्ट्की जनताके नाम", २६-७-१९२६।
२. स्पष्ट ही यह स्थान सम्बधित अंककी तिथि, १७-६-१९२४ भरनेके लिए छोड़ा गया था।

२५०. पत्र : आ० टे० गिडवानीको

आश्रम
साबरमती
३० जुलाई, १९२६

प्रिय गिडवानी,

आपका पत्र मिला। नमूनेके तौरपर एक तकली भेजी जा चुकी है। आशा है, कारखाना हमारे लिए नमूनेके ही मुताबिक तकलियाँ तैयार करेगा।

केवल अंगूरोकी ही नहीं बल्कि दूसरी चीजोंकी भी [पैदावारके लिए] खाद-सम्बन्धी साहित्य मुझे अबतक कई जगहोंसे मिल चुका है; इसलिए अब आपके मित्र मुझे जो-कुछ भेजेंगे वह इसमें वृद्धि करेगा।[1]

कताई और बुनाई सिखानेके लिए मैं आपको संयुक्त प्रान्तसे आया हुआ एक बहुत अच्छा हिन्दीभाषी तरुण कार्यकर्त्ता भेज सकता हूँ।[2] वह है तो लगभग अनपढ़ ही, लेकिन बड़ा उद्यमी है। वह हिन्दी और अच्छी सीखना चाहता है। गणित सीखनेकी भी उसकी इच्छा है। अगर उसे वहाँ हररोज दो घंटे किसी कक्षामें बैठनेको मिल सकें तो वह इतनेसे ही सन्तुष्ट हो जायेगा। आपको उसे खाने, रहने और जाने-आनेका खर्च देना पड़ेगा। इसके सिवा और कुछ नही। अगर आप समझते हों कि यह ठीक होगा तो मैं उसे तुरन्त भेज सकता हूँ। वह धुनाई, कताई, बुनाई सब जानता है और 'डिमॉन्स्ट्रेटर' के रूपमें जहाँ-तहाँ जाता ही रहता है।

गंगाबहनसे लिखने और अपनी धमकीपर अमल करनेको कहें। जब वे इतिहास-भूगोलकी पढ़ाई पूरी कर चुकें तब वे अपनी पढ़ाईको पूर्णता प्रदान करनेके खयालसे कताई, धुनाई आदिमें सिद्धहस्तता प्राप्त करनेके लिए यहाँ आ सकती हैं। अगर वे करोड़ों लोगोंके दुःख-दर्दकी साथी बनना चाहती है तो इन शिल्पोको सीखकर ही वे ग्रामोद्धारका काम शुरू कर सकती हैं।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११२६९) की माइक्रोफिल्मसे।

१. गिडवानीने अपने एक मित्रको, गांधीजीको अपने बगीचेके अंगूरोंका नमूना भेजने और उसकी खादके विषयमें जानकारी देनेके लिये लिखा था।

२. गिडवानीने एक शिक्षक भेजनेके लिये लिखा था।

२५१. पत्र : सतीशचन्द्र मुकर्जीको

आश्रम
साबरमती
३० जुलाई, १९२६

प्रिय सतीशबाबू,

आपका पत्र पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई। यह जानकर और भी खुशी हुई कि आप पहलेसे अच्छे हैं। आप कृपया कृष्णदासको तबतक अपने साथ रखें, जबतक आपका स्वास्थ्य इतना न सुधर जाये कि आपको किसी प्रकारकी मददकी जरूरत न रहे।

मेरे पास डा० मेरी स्टोप्स[1] द्वारा लिखी एक पुस्तक है। आपने जो लेख मुझे भेजा है वह उनकी पुस्तककी अच्छी खासी टीका है। सचमुच पश्चिममें विवाह अपनी पवित्रताको खो बैठा है और यह अभागा देश भी यौन-सम्बन्धोंकी उच्छृंखलताका शिकार होता जा रहा है। आपने जिन पुस्तकोंकी चर्चा की है, मैं श्री गणेशनसे उन्हें प्राप्त करनेकी कोशिश करूँगा।

गोहाटीमें जो कांग्रेस अधिवेशन होनेवाला है, मैं सम्भवतः उसमें जाऊँगा। मैंने एक वर्षतक यात्रा न करनेका निश्चय कर रखा है; जब यह अवधि समाप्त हो जायेगी तब मेरी गतिविधियाँ क्या होंगी, इसके बारेमें अभी निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत सतीशचन्द्र मुकर्जी
मार्फत श्री एस० सी० गुहा
दरभंगा

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९६७७) की माइक्रोफिल्मसे।

२५२. पत्र : एस० एच० थत्तेको

आश्रम
साबरमती
३० जुलाई, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पहला पत्र पहुँच तो यथासमय गया था, परन्तु वह मुझे सामान्य नियमानुसार दिया गया पिछले सप्ताह ही। आप देखेंगे कि आपने मुझे जो जानकारी दी थी, उसका मैंने 'यंग इंडिया' में पूरा-पूरा उपयोग किया है।[2] आपकी देखरेखमें

१. आइडियल मैरिज पुस्तककी लेखिका।
२. देखिए "लगनका पुरस्कार", २९-७-१९२६।

चलनेवाले राष्ट्रीय विद्यालयके संचालनके बारेमें मुझे और कुछ लिखनेकी जरूरत नहीं है। यदि आप अपना कार्य व्यवस्थित ढंगसे करते रहें, तो इसका असर होकर रहेगा।

मैं आपके आहारके बारेमें कोई सुझाव नहीं दे सकता। इस सम्बन्धमें आपको सोच विचार कर जैसा लगे खुद ही तय करना होगा। इस तरह आप स्वयं ही अपनी ठीक-ठीक जरूरत समझ जायेंगे। आप खानेकी मात्रा कम कर सकते हैं, भोजनकी विविधतापर प्रतिबन्ध लगा सकते हैं, उसमें रद्दोबदल कर सकते हैं। यह सब तबतक किया जा सकता है जबतक यह आपके शरीरको माफिक आता रहे और उससे आपके स्वास्थ्यको नुकसान न पहुँचे। मैंने अपनेपर अथवा अन्य लोगोंपर दूध न लेनेके जो प्रयोग किये हैं उनमें मुझे उल्लेखनीय सफलता नहीं मिली। इसलिए मैं आपको सलाह देता हूँ कि यदि आप दूध तथा उससे बननेवाली चीजोंके बिना आहार सम्बन्धी प्रयोग करें तो सावधानीसे काम लें। आपकी आँतोंकी हालत कैसी है और सामान्य रूपसे आपका शरीर कैसा है, इसे देख-समझकर आप जान जायेंगे कि आपके स्वास्थ्यपर दूध न लेनेका क्या प्रभाव पड़ा है. . .।[1] आप जो आहार ले रहे हैं, वह पर्याप्त है और उसमें आवश्यक पौष्टिक तत्व मौजूद हैं।

हृदयसे आपका,

श्री एस० एच० थत्ते
प्रधानाध्यापक
राष्ट्रीय विद्यालय
डोंडाइच
टी० वी० रेलवे

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९६७८) की फोटो-नकलसे।

२५३. पत्र : जमनालाल बजाजको

आषाढ़ बदी ६ [३० जुलाई, १९२६][2]

चि० जमनालाल,

तुम्हारा देवदासके नामका पत्र पढ़ा। जो घटा घिरी है, उसकी मुझे आशा तो नहीं थी। पर घिरने दो। इससे तुम्हारे धर्मकी परीक्षा होगी। जब तुम्हारे पास आरोप-पत्र आ जाये तो तुम मुझे भेज देना। मैं जवाब तैयार कर दूंगा। उसमें जो परिवर्तन करना चाहो वह कर लेना। तात्पर्य यह है कि हमें पूर्ण विनयका पालन करना है। जातिको अधिकार है कि जो मनुष्य उसके नियमका उल्लंघन करे वह उसका बहिष्कार करे। तुमने जो-कुछ किया है, उसमें न तो शरमानेकी कोई बात है और

१. साधन सूत्रमें यहाँ स्थान रिक्त है।
२. जाति-बहिष्कारके उल्लेखसे लगता है कि यह पत्र १९२६ में लिखा गया होगा।

न पछतानेकी। जातिमें तुम्हारा प्रभाव कम हो जायेगा तो तुम्हारी रुपया लानेकी शक्ति अवश्य कम हो जायेगी। परन्तु तुम्हे उसकी कोई चिन्ता नहीं। तुम्हें भीख भी माँगनी पड़े तो भी चिन्ता नही। धर्म रहे और भिक्षुक बनना पड़े तो उसका स्वागत करना चाहिए। अन्तमे जब जाति तुम्हारे धर्म और विनयको पहचान लेगी, तब वह स्वत. नम्र बन जायेगी। जातियोमे सुधार तो किये ही जाने चाहिए और वे इस प्रकार आसानीसे किये जा सकेंगे।

अन्नाको छापाखाना खरीदनेके लिए अभी ८००० रुपये और भेजनेकी जरूरत है। वे यहाँ आये थे। उनके लिए छापाखाना खरीदने लायक व्यवस्था कर देनी चाहिए। यदि घनश्यामदासने ५,००० रुपये वापस न भेजे हों तो उन्हें याद दिला देना। ये रुपये आ जाये तो इनमें ३,००० रुपये अपने पाससे मिलाकर भेज देना; और अगले महीनेमें काट लेना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (जी० एन० २८७१) की फोटो-नकलसे।

२५४. पत्र : नानाभाई भट्टको

आश्रम
साबरमती
शुक्रवार, आषाढ़ वदी ६, ३० जुलाई, १९२६

भाई नानाभाई,

जानकारीके लिए भाई मोहनलाल पण्ड्या द्वारा प्राप्त पत्र आपको भेजता हूँ। इसे मेरे पास वापस भेजना जरूरी नहीं है। यदि इसमे दिये हुए तथ्य ठीक हों और हमसे सहायताकी प्रार्थना की गई हो तो पहले हमें हर बातका स्पष्टीकरण करा लेना चाहिए।

गुजराती प्रति (एस० एन० १२२२८) की फोटो-नकलसे।

२५५. पत्र : देवचन्द पारेखको

आश्रम
साबरमती
शुक्रवार, आषाढ़ बदी ६, ३० जुलाई, १९२६

भाईश्री ५ देवचन्दभाई,

मैं आपका अपराधी हूँ। "वणिक बन्धुओंके नाम ज्ञापन" का मसविदा आपने मुझे कुछ महीने पहले भेजा था। मैंने उसे पढ़ जानेकी बात स्वीकार की थी। लेकिन एकके बाद एक काम बीचमें बाधक होते गये और मैं आपका वह मसविदा देख नहीं सका। आज अपने कागजोंमें मुझे यह मसविदा मिला। मैंने इसे पढ़ लिया है। मुझे इसमें परिवर्तन करने योग्य कोई बात नहीं दिखाई देती। मैं इस आन्दोलनसे पूरी तरह सहमत हूँ। मैं आपको यह सलाह तो पहले ही दे चुका हूँ कि आप सभी उपजातियोंके मुख्य लोगोंसे मिलें और उनके हस्ताक्षर प्राप्त करनेकी कोशिश करें। इसमें हम असफल हो जायें और उपजातियोंके मुट्ठी-भर लोग ही सहमत हों तो भी यह कार्य करने योग्य है, इसमें मुझे तनिक भी सन्देह नहीं। जब आप इस ज्ञापनपर थोड़े बहुत लोगोंके हस्ताक्षर करा लें, तब मुझे सूचना दें। मैं प्राप्त सूचनाके आधारपर 'नवजीवन' में टिप्पणी लिखूँगा। आपके मसविदेको देरसे वापस भेजनेका जो अपराध मैंने किया है, आप उसका अनुकरण तो अवश्य ही नहीं करेंगे, क्योंकि आपके पास तो मेरी तरह ढील करनेका कोई बहाना भी नहीं है।

बापू

श्री देवचन्द उत्तमचन्द पारेख
जेतपुर
काठियावाड़

गुजराती पत्र (एस० एन० १२२२९) की फोटो-नकलसे।

२५६. पत्र : सज्जादीन मिर्जाको

आश्रम
साबरमती
३१ जुलाई, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र और आपके द्वारा लिखी 'बालबोध' पुस्तककी प्रति मिली। धन्यवाद। मैंने आपकी पुस्तक काफी दिलचस्पीके साथ पढ़ी। बाल-साहित्यके सम्बन्धमें मेरे कुछ निश्चित आग्रह हैं। मेरे विचारसे, आपकी 'बालबोध' पुस्तकमें, सिवाय इसके कि उसका कागज अच्छा है और वह मँहगी है, विशेष कुछ नहीं। भारतमें लिखी जितनी भी बालबोध पुस्तकें हैं उनमें से अधिकांश मैंने देखी हैं। वे सबकी-सब कमोबेश अच्छी हैं और आपके विचारोंकी कसौटीपर कुछ हदतक खरी भी उतरती हैं। पर वे इस मायनेमें अच्छी हैं कि वे इतनी मँहगी नहीं हैं। यह याद रखना चाहिए कि हमारा देश दुनियाका लगभग सबसे गरीब देश है। इसलिए चार-चार आनेकी बालबोध पुस्तकें तैयार करना ठीक नहीं है। मेरा अपना विचार तो यह है कि बालबोध पुस्तक जितनी छोटी हो उतनी ही बेहतर।

छोटे बच्चोंको पुस्तकोंकी सहायताकी इतनी जरूरत नहीं होती जितनी कि अच्छे अध्यापकोंकी होती है। लेकिन चूँकि हमारे पास बहुत ज्यादा प्रशिक्षित अध्यापक नहीं हैं, इसलिए बालबोधकी रचना इस तरह की जानी चाहिए कि उससे बच्चोंकी अपेक्षा अध्यापकोंको ही ज्यादा मदद मिले। इस तरह बालबोध पोथियोंकी रचनाके लिए विचारोंमें क्रान्ति लाना आवश्यक है और तब भी इस प्रकारकी बालपोथियोंकी रचना अनुभवी अध्यापकके हाथों ही हो सकती है। इसलिए वास्तवमें मेरी यह सलाह है कि आप बाल-साहित्यके इस महत्त्वपूर्ण प्रश्नका फिरसे अध्ययन करें और अगर आपमें प्रतिभा हो तो आप एक ऐसी पुस्तक लिखें जिसे हमारे देशके समान विशाल और गरीब देशके बच्चोंको पढानेके तरीकोंके सम्बन्धमें सब लोग एक मौलिक देनके रूपमें स्वीकार करें। इस सम्बन्धमें यूरोपीय नमूनेपर लिखी गई मँहगी पुस्तकें ज्यादा कामकी नहीं हो सकतीं।

हृदयसे आपका,

श्री सज्जादीन मिर्जा, एम० ए० (कैन्टब)
डिविजनल इन्स्पेक्टर ऑफ स्कूल्स
गुलबर्गा (दक्षिण)

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०९७३) की फोटो-नकलसे।

२५७. पत्र : बहरामजी खम्भाताको

आश्रम
साबरमती
शनिवार, आषाढ़ बदी ७ [३१ जुलाई, १९२६][1]

भाईश्री ५ बहरामजी,

आपका पत्र मिला। आपके स्वास्थ्यका समाचार पढ़कर मुझे बहुत खुशी हुई है। बम्बई पहुँचनेके बाद मुझे फिर पत्र लिखें। दोनोंको–

बापूके आशीर्वाद

श्रीयुत बहरामजी खम्भाता
८, नेपियर रोड
कैम्प
पूना

गुजराती पत्र (जी० एन० ४३६५) की फोटो-नकलसे तथा सी डब्ल्यू० ८६६५ से।
सौजन्य : तेहमीना खम्भाता

२५८. पत्र : फूलचन्द शाहको

आश्रम
साबरमती
शनिवार, आषाढ बदी ७, ३१ जुलाई, १९२६

भाईश्री फूलचन्द,

मैं इसके साथ मूलचन्दभाईका पत्र नत्थी कर रहा हूँ। आपसे मुझे मालूम हुआ है कि अन्त्यजोंमें सेवा-कार्य करनेके लिए अभी हमारे पास रुपया है। यदि रुपया है तो साथके पत्रमें लिखी रकम चुका दें।

श्री फूलचन्द कस्तूरचन्द शाह
राष्ट्रीय शाला
बढवान

गुजराती प्रति (एस० एन० १२२३०) की माइक्रोफिल्मसे।

१. डाककी मुहरसे।

२५९. पत्र : गोरधनभाई मो० पटेलको

आश्रम
३१ जुलाई, १९२६

भाईश्री ५ गोरधनभाई,

आपका पत्र मिला। प्रसंग आनेपर मैं पाटीदारोंके बारेमें लिखता ही हूँ। मैं 'रामायण' और 'भागवत'को ऐतिहासिक ग्रन्थ नही मानता। मुझे आत्मदर्शन नही हुआ। यदि लोगोंपर मेरा प्रभाव कम हो गया है तो मैं उसका कारण नही जानता। यदि मुझमें अहंभाव न बच रहे तो मुझे आज ही आत्मदर्शन हो जाये। मैं समाधि नही लगा सकता। मुझे तो कल क्या होगा, यह भी मालूम नही; फिर १९३० की बात तो बता ही कैसे सकता हूँ?

वन्देमातरम्

गोरधनभाई मोतीभाई
जोगीदास विट्ठलकी पोल
वड़ौदा

गुजराती प्रति (एस० एन० १९९३८) की माइक्रोफिल्मसे।

२६०. प्रतिज्ञाका रहस्य

एक विद्यार्थी लिखता है:[1]

ऐसा प्रश्न एकाध बार सभीके मनमें उत्पन्न हो जाता है? परन्तु है यह प्रश्न अज्ञानजनित। प्रतिज्ञासे मनुष्यकी उन्नति होती है, इसका कारण ही यह है कि प्रतिज्ञामे उसके भंग होनेकी गुंजाइश पडी हुई होती है। यदि प्रतिज्ञामे उसके भंग होनेकी गुंजाइश न हो तो पुरुषार्थके लिए कोई स्थान ही न रहे। प्रतिज्ञा तो ऐसी ही है जैसे नाविकके लिए प्रकाशस्तम्भ। यदि मनुष्य उसे ध्यानमें रखे तो अनेक तूफानोमे से गुजरते हुए भी वह पार लग सकता है। परन्तु जिस प्रकार प्रकाशस्तम्भ तूफानको शान्त नही कर सकता फिर भी नाविकको तूफानके बीचसे सुरक्षित निकल जानेकी सुविधा प्रदान करता है, उसी प्रकार मनुष्यकी प्रतिज्ञा भी हृदयरूपी समुद्रमें उठती हुई तरंगोसे उसे बचानेवाली प्रचण्ड शक्ति है। प्रतिज्ञाकर्त्ताका पतन कभी न हो — इसका उपाय

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र लेखकने गांधीजीको अपने भीतर संकल्पकी दृढ़ताके अभावके विषयमें लिखा था और कोई ऐसा उपाय पूछा था जिससे वह प्रतिज्ञाओंका पालन करने योग्य बन सके।

आजतक न ढूँढ़े मिला है और न मिलनेवाला ही है। यह बात वास्तविक और उचित है। यदि ऐसा न हो तो सत्य और यम-नियमादिकी जो महत्ता है वह जाती रहेगी। सामान्य ज्ञान प्राप्त करनेके लिए अथवा लाख, दस लाख रुपया एकत्रित करनेके लिए मनुष्यको भारी प्रयत्न करना पड़ता है। जब उत्तर ध्रुव-जैसे साधारण स्थानको देखनेके लिए अनेक मनुष्य अपने जान-मालको जोखिममें डालनेमे भय नही खाते तब राग-द्वेष रूपी महाशत्रुओंको जीतनेके लिए उपर्युक्त प्रयत्नोंकी अपेक्षा सहस्रगुना प्रयत्न करना पडे तो उसमे आश्चर्य और क्षोभ क्यों हो? ऐसी शाश्वत विजयकी प्राप्तिका प्रयत्न करना ही सफलता है। प्रयत्न ही विजय है। यदि उत्तर ध्रुवका दर्शन न हो तो सब प्रयत्न व्यर्थ ही माना जाता है; किन्तु जबतक शरीरमे प्राण रहे तबतक राग-द्वेप इत्यादिको जीतनेमे जितना प्रयत्न किया जायेगा वह हमारी प्रगतिका ही सूचक होगा। ऐसे उद्देश्यके लिए किया गया स्वल्प प्रयत्न भी निष्फल नही होता — ऐसा भगवान्‌का वचन है।[1]

इसलिए मैं इस विद्यार्थीको तो इतना ही आश्वासन दे सकता हूँ कि उसको प्रयत्न करते हुए निराश हरगिज नही होना चाहिए। उसे अपनी प्रतिज्ञा नही छोड़नी चाहिए — बल्कि 'अशक्य' शब्दको अपने शब्द-कोषमे से निकाल देना चाहिए। प्रतिज्ञा स्मरण न रहे तो प्रायश्चित्त करना चाहिए और उसे फिर स्मृतिमें दृढ़ करना चाहिए। वह जहाँ प्रतिज्ञा भूले वहींसे फिर चले और मनमें दृढ विश्वास रखे कि अन्तमे जीत तो उसीकी होगी। आजतक किसी भी ज्ञानीका अनुभव यह नही कहता कि कभी असत्यकी विजय हुई है। वरन् सबने एकमत होकर अपना यह अनुभव पुकार-पुकारकर बताया है कि अन्तमे सत्यकी ही जय होती है। उस अनुभवका स्मरण करते हुए तथा शुभ काम करते हुए जरा भी संकोच नही करना चाहिए और शुभ प्रतिज्ञा करते हुए किसीको डरना भी नही चाहिए। पं० रामभजदत्त चौधरी इस टेककी पंजाबी कविता लिख गये हैं:

"कदि नहिं हारना भांवे साडी जान जावे"

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १-८-१९२६

1. 'स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।' गीता, २-४०।

२६१. बालिकाका वध

'नवजीवन' के एक पाठक लिखते हैं:[1]

पत्र-लेखकने उस व्यक्तिका नाम और पता लिखा है। परन्तु मैं इस विवाहको रोकनेमें असमर्थ हूँ। यह पत्र मुझे पिछले सप्ताह ही मिला है। मैं वर या लड़कीको या उनके किसी सम्बन्धीको नही जानता। मै उनके गावमें कभी नहीं गया। आप इसे मेरी भीरुता कहें या विवेकवुद्धि, परन्तु मेरी हिम्मत इस मामलेमें पड़नेकी नही हुई। प्राप्त पत्रकी सब बातें सही माननेपर मनमें यह इच्छा अवश्य ही उत्पन्न हुई थी कि मैं स्वय उस गाँवमें जाऊँ और इस बूढ़ेसे जान-पहचान करके विवाह न करनेकी प्रार्थना करूँ या लड़कीके ही सगे-सम्बन्धियोंको समझाऊँ। परन्तु मैं इतना पुरुषार्थ नही कर सका। अतः मैंने सोचा कि नाम, गाँव छोड़कर और सब बातें लिख दूँ; मेरे लेखको पढ़कर यदि भविष्यमें कोई ऐसा भयकर काम करनेसे रुक जाये तो उसीमें सन्तोष मानूँ।

इस विवाहके मूलमें विषयासक्तिके सिवा, दूसरा कारण क्या हो सकता है? धर्म तो यह कहता है कि मनुष्यके लिए एक ही विवाह पर्याप्त है। पत्नी अगर नादान भी हो और उसका पति न रहे तो ऊँची जातियोंमें तो उसे जन्म-भर वैधव्य ही सहना पड़ता है; परन्तु पुरुष कितनी ही उम्रका हो दुबारा एक छोटी-सी बालिकासे विवाह कर सकता है; यह कैसी असह्य और दुःखजनक स्थिति है। जाति-व्यवस्थाका समर्थन तभी किया जा सकता है जब कि उसमें ऐसे अत्याचारोंको रोकनेकी क्षमता हो।

यदि जातिके पच या युवक हिम्मत करें तो ऐसी करुणाजनक स्थिति कभी पैदा न हो और कभी ऐसी घटना देखनेमें न आये। दुर्भाग्यसे पंच तो अपना धर्म भूल गये हैं। वे अपनी जातिकी नैतिक प्रतिष्ठाके रक्षक होनेके बजाय प्रायः उसके भक्षक ही देखे जाते हैं। उनकी दृष्टि सेवाभाव या परमार्थकी होनेके बजाय स्वार्थकी ही दिखाई देती है। जहाँ स्वार्थ नही होता और शुभेच्छा होती है वहाँ उसे अमलमें लानेकी उनकी हिम्मत नही होती। परन्तु भिन्न-भिन्न जातियोंकी और भारतकी सारी आशा युवकोंपर ही लगी हुई है। यदि युवक अपने धर्मको समझें और उसीके अनुसार चलें तो वे बहुत काम कर सकते हैं और ऐसे बेजोड़ विवाहोंका होना असम्भव बना सकते हैं। इसके लिए लोकमतको जाग्रत करनेके अलावा शायद और कुछ भी करनेकी जरूरत नही है। लोकमत जाग्रत हो जानेपर वृद्ध पुरुषोंकी हिम्मत उसके विरुद्ध जानेकी नही होगी; और अपनी लड़कियोंको इस प्रकार गड्ढेमें गिरानेकी हिम्मत माता-पिताओंकी भी नही होगी।

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने इसमें गांधीजीको सूचित किया था कि एक द्वादश वर्षीय कन्याका विवाह ५५ वर्षके एक बूढ़ेसे किया जानेवाला है, और प्रार्थना की थी कि वे इस विवाहको रुकवानेके लिए अपने प्रभावका उपयोग करें।

वृद्ध और बाल-विवाह करनेवाले लोगोंका धर्मरक्षा, गो-रक्षा और अहिंसाकी बात करना हास्यास्पद ही होगा। इसी तरह करने लायक सामान्य सुधारोंको ताक-पर रखकर स्वराज्य इत्यादिकी बड़ी-बड़ी बातें करना आकाश-कुसुम तोड़नेके समान है। जिनमें स्वराज्य लेनेका उत्साह आ गया है, उनमें साधारण सामाजिक सुधारकी योग्यता तो उससे पहले ही आ जानी चाहिए। स्वराज्य लेनेकी शक्ति तन्दुरुस्तीकी निशानी है और जिसका एक भी अंग रोगी हो हम उसे तन्दुरुस्त नहीं मान सकते। प्रत्येक नवयुवक और प्रत्येक देश-हितचिन्तकको यह बात सदा याद रखनी चाहिए।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १-८-१९२६

२६२. भूल सुधार

१८ जुलाईके 'नवजीवन' के अंकमें "सूतका बल और प्रकार" शीर्षकसे जो लेख छपा है उसके दूसरे अनुच्छेदमें यह दिया गया है: 'जिनका सूत मण्डलके पास आया था वे सब यज्ञार्थ कातनेवाले हैं'। मेरे पास जो पत्रिका आई थी मैंने उससे यह अर्थ निकाला था; लेकिन अब मुझे मालूम हुआ है कि सूतकी यह किस्म यज्ञार्थ कातने-वालोंके सूतकी नहीं वरन् मजदूरी लेकर कातनेवालोंके सूतकी थी। इस भूल-सुधारका तात्पर्य यह है कि मजदूरी देकर जो सूत कतवाया जा रहा है उसकी मजबूती तो सब स्थानोंपर प्रमाणमें कम ही आती है। किस्ममें अकल्पित सुधार तो यज्ञार्थ काते हुए सूतमें ही हुआ है और यह ठीक भी है। यज्ञार्थ कातनेवाले ज्ञानपूर्वक कातते हैं। उनमें गरीबोंके प्रति दया निहित है। इससे वे अपने सूतकी किस्ममें दिन-प्रतिदिन सुधार करते हैं जबकि मजदूरीपर कातनेवाले दीर्घदृष्टिसे अपने स्वार्थको नहीं समझ सकते और न सूतकी किस्म सुधारनेकी कलाको जान सकते हैं। इसीलिए यद्यपि उन्हें कातनेका वर्षोंका अनुभव है तथापि उनकी कलामें सुधार होनेमें अवश्य समय लगेगा। यज्ञार्थ कातनेवाले अभी थोड़े समयसे ही कात रहे हैं तथापि यदि वे चाहें तो वायुके वेगसे प्रगति कर सकते हैं। यज्ञार्थ कातनेमें यह भारी उपयोगिता और आवश्यकता निहित है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १-८-१९२६

२६३. भिखारी साधु

शायद ऐसा माना जाये कि 'भिखारी' शब्द 'साधु' शब्दका विरोधी है। लेकिन आजकल तो साधु वे ही कहलाते हैं जो गेरुआ वस्त्र पहनते हैं — चाहे उनका हृदय गेरुआ अथवा स्वच्छ हो या न हो। साधु शब्दका सच्चा अर्थ है, वह मनुष्य जिसका हृदय साधु या पवित्र हो। परन्तु ऐसे सच्चे साधु तो विरले ही मिलते हैं। भगवा वस्त्रवाले असाधु साधु भीख माँगते भी नजर आते हैं। इसलिए इस प्रकारके भीख मागनेवालोंके लिए 'भिखारी साधु' शब्दका प्रयोग किया गया है। उन्हींके विषयमें एक भाई लिखते हैं[1]:

सुझाव तो सुन्दर है; परन्तु उसपर अमल कौन करेगा? गरीब लोगोंमें चरखेका प्रचार करनेमें जितनी कठिनाई है उससे अधिक कठिनाई भिखारी साधुओंमें चरखेका प्रचार करनेमें है, क्योंकि इसके लिए लोगोंके धर्म विषयक विचार बदलनेकी आवश्यकता है। आज धनवान लोग यह समझते हैं कि झोलीवालोंकी झोलीमें कुछ पैसे डाल दिये, बस परोपकार हो गया और यह पुण्य है। उनको कौन समझाये कि ऐसा करनेसे उपकारके बदले अपकार और धर्मके बदले अधर्म होता है तथा पाखण्ड बढ़ता है। छप्पन लाख नामधारी साधुओंमें सेवा-भाव जाग्रत हो जाये और वे उद्यम करके ही रोटी खायें तो भारतमें स्वयंसेवकोंका एक जबरदस्त लश्कर बन जाये। गेरुआ वस्त्रधारी लोगोंको यह बात समझाना लगभग असम्भव है। उनमें तीन प्रकारके लोग हैं। उनमें एक बहुत बड़ा भाग उन पाखण्डी लोगोंका है जो केवल आलसी बने रहकर मालपुआ उड़ानेके इच्छुक हैं। दूसरा भाग जड़ है और यह मानता है कि भगवा वस्त्र और परिश्रम ये दोनों आपसमें मेल नहीं खाते। तीसरा भाग जो कि बहुत छोटा है — सच्चे त्यागियोंका है, परन्तु ये लोग भी दीर्घ-कालसे रूढ़ विचारके कारण यही समझते हैं कि संन्यासी परोपकारके लिए भी उद्योग नहीं कर सकता। यदि यह तीसरा, छोटा भाग उद्योगका मूल्य समझ जाये और यह अनुभव कर ले कि भूतकालमें चाहे जो भी हुआ हो इस युगमें तो सन्यासीको उदाहरण प्रस्तुत करनेके लिए उद्योग करना आवश्यक है, तो दूसरे दोनों भी सुधर जायेंगे। परन्तु इस वर्गको ऐसा समझाना बहुत कठिन है। कार्य धैर्यसे तथा उस वर्गको अनुभव प्राप्त होनेपर होगा। इसका अर्थ यह हुआ कि जब भारतमें चरखेका करीब-करीब साम्राज्य हो जायेगा तब यह वर्ग उसको अपनायेगा। चरखेके साम्राज्यका अर्थ है हृदयका साम्राज्य और हृदयके साम्राज्यका अर्थ है धर्मकी वृद्धि। धर्मवृद्धि होनेपर यह छोटा संन्यासी वर्ग उसे बिना पहचाने रहेगा ही नहीं।

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने सुझाव दिया था कि गांधीजी ऐसे भिखारी साधुओंको चरखा चलानेके लिए कहें।

अबतक विजय प्राप्त नही कर पाया हूँ और यह इसलिए कि मैं इससे बेखबर हूँ। मेरी समझमें तो मैं किसी प्रतिवादकी आशंकाके बिना यह कह सकता हूँ कि कोई भी व्यक्ति आजतक मेरे लिए केवल अपने अनुगामियोंकी संख्या ज्यादा होनेके कारण महत्त्वपूर्ण नही रहा। सेवा-सम्बन्धी अपनी विशिष्ट धारणाके कारण संख्याके प्रति मैं उदासीन रहता हूँ। फिर भी मुझे यह जानकर बड़ा सन्तोष हुआ है कि आपने अपने प्रति मेरे व्यवहारमें कभी किसी प्रकारकी उदासीनताका अनुभव नही किया।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्रीयुत मु० रा० जयकर
३९१, ठाकुरद्वार
बम्बई–२

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ११३२५) की फोटो-नकलसे।

२६५. पत्र : विट्ठलभाई झ० पटेलको

आश्रम
साबरमती
१ अगस्त, १९२६

प्रिय विट्ठलभाई,

आपका पत्र[1] तथा १६२५ रुपयेका एक और चैक मिला।

आपने जिन परिस्थितियोंका उल्लेख किया है उनके विचारसे मैं पत्र-व्यवहार अभी प्रकाशित नही करूँगा। जैसा कि आपका कहना है, यह आगे चलकर जब अधिकांश चुनाव पूरा हो जायेगा, प्रकाशित किया जा सकता है। जब यह प्रकाशित किया

१. विट्ठलभाई पटेलने अपने २८ जुलाईके पत्रमें लिखा था कि मैं अपना वर्तमान कार्य-काल पूरा होनेपर दुबारा चुनाव लड़ना चाहता हूँ ताकि विधान सभामें वैसी ही प्रथा कायम हो सके जैसी कि इंग्लैंडकी संसदमें है। अगर विधानसभा मुझे चुन लेती है तो मैं अपने वेतनमें से तीन सालतक अंशदान करनेकी यही व्यवस्था जारी रखना चाहता हूँ। मैं यह नहीं कह सकता कि इस समय हमारा पत्र-व्यवहार प्रकाशित करना कहाँतक उचित होगा। अगर उसे प्रकाशित किया गया तो मुझे ऐसी आशंका है कि कुछ हल्कोंमें लोग ऐसा मान बैठेंगे कि यह मैंने मतदाताओंको अपने पक्षमें करनेके लिए किया है। आप जानते ही हैं कि बदकिस्मतीसे मेरे प्रतिद्वन्द्वी ऐसे भी हैं जो मेरे लिए अड़चनें पैदा करनेके खयालसे राष्ट्रीय हित-अहितकी परवाह किये बिना हर तथ्यको तोड़-मरोड़कर पेश करनेसे जरा भी नहीं हिचकेंगे। इसलिए क्या आप यह ज्यादा अच्छा नहीं मानते कि इन परिस्थितियोंमें इस पत्रका प्रकाशन जनवरीतक, जबकि चुनाव समाप्त हो जायेगा और यह निश्चित तौरपर मालूम हो जायेगा कि मैं तीन साल तकके लिए विधानसभामें रहने जा रहा हूँ या नहीं, रोक रखा जाये (एस० एन० ११३२४)।

जितनी कठिनाई संन्यासी वर्गको समझानेमें रही है लगभग उतनी ही धनिक वर्गको समझानेमें भी रही है। यदि धनिक लोग अपना धर्म समझ जायें, आलस्यको उत्तेजना न दें और उन भिखारियोंको अन्न न देकर उद्यम ही दें तो चरखेका साम्राज्य आज ही स्थापित हो जाये। परन्तु धनिक लोगोंसे ऐसी आशा क्योंकर रखी जा सकती है? धनिक लोग औरोंके मुकाबलेमें साधारणतया अधिक आलसी होते हैं और आलस्यको उत्तेजना तो देते ही हैं। उनसे जाने या अनजाने आलसी भिक्षुओंको उत्तेजना मिल जाती है। इसलिए यद्यपि लेखकने सुझाव तो अच्छा ही दिया है, परन्तु उसने इस बातपर विचार नहीं किया कि इसपर अमल करना बहुत कठिन है। कहनेका आशय यह नहीं है कि हम इस दिशामें प्रयत्न न करें, बल्कि हमें प्रयत्न तो करते ही रहना चाहिए। यदि कोई भी धनवान इसे समझ ले और आलसियोंको दान न दे तथा यदि वे सब साधु जो अपंग नहीं हैं, उद्यमके बिना भोजन न करनेका संकल्प कर लें तो इससे भारतको लाभ हुए बिना नहीं रहेगा। इसलिए जहाँ-जहाँ इस प्रकारका प्रयत्न किया जा सकता है वहाँ इसे करना ही चाहिए। हाँ, कठिनाइयाँ हमेशा ध्यानमें रखनी चाहिए, जिससे तात्कालिक फल न मिलनेपर निराशा उत्पन्न न होने पाये और हम अपने साधनको निरर्थक न समझ लें।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १-८-१९२६

२६४. पत्र : मु० रा० जयकरको

आश्रम
साबरमती
१ अगस्त, १९२६

प्रिय श्री जयकर,

आपके पत्रने[1] राहत दी। मैं नहीं जानता कि अनुगामियोंकी संख्याको देखते हुए मेरे लिए आपकी अपेक्षा मोतीलालजीके अधिक महत्त्वपूर्ण होनेकी बात करना, किसी भी अर्थमें ठीक होगा या नहीं। लेकिन अगर यह किसी भी अर्थमें सच है तो केवल इतना ही कहा जा सकता है कि यह मेरे मनकी कोई भावना है जिसपर मैं

१. गांधीजीके १० जुलाईके पत्रकी प्राप्ति स्वीकार करते और बी० एफ० भरूचाकी एक उक्तिका उल्लेख करते हुए जयकरने २७ जुलाईके अपने पत्रमें लिखा "मैंने उनसे कभी यह बात नहीं कही कि आप मेरे प्रति उदासीन हो गये हैं। हम जब कभी मिले हैं, तब मैंने किसी प्रकारकी उदासीनताका नहीं, बल्कि हमेशा भरपूर स्नेहका ही अनुभव किया है। हाँ, मैं यह जरूर महसूस करता हूँ कि, चूँकि दास या मोतीलालकी तरह मेरे बहुतसे राजनीतिक अनुगामी नहीं हैं, इसलिए हम दोनोंके बीच जो व्यक्तिगत सौहार्द सदासे रहा है, उसके बावजूद उस अर्थमें आपके लिए मेरा उतना महत्त्व नहीं है। लेकिन क्या यह केवल एक सच्ची बात कहना ही नहीं है?" (एस० एन० ११३२३)

अबतक विजय प्राप्त नहीं कर पाया हूँ और यह इसलिए कि मैं इससे बेखबर हूँ। मेरी समझमें तो मैं किसी प्रतिवादकी आशंकाके बिना यह कह सकता हूँ कि कोई भी व्यक्ति आजतक मेरे लिए केवल अपने अनुगामियोंकी संख्या ज्यादा होनेके कारण महत्त्वपूर्ण नहीं रहा। सेवा-सम्बन्धी अपनी विशिष्ट धारणाके कारण संख्याके प्रति मैं उदासीन रहता हूँ। फिर भी मुझे यह जानकर बड़ा सन्तोष हुआ है कि आपने अपने प्रति मेरे व्यवहारमें कभी किसी प्रकारकी उदासीनताका अनुभव नहीं किया।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्रीयुत मु० रा० जयकर
३९१, ठाकुरद्वार
बम्बई–२

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ११३२५) की फोटो-नकलसे।

२६५. पत्र : विट्ठलभाई झ० पटेलको

आश्रम
साबरमती
१ अगस्त, १९२६

प्रिय विट्ठलभाई,

आपका पत्र[1] तथा १६२५ रुपयेका एक और चैक मिला।

आपने जिन परिस्थितियोंका उल्लेख किया है उनके विचारसे मैं पत्र-व्यवहार अभी प्रकाशित नहीं करूँगा। जैसा कि आपका कहना है, यह आगे चलकर जब अधिकांश चुनाव पूरा हो जायेगा, प्रकाशित किया जा सकता है। जब यह प्रकाशित किया

१. विट्ठलभाई पटेलने अपने २८ जुलाईके पत्रमें लिखा था कि मैं अपना वर्तमान कार्य-काल पूरा होनेपर दुबारा चुनाव लड़ना चाहता हूँ ताकि विधान सभामें वैसी ही प्रथा कायम हो सके जैसी कि इंग्लैंडकी संसदमें है। अगर विधानसभा मुझे चुन लेती है तो मैं अपने वेतनमें से तीन सालतक अंशदान करनेकी यही व्यवस्था जारी रखना चाहता हूँ। मैं यह नहीं कह सकता कि इस समय हमारा पत्र-व्यवहार प्रकाशित करना कहाँतक उचित होगा। अगर उसे प्रकाशित किया गया तो मुझे ऐसी आशंका है कि कुछ हल्कोंमें लोग ऐसा मान बैठेंगे कि यह मैंने मतदाताओंको अपने पक्षमें करनेके लिए किया है। आप जानते ही हैं कि बदकिस्मतीसे मेरे प्रतिद्वन्द्वी ऐसे भी हैं जो मेरे लिए अड़चनें पैदा करनेके खयालसे राष्ट्रीय हित-अहितकी परवाह किये बिना हर तथ्यको तोड़-मरोड़कर पेश करनेसे जरा भी नहीं हिचकेंगे। इसलिए क्या आप यह ज्यादा अच्छा नहीं मानते कि इन परिस्थितियोंमें इस पत्रका प्रकाशन जनवरीतक, जबकि चुनाव समाप्त हो जायेगा और यह निश्चित तौरपर मालूम हो जायेगा कि मैं तीन साल तकके लिए विधानसभामें रहने जा रहा हूँ या नहीं, रोक रखा जाये (एस० एन० ११३२४)।

जाने लगे तब आप समुचित सुधारके साथ उसका मसविदा भेज दें, या हो सकता है तबतक नई परिस्थितियोंके अनुसार नया मसविदा ही आवश्यक हो जाये[१]।

हृदयसे आपका,

मा० वि० झ० पटेल
"सुख़डैल"
शिमला

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११३२६) की फोटो-नकलसे।

२६६. पत्र : प्रभाशंकर पट्टणीको

आश्रम
साबरमती
रविवार, आषाढ़ वदी ८, १ अगस्त, १९२६

सुज्ञ भाईश्री,

आज आपके नाम मिला तार इसके साथ भेजता हूँ। एक क्षणके लिए मुझे यह खयाल आया था कि इसे खोलकर इसका मजमून तारसे आपको भेज दूँ; लेकिन मैंने फिर सोचा कि जिस मनुष्यको अभीतक आपके यहाँसे चले जानेकी बात भी मालूम नहीं, उसके तारमें कोई बहुत महत्त्वपूर्ण बात होनेकी सम्भावना नहीं है।

मोहनदासके वन्देमातरम्

सर प्रभाशंकर पट्टणी
पोरबन्दर

गुजराती प्रति (सी० डब्ल्यू० ३२०४) की फोटो-नकलसे तथा एस० एन० १२२३१ और जी० एन० ५८९० से।

सौजन्य : महेश पट्टणी

१. श्री पटेलने २८ अगस्तको एक और चैक भेजते हुए गांधीजीको पत्र लिखा था (एस० एन० ११३२९)।

२६७. पत्र : विट्ठलदास जेराजाणीको

आश्रम
साबरमती
रविवार, आषाढ कृष्ण ८, [१][1] अगस्त, १९२६

भाई विट्ठलदास,

आपका पत्र मिला। तिरुपुरसे मिले दोनों पत्र वापस भेजता हूँ। इनकी नकल रखनेकी जरूरत नहीं। आप जब तिरुपुर जायें तब मुझे पत्र लिखें; मैं आपको वहाँके पतेपर पत्र लिखूँगा। जब जायें तब वहाँकी स्थितिका गहराईसे अध्ययन करें। यह भी गनीमत है कि इस वर्षकी बिक्री पिछले वर्षकी बिक्रीसे कम नहीं होगी।

श्री विट्ठलदास जेराजाणी
व्यवस्थापक खादी भण्डार
प्रिंसेस स्ट्रीट
बम्बई

गुजराती प्रति (एस० एन० १२२३४) की माइक्रोफिल्मसे।

२६८. पत्र : हरिभाऊ उपाध्यायको

आश्रम
साबरमती
रविवार, आषाढ़ कृष्ण ८ [१ अगस्त, १९२६][2]

भाई हरिभाऊ,

दो पत्र कल मिले, एक आज। मार्तण्डके लिये निश्चित रहो। मार्तण्डका और रमणीकलालका पत्र मैंने पढ़ लिया था। दोनों पत्र ठीक थे। मैसोरका रिपोर्ट[3] मुझको वापिस भेजनेकी कुछ आवश्यकता नहीं है। मेरे साथ एक नकल है। हिंदीकी सुधारणा करके जो भेज दी है वह बहुत उपयोगी होगी। इसी तरह समय मिलनेपर भेजते रहिये। देवदास आजकल तो मसूरीमें ही होगा। अपने दिल चाहे तबतक वहाँ रह सकता है ऐसा मैंने कह दिया है। उसको शांतिकी और आरामकी आवश्यकता थी, और वह ले रहा है।

१. साधन सूत्रमें ३ तारीख है लेकिन रविवार, आषाढ कृष्ण ८, १ अगस्तको थी।
२. डाककी मुहरसे।
३. देखिए "पत्र: हरिभाऊ उपाध्यायको", १५-६-१९२६।

विश्वेश्वर बिरलाजीको मैंने यहाँ आनेमें उत्तेजन नहीं दिया है। एकान्त सेवन और आत्मनिरीक्षण करनेकी सलाह दी है।

बापूके आशीर्वाद

श्री हरिभाऊ उपाध्याय
खादी भंडार
अजमेर

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ७७०४) की फोटो-नकलसे।
सौजन्य: हरिभाऊ उपाध्याय

२६९. पत्र: एम० एल० गुप्ताको

१ अगस्त, १९२६

भाई श्री,

आपका प्रश्न मीला है। अैसे प्रश्नोंकी चर्चा 'न० जी०' में अनावश्यक समझता हूं। वनस्पति मात्रमें जीव तो है ही है। वनस्पति मनुष्यके उपयोगकी वस्तु है ईसलिये जवतक हम वनस्पति खाये तवतक उसका दतौन भी करें। जव हम अनावश्यक बड़ी हिंसा कर रहे हैं तो ऐसे सूक्ष्म प्रश्न उठा कर कयुं भ्रममें पड़े?

एम० एल० गुप्ता
अजमेर

मूल पत्र (एस० एन० १९९३९) की माइक्रोफिल्मसे।

२७०. सन्देश: जैन स्वयंसेवक सम्मेलनको[1]

२ अगस्त, १९२६

शत्रुंजय[2] सम्बन्धी निर्णयके बारेमें मेरे अपने कुछ विचार अवश्य है, परन्तु दोनों दलोंके हितको ध्यानमें रखकर मैं इस विषयपर जानबूझकर चुप रहा हूँ और मैं अपनी इस चुप्पीको तोड़ना नहीं चाहता।

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, ३-८-१९२६

१. यह सन्देश अमृतलाल कालीदास सेठ की अध्यक्षतामें भारतीय जैन स्वयंसेवक सम्मेलन, बम्बईमें पढ़ा गया था।

२. शत्रुंजय मन्दिरके सम्बन्धमें पालिताना दरबारको वार्षिक तीर्थ अथवा संरक्षा-कर देनेके प्रश्नपर जैनियों और दरबारके बीच झगड़ा उठ खड़ा हुआ था और सी० सी० वॉटसनने इसमें निर्णय जैनियोंके विपक्षमें दिया था।

२७१. पत्र : ख्वाजाको

२ अगस्त, १९२६

ख्वाजा,

आपका खत मिला। इसीलीये मैंने लीखा था कि अगर आप मानें कि आपकी किताव इस्लामके लिये अच्छी न थी। हित है आप इसे खीच लें। न मेरे लिये और कोई दूसरोके लिये। मुझे कुछ पता नहीं कि आर्या कोई वड़े मुस्लीमको आर्य वना रहे हे। आजकल वहोतसी वातें चल रही हैं। जिनका न मान है न निशान है।

आपका,
गांधी

[मूल पत्र]
महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

२७२. पत्र : छगनलाल पी० नाणावटीको

आश्रम
सावरमती
मंगलवार, आषाढ़ वदी १०, ३ अगस्त, १९२६

भाईश्री छगनलाल,

आपका पत्र मिला। फिलहाल तो आपकी रकम छात्रवृत्ति खातेमें जमा करवा देता हूँ। इसे पाने लायक कोई न कोई तो मिलेगा ही।

श्री छगनलाल पी० नाणावटी
नवसारी विल्डिंग
हॉर्नवी रोड
फोर्ट, वम्वई

गुजराती प्रति (एस० एन० १२२३२) की माइक्रोफिलमसे।

२७३. पत्र : देवदास गांधीको

आश्रम
साबरमती
मंगलवार, आषाढ़ बदी १०, ३ अगस्त, १९२६

चि० देवदास,

तुम्हारा पत्र मिला। डा० अन्सारी जब आयें तभी ठीक। उनका भाषण मैंने अखबारोंमें पढ़ा है। यह तो आवेगमें दिया हुआ भाषण है। उनके उत्तम विचारोंके बारेमें मुझे तनिक भी शंका नहीं है; लेकिन वे अपने धन्धेके अलावा किसी अन्य कार्यमे तन्मयतासे नही लग सकते। यही बात हकीम साहबके बारेमे भी कही जा सकती है। उनका हृदय शुद्ध है; लेकिन वे किसी कार्यमे सब-कुछ छोड़-छाड़कर नहीं लग सकते। मौलाना अबुल कलाम आजाद सच्चे अर्थोंमें मौलाना हैं। ज्ञापन-पर मेरा कोई विश्वास नही है। सात सौसे हमारा कोई भी काम नही बन सकता। जहाँ सत्य ही प्रकट न हो सके वहाँ कोई भलाई होनेकी क्या आशा की जा सकती है? विधान सभाओंका काम और हिन्दू-मुस्लिम ऐक्यका काम दोनोको एक ही मनुष्य साथ-साथ नहीं कर सकता, क्योंकि दोनों परस्पर विरोधी हैं। महाराजा नाभा अथवा उनकी रानी चरखा चलायेंगे, मैं तो ऐसी आशा नही करता। फिर भी वे सूत कातना चाहें तो उन्हें तकली सिखाना ज्यादा आसान और अच्छा है। यदि वे तकली चलाना छोड़ दें तो हमे बुरा नही लगेगा; किन्तु यदि वे चरखा चलाना छोड़ देंगे तो हमें अवश्य बुरा लगेगा। तथापि यदि तुम्हारे विचार मुझसे भिन्न हों तो मुझे लिखना जिससे मैं चरखा भेज दूं।

वर्तमान राजनीतिक वातावरणको देखकर अत्यन्त अरुचि होती है। मीठू बहनने[1] मुझे स्वयं पत्र लिखकर अपने लिए खादी मँगाई थी। इतनी खादी तो तुम सहज ही बेच सकोगे। खादीकी जो कीमतें वे देंगी उनके बारेमें मुझे मालूम ही है।

तुम्हारे आनेके बारेमे तो मैं तुम्हे लिख ही चुका हूँ। मेरी तो यही राय है। लेकिन यदि तुम अभी वहाँ कुछ दिन और रहना चाहो तो मैं उसका विरोध नही करूँगा। यहाँ कोई काम नही है, ऐसा सोचना तो भ्रमपूर्ण है। यहाँ काम तो इतना ज्यादा है कि कार्यकर्त्ताओंको फुर्सत ही नही मिलती। फिर भी यदि तुम्हे अपने स्वास्थ्यकी दृष्टिसे वहाँ कुछ अधिक रहना उचित लगे तो अवश्य रहना। मुझे विट्ठलभाईका पत्र मिला है। उसमें उन्होंने लिखा है कि यदि तुम वहाँ न जाओगे तो वे सन्तोष कर लेंगे।

गुजराती प्रति (एस० एन० १२२३३) की फोटो-नकलसे।

१. मीठूबहन पेटिट।

२७४. पत्र: मोहनलाल पण्ड्याको

आश्रम
साबरमती
मंगलवार, आषाढ़ वदी १०, ३ अगस्त, १९२६

भाईश्री ५ मोहनलाल,

तुम्हारे दोनों पत्र मिले। राष्ट्रीय चेतनाका कितना विकास हुआ है इसका हमारे पास और कोई मापदण्ड नहीं है। कितनी खादी तैयार की, कितने अन्त्यजोंको पढ़ाया और कितने हिन्दू मुसलमान शुद्ध हृदयसे रह रहे हैं, इन प्रश्नोंके उत्तरमें विभिन्न प्रान्तोंसे जो आँकड़े मिले, वे ही मापदण्ड हैं। यदि हम इन तीनों कार्योंको सच्चे हृदयसे कर रहे हैं तो इस समय चाहे अधिकारियोंके मदमें वृद्धि हो गई हो और चाहे लोगोंका उत्साह ठण्डा जान पड़ता हो, जो लोग राष्ट्रके उपर्युक्त कार्योंका दृढ़तासे प्रचार कर रहे हैं उन्हें यह दृढ़ विश्वास रखना चाहिए कि देशकी हालत ठीक है। इसके बाद नगरपालिकाओं, स्थानीय निकायों, सार्वजनिक सभाओं और परिषदों आदिका क्षेत्र तो है ही। जो उनमें काम करना ठीक समझें, वे उन्हें खुशीसे चलाते रहें। इनके कारण उनसे द्वेषभाव क्यों रखा जाये, क्योंकि जिन्हें वह काम करना हो उन्हें उसे करनेसे कौन रोक सकता है? उनपर क्रोध किसलिए किया जाये? सभी अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार काम करते हैं। यदि हम इस तरह शान्तिसे अपना काम करते जायेंगे तो अन्ततः वातावरण शुद्ध हो जायेगा। अभी तो स्वराज्यवादियोंका घोड़ा कभी-कभी निरंकुश होकर उछल-कूद करता है और हम उसकी टापोंसे कुचल जाते हैं। यह घोड़ा जब अपने खूँटेपर बँध जायेगा तब हमारे मन अपेक्षाकृत अधिक स्वस्थ हो जायेंगे। खादीकी प्रदर्शनियाँ तो अवश्य की जानी चाहिए। यह कार्य धीरे-धीरे होगा, हमें यह विश्वास रखना चाहिए। भाई लक्ष्मीदास[1] शुद्ध बुद्धिसे यथामति और यथाशक्ति खादीकी साधना कर रहे हैं। उसका जो परिणाम निकलना होगा वह निकलेगा। यदि हम सब समस्त गुजरात अथवा समस्त देशका विचार करनेके बजाय अपने-अपने छोटे क्षेत्रका ही विचार करें और उसे पूर्णतापर पहुँचाएँ तो अन्य क्षेत्र स्वयमेव पूर्ण हो जायें।

और अब राष्ट्रीय स्कूलोंके बारेमें। अगर तुम व्यावहारिक हो तो क्या मैं तुमसे कम व्यावहारिक हूँ? मैंने भी व्यावहारिक बात ही कही है। यदि विद्यार्थी हमपर नेतागिरी करें, माँ-बाप विद्यार्थियोंको हमारे स्कूलोंमें भेजना हमपर अहसान समझें, उनकी फीस देनेसे स्पष्ट इनकार करें तो हम सारा खर्च भीखसे चलायें और उससे पाखण्डको उत्तेजन मिले तो क्या इस सबकी अपेक्षा यह अधिक व्यावहारिक न होगा कि हम विद्यार्थियोंकी नेतागिरीसे मुक्त हो जायें, माँ-बापका अहसान लेनेसे इनकार

१. लक्ष्मीदास पु० आसर।

कर दें, इस पाखण्डसे मुक्त हो जायें और पढ़नेकी तीव्र इच्छा रखनेवाले विद्यार्थियोंको ही पढ़ाएँ, फिर वे चाहे दो-चार ही क्यों न हों। कुछ शिक्षक मधुकरी माँगकर लायें और बाकी अन्य फलदायी कार्योंमें लगें। साँपके काटे आदमीका उदाहरण यहाँ लागू नहीं होता। वहाँ तो आशाकी पूरी गुंजाइश होती है। यहाँ तो राष्ट्रीयता केवल नामकी है। तब हम अपने आपको क्यों धोखा दें?

इस सारी चर्चामें असली प्रश्न तो केवल एक ही है — क्या अपने विचारोंमें हमारी आस्था इतनी गहरी है?

श्री मोहनलाल का० पण्ड्या
खादी कार्यालय
महुधा
बरास्ता नडियाद

गुजराती प्रति (एस० एन० १२२३५) की फोटो-नकलसे।

२७५. तार: जमनालाल बजाजको

[३ अगस्त, १९२६ या उसके पश्चात्][1]

निश्चय हो चुका है। ५,००० रुपया उत्कल भेजो। लेकिन सामान्य खादी कार्यके लिए पैसा इकट्ठा करो।

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११२१६)से।

२७६. पत्र: क० नटराजनको

आश्रम
साबरमती
४ अगस्त, १९२६

प्रियश्री नटराजन,

आपका पत्र मिला। आपने मुझे जो करतन भेजी है, वह सारतः ठीक है। विट्ठलभाई मुझे पिछले तीन-चार महीनोंसे १,६०० रुपयेसे कुछ अधिककी रकम भेजते रहे हैं। मैं उनके साथ इस विषयपर विचार करता रहा हूँ कि यह समाचार प्रकाशित करना उचित है या नहीं। लेकिन, उनका खयाल है कि चुनाव होनेतक

१. यह जमनालाल बजाजके ३ अगस्तके तारके उत्तरमें दिया गया था। तारमें कहा गया था: "सतीशबाबू, निरंजन पटनायकके साथ उड़ीसाके कार्यके बारेमें बातचीत की। पैसेके अभावमें कार्यकी गति मन्द, यदि आप अनुमति दें तो पैसा इकट्ठा करनेका प्रयत्न करूँगा और सतीशबाबूको दूँगा।"

इसे प्रकाशित न किया जाये। उन्होंने जो कारण बताये हैं, वे मेरे खयालसे ठीक हैं और इसलिए मैंने अभी उनके पत्र और अपने उत्तरको प्रकाशित करना रोक रखा है। आपकी जानकारीके लिए यह बता दूं कि मैं खुद अपनी जिम्मेदारीपर उस पैसेका उपयोग करने नहीं जा रहा हूँ। लेकिन इस दलगत संघर्षकी गरमागरमी कम होते ही, मैं विट्ठलभाईके इस दानकी खासी रकमका उपयोग करनेका अच्छेसे-अच्छा तरीका निकालनेमें कई नेताओंका सहयोग लेनेकी सोच रहा हूँ। उन्हें राष्ट्रके निमित्त जो थैली भेंट की गई है, उसमें से बची हुई रकम उन्होंने मुझे भेज दी है। इस बातको आप बिलकुल गोपनीय रखें या अगर आपको ऐसा लगे कि 'हिन्दू'ने इस सम्बन्धमें जो लिखा है उसे बतलाते हुए आपको कुछ प्रकाशित करना ही चाहिए, तो आप स्वयं ही विट्ठलभाईको लिखें।

जहाँतक सर्वोच्च न्यायालयकी स्थापनाका[1] सवाल है, मैं इस सिलसिलेमें चलनेवाली बहसपर लगातार नजर रखे हुए हूँ। मैंने इस सम्बन्धमें 'यंग इंडिया'में लिखनेके खयालसे सामग्री इकट्ठी की थी, लेकिन फिर निश्चय किया कि मैं खुद इसके बारेमें नहीं लिखूंगा। अब मैं इसपर दुबारा विचार करूँगा। गण्यमान्य वकीलोंने जो आपत्तियाँ उठाई हैं, मुझे तो वे बिलकुल नहीं जँची। इसके विपरीत, मुझे तो यह देखकर दु:ख और आश्चर्य हुआ कि सर हरिसिंहके[2] बहुत ही नरम और निर्दोष प्रस्तावका भी विरोध किया गया है। लेकिन, हमारा आत्मविश्वास बिलकुल ढह चुका है। मुझे प्रिवी कौंसिलके सामने पेश मामलोंका कुछ अनुभव है। और मेरा यह निश्चित मत है कि प्रिवी कौंसिलके सदस्य राजनीतिक आग्रहोंसे मुक्त नहीं हैं और अपनी तमाम सावधानियोंके बावजूद वे परम्परासे सम्बन्धित मामलोंमें गम्भीर भूलें कर जाते हैं।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत क० नटराजन
सम्पादक
'इंडियन डेली मेल'
फोर्ट, बम्बई

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०९७४) की फोटो-नकलसे।

१. अगले अंशमें गांधीजीके अपने वे विचार हैं जो उन्होंने इंडियन डेली मेलके अनुरोधपर व्यक्त किये थे और उस पत्रमें ५ अगस्तको प्रकाशित हुए थे। इनको हिन्दुस्तान टाइम्सके ७-८-१९२६ और लीडरके १२-८-१९२६के अंकोंमें भी प्रकाशित किया गया था।
२. हरिसिंह गौड़।

२७७. पत्र : प्रभाशंकर पट्टणीको

आश्रम
साबरमती
बुधवार, आषाढ़ बदी ११, [४ अगस्त, १९२६][1]

सुज्ञ भाईश्री,

नानाभाईके हाथ भेजा आपका पत्र मिला। यदि आप केवल दूधपर रह सकें तो जरूर रहें। परन्तु दूध ताजा और बिना गर्म किया हुआ होना चाहिए। मैं तो यह प्रयोग जेलमें कर चुका हूँ। मुझे सिर्फ दूधपर रहनेमें कोई कठिनाई नहीं हुई थी। किन्तु मेरा पेट ३० वर्षोंसे फलोंका अभ्यासी हो गया था। इस कारण मेरा वजन पखवारे-भरमें ही तीन पौंड कम हो गया था और बादमें इसलिए मुझे फिरसे फल लेना शुरू करना पड़ा था। यदि आपको फलोंकी आवश्यकता न हो और औषध लिये बिना दस्त साफ होता हो तो आप केवल दूधपर रहें।

आपने जो पुस्तकें वापस कीं, वे मिल गईं हैं। मैंने तो आपको लिखा था कि पुस्तकें पढ़नेके बाद लौटाएँ। मेरा आग्रह है कि आप इंग्लैंड जायें तब भी अपने आहारमें कोई परिवर्तन न करें। मेरा विश्वास तो यह है कि दूध और हजम होने लायक फलोंपर रहनेसे आपका कायाकल्प हो जायेगा। इंग्लैंड जानेसे पहले कुछ दिन यहाँ बिता सकें तो जरूर आयें। यह मैं जानता हूँ कि आप दौड़-धूप किये बिना नहीं रह सकते; और आपके कामके लिए तो यह अनिवार्य भी है। कांग्रेसके अध्यक्षके विषयमें आपका सुझाव ठीक ही है; परन्तु उसमें कई उलझनें हैं। मैं इस समय किसी भी मामलेमें नहीं पड़ रहा हूँ। किन्तु यहाँ बैठे-बैठे सुझाव तो दे ही सकता हूँ।

मोहनदासके वन्देमातरम्

सर प्रभाशंकर पट्टणी
अनन्तवाड़ी
भावनगर

गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ३२०५)की फोटो-नकलसे।
सौजन्य : महेश पट्टणी

१. दो पुस्तकोंको लौटानेके उल्लेखसे यह पत्र २७-७-२६ को प्रभाशंकर पट्टणीको लिखे गये पत्रके पश्चात् लिखा गया लगता है।

२७८. पत्र : द० वा० कालेलकरको

आश्रम
साबरमती
बुधवार, आषाढ़ बदी ११, ४ अगस्त, १९२६

भाईश्री ५ काका,

आपका पत्र मिला। मैं आपका महादेवके नाम भेजा लेख[1] प्रकाशित कर दूंगा। मैं अन्तिम वाक्यमें 'लगभग'[2] शब्द जोडूंगा। विदेशी वस्त्रोंका प्रयोग सर्वथा त्याज्य है, परन्तु मोटरका प्रयोग शहरोंमें अनिष्टकर न होकर लाभप्रद है। उदाहरणार्थ यदि नगरके एक छोरपर आग लग जाये तो उसे बुझानेके लिए वहाँ जानेमें मोटर अधिक उपयोगी हो सकती है; अथवा जब कलकत्ता या बम्बईमें भरी दोपहरीमें जानवर भारी-भारी बोझ ढोनेके काममें लगाये जाते हैं, तब मोटरोंकी उपयोगिता स्पष्ट देखी जा सकती है। और आजके युगमें जब रेलें तो हैं ही और शहर भी हैं, तो मोटरोंके विरोधके बजाय हम शहरोंका विरोध करें तो बात बने।

अब सामुदायिक कृषिके विषयको लें। मनुष्यका विकास अनाजकी खेतीसे हुआ, यह एक सापेक्ष सत्य है, अर्थात् मानव आखेटकी स्थितिसे निकलकर कृषिकी स्थितिमें पहुंचकर स्थिर हो गया। अब जो दूसरा कदम उठाना है वह सामुदायिक कृषि करनेका नहीं वरन् फलोंके बगीचे लगानेका है। उससे स्थिरता बढ़ जायेगी, समस्त संसारसे हमारे सम्बन्ध अधिक शुद्ध हो जायेंगे तथा खेतीमें मनुष्यको जितना परिश्रम करना पड़ता है, फलोंके बगीचोंमें उससे कम परिश्रम करना पड़ेगा और उसे कुछ शान्ति भी मिल सकेगी। जिस प्रकार मांसाहारकी अपेक्षा अन्नाहारका आध्यात्मिक प्रभाव अधिक है, उसी प्रकार अन्नाहारकी अपेक्षा फलाहारका प्रभाव अधिक है। फिर ऐसे वृक्षोंसे वर्षा भी नियमित होने लगती है। दूसरे, अनाजकी खेतीके मुकाबले फलोंके बगीचे वर्षापर कम निर्भर होते हैं। इस प्रकार फलाहारके आर्थिक, राजनैतिक और आध्यात्मिक लाभ अधिक हैं। परन्तु मेरी समझमें यह सुधार हमारे वशकी बात नहीं है। फिर भी मैंने अभी इसकी आशा बिल्कुल छोड़ी नहीं है। यदि मुझे आध्यात्मिक विचार रखनेवाला कोई रसायनशास्त्री मिल जाये तो मैं अपना अधूरा प्रयोग फिर प्रारम्भ कर सकता हूँ। यदि आप इसके प्रति लोनावलाके डाक्टरमें दिलचस्पी पैदा करा सकें तो शायद वे इस प्रयोगको हाथमें ले सकेंगे।

१. देखिए "बैल बनाम मोटर", ८-८-१९२६।

२. "लगभग" जोड़नेके बाद वाक्य इस तरह बना था: "यदि हम यह मानने लगें कि मोटरका प्रयोग लगभग उतना ही अवांछनीय है जितना अवांछनीय विदेशी कपड़ेका व्यवहार, तो यह सचमुच ही बहुत अच्छा होगा।"

मैं आपके स्वास्थ्यकी बात समझ गया। आप अपने आहारके प्रयोगोंमें एक प्रयोग और कर देखें। यदि आपको यह भरोसा हो कि स्वस्थ गाय या भैंसका दूध साफ तरीकेसे दुहा गया है तो आप उसे ताजा पीयें। इसका असर तो आप स्वयं अनुभवसे देख लेंगे। यदि असर अच्छा हो तो उसे जारी रखें। वैद्यका कहना है कि धारोष्ण दूधसे प्रथम कोटिके विटामिन मिलते हैं। ये तत्व दूधको गर्म करनेसे नष्ट हो जाते हैं। ताजे दूधसे मिलनेवाले ये विटामिन आवश्यक माने जाते हैं। डाक्टर तलवलकरने इस विषयका पर्याप्त अध्ययन किया है। आवश्यकता हो तो आप उनसे पत्र-व्यवहार करें। मेरा स्वास्थ्य बिगड़ा तो तनिक भी नहीं है। मैंने तो केवल फलोंपर रहनेका प्रयोग किया था, उससे मेरा वजन घटा; अतः मैं बादमें फिर दूधपर आ गया। फलोंमें बीज तो अवश्य ही नहीं थे।

आप किन तीन कहानियोंकी बात कह रहे हैं, सो मुझे तो बिलकुल याद नहीं आतीं। कुछ याद दिलायें तो शायद याद हो जाये और तब मैं उन्हें पढ़नेका प्रयत्न करूँगा; अन्यथा अभी न तो मुझमें कुछ पढ़नेका साहस है और न उत्साह।

श्री काकासाहब कालेलकर
स्वावलम्बन पाठशाला
चिंचवड

गुजराती प्रति (एस० एन० १२२३६) की फोटो-नकलसे।

२७९. पत्र: रमणीयराम गो० त्रिपाठीको

आश्रम
साबरमती
बुधवार, आषाढ़ बदी ११, ४ अगस्त, १९२६

भाईश्री रमणीयराम,

आपका पत्र मिला। मैं भाई विभाकरके सम्बन्धमें इतना कम जानता हूँ कि उनका कोई भी उपयोगी संस्मरण आपको नहीं भेज सकता। उनके विनोदी स्वभावके अतिरिक्त मुझे उनकी और कोई बात याद नहीं है।

मेरा स्वास्थ्य ठीक है। अभी तो ऐसा कोई प्रसंग दिखाई नहीं देता जिसके कारण मुझे २० दिसम्बरसे पहले अहमदाबादसे बाहर जाना पड़े। परन्तु यदि दो-एक दिनके लिए मेरा बम्बईमें रहना हो तो आप मुझसे पूछकर मण्डलके लिए मेरे समयका उपयोग अवश्य करें। मैंने विद्यापीठमें 'बाइबिल' पढ़ाना शुरू नहीं किया है। अखबारवाले मेरा पीछा नहीं छोड़ते तब मैं क्या करूँ? मेरा कोई भी काम शान्तिसे नहीं हो पाता। और यदि कहीं मेरी शान्ति बाह्य परिस्थितियोंपर निर्भर होती तो लोग मुझे कभीका पागल बना देते। मैंने विद्यार्थियोंसे पूछा था कि वे सप्ताहमें मेरे एक घण्टेका उपयोग किस ढंगसे करना चाहते हैं। उन्होंने मुझसे हर शनिवारको प्रश्न

पूछनेका निश्चय किया है। यदि उससे समय बचा तो सम्भव है, मैं उन्हें 'बाइबिल'-का नया करार पढाऊँ। एक शनिवारको तो एक घण्टेमें पूछे गये प्रश्नोंके पूरे उत्तर भी नहीं दिये जा सके। इसके बाद अब देखें क्या होता है। मैं यह जरूर चाहता हूँ कि विद्यार्थी धार्मिक चिन्तन-मनन करें। इसके लिए जो-कुछ भी प्रयास किया जा सकता है, किया जा रहा है। विद्यापीठके कार्य-संचालनके लिए जो समिति बनाई गई है, उसकी रिपोर्ट कल ही मेरे पास आई है। अब मैं सोच रहा हूँ कि उसका क्या करूँ। बहुत करके तो वह जल्दी ही प्रकाशित कर दी जायेगी।[1] 'समालोचक'[2] के लिए मैं ऐसा क्या लिखूँ जिससे आपको और आपके पाठकोंको सन्तोष मिले? मैं तो जो-कुछ लिखूँगा वह चरखेके ही विषयमें होगा। और अधिक कुछ हुआ तो अन्त्यजोंके सम्बन्धमें लिखूँगा। इस समय आप ऐसे लेखोंका क्या करेंगे? ये बेचारे अन्त्यज घोंघेकी तरह धीरे-धीरे आगे बढ रहे हैं; किन्तु एक दिन जब ये "बेचारे" न रहेंगे तब आप मुझसे लेख माँगेंगे तो ठीक होगा।

श्री रमणीयराम गोवर्धनराम त्रिपाठी
डा० पाई बिल्डिंग
सैंडहर्स्ट रोड
बम्बई

गुजराती प्रति (एस० एन० १२२३७) की फोटो-नकलसे।

२८०. पत्र : राधाकृष्ण बजाजको

४ अगस्त, १९२६

चि० राधाकृष्ण,

तुम्हारा खत मिला है। हिं० मु०के बारेमे मैं एक ही उत्तर दे सकता हुँ। हर तरहसे हिंदु दुःख ही बरदास करे। ईसका यह अर्थ नही है कि धर्मका त्याग करें। परन्तु शुद्ध धर्मका पालन करनेमें जो दुःख आवे उसको सहन करे जितना समय तुम्हारा बचता रहे उसमें चरखा चलाते रहियो।

बापूके आ०

श्री राधाकृष्ण बजाज
सीकर

मूल पत्र (एस० एन० १९९४०) की माइक्रोफिलमसे।

१. समितिकी रिपोर्ट १५-८-१९२६ के **नवजीवन**में प्रकाशित हुई थी। समितिके अध्यक्ष आनन्द-शंकर ध्रुव थे।

२. गुजराती पत्रिका।

२८१. कर्नाटकमें खादी

श्रीयुत गंगाधरराव देशपाण्डेने अपने खादीके कार्यके सम्बन्धमें एक पत्र भेजा है, नीचे उसका सार दिया जा रहा है।[1]

पैसा लेकर सूत कातनेवालोंको सूतकी किस्म सुधारनेके लिए राजी करने और बुनकरोंको हाथकते सूतका कपड़ा बुननेके लिए तैयार करनेकी समस्याको लेकर सभी जगह कठिनाई पैदा हो रही है। इसका केवल एक ही उपाय है कि धैर्य और लगनसे काम लिया जाये और सूतकी किस्म सुधारनेके तरीकोंका विज्ञानसम्मत ज्ञान प्राप्त किया जाये। यदि सूत एकसार, मजबूत और ठीक तरहसे अटेरा हुआ हो तो बुनकर जल्दी ही हाथकते सूतका कपड़ा बुनने लगेंगे। उनके पास देशहितकी बात सोचनेका वक्त नहीं है। उनका सारा समय पेटके गड्ढेको भरनेकी चिन्तामें चला जाता है। इसलिए वे आसानसे-आसान काम ढूँढ़ते हैं। और जबतक हम हाथकते सूतसे कपड़ा बुनना मिलके कते सूतसे बुननेके बराबर आसान न बना दें तबतक हमें यह आशा नहीं करनी चाहिए कि पर्याप्त संख्यामें बुनकर हाथकते सूतका प्रयोग करेंगे। इसलिए मुख्य बात यह है कि हाथकते सूतकी किस्म सुधारी जाये और यह बात केवल तभी सम्भव है जब हमारे पास सूत कातनेमें विशेषज्ञ स्वयंसेवकोंकी एक सेना हो। ये विशेषज्ञ ऐसे होने चाहिए जिन्हें सूत कातनेका पूरा ज्ञान हो, जो अच्छे चरखे और बुरे चरखेका अन्तर जानते हों और वे जो उन सूत कातनेवालोंके पास जिन्हें पेटभर खानेको नहीं जुटता, सहानुभूतिसे प्रेरित होकर जायें, उन्हें धीरजसे समझायें और अन्तमें उनको इतना प्रभावित कर सकें कि वे उनसे अपने चरखे सुधरवा लें। तभी वे उन्हें अधिक बारीक, अधिक मजबूत और अधिक एक-सा सूत कातनेका तरीका समझा सकेंगे। यह असम्भव नहीं है; लेकिन है कठिनाई और विस्तार क्षेत्रकी दृष्टिसे यह राष्ट्रके लिए सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण काम बन जाता है। इसका लाभ तुरन्त मिलता है इस कारण यह जल्दी सम्पन्न किया जा सकता है, इसके लिए किसी बड़ी पूँजीकी जरूरत भी नहीं है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ५-८-१९२६

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्रमें बेलगाँवसे १८ मील दूरके एक केन्द्रमें खादी कार्यकी उन्नतिकी तफसील थी। केन्द्रमें खेतिहर लोग अवकाशके समय कताई-बुनाई करते थे।

२८२. अनीतिकी राहपर – ६

श्री ब्यूरोने इस बातपर जोर दिया है कि विवाहसे पहले और विवाहित जीवनके दौरान भी ब्रह्मचर्यका पालन आवश्यक है। उन्होंने अनेक प्रमाण जुटाकर यह सिद्ध किया है कि इस प्रकारका आत्मसंयम सर्वथा सम्भव है और मन तथा देहके लिए हानिकारक होना तो दूर, वह हर तरहसे लाभदायक ही होता है। इसके बाद श्री ब्यूरोने एक पूरे अध्यायमें आजीवन ब्रह्मचर्यके महत्व और इसकी सम्भावनाकी चर्चा की है। अध्यायका यह प्रारम्भिक अनुच्छेद उद्धृत करने योग्य है:

> कामवासनाकी दासतासे वास्तविक मुक्ति पानेका अत्यन्त दुष्कर कार्य सम्पन्न करनेवाले इन वीरों, उद्धारकर्त्ताओंकी सबसे अगली पंक्तिमें आयेंगे वे युवक और युवतियाँ जो किसी बड़े उद्देश्यकी पूर्तिमें अपना जीवन खपा देनेके विचारसे गृहस्थ-जीवनके सुखोंका लोभ त्यागकर आजीवन ब्रह्मचारी रहनेका संकल्प कर लेते हैं। ऐसा संकल्प करनेके उनके अपने-अपने, यथास्थिति भिन्न-भिन्न कारण होते हैं। यदि कोई बूढ़े, अशक्त माता-पिताकी सेवाके विचारसे यह व्रत लेता है, तो दूसरा माता-पितासे वंचित अपने भाई-बहनोंके प्रति माता-पिता-जैसा ही कर्त्तव्य पूरा करना चाहता है। कुछ अन्य लोग कला-विज्ञानकी साधना, या दीन-दुखियोंकी सेवा अथवा नीति-शिक्षा या ईश्वरकी आराधनामें अपना सारा समय और शक्ति लगानेके लिए ऐसा व्रत लेते हैं। इसलिए इस ऐच्छिक त्यागका मूल्य भी न्यूनाधिक हो सकता है। सुशिक्षा और सदाचारके अभ्याससे कुछ लोगोंकी मानसिक वृत्ति ही ऐसी हो जाती है कि उनको विषय-वासनाओंका लोभ नहीं सताता, जबकि और आगे बढ़नेवाले कुछ अन्य लोगोंको अपनी वासनाओंपर विजय पानेके लिए अपनी पाशविक वृत्तियोंके साथ कठिन संघर्ष करना पड़ता है। जिन्हें यह करना होता है, वे ही जानते हैं कि यह संघर्ष कितना कठिन होता है। तरीका जो भी अख्तियार करना पड़े, अन्तिम निश्चय या संकल्प तो इन सभीका एक ही होता है। ये सभी स्त्री-पुरुष इसी निष्कर्षपर पहुँचते हैं कि उनके लिए सेवाका बस एक ही मार्ग है—विवाह न करना; और अपनी अन्तरात्माको साक्षी रखकर या ईश्वरके समक्ष वे पूर्ण ब्रह्मचर्यका जीवन बितानेका व्रत ले लेते हैं। किसीके लिए विवाह करना चाहे कितना ही निश्चित एवं असन्दिग्ध कर्त्तव्य क्यों न हो, पर यह तो समझा ही जा सकता है कि कुछ परिस्थितियोंमें मन और शरीरको पवित्र रखनेके ये संकल्प सर्वथा उचित होते हैं, क्योंकि इनके मूलमें एक उच्चादर्शपूर्ण, उदात्त उद्देश्य रहता है। माइकेल एन्जेलोने विवाहकी सलाहके उत्तरमें कहा था;

'चित्रकला एक ऐसी प्रेमिका है जो किसीका अपनी सौत बनना सहन नहीं कर सकती।"

ब्रह्मचर्यका व्रत लेनेवालोंके उक्त जो प्रकार श्री ब्यूरोने गिनाये है, मैं उस तरहके आत्मसंयमी अपने यूरोपीय मित्रोंमेंसे लगभग सभीके अनुभवोंसे इस साक्ष्यकी पुष्टि कर सकता हूँ। एक हमारा भारत ही ऐसा देश है जहाँ बचपनसे ही विवाह-की बातें कानोंमें पड़ती रहती हैं। हमारे यहाँ माता-पिताकी बस एक ही महत्वाकांक्षा रहती है और वह यह कि उनके बच्चोंका ठीक घरमें विवाह हो जाये और वे अपने पीछे काफी पैसा और सम्पत्ति छोड़ जायें। पहली कोशिश बच्चोंको असमय तन और मनसे बूढ़ा बना देती है, और दूसरे प्रयत्नमें वे काहिल और बहुधा दूसरोंके बलपर पलनेवाले शोषक व्यक्ति बन जाते हैं। हम ब्रह्मचर्य और स्वैच्छिक निष्कांचनताकी कठिनाइयोंके वर्णनमें अतिरंजना करते हैं और इनको अपनाना साधारण-जनकी शक्तिसे परे बतलाते हैं। हम कहते हैं कि ये व्रत तो महात्मा और योगी ही साध सकते हैं, हम संसारियोंमें इतनी क्षमता कहाँ! हम भूल जाते हैं कि जिस समाजका सामान्य नैतिक स्तर हदसे ज्यादा गिरा हुआ हो, उसमें सच्चे महात्मा और योगी पैदा ही नहीं हो सकते। सिद्धान्त है कि बुराई खरगोशके बेगसे और भलाई कछुएकी चालसे सुस्थिर, मन्द गतिसे चलती है। इस कारण पाश्चात्य देशोंकी इन्द्रियपरायणता विद्युतके समान हमारे पास पहुँचती है और अपनी लुभावनी चकाचौंधसे हमारी आँखें इस हद तक चौंधिया देती है कि हम जीवनके यथार्थको नही देख पाते। हमें अपने ब्रह्मचर्य-पर एक तरहसे शर्म आने लगती है; यहाँतक कि हम पाश्चात्य देशोंके आडम्बरके आगे अपने स्वैच्छिक दारिद्रय-व्रतको एक अपराध-जैसा मानने लग सकते हैं। इस पाश्चात्य वैभवकी झलक हमें नित्य-प्रति वहाँसे आनेवाले समाचारों और वहाँका माल लानेवाले जहाजोंके जरिये मिलती रहती है। लेकिन यहाँ भारतमें हमें जो-कुछ देखने-को मिलता है, पाश्चात्य देशोंकी वही वास्तविकता नही है। दक्षिण आफ्रिकाके गोरे वहाँ बसनेवाले भारतीयोंको देखकर समूचे भारतके प्रति जिस प्रकार गलत धारणा बना लेते हैं, उसी प्रकार यदि हम इन चीजोंको देखकर ही पाश्चात्य देशोंके बारेमें कोई धारणा बनायेंगे, तो हमारी धारणा नितान्त भ्रामक होगी। पाश्चात्य देशोंकी जनताके जीवनके तलमें भी पवित्रता और नैतिक बलका एक, छोटा-सा ही सही, झरना बह रहा है और जिनकी आँखें ऊपरी तड़क-भड़कसे धोखा नहीं खातीं, वे उसे देख सकते हैं। यूरोपीय देशोंके रेगिस्तानमें जहाँ-तहाँ ऐसे नखलिस्तान मौजूद हैं जहाँ जाकर इच्छुक लोग स्वच्छ जलसे अपनी प्यास बुझा सकते हैं। वहाँ भी सैकड़ो स्त्री-पुरुष बिना कोई ढोल पीटे, बिना कोई शेखी बघारे, बड़े ही सहज और विनम्र भावसे आजीवन ब्रह्मचर्य और स्वैच्छिक निष्कांचनताका व्रत लेते हैं; और बहुधा ऐसे व्रत किसी प्रियजनकी या अपने देशकी सेवाकी खातिर लिये जाते हैं। हम आध्या-त्मिकताके बारेमें बहुधा इस लहजेमें बातें करते हैं जैसे हमारे सहज, व्यावहारिक जीवनसे उसका कोई सम्बन्ध ही न हो, जैसे आध्यात्मिकता हिमालयकी एकान्त, दुर्गम कन्दराओंमें धूनी रमानेवाले योगियोंकी ही चीज हो। हमारे नित्यप्रतिके जीवनसे

अलग-थलग, असम्बद्ध आध्यात्मिक साधना तो महज एक हवाई कल्पना ही है। 'यंग इंडिया' के लेख हर हफ्ते जिन युवक-युवतियोंको सम्बोधित करके लिखे जाते हैं, उनको समझ लेना चाहिए कि अगर वे सामाजिक वातावरणको शुद्ध बनाना और अपनी कमजोरी दूर करना चाहते हों तो ब्रह्मचर्यका पालन उनका परम कर्त्तव्य है और यह उतना कठिन नहीं जितना कि कुछ लोग बतलाते हैं।

श्री ब्यूरो आगे कहते हैं:

> आधुनिक समाजशास्त्रकी सहायतासे मनुष्यके आचार-व्यवहारके विकास-क्रमको जितने ही अधिक सुसम्बद्ध ढंगसे समझा जा रहा है और उसका सुनियोजित अध्ययन समाजकी वस्तुस्थितिको जितनी गहराईसे प्रकाशमें ला रहा है, समाजके सामने ब्रह्मचर्यका महत्व उतना ही अधिक बढ़ता जा रहा है और इन्द्रियोंको संयमित करनेमें आजीवन ब्रह्मचर्यके योगदानका मूल्य उतना ही निखर कर सामने आता जा रहा है। . . . यदि समाजके बहुसंख्यक लोगों –– एक बहुत ही बड़े समुदाय –– के लिए विवाहित जीवन ही जीवनकी सामान्य अवस्था हो, तो इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि सभीका विवाह करना ठीक है या आवश्यक है। हमने अभी जिन असाधारण ध्येयोंका उल्लेख किया था, जो उनके कारण ब्रह्मचर्य-व्रत लेते हैं, उन्हें छोड़ दें तो भी आजन्म अविवाहित रहनेवाले लोगोंकी तीन श्रेणियाँ तो ऐसी हैं ही जिनको विवाहित होनेका कर्त्तव्य पूरा न करनेके लिए कोई दोष नहीं दे सकता . . . वे स्त्री-पुरुष जो अपने पेशेकी किसी बाध्यता या हाथकी तंगीके कारण विवाहको टालते जाते हैं; वे लोग जो मनपसन्द वर-वधू न पानेके कारण विवश होकर विवाह नहीं करते और वे जो भावी सन्तान या पत्नीको अपने किसी शरीरगत रोग या दोषसे बचानेके खयालसे समझते हैं कि उनको विवाह करनेका विचार तक नहीं करना चाहिए। क्या इससे स्पष्ट नहीं हो जाता कि इन लोगों द्वारा किया जानेवाला निग्रह उनके अपने सुख और समाज दोनोंके ही हितकी दृष्टिसे आवश्यक होता है? और क्या इस बातका अहसास कि उनके अतिरिक्त कुछ और लोग भी हैं जो शरीर और मनसे कहीं अधिक क्षमताशील होते हुए भी आजीवन ब्रह्मचर्यका दृढ़ संकल्प कर चुके हैं, उनके इस त्यागको अधिक सुगम और अधिक प्रसन्नतापूर्ण नहीं बना देता? भगवान, भगवद्भजन और आत्मिक साधनाको अपना जीवन समर्पित करनेवाले ये स्वैच्छिक ब्रह्मचारी लोग कहते हैं कि ब्रह्मचर्यका जीवन, हमारी दृष्टिमें, जीवनकी निम्नतर नहीं बल्कि उच्चतर अवस्था है, जिसमें मनुष्य अपनी पशु-प्रवृत्ति या सहज प्रेरणापर संकल्पके पूर्ण प्रभुत्वकी घोषणा करता है।

लेखक आगे कहता है:

> आजीवन ब्रह्मचर्यके उदाहरण अपरिपक्व अवस्थाके नवयुवक और नवयुवतियोंके सामने यह सिद्ध कर देते हैं कि तरुणाईको पवित्रतापूर्ण ढंगसे जीना

कोई असाध्य कार्य नहीं है। वे विवाहितोंको बताते हैं कि दाम्पत्य जीवनके नियमोंका पालन किया जाना चाहिए और स्वार्थके विचारोंको, फिर वे अपने-आपमें कितने ही न्याययुक्त क्यों न लगें, नैतिक उदारताकी उच्चतर माँगोंके आड़े कभी नहीं आने देना चाहिए।

फॉर्स्टर लिखते हैं:

> स्वेच्छापूर्वक लिये गये ब्रह्मचर्य-व्रतसे विवाहका महत्व कदापि कम नहीं होता; बल्कि उससे तो दाम्पत्य सम्बन्धकी पवित्रताको जबर्दस्त बल ही मिलता है; क्योंकि विवाह उसकी अपनी प्रकृतिसे उसकी मुक्तिका एक द्वार खोल देता है। क्षणिक वासनाओं और विकारोंके हमलेके समय वह अन्तरात्माकी आवाज बनकर उसकी सद्वृत्तियोंको बल पहुँचाता है। ब्रह्मचर्य एक प्रकारसे विवाह-सम्बन्धोंकी रक्षा भी करता है; क्योंकि ब्रह्मचर्यके कारण विवाहित लोग इस मान्यतासे इनकार कर देते हैं कि मनुष्य अपने पारस्परिक सम्बन्धोंमें कुछ अज्ञात प्राकृतिक शक्तियोंका निरा दास ही है; और इस प्रकार वे निर्भय बन जाते हैं तथा प्राकृतिक शक्तियों और आवेगोंको अपने वशमें कर सकनेवाले, मुक्त प्राणियोंकी तरह आचरण करनेमें समर्थ हो जाते हैं। आजीवन ब्रह्मचर्यकी खिल्ली उड़ानेवाले और इसे अस्वाभाविक या असाध्य बतलानेवाले लोग वास्तवमें यही नहीं समझते कि वे कर क्या रहे हैं। वे नहीं समझ पाते कि जिस तरहके तर्क वे दे रहे हैं उनसे तो वेश्यावृत्ति और बहुपत्नी-प्रथा सर्वथा अनिवार्य सिद्ध होते हैं। यदि प्राकृतिक या स्वभावगत आवेगोंको अदमनीय मान लिया जाये तो फिर हम विवाहित लोगोंसे पवित्रताके साथ जीवन व्यतीत करनेकी आशा कैसे कर सकते हैं? और फिर वे यह भी भूल जाते हैं कि विवाहितोंमें किसी लम्बी बीमारी या मजबूरीके कारण कई महीनों या वर्षों और यहाँतक कि आजीवन ब्रह्मचर्यका पालन करनेपर बाध्य जीवन-साथियोंकी संख्या भी कम नहीं होती। अन्य कारणोंको छोड़ दें तो भी इसी एक कारणसे सच्चे किस्मके एकपत्नीव्रतके भाग्यका दारोमदार इसी बातपर है कि हम ब्रह्मचर्यको कितनी-क्या प्रतिष्ठा प्रदान करते हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ५-८-१९२६

२८३. थोपा हुआ वैधव्य

सर गगारामने हिन्दुस्तानमे और अलग-अलग प्रान्तोमे विधवाओंकी संख्याके आँकड़े प्रकाशित किये है। ये आँकड़े कामके हैं और प्रत्येक सुधारकके हाथमें रहने चाहिए।

सर गगारामने राष्ट्रीय उन्नतिका जो क्रम बतलाया है, उससे कम ही लोग सहमत होंगे। उनके मतानुसार यह क्रम इस प्रकार है:

१. सामाजिक सुधार

२. आर्थिक सुधार

३. स्वराज्य या राजनीतिक स्वातन्त्र्य।

सर गगाराम-जैसे पहलेके अन्य उत्साही समाज-सुधारकोका मत हू-बहू ऐसा ही नही था। रानडे, गोखले, चन्दावरकर स्वराज्यको समाज-सुधार जितना महत्त्व देते थे। लोकमान्य तिलक भी समाज-सुधारके मामलेमे किसीसे कम उत्साही नही थे। परन्तु उन्होने या उनसे पहलेके लोगोने सभी प्रकारके सुधारोंका साथ-साथ चलना उचित और आवश्यक माना था। सच पूछो तो लोकमान्य ओर गोखले तो राजनीतिक सुधार-को अन्य सभी सुधारोंसे अधिक आवश्यक मानते थे। उनका मत था कि हमारी राजनीतिक गुलामीने हमे ओर किसी कामके लायक ही नही रख छोड़ा है।

बात यह है कि राजनीतिक स्वतन्त्रताका अर्थ होता है जन-जागृति। राष्ट्रीय प्रगतिके किसी भी अगपर इसका प्रभाव पड़े बिना रह नही सकता। उन्नति-मात्रका अर्थ जागृति ही है। एक बार जाग्रत हो जानेपर केवल किसी एक ही क्षेत्रमे सुधार करके ही राष्ट्रका चुप बैठना असम्भव है। इसलिए सभी आन्दोलनोको साथ-साथ चलते रहना चाहिए।

सुधारोंके क्रमको लेकर सर गंगारामके साथ बहसमे पड़नेकी जरूरत नही है।[1] हम राजनीतिक या आर्थिक उद्धारके लिए उनके बतलाये हुए उपायको भले ही ठीक न माने परन्तु सामाजिक सुधारके मामलेमे सर गगारामके उत्साहकी तो प्रशसा ही करनी पड़ेगी। जो आँकड़े उन्होंने दिये हैं वे सचमुच ही भयकर है। वे पूछते हैं कि "इन आँकड़ोको देखकर, जिनसे बाल-विवाह और थोपे हुए वैधव्यसे फैली हुई दुर्दशाका पता लगता है, कौन नही रो पड़ेगा?" १९२१ की जनगणनाके अनुसार हिन्दू विधवाओकी संख्याके आँकड़े ये है:

५ वर्ष तककी विधवाएँ	११,८९२
५-१० ,, ,,	८५,०३७
१०-१५ ,, ,,	२,३२,१४७
	३,२९,०७६

१. यहाँ मूल अंग्रेजीमें मुद्रणकी भूल सुधारकर अनुवाद किया गया है। देखिए "भूल-सुधार", १२-८-१९२६।

उन्होंने पिछली दो जन-गणनाओंके आँकड़े भी दिये हैं। यह संख्या उन दो गणनाओंमें प्राप्त आँकड़ोसे कुछ अधिक ही है। दूसरे सम्प्रदायोंकी विधवाओंकी भी संख्या दी गई है। उससे तो इसका और भी अधिक पता चलता है कि हिन्दू बाल-विधवाओंपर कितना अत्याचार किया गया है। धर्मके नामपर हम गोरक्षाके लिए शोर करते हैं, परन्तु मनुष्य रूपमें इन बाल-विधवा रूपी गायोंकी हम रक्षा नही करते। धर्मके लिए हम जोर-जबर्दस्ती पसन्द नही भी करेंगे[1] परन्तु धर्मके ही नामपर हम ३ लाख ऐसी बाल-विधवाओंको वैधव्य भोगनेपर विवश करते हैं जिन्होंने विवाह-संस्कारका अर्थतक नही समझा है। छोटी बच्चियोंको जबर्दस्ती विधवा बनाकर रखना एक *पाप है और हम उसका कड़वा फल बराबर चख रहे हैं। यदि* हमारी आत्मा कुण्ठित न होती तो वैधव्यकी बात तो दूर, १५ वर्षसे पहले हम विवाह ही न होने देते और इनके विषयमें यह कहते कि इन तीन लाख लड़कियोका तो धार्मिक दृष्टिसे विवाह कभी हुआ ही नही। इस प्रकारके वैधव्यका विधान किसी भी शास्त्रमें नही हैं। यदि किसी स्त्रीने अपने पतिके प्रेमका अनुभव कर लिया हो और तब स्वेच्छासे वैधव्य स्वीकार किया हो तो वैधव्यसे उसका जीवन पवित्र होता है और चमक उठता है, घर पावन बन जाता है और धर्मकी भी उन्नति होती है। पर रूढ़िसे जबरन लादा हुआ वैधव्य असह्य हो जाता है और परिणामतः गुप्त पापसे अपवित्रता फैलती है और धर्मकी अवनति होती है।

५० वर्षके या उससे भी अधिक उम्रके बूढ़े और रोगी व्यक्तिको इन छोटी बच्चियोंको पत्नी बनाते, बल्कि पत्नीके रूपमें एकके बाद दूसरीको खरीदते हुए देखकर भी क्या हमें यह वैधव्य असह्य नही मालूम होता? जबतक हमारे यहाँ हजारों विधवाएँ पड़ी हुई हैं, तबतक हम मानो दलदलपर चल रहे हैं, और न जाने कब उसके भीतर धँस जायेंगे। यदि हमें पवित्र बनना है, यदि हमें हिन्दू धर्मकी रक्षा करनी है तो लादे हुए वैधव्यके इस विषसे मुक्त होना ही होगा। जिनके यहाँ बाल-विधवाएँ हैं, वे पूरी हिम्मत करके अपनी बाल-विधवाओंका पुनर्विवाह नही, बल्कि ठीक-ठीक विवाह कर दें। पुनर्विवाह तो यह नही है, क्योंकि पहले उनका सच्चा विवाह कभी हुआ ही नही था।

[*अंग्रेजीसे*]

यंग इंडिया, ५-८-१९२६

१. यहाँ मूल अंग्रेजीमें मुद्रणकी भूल सुधारकर अनुवाद किया गया है। देखिए "भूल-सुधार", १२-८-१९२६।

२८४. विद्यालयोंमें कताई

नीचे बनारस नगरपालिकाकी शालाओंमें कताईका काम किस प्रकार चल रहा है, उसका विवरण दिया जा रहा है:

विद्यालयोंकी संख्या	३४
शिक्षकोंकी संख्या	१७५
विद्यार्थियोंकी संख्या	४,०००
जिन्हें कातना और धुनना आता है उन शिक्षकोंकी संख्या	सभी
जिन्होंने कातना और धुनना सीख लिया है उन विद्यार्थियोंकी संख्या	५७८
प्रत्येक पाठशालामें चरखोंकी औसत संख्या	१०
आजकल जो सूत औसतन प्रतिमास काता जाता है	३० सेर
सूतका औसत अंक	१० नं०
उस सूतसे बुने गये कपड़ेकी लम्बाई	१,००० गज
शुरूसे आजतक काता गया कुल सूत	४ मन
उक्त पाठशालाओंमें कताई शुरू करनेका वर्ष	१९२४

अबतक जो खर्च हुआ है वह इस प्रकार है:

(क)	कपास	७४७)	
(ख)	चर्खे	१५००)	
(ग)	चर्खोंकी मरम्मत	५०)	
(घ)	फुटकर खर्च	६३)	प्रतिमास
(च)	अन्य आवश्यक खर्च	४०)	प्रतिमास
(छ)	निरीक्षण	३९)	प्रतिमास

कताईका शिक्षण शुरू करनेके समयसे आज तकका काता हुआ सूत बहुत अधिक नहीं कहा जा सकता। जहां फी स्कूल १० चरखे हैं वहां अधिक काते जानेकी आशा नहीं की जा सकती, क्योंकि यह स्पष्ट है कि चरखोंकी यह संख्या इतनी कम है कि पाठशालाके सब बालक प्रतिदिन उनका उपयोग नहीं कर सकते। इसलिए मैं तो नगरपालिकासे सिफारिश करना चाहता हूँ कि वह स्कूलोंमें तकलीका प्रवेश कराये। यदि ऐसा किया जायेगा तो परिणाम यह होगा कि खर्चको बिना विशेष रूपसे बढ़ाये तिगुना सूत तैयार होने लगेगा। किसी प्रकारकी मरम्मतकी जरूरत न रहेगी और अन्य सभी प्रकारका खर्च बच जायेगा। विद्यालयके विद्यार्थियोंका प्रत्येक क्षण काममें आ सकेगा; और आमदनीमें उसी हिसाबसे बढ़ोतरी हो जायेगी। कताईको स्कूलोंमें दाखिल करनेका काम बनारस नगरपालिकाने सबसे पहले शुरू किया है। अनुभवसे यह बात सिद्ध हुई है कि विद्यालयोंकी हदतक तो तकलीका उपयोग बहुत ही अच्छा है। मैं आशा करता हूँ कि यह नगरपालिका निस्संकोच इतना परिवर्तन कर लेगी।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ५-८-१९२६

२८५. पत्र : धीरेन्द्रचन्द्र लाहिड़ीको

आश्रम
साबरमती
५ अगस्त, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आपके प्रश्नोंके उत्तर ये हैं :

१. जीवनका उद्देश्य आत्मशुद्धि होना चाहिए।

२. जीवनकी रिक्तता जीवनको नि:स्वार्थ सेवासे भर देनेपर दूर हो जाती है।

३. हर गलत कामका दण्ड होना ही चाहिए। जब मनुष्य पापहीनताकी स्थिति प्राप्त कर लेता है, तब उसे दण्डका बोध नहीं रह जाता क्योंकि फिर वह जिसके साथ अन्याय करता है, वह व्यक्ति भी उसके मनमें शेष नहीं रहता। आपने जिस लड़कीके प्रति अपराध किया है उसके विषयमें आपको सोचना बन्द कर देना है, और ऐसा आप तभी कर पायेंगे जब आप इस अपराधकी गम्भीरताको समझेंगे और ऐसा मानेंगे कि वह लड़की आपकी सगी बहनकी तरह है।

४. जो भी हो, जबतक आप उस लड़कीको बिलकुल भूल नहीं जाते तबतक आपको शादीकी बात सोचनी ही नहीं चाहिए।

५. स्वार्थ भावनाको तो बिना किसी प्रतिदानकी आशा किये निष्ठापूर्वक दूसरोंकी सेवाके जरिये ही दूर किया जा सकता है।

६. पाशविक आवेगोंको इस अनुभूतिके बलपर वशमें रखा जा सकता है कि हम पशु नहीं, मानव हैं। हम मनुष्योंका तो ध्येय ही अपनी वासनाओंपर नियन्त्रण रखना है, क्योंकि हम शुद्ध पशु जीवनसे ऊपर उठ चुके हैं।

७. एकाग्रता जीवनको किसी एक पवित्र सेवाकार्यमें लगानेसे आती है।

८. अगर मनुष्य यह समझ ले कि दुःख और दुर्भाग्य तो समस्त मर्त्य प्राणियोंके साथ लगे हुए ही रहते हैं तो वह इन्हें सहन करना सीख सकता है। आश्चर्य तो यही है कि हमारे दुःख और दुर्भाग्य दूसरोंसे कुछ कम ही हैं।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत धीरेन्द्रचन्द्र लाहिड़ी
द्वारा श्री शैलेन्द्रनाथ लाहिड़ी
प्रेसिडेंसी जेल
अलीपुर डाकघर
(२४ परगना)

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०९७५) की फोटो-नकलसे।

२८६. पत्र : वच्छराज जमनालालको

आश्रम
साबरमती
आषाढ वदी १२, १९८२ [५ अगस्त, १९२६]

सेठ वछराज जमनालालजी,

आपका पत्र और साथमें ५,००० रुपयेका चेक भी मिला। उसकी रसीद इसके साथ है। आपने रंगूनसे आई रकमकी पहुँचका जो मसविदा भेजा है, वह ठीक है। उसी तरहकी पहुँच लिखकर भेज दें। मसविदा वापस भेजता हूँ।

आप 'यंग इंडिया' में प्रकाशनार्थ जो टिप्पणी लिखें, उसमें मुझे भेजी हुई सूची भी शामिल कर लें।

मोहनदासके वन्देमातरम्

सेठ वच्छराज जमनालालजी
कालबादेवी, बम्बई

गुजराती पत्र (एस० एन० १२२३९) की माइक्रोफिल्मसे।

२८७. पत्र : प्रद्युम्नराय वी० शुक्लको

आश्रम
५ अगस्त, १९२६

भाईश्री प्रद्युम्नराय,

आपका पत्र मिला। मेरी स्थिति कुछ दयनीय है। किसीको यह वचन देना कि उसके पत्रको कोई भी न देखेगा लगभग असम्भव है। मेरा पत्र-व्यवहार इतना विस्तृत है कि मैं ऐसा वचन नहीं दे सकता। इसलिए इतना ही कहा जा सकता है कि मेरे पत्रोंको जो सँभालते हैं उनके अलावा कोई दूसरा उन्हें नहीं देखेगा; क्योंकि मैं इस तरहके पत्रोंको तुरन्त फाड़ देता हूँ। यदि ऐसा न करूँ तो मैं इतना भी न कह पाऊँ। अपने अधिकांश पत्र तो मुझे दूसरोंसे ही लिखवाने पड़ते हैं।

मोहनदास गांधीके वन्देमातरम्

श्री पी० वी० शुक्ल
वाडेकर बिल्डिंग, कमरा सं० ३१
डेकन जिमखाना, पूना

गुजराती पत्र (एस० एन० १९९४१) की माइक्रोफिल्मसे।

२८८. पत्र: जी० सीताराम शास्त्रीको

आश्रम
साबरमती
६ अगस्त, १९२६

प्रिय मित्र,

श्री बैंकर मुझे बताते हैं कि वे आपको समस्त भारतमें खादीके कार्यका लेखा रखनेके लिए आवश्यक, प्रदेशके कार्यके आँकड़ों और ऐसी अन्य जानकारीके लिए बार-बार लिखते रहे हैं। लेकिन उनका कहना है कि उन्हें आन्ध्रसे पूरे आँकड़े प्राप्त नहीं हो पाये हैं। मेरी इच्छा है कि आप इस कार्यको हाथमें लें और आँकड़े पूरे करके भेजें।

मैंने 'यंग इंडिया' में जो तालिका प्रकाशित की है, आप उसे देखेंगे। मैं इस तालिकाको पूर्ण बनाना चाहता हूँ। लेकिन जबतक मुख्य-मुख्य केन्द्र मुझे पूरी जानकारी नहीं देते तबतक यह नहीं हो सकता। क्या आप मुझे बतायेंगे कि आँकड़े तैयार करने और भेजनेमें क्या कठिनाई है?

हृदयसे आपका,

जी० सीताराम शास्त्री
गुण्टूर

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११२१९) की माइक्रोफिल्मसे।

२८९. पत्र: सतीशचन्द्र दासगुप्तको

आश्रम
साबरमती
६ अगस्त, १९२६

प्रिय सतीश बाबू,

मैंने उत्कल सम्बन्धी पत्र-व्यवहार देखा है। निरंजनबाबूका पत्र मिलते ही उनको ५,०००[1] रुपया भेजनेका प्रबन्ध कर दिया गया। यह रकम उनको अबतक मिल चुकी होगी। उत्कलकी जो जिम्मेदारी आपको सौंपी गई थी उससे आप अपनेको मुक्त न मानिये। बात असलमें यह हुई कि निरंजनबाबू द्वारा भेजे गये कागजात देखनेके बाद मैंने नारायणदाससे उनके साथ पत्र-व्यवहार करनेके लिए कहा, जिसमें

१. देखिए "तार: जमनालाल बजाजको", ३-८-१९२६ या उसके पश्चात्।

कि और अधिक तथ्य प्रकाशमें आये तथा स्थितिके बारेमें और जानकारी मिले। लेकिन उत्कलका काम सीधे यहाँसे चलानेका कोई सवाल ही नहीं था। मैं उनके वापस आनेपर ही इसके बारेमें आगे लिख सकूँगा। इस बीच मुझे उनकी एक शर्त याद आती है, जो मुझे भी पसन्द आई थी। अब चूँकि उत्कलका कार्य हमारा अपना मामला है, इसलिए उत्कल कार्यकी रिपोर्ट देनेके लिए किसी विशेष निरीक्षककी आवश्यकता नहीं। निरंजनबाबू स्वयं हमारे अपने आदमी हैं।

हमारे वकील श्री मावलंकरका कहना है कि सर प्रफुल्लचन्द्र रायके न्यास पत्रमें शामिल शेयर भी अगर मंसूख नहीं होते तो सिर्फ उस न्यासपत्रको मसूख करनेसे स्थिति निरापद नहीं होगी। नियमत. श्री मावलंकरका कहना सही है और चूँकि जमानत देनेकी व्यवस्था मौजूद है, इसलिए मेरे खयालसे उसकी कार्रवाई पूरी की ही जानी चाहिए। क्या शेयरोंको अपने कब्जेमें लेनेमें कोई दिक्कत होगी? आपकी जानकारीके लिए मैं श्री मावलंकरके पत्रकी[1] एक प्रति संलग्न कर रहा हूँ।

आप 'यंग इंडिया'के इसी अंकमें प्रकाशित आँकड़े देखेंगे। आप कृपया किसी व्यक्तिसे खादी प्रतिष्ठान कार्यके लिए तालिका तैयार करनेके लिए कह दीजिये।

हेमप्रभा देवी अब कैसी हैं?

हृदयसे आपका,

श्रीयुत सतीशचन्द्र दासगुप्त
खादी प्रतिष्ठान
१७०, बहू बाजार स्ट्रीट
कलकत्ता

[पुनश्च :]

संघको लिखे आपके एक पत्रसे मैंने जाना कि आपने ५,००० रुपये ६ प्रतिशत और ५,००० रुपयेकी अन्य एक रकम १२ प्रतिशत सूदकी दरपर ले रखी है। आशा है कि यह लेन-देन चोखा है। मैं आपको आगाह कर चुका हूँ कि जो सार्वजनिक कार्यकर्ता पर्याप्त निर्लिप्ततासे काम करता है उसके लिए निजी तौरपर कर्ज लेना और विशेषकर उसपर सूद देना एक बड़ी खतरनाक चीज है। लेकिन आप तो खुद ही अच्छी तरह जानते हैं कि क्या करना चाहिए और क्या करनेसे बचना चाहिए।

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११२२०) की माइक्रोफिल्मसे।

१. उपलब्ध नहीं है।

२९०. पत्र : गंगाबहनको

आश्रम
साबरमती
६ अगस्त, १९२६

प्रिय बहन,

देखता हूँ, कि तुमने गुजराती तो नहीं, अंग्रेजी लिखनी शुरू कर दी है। तुम कहती हो, 'मेरे पति छोटे-छोटे बच्चोंको पढ़ानेका काम कैसे कर सकते हैं?' तुम ऐसा क्यों कहती हो? क्या बच्चोंको पढ़ाना गौरवकी बात नहीं है? इस समय जो गन्दा और अस्वास्थ्यकर है, तुम उसे स्वच्छ और स्वास्थ्यकर बना दोगी। अहमदाबादसे तुम्हारे लगावकी बात मेरी समझमें आती है। पर मैं नहीं चाहता कि तुम वहाँके संघर्षसे हाथ खींचो। इतनी चेतावनीके बाद मैं कह सकता हूँ कि तुम इसे अपना घर समझो और जब चाहो तब आओ।

हृदयसे तुम्हारा,

श्रीमती गंगाबहन
द्वारा आचार्य गिडवानी
वृन्दावन

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११२७०) की माइक्रोफिल्मसे।

२९१. पत्र : आ० टे० गिडवानीको

आश्रम
साबरमती
६ अगस्त, १९२६

प्रिय गिडवानी,

आपका पत्र मिला। तकुए भी मिल चुके हैं। तकुए अच्छे नहीं हैं। थोड़ा भी दबाव पड़नेपर उनके सिरे मुड़ जाते हैं। वे इतने कमजोर हैं कि सूत भरनेमें ही गरम हो जाते हैं और थोड़ी-थोड़ी देर बाद उन्हें ठंडा करना पड़ता है। मैं समझता हूँ कि अभी आपको नमूनेके तकुए नहीं मिले हैं। अगर विद्यालयके कारखानेमें इस तरहके तकुए तैयार होने लगेंगे तो वह एक बहुत बड़ा काम होगा। कई हजारकी माँग आई पड़ी है। आपने जो नमूने भेजे हैं, वे तकुए भी जैसे चाहिए वैसे नहीं हैं। अगर तकुआ बिलकुल ठीक न हो, तो वह घूमते समय काँपता है। तकुएका काँपना अच्छा सूत कातनेमें बहुत बड़ी बाधा है।

में नवयुवक भरतके हाथ तकलीका एक नमूना भी भेजूंगा।[1] उसे जल्दीसे-जल्दी भेजा जायेगा।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११२७१) की माइक्रोफिलमसे।

२९२. पत्र : छोटालाल गांधीको

आश्रम
६ अगस्त, १९२६

भाईश्री ५ छोटालाल,

आपका पत्र मिला। कई बार यह समझना कठिन हो जाता है कि धर्म क्या है। आप एक बैंकके व्यवस्थापक मण्डलके सदस्य बननेके बाद बैंकके नियमोंके प्रतिकूल कार्य नहीं कर सकते। बैंककी न तो ऐसी कोई धारा होगी और न हो सकती है कि अमुक-अमुक धन्धे करनेवाले अथवा अमुक धर्मके अनुयायीको रुपया नहीं दिया जा सकता। प्रस्तुत उदाहरणसे तो यही बात प्रकट होती है कि आपको बैंक-जैसी संस्थामें नहीं रहना चाहिए। लेकिन यदि आप इसमें रहते हैं, तो आप उसके वर्तमान दोषोंमें भागीदार अवश्य हैं। मेरे कहनेका अभिप्राय यह है कि जबतक आप बैंकमें हैं तबतक आपको अपना मत, प्रार्थीके धन्धे और धर्मका विचार किये बिना, बैंकके पैसेकी सुरक्षाका ध्यान रखते हुए देना चाहिए।

मोहनदासके वन्देमातरम्

श्री छोटालाल घेलाभाई गांधी
अंकलेश्वर

गुजराती पत्र (एस० एन० १९९४३ ए) की माइक्रोफिलमसे।

१. देखिए "पत्र : आ० टे० गिडवानीको", १२-८-१९२६।

२९३. पत्र : नानाभाई भट्टको

आश्रम
साबरमती
शुक्रवार, आषाढ वदी १३ [६ अगस्त, १९२६][1]

भाईश्री ५ नानाभाई,

आज कोई सोमवार तो है नही कि मैं आपको अपने ही हाथका लिखा पत्र भेज सकूं। पढ़नेसे जो समय बचे उसे मेरे खातेमे जमा रखें। मैंने जो भेद बताया था[2] वह आपके ही शब्दोमे बताया था। यदि वह भेद हो तो भी आप मेरा काम बिगाड़ देंगे, ऐसा मेरे मनमे भय नही है; क्योंकि विद्यापीठका कार्य कोई मेरे अकेलेका ही नही है। वह कार्य जितना मेरा है उतना ही आप सबका भी है। हम सब लोगोंके कार्यका लेखा-जोखा करनेके बाद जो शेष रह जायेगा वह भगवानका। इस बार आपने जो नया हल सुझाया है मुझे उसमे कोई भेद नही दिखता। शिक्षक, शिक्षकके रूपमे ही चरखेका प्रचार कर सकता है, यह बात मुझे सर्वथा मान्य है। आप खादीकी प्रवृत्तिको शिक्षाका आधार मानें। उसका अन्त तो तभी होता है जब मुक्ति मिल जाती है।

नरहरि सूरत जायें[3], यह सुझाव देनेवाला मैं था और उस समय स्वयं नरहरिने ही यह कहा था कि उनके वहां रहनेकी अवधि निश्चित कर दी जाये। अब यदि वे सूरतमें स्थायी रूपसे बस जाना और स्कूलके काममे तन-मनसे लग जाना चाहें तो ऐसा वे मेरे कहनेसे नही; अपितु अपनी इच्छासे ही करें। मैं उसका तनिक भी विरोध न करूँगा। मेरा विरोध तो, उनमें जो व्यग्रता है, उससे है। यदि नरहरि किसी कामको हाथमें लेते हैं और यह देखते हैं कि उसका परिणाम उपयुक्त नही निकल रहा है तो वे उससे थोड़े ही समयमे ऊब जाते हैं। उनकी इस ऊबके कारण हमे उनसे सरभौण-का काम[4] ले नही लेना चाहिए। इन सब बातोंपर विचार करनेके बाद नरहरिको जैसा उचित लगे वैसा अवश्य करें। वे सूरतके विद्यालयको न सँभालेंगे, मैंने यह बात तो स्वप्नमे भी नही सोची थी। मेरी इच्छा तो यही है कि वे अपने धर्मसे च्युत न हों।

दक्षिणामूर्ति—भावनगर

गुजराती प्रति (एस० एन० १२२१२) की फोटो-नकलसे।

१. पत्रमें नरहरि परीखके सूरत जानेकी चर्चासे लगता है कि यह पत्र १९२६में लिखा गया होगा।
२. देखिए "पत्र : नानाभाई भट्टको", १९-७-१९२६।
३. नरहरि परीखसे सूरतके राष्ट्रीय स्कूलके प्रधानाध्यापकका कार्य सँभालनेके लिए कहा गया था।
४. सूरत जिलेके सरभौण गाँवमें स्थित स्वराज्य-आश्रमका।

२९४. पत्र : रामानन्दको

आश्रम
६ अगस्त, १९२६

भाई रामानदजी,

आपका पत्र मिला है। दलितोद्धारके कार्यमे में आपको क्या मदद दे सकता हूँ? जिसके संरक्षक स्वयं स्वामीजी[1] हैं उसको मेरी मदद क्या हो सकती है? दलितोंकी सेवाके लीये जिनके पास मैं जा सकता हूं उन्हीके पास स्वामीजी भी जाते हैं। जुगलकिशोरजीके[2] पास मेरी शीफारस क्या और काम कर सकती है? आपकी पत्रिका 'यं० इं०' की दृष्टिसे वहुत अनिश्चित है।

आपका,
मोहनदास

श्री रामानंदजी
दलितोद्धार सभा
दिल्ली

मूल पत्र (एस० एन० १९९४२ ए) की माइक्रोफिल्मसे।

२९५. पत्र : देवेन्द्रनाथ मैत्रको

आश्रम
साबरमती
७ अगस्त, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। निश्चय ही 'खद्दर' शब्दमें सभी घरेलू उद्योग शामिल नहीं हैं। लेकिन वह उनका विरोधी भी नहीं है। यज्ञार्थ कर्मके रूपमें कताई करना निस्सन्देह प्रत्येक मनुष्यके लिए आवश्यक है। फिर वह चाहे किसी भी कुटीर उद्योगमें लगा हो। यज्ञार्थ कर्मके रूपमें अपने खाली वक्तमें कताई करनेवाला मनुष्य निश्चय ही उस मनुष्यसे कही अधिक अच्छा काम करता है जो धनोपार्जनकी दृष्टिसे अधिक

१. स्वामी श्रद्धानन्द।
२. जुगलकिशोर बिड़ला।

लाभप्रद उद्योगमें अपना समय देता है; क्योंकि वह कोई यज्ञार्थ कर्म नही करता और इसीलिए देशके गरीबोंके साथ उसका तादात्म्य नही होता।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत देवेन्द्रनाथ मैत्र
२५, बाराकुठी रोड
खागरा
जिला मुर्शिदाबाद

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११२२१) की माइक्रोफिल्मसे।

२९६. पत्र : प्रभाशंकर पट्टणीको

आश्रम
साबरमती
शनिवार, आषाढ वदी १४ [७ अगस्त, १९२६][1]

सुज्ञ भाईश्री,

आपका पत्र मिला। यदि आप दूधको कीटाणुरहित करवानेके बाद उसे बर्फकी कोठरीमें रखवा देंगे तो मुझे विश्वास है कि वह खराब नही होगा। फिर रास्तेमें बन्दरगाह तो पड़ेंगे ही। हर बन्दरगाहमें ताजा दूध मँगाया जा सकता है। जहाजवाले दो अथवा तीन बकरियाँ आसानीसे रख लेते हैं। कुछ जहाजोंमें गाय भी रख ली जाती है। जब मेरे फिनलैंड जानेकी बात चली थी[2] तब बकरियाँ साथ ले जानेकी बात भी हुई थी। इसके अतिरिक्त नेसल कम्पनीका मीठा और सादा, दोनो तरहका गाढा किया हुआ दूध बन्द डिब्बोंमें मिलता है। उसपर भी निर्वाह किया जा सकता है; अन्तमें हॉर्लिक्सका सूखा दूध तो है ही। यह चूर्णके रूपमें आता है और दूधकी सारी आवश्यकता पूरी करता है। इस सबके बाद भी यदि बकरी अकस्मात् ही मर जाये, हॉर्लिक्सके चूर्णकी शीशी टूट जाये, नेसलके गाढ़े दूधका डिब्बा खराब निकल जाये तो इसमें सन्देह नहीं कि उस दिन आप केवल फलोंपर ही रह सकते हैं। यदि आप इतना नियम पाल सकें तो मुझे कोई शक नही है कि आपकी तन्दुरुस्ती अच्छी रहेगी। अन्य बातें तो यदि [बम्बई] जाते हुए आप मुझसे मिलें तो ही हो सकती है।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ३२०६) की फोटो-नकल तथा जी० एन० ५८९२ से भी।
सौजन्य : महेश पट्टणी

१. डाककी मुहरसे।
२. अप्रैल, १९२६ में गांधीजीको फिनलैंडसे अगस्त, १९२६ के विश्व विद्यार्थी सम्मेलनमें भाग लेनेका निमन्त्रण मिला था। उन्होंने पहले इसे स्वीकार कर लिया था, किन्तु बादमें जून, १९२६ में अपनी अस्वीकृति सूचित कर दी थी।

२९७. पत्र : फूलचन्द कस्तूरचन्द शाहको

आश्रम
साबरमती
शनिवार, आषाढ़ वदी १४, ७ अगस्त, १९२६

भाई फूलचन्द,

तुम्हारा पत्र मिला। राष्ट्रीय शालाके लिए ५०० रुपयेकी हुंडी भेजता हूँ। ३०० रुपयेकी हुंडी मूलचन्दभाईको भी भेज रहा हूँ। मैंने दूध छोड़नेका प्रयोग किया था; इसी कारण मेरा वजन घट गया था। अब मैं दूध फिर पीने लगा हूँ और इससे वजन बढ़ रहा है; किन्तु प्रगति मन्द है। पिछले सात दिनोंमें कुल सवा पौंड वजन बढा है।

परिषद्की बैठक फरवरीमें शुक्रवार या शनिवारको रखें तो मुझे सुविधा रहेगी। बुधवारको रखनेसे भी असुविधा नहीं होगी।

श्री फूलचन्द कस्तूरचन्द शाह
राष्ट्रीय शाला
वढवान

गुजराती प्रति (एस० एन० १२२४१) की माइक्रोफिल्मसे।

२९८. पत्र : मूलचन्द उ० पारेखको

आश्रम
साबरमती
शनिवार, आषाढ़ वदी १४, ७ अगस्त, १९२६

भाई मूलचन्दभाई,

भाईश्री फूलचन्द लिखते हैं कि २०० रुपये आपके पास हैं। आप उनका उपयोग कर लें। मैं इसके साथ ३०० रुपयेकी हुंडी भेजता हूँ।

श्री मूलचन्द उ० पारेख
वरतेज
काठियावाड़

गुजराती प्रति (एस० एन० १२२४२) की माइक्रोफिल्मसे।

२९९. पत्र : रामेश्वरको

आश्रम
साबरमती
शनिवार, आषाढ़ कृष्ण १४, [७ अगस्त, १९२६][1]

भाई रामेश्वरजी,

आपका पत्र मिला। लड़कोंको बाईबलका अभ्यास मैं स्वेच्छासे नहीं करा रहा हूँ। उनकी ही यह इच्छा थी। सनातनधर्मी दूसरा कुछ न जानें ऐसा न होना चाहिए। दुसरे धर्मोंका परिशोधन करके हम धर्मकी वृद्धि ही कर सकते हैं। उसको शोधनका डर नहीं होना चाहिए।

अदालतोंमें जानेसे जबतक संभवित हो आप बचते रहें। चर्खा न हो तो तकलीसे काम लीजिये।

आपका,
मोहनदास

मूल पत्र (जी० एन० १६५) की फोटो-नकलसे।

३००. बैल बनाम मोटर

काकासाहब लिखते हैं :[2]

काकासाहबके विचार मनन करने योग्य हैं, खास करके आजकल सच्ची गोरक्षाके उपाय बतानेवाले जो विचार लगभग हर सप्ताह 'नवजीवन' में प्रकाशित किये जाते हैं उन्हें देखते हुए। जिस तरह हम दूध पीना बन्द कर दें तो लाख प्रयत्न करने पर भी जनता गायकी रक्षाका प्रश्न हल नहीं कर सकती, उसी तरह अगर हम गायके वंशजोंका खेती आदिमें उपयोग करना बन्द कर दें तो उनकी रक्षा भी अशक्य हो जायेगी। जिससे निरन्तर आर्थिक हानि होती है, उस वस्तुको इस जगत्में कोई भी मनुष्य आजतक कायम नहीं रख सका है। इसीलिए मैंने बहुत बार कहा है कि जहाँ धर्म और अर्थ साथ नहीं चल सकते, वहाँ या तो धर्म झूठा है या अर्थ निरा स्वार्थ है; उससे सार्वजनिक हित नहीं होता। शुद्ध धर्ममें सदा शुद्ध अर्थ निहित रहता है। अपूर्ण मनुष्यके लिए धर्मकी परीक्षाकी यह एक सुन्दर कसौटी है। गायें-भैंसें बड़े शहरोंमें सार्वजनिक हितकी दृष्टिसे भारस्वरूप हो गई हैं, इसीलिए उनकी हत्या बढ़ती

१. डाककी मुहरसे।

२. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। इसमें काका कालेलकरने कहा था कि सवारीके साधन और माल लाने ले जानेके लिए मोटरोंके बढ़ते हुए प्रयोगसे ग्रामोंकी अर्थव्यवस्थाको खतरा है।

चली जा रही है। अगर हमे गायो ओर भैंसोका वड़े शहरोमें सदुपयोग करना न आयेगा तो इसमें कोई शंका नही कि उनका वचाव किसी भी उपायसे न किया जा सकेगा। आज तो हालत ऐसी नही जान पडती कि हम रेलोके विना काम चला सके। लेकिन अगर हम यह समझ ले कि रेलोसे भारतको निरा लाभ-ही-लाभ नही हुआ है, तो हम हाथमे सत्ता आनेपर रेलोंका उपयोग मर्यादित कर देंगे। इसी तरह हम मोटरोको सर्वथा तिलांजलि देनेमे चाहे असमर्थ हों, लेकिन अगर हमे वैलोकी रक्षा करनी है तो मोटरोंकी मर्यादा वाँघनी ही पडेगी। हम मोटरोंसे अपने खेत जोते और वैलोंको निकम्मा रखे, यह वात तो सभीको असम्भव लगनी चाहिए। भारतका अर्थशास्त्र भारतकी परिस्थितियोंके अनुरूप वनाया जायेगा, वह तभी सराहनीय और स्थायी होगा। अपनी परिस्थितिका विचार करके देशका अर्थशास्त्र तैयार करनेमें ही हमारी कुशलता और हमारी सभ्यताकी कसौटी है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ८-८-१९२६

३०१. राष्ट्रीय शालाएँ

एक अनुभवी सेवक लिखते हैं :[1]

पहले तो हम ऊपरके तर्कमे सर्पदंशकी जो उपमा दी गई है उसपर विचार करे। ऐसे दृष्टान्त हमेशा त्रुटिपूर्ण होते हैं, क्योंकि दो वातोमे सारे सयोग विलकुल एकसे हों, यह वहुत कम सम्भव है। और यदि उपमा अथवा दृष्टान्त आवश्यक वातोमें भी त्रुटिपूर्ण हो तो वह मिलान विलकुल ही खण्डित हो जाता है और मिलानके आधारपर चलनेवाला मनुष्य भ्रमित हो जाता है। सर्पदशके वाद साँस लौट आनेकी आशा रहती है। वैद्यने यदि यह घोषित न कर दिया हो कि व्यक्ति मर चुका है और उसके शरीरको हम जला दे तो फिर विषको दूर करनेका प्रश्न ही नही रहता। इसलिए कई वार शरीरको दो-चार दिनतक रख छोड़ना समझदारी मानी जाती है। क्योकि हम भस्म किये हुए शरीरको फिरसे उत्पन्न करनेकी शक्ति नही रखते। किन्तु कथित राष्ट्रीय शालाओके सम्वन्धमें जो मैंने यह कहा है कि उन्हे या तो सुधारा जाये या वे वन्द कर दी जायें, उसपर ऊपरकी तीनो स्थितियोंमे से एक भी स्थिति लागू नही होती। क्योकि उनके राष्ट्रीय होनेकी सम्भावना ही नही है। यही उचित होगा कि जिस स्कूलको वैद्यने स्वयं जाँच करके मृत होनेका प्रमाणपत्र दे दिया है और जो मनुष्यकी कृति होनेके कारण फिर उत्पन्न की जा सकती है ऐसी शालाओंका तो नाश ही इष्ट है। ऐसी शालाओको वनाये रखना हमारे वीच मिथ्याको वनाये रखने जैसा है। राष्ट्रीय शालाके नामसे एकत्र किया हुआ पैसा नाम-मात्रकी

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने कहा था कि जो राष्ट्रीय शालाएँ आदर्शच्युत हो गई हैं उन्हें तो वन्द कर दिया जाना चाहिए, किन्तु केवल अभिभावकोंके विरोधके विचारसे उन्हें बन्दकर देना उचित नहीं है।

राष्ट्रीय शालाके ऊपर लगाना दान देनेवालेके प्रति द्रोह है और चूँकि इन नाम-मात्रकी राष्ट्रीय शालाओका उदाहरण सामने रखकर शुद्ध राष्ट्रीय शालाओंको आँका जाता है जिससे राष्ट्रीय शालाओको हानि पहुँचती है। इनके लिए पैसा इकट्ठा करनेवाले लोगोकी साख भी कम हो जाती है और राष्ट्रीय शालाओके नामपर मिलनेवाला पैसा नही मिल पाता। ऐसे अनिष्ट परिणाम आनेकी अपेक्षा तो यही अच्छा है कि शुद्ध राष्ट्रीय शालाओंकी सख्या चाहे जितनी कम क्यो न हो जाये, हम उन्हीका संचालन अच्छी तरहसे करे और उनपर पूरा-पूरा ध्यान दे। यही शोभनीय होगा और इसीमे सत्य तथा व्यावहारिक वुद्धि भी है। जैसे-तैसे रेतको इकट्ठा करे तो जिस तरह इससे ईंटोंका काम नही चलता और केवल उस ढेरको बढ़ाते रहनेसे बोझ तथा नुकसानमे ही वृद्धि होती है इसी प्रकार नाम-मात्रके राष्ट्रीय स्कूलोकी संख्या केवल भार-रूप और हानि-रूप ही होगी। राष्ट्रीयताकी लहर आनेपर एक सच्ची राष्ट्रीय शालासे अनेक राष्ट्रीय शालाओंका निर्माण सहज और सम्भव है। किन्तु नाम-मात्रकी अनेक राष्ट्रीय शालाओमे से कोई भी सार निकाल पाना आकाश-कुसुम जैसा ही है। इतना ही नही, ऐसे शुभ समयकी दृष्टिसे हमें पहले तो नाम-मात्रकी राष्ट्रीय शालाओको नष्ट करनेका प्रयास ही करना पड़ेगा।

इसलिए जहाँ-कही अभिभावकों अथवा शिक्षकोका विरोध हो, वहाँ राष्ट्रीय शाला बन्द ही कर देनी चाहिए। जहाँ अभिभावकोंमे राष्ट्रीय भावना हो और वे अपनी इस भावनाका प्रमाण उचित रूपमें राष्ट्रीय शालाओंके संचालनके लिए चन्दा देकर सिद्ध करते हो और जहाँ शिक्षक-वर्ग राष्ट्रीय भावनासे ओतप्रोत होकर जी-तोड प्रयत्न करता हो, वहाँ मैं समझ सकता हूँ कि विद्यार्थियोके शिथिल होनेसे भी कोई बड़ा नुकसान नही हो सकता। ऐसी अवस्थामे हम शाला चलाते रह सकते हैं और आशा कर सकते है कि हम किसी-न-किसी दिन विद्यार्थियोंपर ठीक असर डाल सकेंगे। किन्तु यह लेख लिखते हुए मेरी नजरमे ऐसा एक भी स्कूल नही है।

मेरा अनुभव तो यही है कि जहाँ राष्ट्रीय तत्त्वका अभाव देखनेमे आता है, वहाँ दोष शिक्षकोंका ही होता है। ऊपर जो उदाहरण दिया गया है वह एक ऐसे स्कूलका है जहाँ शिक्षक उत्साही हैं, विद्यार्थी उदासीन हैं और अभिभावक विरोधमे है। जहाँ अभिभावक बच्चोके हाथकताई और बुनाई सीखने तथा खादी पहननेके विरोधमे हों और अछूत बालकोके प्रवेशपर अपने बच्चोंको उठा लेनेकी धमकी देते हों वहाँ तो मुझे जनताके समय और शिक्षकोंके स्वाभिमानकी हानिके सिवाय और कुछ दिखाई नही देता। यदि हम अभिभावकोके विरोधके बावजूद राष्ट्रीय शालाएँ चलाते रहें तो हम भी उसी प्रकारके अपराधके भागी होंगे जिस प्रकारके अपराधका आरोप ईसाई पादरियोंपर किया जाता है। हमे इस बातका कोई अधिकार नही है कि हम अभिभावकोंके विरोधके बावजूद उनके बच्चोंको अपने मनकी शिक्षा दें और परिवारोंमे कलह करायें। जो विद्यार्थी सोलह वर्षकी आयुसे अधिकके हो गये हैं, जो अपना भला-बुरा समझते हैं और जो कष्ट सहनेकी क्षमता रखते हैं, उनको किसीके द्वारा रक्षण देनेका प्रश्न ही नही उठता। वे स्वावलम्बी हो गये हैं। ऐसे विद्यार्थियोंके लिए

जहाँ आवश्यक हो वहाँ राष्ट्रीय शाला खोली और चलाई जा सकती है; किन्तु सारे भारतवर्षमें ऐसे विद्यार्थी है कहाँ? कितने हैं? और ऐसी शालाएँ कहाँ है, जहांके विद्यार्थीकी तुलना हम विवेकपूर्ण, मर्यादाशील, सहनशील, निर्भय और भक्त प्रह्लादके साथ कर सकते हैं? जब भारतवर्षमें ऐसे विद्यार्थी बड़ी संख्यामें उत्पन्न हो जायेंगे तब भारतवर्ष नवीन चेतनासे ओतप्रोत हो जायेगा और फिर किसीको ऐसा प्रश्न ही नहीं करना पड़ेगा कि स्वराज्य कहाँ है।

ऐसे विद्यार्थियोंकी जबरदस्त फसल उत्पन्न करनेके लिए हमें केवल सच्चे राष्ट्रीय स्कूलोंका संचालन करना ही आवश्यक है, फिर उनमे चाहे कितने ही कम विद्यार्थी क्यों न हों। जहाँ माता-पिता बालकोंको भेजते हुए ऐसा मानते हैं कि हम मेहरबानी कर रहे हैं और जहाँ विद्यार्थी जाकर शान बघारते हों और इस तरहकी प्रत्यक्ष या परोक्ष धमकी देते हो कि यदि आपने मदद नही की तो हम सरकारके साथ हो जायेंगे, ऐसी जगह राष्ट्रीय शालाकी जरूरत नही है, ऐसा हमें निश्चय ही समझ लेना चाहिए। नाम-मात्रकी ऐसी राष्ट्रीय शालाओंको बन्द कर दिया जाना चाहिए। हमें समझ लेना चाहिए कि असहयोग क्या है। हम उसका मूल्याकन करनेकी परि-स्थितिमें हैं। उसके खतरोंसे समाज बे-खबर नही है और इसलिए असहयोग करनेवाली शालाओंका मार्ग स्पष्ट है। हम स्वयं अपने-आपको भ्रमित न करें। उन्नति और अवनतिको समान समझते हुए अपने विश्वासपर दृढ़ रहकर यदि हम अपना काम करते चले जायें तो अन्तमें श्रेय ही मिलेगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ८-८-१९२६

३०२. आचार्य ध्रुव और राष्ट्रीय शिक्षा

आचार्य आनन्दशंकरभाई लिखते हैं:[1]

उपर्युक्त पत्र पढ़कर मैंने तो कदापि ऐसा नहीं समझा था कि आचार्य ध्रुव अथवा आचार्य गिडवानीपर राष्ट्रीय शिक्षाके विरुद्ध होनेका किसी प्रकारका आक्षेप हो सकता है। इन दोनों सज्जनोंको अच्छी तरहसे जाननेके कारण मेरे मनमें तनिक भी शंका नहीं उठी। परन्तु तटस्थ पाठकके मनमें ऐसी शंका उठना सम्भव है इसलिए आनन्दशंकरभाईका पत्र आवश्यक ही है। उनका विद्यापीठसे निकटका और मधुर सम्बन्ध होना तथा उनका विद्यापीठकी जाँच समितिके अध्यक्ष पदको स्वीकार करना — ये दोनों ही बातें उनकी राष्ट्रीय शिक्षाके प्रति सहानुभूतिको सिद्ध करती हैं। आचार्य गिडवानी तो राष्ट्रीय शालाके ही आचार्य हैं। उन्होंने जब विद्यापीठ छोड़ा[2] था तब विद्यार्थियोंने

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने १८-७-१९२६ के **नवजीवन**में प्रकाशित "असहयोगी पिताका पत्र" की चर्चा की थी जिससे ऐसा मालूम होता था कि आचार्य आनन्दशंकर राष्ट्रीय शिक्षाके विरुद्ध हैं।

२. १९२६ के शुरूमें।

उनके प्रति भारी प्रेम प्रकट किया था तथा उनकी स्मृतिको बनाये रखनेके लिए अन्त्यज सेवाके लिए उनके नामसे एक शिक्षा-वृत्ति देनेके लिए १,५०० रुपये इकट्ठे किये थे। ये दोनों बातें उनकी राष्ट्रीय शिक्षा-सम्बन्धी भावनाके ठोस प्रमाण है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ८-८-१९२६

२०३ पत्र : एस्थर मेननको

आश्रम
साबरमती
८ अगस्त, १९२६

रानी बिटिया,

तुम्हारा पत्र मिला। कमसे-कम पत्रका सिरनामा तो मैंने अपने हाथसे ही लिखा है। फिलहाल इतना ही काफी है। टाइपकी मशीनको मैं भी कम नापसन्द नहीं करता। उसे देखकर मनमें ग्लानि होती है, लेकिन इसके बावजूद मै उसे सहन करता हूँ, वैसे ही जैसे में उन कई चीजोंको सहन करता हूँ जिनसे कोई स्थायी हानि नहीं होती। यदि कोई मेरी टाइपकी मशीन ले ले तो मुझे जरा भी दुःख नही होगा, लेकिन जबतक वह मेरे पास है, मैं उसका इस्तेमाल करता हूँ और यह भी मानता हूँ कि उससे अधिक उपयोगी कामके लिए समयकी कुछ बचत तो होती ही है। पर हो सकता है कि मेरी यह मान्यता भी बिलकुल ही गलत हो। अपने आसपासके वातावरणसे ऊपर उठना मुश्किल ही होता है।

एन मैरी स्पष्ट ही बहुत बड़ा और अच्छा काम कर रही है। पूर्वग्रह वड़ी कठिनाईसे जाते हैं। लेकिन जहाँ सत्यनिष्ठा होती है वहाँ कठिनसे-कठिन पूर्वग्रह सहज ही मिट जाते हैं।

मेनन अपना अस्पताल खोल लेंगे तो बहुत अच्छी बात होगी। मीराबहन आध्यात्मिक अनुभवकी प्राप्तिके लिए जो सात दिनका उपवास करना चाहती थी वह आज प्रातः पूरा हो गया और उसे उन्होंने फलोंका रस लेकर समाप्त कर दिया। उपवास बड़ी अच्छी तरह चला, हालाँकि सात दिनमें उसका वजन दस पौड घटा है। लेकिन वैसे यह कोई खास बात नहीं।

वाइसरायसे मुझे अधिक आशा नहीं है। वे सदाशयी भले ही हों; केवल सदाशयताका तो कोई मूल्य नहीं होता। तुम्हारा यह खयाल बहुत ठीक है और मैं भी यही कहता हूँ कि हमें मुक्ति देर-सबेर, किन्तु मिलेगी अपने ही प्रयत्नोंसे।

तुम्हारा,
बापू

माई डियर चाइल्ड तथा नेशनल आर्काइव्ज ऑफ इंडियामे सुरक्षित अंग्रेजी पत्रकी फोटो-नकलसे।

३०४. पत्र : परशुरामको

आश्रम
साबरमती
आषाढ़ अमावास, रविवार, ८ अगस्त, १९२६

भाई परसरामजी,

आपका दु:खद पत्र मिला है। सच्ची बात है कि काउंसिलमें जाना बहुत झगड़ोकी जड़ बन गई है। परंतु जिसको काउन्सिलकी ओर देखना भी नही है वह क्या दु:ख मानें? हमसे जो बन पड़े उसीको करते रहें तो आखिरमे सत्यकी ही जय होनेवाली है। इस समय बड़ी भीड़ है। परंतु चित्तशांतिके आना आवश्यक हो तो उनका कुछ सोच न करें।

श्री परसरामजी
द्वारा[1] कांग्रेस कमिटि
ब्रेडला हॉल
लाहौर

मूल पत्र (एस० एन० १२२४४) की माइक्रोफिलमसे।

३०५. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

आश्रम साबरमती
मंगलवार, श्रावण शुक्ल २, १० अगस्त, १९२६

भाईश्री ५ घनश्यामदासजी,

आपका पत्र मिला। बिमारी क्यों रहती है? बिमारीका इलाज शीघ्रतासे कर लेना चाहिए। जमनालालजीकी तबियतके लिये वे यहां आ रहे हैं। आनेसे देख लुंगा। आप ही यदि थोड़े ही दिनोंके लिये यहां रह जायें तो संभव है शरीरका कुछ लाभ देख लूं। आपने जो नया दान दिया है उस बारेमे मैं क्या कहूं? मुझको आश्चर्य होता है। ७० हजार[2] के लिये मे समझा। वह वापिस देनेकी तैयारी चरखा-संघके मारफत करता ही रहुंगा। सतीशबाबुको जो ३० हजार आपने दिये हैं उसकी चिन्ता तो मुझे नहीं करनी होगी ऐसा मै समझा हूं। एसेम्ब्लीके लिये मे समझा था। उस बारेमे मैंने जो उत्तर दिया था वह तो मिला ही होगा। शास्त्रीजीने मुझको लिखा था कि

१. मूलमें यह शब्द अंग्रेजीमें है।
२. बंगाल खादी प्रतिष्ठानको दिये गये।

आपने उनको क्या उत्तर दिया। कलकत्तेके दंगोंका जो रहस्य आप बताते हैं वह पढ़कर मुझको दु:ख और आश्चर्य होता है। मालवीयजीके खतसे मैं तो बहुत खुश हुआ, और उनके पश्चात् जो कुछ हुआ है वह भी बहुत ही अच्छा हुआ है। इस बारेमें लिखने का मैंने निश्चय कर ही लिया है।

श्री घनश्यामदासजी बिड़ला
सब्जी मंडी
दिल्ली

मूल पत्र (एस० एन० १२२४५) की फोटो-नकलसे।

३०६. पत्र : जमनालाल बजाजको

आश्रम
साबरमती
मंगलवार, श्रावण सुदी २, १० अगस्त, १९२६

चि० जमनालाल,

तुम्हारा पत्र मिला। घनश्यामदासका भी पत्र मिला। तुम्हारा तार मिल गया था। तुम्हारा सीकर जाना ठीक ही हुआ। अब वहाँसे यहाँ आनेका जो निश्चय किया है, उसपर अवश्य दृढ़ रहना। घनश्यामदास लिखते हैं कि तुम्हारा स्वास्थ्य भी ठीक नहीं है। मुझे यह पढ़कर चिन्ता हो गई है।

बाकी मिलनेपर।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (जी० एन० २८७२) की फोटो-नकलसे।

३०७. पत्र : चन्दूलाल देसाईको

आश्रम
साबरमती
बुधवार, श्रावण सुदी ३, ११ अगस्त, १९२६

भाईश्री ५ चन्दूलाल,

आपका पत्र मिला। मैं आपकी दिक्कत समझ सकता हूँ। मुझे पत्र लिखते हुए आपको शरमानेकी कोई बात नहीं है। किन्तु मैं आपको पैसा कहाँसे भेजूँ? मेरे पास पैसा नहीं है, यह आप मानेंगे ही और मैं आपको यह भी विश्वास कराना चाहता हूँ कि पैसा इकट्ठा करनेकी मेरी शक्ति बहुत सीमित है। यह मैं समझ गया हूँ कि

आप इसे कर्जकी तरह माँगते हैं। आपने जो मकान बनवाया है आप उसीपर पैसा उधार क्यों नहीं ले लेते? मुझे तो यही रास्ता सबसे सीधा लगता है।

डा० चन्दूलाल मणिलाल देसाई
द्वारा मैसर्स वकील ब्रदर्स
मणिभवन, लेवर्नम रोड
गामदेवी, बम्बई

गुजराती प्रति (एस० एन० १२२४६) की माइक्रोफिल्मसे।

३०८. सात समुद्र-पारका न्याय

यदि विजित जातिके मनको न जीता जाये, यदि विजित लोग अपनी दासताकी शृंखलाको प्यार न करने लगें और विजेताओंको अपना उपकारी न समझने लगें, तो इस सांस्कृतिक विजयके बिना केवल शस्त्रोंके बलपर पाई हुई विजयका कोई मूल्य नहीं होता। भारतवर्षके भिन्न-भिन्न स्थानोंपर खड़े किले, अंग्रेजोंकी शक्तिकी हमें बराबर याद दिलाते रहते हैं। सर हरिसिंह गौड़के इस बहुत ही नम्र प्रस्ताव — कि सबसे बड़ा न्यायालय दिल्लीमें ही लाकर रखा जाये — के सम्बन्धमें हमारे प्रमुख वकीलोंकी जो सम्मति 'इंडियन डेली मेल' में छपी है, अगर उसीको हम अपने शिक्षितोंके दिमागका नमूना मान लें, तो कहना पड़ेगा कि अंग्रेजी राज्यकी ज्यादा मजबूत बुनियाद इन बड़े-बड़े किलोंपर नहीं, बल्कि हमारे शिक्षित पुरुषोंके दिमागोंपर, उसने जो यह चुपचाप विजय पाई है उसपर ही है। इन मशहूर वकीलोंका खयाल है कि अभी इसका समय नहीं है, अर्थात् उनके मतानुसार यहाँसे छः हजार मील दूरकी प्रिवी कौंसिलके फैसलोंपर लोगोंकी अधिक श्रद्धा होगी और हमें न्याय वहाँ अधिक निष्पक्षतासे मिल सकेगा। मैं यह कहनेका साहस करता हूँ कि इस आश्चर्यजनक सम्मतिका आधार यथार्थपर नहीं है। परन्तु दूरके ढोल सुहावने होते हैं। प्रिवी कौंसिलवाले भी आखिर मनुष्य ही हैं। राजनीतिक पक्षपातकी गन्ध उनमें भी पाई गई है। हमारी रीति-रस्मोंके मुकदमोंके सम्बन्धमें उनके फैसले प्रायः सत्यकी तोड़-मरोड़ ही होते हैं। इसका कारण उनकी दूषित मनोवृत्ति नहीं है; परन्तु नश्वर मनुष्य सब-कुछ तो नहीं जान सकता। कानूनका कितना ही अधिक ज्ञान क्यों न हो, परन्तु यदि मुकामी रीति-रिवाजसे जिन्हें वाकफियत न हो, उन वकीलोंकी बनिस्बत एक कम प्रशिक्षित वकील भी जिसे मुकामी रीति-रिवाजोंसे पूरी वाकफियत हो, रीति-रस्म सम्बन्धी मुकदमोंमें पेश किये गये साक्ष्यको कहीं अच्छे ढंगसे समझ और प्रस्तुत कर सकेगा।

ये प्रमुख वकील यह भी कहते हैं कि अन्तिम अपीलका न्यायालय दिल्लीमें लाकर रख देनेसे ही खर्चमें कुछ कमी नहीं होगी। यदि उनका यह मतलब है कि धनी इंग्लैंडमें जो फीस ली जाती है, वही गरीब हिन्दुस्तानमें भी ली जायेगी तो उनकी देश-भक्तिके लिए यह कुछ शोभाकी बात नहीं। एक स्काटलैंडवासी मित्रने मुझसे कहा

था कि शौक और जरूरियातके मामलेमें सम्भवतः अंग्रेज लोग ही दुनिया-भरमें सबसे अधिक फिजूलखर्च होंगे। उन्होंने कहा था कि स्काटलैंडके अस्पताल इंग्लैंडके अस्पतालसे किसी बातमें कम न होते हुए भी उनकी अपेक्षा बहुत ही कम खर्चमें चलाये जाते हैं। क्या फीस बढ़ जानेके साथ-साथ कानूनी बहसका दर्जा भी बढ़ जाता है?

इस प्रस्तावके विरोधमें जो तीसरी दलील पेश की गई है वह यह है कि इंग्लैंडके व्हाइट हॉलमें बैठनेवाले जजोंके बराबर हिन्दुस्तानी जजोंकी इज्जत नहीं होगी। यदि यह दलील प्रसिद्ध वकील लोगोंने पेश न की होती तो यह हँसीमें उड़ा दी जाती। फैसलोंकी इज्जत जजोंकी निष्पक्षतापर निर्भर है या कचहरीके मुकाम या जजोंकी जाति या चमड़ेके रंगपर? यदि सचमुचमें मुकाम या जजोंके जन्म या वर्णपर ही उनके फैसलेकी प्रामाणिकता निर्भर हो, तो क्या अब वह समय नहीं आ गया है कि इस भ्रमको मिटानेके लिए ही दिल्लीमें अन्तिम न्यायालय लाया जाये और वहाँ हिन्दुस्तानी जजोंको ही नियुक्त किया जाये? या इस दलीलमें, ऐसा पहलेसे ही मान लिया गया है कि हिन्दुस्तानी जज पक्षपात करते ही हैं, कभी-कभी वेचारे गरीब अज्ञानवश यूरोपीय कलक्टरको ही चाहते हैं। परन्तु अनुभवी वकीलोंसे तो अपेक्षाकृत अधिक बुद्धिमानी और निर्भयताकी आशा की ही जा सकती है।

मेरी विनम्र सम्मतिमें यद्यपि इन तीनों दलीलोंमें से एकमें भी कुछ सार नहीं है, तथापि हमें केवल इसलिए अपना सर्वोच्च न्यायालय दिल्लीमें ही रखना चाहिए कि हमारा स्वाभिमान इसीमें है। दूसरोंके फेफड़े चाहे लाख अच्छे हों परन्तु जिस प्रकार हम उनसे साँस नहीं ले सकते, उसी प्रकार न्याय भी हम इंग्लैंडसे उधार या मोल नहीं ले सकते। हमें तो हमारे अपने ही जज जो-कुछ कर दिखायें, उसीपर गर्व करना होगा। सारे संसारमें यह देखा जाता है कि जूरियोंका किया हुआ न्याय बहुधा गलत होता है। परन्तु इसलिए सभी जगह सब लोग इस खामीको खुशीसे स्वीकार करते हैं, इसलिए कि इससे प्रजामें स्वतन्त्रताके भावको बल मिलता है और अपनी बराबरीवालोंके द्वारा ही न्याय पानेकी सर्वथा उचित अभिलाषाकी पूर्ति होती है। वकीलोंके क्षेत्रमें भावनाकी इज्जत कुछ कम ही होती है, परन्तु वैसे भावना ही संसारका शासन करती है। भावनाके हावी हो जानेपर अर्थशास्त्रीय या अन्य प्रकारके विचारोंको उठाकर ताकमें रख दिया जाता है। भावनाका नियमन सम्भव है और किया भी जाना चाहिए। किन्तु उसे न तो निर्मूल ही किया जा सकता है और न किया ही जाना चाहिए। यदि देश-भक्ति कोई पाप नहीं है, तो सर्वोच्च न्यायालयको दिल्लीमें ही लाकर रखना भी कोई पाप नहीं है। जैसे स्वराज्यका स्थान सुराज नहीं ले सकता, वैसे ही विदेशी सुन्याय हमारे अपने घरके न्यायकी जगह नहीं ले सकता।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १२-८-१९२६

३०९. भूल सुधार

'यंग इडिया' की छपाईमें भूलें और गलतियाँ रह जाती हैं, यह मैं जानता हूँ। साथी कार्यकर्त्ताओंकी खर्चमे बचतकी इच्छाको ध्यानमें रखते हुए भूलोसे बचने का पूरा प्रयत्न किया जाता है; किन्तु मुझे यह कहते हुए दुःख होता है कि पिछले हफ्ते 'थोपा हुआ वैधव्य' लेखमें दो गम्भीर भूलें रह गई हैं।[1]

पाँचवे अनुच्छेदमे 'वट वन डिड नॉट क्वरैल' मे 'डिड' की जगह 'नीड' शब्द होना चाहिए। पहले स्तम्भके अन्तिम अनुच्छेदकी नीचेसे पाँचवीं पंक्तिमें 'वी वुड रिजॉर्ट टु फोर्स इन रिलीजन' में 'रिजॉर्ट' की जगह 'रिजेंट' शब्द होना चाहिए। मै जानता हूँ कि कितने ही पाठक अपने अंकोंकी फाइलें बनाकर रखते है और 'यग इंडिया' के लेखोंको चावसे पढ़ते हैं। यही कारण है कि मैने यहाँ इन भूलोका उल्लेख कर दिया है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १२-८-१९२६

३१०. अनीतिकी राहपर – ७

आजीवन ब्रह्मचर्यके अध्यायके पश्चात् विवाहितोके कर्त्तव्य और विवाहोंकी अविच्छेद्यतासे सम्बन्धित अध्याय हैं। लेखक कहता है कि आजीवन ब्रह्मचर्य उच्चतम अवस्था है; किन्तु यह जिस विशाल जनसमुदायके लिए सम्भव नही है, उसके लिए विवाहको एक कर्त्तव्य ही मानना चाहिए। उसने सिद्ध किया है कि विवाहके उद्देश्य और उसकी मर्यादाओंको ठीक-ठीक समझ लेनेपर गर्भ-निरोधके कृत्रिम साधनोंका समर्थन कदापि नही किया जा सकता। अमर्यादित आचरण होनेका कारण गलत ढंगका नैतिक शिक्षण ही है। विवाहकी खिल्ली उड़ानेवाले कुछ 'प्रगतिशील' लेखकोंकी रायका विवेचन करनेके बाद, लेखक कहता है:

> भावी पीढ़ियोंके लिए यह सौभाग्यकी बात है कि इन झूठे नीतिवादियों और नैतिक भावनासे ही लेखकोंका, जो कभी-कभी तो वास्तविक साहित्यिक भावनासे भी नितान्त शून्य होते हैं, मत हमारे युगके मनोविज्ञान और समाज-विज्ञानके सच्चे पण्डितोंके मतसे बिलकुल मेल नहीं खाता। अखबारों, उपन्यासों और रंगमंचके शोरगुलकी यह दुनिया उस दूसरी दुनियासे, जिनमें विचारका विकास किया जाता है और जिसमें हमारे मनोवैज्ञानिक और सामाजिक जीवनके रहस्यमय तत्त्वोंका बारीकीसे अध्ययन किया जाता है, सर्वथा भिन्न है।

१. यहाँ मूल अंग्रेजी लेखकी अशुद्धियोंका हवाला दिया गया है। हिन्दी अनुवाद इनको शुद्ध करके ही किया गया है। देखिए "थोपा हुआ वैधव्य", ५-८-१९२६।

श्री ब्यूरो स्वच्छन्द प्रेमके तर्कको गलत मानते हैं। उनका यह मत है कि विवाहसे दो स्त्री-पुरुष मिलकर एक हो जाते हैं। यह आजीवन साहचर्य है और विधिविधान-सम्मत ईश्वरीय और मानवीय अधिकारोंका परस्पर आदान-प्रदान है। विवाह कोरा 'सामाजिक करार' नहीं है; बल्कि यह एक धर्म-संस्कार, एक नैतिक दायित्व है। इसीके बलपर यह वनमानुस मनुष्य बना है और सिर उठा कर खड़ा हो पाया है।

> यह समझना एक बड़ी भूल है कि जो लोग विधि-सम्मत ढंगसे विवाहित हो गये हैं उनको सब-कुछ करनेकी छूट मिल सकती है। और यदि यह मान लिया जाये कि अमुक पति-पत्नी सामान्यतः सन्तानोत्पत्तिके सम्बन्धमें नीतिके नियमोंका पालन करते हैं तो भी यह सोचना गलत होगा कि उनको सम्भोगके चाहे जैसे तरीके अपनानेका कानूनन हक है। उनपर लगाई गई यह रोक उनके और समाज दोनों ही के लिए हितकर है। उनके विवाहका उद्देश्य समाजको कायम रखना और विकसित करना ही होना चाहिए।

लेखकका मत है:

> विवाहसे मनुष्यकी भोगवृत्तिपर जो कठोर अंकुश लगता है उससे बच निकलनेके लोभ-प्रसंग बार-बार सामने आते हैं। इनसे सच्चे प्रेमपर आघातका सतत भय रहता है। इस खतरेको केवल तभी टाला जा सकता है जब मनुष्य अपनी भोगलिप्साको उन मर्यादाओंके भीतर रहकर तृप्त करनेके लिए जागरूक रहे जो स्वयं विवाहके लक्ष्य द्वारा निर्धारित हो जाती हैं। सेल्सके सेंट फ्रान्सिस कहते हैं: "किसी भी उग्र औषधिका सेवन खतरनाक होता है; यदि ऐसी कोई दवा खुराकसे ज्यादा ले ली जाये या वह ठीक बनी न हो तो वह बहुत नुकसान पहुँचाती है। आंशिक रूपमें कामुकताका उपचार विवाहकी प्रथाका उद्देश्य है और इससे उसका शमन होता भी है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि यह कामुकताके रोगकी एक बहुत अच्छी औषधि है; किन्तु साथ ही यह उग्र है और इसीलिए यदि इसे विवेकपूर्वक काममें न लिया जाये तो बहुत खतरनाक सिद्ध हो सकती है।"

लेखकने इसके बाद इस मतका खण्डन किया है कि व्यक्तिको चाहे जब विवाह करने या तोड़ने या निडर होकर विलासी जीवन बिताते हुए भी उसके दायित्वोंसे मुक्त रहनेकी स्वतन्त्रता है। वह एक पत्नीव्रतपर जोर देता है और कहता है:

> यह कहना ठीक नहीं है कि मनुष्य अपनी इच्छानुसार विवाह करने या स्वार्थवश अविवाहित रहनेके लिए स्वतन्त्र है। विधिपूर्वक विवाहित स्त्री और पुरुषको आपसी रजामन्दीसे विवाह-सम्बन्ध विच्छेद करनेकी स्वतन्त्रता तो और भी कम है। एक-दूसरेको चुनते समय तो वे स्वतन्त्र रहते हैं और उनमें से प्रत्येकका फर्ज है कि वह सावधानीसे सोच-विचारकर, पूरी जानकारीके साथ उसीको

चुने जिसके साथ वह अपने नये जीवनका दायित्व उठा सकना सम्भव समझता है। किन्तु संस्कार और व्यवहारकी दृष्टिसे विवाहित होते ही यह सम्बन्ध केवल दो व्यक्तियोंका सम्बन्ध ही नहीं रह जाता, सभी क्षेत्रोंमें इसके इतने दूरगामी और व्यापक परिणाम होने लगते हैं कि उनका सहज ही अनुमान नहीं लगाया जा सकता। अराजकतावादी हमारे आजके इस व्यक्तिवादी युगमें, सम्भव है वे दोनों भी इन परिणामोंको न देख पायें, किन्तु वे होते महत्त्वपूर्ण हैं। उनका यह महत्त्व इस बातसे प्रमाणित होता है कि ज्योंही पारिवारिक स्थिरताको कोई भी धक्का लगा और ज्यों ही पति-पत्नी-सम्बन्धके निश्चित लाभप्रद संयमका स्थान भोगलिप्साके मनमौजीपनने लिया कि सारा समाज जबरदस्त परेशानीका अनुभव करने लगता है। परिवर्तन विकासका सामान्य नियम है और समाजकी अन्य संस्थाओंकी भाँति विवाह-संस्थामें भी परिवर्तन हुए बिना नहीं रह सकते, किन्तु जो मनुष्य परिणामोंकी इस परस्पर गुंथी हुई श्रृंखलाको जानता है वह अवश्यम्भावी परिवर्तनोंसे विचलित नहीं होता; क्योंकि वह यह भी जानता है कि स्वाभाविक परिवर्तन तो वैवाहिक सम्बन्धोंको और भी घनिष्ठ और अन्तरंग बनानेमें ही योग देंगे। आजकल विवाह-सम्बन्धके अविच्छेद्य बने रहनेके नियमकी कटु आलोचना की जा रही है और कहा जा रहा है कि दोनोंकी रजामन्दी होनेपर भी सम्बन्ध-विच्छेदकी अनुमतिका न होना तो सर्वथा अनुचित है। किन्तु इस आलोचनाका फल इसके सिवा और कुछ नहीं हो सकता कि अविच्छेद्यताके जिस नियमका इतना विरोध किया जा रहा है लोग उसके सामाजिक महत्त्वको और भी स्पष्ट रूपसे समझ जायें। जैसे-जैसे समय बीतेगा यह अधिकाधिक स्पष्ट होता जायेगा कि पिछले जमानेमें जब लोग इस नियमका सामाजिक महत्त्व पूरी तरह नहीं समझा सके थे तब यह केवल धार्मिक अनुशासन बनाये रखनेकी एक व्यवस्था-भर था, लेकिन अब यह नित्य प्रति एक ऐसे सिद्धान्तके रूपमें निखरता जा रहा है जो व्यक्तिके लिए भी उतना ही हितकारी है जितना कि समूचे समाजके लिए।

विवाहकी अविच्छेद्यताका नियम केवल शोभनीयताके विचारसे रूढ़ नहीं हुआ है; प्रत्युत वह समाजके व्यक्तिगत और समुदायगत बड़े ही सुकुमार जीवन-तन्तुओंके साथ जुड़ा हुआ है, और जब लोग विकासकी बात करते हैं, तो यह प्रश्न स्वाभाविक ही है कि हम सभी मानव जातिकी जिस अनिश्चित प्रगतिके अभिलाषी हैं उसकी शर्तें क्या हैं। दायित्वकी भावनामें वृद्धि, स्वेच्छासे अपनाये गये आत्मिक संयम और सदाचारकी दिशामें व्यक्तिका प्रशिक्षण, सहन-शीलता और उदारताका विकास, स्वार्थभावनापर अंकुश, जिन बातोंके कारण सम्बन्धविच्छेद होता है और जिनके फलस्वरूप चार दिनका आनन्द सूझता है, समाजके जगतमें उनके विरुद्ध दृढ़ता बनाये रखना — ये सब मनुष्यके आन्तरिक

जीवनके ऐसे तत्त्व हैं, जिन्हें समस्त उच्चतर सामाजिक संस्कृतिके विकासकी पूर्ण और स्थायी शर्तोंके रूपमें स्वीकार किया ही जाना चाहिए और इसीलिए हमें चाहिए कि हम इन्हें सम्भावित गम्भीर आर्थिक परिवर्तनोंसे पैदा हो सकनेवाली अव्यवस्थासे मुक्त रखें। स्वयं आर्थिक उन्नति व्यापक सामाजिक उन्नतिसे घनिष्ठ रूपेण सम्बन्धित है और यह इसलिए कि आर्थिक सुरक्षा और सफलता अन्ततोगत्वा हमारे दृढ़ सामाजिक सहयोगपर ही निर्भर है। जो आर्थिक परिवर्तन इन बुनियादी शर्तोंकी उपेक्षा करके किया जायेगा वह अपने आप असफल हो जायेगा। इसलिए यदि हम यौन सम्बन्धोंकी विभिन्न प्रथाओंके स्वतन्त्र मूल्यका नैतिक और सामाजिक दृष्टियोंसे अध्ययन करना चाहते हैं तो यह प्रश्न कि वह कौन-सा तरीका है जिससे हमारे समस्त सामाजिक जीवनकी जड़ें अधिक गहरी और मजबूत हो सकती हैं, सर्वाधिक महत्त्वका बन जाता है। यह विचारणीय है कि किस प्रकार हमारे जीवनके विभिन्न आयामोंमें हमारे भीतर अधिकतम दायित्व, आत्मत्याग और स्वार्थ निग्रहकी भावना पैदा कर सके और असंयत स्वार्थ और चंचलतापूर्ण विलासिताको ज्यादासे-ज्यादा कारगर तौरपर संयत कर सकनेकी क्षमता उत्पन्न की जा सकती है। इस विषयपर इस दृष्टिसे विचार करनेपर यह बिलकुल स्पष्ट हो जाता है कि एक पत्नीव्रतको सामाजिक और शिक्षणात्मक महत्त्वके कारण सभी उच्चतर सभ्यताओंकी स्थायी विरासतका एक भाग बना दिया जाना चाहिए। कोई भी सच्ची प्रगति विवाहके इस सम्बन्धको ढीला करनेके बजाय उसे अधिक दृढ़ ही बनायेगी।. . . परिवार मनुष्यके सामाजिक जीवनकी तैयारीका केन्द्र है। इसका अर्थ यह है कि वहाँ दायित्व, सहानुभूति, आत्मसंयम, पारस्परिक सहिष्णुता, और पारस्परिक आदान-प्रदानका शिक्षण मिलता है। केवल परिवार ही ऐसे शिक्षणका केन्द्र हो सकता है, क्योंकि परिवार तो जबतक व्यक्तिका जीवन है तबतक बना ही है और उसे अपने अंकमें लिए है। इस स्थायित्वके कारण ही जीवनयापनकी अन्य विधियोंकी अपेक्षा सामान्य पारिवारिक जीवन पारस्परिक आदान-प्रदानके लिए अधिक उपयुक्त, अधिक गहरा और अधिक स्थायी अवसर प्रदान करता है। कहा जा सकता है विवाह सम्बन्धकी अविच्छेद्यता समस्त मानवीय सामाजिक जीवनका प्राण है।

लेखक ओग्युस्त कौम्तको उद्धृत करता है: "व्यक्तिका मन तो बहुत चंचल होता है इसलिए समाजको मनकी इस मनमानीमें बाधा डालनी ही चाहिए; अन्यथा मानवजीवनमें निरर्थक और निरुद्देश्य अनुभवोंके अतिरिक्त कुछ भी नहीं बच रहेगा।"

डा० तुलेने लिखा है: "विवाहित लोगोंके सुखमें एक यह धारणा बहुधा बाधक बन जाती है कि प्रेम बड़ा ही दुर्दम तत्त्व है और उसे विवश होकर

सन्तुष्ट करना ही पड़ता है, किन्तु मनुष्यका यही तो एक विशिष्ट गुण है कि वह प्रकृति या अपने शरीरकी मांगोंकी प्रबलतासे अपने आपको अधिकाधिक स्वतन्त्र बनाता जाये; और उसके विकासका प्रत्यक्ष लक्ष्य भी यही मालूम पड़ता है। बच्चा स्थूल आवश्यकताओंपर नियन्त्रण रखना सीखता है और वयस्क अपनी वासनाओंपर। पूर्ण सद्शिक्षाकी यह योजना कोरी कल्पना नहीं है और न वह व्यावहारिक जीवनक्षेत्रसे परे ही है। आखिर हमारे मानसिक अस्तित्वका लक्ष्य यही है तो हम अपनी उन वैयक्तिक वृत्तियोंके अधीन रहें जिनको हम अपनी इच्छाशक्ति या संकल्प कहते हैं। लोग 'स्वभाव' की आड़ लेते हैं; किन्तु यह 'स्वभाव' प्रायः दुर्बलताका दूसरा नाम है। जो मनुष्य वस्तुतः शक्तिशाली होता है वह उचित समयपर अपनी शक्तियोंका उपयोग करना जानता है।"

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १२-८-१९२६

३११. सत्याग्रहकी विजय

पण्डित मालवीयजीकी विजय राष्ट्रकी विजय है। यद्यपि आज हम फूट और पस्तहिम्मतीके शिकार हैं, परन्तु पण्डितजीने दिखला दिया है कि अभी भी हममें अधिकसे-अधिक शक्तिशाली साम्राज्यकी ताकतको चुनौती देनेका साहस है। हिन्दुस्तानके एक इतने पुराने, सम्माननीय तथा विख्यात नेताके विरुद्ध गैरजिम्मेदारीसे ऐसा नोटिस निकालना, अपनी सत्ताके मदका प्रदर्शन करना ही था। चलिए, थोड़ी देरके लिए हम मान लेते हैं कि मालवीयजीके कलकत्ता जानेसे सरकारका सशंकित होना इसलिए उचित था कि वह शान्ति-स्थापनाके लिए प्रयत्नशील थी; फिर भी यह तो कहना ही पड़ेगा कि हिन्दुस्तानमें मालवीयजी-जैसे प्रतिष्ठित पुरुषके साथ ऐसा बर्ताव अनुचित ही है। यदि वहांके कार्यकारी गवर्नर मालवीयजीको एक निजी पत्र लिख देते या उन्हें बातचीतके लिए बुलाते और सारे सबूत सामने रखकर उन्हें समझा देते कि इस समय आपको कलकत्तेसे दूर ही रहना चाहिए तभी शान्ति बनी रह सकेगी तो उनकी पद-प्रतिष्ठापर कोई आंच न आती। और पण्डितजीका कहना है कि शान्ति बनाये रखनेके लिए वे उतने ही चिन्तित हैं जितने कि स्वयं गवर्नर महोदय। अपने सभी भाषणोंमें पण्डितजीने शान्तिकी आवश्यकतापर जोर दिया है। परन्तु सरकार तो जनताकी इच्छाकी इतनी उपेक्षा करती है कि इस शिष्ट व्यवहारकी बात सोच तक नहीं सकी। उसका ख्याल था कि मालवीयजी और डाक्टर मुंजे इस हुक्मको चुपचाप मान लेंगे। सरकारने यही माना था कि असहयोग तो मर चुका है, सविनय अवज्ञा उससे भी पहले मर चुकी है; और बारडोलीमें उसे पूरी तरह दफनाया भी जा चुका है, इसलिए सविनय अवज्ञाके सम्बन्धमें कांग्रेसके प्रस्ताव कोरी धमकियोंके सिवा और कुछ नहीं हैं। बंगाल सरकार अब अपनी भूल समझ गई। पण्डितजीका पत्र आत्मसंयमके

साथ-साथ दृढ़ताका नमूना है। पत्र लिखनेके बाद जो तय किया था वही काम करना, मजिस्ट्रेटके साथ मिलनेसे उनका इनकार करना, कलकत्तेमें विजय-प्रवेश और अपने वहाँ निश्चित कार्यक्रमके अनुसार ऐसे शान्त भावसे सब काम करते जाना मानो कुछ हुआ ही नहीं, लोगोंको दिमाग ठण्डा रखने, कोई दिखावा न करने आदिकी सलाह देना सविनय अवज्ञाके अनुकरणीय उदाहरण हैं। यह उम्मीद की जा सकती है कि सरकार अब यह समझ जायेगी कि सत्याग्रहके सिद्धान्तका इस देशमें नाश नहीं होगा और जब कभी जरूरत पड़ेगी, पर्याप्त लोग उसके लिए तैयार हो जायेंगे।

यदि हिन्दू और मुसलमान, दोनों यह समझें कि मालवीयजी और डाक्टर मुंजे-के नाम नोटिस जारी करके सरकारने हिन्दुओंके विपक्षमें या मुसलमानोंके पक्षमें कोई काम किया है, तो यह उनकी भूल होगी। सरकारकी चक्कीमें तो जो सामने आ जाये वही पीस दिया जाता है। यदि सरकारको जरूरत पड़ेगी तो आज जिस प्रकार एक प्रमुख हिन्दूके खिलाफ उसने नोटिस जारी किया है उसी प्रकार कल किसी उतने ही प्रमुख मुसलमानपर भी उसकी ऐसी ही नज़रे-इनायत होगी। सरकारके इस कथनसे कि सचमुच वह शान्ति चाहती है, कोई धोखा नहीं खायेगा। मैं तो यह कहनेका भी साहस करूँगा कि तलवारके बलपर हिन्दुस्तानमें ब्रिटिश राज बनाये रखनेकी इच्छाके साथ हिन्दू-मुसलमानोंमें मेलकी सच्ची कामनाका मेल बिलकुल नहीं बैठता। जब अंग्रेज अफसर एक ही परिवारकी इन दो शाखाओंमें मेलके लिए कोशिश करने लगेंगे, तभी वे हमारी रजामन्दीसे यहाँ रहना शुरू करेंगे। आखिर इस बातका पता कि हिन्दुस्तानका शासन 'फूट डालो और शासन करो' की नीतिके अनुसार ही होता है, यदि मैं भूलता नहीं हूँ तो किसी हिन्दुस्तानीने नहीं बल्कि एक अंग्रेजने ही पहले-पहल लगाया था। या तो स्वर्गीय ऐलन ऑक्टेवियस ह्यूमने या जॉर्ज यूलने ही हमें बताया था कि साम्राज्यका आधार फूटके बलपर शासन करनेकी नीतिपर ही आधारित है। हमें इसपर न तो आश्चर्य करना चाहिए और न इसका कुछ बुरा ही मानना चाहिए। रोमकी बादशाहत भी ऐसा ही करती थी। इन अंग्रेजोंने बोअरोंके साथ भी ऐसा ही तौर अपनाया था। कुछ लोगोंपर विशेष दयादृष्टि रखकर बोअरोंमें फूट पैदा करनेकी कोशिश की गई थी। भारत सरकार टिकी ही अविश्वासपर है। अविश्वाससे कुछ लोगोंकी तरफदारी और तरफदारी करनेसे फूट होगी ही। ऐसे कितने ही स्पष्ट अंग्रेज वक्ता हैं जिन्होंने यह बात स्वीकार कर ली है। भारतीय इतिहासका कोई भी गम्भीर पाठक, वाइसराय या गवर्नरोंके हालके शान्ति सम्बन्धी कथनोंको नहीं मान सकता। मैं यह माननेको तैयार हूँ कि वाइसराय महोदयने जो-कुछ कहा है सच्चे दिलसे कहा है। सरकारकी नीतिको फूटनीति कहनेके लिए यह जरूरी नहीं कि बड़े-बड़े अफसरोंको भी बेईमान कहना पड़े और यह भी जरूरी नहीं कि फूटनीतिपर हमेशा जानबूझकर ही अमल किया जाये। हिन्दुओंके विरुद्ध मुसलमानों, अब्राह्मणोंके विरुद्ध ब्राह्मणों, दोनोंके ही विरुद्ध सिखों, तीनोंके विरुद्ध गोरखोंको लड़ानेका यह उलट-पुलट और साँठ-गाँठका खेल जबसे अंग्रेजी राज्य शुरू हुआ है, तभीसे हो रहा है और तबतक होता ही रहेगा जबतक सरकारको यह विश्वास रहेगा कि

उसका हित प्रजाके हितके विरुद्ध है या उसकी स्थिति प्रजाकी इच्छाके विरुद्ध है। इसलिए राष्ट्रीय उन्नतिके लिए स्वराज्य परमावश्यक है। इसीलिए श्रीमती बेसेंटने भी जोर देकर कहा है कि स्वराज्यके बिना हिन्दू-मुसलमान ऐक्य लगभग असम्भव ही है। और दुर्भाग्यसे हमारे लिये दिन-प्रतिदिन यह स्पष्ट होता जा रहा है कि हिन्दू-मुस्लिम एकताके बिना भी स्वराज्य असम्भव है। खैर मैं तो यह सब होनेपर भी इतना आशावादी हूँ कि मेरा यह विश्वास बना हुआ है कि हमारे प्रयत्नोंके बिना भी एकता होकर रहेगी, क्योंकि मैं लोकमान्यके उस आदर्श वाक्यमें पूरा और पक्का विश्वास करता हूँ कि 'स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं उसे लेकर रहूँगा'। जहाँ मनुष्यकी कोशिश बेकार हो जाती है, वहाँ ईश्वरकी कृपा फलीभूत हो सकती है, क्योंकि उसकी सरकार कूटनीतिपर नहीं चलती।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १२-८-१९२६

३१२. राष्ट्रीय शिक्षाके क्षेत्रमें एक अगुआ

आचार्य बीजापुरकर,[1] जिनकी मृत्युकी खबर गत सप्ताह दी गई थी, राष्ट्रीय शिक्षाके क्षेत्रमें एक अगुआ था। कहा जा सकता है कि उन्होंने अपना समस्त जीवन राष्ट्रीय शिक्षाके लिए अर्पित कर दिया था। उन्होंने इसकी खातिर अनेक कष्ट सहन किये थे। वे तलेगाँवकी शिक्षण-संस्थाकी आत्मा थे। उन्होंने छात्रोंके लिए मराठीकी पाठ्यपुस्तकें लिखनेमें बड़ी मेहनत की थी। उन्हें ढोंग, छल-कपट और झूठसे बहुत घृणा थी। वे सादगीकी मूर्ति थे, जैसे कि सभी महाराष्ट्रीय कार्यकर्त्ता बहुधा हुआ करते हैं। उनके छात्र उनसे बेहद प्यार करते थे और वे भी उनसे ऐसा ही स्नेह करते थे जैसे पिता अपने बच्चोंसे करता है। मैं स्वर्गीय आचार्य महोदयके परिवारके सदस्यों और उनके प्रिय अनुयायियोंके प्रति संवेदना प्रकट करता हूँ।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १२-८-१९२६

१. आचार्य विष्णु गोविन्द बीजापुरकर (१८६३-१९२६); राष्ट्रीय शिक्षाके प्रचारक।

३१३. क्या अहिंसाकी कोई सीमा है?

एक सज्जनने, अपना पूरा नाम पता देकर एक लम्बा पत्र भेजा है। उसका कुछ भाग नीचे दिया जाता है।

> आप शायद जानते होंगे कि मद्रासमें इस समय कांग्रेसके कार्यकर्त्ताओंके साथ क्या हो रहा है। गत दो दिनोंमे 'जस्टिस' पार्टीवालोंने उनके साथ दुर्जनताकी हद कर दी है। कांग्रेसके उम्मीदवार श्रीयुत... के लिए श्रीयुत... के साथ श्रीयुत... मतदाताओंसे पैरवी कर रहे थे। 'जस्टिस' पार्टीका एक दल इनके पीछे-पीछे लगा फिरता था। जब ये लोग 'जस्टिस' पार्टीके उम्मीदवारके घरके पास पहुँचे, तब जस्टिस पार्टीवालोंने कांग्रेस कार्यकर्त्ताओंको अचानक घेर लिया और... के और... के मुँहपर थूक दिया।... आपको लिखनेका उद्देश्य यही है कि आप अपने अहिंसाके सिद्धान्तका खुलासा करें कि ऐसे घोर अपमानकी गम्भीर स्थितिमें कांग्रेसवालोंका क्या कर्त्तव्य है। चिढ़ानेवाली उनकी यह कार्यवाही दिनपर-दिन बढ़ती जा रही है और कांग्रेसवालोंके लिए शायद किसी दिन अपने नौजवानोंको हिंसाके मार्गपर ले जानेसे रोकना असम्भव हो जायेगा। इसलिए मै आपसे पूछता हूँ कि क्या व्यक्तिगत रूपसे अत्याचारसे अपना बचाव करना अहिंसाके सिद्धान्तसे मेल खाता है? यदि हाँ, तो किन शर्तोपर?... सुनते है कि 'जस्टिस' पार्टीवाले गुंडागर्दीका प्रयोग करके प्राप्त सफलताके आधारपर इसे राजनीतिक युद्धका बाकायदा अस्त्र बनाकर आगामी नवम्बर मासमें असेम्बली और कौन्सिलके चुनावके समय कांग्रेसके विरुद्ध इससे काम लेना चाहते हैं।

आदमियों और स्थानोंके नाम मैंने जानबूझकर हटा दिये हैं, क्योंकि उनसे मुझे यहाँ कोई सरोकार नही है। प्रसंगोचित अहिंसाका जमाना बहुत दिन हुए बीत गया। जो मनसे अहिंसक नही रह सकते उन्हें पत्रलेखककी बतलाई हुई स्थितिमे भी अहिंसक बने रहनेके लिए कोई बाध्य नहीं करता। अहिंसा, कांग्रेसका सिद्धान्त है तो सही परन्तु आज अहिंसक बने रहनेके लिए किसीको कांग्रेसके सिद्धान्तकी परवाह नही है। आज जो कांग्रेसी अहिंसक है, सो इसलिए कि उसमें हिंसक होनेकी शक्ति नही है। इसलिए मेरी दो टूक सलाह यही है कि किसी भी कांग्रेसीको मेरे पास या किसी दूसरे कांग्रेसीके पास, अहिंसाके प्रश्नपर सलाह लेने जानेकी जरूरत नही है। सभीको अपनी ही जिम्मेवारीपर काम करना होगा और अपनी ही बुद्धि और विश्वासके अनुसार कांग्रेसके सिद्धान्तका अर्थ लगाना होगा। मैंने प्रायः देखा है कि उन्ही निर्बल मनुष्योंने कांग्रेसके मन्तव्यकी या मेरी सलाहकी आड़ ली है, जो अपनी कायरताके कारण अपनी या अपने आश्रितोंकी इज्जत की रक्षा नहीं कर सके हैं। यहाँ बेतियाके निकटकी एक घटना

याद आती है। उस समय असहयोग जोरोंपर था। कुछ गाँववालोंको लूटा गया और वे लुटेरोंके हाथ अपनी स्त्रियों, बच्चों और घरोंका सामान छोड़कर भाग गये। अपना दायित्व इस तरह छोड़कर भाग जानेकी कायरताके लिए जब मैंने उनकी भर्त्सना की तो उन्होंने निर्लज्जतापूर्ण ढंगसे अहिंसाकी दुहाई दी। मैंने सार्वजनिक रूपसे उनके इस व्यवहारकी निन्दा की और कहा कि मेरी अहिंसाके अनुसार जो अहिंसाकी वृत्ति न रख सकते हों और जिनकी रक्षामें स्त्रियाँ और बच्चे हों, उनके द्वारा हिंसा जायज है। कायरताको छिपानेके लिए अहिंसाकी आड़ लेना अहिंसा नहीं है। अहिंसा तो वीरोंका गुण है। अहिंसाके पालनमें, तलवार चलानेसे कहीं अधिक वीरताकी जरूरत है। कायरता और अहिंसाका कहीं कोई मेल नहीं है। तलवार छोड़कर अहिंसा ग्रहण करना सम्भव है और कभी-कभी तो यह आसान भी होता है। इसलिए, यह बात पहलेसे ही मान ली जाती है कि अहिंसा ग्रहण करनेवाले व्यक्तिमें चोट करनेकी क्षमता भी होगी ही। वह बदला लेनेकी अपनी प्रवृत्तिपर जानबूझ कर लगाम लगा देता है। परन्तु निष्क्रिय होकर औरतों-जैसे असहाय बनकर आत्मसमर्पण करनेसे तो बदला लेना ही कहीं अच्छा है। बदला लेनेसे क्षमा बड़ी चीज है। बदला लेना भी एक कमजोरी ही है। बदला लेनेकी इच्छा, इस भयसे उत्पन्न होती है कि शायद कोई हानि — वास्तविक या काल्पनिक — होगी। जब कुत्ता डरता है तभी भौंकता और काटता है। जिसे संसारमें किसीसे भय नहीं वह उस आदमीपर क्रोध करनेमें भी एक झंझट-सी महसूस करेगा जो उसे हानि पहुँचानेकी विफल चेष्टा कर रहा हो। छोटे लड़के सूर्यपर धूल फेंकते हैं परन्तु वह तो उनसे बदला नहीं लेता। इससे उनकी अपनी ही हानि होती है।

मुझे पता नहीं कि 'जस्टिस' पार्टीवालोंके दुष्कृत्योंका जो वर्णन पत्रलेखकने किया है, ठीक है या नहीं। शायद, इसका एक दूसरा भी पक्ष होगा। लेकिन, सभी बातें, सच्ची मान लेनेपर, मैं तो उन लोगोंको बधाई ही दूँगा जिनके ऊपर थूका गया, मैला फेंका गया, या मार पड़ी। यदि अपमान सहकर मनमें भी बदला लेनेके भाव न लानेका साहस उनमें था तो इससे उनको कोई हानि नहीं पहुँची है। परन्तु यह उनकी भूल ही कही जायेगी, यदि उन्होंने क्षुब्ध होते हुए भी केवल हवाका रुख देखकर बदला न लिया हो। स्वाभिमान हवाका रुख देखकर नहीं चलता। मुझे यह समझमें नहीं आता कि ये प्रतिष्ठित कांग्रेसी, जो 'जस्टिस' पार्टीके उन चन्द गुंडोंसे गिनतीमें इतने अधिक थे, उन्हें कौनसी सजा दे सकते थे? क्या वे भी मैलेका जवाब मैलेसे, थूकका थूकसे और गालीका गालीसे देते? या इस बहुसंख्यक दलके स्वाभिमानकी रक्षा उन थोड़ेसे गुंडोंकी उपेक्षा करनेमें ही होती? असहयोगकी जिस समय हवा चल रही थी, उस समयकी बात मैं जानता हूँ कि जो गुंडे सभाओंमें गड़बड़ करना चाहते थे उनके साथ कैसा व्यवहार होता था। स्वयंसेवक उन्हें पकड़कर बैठाये रहते मगर कोई चोट नहीं पहुँचाते थे और यदि वे शोर करते तो उनके गुल-गपाड़ेकी उपेक्षा ही की जाती थी। मैं जानता हूँ कि उस जमानेमें भी बहुत बार अहिंसाका नियम तोड़ा जाता था और जो लोग सभाओंमें विघ्न डालते या विरोधमें कुछ बोलते

थे, उन्हें बहुसंख्यक समुदाय शोर करके बैठा देता था या कभी-कभी तो उनके साथ जोर-जबर्दस्ती भी की जाती थी। इसमें उस बहुसंख्याका और उस आन्दोलनका अपमान ही होता था। वे इस प्रकार उस आन्दोलनको बिना सोचे-समझे धोखा देते और अर्थका अनर्थ करते थे। इसलिए मैं, इस कांग्रेसी पत्रलेखकसे, तथा उन कांग्रेसियोंसे जिनके ये प्रतिनिधि हैं, यह भी कहना चाहता हूँ कि यदि 'जस्टिस' पार्टी या किसी और पार्टीको उन्हें अपनी ओर कर लेना मंजूर हो तो उनके साथ नम्रताका ही व्यवहार करना होगा, भले ही वे उद्दण्डता दिखलायें। यदि सभी विरोधियोंको दबाना ही इष्ट है, तो फिर दोनों ओरसे डायरशाहीका व्यवहार ही उचित दवा है। लेकिन हम उससे स्वराज्यके निकट पहुँच सकेंगे या नहीं, यह एक दूसरा ही सवाल है।

जहाँ विश्वास ही न हो, वहाँ मेरी सब सलाह बेकार है। इसलिए सभी कांग्रेसियोंको सभी तरहसे आगा-पीछा सोच लेना चाहिए और तब एक निश्चय करके उसीके अनुसार काम करना चाहिए। तब इसकी कुछ भी परवाह नहीं करनी चाहिए कि इसका क्या नतीजा होगा। इसमें भूल होना सम्भव है, परन्तु तब भी उनका आचरण ठीक ही कहा जायेगा। अज्ञानवश की हुई हजारों भूलें, उस बिलकुल सही और सोचे-समझे कामसे अच्छी हैं, जिसके पीछे विश्वास न हो। वह तो मक्कारी ही होगी। सबसे बड़ी बात तो यह है कि यदि हमें देशके साथ सच्चे बनकर रहना है और उसे उसके अभीष्ट स्थानपर पहुँचाना ही है तो हमें अपने खुदके प्रति ईमानदारी ही बरतनी पड़ेगी। अहिंसाको नारेबाजीकी चीज मत बनाइए। यह कोई पोशाक तो नहीं है कि जब चाहा पहन ली और जब चाहा उतार दी। इसका स्थान हमारे हृदयोंमें है और हमें अपने जीवनके साथ इसका अटूट सम्बन्ध जोड़ना होगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १३-८-१९२६

३१४. पत्र: आर० ए० ऐडम्सको

आश्रम
साबरमती
१२ अगस्त, १९२६

प्रिय मित्र,

आपके ६ अगस्तके पत्रके[1] लिए धन्यवाद। मैंने पूछताछ कर ली है। ऐसा प्रमाण-पत्र कि नेशनल कालेजके विद्यार्थी 'बाइबिल' की प्रतियाँ खरीदनेके लायक पैसे नहीं जुटा सकते, नहीं दिया जा सकता। लेकिन मैंने कल एक आदमी यह पता लगानेके

१. आर० ए० ऐडम्सने अपने पत्रमें नेशनल कालेजके एक विद्यार्थी द्वारा बाइबिलके नये करारकी एक प्रति मुफ्त माँगनेका जिक्र किया था और अपने उत्तरकी प्रति (एस० एन० १०९७७) संलग्न करते हुए लिखा था कि यदि बाइबिलकी मुफ्त प्रति चाहनेवाले सभी विद्यार्थियोंकी एक सूची उन्हें भेज दी जाये, तो वे उन सभीको बाइबिल भेज देंगे। (एस० एन० १०९७६) से।

लिए भेजा था कि कितने विद्यार्थी रियायती कीमत देकर 'बाइबिल' खरीदनेके लिए तैयार हैं। मुझे ४० विद्यार्थियोंकी अर्जियां मिली हैं। यदि आप मुझे यह बतानेकी कृपा करें कि विद्यार्थियोंको इन प्रतियोंको देनेमें कितना खर्च बैठेगा, तो मैं आपको बता दूंगा कि वे इस कीमतपर 'बाइबिल' लेंगे या नहीं। मेरे खयालसे तो ज्यादा अच्छा यही रहेगा कि विद्यार्थी सम्पूर्ण 'बाइबिल' लें, 'नया करार' भर नहीं। मैं समझता हूँ कि आपके संग्रहमें सम्पूर्ण 'बाइबिल' का एक सस्ता संस्करण है। जाहिर है कि वे उसका अंग्रेजी संस्करण ही खरीदना चाहेंगे।

हृदयसे आपका,

श्री आर० ए० ऐड्म्स
मन्त्री, ब्रिटिश ऐंड फॉरेन बाइबिल सोसाइटी
१७०, हॉर्नबी रोड, बम्बई

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०९८०) की माइक्रोफिल्मसे।

३१५. पत्र : आ० टे० गिडवानीको

आश्रम
साबरमती
१२ अगस्त, १९२६

प्रिय गिडवानी,

कताई-शिक्षक भरत कल यहाँसे प्रेम महाविद्यालयके लिए रवाना हो चुके थे। आशा है आपके पास सकुशल पहुंच गये होंगे।[1] उन्होंने अपना उपनाम भरत इसलिए रखा है कि वे अपने अन्दर तुलसीदासकी 'रामायण' के भरत-जैसे गुण पैदा करना चाहते हैं। आशा है कि वे आपको काफी कुशल और मेहनती लगेंगे। वे अपनी आँखोंकी ज्योतिकी कमजोरीकी शिकायत करते हैं। आपके यहाँ जानेसे पहले, डाक्टरने उनकी आँखोंकी परीक्षा की थी, पर उन्हें उनमें कोई खराबी नजर नहीं आई। फिर भी अगर वे शिकायत करें तो आप जो उचित समझें वह करें। भरत आपको एक तकली देंगे। कुछ दिन पहले आपके पास एक तकुआ भी भेजा था। आपके यहाँके लोगोंको एक बार फिर प्रयास करके हमारी जरूरतकी चीज तैयार करनी चाहिए।

रायने प्रार्थनाके सम्बन्धमें जो शंका उठाई है, उसके बारेमें आप नहीं चाहते कि मैं उसका समाधान करूँ।

स्टेंजरके लोगोंको जैसा शिक्षक चाहिए वैसा इस समय मिल नहीं रहा है। मैं वह पत्र लौटा रहा हूँ, शायद आपको उसकी जरूरत पड़े।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११२७२) की माइक्रोफिल्मसे।

१. देखिए "पत्र : आ० टे० गिडवानीको", ६-८-१९२६।

३१६. पत्र : ए० सेन और पी० बोसको

आश्रम
साबरमती
१२ अगस्त, १९२६

प्रिय बहनो,

पत्रके लिए मैं आपका आभारी हूँ।[1] पबना और अन्य स्थानोंकी दुःखद घटनाओंके बारेमें मेरी जानकारी सामान्य ही है, अधिक नहीं।[2] मुझे समाचारपत्रोंपर अविश्वास है; इसलिए मैं उनमें छपे विवरण पढ़ता ही नही हूँ। इसलिए यदि आप अपने पासकी सारी प्रामाणिक जानकारी मुझे भेज सकें तो आपकी कृपा होगी।

आपने मुझसे 'यंग इंडिया' के पृष्ठोंमें जिस प्रश्नका उत्तर देनेका अनुरोध किया है, वह प्रश्न[3] कुछ नाजुक-सा है। मैं और आप दोनों एक ही उद्देश्य लेकर चल रहे हैं और मुझे यह भरोसा नहीं है कि ऐसे नाजुक प्रश्नपर सार्वजनिक रूपसे चर्चा करनेसे हमारे उस उद्देश्यको हानि नहीं पहुँचेगी। अपने विश्वासी मित्रोंसे मुझे जो विवरण मिला है, उससे तो यही पता चलता है कि जहाँ-जहाँ बलात्कार हुए हैं वहाँ उनके पीछे पुरुषोंकी कायरता ही विशेष कारण थी, स्त्रियोंकी शारीरिक प्रतिरोधकी असमर्थता इतनी नहीं। आपने जिस प्रकारकी एक संस्था बनानेका सुझाव दिया है उसके उपयुक्त होनेमें सन्देह है। यह नहीं कि मैं अन्य कोई साधन न रहनेपर भी स्त्रियों द्वारा कटार या तमंचोंका प्रयोग किये जानेमें पाप समझता हूँ। मेरे सन्देहका कारण यह है कि ऐसे अधिकांश मामलोंमें इस प्रकारकी आत्मरक्षा नितान्त निकम्मी सिद्ध होती है और फिर हमारे देशकी स्त्रियोंको किसी बड़ी संस्थामें कटार या तमंचा चलानेमें सिद्धहस्त होते-होते युग लग जायेंगे। इसमें सबसे जल्दी सफलता पानेका तरीका शायद यही है कि स्त्रियाँ पुरुषोंको शर्मिन्दा करें और इस प्रकार उन्हें इस बातके लिए तैयार करें कि चाहे कुछ भी हो, अपनी स्त्रियोंकी रक्षाके अपने कर्त्तव्यका पालन वे अवश्य करें। लेकिन कोई भी कदम उठानेसे पहले यह जरूरी है कि आप

१. इसपर ४ अगस्त, १९२६ की तिथि पड़ी थी। इसमें पत्र-लेखिकाओंका पता वही था जो गांधीजीने २९-७-१९२६ के **यंग इंडिया**में लिखा था।

२. पत्र-लेखिकाओंने बंगालके गाँवोंमें मुसलमान गुण्डों द्वारा हिन्दू स्त्रियोंपर किये गये बलात्कारोंकी घटनाओंका उल्लेख किया था। और **मॉडर्न रिव्यू**के सम्पादक रामानन्द चटर्जी द्वारा अपनी बंगला पत्रिका **प्रवासी**में उल्लिखित इस वाक्यका जिक्र किया था कि मुझे आश्चर्य है कि गांधीजीने बंगालमें इतने दिन रहने और लम्बा दौरा करनेके बाद भी बंगालकी पीड़ित स्त्रियोंके बारेमें एक शब्द भी क्यों नहीं कहा (एस० एन० १२३७८)।

३. प्रश्न यह था: "जब ऐसा काण्ड होने जा रहा हो, तब महिलाएँ क्या करें और क्या उनको बचपनसे ही व्यायाम नहीं करना चाहिए और ऐसे गुण्डोंसे अपनी रक्षा करना क्यों नहीं सीखना चाहिए?

निर्विवाद तथ्योका पता लगा लें। क्या यह दुष्कर्म आम हो गया है? पिछले छः महीनोंमें ही वास्तवमें बलात्कारकी घटनाएँ कितनी हुई हैं? क्या इस प्रकारके सारे मामलोंमें पुरुषोके लिए उन बहनोंकी रक्षा करना असम्भव था? बदमाशोने उनको हथियानेके ठीक-ठीक कौनसे तरीके अपनाये थे? आशा है कि आप तबतक कोई कदम न उठायेंगी जबतक तथ्योका पूरा-पूरा पता न लगा ले और आपको यह उचित विश्वास न हो जाये कि इस बुराईसे जूझनेके लिए आप जिन साधनोको सुझायेंगी अन्य लोग भी उन्हें स्वीकार कर लेंगे।

हृदयसे आपका,

श्रीमती ए० सेन तथा कुमारी पी० बोस
द्वारा राजकुमार सेन
दीनानाथ सेनकी गली, गण्डारिया
डाकखाना फरीदाबाद, ढाका

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १२३७८) की फोटो-नकलसे।

३१७. पत्र : नाजुकलाल नन्दलाल चोकसीको

आश्रम
साबरमती
बृहस्पतिवार, श्रावण शुक्ल ४, १२ अगस्त, १९२६

भाई नाजुकलाल,

अब तो तुम बम्बई वापस आ गये होगे। वेलाबहन मोतीकी रट लगाये हुए है। यदि उसे भेज सको तो थोड़े समयके लिए भेज दो। लेकिन यदि न भेज सको तो स्पष्ट लिखनेमें तनिक भी संकोच न करना।

आशा है तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा होगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (एस० एन० १२१३४) की फोटो-नकलसे।

३१८. पत्र : मोतीबहन चोकसीको

आश्रम
साबरमती
बृहस्पतिवार, श्रावण शुक्ल ४, [१२ अगस्त, १९२६][1]

चि० मोती,

वेलाबहन तुम्हें देखनेका बहुत आग्रह कर रही हैं; इसलिए यदि आ सको अर्थात् तुम्हें आनेकी अनुमति आसानीसे मिल सके तो आ जाओ। लक्ष्मीदासको आनेमें अभी थोड़ा समय लगेगा। आशा है तुम्हारी तबीयत अब अच्छी हो गई होगी। तुम्हारे पत्रकी उम्मीद तो अब कर ही कैसे सकता हूँ?

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (एस० एन० १२१३५) की फोटो-नकलसे।

३१९. पत्र : फूलचन्द शाहको

साबरमती
१२ अगस्त, १९२६

भाईश्री फूलचन्द,

इसके साथ मणिकलालका पत्र भेज रहा हूँ। इसमें दिये गये सुझावके अनुसार यदि तुम्हें यह लगे कि रामदासको वहाँ जाना चाहिए तो तुम उसे जानेके लिए लिख देना। मैंने उसे लिख दिया है कि वह तुम्हारे कहनेके मुताबिक काम करे। अतः जैसा उचित हो वैसा करना।

बापू

गुजराती पत्र (एस० एन० १२२४७) की माइक्रोफिल्मसे।

१. साधन-सूत्रमें १३ तारीख दी गई है; लेकिन श्रावण शुक्ल ४, बृहस्पतिवार, १२ अगस्तको थी।

३२०. पत्र : गोकुलभाई भट्टको

आश्रम,
साबरमती
बृहस्पतिवार, श्रावण सुदी ४, १२ अगस्त, १९२६

भाईश्री ५ गोकुलभाई,

आपका पत्र मिला। आपने जिस अनुच्छेदके बारेमें लिखा है, मैंने उसे दो-तीन बार पढ़ा है। आपको उक्त सज्जन पैसा देनेसे क्यों इनकार करते हैं, मैं यह बात समझ नहीं सकता। इन सज्जनने मेरे किस वाक्यसे यह निष्कर्ष निकाला है कि आपका स्कूल बन्द कर दिया जाना चाहिए? माता-पिता और शिक्षकके राष्ट्रीय भावनासे युक्त होनेके बावजूद विद्यार्थी शिथिल हैं, क्या यह बात आपके स्कूलपर लागू होती है? मेरे विचारानुसार तो लागू नहीं होती। माता-पिता और शिक्षक विद्यार्थियोंको खादीमय बनाना चाहें; किन्तु विद्यार्थी फिर भी खादी न पहनें, क्या ऐसा कहीं होता है? क्या आपके यहाँ विद्यार्थी खादी नहीं पहनते? जहाँतक मैं समझ सका हूँ, आपके यहाँ तो अधिकांश विद्यार्थी खादी पहनते हैं। फिर उक्त बात आपपर किस तरह लागू होती है? और यदि विद्यार्थी खादी नहीं पहनते हैं तो भी मैं नहीं समझता कि आपके स्कूलके सम्बन्धमें ऐसा कहा जा सकता है और यदि यह सच हो तो भी उक्त वाक्यके अनुसार उसे चालू रखा जाना चाहिए। क्या यह बात स्पष्ट नहीं है? आप इस पत्रका जो उपयोग करना चाहें, कर सकते हैं। क्या मुझे फिर भी कुछ लिखनेकी जरूरत है? यदि हो तो मुझे समझायें।

बापू

श्री गोकुलभाई दौलतराम भट्ट
बम्बई

गुजराती पत्र (एस० एन० १२२४८) की माइक्रोफिल्मसे।

३२१. पत्र : देवदास गांधीको

आश्रम
साबरमती
गुरुवार, श्रावण सुदी ४, १२ अगस्त, १९२६

चि० देवदास,

तुम्हारा पत्र मिला। मैंने तार द्वारा तुम्हारी सूचना पाकर शीघ्रातिशीघ्र कार्रवाई की थी। चरखा तुम्हें मिल गया होगा। पूनियोंके लिए तो मैं कहना ही भूल गया था और इसलिए वे शायद बाँधी न गई हों। श्रीमती बेसेंट और महारानी[1] की तुलना नहीं की जा सकती। मैंने महारानीके साथ कोई अन्याय नहीं किया है।[2] श्रीमती बेसेंट सार्वजनिक कार्यकर्त्री हैं। यदि वे चरखा खरीदती हैं तो उसका महत्व समझती हैं। महारानी चरखा चलायेंगी भी तो केवल अपने मनोविनोदके लिए। तटस्थतामें भी विवेकके लिए तो स्थान रहता ही है। मैंने तो तुम्हें एक ही कारण बताया था, दूसरा कारण तो महाराजाकी बात बताते हुए तुमने अपने पत्रमें स्वयं ही दिया है। मैं महाराजाके सम्बन्धमें बहुत-कुछ जानता हूँ। उनका जीवन तनिक भी शुद्ध नहीं है और उनका मन बहुत चंचल है। उनमें स्थिरता तनिक भी नहीं है। वे मुझसे कोई काम निकालनेकी आशा रखते हैं; किन्तु मैं उनकी आशा पूरी नहीं कर सकता। मुझे तो उनके चरखा चलानेमें भी उनकी इसी आशाकी गंध आती है। मैंने तुम्हें इसीलिए चेताया है। उसके बाद क्या करना उचित है यह तुम्हारे विवेकपर छोड़ दिया है ताकि महाराजाके प्रति रंचमात्र भी अन्याय न हो।

तुम्हारी वहाँ रहनेकी इच्छा है, यह मैं समझ गया। तुम वहाँ खुशीसे रहो और जब स्वास्थ्य पूरे तौरपर सुधर जाये तभी आओ। शिमला जाना चाहो तो अवश्य जाओ। शिमला जाओ या मसूरी अथवा कहीं अन्यत्र जाओ, तुम्हें सभी स्थानोंमें कुछ-न-कुछ काम तो अवश्य करना है। खादीकी बिक्री तभी होगी। सभी काम तुम अपने हाथसे करते रहना। तुमने छगनलालको यहाँसे जो खादी भेजनेके लिए लिखा था सो मैंने उसे भण्डारमें रोक रखनेके लिए कह दिया है। मैंने पत्रमें जो-कुछ लिखा है उसको ध्यानमें रखते हुए तुम खादी कहाँ मँगवाना चाहते हो?

प्यारेलालने जैसा पत्र तुम्हें लिखा है, वैसा ही महादेवको लिखा है। इस समय यहींसे रुपया भेजनेका प्रबन्ध हो जायेगा। हरिलाल अभी तो यहीं है। बलीबहन[3] आती रहती हैं।

बापू

गुजराती पत्र (एस० एन० १२२४३) की फोटो-नकलसे।

१. नाभा राज्यकी महारानी।
२. देखिए "पत्र : देवदास गांधीको", ३-८-१९२६।
३. हरिलालकी साली।

३२२. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

श्रावण शुक्ल ४, [१२ अगस्त, १९२६][1]

भाईश्री ५ घनश्यामदास,

आपका खत मीला है। मैं तो खूब जानता हुं कि श्री मालवीजी और श्रद्धानन्दजीके सिवाय हिंदु मुसलमान ऐक्य असंभवित हि है। मैं तो केवल मार्गदर्शक हि रहना चाहता हुं और छोटे २ झगड़े हो जाय उसमें कुछ कर सकुं तो करना चाहता हुं — मेरा कार्य भंगीका है — साफ करना और रखनेकी कोशीप करना। जब कुछ भी सुलहनामा बनानेका समय आवेगा तब तो अवश्य श्री मालवीजी ई०की सम्मतिकी पूरी आवश्यकता रहवेगी।

आपका,
मोहनदास गांधी

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ६१३१) से।
सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला

३२३. पत्र : अनन्त मेहताको

आश्रम
साबरमती
१३ अगस्त, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला और साथ ही आपके सुझावोंके मुताबिक सत्याग्रह आरम्भ करनेके लिए कोषकी शुरुआतके रूपमें अहमदाबादके डाकखानेके नाम बीस शिलिंगका एक 'क्रास' किया हुआ पोस्टल ऑर्डर भी। मैं आपके पत्रके बारेमें किसी-न-किसी रूपमें शायद 'यंग इंडिया' में लिखूंगा। पर मैं आपको इतना बतला दूं कि आपने यहाँकी वर्तमान स्थिति जाने बिना ही पत्र लिखा है। आपके भेजे पोस्टल ऑर्डरका भुगतान अहमदाबादमें ही लिया जा सकता था; इसलिए वह मुझे भुनाना तो पड़ा है; लेकिन मैं अभी तत्काल सत्याग्रह शुरू करनेमें असमर्थ हूँ और आपके सुझाये हुए

१. हिन्दू-मुस्लिम झगड़ोंमें मार्गदर्शन करनेकी इच्छाकी अभिव्यक्तिसे लगता है कि यह पत्र १९२६ में लिखा गया होगा।

कोषका संग्रह भी अभी शुरू नहीं कर सकता, इसलिए आप कृपा करके लिखें कि इस पोस्टल आर्डरकी राशिका क्या उपयोग किया जाये?

हृदयसे आपका,

श्री अनन्त मेहता
ब्रिटिश भारतीय संघ
१०, ग्रोसवर्नर गार्डन्स
लन्दन, द० प०

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०७९९) की फोटो-नकलसे।

३२४. पत्र: जनकधारी प्रसादको

आश्रम
साबरमती
१३ अगस्त, १९२६

प्रिय जनकधारी बाबू,

आपका पत्र मिल गया। डा० बेसेंट द्वारा निरूपित मतके[1] सिलसिलेमें मैंने थोड़ा विचार कर लिया है। उसके सम्बन्धमें मेरे मनमें कोई उत्साह पैदा नहीं हुआ। प्रत्येक मनुष्यको अपनी मुक्तिके लिए स्वयं ही प्रयत्न करना पड़ता है। मैंने पटनामें उन सज्जनसे[2] सम्पर्क स्थापित किया था। उन्होंने मेरे मनपर कोई खास छाप नहीं डाली और जहाँतक मुझे मालूम है उन्होंने देशबन्धुका देहावसान होनेके बाद उनको दिये गये अपने वचनका पालन भी नहीं किया है।

आप वहाँ[3] एक ही परिवारके सदस्योंकी भाँति रहते हैं। ऐसी स्थितिमें मुसलमान अध्यापकको हिन्दू अध्यापकोंसे अलग मानना और उससे अलग बैठकर भोजन करनेके लिए कहना सम्भव नहीं है।

आशा है आपका स्वास्थ्य बहुत अच्छा होगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत जनकधारी प्रसाद
गांधी विद्यालय
डा० हाजीपुर, जिला मुजफ्फरपुर

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११२२३) की फोटो-नकलसे।

१. जनकधारी प्रसादने पहली अगस्तके अपने पत्रमें अन्य बातोंके साथ-साथ ईसा मसीहके अवतारके सम्बन्धमें डा० एनी बेसेंटके एक वक्तव्यका उल्लेख किया था और गांधीजीसे अनुरोध किया था कि वे उसके सम्बन्धमें अध्ययन करके अपने निजी विचार व्यक्त करें। (एस० एन० ११२१५)।

२. चितरंजन दासने गांधीजीसे पटनाके एक गुरुकी बात की थी।

३. हाजीपुर विद्यालयके विभिन्न जातियोंके अध्यापकोंकी ओर संकेत है।

३२५. पत्र : प्रफुल्लचन्द्र सेनको

आश्रम
सावरमती
१३ अगस्त, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला और वह मुझे वहुत अच्छा लगा। आपके कामके तरीकेको पूरी तरह पसन्द करते हुए भी, मैं खादी प्रतिष्ठान और अभय आश्रम द्वारा अपनाये गये तरीकोकी भी उतनी ही पुष्टि कर सकता हूँ। हरएक तरीकेका अपना स्थान है। खादी प्रतिष्ठानके काममे भी शोपण कतई नही है। किसका शोपण? किसके द्वारा शोपण? उसमे स्त्रियोका शोपण तो है नही, क्योकि खादी प्रतिष्ठानने तो उन्हे एक वाजार देकर उनके सूतकी ज्यादासे-ज्यादा विक्री सम्भव वना दी है। खादी प्रतिष्ठानमें शोपण हो नही सकता, क्योंकि वह अपने हिस्सेदारो या निर्देशकोके लिए कोई मुनाफा नही कमाता। प्रत्युत वात इससे उलटी है। उसके कई सदस्य खादी प्रतिष्ठानको अपनी सर्वोत्तम सेवाएँ दे रहे है और उनकी ये सेवाएँ स्वराज्यकी ओर हमारी प्रगतिमे उतना ही महत्त्वपूर्ण योग देती है जितना आपकी सेवाएँ, अन्य किसी रूपमें नही तो इस रूपमे ही सही कि खादीके व्यापक उत्पादन और विक्रयसे निकट भविष्यमे विदेशी वस्त्रोका वहिष्कार सम्भव होता है। यह कहना गलत है कि खादी प्रतिष्ठानके कार्यकर्त्ता कातनेवालोसे सम्पर्क नहीं रखते। हाँ, यह कहना सही होगा कि उनका सम्पर्क उतनी निकटताका नही रहता जितना आपका। लेकिन इसका अर्थ सिर्फ इतना ही है कि आपका जोर कार्यकी गहराईपर है और खादी प्रतिष्ठानका उसकी व्यापकतापर। दोनों ही प्रवृत्तियाँ जरूरी और एक दूसरेकी अनुपूरक है।

अभय आश्रमकी स्थिति दोनोके वीचकी है; अत. यदि इन तीनो कार्योको सम्मिलित, सहयोजित और नियमित ढगसे चलाया जाये, तो फल कही अच्छा निकलेगा। इसलिए आपको मेरी सलाह यही है कि आप अपने सराहनीय कार्यक्रमका त्याग न करे; वल्कि उसके वलपर अखिल भारतीय चरखा संघके वंगालके प्रतिनिधिकी सहायता और सहमति प्राप्त करे। यदि आप नहीं चाहते कि आप इनमें से किसी भी संस्थाके साथ मिले, तो आपको उसकी जरूरत नही है।

हृदयसे आपका,

वावू प्रफुल्लचन्द्र सेन
दुआडण्डू खादी केन्द्र
डा० मोयल वाँदीपुर
जिला हुगली

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११२२४) की माइक्रोफिलमसे।

३२६. पत्र : भूपेन्द्र नारायण सेनको

आश्रम
साबरमती
१३ अगस्त, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मैं रेवरेंड किचिनके दो मूल पत्र लौटा रहा हूँ। साथ में मैंने प्रफुल्लके पत्रका जो उत्तर[1] भेजा है उसकी एक प्रतिलिपि भी संलग्न है।

पाँच सौ रुपयोंके बारेमें मैं यह चाहता हूँ कि आप सतीशबाबूसे मिलकर उनको स्थिति समझा दें और उनसे अपने प्रार्थनापत्रपर सिफारिश करा लें। फिर आप यह प्रार्थनापत्र अखिल भारतीय चरखा संघको भेजें। तब प्रार्थनापत्रको मंजूर करानेमें कोई कठिनाई नहीं पड़ेगी।[2]

हृदयसे आपका,

श्रीयुत भूपेन्द्र नारायण सेन
२३, मन्दराम सेन स्ट्रीट
डा० हाटकोला
कलकत्ता

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११२२५) की माइक्रोफिल्मसे।

३२७. पत्र : सर गंगारामको

आश्रम
साबरमती
२४ अगस्त, १९२६

प्रिय मित्र,

आप स्वयं देखेंगे कि आपने अपनी पुस्तिकामें विधवाओंके सम्बन्धमें जो आँकड़े प्रस्तुत किये हैं, मैंने उनका उपयोग किया है।[3] एक पत्रलेखकने मुझसे यह पूछनेके

१. देखिए पिछला शीर्षक।

२. सेनने १७ अगस्तको इसका उत्तर दिया था। उन्होंने इसके साथ अपना प्रार्थनापत्र भेजते हुए अनुरोध किया था कि यह राशि सीधी उनको भेजी जाये। उन्होंने लिखा था कि उनका मतभेद खादी प्रतिष्ठानके कार्यक्रमसे उतना नहीं है जितना खादी प्रतिष्ठानके संचालकोंसे है (एस० एन० ११२२७)।

३. देखिए "थोपा हुआ वैधव्य" ५-८-१९२६।

लिए कहा है कि आपने जो आँकड़े दिये हैं क्या वे केवल उन वर्गोंकी विधवाओंके हैं जिनमे पुनर्विवाहकी मनाही है। यह एक स्पष्ट करने योग्य मुद्दा है।

हृदयसे आपका,

सर गंगाराम के० टी०, सी० आई० ई०, एम० वी० ओ०
आर्मडिल कुटीर
शिमला पूर्व

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०९८२) की फोटो-नकलसे।

३२८. पत्र : डा० मुरारीलालको

आश्रम
साबरमती
१७ अगस्त, १९२६

प्रिय डा० मुरारीलाल,

मैंने प्रदर्शनी समितिपर बम्बईकी राष्ट्रीय स्त्री सभाके बकाया रुपयोके बारेमें एक पत्र[1] लिखा था। मुझे उसकी पहुँच अभीतक नही मिली है। अब मुझे श्री कोटककी एक शिकायत मिली है। उन्होंने लिखा है कि उनका भी कुछ रुपया बकाया है और उनके रजिस्ट्री पत्रोंतककी पहुँच नही दी जाती। इस लापरवाहीका कारण क्या है? क्या कांग्रेससे सम्बन्धित कामोको निवटाने और बिलकुल जरूरी पत्रोका उत्तर देनेकी जिम्मेदारी सँभालनेवाला कोई भी मनुष्य वहाँ नहीं है? जैसे भी हो, कुछ समय निकालें और इन छोटी-छोटी बातोंकी ओर अवश्य ध्यान दे।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११२२६) से।

१. देखिए "पत्र : डा० मुरारीलालको", २८-७-१९२६।

३२९. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

आश्रम
साबरमती
१७ अगस्त, १९२६

प्रिय सतीशबाबू,

आपका पत्र मिला। मेरे ख्यालसे मावलंकरका मत यह नही है कि यदि 'शेयर' दूसरोंके नाम किये जा सकें तो यह जमानत न लेना ही अच्छा रहेगा। कुछ भी हो, यदि 'शेयर' दूसरोंके नाम करना सम्भव हो तो फिर और कुछ करनेकी जरूरत नही रहती। फिर भी यदि आप किसी कारणवश इसे सम्भव न मानते हो, तो आपके दूसरे सुझावके मुताबिक काम किया जा सकता है।

सोदपुरकी और हेमप्रभादेवीकी राशियोका उपयोग आप जैसा भी चाहे, करें। मेरी तो बस एक ही शर्त है और इसमे जरा भी ढिलाई नही की जानी चाहिए कि हेमप्रभादेवीसे रुपया तभी लिया जाये जब वे स्वय इसके लिए बहुत आग्रह करे।

आपके मनमें जबतक चिन्ताएँ बनी हैं, तबतक समझना चाहिए कि कुछ गड़बड़ी है। यदि आप प्रसन्न और सुखी न रहेंगे तो वे भी प्रसन्न और सुखी न रह सकेंगी। इसलिए मैं कहता हूँ कि आप धीरे-धीरे आगे बढे। बेसब्रीसे काम न ले। नई खुराक तभी ली जाये जब पहली अच्छी तरह पच जाये।

हाँ, मैंने टॉल्स्टॉयकी कहानी "एक आदमीको कितनी जमीन दरकार है"[१] कई बार पढी है। वर्षों पहले मैंने उसका अनुवाद 'इंडियन ओपिनियन' मे छापा था और बादमे एक छोटी पुस्तिकाके रूपमे प्रकाशित भी किया था। यदि टॉल्स्टॉयको शवके दाहसंस्कारकी पर्याप्त जानकारी होती तो वे इससे भी कम स्थानकी आवश्यकता बतलाते। यदि शवको वैज्ञानिक विधिसे मूल तत्त्वोमे रूपान्तरित किया जाये तो वह पाँच तत्त्वोमे मिल जायेगा और तब तनिक भी स्थानकी जरूरत नही रहेगी। हमारी मानसिक वृत्ति बिलकुल यही होनी चाहिए। व्यवहारमे तो हम सदा सिद्धान्तसे कम ही रहेंगे। ऐसी वृत्ति बना लेनेपर यदि हम कोई छोटी-सी वस्तु भी रखेंगे, तो उसका स्वामित्व हमें सालेगा। तब हम उस स्वामित्वको अपना अधिकार नही, बल्कि अपनी असमर्थता ही समझेंगे। और इसलिए उससे एकाएक वंचित कर दिये जानेपर हमें लगेगा कि चलो हमारा बोझ इतना तो हल्का हुआ। और अन्तमे हमारा देहपात भी हमें ऐसा ही लगेगा। इसीलिए मैं चाहता हूँ कि हम अपने सभी यज्ञकर्मोंको करें और उसके पश्चात् प्रफुल्लित और निर्लिप्त रहें। आप खादीके कामका संगठन जितना निर्लिप्त होकर करेंगे वह उतना ही बढ़ेगा।

१. "हाउ मच लैंड ए मैन नीड्स"।

क्या आप २७ तारीखको आ रहे हैं? यदि आप उत्कलके कामकी जिम्मेदारीसे छुट्टी चाहते हों, तो मैं आपको अवश्य छुट्टी दे दूँगा। मैं आपका बोझ यथासम्भव कमसे-कम करना चाहता हूँ।

इसके साथ कलकत्तेसे आया एक पत्र, और उसपर भेजे गये मेरे उत्तरकी[1] प्रतिलिपि है। आप कृपया बतलायें कि आखिर यह सब मामला है क्या?

आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११२२८) की माइक्रोफिल्मसे।

३३०. पत्र : आर० ए० ऐडम्सको

आश्रम
साबरमती
१८ अगस्त, १९२६

प्रिय मित्र,

आपके १३ तारीखके पत्रके[2] लिए धन्यवाद। निम्नलिखित प्रतियां भेजनेकी कृपा करें :—

घटी हुई कीमत, डेढ़ रुपया	३ प्रतियाँ
घटी हुई कीमत, एक रुपया	२३ प्रतियां
घटी हुई कीमत, आठ आना	३ प्रतियाँ

कुल प्रतियाँ ३३ चाहिए, ४० नहीं। इस तरह आपने देखनेके लिए जो ४ प्रतियां भेजी हैं, उन्हें मिलाकर ३३ प्रतियां हो जायेंगी।

मैं साथमें . .[3] पर ३२ रुपये १२ आनेका एक चेक भेज रहा हूँ। मैं समझता हूँ कि आपने जो कीमत बतलाई है उसमें डाकखर्च शामिल है। पर यदि मैंने गलत समझा हो तो लिखें कि मैं डाकखर्च कितना भेजूँ।

मैं चाहता हूँ कि ७ प्रतियां और उधार भेज दें। यदि उनकी जरूरत न हुई, तो वे वापस कर दी जायेंगी।

संलग्न : १ चेक

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०९८३) की माइक्रोफिल्मसे।

१. यह उल्लेख शायद "पत्र : भूपेन्द्र नारायण सेनको", १३-८-१९२६ का है।

२. गांधीजीने १२-८-१९२६ के पत्रके उत्तरमें ऐडम्सने बाइबिलके विभिन्न संस्करणोंकी प्रतियाँ नमूनेके तौरपर मूल्य-सूचीके साथ भेजी थीं, और लिखा था कि खरीदनेमें असमर्थ गरीब विद्यार्थियोंको ये प्रतियाँ मुफ्त भेज दी जायेंगी।

३. रिक्त स्थान स्पष्ट ही बैंकके नामका है।

३३१. पत्र : मथुरादास त्रिकमजीको

आश्रम
साबरमती
बुधवार, श्रावण सुदी १०, १८ अगस्त, १९२६

चि० मथुरादास,

तुम्हारा पत्र मिला। पवनामें हिन्दुओं और मुसलमानोंका जबर्दस्त दंगा हुआ था। अखबारोंसे मुझे मालूम हुआ है कि उसमें बहुतसे हिन्दुओंका नुकसान हुआ है। इस कार्यके लिए श्रीमती नायडू[1] चाहती हैं कि तुम्हारे पास जो रुपये बाकी बचे हैं सो उन्हें दे दिये जायें। मेरी अपनी रायमें तुम्हारे पास जो रुपये बाकी हैं, वे रेल-दुर्घटना आदिके कारण बरबाद हुए लोगोंकी सहायताके लिए हैं। पवनाके पीड़ितोंका मामला कुछ दूसरे ढंगका है, इसलिए इसके लिए नया चन्दा किया जाना चाहिए। फिर भी मूल धनदाताओंसे पूछकर निश्चय ही उनके पैसेका जो ठीक समझा जाये सो उपयोग किया जा सकता है।

तुम्हारे स्वास्थ्यको बहुत ज्यादा वर्षा कहीं नुकसानदेह तो नहीं होती? इस बार सभी जगह बरसात बहुत अच्छी हो रही है।

श्री मथुरादास त्रिकमजी
होमी विला
पंचगनी

गुजराती प्रति (एस० एन० १२२५०) की माइक्रोफिल्मसे।

३३२. पत्र : अब्बास अब्दुल्लाभाई बानपारीको

आश्रम
१८ अगस्त, १९२६

भाईश्री ५ अब्बास अब्दुल्लाभाई,

'घी' शब्दका प्रयोग केवल गाय-भैंसके दूधसे निकले हुए पदार्थके लिए किया जाता है। मेरे कहनेका अभिप्राय इतना ही था कि अन्य वस्तुओंमें से निकले ऐसे पदार्थको 'घी' नहीं कहा जा सकता, अन्य चीजोंमें से जो चिकनाई निकलती है वह तेलके नामसे पुकारी जाती है और उसके गुण घीसे भिन्न होते हैं; ऐसा समझकर उसका उपयोग करनेमें कोई हानि नहीं है। धर्मकी दृष्टिसे उसका विरोध किया ही नहीं जा सकता। मैं स्वयं रजस्वला स्त्रीको अस्पृश्य नहीं मानता और उसके द्वारा

१. सरोजिनी नायडू।

बनाई रसोई खानेमें दोष नहीं मानता। लेकिन जो लोग उसके स्पर्शमें दोष मानते हैं, आरोग्यकी दृष्टिसे उनका समर्थन किया जा सकता है। इस बारेमें धार्मिक दृष्टि कहाँतक काम दे सकती है यह कहना कठिन है; क्योंकि भिन्न-भिन्न धर्मोंमें इसके बारेमें भिन्न-भिन्न मान्यताएँ हैं।

मोहनदासके वन्देमातरम्

श्री अब्बास अब्दुल्लाभाई वानपारी
शाहादा, खानदेश

गुजराती पत्र (एस० एन० १९९४४) की माइक्रोफिल्मसे।

३३३. पत्र : भगीरथ कानोडियाको

आश्रम
साबरमती
बुधवार, श्रावण शुक्ल १०, १८ अगस्त, १९२६

भाई भागीरथजी,

आपने ५ हजार रुपये जमनालालजीके कहनेसे भेज दिये हैं। उसकी पहुंच इसके साथ रखता हू। पैसेके लिये आपका अनुग्रह मानता हूं।

श्री भागीरथजी कानोडिया
बिरला ब्रदर्स लिमिटेड
१३७, कैनिंग स्ट्रीट, कलकत्ता[1]

मूल पत्र (एस० एन० १२२४९) की माइक्रोफिल्मसे।

३३४. पत्र : नारायणदास बाजोरियाको

आश्रम
साबरमती
बुधवार, श्रावण शुक्ल १०, [१८ अगस्त, १९२६]

भाईश्री नारणदासजी,

जमनालालजीकी प्रेरणासे आपने ५ हजार रुपयेकी हुंडी भेज दी है। उसलिये आपका अनुग्रह मानता हूं। आश्रमके मकानके लिये उसका व्यय होगा।

श्री नारायणदासजी बाजोरिया
११७, हैरीसन स्ट्रीट, कलकत्ता[2]

मूल पत्र (एस० एन० १२२५१) की माइक्रोफिल्मसे।

१. मूल पत्रमें पता अंग्रेजीमें लिखा हुआ है।
२. मूल पत्रमें पता अंग्रेजीमें दिया गया है।

३३५. अनीतिकी राहपर – ८

अब यह लेखमाला समाप्त की जा सकती है। श्री ब्यूरोने माल्थसके सिद्धान्तका जो विवेचन किया है उसे यहाँ देना आवश्यक नहीं। माल्थसके सिद्धान्तसे उस समयके लोग चौंक उठे थे। माल्थसने कहा था कि आबादी हदसे ज्यादा बढ़ती जा रही है और मानवजातिको समाप्त होनेसे बचानेके लिये सन्तानोत्पत्तिको नियंत्रित किया जाना चाहिए। उसने इसके लिए उपाय बताया था। माल्थसके सिद्धान्तके नये प्रवक्ता संयमकी बात नहीं करते। वे भोगलिप्साके परिणामोंसे बचनेके लिए रासायनिक और यांत्रिक साधनोंकी सिफारिश करते हैं। श्री ब्यूरो नैतिक साधनोंसे, अर्थात् आत्म-संयमसे, बच्चोंकी पैदाइशको नियंत्रित रखनेका सिद्धान्त स्वीकार करते हैं और साथ ही जैसा कि हम देख चुके हैं, वे रासायनिक या यांत्रिक साधनोंको अस्वीकार करते हैं और उनकी तीव्र निन्दा करते हैं। लेखकने इसके बाद श्रमिक वर्गकी दशा और उनमें बच्चोंकी पैदाइशके अनुपातका विवेचन किया है, और अन्तमें वैयक्तिक स्वतंत्रताके और मनुष्योंके नामपर बरती जानेवाली आजकी हद दर्जेकी अनैतिकताको रोकनेके उपायोंकी चर्चाके साथ पुस्तक समाप्त की है। उनका सुझाव है कि लोगोंको उचित राह दिखाने और उसपर चलानेका संगठित प्रयत्न किया जाना चाहिए। वे कहते हैं कि इस सम्बन्धमें कानून बनाकर राज्य भी मदद कर सकता है, किन्तु वे इसका अन्तिम उपाय तो लोगोंके जीवनमें धर्मके प्रति श्रद्धा उत्पन्न करना ही मानते हैं। नैतिक दिवालियेपनकी रोक या उसका नियंत्रण साधारण उपायोंसे नहीं हो सकता, और जब अनैतिकताको एक गुण माना जाने लगा हो और नैतिकता कमजोरी, अन्ध-विश्वास या अनीतितक कही जाती हो, तब तो यह कदापि सम्भव नहीं है। गर्भ-निरोधके कृत्रिम उपकरणोंके बहुतसे हिमायती बिना झिझक संयमकी निन्दा करते हैं, उसे अनावश्यक और हानिकरतक बताते हैं। इन स्थितियोंमें धर्मकी सहायता लेना ही कानूनन जायज इस बुराईको रोकनेका एकमात्र प्रभावकारी उपाय है। यहाँ धर्मको संकुचित और सम्प्रदायगत अर्थमें नहीं लेना चाहिए। जीवन व्यक्तिगत हो या सामूहिक, दोनोंमें ही सच्चा धर्म बड़ी जबर्दस्त क्रान्ति लानेका साधन हो सकता है। धार्मिक जागृतिमें क्रान्ति, रूपान्तरण और पुनर्निर्माण सम्मिलित रहते हैं और श्री ब्यूरोका मत है कि फ्रांस आज जिस घोर नैतिक संकटमें दिन-दिन अधिक फँसता जा रहा है उससे उसे कोई ऐसी ही परिवर्तनकारी शक्ति बचा सकती है।

किन्तु अब हम लेखक और उसकी पुस्तककी बात यहीं छोड़ देंगे। फ्रांस और भारतकी स्थिति समान नहीं है। हमारी समस्या कुछ भिन्न है। भारतमें गर्भ-निरोधके कृत्रिम उपकरणोंका प्रयोग आम नहीं हुआ है। उनका प्रयोग मुश्किलसे शिक्षित वर्गों तक ही है और वह भी बहुत कम। मेरा तो अपना यही मत है कि यहाँ भारतमें एक भी ऐसी स्थिति सिद्ध नहीं की जा सकती जिसके कारण इन उपकरणोंका प्रयोग आवश्यक माना जाये। क्या मध्यवर्गके लोग बहु-सन्ततिके कष्टसे पीड़ित हैं? मध्यवर्ग-

में बेहिसाब बच्चे पैदा होते हैं यह सिद्ध करनेके लिए एक-दो व्यक्तियोंके ही उदाहरण काफी नहीं होंगे। मैंने देखा है कि भारतमें इन तरीकोंकी हिमायत दो प्रकारके व्यक्तियोंके लिये की जाती है। इनमें से एक हैं विधवायें और दूसरी कच्ची उम्रकी पत्नियाँ। इस तरह विधवाओंके मामलेमें उद्देश्य गुप्त सम्भोगको रोकना न होकर नाजायज बच्चोंके जन्मको रोकना ही है। कच्ची उम्रकी पत्नियाँ भी गर्भाधानसे डरती हैं और इसलिए वे इनका प्रयोग करती हैं। अर्थात् यहाँ भी उनके प्रयोगका कारण कच्ची उम्रकी लड़कियोंके साथ सहभोगको रोकना नहीं है। रह जाता है रोगी, दुर्बल और पुंसत्वहीन नवयुवकोंका वर्ग। इस वर्गके लोग अपनी पत्नियों या पर-पत्नियोंसे अनाचार करना चाहते हैं और अपने उन कर्मोंके परिणामोंसे बचना चाहते हैं, जो वे जानते हैं कि पापपूर्ण हैं। मैं यह कहनेकी धृष्टता कर सकता हूँ कि भारतीय मानवताके विशाल समुदायमें ऐसे स्त्री-पुरुषोंकी संख्या अत्यंत ही नगण्य है जो जीवनीशक्तिसे भरे-पूरे होनेपर भी सम्भोगके इच्छुक होते हुए भी बच्चे पैदा करनेके दायित्व भारसे कतराते हों। इन चन्द लोगोंका दृष्टान्त पेश करके एक ऐसी प्रथाको उचित सिद्ध करने और उसकी हिमायत करनेका प्रयत्न नहीं किया जाना चाहिए जो यदि भारतमें आम हो गई तो देशके युवकोंका निश्चय ही सर्वनाश कर देगी। एक अत्यंत ही कृत्रिम, अस्वाभाविक किस्मकी शिक्षाने हमारे राष्ट्रके नवयुवकोंका शारीरिक और मानसिक तेज हर लिया है। हममें से बहुत-से बाल-विवाहोंकी सन्तान हैं। स्वास्थ्य और सफाईके नियमोंकी अवहेलनाके कारण हमारे शरीर उतने शक्ति सम्पन्न नहीं रह गये हैं और अनुपयुक्त और अपर्याप्त रूपसे पोषक आहारने, जिसमें तीक्ष्ण प्रभावकारी मसाले पड़े होते हैं, हमारे पाचनतंत्रको बेकार कर दिया है। हमें गर्भनिरोधके कृत्रिम उपकरणों और ऐसे सहायक साधनोंके प्रयोगकी शिक्षाकी आवश्यकता नहीं जिनके सहारे हम अपनी पशुवृत्तियोंको तृप्त कर सकें, बल्कि हमें ऐसी शिक्षाकी आवश्यकता है जिससे हम अपनी इस भोगलिप्साको संयत, नियंत्रित कर सकें। काफी बड़ी संख्यामें लोगोंका पूर्ण ब्रह्मचर्यको अपना लेना ही आवश्यक है। आवश्यकता तो इस बातकी है कि हमें अपनी कथनी और करनी दोनोंके जरिए यह शिक्षा दी जाये कि अपने आपको मानसिक एवं शारीरिक दृष्टिसे निस्तेज होनेसे बचानेके लिए यह परमावश्यक है कि ब्रह्मचर्य व्रत लिया जाये और ब्रह्मचर्यको निभाना सर्वथा व्यावहारिक तथा सम्भव है। राष्ट्रकी मानवताको सर्वथा निस्तेज हो जानेसे बचानेके लिये यह बिलकुल जरूरी है कि ढोल पीट-पीटकर यह बतलाया जाये कि हमें अपनी इस सीमित-सी जीवनी शक्तिको संरक्षित रखना चाहिए और उसकी अभिवृद्धि करनी चाहिये जिसे हम प्रतिदिन क्षय कर रहे हैं। हमें अपने यहाँकी युवती विधवाओंसे यह कह देनेकी जरूरत है कि वे छुपकर पाप न करें, बल्कि साहसके साथ बाहर आयें और खुल्लमखुल्ला कहें, हमारा विवाह कर दो। उनको इस तरहकी माँग करनेका उतना ही हक है जितना युवा विधुरोंको। ऐसा लोकमत बनानेकी जरूरत है जिसमें बाल-विवाह असम्भव हो जाये। अनिश्चय, कठिन परिश्रमके कार्योंमें लगातार जुटे रहनेकी अनिच्छा, कठिन परिश्रमवाले कार्य सम्पन्न करनेकी शारीरिक अक्षमता, उत्साहपूर्वक प्रारम्भ किये

गये उद्यमको बीचमें छोड़ देना और नई सूझबूझका अभाव ये समस्त दोष, जिन्हें हम प्रायः देखते हैं, बहुत-कुछ हमारी अत्यधिक विलासिताके परिणाम है। मुझे आशा है, नवयुवक इस भ्रमपूर्ण धारणाके शिकार नही बनेंगे कि यदि गर्भ न ठहरने दिया जाये तो सम्भोग अपने आपमें किसी भी तरहकी दुर्बलता पैदा नही करता। असलियत तो यह है कि सम्भोगके परिणामोंको भलीभाँति समझकर और उसका दायित्व ग्रहण करनेके लिये अपने मनको तैयार करके जो सम्भोग कर्म किया जाता है उससे शक्तिका उतना ह्रास और थकानकी सम्भावना नही है जितनी कि गर्भनिरोधके कृत्रिम साधनोंसे लेस होकर सम्भोग कर्म करनेसे है।

"मन एवं मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः"

यदि हम यह मानने लग जाये कि विषय-वासनामें लिप्त होना आवश्यक, हानि-रहित और पापरहित है तब तो हमें उसपर अंकुश रखनेकी जरूरत ही नही मालूम होगी और हमारे अन्दर उसके प्रतिरोधकी शक्ति ही नही बच रहेगी। इसके विपरीत, यदि हम यह सोचनेकी आदत डाल ले कि इस प्रकार विषय-वासनामे लिप्त होना हानिकर, पापपूर्ण और अनावश्यक है और उसपर नियंत्रण रखा जा सकता है, तो हमें यह मालूम होगा कि आत्मसंयम बहुत सरल है। मदोन्मत्त पश्चिमने हमारे सामने नये सत्यों और तथाकथित मानवीय स्वतन्त्रताके आवरणमे निरंकुश भोगवादकी जो तीव्र मदिरा प्रस्तुत की है उससे हमे सावधान रहना चाहिए। इसके विपरीत, यदि हमारे पूर्वजोंका प्राचीन ज्ञान हमें घिसा-पिटा और पुराना लगता हो तो हमें पश्चिमके बुद्धिमान लोगोंके बहुत अनुभवोंमें से छन-छनकर आनेवाला उनका संयमित स्वर सुनना चाहिए।

चार्ली एन्ड्रयूजने मुझे विलियम लोफ्ट्स हेयरका 'वंशवृद्धि' और 'शक्तिसृजन' (जेनेरेशन एण्ड रिजेनेरेशन) ज्ञानपूर्ण लेख भेजा है। यह लेख मार्च १९२६ 'ओपन कोर्ट' में छपा है। यह एक वैज्ञानिक निबन्ध है जिसमें विषयका बहुत सूक्ष्म विवेचन किया गया है। उन्होने बताया है कि शरीर-मात्रमें दो कार्य होते रहते हैं, एक 'शरीरके निर्माणके लिए आन्तरिक शक्तिसृजन और दूसरा वंशको कायम रखनेके लिए बाह्य सृजन।' इन प्रक्रियाओंको उन्होंने क्रमशः शक्तिसृजन और वंशवृद्धि नाम दिया है।

> शक्तिसृजन — आन्तरिकसृजन व्यक्तिके लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है, इसलिए वह आवश्यक और बुनियादी है। वंश-वृद्धिकी प्रक्रिया कोष्ठोंकी अनावश्यक वृद्धिके कारण होती है इसलिए वह गौण है।...इस प्रकार यहाँ जीवनका नियम यह है कि पहले शक्तिसृजनके लिए और फिर वंशवृद्धिके लिए जीवन-कोष्ठोंका पोषण किया जाये। यदि शरीरमें कमी हो तो शक्तिसृजनको प्रथम स्थान देना और वंशवृद्धिको बन्द कर देना आवश्यक होता है। इस प्रकार, हम यह देख सकते हैं कि वंशवृद्धिको बन्द करनेकी बातका आरम्भ कैसे हुआ और फिर यह समझ सकते हैं कि वह मनुष्यकी ब्रह्मचर्य और सामान्यतः पूर्ण निग्रहकी अवस्थाओंतक कैसे पहुँचा। आन्तरिक सृजन कभी बन्द नहीं किया

जा सकता। यदि किया जायेगा तो मृत्यु हो जायेगी। इस तरह इसके सहज उद्भवकी प्रक्रिया भी समझी जा सकती है।

शक्तिसृजनकी शारीरिक प्रक्रिया बतानेके बाद लेखक कहता है :

सभ्य जातियोंमें अगली पीढ़ीको जन्म देनेके लिए जितना सम्भोग अपेक्षित होता है, ज्यादातर उससे ज्यादा किया जाता है। और यह शरीरके आन्तरिक सृजनकी प्रक्रियाको हानि पहुँचाकर भी जारी रखा जाता है। इसका परिणाम होता है रोग, मृत्यु और अनर्थ।

उस मनुष्यको, जो हिन्दू दर्शनको तनिक भी जानता है, श्री हेयरके निबन्धके इस अनुच्छेदको समझनेमें कठिनाई नहीं होगी :

शक्तिकी पुनरुत्पत्तिकी प्रक्रियाका स्वरूप यांत्रिक नहीं है और हो भी नहीं सकता, बल्कि वह जीव-सृष्टिमें कोषके प्रथम विभाजनकी भाँति जैविक व्यापार है। इसका अर्थ यह है कि वह कर्त्तामें चेतनता और संकल्पशक्ति होनेकी सूचना देता है। प्राणतत्व किसी विशुद्ध यांत्रिक प्रक्रियासे पृथक् विभक्त होता है, यह बात अकल्पनीय है। यह सच है कि ये महत्त्वपूर्ण प्रक्रियाएँ हमारे वर्तमान ज्ञानकी सीमासे इतनी परे हैं कि हमें वे मनुष्य या प्राणियोंके संकल्पसे अनियंत्रित जान पड़ती हैं। किन्तु यदि हम एक क्षण सोचें तो हमें मालूम हो जायेगा कि जिस प्रकार पूर्ण विकसित संकल्पवाला मनुष्य अपनी बाह्य गतिविधियों और क्रियाओंका संचालन अपनी बुद्धिके अनुसार करता है — और बुद्धिका काम यही है — उसी प्रकार शरीरके क्रमिक गठनकी प्रारम्भिक प्रक्रियायें, स्थितियोंसे उत्पन्न मर्यादाओंके भीतर, अवश्य ही एक प्रकारकी चेतना द्वारा प्रेरित एक प्रकारके संकल्पसे संचालित होनी चाहिए। मनोविज्ञानके पंडित इससे अबतक परिचित हो चुके हैं और इसे "अचेतन मन" कहते हैं। यह अचेतन मन हमारा एक अंग है। हाँ, उसका हमारी सामान्य दैनिक विचार-क्रियासे सम्बन्ध नहीं होता, किन्तु वह अपना कार्य नितान्त जागरूक और सतर्क रहकर करता है यहाँतक कि हमारी चेतनाकी तरह यह एक क्षणके लिए भी प्रसुप्त नहीं होता।

हम वासनाकी तृप्तिके लिए जो भोग करते हैं उससे हमारे शरीरके इस अधिक स्थायी भाग — हमारे अचेतन मनको जो हानि पहुँचती है उसकी पूर्ति लगभग अशक्य है। उसको कौन माप सकता है।

प्रजोत्पत्तिका अन्तिम दण्ड मृत्यु है। मैथुन-क्रिया वास्तवमें पुरुषके लिए विनाशक है (या मृत्युकी ओर ले जाती है) और स्त्रीमें यह विनाश शिशु-जननकी क्रियाके रूपमें प्रकट होता है।

इसीलिए लेखक कहता है :

जो लोग पूर्ण ब्रह्मचारी या लगभग ब्रह्मचारी हैं उनको शक्ति, जीवट और नीरोग्यता मिलती है। जीवकोषोंको शरीरके पुनर्निर्माणके कार्यसे हटाकर

प्रजननमें लगाने या केवल भोग-लिप्साकी तृप्तिके लिए खर्च करनेसे हमारे अंग क्षति-पूर्तिके लिए निर्मित इस जीव-तत्वके भंडारसे वंचित हो जाते हैं और उन्हें इससे धीरे-धीरे और अन्तमें हानि उठानी पड़ती है। ये तथ्य हैं जिनके आधारपर व्यक्तिगत यौन आचार-नीति बनी है। उस नीतिका यही तकाजा है कि हम यदि पूर्ण निग्रह नहीं तो कमसे-कम संयमसे तो काम लें। संयमका आरम्भ यहींसे होता है, यह इस बातसे स्पष्ट हो जाता है।"

यह आसानीसे देखा जा सकता है कि लेखक रासायनिक अथवा यान्त्रिक साधनोंसे गर्भ-निरोधका विरोधी है। वह कहता है:

> इनसे आत्मसंयमके सभी दूरदर्शितापूर्वक हेतु समाप्त हो जाते हैं और विवाहित जीवनमें भोग-लिप्साको सहज-स्वाभाविक मान लिया जाता है जो बुढ़ापा आ जाने या वासना कम हो जानेपर ही सीमित हो सकती है। किन्तु इसके अलावा इसका प्रभाव अवश्य ही वैवाहिक सम्बन्धोंकी सीमासे बाहरतक पड़ता है। इससे अनियमित, स्वच्छंद और असफल सम्बन्धोंका मार्ग प्रशस्त हो जाता है, और ये सम्बन्ध आधुनिक उद्योगों, सामाजशास्त्र और राजनीतिकी दृष्टिसे खतरनाक हैं। मैं यहाँ इस सम्बन्धमें विस्तारसे विचार नहीं कर सकता। इतना ही कहना पर्याप्त है कि गर्भ-निरोधके कृत्रिम साधनोंसे वैवाहिक जीवनमें और उसके बाहर भी असंयत भोग-लिप्साका आचरण आसान हो जाता है। और यदि मेरे शरीर रचना सम्बन्धी तर्क, जो मैंने ऊपर दिये हैं, ठीक हैं, तो इन साधनोंसे व्यक्तियोंका और समस्त जातिका अवश्य ही अहित होगा।

भारतीय युवक श्री ब्यूरोके अपनी पुस्तकके अन्तमें दिये गये इस उद्धरणको अपने हृदयमें अंकित कर लें: "जो जातियाँ आचारवान रहेंगी, भविष्य उनके साथ रहेगा।"

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १२-८-१९२६

३३६. भूल-सुधार

आचार्य मलकानीने मेरा ध्यान पिछले हफ्ते छपे अपने लेखमें[१] 'छपाई' की दो भद्दी भूलोंकी ओर खींचा है। दूसरे स्तम्भके तीसरे पैरामें 'क्विकली' की जगह 'क्वायटली' और 'क्लेवर' की जगह 'क्लीयर' शब्द होना चाहिए था।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १९-८-१९२६

१. प्रो० मलकानी द्वारा लिखित 'बारडोली ताल्लुकेमें खेतीकी दशा' लेख *यंग इंडिया*, १२-८-१९२६ में प्रकाशित हुआ था।

३३७. दलित मानवता

दलित मनुष्योंमें केवल अस्पृश्य ही ऐसे नहीं जिनपर अत्याचार होता है। हिन्दू समाजमें अल्पवयस्का विधवापर भी कुछ कम अत्याचार नहीं होता। बंगालसे एक सज्जन लिखते हैं:

> मुसलमानोंमें विधवा-विवाहपर कोई रोक नहीं है; किन्तु पुरुषोंको चार-चार स्त्रियों तकसे विवाह करनेका अधिकार है। सच पूछिए तो अधिकांश मुसलमानोंके एकाधिक पत्नियाँ हैं। इस प्रकार एक भी मुसलमान मर्द अविवाहित नहीं रहता। तो यह क्या सच नहीं कि जहाँ विधवा-विवाहपर कोई रोक नहीं होती, वहाँ पुरुषोंसे स्त्रियोंकी संख्या अधिक होती है? या दूसरे शब्दोंमें, जिस समाजमें विधवा-विवाह प्रचलित है क्या उसमें बहुपत्नीत्वका अधिकार भी देना ही चाहिए?
>
> यदि हिन्दुओंमें विधवा-विवाहका प्रचार हो जाये तो नवयुवती विधवायें क्या युवकोंको लुभाकर उनसे विवाह न कर लेंगी और तब फिर कुमारियोंके लिए वर ढूँढ़ना कठिन क्या असम्भव ही नहीं हो जायेगा?
>
> तो फिर अगर हिन्दू पुरुषोंको एकाधिक विवाह करनेका अधिकार न दिया तो आज जो पाप विधवायें करती हैं, या जिनका दोष उनपर लगाया जाता है वैसे ही पाप क्या कुमारियाँ भी नहीं करेंगी?
>
> मैं जानबूझकर प्रेमकी, संयमशील गृहस्थ जीवनकी, पतिव्रत धर्मकी या ऐसी ही उन और बातोंकी चर्चा नहीं करना चाहता, जिनपर विधवा-विवाहका समर्थन करते समय विचार करना होगा।

विधवा-विवाह रोकनेके उत्साहमें पत्रलेखकने अनेक बातोंकी उपेक्षा कर दी है। मुसलमानोंको एकाधिक पत्नी रखनेका अधिकार है सही, परन्तु अधिकांश मुसलमानोंके यहाँ होती एक ही पत्नी है। मालूम होता है कि पत्रलेखकको शायद इसका पता नहीं कि दुर्भाग्यवश हिन्दुओंमें बहुपत्नीत्वकी मनाही नही है। सभी जानते हैं कि ऊँची श्रेणीके हिन्दू एकाधिक स्त्रियोसे विवाह करते रहे हैं। बहुतसे राजाओंने तो न मालूम कितने विवाह किये हैं। पत्रलेखक यह बात भी भूल गये हैं कि केवल ऊँची श्रेणीके हिन्दुओंमें ही विधवा-विवाहकी मनाही है। सबसे नीची श्रेणीके, चतुर्थ वर्णके बहुसंख्यक लोगोंमें, विधवायें आमतौरपर पुनर्विवाह करती हैं और उसका कभी कोई बुरा परिणाम नही हुआ। यद्यपि उन्हें एकसे अधिक पत्नियोंसे विवाह करनेकी पूरी स्वतन्त्रता है, परन्तु साधारणत: वे एक समयमें एक ही सहचरीसे सन्तुष्ट रहते हैं।

विधवायें सभी युवकोपर कब्जा कर लेंगी और कुमारियोके लिए वर नही मिलेंगे, इस विचारसे लगता है कि पत्रलेखकमें विवेकका नितान्त अभाव है। युवतियोंकी पवित्रताके विषयमे इतनी अधिक चिन्तासे लेखकके रोगी दिमागका ही परिचय मिलता

है। पुनर्विवाह करनेवाली चन्द विधवायें, कभी भी कुमारियोंकी विशाल संख्याको अविवाहित रहनेपर विवश नही कर पायेंगी। खैर, यदि कभी ऐसी समस्या उपस्थित भी होगी तो इसका कारण आजका बाल-विवाह ही होगा। इसकी समुचित दवा तो बाल-विवाहकी रोक ही हो सकती है।

अल्पवयस्का विधवाके विषयमें प्रेम, गृहस्थ-जीवनकी पवित्रता आदि बातोंका नाम न लेना ही अच्छा होगा।

परन्तु पत्रलेखकने तो मेरी बात बिलकुल ही नहीं समझी। मैंने सभी विधवाओंके विवाहका समर्थन कभी नहीं किया। सर गंगारामके संकलित आँकड़े, जिनका इस पत्रमें सारांश दिया गया था, १५ वर्षसे कम उम्रकी विधवाओंके हैं। ये गरीब दुखिया पतिव्रतधर्म क्या जानें? प्रेम उनके लिए अज्ञात वस्तु है। सही बात तो यह है कि उनका विवाह कभी हुआ ही नहीं माना जा सकता। विवाहको यदि सचमुच ही धार्मिक संस्कार बनाना है, इसके द्वारा व्यक्तिको एक नये जीवनमें प्रवेश कराना है तो जिनका विवाह होता है उन लड़कियोंको पूर्ण विकसित, परिपक्व होना चाहिए। जीवन-भरका साथी चुननेमें उनका भी कुछ हाथ होना चाहिए और वे जो काम करने जा रही हैं, उसका फलाफल भी उन्हें समझना चाहिए। हम बच्चोंके ऐसे संयोगको विवाहका नाम देकर और उस तथाकथित पतिके मर जानेपर उस बालिकाको आजीवन वैधव्य भोगनेपर मजबूर करके ईश्वर और मनुष्यके प्रति पाप करते हैं।

मेरा विश्वास है कि सच्ची हिन्दू विधवा एक रत्न है। वह मनुष्य जातिको हिन्दूधर्मकी एक अमूल्य भेंट है। रमाबाई रानडे ऐसी ही थीं। परन्तु बाल-विधवाओंका अस्तित्व हिन्दूधर्मके माथेपर एक ऐसा कलंक है, जिसकी कालिमाको हिन्दू समाजमें रमाबाई-जैसी बहनोंका अस्तित्व भी किसी तरह कम नहीं कर सकता।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १९-८-१९२६

३३८. टिप्पणियाँ

नगरपालिकाकी शालाओंमें चरखे

लखनऊ नगरपालिकाकी पाठशालाओंमें १०८ लड़कियाँ और ४१ लड़के चरखे चला रहे हैं। लड़कियोंकी शालाओंमें ९३ और लड़कोंकी शालाओंमें १५ चरखे हैं। प्रतिमास लड़कियाँ २७ तोला और लड़के ४ तोला सूत कातते हैं। नगरपालिकाको फी चरखा दो रुपया महीना खर्च करना पड़ता है। शिक्षा विभागके अधीक्षकका विचार है कि इतना काम, यद्यपि कुछ विशेष तो नहीं, परन्तु शुरू-शुरूकी दृष्टिसे काफी सन्तोषजनक है। इसे सन्तोषजनक इसी अर्थमें कह सकते हैं कि कुछ न होनेसे कुछ होना अच्छा। परन्तु मेरी समझमें तो सूत इतना कम है कि सुनकर हँसी आती है; और फी चरखेपर खर्च भी बेहिसाब है। शुरूमें जितना लगा दिया उसके बाद फिर अधिक खर्च तो होना ही नहीं चाहिए। सूत कैसा होता है — इसके विषयमें

कुछ नही लिखा गया है। मैं जो बात पहले कई बार कह चुका हूँ, उसे ही फिर कहना होगा। पाठशालाओंके लिए केवल तकली ही एक वस्तु है और इसका प्रवेश तभी होना चाहिए जब शिक्षकोंने धुनना और कातना सीख लिया हो। पाठशालाओंमें कताईके कामको तबतक कभी सफलता नहीं मिल सकती जबतक शिक्षक इसका राष्ट्रीय महत्त्व न समझ लें, उसमें उन्हें आनन्द न मिल पाये और अपने उत्साहसे वे उसे विद्यार्थियोंके लिए भी रुचिकर न बना दें।

बिहारकी खादी प्रदर्शनियाँ

बिहारमें खादी प्रदर्शनियोंके क्षेत्रमें लगातार उन्नति हो रही है और उनकी ओर अधिकाधिक लोगोंका ध्यान आकृष्ट होता जा रहा है। जुलाई महीनेके आरम्भमें बेतियामें एक प्रदर्शनी हुई। इसका उद्घाटन रियासतके मैनेजर श्री प्रायरने किया था। सहायक मैनेजर श्री वाइल्ड और एस० डी० ओ० भी उस समय उपस्थित थे। श्री प्रायरकी समझमे 'किसी अंग्रेजने खादीको कभी हकीर चीज नहीं समझा', परन्तु उन्होंने कहा 'इसे घरेलू धन्धेके तौरपर चलाया जाना चाहिए।' कुल बिक्री १३०४ रुपये १२ आने ३ पाईकी हुई। दूसरी प्रदर्शनी मोतीहारीमें हुई। इसका उद्घाटन पादरी जे० जेड० हॉज साहबने किया था। खादीके समर्थनके उन्होंने तीन कारण दिये — (१) इससे घरेलू व्यवसायोंमें सहायता पहुँचती है, (२) खद्दरमें भावना और प्रेमको स्थान है, और (३) खद्दरसे गरीबोंको अन्न मिलता है। मोतीहारीमें खादीकी बिक्री ११६२ रुपये ८ आने ९ पाईकी हुई। तीसरी प्रदर्शनी दरभंगाके लेहेरियासरायमें हुई। यहाँपर उद्घाटन बाबू राजेन्द्रप्रसादने किया। यहाँ बिक्री १४४५ रुपये १५ आने ६ पाईतक पहुँची। इस महीनेमे चौथी और अन्तिम प्रदर्शनी देवघर (वैद्यनाथ-धाम) में हुई। सेठ जमनालाल बजाजने इसका उद्घाटन किया। यहाँ १३५९ रुपये ३ आने ६ पाईकी बिक्री हुई।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १९-८-१९२६

३३९. 'नवजीवन'-प्रेमियोंको

'हिन्दी नवजीवन' आज छठे वर्षमें प्रवेश करता है। मित्रोंके प्रेमके कारण यह पत्र नुकसान होते हुए भी निकलता रहा है। जमनालालजीने जो-कुछ लिखा है मैंने पढ़ लिया है। यदि 'हिन्दी नवजीवन' से किसीको सहायता मिलती है तो उसका प्रकाशन होते रहना आवश्यक है; परन्तु उसी प्रकार उसका स्वाश्रयी होना भी आवश्यक है। 'नवजीवन' प्रेमियोंसे मेरी प्रार्थना है कि वे ऐसी चेष्टा करें जिससे 'नवजीवन' को मित्रोंकी सहायतापर निर्भर न रहना पड़े।

'हिन्दी नवजीवन' में भाषाकी त्रुटियाँ होती थीं। मानता हूँ अब वे दूर हो गई हैं। उत्तर भारतके हिन्दी प्रेमी सज्जन 'नवजीवन' के लिए अनुवाद करते हैं।

इसलिए अब भाषा-दोषका भय कम हो गया है। बाकी रहा है 'नवजीवन'–प्रेमियोंका कर्त्तव्य; क्या इस वर्षमें वे उसका पालन करेंगे?

हिन्दी नवजीवन, १९-८-१९२६

३४०. पत्र : पूँजाभाई शाहको

आश्रम
बृहस्पतिवार, १९ अगस्त, १९२६

भाईश्री ५ पूँजाभाई,

'मनाचे श्लोक' के[1] भाषान्तरको मैं अच्छी तरह पढ़ गया हूँ। उसमें बहुत-सी भूलें रह गई हैं, ऐसा मुझे लगा। सूक्ष्म रूपसे जाँच करना मेरी शक्तिके बाहर था और फिर मुझे मराठीका ज्ञान तो नहींके बराबर ही है। इसलिए मेरी तो यह सलाह है कि मराठी और गुजराती भाषाएँ जाननेवाले किसी विद्वान्से इस भाषान्तरका समुचित संशोधन करा लेना चाहिए।

गुजराती प्रति (एस० एन० १२२५३) की माइक्रोफिल्मसे।

३४१. पत्र : रुस्तमजी वाछा गांधीको

आश्रम
साबरमती
गुरुवार, श्रावण सुदी ११, १९ अगस्त, १९२६

भाईश्री ५ रुस्तमजी वाछा गांधी,

आपके दोनों पत्र मिल गये। आपकी माँग ऐसी है कि मैं उसे टाल ही नहीं सकता। अतः थोड़ा-बहुत जो-कुछ भी लिख सका हूँ वही भेजे देता हूँ।

श्री रुस्तमजी वाछा गांधी
'सांझ वर्तमान' कार्यालय
पेराज बिल्डिंग
फोर्ट, बम्बई

गुजराती प्रति (एस० एन० १२२५२) की माइक्रोफिल्मसे।

१. समर्थ स्वामी रामदासकी एक कृति।

३४२. तार: डा० सत्यपालको

[आश्रम
साबरमती]
२० अगस्त, १९२६

सत्यपाल
कांग्रेस
लाहौर

सन्देश: कर्त्तव्य-पालन करनेमें सब कृष्णका अनुसरण करें।

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १२२५६) की माइक्रोफिल्मसे।

३४३. तार: मोतीलाल नेहरूको

२० अगस्त, १९२६

पण्डित नेहरू
इलाहाबाद

मुझे गोरखपुरसे घनश्यामदासकी उम्मीदवारीकी बात मालूम ही नहीं थी; जरूर कहीं कुछ गलती होगी।[1]

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११३२७) की फोटो-नकलसे।

१. यह मोतीलाल नेहरूके १९ अगस्त, १९२६ के तारके उत्तरमें दिया गया था। उस तारका पाठ इस प्रकार था: घनश्यामदास बिडलाके यहाँ काम करनेवाले कार्यकर्ता कह रहे हैं कि आपने बनारस-गोरखपुर क्षेत्रसे विधान सभाके लिए उनकी उम्मीदवारीकी ताईद की है। किन्तु उस क्षेत्रसे श्रीप्रकाश पहले ही कांग्रेस उम्मीदवारके रूपमें नामजद किये जा चुके हैं और कांग्रेस कार्य समितिने उनकी नामजदगीकी ताईद की है। कृपया प्रतिवादका अधिकार दें। "पत्र: घनश्यामदास बिड़ला", २०-८-१९२६ भी देखिए।

३४४. पत्र : मुत्तुस्वामी मुदलीको

२० अगस्त, १९२६

मैंने आपके १७ जुलाईके पत्रके सिलसिलेमें पूरी तौरपर जाँच-पड़ताल कर ली है और मैं इस निष्कर्षपर पहुँचा हूँ कि श्री कोटकका कोई दोष नहीं।[1]

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११२०३) की माइक्रोफिल्मसे।

३४५. पत्र : एस्थर मेननको

आश्रम
साबरमती
२० अगस्त, १९२६

रानी बिटिया,

तुम्हारा पत्र मिल गया। टाइपकी मशीनोंके बारेमें तुम्हारी उक्ति मैंने गलत नहीं समझी बल्कि, मुझे तो वह बहुत पसन्द आई।

आश्रमका शाब्दिक अर्थ वास-स्थान है। पर उसके साथ कुछ विशेष बातें जुड़ी हुई हैं: वहाँ सादगी होनी चाहिए। वह मात्र शिक्षण-संस्था न हो। आजन्म संयमके प्रति निष्ठावाले लोगोंकी वहाँ प्रधानता होनी चाहिए। उसके जीवनमें संन्यास अर्थात् संसारसे विरक्ति होनी चाहिए। इसलिए आश्रमको ऐसी संस्था होना चाहिए जिसने स्वेच्छासे निर्धनता ग्रहण की हो। इसलिए उसके वातावरणमें सादगीका आग्रह होना चाहिए। उसका एक अटल उद्देश्य आत्म-साक्षात्कारको दृष्टिमें रखकर चरित्र-निर्माण करना होना चाहिए। ऐसी संस्थामें सेव्य-सेवक भावकी कोई गुंजाइश नहीं। आश्रमके सभी सदस्योंको, चाहे वे स्त्री हों या पुरुष, शारीरिक श्रम करना चाहिए और सभीको समान स्थान प्राप्त होना चाहिए। उसमें किसीके किसीसे श्रेष्ठ होनेकी भावनाका कोई स्थान नहीं है। आश्रमका प्रधान एक पिता या माताके रूपमें होता है और उससे अपेक्षा की जाती है कि वह लोगोंको अपने बच्चोंके समान मानेगा। मेरा खयाल है कि अब मैं तुम्हें शायद आश्रमके लक्षण बहुत-कुछ बता चुका हूँ।

मैं जब भी किसी चिकित्सकको दुर्बल या बीमार देखता हूँ तो मुझे दुःख होता है। यह बात हमें सदा स्मरण दिलाती रहती है कि हमारा चिकित्सा शास्त्र बहुत अपूर्ण है, कम भरोसेका है और अभी प्रयोगकी अवस्थामें है। यदि हम इसपर पर्याप्त तटस्थ भावसे विचार करें तो हम तुरन्त समझ सकते हैं कि इसमें रोगोंका अचूक इलाज है ही नहीं और इससे इसकी अन्दरूनी कमजोरी हमारी समझमें तुरन्त आ जाती है। अत्यन्त गुणकारी औषधियाँ भी अनेक बार कारगर नहीं होतीं।

१. यह निश्चित नहीं किया जा सका कि यह पत्र किस संदर्भमें लिखा गया था।

शल्य-चिकित्सक कितना ही सफल ऑपरेशन क्यों न करे वह एक प्रत्यक्ष निशान और अप्रत्यक्ष दुष्प्रभाव तो छोड़ ही जाता है। यदि तुम डेनमार्कको जल्दी रवाना हो सको, तो निश्चय ही ज्यादा अच्छा हो क्योंकि आवोहवा वदलना सवसे अच्छा इलाज होगा।

उपवासके वारेमें तुम्हारा कहना विलकुल ठीक है। हर स्थिति और हर मनुष्यके लिए यह समान गुणकारी नही है। यदि उपवास करनेवाले मनुष्यका उद्देश्य सचमुच आत्मिक उत्कर्ष न हो तो उसका मनुष्यकी आत्मापर कोई प्रभाव ही नही पड़ता। उद्देश्य शुद्ध न हो तो उपवासका परिणाम विलकुल स्थूल ही निकलता है। परन्तु आत्मिक विकासके लिए उपवास करना एक ऐसा संयम है जिसे मैं व्यक्तिके विकास कालमें कभी-न-कभी नितान्त आवश्यक मानता हूँ। मैं 'प्रोटेस्टेंट' मतमें यह एक बड़ी खामी मानता हूँ। अन्य सभी उल्लेख-योग्य धर्मोमें उपवासका आत्मिक महत्त्व स्वीकार किया गया है। यदि भूखकी पीड़ा स्वेच्छासे सहन न की जाये तो स्थूल शरीर या इन्द्रियोंके निग्रहका कोई अर्थ ही नहीं। और मैं कहता हूँ कि यदि स्वयं भूखका अनुभव न किया जाये तो भूखकी मारी गरीव जनताके साथ तादात्म्य स्थापित करनेका कोई अर्थ नही है। मैं इस वातसे विलकुल सहमत हूँ कि कोई मनुष्य अस्सी दिनोंका उपवास करके भी अहंकार, स्वार्थपरता और आकांक्षासे मुक्त न हो; यह सर्वथा सम्भव है। उपवास तो सहारा मात्र है। और चूंकि गिरती इमारतमें खम्भेके खड़े रहनेका महत्त्व भी वहुत होता है, इसलिए संघर्षरत आत्माको उपवासका सहारा भी वहुत होता है।

सस्नेह,

तुम्हारा,
वापू

माई डियर चाइल्ड तथा नेशनल आर्काइव्ज ऑफ इंडियामें सुरक्षित अंग्रेजी पत्रकी फोटो-नकलसे।

३४६. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

आश्रम
सावरमती
शुक्रवार, श्रावण शुक्ल १२, २० अगस्त, १९२६

भाई घनश्यामदासजी,

इसके साथ मोतीलालजीका तार रखता हूँ। उसका उत्तर जो मैंने दिया है वह उसी तारके पीछे लिखा है। आपको मैंने तार भी दिया है। वह यह है:
मोतीलालजीका तार है कि गोरखपुरसे परिषदके चुनावके लिए मैंने आपके नामकी ताईद की है। मैंने जवाव दिया कि मुझे आपकी उम्मीदवारीकी वात मालूम नही। जरूर कही कुछ गलती होगी। इस फर्जी दरखास्तके वारेमे आपको कुछ मालूम है।[1]

१. मूलमें यह तार अंग्रेजीमें दिया गया है।

यह सब क्या हो सकता है? आपके पत्रकी राह देखता हूँ।

आपका,
मोहनदास

[पुनश्च :] तबीयत आपकी अच्छी होगी।

श्री घनश्यामदास बिड़ला
पिलानी
जयपुर स्टेट
(राजपूताना)

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ६१३३) से।
सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला

३४७. पत्र : रेहाना तैयबजीको

आश्रम
साबरमती
२१ अगस्त, १९२६

प्यारी बहन,[१]

तुम्हारा पत्र पाकर बड़ी खुशी हुई। ऐसा लगता है मानो तुम्हारा पत्र कई युगों बाद मिला है। तुम क्या चाहती हो — मैं सर हेनरी लॉरेंसको सीधा पत्र लिखूँ या एक मसविदा तैयार कर दूँ जिसे तुम उनको भेज सको? तुम्हारा उत्तर वैसे काफी ठीक है। उनको आँकड़ोंसे जितनी तसल्ली हो सकती है उतनी तुम्हारे पत्रसे हो जानी चाहिए। लेकिन इतनी सारी मेहनतके बाद भी हो सकता है कि जो बात हमें बहुत ठोस और बिलकुल स्पष्ट लगती है, वह उन्हें ऐसी न लगे। लेकिन इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। 'साँग सेलेशियल'[२] के प्रणेताका मत यही है। हमें निष्काम भावसे कर्म करना चाहिए और फल ईश्वरपर छोड़ देना चाहिए।

देख रहा हूँ कि तुमने अच्छी लड़कियोंकी तरह ही अपना पत्र जितना लम्बा लिखा है उतना ही लम्बा उसका उत्तरांश भी लिखा है और वह शायद स्वयं पत्रसे भी ज्यादा महत्त्वका है। उस अविश्वासी बहनसे कहना कि चरखेके पुनरुद्धारके फल-स्वरूप सचमुच ही कई कला-कौशल और शिल्प विनष्ट होनेसे बचे हैं। क्या उनका खयाल यह है कि चीन और फ्रांससे रेशमका धागा आनेसे पहले भारतमें बुनाईकी कला थी ही नहीं? रेशम आना तो मुश्किलसे सौ साल या इससे भी कुछ अर्से पहले शुरू हुआ है। कताई और बुनाईकी कलाके चरम उत्कर्षके दिनोंमें हमारी कला

१. साधन सूत्रमें ये शब्द अरबी लिपिमें हैं।
२. मैथ्यू आर्नोल्ड द्वारा अंग्रेजीमें भाषान्तरित भगवद्गीता।

उच्चतम शिखरपर थी और आज वस्त्रोंमें हमें जो कला दिखाई पड़ती है, भारतकी उस मौलिक कलाकी नकल ही है। कसीदेके लिए चीनी रेशमका प्रयोग खुद मुझे बहुत जरूरी नहीं लगता। पर जो समझते हों कि ऐसा न करनेसे कला नष्ट हो जायेगी, वे चीनी रेशमी धागेका मनमाना इस्तेमाल कर सकते हैं; हाँ, जमीन हाथ-कते सूतके बुने खद्दरकी ही होनी चाहिए। यदि हम स्वयं एक राष्ट्रके रूपमें अपने-आपको विनाशसे नहीं बचा सकते तो हम भारतीय कलाको भी विनाशसे नहीं बचा सकते। फिर चाहे हम कितनी ही दौड़-धूप करें और अखबारोंमें अपीलें निकालें। भारतीय कलाका पुनरुत्थान तभी सम्भव है जब हममें इतना देश-प्रेम पैदा हो जाये कि हम अपने मतभेद भुलाकर एक-दूसरेसे मिल-जुलकर रह सकें और देशकी खातिर अपने सर्वस्वकी बलि दे सकें। इसलिए भारतीय कलाको सुरक्षित रखने और उसका पुनरुत्थान करनेका सबसे अच्छा मार्ग यही है कि पहले हम पर्याप्त भारतीय बनें। लेकिन मुझे तुमको यह सब बतानेकी जरूरत नहीं। तुम तो पूरी तरह राष्ट्रीय भावनासे ओतप्रोत हो। ईश्वर तुम्हें दीर्घायु करे और स्वस्थ रखे, जिससे तुम समयके अनुरूप अपनी इस भावनाको पूरी तरह व्यक्त कर सको। मनुष्य मनमें जिस कर्मका संकल्प कर लेता है, वह अन्तमें उसे पूरा कर ही लेता है। यदि तुम्हारे मनमें कुमारी स्लेडसे, जिनका हमारा दिया नाम मीराबाई है, मिलने और मुझे अपने कुछ नये भजन सुनानेकी साध है, तो तुम यथाशीघ्र यहाँ अवश्य आओगी।

तुम सबको प्यार।

तुम्हारा,
बापू

कुमारी रेहाना तैयबजी
कैम्प बड़ौदा

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ९६००) की फोटो-नकलसे।

३४८. राष्ट्रीय शालाएँ

मैंने 'नवजीवन' में ८ वीं अगस्तको राष्ट्रीय शालाओंके विषयमें एक लेख लिखा था। जान पड़ता है उसके सम्बन्धमें कुछ गलतफहमी हो गई है। बम्बईके राष्ट्रीय विनय मन्दिरके आचार्य लिखते हैं:

> आपने उक्त लेखमें सलाह दी है कि अब तो सारी राष्ट्रीय शालाएँ बन्द कर दी जानी चाहिए। इसके आधारपर बम्बईके जिन दान-दाताओंसे विनय-मन्दिरको सहायता मिलती थी उनमें से एकने कहा: "अब तो दान देनेकी कोई जरूरत ही नहीं रही।"

जिस अनुच्छेदके कारण यह गलतफहमी हुई वह इस प्रकार है:

> इसलिए जहाँ पालकोंमें राष्ट्रीय भावना हो और वे अपनी इस भावनाका उचित प्रमाण राष्ट्रीय शालाओंके संचालनके लिए चन्दा देकर सिद्ध करते हों और

जहाँ शिक्षक-वर्ग राष्ट्रीय भावनासे ओतप्रोत होकर जी-तोड़ प्रयत्न करता हो, वहाँ मैं समझ सकता हूँ कि विद्यार्थियोंके शिथिल होनेसे भी कोई बड़ा नुकसान नहीं हो सकता। ऐसी अवस्थामें हम शाला चलाते रह सकते हैं और आशा कर सकते हैं कि हम किसी-न-किसी दिन विद्यार्थियोंपर ठीक असर डाल सकेंगे। किन्तु यह लेख लिखते हुए मेरी नजरमें ऐसा एक भी स्कूल नही है।"

उक्त अनुच्छेदमें अनर्थ अन्तिम वाक्यका हुआ है। इसका यह अर्थ निकाला गया कि मैं एक भी राष्ट्रीय शालाको चलाते रहने योग्य नहीं मानता। इसी अनुच्छेदमें एक दूसरा वाक्य भी है जो अनुच्छेदका पहला वाक्य है, जो बताता है कि किस प्रकारके राष्ट्रीय स्कूल बन्द हो जाने चाहिए।

जहाँ-कहीं भी अभिभावकों अथवा शिक्षकोंका विरोध हो, वहाँ राष्ट्रीय शाला बन्द ही कर देनी चाहिए।

बम्बईके विनय-मन्दिरके विषयमें और उसी तरह अन्य बहुत-सी राष्ट्रीय शालाओंके विषयमें हमें यह मालूम है कि अभिभावक और शिक्षक राष्ट्रीय भावनाओंके अनुकूल हैं। वे कांग्रेसकी तद्विषयक व्याख्याके अनुसार ही राष्ट्रीय शालाओंको चलाना चाहते है। ऐसी शालाओंको बन्द करनेकी बात नहीं है। और यह बतानेके लिए ही मैंने बादके वाक्य लिखे थे कि यदि वहाँके विद्यार्थीगण खादी और इसी तरहकी दूसरी शर्तोको पूरा करनेसे आग्रहपूर्वक इनकार करते हों तो भी उन स्कूलोंको चलाते रहना चाहिए और इस प्रकार विद्यार्थियोंको सुधरनेका अवसर देना चाहिए। मैंने अनुच्छेदके अन्तमें कहा: "यह लेख लिखते हुए मेरी नजरमें ऐसा एक भी स्कूल नहीं है।" मेरा आशय यह था कि जहाँ अभिभावकों और शिक्षकोंके अनुकूल तथा प्रयत्नशील होते हुए भी विद्यार्थीगण हठपूर्वक खादी इत्यादिसे सम्बन्धित शर्तोका पालन न करते हों ऐसी एक भी राष्ट्रीय शाला मेरी निगाहमें नहीं है। यदि किसीकी निगाहमें हो तो मैं अवश्य उसका नाम-धाम जानना चाहूँगा। बम्बईके राष्ट्रीय-विनय मन्दिरके विषयमें तो मैं यही जानता हूँ कि वहाँके विद्यार्थी भी राष्ट्रीय भावनाके अनुकूल हैं। वे खादीका उपयोग करते हैं और सूत कातते है। ऐसी राष्ट्रीय शालाओंको बन्द नहीं किया जा सकता। मैं आशा करता हूँ कि सभी सज्जन इस प्रकारकी शालाओंकी मदद करते रहेंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २२-८-१९२६

३४९. पत्र : मथुरादास त्रिकमजीको

आश्रम
साबरमती
श्रावण शुक्ल १४, १९८२ [२२ अगस्त, १९२६]

चि० मथुरादास,

यहाँ एक जर्मन बहन आई है, यह तो तुम्हें लिख ही चुका हूँ। उन्हें यहाँकी गर्म आबोहवा अनुकूल नहीं आती; इसलिए उन्हें एक महीनेके लिए किसी ठण्डी जगह भेजनेका विचार है। मैंने देवदास[1] और स्टोक्ससे[2] पूछा है। यदि बँगलेमें जगह हो तो मैं उन्हें वहाँ तुम्हारे पास भेजना चाहता हूँ। ये बहन किसीके ऊपर भारस्वरूप नहीं होंगी; बहुत सादी, विनोदप्रिय और सरल स्वभावकी है। यदि तुम उन्हें अपने यहाँ जगह दे सको तो मुझे तार दो। मैं चाहता हूँ कि मैं उन्हें यहाँसे बृहस्पतिवारको रवाना कर दूँ।

गुजराती प्रति (एस० एन० १२२५५) की माइक्रोफिल्मसे।

३५०. पत्र : लक्ष्मीदास आसरको

आश्रम
साबरमती
मंगलवार, श्रावण वदी १ [२४ अगस्त, १९२६][3]

चि० लक्ष्मीदास,

तुम्हारा पत्र मिला। महुधापर लिखे गये लेखको पढ़ लूँगा और फिर प्रकाशित कर दूँगा। अभी तुम्हारा स्वास्थ्य जैसा हो जाना चाहिए था वैसा क्यों नहीं हुआ, यह बात मेरी समझमें नहीं आती। मैं तो तुम्हें स्फूर्तिसे भरा हुआ और अपेक्षाकृत हृष्ट-पुष्ट देखना चाहता हूँ। जब इस अंग्रेजी मासके समाप्त होनेपर आनेकी बात सोचते हो तो फिर मैं चाहता हूँ कि तुम छः दिन पहले आ जाओ, क्योंकि मोती फिलहाल यहीं है। लेकिन नाजुकलालके पत्रसे ध्वनि निकलती है कि उसे तुरन्त ससुराल पहुँच जाना चाहिए। बेलाबहन तो यही चाहती हैं कि मोती भादों-भर यहीं रहे। कुछ भी हो, जबतक तुम यहाँ नहीं आते तबतक तो वह यहाँ रहेगी ही; लेकिन मुझे लगता है

१. देवदास गांधी उस समय मसूरीमें थे; देखिए "पत्र : देवदास गांधीको", १२-८-१९२६।

२. श्री स्टोक्स शिमलाके समीप कोटगढ़में एक स्कूल चलाते थे।

३. इसमें उल्लिखित लक्ष्मीदास द्वारा महुधापर लिखा गया लेख नवम्बर, १९२६ में प्रकाशित किया गया था। १९२६ में श्रावण वदी १, २४ अगस्तको थी।

कि मोतीका कर्त्तव्य है कि वह १ तारीखतक भड़ौच अथवा बड़ौदा पहुँच जाये। इसके अलावा मैं इस समय वेलाबहनका जो उपचार कर रहा हूँ उसमें भी तुम्हारी उपस्थितिसे वेलाबहन और मुझे दोनोंको बहुत सुविधा होगी।

गंगाबहनकी समस्या लगभग हल हो गई है। बीजापुरके मकानका कब्जा मिल गया है। आवश्यक सामान भी ले लिया गया है। लेकिन अन्य लोगोंके भरोसे रहनेके कारण कुछ काम अभी बाकी रह गया है।

तुमने मगनलालको रुईके बारेमें जो पत्र लिखा है मैं तुमसे उसपर कुछ विस्तारसे बात करना चाहता हूँ। मैं पूरी बात समझ नहीं पाया हूँ। शेष मिलनेपर।

श्रीयुत लक्ष्मीदास पुरुषोत्तम
जयाजीराव कॉटन मिल्स
ग्वालियर

गुजराती प्रति (एस० एन० १२२५८) की फोटो-नकलसे।

३५१. पत्र : अवन्तिकाबाई गोखलेको

आश्रम
साबरमती
बुधवार, श्रावण बदी २ [२५ अगस्त, १९२६]

प्रिय बहन,

साथके पत्रको पढ़कर उसे अपने उत्तर सहित वापस भेज दें। उम्मीद है, आपकी और गोखलेजीकी तबीयत ठीक होगी।

आप यह तो जानती ही होंगी कि देवदास फिलहाल शिमलामें है।

श्रीमती अवन्तिकाबाई गोखले
आत्माराम मेन्शन
गिरगाँव
बम्बई

गुजराती प्रति (एस० एन० १२२५७) की माइक्रोफिल्मसे।

३५२. पत्र : नानाभाई भट्टको

आश्रम
साबरमती
बुधवार, श्रावण वदी २ [२५ अगस्त, १९२६]

भाईश्री ५ नानाभाई,

आपका पत्र और तार मिले। आशा है, चि० विद्युत अब ठीक होगा। मैं तब तक मौन रखूँगा जबतक भाई विट्ठलराय यहाँ नहीं आ जाते।

भाई रामनारायणने[1] कल मुझे खबर दी कि भाई बल्लूभाई[2] और दीवानने[3] सरकारी मान्यता प्राप्त करनेका निश्चय किया है।[4] इसपर मैंने भाई रामनारायणसे कहा है कि वे, जो विद्यार्थी सातवें वर्गमें पढ़ना चाहें उनके लिए विद्यापीठमें ही एक वर्ग खोल दें। हमें इस सम्बन्धमें अन्ततः समितिसे अनुमति तो लेनी ही होगी। मैंने उनसे कहा है कि तबतक वे किसी खर्चमें न पड़ें। जो पढ़ना चाहें उन विद्यार्थियोंको महाविद्यालयके भवनमें ही पढ़ाना निश्चित किया गया है। यदि आप आ सकें तो एक चक्कर लगा जायें और स्थिति देख जायें।

आपके लिए किसीने एक कतरन भेजी है वह इसके साथ है। मैं नहीं मानता कि उसमें जैसा कहा गया है वैसा आपने कहा होगा अथवा वैसी आपकी मान्यता है।

गुजराती प्रति (एस० एन० १२२५९) की फोटो-नकलसे।

३५३. टिप्पणियाँ

बुद्धिमानीका कदम

प्राणिदया ध्यान प्रचारक संघ, दावानगीर, मैसूरके कार्यालयमें जो खादी भण्डार चलाया जाता है उसके व्यवस्थापकने सूचित किया है कि स्थानीय नगरपालिका परिषदने खादीके आयात परसे चुंगी हटा दी है। हरएक नगरपालिकाको चाहिए कि वह इस उदाहरणका अनुकरण करे। इस प्राचीन उद्योगको पुनरुज्जीवित करनेके लिए नगरपालिकाओंको कमसे-कम इतना तो करना ही चाहिए। मैं हजारों बार कह चुका हूँ और फिर कहता हूँ कि खादीका अर्थ वह कपड़ा है जो हाथकते सूतसे करघेपर बुना गया हो।

१. रामनारायण वी० पाठक, गुजरातके एक शिक्षाविद्, विद्वान् और आलोचक।

२. बलवन्तराय पी० ठाकोर।

३. जीवनलाल दीवान।

४. अहमदाबादके अपने प्रोप्राइटरी हाई स्कूलके लिए।

गुजरातके आँकड़े

गुजरात प्रान्तके जूनतकके खादीके उत्पादन और विक्रीके आँकड़े इस प्रकार हैं :

गुजरात	उत्पादन	विक्रय
इसी ५ तारीखके 'यंग इंडिया'	८,१४९ रु०	९,६४७ रु०
में छपी पिछली रिपोर्टका जोड़	१,४३,२९३ रु०	१,९८,८५७ रु०
जूनके अन्ततकका जोड़	१,५१,४४२ रु०	२,०८,५०४ रु०

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २६-८-१९२६

३५४. आँखें खोलनेवाले आँकड़े

अ० भा० चरखा संघके 'अ' श्रेणीके सदस्योंका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है। पाठकोंका, विशेषतः सदस्योंका, ध्यान इनकी ओर अवश्य ही आकर्षित होगा।

प्रान्त	दर्ज सदस्य	पूरा चंदा देनेवाले	प्रतिशत
अजमेर	१७	७	४१
आन्ध्र	४५५	१०९	२४
असम	१५५	२	१
विहार	२२७	६१	२७
वंगाल	५४९	१७८	३३
वरार	१८	१४	७८
वर्मा	६	५	८३
मध्यप्रान्त (हिन्दी)	४७	२६	५५
मध्यप्रान्त (मराठी)	६७	४७	७०
वम्वई	८०	४४	५५
दिल्ली	२१	६	२९
गुजरात	४६७	२८२	६०
कर्नाटक	१७६	६१	३५
केरल	६१	२१	३४
महाराष्ट्र	२३७	८९	३८
पंजाव	६८	२३	३४
सिन्ध	४४	२०	४५
तमिलनाड	५०१	१६०	३२
संयुक्त प्रान्त	१५०	६१	४१
उत्कल	३३	१५	४५
	३,३७९	१,२३१	३६

जिन ३,३७९ लोगोंने अपनेको सदस्योंकी तरह दर्ज करवाया था, उनमें से अभी तक केवल १,२३१ भाइयो अर्थात् फी सैकड़े ३६ सदस्योने अपने हिस्सेका सूत अदा किया है। असमसे पूरा चदा देनेवाले भाई केवल एक प्रतिशत हैं और यह सबसे कम है। उसके बाद आन्ध्रका नम्बर आता है और वहासे फी सैकड़े केवल २४ लोगोने सूत भेजा है। वर्मासे फी सैकड़े ८३ सदस्योने सूत भेजा है। अतः उसका स्थान सबसे ऊपर आता है। लेकिन वर्माके केवल ६ ही सदस्य थे, इसलिए इसमें कुछ आश्चर्यकी बात नही है।

अतः ये आँकड़े वतलाते हैं कि लोगोको नियमितता पसन्द नही है और वे देशके लिए निरन्तर काम करना नही चाहते। उनमें सतत त्याग करनेका भाव नहीं है। किसीको यह कल्पना न कर लेनी चाहिए कि यदि चन्देमें पैसा लिया जाये तो स्थिति कुछ विशेष अच्छी होगी। ऐसा सार्वजनिक कार्यकर्त्ता कौन होगा जिसे वकाया चन्देका कटु अनुभव न हो, मुझे काग्रेसके मन्त्रियोंकी उन दिनोंकी शिकायत याद है जब काग्रेस कमेटीका चन्दा रुपयेके रूपमें इकट्ठा लिया जाता था। अनेक कार्यकर्त्ताओंमें सहज असावधानी भी पाई जाती है। बात यह है कि हम सार्वजनिक कार्यको केवल फुरसतके वक्तका काम, दिलवहलावका काम या लोगोपर मेहरबानी करना समझते हैं, उसे अभीतक प्राथमिक कर्त्तव्यका दर्जा नही मिला है। फिर भी जिसे स्वस्थ सामाजिक और राजनीतिक जीवन वितानेकी इच्छा है, उसकी दृष्टिमे सार्वजनिक सेवा भी उतना ही बड़ा कर्त्तव्य है जितना अपनी या परिवारकी सेवा। क्या हमें अपने प्राचीन पंच महायज्ञोंका पुनः नामकरण करके उन्हे आत्मयज्ञ, परिवारयज्ञ, ग्रामयज्ञ, जातियज्ञ और मानवयज्ञ कहना उचित न होगा? सच्चा जीवन तो वही है जिसमें, इन भिन्न-भिन्न यज्ञोंमें समन्वित सम्बन्ध हो, पारस्परिक विरोध न हो। सूतका चन्दा तो सबसे हलका जातियज्ञ है। यह मानव-जातिके हितका विरोवी नहीं है और ग्राम, परिवार या व्यक्तिके हितका विरोवी तो निश्चय ही नहीं है।

इसलिए मुझे इन आँकडोके अध्ययनसे निराशा नही होती। चन्देके रूप अथवा चन्दा देनेके तरीकेको वदलनेकी जरूरत भी नही है। मै खादी आन्दोलनका ज्यो-ज्यों अध्ययन करता जाता हूँ त्यो-त्यों मेरा यह विश्वास बढता जाता है कि कमसे-कम प्रतिदिन आधा घंटेकी कताईका नियम रखना और उस नियमका पालन करना और चन्देका आजका स्वरूप और परिमाण कायम रखना उचित एव आवश्यक है। यदि ये १,२३१ सदस्य भी लगातार और चुपचाप अपना सूत निरन्तर देते रहें, तो उनका यह अनुशासन उनके निजी जीवनमें क्रान्ति पैदा कर देगा और जब महापरीक्षाका समय आयेगा — और वह कभी-न-कभी अवश्य आयेगा ही — तब ये लोग राष्ट्रीय सेवाके लिए उपयुक्त पाये जायेंगे।

इन नियमित सूत कातनेवालोंमें से ही आज हमें सबसे अधिक अनवरत कार्य करनेवाले कार्यकर्त्ता मिलते हैं। मेरे द्वारा इकट्ठे और साथके साथ नियमित रूपसे प्रकाशित किये जानेवाले आँकड़े सभी पक्षपातशून्य विचारशील सज्जनोकी आँखें खोल देंगे और उन्हें उनसे मालूम हो जायेगा कि गरीब दुखियोकी बढ़ती हुई विपत्तिको

तुरन्त दूर करनेवाली एकमात्र उपयोगी औषध तथा हमारे इने-गिने सभ्य शिक्षित सज्जनोंके तथा असंख्य अध-भूखे लोगोंके बीच सच्चा सम्बन्ध स्थापित करनेवाली एक-मात्र कड़ी खादी ही है।

खादीके जबर्दस्त समर्थनमें बाबू राजेन्द्रप्रसादने यह उचित ही कहा है:

> लेकिन लोग पूछ सकते हैं कि हम अधिक दाम देकर खादी क्यों खरीदें? इस मरे हुए व्यवसायको पुनरुज्जीवित करनेसे हमें लाभ ही क्या है? ये सवाल केवल उन्हीं सज्जनोंको सूझ सकते हैं जिन्हें इस देशके लोगोंको पीस डालनेवाली गरीबीका ज्ञान नहीं है। अनुभव-शून्य अर्थशास्त्र आत्माके प्रसन्न प्रवाहको सुखानेवाली घोर दरिद्रताके सामने मौन है। मैं केवल एक ही उदाहरण दूँगा। यह हिसाब है तो मोटा, किन्तु महज इसी कारण कुछ कम विश्वसनीय नहीं है। सन् १९२२ में हम लोगोंने गरीबोंको कातने और बुननेकी मजदूरीके रूपमें कमसे-कम २६,००० रुपये दिये। १९२५ में हमने ४६,००० रुपये मजदूरी दी जिनमें से २८,००० तो केवल सूत कातनेवालोंको दिये गये। ये ऐसे लोग थे जिन्हें सूत न कातनेकी अवस्थामें किसी दूसरे कामसे एक पैसा भी नहीं मिलता था। ये आँकड़े बिहार प्रान्तकी कांग्रेस कमेटीके अधीन चलनेवाली संस्थाओंके हैं। इस हिसाबमें गांधी कुटीरका हिसाब शामिल नहीं है और गांधी कुटीरका काम अभी हालतक कांग्रेस खद्दर भण्डारके कामसे कहीं अधिक विस्तृत था। मैं बड़ी संजीदगीके साथ पूछता हूँ कि इस प्रान्तमें दूसरी ऐसी कौनसी संस्था है जिसके द्वारा ऐसे गरीबोंको, जो दूसरी तरहसे कुछ भी न कमा सकते थे, सालमें एक लाखसे अधिक रुपये मिलते हों और वह भी दानके रूपमें नहीं — बल्कि मेहनतकी कमाईके रूपमें। सचमुच खद्दरका व्यवसाय मरे हुएको जिलानेवाला है। इसके पुनर्जीवनसे असंख्य भूखोंको अन्न मिलेगा। इसके लिए जो लोग धन देते हैं और जो उस धनको लेते हैं, दोनों ही धन्य हैं, क्योंकि यह कोरा दान ही नहीं है। यह पानेवालेमें स्वाभिमान भरता है और साथ-साथ देनेवालेको भी नम्र बनाता है।

जो बात बिहारकी है वही और प्रान्तोंकी भी है।

अ० भा० चरखा संघ सारे भारतवर्षमें १८ लाख रुपयेसे अधिकका कारोबार कर रहा है। उसके मुनाफेका अधिकांश ऐसे गरीबोंके ही घरमें जाता है जो इसके बिना बेकार ही बने रहते।

संशयालुचित्त पुरुष इन आँकड़ोंपर ध्यान दें। यदि वे धनका इससे अच्छा उपयोग और बेरोजगार गरीबोंके लिए इससे अच्छा कोई रोजगार सुझा सकें तो सुझायें। यदि नहीं, तो क्या उनका यह धर्म नहीं है कि वे इस बढ़ते हुए बड़े आन्दोलनकी, जो जितना राजनीतिक है उतना ही आर्थिक और नैतिक भी है, सहायता करें? इसका नैतिक और आर्थिक लाभ तो तात्कालिक और प्रत्यक्ष होता है, इसका राजनीतिक लाभ दूरस्थ है, किन्तु वह भी इन्हीं दोनोंपर निर्भर है, इनसे अलग नहीं।

जिनका सूत वाकी है वे सज्जन सावधान हो जायें। यदि वे न जगे और उन्होंने अपना सूत नही भेजा तो सालके आखिरमें उनका नाम सदस्योंकी सूचीमें नही रहेगा। कानूनी कर्जेकी वनिस्वत इस धर्मऋणकी अदायगी कही अधिक जरूरी होती और चरखा संघका यह चन्दा राष्ट्रके प्रति धर्म-ऋण ही है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २६-८-१९२६

३५५. बाल-विवाहका अभिशाप

श्रीमती मारग्रेट ई० कजिन्सने मेरे पास एक दुर्घटनाका समाचार भेजा है। ऐसा मालूम पड़ता है कि यह दुर्घटना वाल-विवाहके कारण अभी हालमें मद्रासमें हुई है। विवाहके समय 'वर' की आयु २६ वर्षकी तथा कन्याकी १३ वर्षकी थी। ये दोनो मुश्किलसे १३ दिन ही साथ रहे होगे कि लड़की जीवित जल गई और मर गई। जूरीने फैसला दिया कि उसने अपने कथित पतिके असह्य और निर्दय बलात्कारके कारण आत्महत्या की है। लड़कीके मरते समयके बयानसे मालूम होता है कि उसके 'पति' ने उसके कपड़ोंमें आग लगा दी थी। कामान्ध मनुष्यमें विवेक और दया नही रहती।

परन्तु हमें यहाँ इस बातका सरोकार नही कि लड़की कैसे मरी। फिर भी इससे तो कोई इनकार नहीं कर सकता है कि:

(१) लड़कीका विवाह केवल १३ वर्षकी आयुमें कर दिया गया था,
(२) उसमें कामेच्छा विल्कुल नही थी, यह 'पति' की कामचेष्टाके उसके विरोधसे प्रकट है,
(३) 'पति' ने उसके साथ जबरदस्ती जरूर की थी, और
(४) लडकी अब इस संसारमें नही रही है।

एक पाशविक प्रथाकी धर्मसे पुष्टि करना धर्म नही, अधर्म है। स्मृतियोंमें परस्पर विरोधी वाक्य भरे पडे हैं। इन विरोधोंसे तो इत्मीनानके काविल यही एक नतीजा निकल सकता है कि उन वाक्योंको, जो प्रचलित और सर्वमान्य नीतिके और खासकर स्मृतियोंमें ही लिखित आदेशोंके विपरीत हैं, क्षेपक समझकर छोड़ दिया जाये। एक ही पुरुष, एक ही समयमें आत्मसंयमका उपदेश देनेवाले और पशुवृत्तिको उत्तेजित करनेवाले श्लोक नही लिख सकता। जिसे आत्मसंयमसे कुछ भी सरोकार न हो और जो पापमें डूबा हो, वही यह कह सकता है कि कन्याके रजस्वला होनेके पूर्व ही उसका विवाह कर देना चाहिए और ऐसा न करना पाप है। मानना तो यह चाहिए कि रजस्वला होनेके बाद भी कई वरसोंतक लड़कीका विवाह करना पाप है। उसके पहले तो विवाहका खयाल भी नही किया जा सकता। किन्तु लड़की रजस्वला होते ही सन्तान उत्पन्न करनेके योग्य नही हो जाती, ऐसे ही जैसे लड़का मसें भीगते ही सन्तान उत्पन्न करने योग्य नही हो जाता।

बाल-विवाहकी यह प्रथा, नैतिक और शारीरिक, दोनों दृष्टियोंसे हानिकर है। इससे हमारी नैतिकताकी जड़ें खोखली होती हैं और हममें शारीरिक निर्बलता आती है। ऐसी प्रथाओंको रहने देकर हम स्वराज्य और ईश्वर दोनोंसे दूर हटते हैं। जिस आदमीको किसी लड़कीकी नाजुक उम्रका कोई खयाल नहीं है, उसे ईश्वरका भी कोई खयाल न होगा। अधकचरे पुरुषोंमें न तो स्वराज्यके लिए लड़नेकी शक्ति होती है और न पानेपर उसे कायम रखनेकी। स्वराज्यकी लड़ाईका अर्थ केवल राजनीतिक जागृति ही नहीं है, बल्कि सामाजिक, शैक्षणिक, नैतिक, आर्थिक और राजनीतिक सभी प्रकारकी जागृति है।

सहवासकी आयु कानूनसे बढ़ानेकी कोशिश की जा रही है। कुछ थोड़ेसे लोगोंसे कैफियत माँगनेकी हदतक यह ठीक हो सकता है। परन्तु कानूनसे ऐसी कोई सामाजिक कुप्रथा नहीं रोकी जा सकती। इसे तो केवल जाग्रत लोकमत ही रोक सकता है। मैं ऐसे विषयोंमें कानून बनानेका विरोध नहीं करता, परन्तु मैं तो कानूनसे अधिक जोर लोकमत तैयार करनेपर देता हूँ। यदि मद्रासमें बाल-विवाहके विरुद्ध लोकमत जाग्रत होता तो वहाँ ऐसी दुर्घटनाका होना असम्भव हो जाता। इस मामलेसे सम्बन्धित मद्रासका वह युवक कोई अपढ़ मजदूर नहीं है, वरन् पढ़ा-लिखा समझदार टाइपिस्ट है। यदि लोकमत नाजुक उम्रकी लड़कियोंके विवाहका या उससे सहवासका विरोधी होता तो उसके लिए उस लड़कीसे विवाह करना या सहवास करना असम्भव हो जाता। साधारणतः १८ वर्षसे कम उम्रकी लड़कीका विवाह कभी किया ही नहीं जाना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २६-८-१९२६

३५६. टिप्पणियाँ

मालवीयजी और बंगाल सरकार

बंगाल सरकारने अपने कदम पीछे हटाने तथा पण्डित मालवीयजी और डा० मुंजेके खिलाफ उनकी सविनय अवज्ञाके कारण की गई कार्रवाई वापस लेनेका जो साहस दिखाया है, उसके लिए वह अपनी पीठ आप ही भले ठोंक ले[1] लेकिन यदि वह इस कार्रवाईको किसी और शोभनीय ढंगसे वापस लेती तो अच्छा होता। बंगाल सरकारके स्थायी वकीलने जो वक्तव्य दिया है वह मेरी समझमें बहुत अपमानजनक है। सरकारकी ओरसे न तो कोई खेद प्रकट किया गया है और न उन महान् देश-भक्तोंसे क्षमा माँगी गई है — उलटे अप्रत्यक्ष रूपसे यह कहा गया है कि सम्भवतः कलकत्तेमें मालवीयजीकी मौजूदगी और दंगोंमें कुछ सम्बन्ध था। हाँ, सरकारी वकीलको यह बात माननी पड़ी है कि पण्डितजीके व्याख्यानमें — जिसको पढ़कर

१. देखिए "सत्याग्रहकी विजय", १२-८-१९२६।

वह निषेधाज्ञा निकाली गई थी — किसीको दुःख पहुँचानेवाली या भड़कानेवाली कोई बात न थी। निस्सन्देह यह उस नोटिसके निकालनेवाले अफसरोंका कर्त्तव्य था कि वे पहले उस भाषणको पूरा पढ़ लेते और तब १४४ धारा लगानेके हुक्मकी दरख्वास्त करते — विशेषकर उस समय जब कि वह हुक्म पण्डित मालवीयजी और डाक्टर मुंजे-जैसे प्रख्यात नेताओंके विरुद्ध जारी किया जानेवाला था। यदि किसी व्यक्ति विशेषने ऐसी जल्दबाजीसे काम लिया होता जैसी इस मामलेमें बंगाल सरकारने दिखाई है तो उस व्यक्तिपर हरजानेका दावा किया जा सकता था। यदि लोकमत सुसंगठित और मजबूत होता तो जनता ऐसी लापरवाही और जल्दबाजी दिखानेवाली सरकारसे जवाब तलब कर सकती थी।

प्रायः ऐसी शिकायतें सुनी जाती हैं कि सरकार निर्दोष व्यक्तियोंके विरुद्ध ज्यादातर बिना सोचे-समझे जल्दबाजीमें और यहाँतक कि वैरभावसे उन कानूनोंके अन्तर्गत कार्रवाई करती है, जिनको गढनेमें अधिकांशतः सरकारका ही हाथ रहा है — क्या इस मामलेमें की गई कार्रवाईको देखते हुए ऐसी शिकायतोंका सुना जाना आश्चर्यकी बात मानी जा सकती है?

हिन्दुस्तानियोंका निष्कासन

दक्षिण आफ्रिकासे प्राप्त एक पत्र कहता है:

> **नौकरियोंमें से हिन्दुस्तानियोंके निष्कासन या 'सभ्य मजदूरों' की भर्तीकी नीति सभी सरकारी विभागोंमें तेजीसे बरती जा रही है। पीटरमैरित्सबर्ग और लेडी स्मिथमें रेलवे विभागके सैकड़ों हिन्दुस्तानियोंको नोटिस दिये गये हैं कि वे या तो डर्बनकी बदली करा लें या नौकरी छोड़ दें। कुछ लोगोंको तो केवल १३ दिनोंका ही नोटिस मिला है। यह सलूक उन लोगोंके साथ किया जा रहा है जिन्होंने, किसी एक ही स्थानपर रहकर २५ या ३० वर्षोंतक नौकरी की है और अपनी जिन्दगीका बड़ा भाग वहीं खपा दिया है। इन गरीब अनपढ़ आदमियोंके लिए दूसरी जगहकी बदलीका अर्थ है बिलकुल नई दुनियामें जाना। मुझे पता लगा है कि इनमें से बहुतसे लोग नौकरी छोड़-छोड़कर फिर हिन्दुस्तान जा रहे हैं।**

नौकरी न छोड़नी हो तो डर्बन जाओ — यह तो कोई बात न हुई; क्योंकि जो डर्बन जाते हैं उनपर वहाँ भी 'सभ्य मजदूरोंकी भर्तीके समय यही प्रतिबन्ध लागू होना है। इन नोटिसोंसे तो कुछ दुःख नहीं होता; दुःखकी बात तो यह है कि जब दक्षिण आफ्रिकामें एशियाइयोंकी स्थितिपर विचार करनेके लिए एक सम्मेलनमें विचार होने जा रहा है तब एशियाइयोंको निकाल बाहर करनेकी नीतिपर अशोभनीय उतावलीसे अमल किया जा रहा है। किन्तु अभी हम रुके रहें, आनेवाले दक्षिण आफ्रिकी शिष्टमण्डलके लिए वातावरण तैयार करें और यह आशा रखें कि कुछ अच्छा ही फल होगा।

रंगभेद विधेयक

स्थानीय भारतीय कांग्रेसको दक्षिण आफ्रिकाके खान तथा उद्योग विभागका निम्न पत्र मिला है। इस पत्रमें रंगभेद विधेयकपर अन्तिम बात कह दी गई है:

> आपने खान तथा निर्माण अधिनियम संशोधन विधेयक (माइन्स ऐंड वर्क्स ऐक्ट अमेंडमेंट बिल)के सम्बन्धमें इस मासकी १४ तारीखको परमश्रेष्ठ गवर्नर जनरलके नाम एक तार भेजा था। इस तारके बारेमें मुझे आपको यह सूचित करनेका आदेश मिला है कि न्यायालयों द्वारा कुछ विनियमोंको अवैध घोषित करनेसे पूर्व जो स्थिति थी सरकारका इरादा उचित समयपर हर हालतमें पुनः वैसी ही स्थिति स्थापित करनेपर विचार करनेका है। स्वास्थ्य तथा सुरक्षाकी दृष्टिसे ऐसा करना आवश्यक है।
>
> इस समय कोई ऐसा इरादा नहीं कि विनियमोंको न्यायालय द्वारा दिये गये निर्णयसे पूर्वकी स्थितिसे अधिक व्यापक बनाया जाये। यदि भविष्यमें ऐसा कोई विचार किया गया तो इस मामलेमें दिलचस्पी रखनेवाले संघके सभी पक्षोंको आवेदन करनेका उचित अवसर दिया जायेगा।
>
> इन परिस्थितियोंमें प्रस्तावित भेंटकी अनुमति देनेसे कोई समुचित लाभ होता दिखाई नहीं देता।

इसका मतलब है कि तुरन्त कोई कठोर कदम न उठाये जानेके सिवा भारतीय समाजको अन्य कोई राहत नहीं मिलेगी। इसमें यह भी आश्वासन नहीं दिया गया है कि भविष्यमें इस प्रकारका कोई कदम नहीं उठाया जायेगा। इसके विपरीत भारतीय समाजको नरमीसे यह कह दिया गया है कि वह इसके पालनके लिए तैयार रहे। जैसे मैंने पहले कहा है, बुरा कानून बुरा ही है, चाहे उसे तुरन्त लागू किया जाये या उसे उससे प्रभावित होनेवाले लोगोंके सिरोंपर नंगी तलवारकी तरह लटकाये रखा जाये।

इसके भयानक परिणाम

एक पत्रलेखकने मेरे पास बंगालमें होनेवाले बाल-विवाहों तथा बलात् लागू किये गये वैधव्यपर एक लम्बा लेख भेजा है। इसमें वह कहता है:

> आप निश्चित रूपसे जानते होंगे कि हिन्दू समाजकी स्थिति अन्य प्रान्तोंमें यदि बंगालसे बुरी नहीं है, तो अच्छी भी नहीं है। विशेषकर हिन्दू समाजकी दलित जातियोंमें बाल-विवाह बहुत होते हैं तथा बाल-विधवाएँ भी बहुत हैं। बंगालमें डोम, चमार, नामशूद्र, कैवर्त आदि वर्गोंमें बाल-विवाह आम होते हैं और बाल-विधवाएँ बहुत मिलती हैं। दूसरी ओर बंगालमें हिन्दुओंमें इन्हींकी संख्या सबसे अधिक है। मैं चाहता हूँ कि मुझे समय मिले तो मैं अन्य प्रान्तोंकी स्थितिका भी अध्ययन करके इसी प्रकार आँकड़े तैयार करूँ।

लेखमें आँकड़ोंकी भरमार है। ये आँकड़े मैंने सर गंगारामकी सांख्यिकीसे लिये गये सारांशमें प्रमुख रूपसे दिये हैं।[1] यह सारांश एक पक्ष पूर्व प्रकाशित किया जा चुका है। लेखक द्वारा निकाले गये निम्नलिखित परिणाम दिलचस्प एवं शिक्षाप्रद हैं:

१. इससे हमारे उन हजारों होनहार बालकों तथा बालिकाओंकी जीवन-शक्ति धीरे-धीरे नष्ट होती जा रही है जिनपर हमारे समाजका सम्पूर्ण भविष्य निर्भर करता है।

२. इससे प्रतिवर्ष हजारों कमजोर बच्चे — लड़के-लड़कियाँ — पैदा होते हैं। ये बच्चे अपरिपक्व माता-पिताओंकी सन्तान होते हैं।

३. यह हमारे समाजमें व्याप्त भयानक बाल-मृत्युसंख्याका तथा मृत-प्रसवका एक सबल कारण है।

४. इसके फलस्वरूप समाजमें प्रतिवर्ष हजारों बालिकाएँ विधवा होती हैं। ये बाल-विधवाएँ स्वयं समाजके लिए भ्रष्टाचार तथा खतरनाक छूतकी बीमारीका साधन बनती हैं।

५. यह (१) संख्या, (२) शारीरिक बल और उत्साह तथा (३) नैतिकताकी दृष्टिसे हिन्दू समाजके क्रमिक तथा सतत ह्रासका एक प्रमुखतम कारण है।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, २६-८-१९२६

३५७. केवल आपके लिए ही क्यों?

हिसारके लाला श्यामलाल लिखते हैं:

कुछ दिन हुए मैंने 'यंग इंडिया' में आपका 'अज्ञानका जाला'[2] शीर्षक लेख पढ़ा था। इस लेखमें आपने अन्य विषयोंके साथ यह भी कहा था कि भारतकी आर्थिक मुक्तिके लिए चरखा चलाना आवश्यक है, इसलिए प्रत्येक भारतीयके लिए आवश्यक है कि वह यज्ञके रूपमें या अन्य प्रकारसे, चरखा चलाये। उसमें आपने यह भी लिखा था, 'मैं चरखेको अपने मोक्षका द्वार मानता हूँ।' किन्तु वह आध्यात्मिक मुक्तिका द्वार आपके लिए ही क्यों है? हमें इस कथनकी संसारकी दो महान सभ्यताओं अर्थात् पूर्वकी (आर्य) तथा पश्चिमकी (यूनानी) सभ्यताओंके प्रकाशमें जाँच करनी चाहिए। कबीर और नानकके सिवाय मध्ययुगीन या प्राचीन प्रत्येक ऋषिने यह कहा है कि चरखा स्त्रियोंकी

१. देखिए "थोपा हुआ वैधव्य", ५-८-१९२६।
२. देखिए खण्ड ३०, पृष्ठ ४६४-८८।

मुक्तिका द्वार है। मध्य युगके महान सन्तों, कबीर और नानकने तो और भी आगे जाकर चरखेको संसारकी महान शक्ति (विश्व-शक्ति या प्राण) का प्रतीक माना है।

उपनिषद् कहते हैं कि जब ब्रह्मने सृष्टि निर्माणकी इच्छाकी तो उसने सबसे पहले प्राण और अन्न इन दो शक्तियोंकी सृष्टि की और इन शक्तियोंके माध्यमसे क्रमशः प्राण और अन्नके रूपमें सूर्य और चन्द्रमाकी रचना की और जबतक सारे संसारकी सृष्टि नहीं हुई तबतक वह इसी प्रकार रचना करता गया। क्रमशः प्राण और अन्नके रूपमें पुरुष और स्त्रीकी रचना हुई। इस प्रकार इन दो शक्तियोंके मिलनेसे ही यह सारा संसार बना। निम्नलिखित मन्त्र होम तथा सप्तपदीसे पहले पढ़ा जाता है:

"ॐ या अकृन्तन्नचयन या अतन्वतयाश्च देवी स्तन्तू अमी तो ततन्थ।
ता स्तवा देवी रजरसे सवयववायुश्च यतीदम परीधतः स्वासः॥"

"हे वधु! देखो, मैं तुम्हारे लिए ये वस्त्र लाया हूँ। ये पवित्र वस्त्र हैं। ये मेरे देशकी देवियोंने अपने हाथसे सूत कातकर तथा उसे बुनकर तैयार किये हैं। तुम इन्हें श्रद्धापूर्वक पहनो और मेरे साथ यज्ञकी अधिकारिणी बनो। मैं प्रार्थना करता हूँ कि वे ही देवियाँ तुम्हें वस्त्र बुनकर देती रहें और तुम जीवनभर उन्हें पहनती रहो।"

इस प्रकार प्राचीन आर्योंके दर्शनके अनुसार जिसने चरखेको नहीं समझा है वह अपनेको अथवा विश्वको नहीं समझ सकता। वह ब्रह्मको भी उसी प्रकार नहीं समझ सकता जिस प्रकार व्यष्टिको समझे बिना कोई समष्टिको नहीं समझ सकता। अब हमें देखना है कि पश्चिमी (यूनानी) सभ्यता, जिसके ईसाई तथा इस्लामवाद विकसित रूप हैं, इस विषयमें क्या कहती है। प्रत्येक मनुष्य इन पंक्तियोंको जानता है: "जब आदम जमीन खोदता था तथा हव्वा कातती थी तब यहाँ कुलीन कौन था?" इसके अनुसार पतिका कर्त्तव्य हल चलाना और पत्नीका कातना और बुनना था।

जिस प्रकार संस्कृतमें शिवकी पत्नी 'उमा' का अर्थ, बुननेवाली है; उसी प्रकार अंग्रेजीका पत्नीका समानार्थक शब्द 'वाइफ' शब्द 'वीव' (बुनना) धातुसे निकला है। इस प्रकार पाश्चात्य दर्शन भी हमें आर्य दर्शनके समान उसी विचारकी ओर ले जाता प्रतीत होता है। अब राष्ट्रीयता दो शक्तियों, अर्थात् राजनीति और धर्मके समन्वयका परिणाम है। एकके बिना दूसरीका कोई अर्थ नहीं। जहाँ राजनीति बाह्य समानताकी भावनाकी प्रतिष्ठा है वहाँ धर्म आन्तरिक एकताकी भावनाका साक्षात्कार है। राजनीतिकी शाखाके रूपमें आर्थिक मुक्ति तबतक कोई भी हित साधन नहीं कर सकती जबतक उसमें धर्मकी दूसरी शक्ति नहीं मिल जाती।

मैं चाहता हूँ कि मैं भी इस पत्रके लेखकके समान चरखेको सभीकी मुक्तिका द्वार कह सकता। लेकिन उसे मेरी मर्यादाओंको समझना होगा। मुझे तो श्रद्धालु और अश्रद्धालु दोनोके ही लिए लिखना पड़ता है। मुझे डर है कि लाला श्यामलाल द्वारा दिये गये प्रमाण तथा तर्क, अश्रद्धालुको नही जँचेंगे। वह कहेगा और अपने दृष्टिकोणसे सही कहेगा कि चरखेके धार्मिक मूल्यका अनुमोदन करनेवाले प्रमाण एक जर्जरित सभ्यतासे लिये गये हैं। वह कहेगा कि यदि कोई ऋषि आज 'वेद' लिखे तो वह अपने आध्यात्मिक उदाहरण भापसे चलनेवाले इंजिन या इससे भी बढ़कर बिजलीकी मोटर, बेतारके तार तथा इसी प्रकारके अन्य स्रोतोंसे लेगा और भविष्यका ऋषि तो बेतारके तार तथा वायुयानोंकी भी बात नहीं सोचेगा। उसकी आध्यात्मिक शब्दावली उन छायापुरुषों और मनस्-तरगोंका प्रतीक बनेगी जो कदाचित् क्षणके सहस्रांशको व्यक्त करनेवाले नवनिर्मित शब्दोंसे व्यक्त कालके भी अंशकालमें शून्याकाशके इस छोरसे उस छोरतक आने-जानेका भाव व्यक्त कर देगी। चरखेका आध्यात्मिक मूल्य उन्हींको आकर्षित कर सकता है जो मेरी तरह यह विश्वास करते है कि वह सभ्यता, जो मानवके मार्गमें प्रकृति द्वारा लगाये गये नियम व्यवधानोंको तोड़कर बेतहाशा लगाई जानेवाली दौड़से व्यक्त होती है, समाप्त हो रही है, वैसे ही जैसे सम्भवतः इससे भी अधिक शक्तिशाली अन्य सभ्यताएँ, जो सुख-सुविधाकी खोजमें किये गये अनेक भौतिक प्रयत्नोंपर आधारित थीं, नष्ट हो गईं। यदि लाला श्यामलाल चरखेका आध्यात्मिक सन्देश गाँवोंतक पहुँचायेंगे तो उन्हें इसके लिए मेरे वचनोंको प्रमाण बनाना आवश्यक नहीं होगा क्योंकि मैंने अपने प्रमाण गाँवोंसे ही लिये हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २६-८-१९२६

३५८. पत्र : अली हसनको

आश्रम
साबरमती
२६ अगस्त, १९२६

प्यारे दोस्त,

आपका खत मिला। मैं आपको और आपकी मेजबानीको बिलकुल नही भूला हूँ। लेकिन मानना पड़ेगा कि आपका ऐलान तो मुझे जरा भी पसन्द नही आया। आपकी अपीलकी रीढ़ साम्प्रदायिकता ही है। आप अपने हिन्दू मतदाताओंसे सिर्फ इस बिनापर मत पानेकी आशा करते हैं कि आप मुसलमान है, इस बिनापर नही कि आप ज्यादा काबिल हैं और आपमें कई दूसरी खूबियाँ है। मुझे तो लगता है कि आपका यह राग बेसुरा है। अगर आप मानते हैं कि आपमें ज्यादा खूबियाँ है, तो चाहिए था कि आप उन्हे सामने रखते और साथमे यह उम्मीद जाहिर करते कि

हिन्दू मतदाता आपके मुसलमान होनेको आपकी नाकाबलियत न समझेंगे। अगर आप ऐसा करते तो मेरे खयालसे आपके ऐलानपर किसीको कोई एतराज न होता। लेकिन मौजूदा शक्लमें मुझे उसके खिलाफ राय देनी ही पड़ेगी। लेकिन मैं तो पक्का असहयोगी हूँ, इसलिए अगर आपका ऐलान बिलकुल नाकाबिल एतराज ही होता तो भी मैं उसकी ताईदमें आपको छपानेके लिए किसी भी सूरतमें कुछ भी लिखकर न देता।

दिलसे आपका,

श्री अली हसन, बैरिस्टर
बैंक रोड
पटना

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११०८३) की माइक्रोफिल्मसे।

३५९. पत्र: आर० ए० ऐडम्सको

आश्रम
साबरमती
२६ अगस्त, १९२६

प्रिय मित्र,

मुझे आपका पत्र पिछले सप्ताह यथासमय मिल गया था। लेकिन मैंने यह सोचकर उसका उत्तर अबतक नहीं दिया कि 'बाइबिल'की प्रतियोंका[1] पार्सल मिल जायेगा, तभी आपको इसकी पहुँच दे दूंगा। पार्सल अभीतक नहीं मिला है। अतः विद्यार्थियोंको शायद अगले शनिवारको भी अपनी-अपनी 'बाइबिल'के बिना ही काम चलाना पड़ेगा। मुझे अब पता चला है कि आपने वह पार्सल मालगाड़ीसे भेजा है और मालमें पार्सल आनेमें काफी समय, कभी-कभी पूरा महीनातक, लग जाता है। पार्सल मिल जानेपर मैं ७ अतिरिक्त प्रतियोंका खयाल रखूँगा।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०९८७) की माइक्रोफिल्मसे।

१. देखिए "पत्र: आर० ए० ऐडम्सको", १८-८-१९२६।

३६०. पत्र : तुलसी मेहरको

आश्रम
साबरमती
शुक्रवार, श्रावण कृष्ण ४, [२७ अगस्त, १९२६]

भाई तुलसी महेर,

तुम्हारा पत्र मिलनेसे आनंद होता है। बहुत अच्छा काम कर रहे हो। जो कपड़े वहा बुने जाते हैं उसका थोड़ा सा नमूना काटकर भेज देना। वहां चरखाकी किमत क्या लगती है? लकड़ी कहांसे आती है? चाक वहीं बनती है क्या? बनती है सो क्या दाम लगता है? चरखे कितने चलते हैं? कताईका दाम क्या दिया जाता है? सूतका आक कितना रहता है? सूतकी मजबूतीकी परीक्षा करनेका रिवाज अगर नही रखा है तो रखना।

बापूके आशीर्वाद

मूल पत्र (जी० एन० ६५२६) की फोटो-नकलसे।

३६१. पत्र : मरीचिको

आश्रम
साबरमती
शुक्रवार, श्रावण वदी ४, २७ अगस्त, १९२६

भाईश्री ५ मरीचि,

आपका पत्र मिला। आश्रममे अपने रहनेसे आपको भले ही सन्तोष हुआ हो, लेकिन मुझे नही हुआ। कोई भी मेहमान आये और आकर बीमार पड़ जाये, यह बात मेरे लिए असह्य है। मुझे जल्दी मालूम हो जाता तो मैं अपने मनको तसल्ली देने लायक कोशिश जरूर करता। मेरी मान्यता है कि हममें भिन्न-भिन्न प्रकारके जलवायुमें रहनेकी शक्ति होनी चाहिए। आपमें यह शक्ति है ऐसा मैं समझता था। लेकिन अब तो जब आप यहाँ दोबारा आकर रहेंगे, इसकी परीक्षा तभी होगी।

चरखेके बारेमें आप जो लिखते हैं वह ठीक ही है। यह कैसे अस्तित्वमें आया इसकी जाँच सूक्ष्मतासे की जानी चाहिए।

श्री मरीचि
श्रीयुत एच० पी० मॉरिस
६१, कावसजी पटेल मार्ग
फोर्ट, बम्बई

गुजराती प्रति (एस० एन० १२२६०) की माइक्रोफिल्मसे।

३६२. पत्र : नानाभाई भट्टको

आश्रम
शुक्रवार, श्रावण वदी ४, २७ अगस्त, १९२६

भाईश्री ५ नानाभाई,

मैंने पाठ्यपुस्तकें पढ़ ली हैं। मैंने 'मधपूडो'[1] को पर्याप्त सावधानीसे पढ़ा है, मैं ऐसा कह सकता हूँ। मैंने तो यह आशा की थी कि मैं उसमें बिलकुल आत्मविभोर हो जाऊँगा; लेकिन ऐसा नहीं हो सका और मुझे लगा कि मुझे उसकी आलोचना करनी ही चाहिए। अलीपर लिखा गया पाठ पढ़कर तो मैं चौंक ही उठा। मुझे लगा कि वह बहुत अलंकारपूर्ण भाषामें लिखा गया है; फिर भी जैसा वह है वैसा मुसलमानोंको पसन्द नहीं आ सकता। मुझे लगता है कि बहुतसे पाठ फिरसे लिखे जाने चाहिए और उनपर फिरसे विचार किया जाना चाहिए। आप चाहेंगे तो मिलने-पर इस विषयपर और बातचीत होगी। हो सकता है कि मेरी राय गलत हो। सम्भव है कि किसी दृष्टिकोणसे यही पुस्तक मनोरंजक लगे। जिन उपनिषदोंको पढ़ते हुए मुझे पहले नींद आती थी, आज उन्हींको मैं रसपूर्वक पढ़ पाता हूँ। मुख्य लेखक सभी अनुभवी हैं; फिर भी मुझे पाठोंका पसन्द न आना साल रहा है। फिर भी मुझे जैसा लगता है, मैं तो वैसा ही कह सकता हूँ न?

बापू

गुजराती पत्र (एस० एन० १९९४५) की माइक्रोफिल्म तथा एस० एन० १२२६१ से।

३६३. पत्र : जी० सीताराम शास्त्रीको

आश्रम
साबरमती
२८ अगस्त, १९२६

प्रिय महोदय,

आपका विस्तृत पत्र मिला। पढ़कर दुःख हुआ। यदि कार्यकर्त्ता आपकी बात नहीं सुनते (जैसा आपके पत्रसे स्पष्ट मालूम होता है,) तो फिर खादी अभिकरणको चालू रखनेमें क्या लाभ है? तथ्योंकी ओरसे आँख मूँद लेनेसे क्या फायदा? और यदि कार्यकर्त्ता आपकी या देशभक्त वेंकटप्पैयाकी बात नहीं सुनना चाहते तो क्या इससे यह नतीजा नहीं निकलता कि वे किसीकी भी बातपर कान नहीं देंगे? मुझे तो

१. साबरमती आश्रमकी राष्ट्रीय शालाकी हस्तलिखित पत्रिका।

लगता है कि ऐसी परिस्थितियोमे अभिकरणको बन्द कर देना ही अच्छा रहेगा। लेकिन इसका मतलब यह नही कि आन्ध्रदेशका साराका सारा संगठित खादी कार्य बन्द कर दिया जाये। हाँ, इसका मतलब यह जरूर है कि यथार्थ परिस्थिति स्वीकार कर ली जाये और उसका सामना किया जाये। यदि थोड़ेसे भी कार्यकर्त्ता ऐसे हो जो आपपर पूरी श्रद्धा रखते हो, तो उन्हे इकट्ठा कर ले और उनकी सहायतासे खादीके कामको आगे बढ़ाये। स्वतन्त्र सस्थाएँ तो फिर भी रहेगी ही। वे अपनी मर्जीके मुताबिक काम करे। इस प्रकार वास्तविकताको मानकर और अपनी मर्यादा-ओको ध्यानमे रखकर चलनेसे हम किसी दिन कार्यकर्त्ताओको अपने पक्षमें ला सकेगे और अपना काम यथोचित फैला सकेगे।

यह मेरी निजी राय है। मैंने यह राय परिषद्से पूछे बिना दी है। अखिल भारतीय चरखा सघके जरिए कोई भी कदम उठानेसे पहले मैं यह जान लेना चाहता हूँ कि इस सम्बन्धमें आपके अपने विचार क्या हैं।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत जी० सीताराम शास्त्री
अखिल भारतीय चरखा संघ
(आन्ध्र शाखा)
गुण्टूर

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११२३२) की माइक्रोफिल्मसे।

३६४. पत्र : अवधनन्दनको

आश्रम
साबरमती
२८ अगस्त, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मेरा तो खयाल है कि हिन्दी प्रचार कार्यके बारेमें आपका विचार कुछ ज्यादा ही निराशावादी है। जो लोग वास्तविक शिक्षण कार्यमे लगे हैं उन्हें पूरी तरह यह विश्वास रखकर अपने कर्त्तव्यका पालन करते रहना चाहिए कि सच्चे हृदयसे और त्याग-भावसे पूरा किया गया कर्त्तव्य यथासमय यथेष्ट फलदायी होता ही है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ११२९७) की माइक्रोफिल्मसे।

३६५. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

आश्रम
साबरमती
२९ अगस्त, १९२६

प्रिय सतीश बाबू,

मैंने आपके पास पहले जिस तरहका एक पत्र भेजा था, मेरे पास उसी तरहका एक पत्र और आया है।

श्री भरुचाने मुझे आपके बारेमें सब-कुछ बता दिया है। वे चाहते थे कि मैं आपको कुछ रुपये भेज दूँ। मैं भेजना तो बहुत चाहता हूँ; लेकिन मुमकिन नहीं।

श्री बिड़लाने कहा है कि वे इस संस्थाको सिर्फ एक वर्षके लिए बिना ब्याज और बिना जमानत ७०,००० रुपयेका कर्ज देनेके लिए तैयार हैं। लेकिन मुझे लगता है कि हमें इस कर्जका कोई फायदा तबतक न उठाना चाहिए जबतक संस्थाके कोषमें कुछ अपनी राशि या कमसे-कम उतनी ही राशि संचित न हो। कल परिषद्की बैठकमें इस विषयपर विचार किया गया था। मेरे इस विचारसे अन्य लोग भी सहमत थे। क्या इस बारेमें आपको कोई राय देनी है?

आशा है कि आप और हेमप्रभादेवी, दोनों ही बिलकुल स्वस्थ होंगे।

आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११२३४) की माइक्रोफिल्मसे।

३६६. पत्र : रेहाना तैयबजीको

आश्रम
साबरमती
२९ अगस्त, १९२६

प्रिय रेहाना,

तुम्हारा खत और पोस्टकार्ड दोनों मिल गये हैं। दोनों कल ही मिले। पोस्टकार्ड तुमने अहमदाबादके पतेपर भेजा था, इसलिए अहमदाबादसे होता हुआ वह यहाँ एक दिन बाद पहुँचा। और खतका यह हुआ कि लिफाफेका पता उर्दू में होनेकी वजहसे कोई उसे समझ नहीं पाया, इसलिए वह कुछ दिनतक दफ्तरके नोटिस बोर्ड पर लगा रहा। मेरा नाम तुमने अंग्रेजीमें लिखा था, पर उसके नीचे उर्दूमें लिखावट थी। इससे डाक लेनेवाले कार्यकर्त्ताने समझा कि उर्दूमें आश्रमके किसी और आदमीका नाम लिखा हुआ है। काफी पूछताछ करनेपर ही पता चला कि खत बाहर नोटिस

बोर्डपर लगा हुआ है। जाहिर है, हमें इससे यही सबक सीखना चाहिए कि हममें से हरएकको देवनागरी और फारसी दोनो ही लिपिया जाननी चाहिए। तबतक ऐसी गलतियाँ और इस तरहकी देरकी गुंजाइश बनी ही रहेगी।

मैं अब सर हेनरी लॉरेंसको सीधे लिखूँगा और अपेक्षित जानकारी उनको भेज दूंगा।[1]

चीनके रेशमके सिलसिलेमें चलनेवाली बहसको तुम सबके फिरसे आश्रममें आने तक मुल्तवी कर देना पड़ेगा। तुम्हे मालूम होना चाहिए कि तुम जिन दिनो यहाँ थी, मैं तुम्हारे भजन जी भरकर नही सुन पाया। इसलिए तुमको यदि और किसी कामसे नही तो मुझे भजन सुनाने तो आना ही पड़ेगा। तुमको ज्यादा अच्छी और चंगी बनना चाहिए। मीराबाईने तुम्हारे साथ उसकी पूरी बातचीतके बारेमें बतलाया है। तुम यहाँ जितनी बार चाहो आओ और जबतक जी चाहे रहो। तुम इसे अपना घर मानो और तुम्हें जिस भी चीजकी जरूरत पड़ेगी, उसे मुहैया करनेकी पूरी कोशिश की जायेगी।

हृदयसे तुम्हारा,
बापू

कुमारी रेहाना तैयबजी
कैम्प बड़ौदा

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ९६०१) की फोटो-नकलसे।

३६७. पत्र : शंभुशंकरको

आश्रम
सोमवार, ३० अगस्त, १९२६

भाई शंभुशंकर,

तुम्हारा पत्र मिला,

खुराकमें थोड़ी सब्जी जरूर होनी चाहिए। यह सब्जियाँ तुम अपने बगीचेमें ही उगा सकते हो। अचार बिलकुल जरूरी नही, हां, गर्मीके दिनोतक सब्जीको टिकानेके लिए उसका उपयोग हो सकता है। अचारको हानिकर होनेसे बचानेके लिए उसमे राई, मिर्च और तेल नही डाले जाने चाहिए। अचार सिरकेमें डालकर भी टिका रखा जा सकता है।

मैंने पुस्तकमें[2] जो विचार व्यक्त किये थे वे अभीतक जैसेके तैसे हैं। परन्तु यहाँ दूधकी जगह ले सकनेवाली कोई चीज सुलभ नही है। इसलिए उसे रखना पड़ा

१. देखिए "पत्र: रेहाना तैयबजीको", २१-८-१९२६।

२. सम्भवतः **आरोग्य विषे सामान्य ज्ञान** नामक गुजराती पुस्तक।

है। मैंने यह भी देखा है कि यहाँ मिलनेवाले तेल कमजोर हाजमेवाले लोगोंको अनुकूल नहीं पड़ते; इसलिए उनका इस्तेमाल न करनेके लिए कहता हूँ। नमक हमेशा लेना जरूरी नहीं है। ब्रह्मचर्यका पालन करनेकी दृष्टिसे तो उसका त्याग ही ठीक है। दवाके रूपमें उसका बहुत उपयोग है। उपवास करते समय मैं हमेशा पानीके साथ नमक लेता हूँ।

दूधकी जगह मीठे दहीकी छाछ लेना उतना ही अच्छा रहेगा। छाछमें से सारा मक्खन निकाल लेनेमें भी कोई हानि नहीं है, सब प्रकारसे लाभ ही है।

खूराककी मात्रा स्वतन्त्र रूपसे निश्चित नहीं की जा सकती। प्रत्येक व्यक्तिको अपने अनुभवके अनुसार उसका निर्णय करना चाहिए। गेहूँ, दूध, एक सब्जी और नींबू, इनके अलावा किसी दूसरी चीजकी जरूरत नहीं है। गेहूँ और दूधमें जो मिठास रहती है उतनी ही काफी है।

इसमें तुम्हारे सभी प्रश्नोंके उत्तर आ जाते हैं। जबतक तुममें पूरी ताकत नहीं आ जाती या टट्टी ठीकसे नहीं होती तबतक सिर्फ दूध और मुनक्के या छाछ और मुनक्के ही लो। उपवास छोड़नेपर टट्टीके लिए एनिमा लेना जरूरी है। दो-तीन दिन तक शौच अपने-आप न हो तो थोड़ा एरंडीका तेल पी लेना।

बापूके आशीर्वाद

खादी कार्यालय
गारियाधार
काठियावाड़

गुजराती पत्र (एस० एन० १९९४६) की माइक्रोफिलमसे।

३६८. पत्र : सुरेशचन्द्र बनर्जीको

आश्रम
साबरमती
१ सितम्बर, १९२६

प्रिय सुरेश बाबू,

आपका पत्र[1] मिला। श्री बिड़लाने अब अपना विचार बदल दिया है। उन्होंने मुझे इस आशयका पत्र लिखा है कि वे एक सालके लिए बिना सूद रुपया उधार देने को तैयार तो हैं परन्तु शर्त यह होगी कि आपका संघ ठीक तिथिको रुपया

१. गांधीजीने २१ अगस्त, १९२६ को जो पत्र बनर्जीको लिखा था उसके उत्तरमें २८ अगस्तको बनर्जीने गांधीजीके पत्रकी प्राप्ति-सूचना देते हुए लिखा था कि वे कलकत्तामें बिड़लासे नहीं मिल पाये थे। परन्तु आशा है कि बिड़ला कर्ज दे देंगे और ब्याज नहीं लेंगे। यदि यह सम्भव न हो सका तो माल कोमिल्ला यूनियन बैंकके पास गिरवी रख कर रुपया उधार लेना होगा (एस० एन० ११२३३)।

लौटा देनेका पक्का वादा करे। इस कारण मैं उलझनमें पड़ गया हूँ, क्योंकि इसका अर्थ यह होता है कि संघ द्वारा ऐसी जमानतोंकी व्यवस्था की जानी चाहिए जो जरूरत पड़नेपर वसूल की जा सके और साथ ही जो पर्याप्त भी हों। इसलिए मेरा विचार तो यह हो रहा है कि श्री बिड़लाने जो मंजूरी शर्तके साथ दी है उसका लाभ न उठाया जाये। यदि सालके अन्तमें कर्ज चुकानेके लिए बैंकसे ही रुपया लेना पड़े, तो क्या एक वर्षकी अवधिके लिए जमानतदार ढूँढ़ते फिरना जबकि वही काम सालके अन्तमें भी करना पड़ेगा — ठीक होगा? आखिर एक सालमें आप केवल १,८०० रुपयोंकी ही बचत कर पायेंगे। इसलिए मेरी सलाह यही है कि इस कर्जके लिए चिन्ता न की जाये और आप बैंकसे रुपया लेनेके सम्बन्धमें जो ठीक समझें, करें। परन्तु यदि आप श्री बिड़लाके रुपयोंका ही उपयोग करनेका आग्रह करें, तो कृपया मुझे सूचित कीजिए कि किन-किन लोगोंकी जमानत होगी और उन जमानतदारोंकी हैसियत क्या है?

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एम० एन० ११२३५) की माइक्रोफिल्मसे।

३६९. पत्र : एस० ई० स्टोक्सको

आश्रम
साबरमती
१ सितम्बर, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। कुमारी हॉसडिंगको अपने यहाँ रखनेमें आपकी दिक्कत मैं ठीक-ठीक समझता हूँ। अब वह मसूरी चली गई हैं और वहाँ देवदासके साथ कुछ दिन रहेंगी।

निस्सन्देह आपके साथ रहनेकी मेरी उत्कट इच्छा है, फिर वह कुछ दिनोंके लिए ही क्यों न हो। वह अवसर कब आयेगा सो मैं नहीं जानता। पहाड़ी लोगोंके बीच आप जो प्रयोग कर रहे हैं, उसे मैं बड़ी दिलचस्पीके साथ देख रहा हूँ

आप सबको प्यार।

हृदयसे आपका,

श्री एस० ई० स्टोक्स
कोटगढ़
शिमला हिल्स

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९६७९) की फोटो-नकलसे।

३७०. पत्र: बी० एस० टी० स्वामीको

आश्रम
साबरमती
१ सितम्बर, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। पवित्र और सरल जीवन बितानेके लिए साबरमती आना आवश्यक तो नहीं है। यह तो प्रत्येक व्यक्ति अपने घरपर भी कर सकता है। इस तरह, आप विवाहसे इनकार कर सकते हैं, और चाहें तो सादे भोजनके अतिरिक्त कुछ न लेना तय कर सकते हैं। आप जल्दी सोने और जल्दी उठनेकी आदत डाल सकते हैं और ईश्वरके स्मरणसे अपने दिनका कामकाज शुरू कर सकते हैं। आप अस्पृश्यों-के साथ अपने घरके लोगों-जैसा व्यवहार कर ही रहे हैं। आप वहाँ उस हिन्दी कक्षामें शामिल हो जायें जो हिन्दी प्रचार कार्यालय, ट्रिप्लिकेन द्वारा संचालित है। निस्सन्देह आप चरखा चलाना भी सीख लें और खद्दर पहना करें। मन, कर्म और वचनमें सत्य और औदार्यका अभ्यास करनेके लिए कोई बड़े प्रयासकी आवश्यकता नहीं पड़ती।

हृदयसे आपका,

बी० एस० टी० स्वामी
३/७, कार स्ट्रीट
ट्रिप्लिकेन
मद्रास

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९६८०) की माइक्रोफिल्मसे।

३७१. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

१ सितम्बर, १९२६

भाईश्री घनश्यामदासजी,

आपका पत्र मीला है। आपके मंत्रीका उत्तर भी मैंने पढ़ लीया है। आपको अब कुछ ज्यादे करनेका नही रहेता है। आपका स्वास्थ्य अच्छा हुआ है क्या? जमनालालजी आजकल यही हैं।

आपका,
मोहनदास

श्री घनश्यामदासजी बीरला,
पीलानी रजपुताना

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ६१३४) की नकलसे।
सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला

३७२. तार : हरिहर शर्मा[1]

[१ सितम्बर, १९२६ या उसके पश्चात्]

सम्मेलन होने जा रहा है। मंगलवारके आसपास यहाँ पहुँच जाओ। अवकाश तो है?

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११२९८) की माइक्रोफिलमसे।

३७३. टिप्पणियाँ

एक महान् उद्योगपति

श्री रतन टाटाकी मृत्युसे हमारे बीचका एक महान् उद्योगपति उठ गया है। जमशेदपुर एक जबर्दस्त भारतीय व्यापारी पेढ़ीका जबर्दस्त औद्योगिक प्रतिष्ठान है। रतन टाटा महान् टाटा परिवारके एक प्रसिद्ध सदस्य थे। जब उन्होंने अपने कर्मचारियोंके साथ नाइत्तिफाकी होनेके कारण मुझे आमन्त्रित किया था तब मुझे उनके निकट सम्पर्कमें आनेका गौरव मिला था। यह देखकर मुझे सुखद आश्चर्य हुआ कि उन्हें अपने कर्मचारियोंके प्रति पूर्ण सहानुभूति है और वे उनकी उस प्रत्येक माँगको, जो

१. यह १ सितम्बरके इस तारके उत्तरमें भेजा गया था। "मंगलवारके आसपास पहुँच रहा हूँ। आप अपनी सुविधा तार द्वारा हरिहर शर्माको सूचित करें।"

न्यायसंगत हो और उनकी ओरसे सामने रखी जा सके, स्वीकार करनेके लिए तैयार हैं। मेरे मनपर उनकी यह छाप पड़ी कि वे एक न्यायप्रिय और उदार मालिक हैं। मेरे खयालसे उद्योगके प्रति उनके आकर्षणका कारण इस प्रसिद्ध परिवारको अधिकसे-अधिक धन उपलब्ध करनेके लिए ही नहीं था। वह एक स्वतन्त्र आकर्षण था। मैं स्वर्गीय रतन टाटाके परिवारके सदस्योंसे संवेदना व्यक्त करता हूँ।

मजबूरी क्यों?

एक पत्रप्रेषक अपने सूतकी कमजोरीको वाजिब ठहराते हुए लिखते है, "हमको वाजारसे अच्छी रुईके भावमे मजबूरन रद्दी रुई खरीदनी पड़ती है।" इसमें मजबूरीकी कौन-सी वात है? यदि किसी जगह अच्छी कपास नही मिल सकती, तो वह जहाँसे मिले वहाँसे मँगवा ली जानी चाहिए। वंगाल, बिहार और उड़ीसाके लोग वर्धासे अच्छी रुई मँगवाते हैं। मैंचेस्टर हिन्दुस्तान, यूगांडा, मिस्र और अमेरिकासे मँगवाता है। फिर पत्रलेखक महाशय अपने निकटवर्ती जिले या सूबेसे क्यों नही मँगा सकते? अ० भा० च० संघके सदस्योके खराव सूत कातनेका कोई कारण नही है। अंग्रेजीमे एक कहावत है कि "जो काम करने लायक है, वह अच्छी तरह किया जाना चाहिये।" केवल चरखा चलानेमे ही खादीके प्रति प्रेमकी इतिश्री नहीं हो जाती; कातना तो कलाका पूर्ण ज्ञान प्राप्त करनेके मार्गमे अथवा उसके अर्थशास्त्रमें पहला कदम है।

कुली-भरतीकी बुराई

सिरसी (कनारा)से एक भाई लिखते हैः

> असमके चायके वगीचोंके मालिकोंका एक दलाल वहाँकी चायकी खेतीके लिए कुली भरती करनेका एक केन्द्र खोलना चाहता है। वह मुसलमान कुली भरती करना नहीं चाहता, क्योंकि वे आज्ञाकारी नहीं होते। वह हिन्दुओंको ही भरती करना चाहता है, क्योंकि वे दब्बू होते हैं। वह एक कुलीकी भरती-पर पन्द्रह रुपया देता है। क्या यह बुराई रोकी नहीं जा सकती? इस वारेमें कई गलत वातें कही जा रही हैं।

यह वेशक एक वड़ी बुरी वात है। असम कोई निर्जन स्थान नही है। अगर ठेठ कनारासे सुदूर असममें मजदूर ले जाने पड़ें तो जरूर उस काममें कोई खराबी है। कनाराके सीधे-सादे ग्रामीणोंको असमके चायके वगीचोंकी स्थिति मालूम होनी असम्भव है। दलालके वीचमें पड़ते ही कामके करारकी स्वतन्त्रता समाप्त हो जाती है, क्योकि उसका काम तो येनकेन प्रकारेण मजदूर जुटाना होता है। यों तो सभी कनारा-निवासी असममें जा सकते हैं; वशर्ते कि उनकी जानेकी इच्छा हो और उनके जानेसे अस-मियोंका काम न छिने। परन्तु यदि पत्रलेखक द्वारा वर्णित तथ्य सही हैं तो प्रस्तुत मामलेमें कनारा निवासियोंकी इच्छाका कोई प्रश्न नहीं हो सकता। और जो भी बाहरी आदमी असम जायेगा वह वहाँ असमवासियोंका काम ही छीनेगा। असममें चायकी खेती करनी ही है तो वह जवतक असममें गरीब लोग बेकार हैं तबतक वहींके मजदूरों द्वारा की जानी चाहिए।

पत्रलेखक भरतीकी बुराईसे बचनेके उपाय पूछते हैं। सबसे कारगर उपाय लोक-मत है। पत्रलेखकको काफी कार्यकर्त्ता इकट्ठे करने चाहिए। उनका यह काम हो कि अवकाशके समयमें आसपासके गावोंमें जाये और देहातियोंको चेताएँ कि वे अपने लिये बिछाये गये जालमें न फँसें। इन कार्यकर्त्ताओंमें से किसी एकको या तो खुद जाकर या इस विषयपर प्रकाशित हुए साहित्यसे असमके मजदूरोंकी हालातका अध्ययन करनेकी कोशिश करनी चाहिए।

हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य संघ

हाल ही में बेगम मुहम्मद जहीनुद्दीन मक्काईने, बंगलोरकी नारी शारदा समितिमें एक भाषण दिया था। एक भाईने उनके दिलचस्प भाषणकी एक प्रति मेरे पास भेजनेकी कृपा की है। मैं उसका कुछ अंश नीचे देता हूँ:[1]

ये भावनाएँ सराहनीय हैं, परन्तु इन महिलाके बताये हुए संघके बनाने लायक वातावरण तो आज दिखाई नहीं देता।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २-९-१९२६

३७४. राष्ट्रीय शालाएँ

शोलापुरके एक सज्जन लिखते हैं कि मैंने गत ८ अगस्तको 'नवजीवन' में राष्ट्रीय शालाओंके बारेमें जो लेख[2] लिखा था उसका समाचारपत्रोंमें अनुवाद प्रकाशित हुआ है। अनुवादमें कहा गया है कि मैं ऐसी एक भी राष्ट्रीय शालाके बारेमें नहीं जानता जो बेलगांव कांग्रेसमें[3] राष्ट्रीय शिक्षण संस्थाओंसे सम्बन्धित परिभाषाके साथ मेल खाती हो। यह भी कहा गया है कि अनुवाद खरी राष्ट्रीय शालाओंको भी हानि पहुँचा सकता है, इसलिए उसका खण्डन किया जाना चाहिए। मैंने अनुवाद नहीं देखा है। किन्तु यह तो मैं जानता ही हूँ कि मैंने ऐसी कोई राय नहीं दी जैसी अनुवादसे परिलक्षित होती है। बल्कि इसके विपरीत मैं ऐसी कुछ राष्ट्रीय शालाओंको जरूर जानता हूँ जो उस परिभाषाके मुताबिक चलाई जा रही हैं।

पत्र-लेखकने जिस लेखका हवाला दिया है मैं यहाँ उसके सम्बन्धित अनुच्छेदका अनुवाद दे रहा हूँ:

१. यह उद्धरण यहाँ नहीं दिया जा रहा है। इसके अनुसार वक्ताने कहा था कि हिन्दू-मुस्लिम ऐक्यके लिए काम करना पुनीततम समाज सेवा है। हिन्दुओं और मुसलमानोंका ईश्वर एक है। हिन्दुओं और मुसलमानोंका आपसमें लड़ना पागलपन नहीं तो मूर्खता अवश्य है। उन्होंने अन्तमें एक हिन्दू-मुस्लिम एकता संघ बनानेका अनुरोध किया जिसके सदस्योंका काम साम्प्रदायिक दंगोंके समय दोनों जातियोंके लोगोंकी रक्षा करना हो।

२. देखिए "राष्ट्रीय शालाएँ", ८-८-१९२६।

३. देखिए खण्ड २५।

> इसलिए जहाँ-कहीं भी अभिभावकों अथवा शिक्षकोंका विरोध हो वहाँ राष्ट्रीयशाला बन्द ही कर देनी चाहिए। जहाँ अभिभावकोंमें राष्ट्रीय भावना हो और वे अपनी इस भावनाका प्रमाण उचित रूपमे राष्ट्रीय शालाओंके संचालनके लिए चन्दा देकर सिद्ध करते हो और जहाँ शिक्षक-वर्ग राष्ट्रीय भावनासे ओतप्रोत होकर जी-तोड़ प्रयत्न करता हो, वहाँ मैं समझ सकता हूँ कि विद्यार्थियोंके शिथिल होनेसे भी कोई बड़ा नुकसान नहीं हो सकता। ऐसी अवस्थामें हम शाला चलाते रह सकते हैं और आशा कर सकते हैं कि हम किसी-न-किसी दिन विद्यार्थियोंपर ठीक असर डाल सकेंगे। किन्तु यह लेख लिखते हुए मेरी नजरमे ऐसा एक भी स्कूल नही है।

मेरी समझमें अन्तिम वाक्य स्पष्ट है और अर्थ-भ्रमकी कोई गुंजाइश नही छोड़ता। "ऐसा एक भी स्कूल नही है" से अभिप्राय ऐसी ही शालाओंसे है जिनमे अभिभावक और शिक्षक श्रद्धालु और विद्यार्थी अश्रद्धालु हों। इस क्षण भी मुझे ऐसी किसी शालाका स्मरण नहीं आता। किन्तु यदि ऐसी कोई राष्ट्रीय शाला हो जहाँ शिक्षकोंके प्रयत्न और अभिभावकोंके धन देनेके रूपमे सहमतिके बावजूद विद्यार्थीगण आदर्शोका पालन नहीं करते तो उक्त अनुच्छेदके अनुसार मैं फिर भी यही सलाह दूंगा कि वह शाला बन्द न की जाये बल्कि चालू रखी जाये और विद्यार्थियोंको सुधारनेका प्रयत्न किया जाये। मैंने इसी विचारको उक्त लेखके अन्तिम दो अनुच्छेदोमें भी स्पष्ट किया है। यहाँ उनका अनुवाद देना अप्रासंगिक न होगा:

> मेरा अनुभव तो यही है कि जहाँ राष्ट्रीय तत्त्वका अभाव देखनेमें आता है, वहाँ दोप शिक्षकोंका ही होता है। ऊपर जो उदाहरण दिया गया है वह एक ऐसे स्कूलका है जहाँ शिक्षक उत्साही हैं, विद्यार्थी उदासीन हैं और अभिभावक विरोधमे हैं। जहाँ अभिभावक बच्चोंके हाथ-कताई और बुनाई सीखने तथा खादी पहननेके विरोधमे हों और अछूत बालकोंके प्रवेशपर अपने बच्चोंको उठा लेनेकी धमकी देते हों वहाँ तो मुझे जनताके समय और शिक्षकोंके स्वाभिमानकी हानिके सिवाय और कुछ नहीं दिखाई देता। यदि हम अभिभावकोंके विरोधके बावजूद राष्ट्रीय शालाएँ चलाते रहे तो हम भी उसी प्रकारके अपराधके भागी होंगे जिस प्रकारके अपराधका आरोप ईसाई पादरियोंपर किया जाता है। हमे इस बातका कोई अधिकार नही है कि हम अभिभावकोंके विरोधके बावजूद उनके बच्चोंको अपने मनकी शिक्षा दें और परिवारोंमें कलह करायें। जो विद्यार्थी सोलह वर्षकी आयुसे अधिकके हो गये हैं, जो अपना भला-बुरा समझते हैं और जो कष्ट सहनेकी क्षमता रखते है, उनको किसीके द्वारा रक्षण देनेका प्रश्न नहीं उठता। वे स्वावलम्बी हो गये हैं। ऐसे विद्यार्थियोंके लिए जहाँ आवश्यक हो वहाँ निस्सन्देह राष्ट्रीय शाला खोली और चलाई जा सकती है। किन्तु सारे भारतवर्षमे ऐसे विद्यार्थी हैं कहाँ? कितने है? और ऐसी शालाएँ कहाँ हैं, जहाँके विद्यार्थियोंकी तुलना हम विवेकपूर्ण, मर्यादाशील, सहनशील, निर्भय और भक्त प्रह्लादके साथ कर सकते हैं? जब भारतवर्षमें

ऐसे विद्यार्थी वड़ी संख्यामे उत्पन्न हो जायेंगे तव भारतवर्ष नवीन चेतनासे ओतप्रोत हो जायेगा और फिर किसीको ऐसा प्रश्न ही नहीं करना पड़ेगा कि स्वराज्य कहाँ है।

ऐसे विद्यार्थियोंकी जवरदस्त फसल उत्पन्न करनेके लिए हमें केवल सच्चे राष्ट्रीय स्कूलोंका संचालन करना ही आवश्यक है, फिर उनमें चाहे कितने ही कम विद्यार्थी क्यों न हों। जहाँ माता-पिता वालकोंको भेजते हुए ऐसा मानते है कि हम मेहरवानी कर रहे हैं और जहाँ विद्यार्थी जाकर शान वघारते हों और इस तरहकी प्रत्यक्ष या परोक्ष धमकी देते हो कि यदि आपने मदद नही की तो हम सरकारके साथ हो जायेंगे, ऐसी जगह राष्ट्रीय शालाकी जरूरत नही है, ऐसा हमे निश्चय ही समझ लेना चाहिए। नाम-मात्रकी ऐसी राष्ट्रीय शालाओंको वन्द कर दिया जाना चाहिए। अव तो हम असहयोगको समझने लगे हैं। हम उसका मूल्याकन करनेकी स्थितिमें है। उसके खतरोंसे समाज वेखवर नही है और इसलिए असहयोग करनेवाली शालाओंका मार्ग स्पष्ट है। हम स्वय अपने-आपको भ्रमित न करे। उन्नति और अवनतिको समान समझते हुए अपने विश्वासपर दृढ रहकर यदि हम अपना काम करते चले जाये तो अन्तमें श्रेय ही मिलेगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २-९-१९२६

३७५. विधवा-विवाह

एक पत्र-प्रेपक पूछते है, और यह प्रश्न ठीक ही है कि क्या हिन्दू विधवाओके सम्वन्धमें दिये हुए सर गंगारामके आँकड़ोमें सभी हिन्दू विधवाएँ आ जाती है — या केवल वे ही आती है जो प्रचलन न होनेके कारण पुनर्विवाह नही कर सकतीं? मैंने सर गंगारामसे इस प्रश्नका उत्तर मँगवा लिया है और उनका यह कहना है, "मेरे दिये हुए आँकड़े केवल उन्ही श्रेणियोंतक सीमित नहीं है, जिनमे विधवा-विवाहका निषेध है, वल्कि उनमे समस्त हिन्दू जातिकी विधवाएँ आ जाती हैं।" सर गंगारामने यह भी लिखा है:

> केवल ऐसी श्रेणीकी विधवाओंके आँकड़े देना तो बेकार होता। हम सवको यह वात मालूम है कि मुसलमानों और ईसाइयोंमें विधवाओंका पुनर्विवाह हो सकता है। और उन जातियोंमें ऐसी अनेक विधवाएँ है जो कि आगे या पीछे विवाह करेंगी। मैं तो केवल हिन्दू विधवाओंपर से पुनर्विवाहकी रुकावट हटवाना चाहता हूँ। मैं प्रत्येक विधवाको पुनर्विवाह करनेके लिए मजबूर करना नहीं चाहता।

निस्सन्देह ये विचार अच्छे हैं। लेकिन जिन हिन्दू उपजातियोंमें पुनर्विवाह वर्जित है केवल उन्हींमे यह बन्धन है। इन उपजातियोंको छोड़कर शेष सभी हिन्दू जातियोंमें विधवाएँ करीब-करीब उतनी ही आजादीसे विवाह करती हैं जितनी आजादीसे ईसाइयों और मुसलमानोंमें। हाँ, इन्साफकी रूसे यह कहना मुनासिब होगा कि सभी ईसाई या मुसलमान विधवाएँ "आगे या पीछे" पुनर्विवाह नही कर लेतीं। ऐसी बहुतसी विधवाएँ हैं जो स्वेच्छासे अविवाहिता बनी रहती हैं। यह बात तो बेशक है कि जिन जातियोंमें पुनर्विवाह मना है उनके अतिरिक्त अन्य जातियोंकी प्रवृत्ति "उच्च" कहलानेवाली जातियोंकी देखा-देखी अपनी जातिकी विधवाओंको अविवाहित रखनेकी होती है। लेकिन जबतक हमें पूरे आँकड़े नही मिलते, तबतक यह ठीक-ठीक बताना मुश्किल है कि विधवाओंको पुनर्विवाह निषेधक प्रथासे कितना नुकसान पहुँचा है। आशा है कि सर गंगारामकी संस्था और अन्य संस्थाएँ, जिन्होंने इस मामलेको विशेष रूपसे हाथमें लिया है, जरूरी आँकड़े इकट्ठा करके छपवायेगी। इस बातका ठीक-ठीक पता लगा लेना अवश्य शक्य है कि जिन 'उच्च' जातियोंमें पुनर्विवाह वर्जित है, उनमें २० वर्षसे कम उम्रकी विधवाएँ कितनी हैं।

उक्त पत्र लिखनेवालेको, जिन्होंने कि शायद पुनर्विवाहके विरुद्ध प्रचलित बन्धनको न्यायसंगत ठहरानेकी इच्छासे प्रेरित होकर मुझे पत्र लिखा है तथा ऐसे ही विचार रखनेवाले अन्य लोगोंको भी, उन बुराइयोंको न भूल जाना चाहिए जो युवती विधवाओंके पुनर्विवाह निषेधके कारण उत्पन्न होती हैं। यदि एक भी बालविधवा अविवाहित हो तो इस अन्यायको मिटाना ही जरूरी है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २-९-१९२६

३७६. 'बाइबिल' पढ़नेका गुनाह

कई पत्रप्रेषकोंने अपने-अपने पत्रोंमें मुझे इस बातपर आड़े हाथों लिया है कि मैं गुजरात विद्यापीठके विद्यार्थियोंको 'न्यू टेस्टामेंट' क्यों पढ़ाता हूँ। इनमे से एकने मुझे लिखा है:

> क्या आप कृपा करके बतायेंगे कि आप गुजरात विद्यापीठके विद्यार्थियोंको 'बाइबिल' क्यों पढ़ाते हैं? क्या हमारे साहित्यमें कोई ऐसी उपयोगी पुस्तक नहीं है? क्या आपकी निगाहमें 'गीता' 'बाइबिल' से कम है? आप यह बात बराबर कहा करते हैं कि मैं पक्का सनातनी हिन्दू हूँ? अब क्या आप छिपे हुए ईसाई नहीं निकले? आप यह भले ही कहें कि कोई भी मनुष्य 'बाइबिल' पढ़ने-मात्रसे ईसाई नहीं बन जाता। परन्तु क्या लड़कोंको 'बाइबिल' पढ़ाना उनको ईसाई बनानेका एक तरीका नहीं है? क्या उनपर 'बाइबिल' पढ़नेका असर हुए बिना रह सकता है? क्या ऐसा करनेमें उनके ईसाई बन जानेकी

सम्भावना नहीं है? 'बाइबिल' में ऐसी कौनसी खास बात है कि जो हमारे धर्मग्रन्थोंमें नहीं है? मुझे पूर्ण आशा है कि आप इसका सन्तोषजनक उत्तर देंगे और 'बाइबिल' की तुलनामें वेदोंको तरजीह देंगे।

मुझे भय है कि मैं इस पत्र-प्रेषककी प्रार्थना नही मान सकता, क्योकि मुझे अपनी या दूसरोकी इच्छाकी अपेक्षा विद्यार्थियोकी माँगको अधिक मान देना चाहिए; वह उनका अधिकार है। जब उन्होंने मुझे प्रति सप्ताह एक घटा पढानेके लिए कहा, तब मैंने उनके सामने तीन बातें रखी — वे चाहे तो 'गीता' पढे, चाहे तुलसीकृत 'रामायण' और चाहे अपने प्रश्नोंके उत्तर पूछें। राय लेनेपर अधिक छात्रोंने 'बाइबिल' पढना और प्रश्न पूछना पसन्द किया। मेरी रायमे उन विद्यार्थियोको इस चुनावका हक था। उनको 'बाइबिल' पढने या दूसरोंसे सुननेका पूरा अधिकार है। मैंने 'गीता' या 'रामायण' सुनानेका प्रस्ताव उनके सामने रखा था, क्योंकि मैं ये दोनो पुस्तकें आजकल आश्रमवासियोको पढा रहा हूँ और इसलिए गुजरात विद्यापीठमें इन दोनोमें से कोई भी पुस्तक पढानेमें मुझे कमसे-कम तैयारी व मेहनत करनी पड़ती। परन्तु उन विद्यार्थियोंने शायद यह सोचा कि वे 'गीता' और 'रामायण' तो दूसरेसे पढ लेगे, लेकिन 'बाइबिल' के अर्थको मुझसे समझ ले, क्योकि वे जानते थे कि मैंने उस ग्रन्थका अच्छा खासा अध्ययन किया है।

मैं प्रत्येक सुशिक्षित स्त्री या पुरुषका यह फर्ज मानता हूँ कि वह संसार भरके धर्मग्रन्थोको सहानुभूतिमे पढे। यदि हम दूसरोंके धर्मोंकी उतनी ही इज्जत करना चाहते हैं, जितनी हम उनसे अपने धर्मकी कराना चाहते हैं तो ससारके सभी मतोंका प्रेमभावसे अध्ययन करना हमारा पवित्र कर्त्तव्य हो जाता है। हमको इस बातसे डरनेकी कतई जरूरत नहीं है कि दूसरे मजहब हमारे सयाने बालकोंपर अपना असर डाल देंगे। हम बालकोंको ससारके निर्दोष साहित्यका अध्ययन बिना भेदभावके करनेके लिए उत्साहित करके उनका जीवनके प्रति दृष्टिकोण उदार बनाते हैं। हाँ, डरका मौका तब है जब कोई नवयुवकोंको अपने मजहबकी किताबे छिपे-छिपे या खुल्लम-खुल्ला अपने दीनमें मिला लेनेकी नीयतसे सुनाए। उस सूरतमे उसके दिलमें अपने मजहबके प्रति पक्षपात जरूर होगा। जहातक मेरी बात है मैं तो 'बाइबिल' या 'कुरान' या किसी दूसरे धर्मग्रन्थका अध्ययन करना या उसके प्रति श्रद्धा रखना अपने पक्के सनातनी हिन्दू होनेके साथ संगत मानता हूँ। जो मनुष्य सकुचित विचारोका है तथा धर्मान्ध है और जो किसी बुरी बातको महज इसलिए अच्छी मानता है कि वह प्राचीन कालसे चली आती है या उसका समर्थन किसी संस्कृत पुस्तकसे होता है, वह हरगिज सनातनी हिन्दू नहीं है। मैं पक्का सनातनी हिन्दू होनेका दावा इसलिए करता हूँ कि यद्यपि मैं उन बातोंको, जो मेरी नैतिक भावनाके प्रतिकूल होती हैं, नहीं मानता, तथापि मुझे हिन्दू धर्मग्रन्थोंमें आत्माकी प्रत्येक आवश्यकताकी पूर्तिकी सामग्री मिल जाती है। दूसरे धर्मोंके आदरपूर्वक अध्ययनसे हिन्दू धर्म-ग्रन्थोंके प्रति मेरी श्रद्धा, उनमें मेरा विश्वास कम नहीं हुआ है। बल्कि मुझे उनसे हिन्दू धर्मग्रन्थोको समझनेमे सहायता मिली है। उन्होंने जीवनके प्रति मेरा दृष्टिकोण विशाल

कर दिया है। उनकी सहायतासे मैं हिन्दू धर्मग्रन्थोंके गूढ़ अंशोंको अधिक अच्छी तरह समझ सका हूँ।

प्रच्छन्न ईसाई होनेका आरोप कोई नया आरोप नहीं है। यह मेरी निन्दा भी है और स्तुति भी। निन्दा इस दृष्टिसे है कि कुछ लोग समझते है कि भीतर-भीतर मैं ऐसा भी कुछ हो सकता हूँ — भीतर-भीतर इसलिए कि मै वाह्यतः वैसा होनेसे भय खाता हूँ। किन्तु जिस क्षण ईसाई धर्मकी या किसी अन्य धर्मकी सत्यता मेरी समझमें आ जायेगी और मुझे उस धर्मकी आवश्यकता प्रतीत होगी, मैं उसी क्षण उसको अंगीकार कर लूँगा। मुझे उससे रोक सकनेवाली कोई भी वस्तु संसारमें नहीं है। जहाँ भयका अस्तित्व है, वहाँ धर्म नहीं होता। यह आरोप, इस दृष्टिसे मेरी स्तुति है कि लोग ईसाई मतकी खूबियोंको समझनेकी मेरी क्षमताको (वेमनसे ही सही) कुवूल करते हैं। हाँ, एक वात मैं कुवूल करता हूँ। यदि मैं 'वाइविल' या 'कुरान' को अपनी व्याख्याके अनुसार मानकर अपनेको ईसाई या मुसलमान कह सकूँ तो मुझे अपनेको ईसाई या मुसलमान कहनेमें जरा भी संकोच न होगा, क्योंकि उस हालतमें 'हिन्दू,' 'ईसाई,' और 'मुसलमान' ये शब्द पर्यायवाची ही हो जायेंगे। मेरा यह विश्वास है कि परलोकमें न कोई हिन्दू है, न ईसाई और न मुसलमान है। वहाँ सब केवल अपने कर्मोका फल पाते हैं। उनकी अच्छाई या बुराईका निर्णय कर्मोसे होता है। यह देखकर नही कि वे किस धर्मके हैं और उनकी मान्यताएँ क्या हैं। जबतक हम इस स्थूल संसारमें रहते हैं, तवतक हमारे ये छापे तो रहेंगे ही। इसलिए मुझे यह पसन्द है कि जहाँतक मेरे पूर्वजोंका धर्म मेरी उन्नतिको नहीं रोकता और जहाँतक वह मुझे अन्य धर्मोकी अच्छी-अच्छी वातें ग्रहण करनेसे भी नहीं रोकता, वहाँतक मैं अपने पूर्वजोंके ही धर्मको मानता रहूँ।

अतः पत्रप्रेषकोंने जिस उत्तेजनशीलताका परिचय दिया है उससे यही प्रकट होता है कि इस अभागे देशमें असहिष्णुताकी धारा कितने जोरसे वह रही है। मेरी सलाह है कि जो उसमें अडिग रह सकें वे अपने पैर अवश्य जमाये रखें।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २-९-१९२६

३७७. वीरोचित त्याग

त्रावणकोरसे एक सज्जनने एक उदात्त स्वार्थत्यागकी आखो देखी घटनाका वृत्तान्त भेजा है:[1]

मै कन्नड़ कृष्ण ऐयरके इस वीरतापूर्ण कार्यके लिए बधाई देता हूँ। उनका उदाहरण महाभारत कालके उन वीरोंकी याद दिलाता है जो मानवजातिकी सेवाके निमित्त अपनी जान जोखिममें डालनेमे बिल्कुल सकोच नही करते थे।

[अंग्रेजीसे]

यग इंडिया, २-९-१९२६

३७८. जीवनदायी शक्तिका संचय

पाठकगण मुझे नाजुक समस्याओपर प्रकट रूपमे विचार करनेके लिए क्षमा करें। मुझे इनपर केवल एकान्तमें ही बातचीत करनेमें खुशी होती। परन्तु मुझे जिस साहित्यका अध्ययन करना पड़ा है और श्री ब्यूरोकी पुस्तककी[2] आलोचनापर मेरे पास जो अनेक पत्र आये है, उनके कारण समाजके लिए इस परम महत्त्वपूर्ण प्रश्नपर प्रकट रूपसे विचार करना आवश्यक हो गया है। एक मलाबारी भाई लिखते है:

> आप श्री ब्यूरोकी पुस्तककी समालोचनामें लिखते है कि एक भी उदाहरणसे यह पता नहीं चलता कि ब्रह्मचर्य-पालन व दीर्घकालके संयमसे किसीपर कोई हानिकर प्रभाव हुआ है। किन्तु मुझे तो अपने लिए तीन सप्ताहसे अधिकका संयम ही हानिकारक मालूम होने लगता है। इसके बाद मुझे प्रायः शरीरमें भारीपनका तथा चित्तमें और अगोंमें बेचैनीका अनुभव होने लगता है, जिससे स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है। आराम तभी मिलता है जब संभोग द्वारा या स्वयं प्रकृतिकी कृपासे स्वप्नमें अनिच्छापूर्वक वीर्यपात हो जाता है। दूसरे दिन सुबह शरीर व मनकी कमजोरीका अनुभव करनेके बजाय मै शान्त और हलका हो जाता हूँ और अपना काम अधिक उत्साहसे करने योग्य हो जाता हूँ।
>
> किन्तु मेरे एक मित्रको तो संयमसे स्पष्टतः हानि ही हुई है। उनकी उम्र कोई ३२ सालकी होगी। वे पूर्णतः अन्नाहारी और बड़े धर्मिष्ठ पुरुष है। शरीर और मनसे वे हर तरहकी बुरी आदतसे बरी है। किन्तु फिर भी, दो साल पहलेतक उन्हें स्वप्नमें बहुत वीर्यपात होता था और उसके बाद

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। लेखकने लिखा था कि किस प्रकार पागल हाथीसे गिर कर घायल हुए फीलवानके प्राण बचानेके लिए एक असहयोगीने अपने शरीरका मांस दिया। मांस घायल फीलवानके घावमें भर दिया गया और उसके प्राण बच गये।

२. अनीतिकी राहपर।

बहुत दुर्बलता और उत्साहहीनता आ जाती थी। उन्हें तभी पेडूके भारी दर्दकी भी शिकायत हो गई। तब उन्होंने एक वैद्यकी सलाहसे विवाह कर लिया, और अब वे बिलकुल अच्छे हैं।

ब्रह्मचर्यकी श्रेष्ठताका, जिसपर हमारे सभी शास्त्र एकमत है, मैं बुद्धिसे तो कायल हूँ, किन्तु जिन अनुभवोंका मैंने ऊपर वर्णन किया है उनसे यह स्पष्ट होता है कि शुक्र-ग्रन्थियोंसे जो वीर्य निकलता है, हममें उसे शरीरमें ही पचा लेनेकी ताकत नहीं है। इसलिए वह जहर-सा बन जाता है। अतएव मैं आपसे सविनय अनुरोध करता हूँ कि मुझ-जैसे लोगोंके लाभके लिए, जिन्हें ब्रह्मचर्य और आत्मसंयमके महत्त्वके विषयमें कुछ सन्देह नहीं है, 'यंग इंडिया' में हठयोगके आसन और प्राणायाम-जैसे कुछ साधन बतायें, जिनके द्वारा हम अपने शरीरमें बननेवाले जीवनदायी तत्त्वको शरीरमें ही पचा सकें।

इन भाइयोंके अनुभव असाधारण नहीं है। बहुतोंको ऐसे अनुभव होते हैं। मैंने यह देखा है कि ऐसे उदाहरणोंमें प्रायः उतावलीमें अपूर्ण सामग्रीके आधारपर सामान्य निष्कर्ष निकाल लिये जाते हैं। उस जीवनदायी द्रव्यको शरीरमें ही रखने और पचानेकी योग्यता दीर्घकालीन अभ्याससे आती है। ऐसा तो होना भी चाहिए; क्योंकि किसी भी दूसरी चीजसे शरीर और मनको इतनी शक्ति प्राप्त नही होती। दवायें और यन्त्र, शरीरको साधारणतया अच्छी दशामें रख तो सकते हैं, किन्तु उनसे चित्त इतना दुर्बल हो जाता है कि वह मनोविकारोंका प्रतिरोध नहीं कर सकता। ये मनोविकार प्राणघाती शत्रुके समान हर किसीको घेरे रहते हैं।

हम काम तो ऐसे करते हैं जिनसे लाभ तो दूर, उलटी हानि ही होनी चाहिए; और फिर भी प्रायः साधारण संयमसे ही बहुत बड़े लाभकी आशा किया करते है। हमारी साधारण जीवन-पद्धति विकारोंको सन्तोष देने लायक बनाई गई है; हमारा भोजन, साहित्य, मनोरंजन, कामका समय, ये सभी ऐसे रखे जाते हैं जिनसे हमारे पाशविक विकारोंको ही उत्तेजना और तृप्ति मिले। हममें से अधिकांशकी इच्छा विवाह करने, बच्चे पैदा करने और भले ही थोड़े संयत रूपमें हो, किन्तु साधारणतः सुख भोगनेकी ही होती है; और कमोबेश ऐसा सदा ही होता रहेगा।

किन्तु हमेशाकी तरह साधारण नियमके अपवाद तो आज भी होंगे ही। ऐसे भी मनुष्य हुए हैं जिन्होंने मानवजातिकी सेवामें, या यों कहो कि भगवानकी ही सेवामे, जीवन लगा देना चाहा है। वे विश्व-कुटुम्बकी और निजी कुटुम्बकी सेवामे अपना समय अलग-अलग बाँटना नहीं चाहते। यह तो ठीक ही है कि ऐसे मनुष्योंके लिए वैसा जीवन बिताना सम्भव नहीं है जिससे किसी व्यक्ति विशेषकी ही उन्नति सम्भव हो। जो भगवानकी सेवाके लिए ब्रह्मचर्य-व्रत लेंगे, ऐसे लोगोंको जीवनकी शिथिलताओंको छोड़ देना पड़ेगा और इस कठोर संयममें सुखका अनुभव करना होगा। वे दुनियामें भले ही रहें, परन्तु दुनियादार नहीं हो सकते। उनका भोजन, धन्धा, काम करनेका समय, उनका मनोरंजन, साहित्य और जीवनका उद्देश्य सर्वसाधारणसे अवश्य ही भिन्न होंगे।

अब हमे इसपर विचार करना चाहिए कि क्या पत्र-लेखक और उनके मित्रने पूर्ण ब्रह्मचर्यपालन अपना ध्येय बनाया था और अपने जीवनको उसी ढाँचेमे ढाला था। यदि उन्होने ऐसा नही किया था, तो फिर यह समझनेमे कुछ कठिनाई नहीं होगी कि एकको वीर्यपातसे आराम और दूसरेको निर्बलता क्योकर महसूस होती थी। दूसरे आदमीके लिए तो विवाह ही दवा थी। अपनी इच्छाके विरुद्ध भी जब मनमें केवल विवाह-सुखका ही विचार भरा रहे तो उस स्थितिमे अधिकाश मनुष्योंके लिए विवाह ही सबसे अधिक स्वाभाविक और इष्ट स्थिति है। जो विचार दबाये न जानेपर भी अमूर्त ही छोड़ दिया जाता हे उसकी शक्ति, वैसे ही विचारकी अपेक्षा जिसको हम मूर्त कर लेते हैं, यानी अमलमे लाते हैं, कही अधिक होती है। जब हम उस क्रियाका उचित नियन्त्रण कर लेते हैं तो वह विचारको प्रभावित और संयत करती है। इस प्रकार हम जिस विचारको अमलमे ले आते हैं, वह हमारा बन्दी बन जाता है और काबूमें आ जाता है। इस दृष्टिसे विवाह भी एक प्रकारका संयम ही है।

मेरे लिए एक अखबारी लेखमे उन लोगोंके लाभके लिए, जो नियमित संयत जीवन बिताना चाहते हैं, ब्योरेवार सलाह देना ठीक न होगा। उन्हें तो मै, कई वर्ष पूर्व इसी उद्देश्यसे लिखी हुई अपनी पुस्तक 'आरोग्यकी-कुंजी' को[1] पढ़नेकी सलाह दूंगा। नये अनुभवोंको देखते हुए इसे कहीं-कही सुधारनेकी जरूरत तो हे, किन्तु इसमें एक भी ऐसी बात नही हे, जिसे मै रद्द करना चाहूँ। हाँ, यहाँ साधारण नियम देनेमें कोई हानि नही।

(१) खानेमे हमेशा संयमसे काम ले। सदा थोड़ी भूख रहते चौकेसे उठ जाएँ।

(२) बहुत गर्म मसालेवाले और घी-तेलसे तले अन्नाहारसे अवश्य बचें। पर्याप्त दूध मिले तब अतिरिक्त चिकनाई (घी, तेल आदि) लेना बिलकुल अनावश्यक है। जब शक्तिका व्यय थोड़ा ही हो तो अल्प भोजन भी पर्याप्त होता हे।

(३) हमेशा मन और शरीरको शुद्ध काममें लगाये रखे।

(४) जल्दी सो जाना और जल्दी जग जाना परमावश्यक है।

(५) सबसे बड़ी बात तो यह है कि संयत जीवन बितानेमें ईश्वर-प्राप्तिकी उत्कट जीवन्त अभिलाषा निहित है। जब इस परम तत्त्वका प्रत्यक्ष अनुभव हो जाता है, तब ईश्वरके ऊपर यह भरोसा बराबर बढ़ता ही जाता है कि वे स्वयं ही अपने इस यन्त्र — मनुष्यके शरीरको विशुद्ध और चालू रखेंगे। 'गीता' में कहा है :

'विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्ज्जं रसोप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते॥'

यह अक्षरशः सत्य है।

पत्रलेखक आसन और प्राणायामकी बात करते हैं। मेरा विश्वास है कि आत्म-संयममें उनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। परन्तु मुझे इसका खेद है कि इस विषयमे मेरे निजी अनुभव कुछ ऐसे नही हैं जो लिखने लायक हों। जहाँतक मुझे मालूम है, इस विषयपर इस जमानेके अनुभवके आधारपर लिखा हुआ साहित्य है ही नही। परन्तु

१. देखिए खण्ड ११ और १२।

यह विषय खोज करने योग्य है। लेकिन मैं अपने अनभिज्ञ पाठकोंको सावधान करता हूँ कि वे इनका प्रयोग न करें और जो कोई हठयोगी मिल जाये उसीको गुरु न मान लें। उन्हें निश्चय जान लेना चाहिए कि संयत और धार्मिक जीवन ही अभीष्ट संयमके पालनकी पर्याप्त शक्ति दे देता है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २-९-१९२६

३७९. पत्र: प्रभुदास भीखाभाईको

२ सितम्बर, १९२६

भाईश्री ५ प्रभुदास,

आपका पत्र मिला। आप निश्चित रूपसे यह जान लें कि मैं प्राणायामको कोई छोटी चीज नहीं मानता। परन्तु जो बात प्राणायामसे हासिल की जा सकती है वह दूसरे साधनोंसे भी प्राप्त की जा सकती है। इसलिए मैं प्राणायामको कोई अनिवार्य वस्तु नहीं मानता। मुझे लगता है कि अव्वल तो प्राणायाम बहुत कष्ट साध्य क्रिया है। दूसरे ऐसी अनेक क्रियाएँ हैं जो साधनके रूपमें सबके लिए आसान हैं। उन साधनोंका उपयोग, खासकर वर्तमान युगमें, श्रेयस्कर है। प्राणायामके द्वारा वीर्यस्तम्भन सम्भव है, पर मुझे आशंका है कि रसका क्षय केवल प्राणायामसे नही हो सकता। मुख्य बात तो बस इतनी ही है। आप स्वयं उसका अभ्यास कर रहे हैं। अपने प्राणायामके अभ्यासमें जब आप अच्छी सफलता प्राप्त कर लें तब मेरे पास आकर दुबारा उसकी चर्चा करें। प्राणायाममें जिन्हे सफलता प्राप्त हुई हो उनसे मिलनेकी मेरी इच्छा अवश्य है। काकासाहब कालेलकर आश्रम-वासी अवश्य हैं, पर आजकल अपनी बीमारीके कारण बाहर रहते है। उन्होंने प्राणायामका अच्छा अभ्यास किया है। जब उनका स्वास्थ्य सुधर जाये तब आप उनके साथ जरूर पत्र-व्यवहार कीजिएगा अथवा जब वे यहाँ आयें तब उनसे मिलियेगा। बहुत करके दीवालीतक यहाँ आ जायेंगे। उनका पता मैं आपको नही लिख भेज रहा हूँ क्योंकि फिलहाल उनके साथ किये जानेवाले पत्र-व्यवहारको बहुत ही सीमित रखनेकी आवश्यकता है। विनोबा प्राणायामके दूसरे अभ्यासी हैं; वे वर्धामें रहते हैं। उनका पता है: सत्याग्रहाश्रम, वर्धा। उन्हें आप अवश्य पत्र लिख सकते हैं। सम्भव है उनके अनुभव आपको प्राप्त हो जायें।

राय प्रभुदास भीखाभाई
मु० कठाणा लोट
पोस्ट कठाणा लोट
बारास्ता नडियाद

गुजराती प्रति (एस० एन० १२२६२) की फोटो-नकलसे।

३८०. पत्र : स्वामी राघवानन्दको

आश्रम
साबरमती
३ सितम्बर, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र[1] मिला। मेरा खयाल है कि मेरे निद्रापर विजय पानेसे आपका तात्पर्य निद्राका नियमन ही है, उसका सर्वथा त्याग नहीं। जहाँतक मेरी बात है, मुझे २४ घंटेमें कमसे-कम ६ घंटे सोनेके लिए चाहिए और मैं इतना ही सोता हूँ। यह सच है कि मैं अपनी नींदको बहुत महत्त्व नहीं देता। परन्तु यदि मैं ६ से भी कम सोऊँ तो शरीर और मस्तिष्क दोनोंको ही कष्ट होता है। कामवासनाका पूर्ण रूपसे निराकरण करना मैं सम्भव मानता हूँ और यह भी मानता हूँ कि ऐसा करना लाभप्रद है। निद्राका पूर्ण त्याग मेरे विचारसे, न तो सम्भव है और न वांछित ही। निद्रापर नियन्त्रण स्वल्प भोजन तथा बहुत ज्यादा थका डालनेवाले श्रमसे बचनेपर निर्भर करता है।

हृदयसे आपका,

स्वामी राघवानन्द
वेदान्त समिति
२४ वेस्ट, ७१ स्ट्रीट
न्यूयॉर्क (अमेरिका)

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०८०७) की फोटो-नकलसे।

१. स्वामी राघवानन्दने गांधीजीको अपने २४ जुलाई, १९२६ के पत्रमें (एस० एन० १०७८२) लिखा था कि मैं आपके आत्मसंयम और स्वादेन्द्रिय तथा कामवासनापर विजय पाने सम्बन्धी विचारोंसे परिचित हूँ। परन्तु मैं निद्रा-विजयके बारेमें आपके विचार जानना चाहता हूँ, क्योंकि मैंने सुन रखा है कि आप स्वल्प निद्रा सेवन करते हैं, जब चाहे तब उठ बैठते हैं और उठते ही अर्चना अथवा लेखनमें व्यस्त हो जाते हैं।

३८१. पत्र : नॉर्मन लीज़को

आश्रम
साबरमती
३ सितम्बर, १९२६

प्रिय मित्र,

आपके हालके पत्रके[1] लिए धन्यवाद। आप अपने किसी भी मित्रको मेरे सारे पत्र पढ़नेको दे सकते हैं; अवश्य ही पत्र अखबारोंमें प्रकाशित न किये जायें। इसपर मुझे कोई आपत्ति नहीं है, लेकिन इससे कुछ लाभ नहीं होगा; हो सकता है कि आप और मैं जिस उद्देश्यकी पूर्तिमें लगे हुए हैं, इससे उसको नुकसान ही पहुँचे।

आपकी तरह, मुझे यह आशंका नहीं है कि मुसलमान, चाहे जैसा न्यायपूर्ण समाधान क्यों न हो, उसके आड़े आयेंगे। समाधान बहुत हदतक हिन्दुओंकी बुद्धिमत्ता, उनकी औचित्य-भावना और उनके सन्तुलित आचरणपर निर्भर करेगा। आप ऐसा क्यों कहते हैं कि इस्लाम और लोकतन्त्र परस्पर विरोधी तत्त्व हैं? बल्कि क्या प्राचीन कालके खलीफा ही दुनियाके सर्वश्रेष्ठ लोकतान्त्रिक शासक नहीं थे? सशस्त्र संघर्ष हुआ तो मैं उससे भी परेशान नहीं होऊँगा। स्वाधीनताके लिए किया जानेवाला हर सच्चा आन्दोलन प्रसव है; और उसमें उसकी वेदना और खतरे तो गृहीत ही हैं। अगर इस अमूल्य निधिको प्राप्त करनेके लिए हमें प्रायश्चित्तकी किसी घोर प्रक्रियासे गुजरना ही पड़े तो वह भी ठीक ही होगा। सच कहें तो वही इस समय छोटे पैमानेपर हो रहा है और सम्भव है कि दोनों दल इसीसे कोई सबक सीख लें। अभीतक अनेक निर्दोष व्यक्तियोंको मौतके घाट उतारा जा चुका है।

शिक्षाके क्षेत्रमें प्राथमिकता दिये जानेसे मेरा मतलब है कि सभी पिछड़े वर्गोंके छात्रोंको विशेष छात्रवृत्तियाँ दे कर प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। यदि राज्यको सभी वर्गोंका प्रतिनिधित्व करना है, तो उसका यह अनिवार्य कर्त्तव्य होगा कि वह समाजके सबसे कमजोर वर्गसे अपना कार्य आरम्भ करे। पिछड़े वर्गोंकी वास्तविक शिक्षापर मुक्तहस्त होकर खर्च करना ही उनका असन्तोष दूर करनेके लिए रामबाण उपाय है। मैं जानता हूँ कि इस समय हिन्दू और मुसलमानोंमें असन्तोष अपनी-अपनी कमजोरीके अहसासके कारण है। हिन्दू शारीरिक क्षमता और सहनशीलताकी दृष्टिसे और मुसलमान शिक्षा और भौतिक समृद्धिकी दृष्टिसे अपनेको कमजोर महसूस करते हैं। सो मैं दोनों पक्षोंके बीच होनेवाले संघर्षको एक तरहसे शुभ लक्षण मानता हूँ। यह असलमें स्वाधीनताके संघर्षका ही एक अप्रकट रूप है। यदि दोनों पक्ष १९२० के कार्यक्रमको अपना लेते तो यह संघर्ष टल सकता था। लेकिन १९२० में लोगोंमें जो शक्ति और राष्ट्रीय चेतना आई थी वह लौ पकड़े बिना तो रह नहीं सकती थी और

१. देखिए परिशिष्ट २।

चूँकि उसका उपयोग सत्कार्योंके लिए किया गया, इसलिए यह लौ भयंकर साम्प्रदायिक झगड़ोंके रूपमें फूट पड़ी। मुझे इसके बारेमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि इन झगड़ोंके अन्तमें हम अपने-आपको पहलेसे ज्यादा शक्तिशाली और शुद्ध पायेंगे, क्योंकि कई ऐसे लोग हैं जो इस संघर्षको नहीं चाहते और जो अहिंसाको सर्वोपरि मानते हैं और जिन्होंने इन झगड़ोंमें अपना विवेक नहीं खोया है।

आपने अन्तिम अनुच्छेदमें जो मत व्यक्त किया है वह निस्सन्देह निराधार तो नहीं है। लेकिन क्या हमारी प्रशासनिक क्षमताका शिथिल पड़ जाना कोई आश्चर्यकी बात है? बहुतसे लोग खुशामद और इस तरहकी तरकीबोंसे क्लर्की — वह इससे ज्यादा और क्या है — पा लेते हैं। इसलिए अगर प्रयोगकी प्रारम्भिक अवस्थाओंमें हम अपना प्रतिनिधित्व करनेके लिए गलत व्यक्ति चुनें तो मेरे लिए यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं होगी। वह तो इतिहासकी पुनरावृत्ति मात्र होगी। सुधारकको इस बातसे भी डरना नहीं चाहिए। कष्ट उठाये बिना स्वतन्त्रताकी लड़ाई नहीं लड़ी जा सकती। और न ही हमें इस बातसे भयभीत होना चाहिए कि आई० सी० एस० लोग काम करनेसे इनकार कर देंगे। इन प्रशासनाधिकारियोंकी आलोचना तो मैं करता हूँ, किन्तु मनुष्यके रूपमें उनकी सत्यवृत्तिमें मुझे पूरा विश्वास है और मैं मानता हूँ कि उन योग्य व्यक्तियोंको जो पतनकारी कृत्रिम प्रतिष्ठा और संरक्षण मिला हुआ है जब वह समाप्त हो जायेगा तो उनकी सत्प्रवृत्ति उभरेगी।

सदा आपकी सेवा करनेको उत्सुक।[1]

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

डा० नॉर्मन लीज़
ब्रेलस्फोर्ड
डर्बीके निकट

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० १२१७१)की फोटो-नकलसे।

३८२. पत्र : देवदास गांधीको

आश्रम
साबरमती
शनिवार, श्रावण वदी १३, ४ सितम्बर, १९२६

चि० देवदास,

तुम्हारा पत्र मिला। तुमने 'स्पेरो' का वर्णन बहुत अच्छा किया है। मैं उसे उसके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं बताऊँगा। तुमने मुझे तो सावधान कर ही दिया है, इसलिए डरनेकी कोई बात नहीं। तुमने जो दोष लिखे हैं वे उसमें अवश्य हैं पर वे क्षणिक हैं। उसमें जो गुण हैं वे स्थायी हैं। उसके हृदयमें अपार दया और

१. डॉ० नार्मनने २० सितम्बरको इसका उत्तर दिया था। देखिए परिशिष्ट ३।

सरलता है। उसमें असहिष्णुता और एक प्रकारका अभिमान है; पर उसके गुणोंके सामने उसके दोष नगण्य लगते हैं। वह तुम्हारी निगरानीमें है इसलिए मैं निश्चिंत हूँ। मुझे लिखा हुआ उसका पत्र तो तुमने देखा ही होगा। पत्र काफी अच्छा है।

नाभा महाराजको एक पत्र लिखा था, इतना मुझे याद है। उनके पत्रका मैं जवाब अब दूँगा, उसकी नकल तुम्हें भेजूँगा। तकली वगैरहका पार्सल ९ अगस्तको भेजा था वह रजिस्ट्री शुदा था। आश्चर्य है कि तुम्हें मिला नहीं। यहाँसे पूछनेको कहा है। वहाँ भी पूछना।

मेरा वजन इस तरह [जल्दी-जल्दी] घटा नहीं करता। ९९ के आसपास है। मैं तो यह मानता हूँ कि मेरी तबीयत अब बहुत अच्छी है। नाभा महाराजसे भी बुरे काम करनेवाले दूसरे राजा होंगे। बहुतसे हैं, यह मैं जानता हूँ। लेकिन उनका अत्याचार कुछ कम नहीं था। सरकारने उनके दोषोंके कारण उन्हें पदच्युत नहीं किया। बल्कि मैं यह मानता हूँ कि यदि उनमें दोष न होते तो सरकार उन्हें पदच्युत नहीं कर सकती थी। मुझे उनसे कोई और शिकायत नहीं है। बात इतनी ही है कि उनके इस आन्दोलनमें मैं उनकी जरा भी सहायता नहीं कर सकता।

गुजराती प्रति (एस० एन० १२२६३) की फोटो-नकलसे।

३८३. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

आश्रम,
साबरमती
रविवार, श्रावण कृष्ण १४, ५ सितम्बर, १९२६

भाई घनश्यामदासजी,

आपका पत्र और कटिंग मिले हैं। मैं तो इस बातको भूल गया हूं। इस समय राजनैतिक आबोहवा मुझको बहुत ही दुर्गन्धित प्रतीत होती है।

आपका,
मोहनदास

श्री घनश्यामदास बिरला
पिलानी
राजपूताना

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ६१३५) की नकलसे।
सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला

३८४. पत्र : द० बा० कालेलकरको

आश्रम
साबरमती
रविवार, श्रावण बदी १४, ५ सितम्बर, १९२६

भाईश्री ५ काका,

जनेऊ पहननेके बारेमें आपका पत्र मिला। जो लोग जनेऊ पहनते हैं, वे इसे उतार दें ऐसा मैं नहीं चाहता और न ही यह आग्रह है कि वे इसे धारण अवश्य करें। आजकल तो इसका महत्त्व मामूलीसे सूती धागेके बराबर भी नहीं रह गया है। मेरी स्थिति तो ऐसी ही है कि जबतक शूद्र और अन्त्यज लोग जनेऊ धारण नहीं कर पाते तबतक तो मेरे मनमें जनेऊके प्रति अरुचि ही उत्पन्न होगी। लेकिन शूद्रों और अन्त्यजोंपर बिना सोचे-विचारे और बिना किसी कारणके हम जनेऊ पहननेका बोझ क्यों लादें? इस समय सार्वजनिक रूपसे इस विषयकी चर्चा करनेसे कोई अच्छा परिणाम निकलेगा, ऐसा मुझे नहीं दीखता। पर जब आप यहाँ आयेंगे तब साथ बैठकर विचार करेंगे।

मैं ऐसा नहीं मान सकता कि अब आपकी तबीयत बिलकुल ठीक हो गई है। मैं नहीं समझता कि सोनगढ़ और अहमदाबादमें बहुत अधिक अन्तर है। खैर, जब आप यहाँ आयेंगे तब इसपर भी विचार करेंगे। शुद्ध वायु और उपयुक्त भोजन क्या होगा, मैं इन दो बातोंका पता लगाना अधिक उपयोगी मानता हूँ।

आज हम सब नदीमें डूबते-डूबते बच गये। उसका रिहर्सल भी हो गया है। अब तो उस घटनाकी याद आनेपर हँसी ही आती है। यह सब कैसे हुआ यह तो एक लम्बी कहानी है, कोई-न-कोई तो आपको सब विवरण लिख ही भेजेगा।

श्री काकासाहब
स्वावलम्बन पाठशाला
चिंचवड

गुजराती प्रति (एस० एन० १२२६४) की फोटो-नकलसे।

३८५. पत्र : बलवन्तराय पारेखको

आश्रम
साबरमती
रविवार, श्रावण बदी १४, ५ सितम्बर, १९२६

भाईश्री ५ बलवन्तराय,

आपका पत्र मिला। इस पत्रके साथ पाँचतलावडाके लिए तीन सौ रुपयेकी हुंडी भेज रहा हूँ। उसके मिलनेकी सूचना दीजिएगा। तथा हर महीने उसका हिसाब भाई फूलचन्दको तथा उसकी एक प्रति मुझे भेजते रहिएगा।

श्री बलवन्तराय गोकुलदास पारेख
भावनगर

गुजराती प्रति (एस० एन० १२२६५) की माइक्रोफिल्मसे।

३८६. पत्र : एस० आर० देशपाण्डेको

६ सितम्बर, १९२६

प्रिय मित्र,

मेरा हृदय आपकी विपत्तिमें आपके साथ है। आपके जैसे मामलेमें ईश्वर ही सहायक हो सकता है। ईश्वरमें हमारा विश्वास होना या न होना कोई महत्त्व नहीं रखता, ठीक वैसे ही जैसे कानूनकी अनभिज्ञता हमें उसके दण्डसे नहीं बचा सकती। ईश्वर ही सर्वोच्च कानून है।

मैं आपसे यह कहना चाहता हूँ कि हमारे अस्तित्वका अभिप्राय अपनेको जानना है। अपनेको जाननेका मार्ग है चेतनमात्रकी सेवा। और मानवसमाजकी सेवा आत्मत्यागके बिना नहीं की जा सकती। अतएव हमारे लिए आत्मत्याग ही सबसे ऊँचा विधान है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एस० आर० देशपाण्डे
डोंगरे मैंशंस
चिखलवाड़ी
बम्बई–७

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९९४७) से।

३८७. पत्र : वी० ए० सुन्दरम्को

७ सितम्बर, १९२६

प्रिय सुन्दरम्,

तुम्हारे तोहफे[1] प्रति सप्ताह विना नागा मिलते रहते हैं। अनेक धन्यवाद।

तुम्हारा,
बापू

अंग्रेजी पत्र (जी० एन० ३१७६) की फोटो-नकलसे।

३८८. पत्र : जुगलकिशोर बिड़लाको

आश्रम,
साबरमती
मंगलवार श्रावण अमावास्या, [७ सितम्बर, १९२६][2]

भाई श्री जुगलकिशोरजी,

आपका पत्र मिला है। 'बाईबल'के बारेमें मैंने जो 'यंग इंडिया'में लिखा[3] है वह आपने पढ़ लिया होगा। इससे संतोष होना चाहिए। 'विश्वमित्र'में जो लिखा है वह भी मैंने दृष्टि-गोचर कर लिया है। मैं केवल इतना ही और कहना चाहता हूं कि यदि बच्चोंको 'बाईबल' सीखना वास्तविक है तो मेरे ही मारफत सीखे वह अच्छा ही है। मेरे मार्फत सीखनेसे बच्चोंको एक ही चीज मिल सकती है। वह सर्व धर्मोका निचोड़ याने रामनाम। मेरे लिखनेका या करनेका दूसरे लोक दुरूपयोग करें इससे न मुझको, ना मेरे सिद्धांतोंको कुछ हानि पहुंच सकती है। सत्यका दुरूपयोग कैसे हो सकता है? उसका दुरुपयोग ही सदुपयोग सा बन जाता है। इस कारण उपनिषदादिमें सत्यको सर्वोपरि स्थान दिया है। उसीको परमेश्वर कहा है। यदि आपको अब भी शांति नहीं हुई है तो आप मुझे और लिखें।

मूल पत्र (एस० एन० १२२६९) की फोटो-नकलसे।

१. देखिए "पत्र: वी० ए० सुन्दरम्को", ५-७-१९२६।

२ व ३. गांधीजीका यह लेख **यंग इंडिया**के २-९-१९२६ के अंकमें छपा था। देखिए "बाइबिल पढ़नेका गुनाह", २-९-१९२६।

३८९. पत्र : राजेन्द्रप्रसादको

आश्रम
साबरमती
मंगलवार, श्रावण अमावस्या, ७ सितम्बर, १९२६

भाई राजेन्द्रबाबू,

इसके साथ जो पत्र रखता हूं मैं आज ही पढ़ सका हूं। विद्यार्थीको भी मैंने लिखा है आपसे मिलें।

बाबू राजेन्द्रप्रसाद
कांग्रेस ऑफिस,
मुरादपुर, पटना

मूल पत्र (एस० एन० १२२७२) की फोटो-नकलसे।

३९०. पत्र : लालजी नारणजीको

साबरमती
श्रावण बदी अमावस्या, १९८२ [७ सितम्बर, १९२६]

भाईश्री लालजी नारणजी,[1]

आपका पत्र मिला। यदि मेरे वहाँ आनेसे किसी लाभकी सम्भावना हो तो मैं आपका निमन्त्रण स्वीकार करनेमें तनिक भी आनाकानी न करूँ। क्योंकि मैं मानता हूँ कि दक्षिण आफ्रिकी शिष्टमण्डलका[2] आना एक असाधारण बात है और बम्बई आनेसे मेरी प्रतिज्ञा भंग नहीं होगी। पर आपके आयोजनमें भाग लेनेकी योग्यता मुझमें है या नहीं, इस विषयमें मुझे सन्देह है। आनेवाले सज्जन चतुर और बहुत स्वतन्त्र प्रकृतिके लोग हैं। स्वागत-समारोहके[3] समय दक्षिण अफ्रीकाके प्रश्नपर गम्भीर चर्चा नहीं की जा सकती। उनपर स्वागतका जाहिर असर भले ही पड़ सकता है परन्तु मुझे लगता है कि इस विचारसे मेरा वहाँ आना कुछ भी लाभदायक नहीं हो सकता। यह सम्भव हो सकता कि इन लोगोंके दिलोंमें मुझसे मिलनेकी इच्छा हो। ऐसी बात है या नहीं, इसका पता जरूर लगा लूँगा। उनके नेतासे[4]

१. भारतीय व्यापार वाणिज्य संघ, बम्बईके तत्कालीन अध्यक्ष।

२. दक्षिण आफ्रिकी संघ सरकारका ८ सदस्योंवाला संसदीय शिष्टमण्डल भारत सरकारके निमन्त्रण-पर १८ सितम्बर, १९२६ को भारत आया और १३ अक्तूबर, १९२६ को दक्षिण आफ्रिका लौट गया।

३. १९ सितम्बर, १९२६ को बम्बईके बीकानेर हाउसमें आयोजित।

४. एफ० डब्ल्यू० बेयर्स जो उस समय खान-उद्योग मन्त्री थे।

मेरा अच्छा खासा परिचय है। इसलिए अपनी ओरसे जो-कुछ करना उचित होगा वह तो मैं करूँगा ही। मेरे वहाँ आनेसे कोई विशेप लाभ होगा, ऐसा मुझे नहीं दीख पड़ रहा है। मैंने यह निर्णय तटस्थ भावसे विचार करनेपर किया है। परन्तु आप या सर पुरुपोत्तमदास किसी विशेप कारणसे यह मानें कि मेरा वहाँ आना जरूरी है तो मैं अवश्य आऊँगा।

सर हेनरी लॉरेन्सके साथ मण्डलके विपयमें मेरी कोई वात नहीं हुई है। हाँ, खेती सम्वन्धी आयोगके विपयमें अवश्य हुई थी।

मोहनदासके वन्देमातरम्

भाईश्री लालजी नारणजी
एवर्ट हाउस
टॅमेरिन्ड लेन
फोर्ट, वम्वई

गुजराती पत्र (एस० एन० १२२६७) की फोटो-नकलसे।

३९१. पत्र : रेवाशंकर झवेरीको

आश्रम
सावरमती
श्रावण वदी अमावस्या, १९८२ [७ सितम्वर, १९२६]

आदरणीय रेवाशंकरभाई,

आपका पत्र मिल गया। सेठ लालजी नारणजीने मुझे सीधे पत्र लिखा है। मैंने उन्हें जवावमें लिख भेजा हे कि मेरे वम्वई जानेसे कुछ लाभ हो सकता है, मुझे ऐसा नहीं लगता। यदि मेरा उनसे मिलना जरूरी हो जायेगा तो मिलनेकी विशेप व्यवस्था ही करनी होगी। उसका मैं प्रवन्ध कर दूँगा। और यदि वे लोग मुझसे मिलना चाहेंगे तो चाहे जहाँ मिल सकते हैं। फिर भी इसका निर्णय मैंने लालजी सेठ, सर पुरुपोत्तमदास आदिपर छोड़ा है। यदि उनका यह विचार हो कि मुझे जाना ही चाहिए तो मैं जाऊँगा। वेहतर यही होगा कि जल्दवाजीमें कोई फैसला न किया जाये।

चि० जमनादास कई महीनेसे वहाँ घवरा रहा है परन्तु मेरे आश्वासन देते रहनेके फलस्वरूप वह काम करता रहा। अन्तमें जव उसके पत्रोंपर मैंने कुछ ध्यान नहीं दिया तो उसने अपनी मंशा पूरी करनेके खयालसे यह कदम उठा लिया। उसे मैंने वुलवाया था और वह आ गया है। उसने काम छोड़नेके तीन कारण वताये हैं।

(१) उसकी अपनी यह धारणा कि वह शिक्षक वननेके योग्य नहीं है;

(२) उसके गलेमें दर्द रहता है जिससे वोलनेमें कठिनाई होती है;

(३) उसे खादीके प्रति दृढ़ विश्वास जरूर है परन्तु यज्ञके रूपमें कताईके प्रति नहीं है।

मुझे लगता है कि पिछले दो कारण उसे मुक्त करनेके लिए पर्याप्त हैं। यदि गला ठीक नहीं रहता तो वह पढ़ा ही नहीं सकता और यदि वह निःस्वार्थभावसे कताई करनेके महत्त्वको नहीं समझ सकता तो वह विद्यार्थियोंपर प्रभाव डाल नहीं सकता है। फिलहाल मैंने नानाभाईको राजकोट जाकर शालाका निरीक्षण करनेको लिखा है। वे दक्षिणामूर्तिके अधिष्ठाता हैं और विद्यापीठके कुलनायक हैं। आपके लिए समितिसे तुरन्त त्यागपत्र देनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। नानाभाईसे सलाह करनेके उपरान्त आपको और लिखूँगा।

रतिलालके[1] बारेमें मेरा अवलोकन ज्यों-ज्यों बढ़ रहा है त्यों-त्यों उसमें अधिकाधिक सरलता और सीधापन नजर आ रहा है। मेरा अनुभव यही है कि खर्चीली तो चम्पा[2] ही है। अभी वे दोनों मणिलाल कोठारीके यहाँ गये हुए हैं। चम्पा पर्युषणके[3] त्यौहारतक वहीं रहना चाहती है।

रतिलाल क्या करेगा यह निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता।

चि० जेकीके[4] विषयमें डाक्टरको[5] लिख रहा हूँ, जवाब मिलनेपर फिर आपको लिखूँगा।

रतिलाल आज लौट आया है।

मोहनदासके प्रणाम

गुजराती पत्र (जी० एन० १२८०) की फोटो-नकलसे।

३९२. पत्र: नौरोजी बेलगाँववालाको

आश्रम
साबरमती
मंगलवार, श्रावण अमावस्या, ७ सितम्बर, १९२६

भाईश्री ५ नौरोजी बेलगाँववाला,

आपका पत्र मिला। प्रकाशित पत्र मैंने 'क्रॉनिकल' में पढ़ा था। इस बातमें मेरा विश्वास ही नहीं है कि मैं अपने विचार अभी प्रकट कर दूँ। मैं ऐसा मानता हूँ कि मौन रहकर ही मैं सच्ची सेवा कर रहा हूँ। कई बार होशियार वैद्य अपने रोगीको केवल आराम करनेकी सलाह देता है। और मैं अपने-आपको एक होशियार

१. रतिलाल मेहता।
२. रतिलालकी पत्नी।
३. जैनियोंका एक त्यौहार।
४. डा० प्राणजीवन मेहताकी पुत्री।
५. डा० प्राणजीवन मेहता।

वैद्य मानता हूँ। मैं अपने रोगीको जानता हूँ और इसीलिए उसे आराम दे रहा हूँ। आपकी 'क्रॉनिकल' को नीलाम कर देनेकी बात मुझे तो पसन्द ही आयेगी। इसे कोई खरीदेगा नहीं। इसलिए अच्छा यही होगा कि आप डिबेंचर [ऋणपत्र] जारी कर इसे स्वयं खरीद लें।

श्रीयुत नौरोजी एच० बेलगाँववाला
२३७, फ्रीयर रोड
फोर्ट, बम्बई

गुजराती प्रति (एस० एन० १२२६८) की फोटो-नकलसे।

३९३. पत्र : कालूराम बाजोरियाको

आश्रम
साबरमती
मंगलवार, श्रावण अमावस्या, ७ सितम्बर, १९२६

भाईश्री ५ कालूराम,

आपका पत्र मिला। यदि पुनर्विवाह न करनेका आपका आग्रह है और यदि यही आपके अन्तःकरणकी आवाज है तो इसे आपको निश्चयपूर्वक सबके सामने प्रकट कर देना चाहिए। इस बारेमें मुझे तनिक भी शंका नहीं है। देशकी हालत बहुत ही दयनीय है। पर कभी-कभी मौनसे भी काम सरता है। मुझे विश्वास है कि मेरे मौनसे इस समय ऐसा ही हो रहा है।

श्री कालूराम बाजोरिया
द्वारा जीवराज रामकिशनदास
नं० २६/१ आरमीनियन स्ट्रीट
कलकत्ता

गुजराती प्रति (एस० एन० १२२७०) की माइक्रोफिल्मसे।

३९४. पत्र : नानाभाई भट्टको

आश्रम
साबरमती
मंगलवार, श्रावण अमावस्या, ७ सितम्बर, १९२६

भाईश्री ५ नानाभाई,

इस पत्रके साथ पूंजाभाईके पत्रकी नकल भेज रहा हूँ। 'भगवती सूत्र' सम्बन्धी व्यवस्था पुरातत्त्व मन्दिरको सौंप दी है। क्या वह व्यवस्था हमें स्वीकार न कर लेनी चाहिए? इस विषयमें कुछ-न-कुछ करनेकी आवश्यकता तो होगी ही। जो उचित हो सो करें।

श्री नानाभाई भट्ट
दक्षिणामूर्ति
भावनगर

गुजराती प्रति (एस० एन० १२२७१) की फोटो-नकलसे।

३९५. सन्देश : भवानीदयालको

मंगलवार [७ सितम्बर, १९२६से पूर्व][1]

प्रवासी भवनका हेतु प्रवासीओंके लीये पुस्तकालय खोलनेका है। मेरी उमीद है कि प्रवासीयोंके अनुकूल पुस्तकें रखी जायगी। आजकल लोग पुस्तकालयमें हर किसमकी अच्छी बूरी पुस्तकें रख लेते हैं। मैं आशा करता हुं [कि] इस पुस्तकालयमें बूरे पुस्तक नहि रखे जायंगे।

मोहनदास गांधी

मूल (सी० डब्ल्यू० ८६५४) से।
सौजन्य : विष्णुदयाल

१. इस सन्देशके उत्तरमें भवानीदयालने ९ सितम्बर, १९२६ को पत्र लिखा था।

३९६. पत्र : जयसुखलाल कृष्णलाल मेहताको

[७ सितम्बर, १९२६ या उसके पश्चात्][1]

भाईश्री ५ जयसुखलाल,[2]

आपका पत्र मिला। अब मुझे थोड़ी बेफिक्री हुई। मुद्राके प्रश्नको[3] समझनेकी मैंने कोशिश ही नहीं की। मैं ठहरा क्षणजीवी। अतः जिस क्षण मेरे ऊपर जो भार होता है उस क्षण उससे दब जाता हूँ और भार हट जानेपर फिर सीधा बैठ जाता हूँ। मैं अब मुद्रा समस्याके भारसे मुक्त हो गया हूँ।

दक्षिण आफ्रिकाके शिष्टमण्डलके विषयमें मैंने लालजी सेठको लिखा है। मैं उनके उत्तरकी प्रतीक्षामें हूँ।

गुजराती प्रति (एस० एन० १२२४०) की फोटो-नकलसे।

३९७. अकर्ममें कर्म[4]

[८ सितम्बर, १९२६]

यदि जरा भी मुमकिन होता, या मेरी रायमें ऐसा करना उचित होता तो डा० सैयद महमूद तथा अन्य मित्रों द्वारा प्रकाशित सार्वजनिक अपीलमें[5] किये गये अनुरोधको मान लेनेमें मुझे बड़ी ही प्रसन्नता होती। उस अपीलपर दस्तखत करने-वालोंका यह सोचना भूल है कि मैंने सार्वजनिक कार्यसे संन्यास ले लिया है। मैंने तो एक सालतक उन सार्वजनिक कामोंके लिए अहमदाबादसे अपने बाहर जानेपर बन्दिश-भर लगाई है, जो मेरे जाये बिना सम्पन्न किये जा सकते हों। अब तो वह साल खत्म होनेपर ही है। इस बन्दिशकी वजह तो मैंने सालके शुरूमें ही पूरे तौरपर

१. इस पत्रमें उल्लिखित लालजी सेठ नारणजीको भेजा गया पत्र ७ सितम्बर, १९२६ को लिखा गया था।

२. भारतीय व्यापारी संघ, बम्बईके मन्त्री; जिन्होंने १७ अगस्त, १९२६ को गांधीजीसे भारतीय मुद्रासे सम्बन्धित शाही आयोगकी रिपोर्टके सिलसिलेमें भेंट की थी।

३. आयोगकी रिपोर्ट अगस्त, १९२६ में प्रकाशित की गई थी; उसमें रुपयेका मूल्य १८ पेंस स्वर्ण नियत करनेका सुझाव था जिसके विरुद्ध भारतमें आन्दोलन किया गया था।

४. एसोसिएटेड प्रेसको अहमदाबादमें सितम्बर ८ की अपनी भेंटमें गांधीजीने बताया था कि डा० महमूद और अन्य सज्जनोंने उनसे दुबारा सार्वजनिक जीवनको अपनाकर एक प्रातिनिधिक सम्मेलन बुलानेकी जो अपील की थी, उसके उत्तरमें यह लेख देखा जा सकता है; और यह भी कहा था कि उस अपीलपर हस्ताक्षर करनेवाले लोगोंने जो-कुछ करनेको कहा है, वे वैसा करनेमें असमर्थ हैं।

५. देखिए परिशिष्ट ४।

बता दी थी। उस वक्त मेरी सेहत और आश्रमकी जरूरतने यह लाजिमी कर दिया था कि मैं तकलीफदेह सफर और बहुत मेहनतके सार्वजनिक कार्योंसे कुछ फुरसत लूँ। यदि मैंने कौंसिलोंके कामोंमें दखल नही दिया है तो इसका कारण यही है कि कदाचित् वे काम मेरी रुचिके अनुकूल नहीं हैं। और कौंसिलोंके द्वारा हमें स्वराज्य मिल सकता है, मेरी ऐसी श्रद्धा ही नहीं है। मैंने हिन्दू-मुस्लिम झगड़ोंमें हाथ डालना इसलिए बन्द कर दिया है कि मेरा पक्का यकीन है कि ऐसे मौकेपर इनमें हाथ डालनेसे नुकसान ही हो सकता है। अब रहे अस्पृश्यता, राष्ट्रीय शिक्षा-संस्थाएँ और चरखा। इन तीनोंके लिए मैं जितना कर सकता हूँ उतना कर ही रहा हूँ।

इसलिए मैं उक्त मित्रोंसे यह कहनेका साहस करता हूँ कि उन्हें जो मेरा अकर्म प्रतीत होता है, वह वास्तवमें मेरा एकाग्र चित्तसे किया गया कर्म है।

मैं इन मित्रोंकी तरह निराश कतई नहीं हूँ। हिन्दू-मुसलमानोंके ये झगड़े अनजानेमे स्वराज्यकी लड़ाई ही हैं। इन दोनोमें से हरएक यह जानता है कि स्वराज्य आ रहा है। इन दोनोंमें से हरएककी यह कोशिश है कि वह स्वराज्यके आनेके समय उसके लिए तैयार रहे। हिन्दू सोचते हैं कि वे मुसलमानोंकी बनिस्बत जिस्मानी ताकतमें कमजोर हैं और मुसलमान खयाल करते हैं कि उनके पास शिक्षा और सम्पत्ति कम है। अब वे दोनों वही कर रहे हैं जो आजतक कमजोर लोग करते आये हैं। अतः यह लड़ाई चाहे जितनी अशुभ क्यों न हो, हमारी तरक्कीकी निशानी है। यह अंग्रेजोंकी 'वॉर्स ऑफ द रोजेज' की तरह घरेलू लड़ाई है। उससे एक बड़ा शक्तिशाली राष्ट्र तैयार होगा। इस खूंरेजीसे एक बेहतर दवा सन् १९२० में हमारे पास थी; लेकिन हम उसे नही अपना सके। लेकिन लाचारी और भीरुतासे तो रक्तपात भी अच्छा है।

यहाँतक कि मोतीलालजी तथा लालाजीके बीचमें जो अशोभनीय द्वन्द्व चल रहा है, वह भी उसी लड़ाईका एक अंग है। हिन्दुस्तानकी आजादीके दुश्मन चाहें तो इन देशभक्तोंके मतभेदोंपर खुशियाँ मनायें। लेकिन उनकी खुशियाँ खत्म होनेसे पहले ही ये देशभक्त फिर एक झण्डेके नीचे काम करते दिखाई देंगे। ये दोनों सज्जन देशप्रेमी हैं। लालाजी समझते हैं कि साम्प्रदायिकता अनिवार्य है। पण्डितजीको उसकी कल्पनातक से चिढ़ है। यह कौन कहेगा कि इनमे से एककी बात ही ठीक है? दोनोंकी प्रवृत्तियाँ वर्तमान वातावरणकी प्रतिध्वनियाँ-मात्र हैं। लालाजीने राजनैतिक क्षेत्रमें स्वराज्यका मन्त्र जपते हुए ही पदार्पण किया था। उन्हें आज भी उससे घृणा नही है। उनका विचार साम्प्रदायिक दृष्टिको मानकर स्वराज्यतक पहुँचनेका है, क्योंकि उनकी धारणा है कि यह हमारे विकासकी एक अनिवार्य मंजिल है। पंडितजीका खयाल यह है कि साम्प्रदायिकता राष्ट्रीयताके रास्तेकी बाधा है; किन्तु वे इस कारण उसपर ध्यान देना नहीं चाहते — ठीक उसी भाँति जिस भाँतिकी मानसिक उपचार-कर्त्ता यह मानते हुए कि आरोग्य जीवनका नियम है, रोग नहीं, रोगको बड़ा महत्त्व नहीं देते। राष्ट्रका काम न तो सर अब्दुर्रहीमके बिना चल सकता है और न हकीम साहब अजमलखाँके बिना। सर अब्दुर्रहीम, जिन्होंने गोखलेके साथ-साथ, जब

वे इसलिंग्टन कमीशनके सदस्य थे, महत्त्वपूर्ण टिप्पणी लिखी थी, देशके दुश्मन नही है। यदि उनका यह खयाल है कि हिन्दुओंके साथ मुसलमानोंकी बराबरीकी स्पर्धाके बिना मुल्क तरक्की नही कर सकता, तो उनको दोषी कौन ठहरा सकता है? मुमकिन है कि उन्होंने तरीके गलत अख्तियार किये हों, लेकिन वे आजादीके प्रेमी जरूर हैं। इसलिए जबकि मैं इन सब प्रकारके विचारवालोंके लिए अपने मस्तिष्कमें स्थान रखता हूँ, तब मेरे लिए तो केवल एक ही मार्ग खुला रह जाता है: मैं साम्प्रदायिकताको एक जरूरी मंजिल नही मानता — या यों कहे कि मुझमें उस मंजिलपर होकर जानेकी क्षमता नही है। इसलिए जबतक यह तूफान निकल नही जाता और जबतक पुनर्निर्माणका काम फिर प्रारम्भ नही हो जाता, तबतक मुझे अपनी शक्ति बचाकर ही रखनी चाहिए।

मैं कौंसिलोंके अन्दर होनेवाले संघर्षको भी थोड़ा दूर ही रह कर देखना चाहता हूँ। जिनका विश्वास कौंसिलोंमें है, कौंसिलोंका काम उत्साहसे करनेके कारण मैं उनका सम्मान करता हूँ।

भारतका शिक्षित समाज ही भिन्न-भिन्न दलोंमें फूटा हुआ है। मैं इन दलोंको एक करनेकी अपनी असमर्थताको स्वीकार करता हूँ। उनके कामका ढंग मेरे कामका ढंग नहीं है। मेरा तरीका नीचेसे चलकर चोटीतक पहुँचनेका है। बाहरवालोंको कामकी यह धीमी चाल ऊबानेवाली मालूम होती है। वे चोटीसे नीचेकी ओर जा रहे हैं और उनका यह ढंग बहुत मुश्किल तथा उलझा हुआ है। वे करोड़ों आदमी, जिनकी ओरसे हस्ताक्षर करनेवालोंने बोलनेका दावा किया है, दलोंकी इन उलझनोंकी ओरसे जिन्हे वे समझ नही पाते, बिलकुल उदासीन हैं।

उनके लिए तो चरखा ही सब-कुछ है। एक कहावत है, ईश्वरके चक्र धीरे-धीरे लेकिन निहायत कारगर तौरपर चलते हैं। मैं ईश्वरके उन्ही छोटे-छोटे कताई-चक्रों, चरखोंको चलवानेमें लगा हूँ। जो हस्ताक्षरकर्त्ता तथा अन्य लोग कुछ परवाह करना चाहें, यह देख सकते हैं कि ये चरखे अनवरत रूपसे चल रहे हैं। उन चरखोंकी क्षमता दिनपर-दिन और अधिक प्रत्यक्ष रूपसे बढ़ती जा रही है। और जब यह तूफान बन्द हो जायेगा, और जब उसके फलस्वरूप ये दल एक हो जायेंगे और हिन्दू-मुसलमान, ब्राह्मण-अब्राह्मण, अत्याचारी और अत्याचार-पीड़ित आपसमे मिल जायेंगे तब वे देखेंगे कि शान्तिसे काम करनेवालोंने देशको विलायती वस्त्रका वैरमूलक या हिंसात्मक बहिष्कार करनेके लिए नहीं, बल्कि स्वास्थ्यवर्धक, अहिंसात्मक वैध बहिष्कार करनेके लिए तैयार कर दिया है। कौमको अपनी सामूहिक शक्तिका कुछ-न-कुछ सुबूत तो देना ही चाहिए और वह शक्ति है विदेशी वस्त्रोंका बहिष्कार करनेकी क्षमता।

अपीलपर हस्ताक्षर करनेवाले अपनेको मेरे अनुयायी कहते हैं। मेरी उनको सलाह है कि वे चरखेके नेतृत्वमें आगे बढ़ें। मैंने उस सीधे-सादे और छोटे-से चरखेका मार्गदर्शन छोड़ा नही है। यह चरखा मेरे कानोंमें नित्य गरीब जनताके कष्टोंका गीत सुनाता है। परिणाम अच्छा हो या बुरा — मैंने अपना सर्वस्व चरखेको अर्पण कर दिया

है, क्योंकि मेरे लिए तो वह दरिद्रनारायणका प्रतीक है — दरिद्रों और दलितोंमें दर्शन देनेवाले नारायणका प्रतीक है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ९-९-१९२६

३९८. पत्र : कृष्णकान्त मालवीयको

भाद्रपद शुक्ल १, १९८२ [८ सितम्बर, १९२६]

भाई कृष्णकांत मालवीया,

आपका तार मीला। यह मेरा लेख :

एक निर्दोष बाला थी उसने लोगोंके व्याख्यान सुने। सुनकर माताके पास चली गई और कहा माता, देखो तो यह लोग सब पागल है क्या बकवाद कर रहे हैं। में तो मेरे चरखेका मधुर गान ही सुनना चाहती हूं। मुझे यह पागलपन न चाहिए। हमारे व्याख्यानकारोंका व्याख्यान और पत्रकारोंकी लेखनी सुनकर और पढ़कर मेरा हाल उस बालाका-सा हो जाता है।

आपका

मोहनदास गांधी

भाई कृष्णकान्त मालवीय
अभ्युदय प्रेस, अलहाबाद

मूल पत्र (एस० एन० १९९४९) की माइक्रोफिल्मसे।

३९९. पत्र : मीठूबहन पेटिटको

आश्रम
साबरमती
बुधवार, भाद्रपद सुदी १ [८ सितम्बर, १९२६][1]

प्यारी बहन,

तुम्हारा पत्र मिला। पार्सल आ जायेगा। तुमने अंगूरका रस बहुत भेज दिया है। देवदास अब मसूरी पहुँच गया है। तुम्हारा पार्सल उसे मिल गया होगा, क्योंकि उसने लिखा है कि उसे तुम्हारा दूसरा पार्सल मिल गया है। मेरे पास जो माल है उसमें से ७२ चीजें बिक गई हैं। मैंने तो उन्हें लोगोंको दिखानेके लिए रख दिया था। उन्हें बेचनेका कोई विशेष प्रयत्न नहीं किया था। लगता है कि तुम पैसेकी

१. देवदासके मसूरीमें रहनेके उल्लेखसे यह पत्र १९२६ में लिखा गया लगता है।

तंगीमें हो। मैं बिके सामानकी बिक्रीके दामोंके रूपमें नहीं, वल्कि सारे मालके लिए ३०० रु० की हुंडी भेजता हूँ। मेरे पास जो चीजें हैं वे न बिकी तो मैं उन्हें वापस भेज दूंगा और जिनकी माग होगी वे चीजें मँगवा लूंगा। मैं तुमसे रुपये वापस नहीं मांगूंगा। झवले जो आयेंगे, उन्हें मालमें जमा कर लूंगा। उनकी कीमत तो तुमने हिसावमें लिख ही ली होगी? ३२५ रु० की चोरी तो 'गरीवीमें आटा गीला' वाली कहावत हो गई है। अब यह चोर हाथ क्या आयेगा?

श्रीमती मीठूवहन पेटिट
पार्क हाउस
कोलावा, वम्वई

गुजराती प्रति (एस० एन० १०६०७) की माइक्रोफिल्मसे।

४००. पत्र : ठाकोरदास सुखड़ियाको

आश्रम
सावरमती
बुधवार, भाद्रपद सुदी १, ८ सितम्बर, १९२६

भाईश्री ५ ठाकोरदास,

आपका पत्र मिला। आपने जो-कुछ लिखा है वह सब गलत है ऐसा तो मैं कह ही नहीं सकता। पर आपका हितेच्छु होनेके नाते आपको सावधान कर देना चाहता हूँ। हमारे अन्दर दो शक्तियाँ काम करती हैं — एक दृश्य और दूसरी अदृश्य। अदृश्य शक्ति दृश्य शक्तिसे कहीं अधिक वलवान होती है। वह दैवी शक्ति हो सकती है और आसुरी भी। 'सरस्वतीचन्द्र' में गोवर्धनभाईने[1] इनकी हूवहू तसवीर खींच दी है। कुमुदकी दृश्य शक्ति उसे प्रमादधनके पास वनाये रखती थी। पर उसकी अदृश्य शक्ति उसे सरस्वतीचन्द्रकी ओर खींचती जा रही थी। जिसकी अदृश्य शक्ति दैवी है तथा जिसकी दृश्य शक्ति उसके वशमें रहती है, उसे लाख-लाख प्रणाम। यदि आप दोनोंमें इन शक्तियोंका इतना सुन्दर समन्वय है तो फिर कौन दोष निकाल सकता है? दूसरे जन्मके सम्वन्धमें मनुष्यको मात्र एक ही इच्छा शोभा देती है और वह यह कि इस जन्मके उपरान्त वह परमात्मामें जा मिले। यदि उसकी यह इच्छा

१. (१८५५-१९०७); गुजरातीके एक प्रसिद्ध लेखक जिन्होंने १८८७ और १९०१ के बीच चार भागोंमें छपे **सरस्वतीचन्द्र** नामक अपने उपन्यासमें आधुनिक गुजरातके आविर्भावकी कहानी लिखी है। इस उपन्यासकी नायिका, कुमुदकी सगाई पहले सरस्वतीचन्द्रके साथ हुई, पर उसके घर छोड़कर चले जानेके बाद उसका विवाह प्रमादधनके साथ कर दिया गया।

पूरी हो जाती है तो इसीसे पिता, माता, भाई-बंधु, बहन तथा अन्य प्रियजनोंसे उसका मिलन हो जाता है।

पी० ठाकोरदास सुखड़िया
किनारी बाजार
सूरत

गुजराती प्रति (एस० एन० १२२७३) की फोटो-नकलसे।

४०१. पत्र: प्यारेलाल नैयरको

आश्रम
साबरमती
बुधवार, भाद्रपद सुदी १ [८ सितम्बर, १९२६][1]

चि० प्यारेलाल,

तुम्हारा लम्बा पत्र मिला। तुम्हारा धर्मसंकट मैं समझता हूँ। पर कहीं अतिशयताका समावेश न होने पाये इसका ध्यान रखनेकी मेरी सतत इच्छा रही है। कई बार अतिशय संकोच करना भी अविनयकी निशानी बन जाता है। अब तुम एक रीति विशेषको अपनाये हुए हो तो उसमें कोई तबदीली करनेकी आवश्यकता नहीं देखता। ऐसा करनेसे मथुरादासको[2] कुछ ठेस पहुँच सकती है। इसलिए अभी जैसा चल रहा है वैसे ही चलने दो। जब तुम्हारे पास पैसा समाप्त हो जाये तब मुझे लिखना। खादी तो मिल गई होगी? अबतक पिछला लेख तैयार कर लिया होगा। अपने स्वास्थ्यको सुधारना। मुझे पत्र लिखते रहना।

प्यारेलालजी
होमी विला
पंचगनी

गुजराती प्रति (एस० एन० १२२७४) की फोटो-नकलसे।

१. प्यारेलाल नैयर १९२६ में पंचगनीमें थे।
२. मथुरादास त्रिकमजी, जिनके साथ प्यारेलाल नैयर, पंचगनीमें रहते थे।

४०२. पत्र : छोटालाल तेजपालको

भाद्रपद सुदी १, १९८२, ८ सितम्बर, १९२६

भाईश्री ५ छोटालाल तेजपाल,

शवको गाड़ीमें रखकर ले जाया जाये या कंधोंपर इसका अस्पृश्यताके साथ कोई सम्बन्ध है, ऐसा मुझे नहीं लगता। मेरे शवको गाड़ीमें ही ले जाया जाये ऐसी वसीयत मैं नहीं करना चाहता, क्योंकि इसमें मुझे कुछ मोह दीख पड़ता है। यदि आश्रममें ही अग्निसंस्कार किया जाये तो थोड़ेसे बाँसोंपर या हाथसे ही उठाकर ले जाया जाये, मैं इसे अधिक उपयुक्त मानता हूँ। शवको गाड़ीमें ही ले जाना धर्म है, मैं इसे नहीं मानता। लेकिन प्रसंगवश कुछ अवसरोंपर ऐसा करनेकी आवश्यकता और उपयुक्तताको मैं पूरी तरह स्वीकार करता हूँ।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजराती पत्र (एस० एन० १९९४८) की माइक्रोफिल्मसे।

४०३. विद्यार्थियोंकी दुर्दशा

एक बहन, जिन्हें अपनी जिम्मेदारीका पूरा खयाल है, लिखती हैं:

> जबतक हमारे बच्चे वीर्यकी रक्षा करना नहीं सीखते, तबतक हिन्दुस्तानको जैसे चाहिए वैसे व्यक्ति कभी नहीं मिलेंगे। १७ वर्षोंतक हिन्दुस्तानमें मैंने लड़कोंके स्कूलोंका काम सँभाला है। हिन्दू, मुसलमान और ईसाई लड़के जिस बड़ी संख्यामें स्कूलकी पढ़ाई, जोश, ताकत और उम्मीदोंसे भरकर शुरू करते हैं लेकिन उसे खत्म करते-करते वे शरीरसे जिस तरह निकम्मे हो जाते हैं, उसे देखकर मुझे रुलाई आती है। मैंने सैकड़ों लड़कोंके बारेमें जाँच करके यह पाया है कि इसका प्रत्यक्ष कारण वीर्यनाश, अप्राकृतिक कर्म या बाल-विवाह ही है। आज मेरे पास ऐसे ४२ लड़कोंके नाम हैं जो अप्राकृतिक कर्मके दोषी हैं, जिनमें से १३ सालसे अधिक आयुका एक भी नहीं है। शिक्षक और माता-पिता कहेंगे कि ऐसी हालत हर्गिज नहीं है; फिर भी अगर सही ढंगसे जाँच की जाये तो तुरन्त ही इस व्याधिका पता लग जायेगा और करीब-करीब हर लड़का अपना गुनाह कबूल कर लेगा। इनमें से ज्यादातर लड़कोंका कहना यह है कि उन्हें सयाने आदमियों, कुछको अपने सम्बन्धियोंके संसर्गसे यह कुटेव पड़ी है।

यह कोई काल्पनिक तसवीर नहीं है। यह एक तथ्य है और इसे जानते हुए भी कितने ही शिक्षक इसे छुपाते हैं। यह बात पहले भी मेरे सामने आई है। आजसे कोई आठ साल हुए, दिल्लीके एक शिक्षकने मेरा ध्यान इस ओर खींचा था। इसके इलाजके बारेमें अबतक खानगीमें ही मैं बातें करता आया हूँ और चुप रहा हूँ। यह दोष सिर्फ हिन्दुस्तानतक ही सीमित नहीं है। मगर बाल-विवाहके पापके कारण हमपर इसका प्रभाव अधिक घातक पड़ा है। इस बहुत ही नाजुक और मुश्किल सवालकी आम चर्चा जरूरी हो गई है, क्योंकि अबसे कुछ साल पहले इतनी स्वच्छन्दतासे स्त्री-पुरुषोंके सम्बन्धोंकी चर्चा करना गैरमुमकिन था, जितनी स्वच्छन्दतासे वह आज प्रतिष्ठित पत्रोंतकमें की जाती है।

संभोगको देह और दिमागकी तन्दुरुस्तीके लिए फायदेमन्द, नैतिक, जरूरी और स्वाभाविक समझनेकी प्रथासे इस बुराईकी वृद्धि हुई है। हमारे सुशिक्षित पुरुषों द्वारा गर्भनिरोधक साधनोंके स्वच्छन्द व्यवहारके समर्थनसे कामवासनाको अपनी वृद्धिके लिए समुचित वातावरण मिला है। छोटे लड़कोंके कोमल और संग्राहक मस्तिष्क ऐसे नतीजे बहुत जल्दी निकाल लेते हैं कि उनकी अधार्मिक इच्छाएँ अच्छी और उचित हैं। इस भयंकर बुराईके प्रति माता-पिता और शिक्षक, खेदजनक और प्राय: अपराधपूर्ण उदासीनता और सहनशीलता दिखलाते हैं। मेरी समझमें सामाजिक वातावरणको पूरा-पूरा शुद्ध बनाये बिना यह बुराई रोकी नही जा सकती। विषय-भोगके विचारोंसे भरे हुए वातावरणका अज्ञात और सूक्ष्म प्रभाव देशके विद्यार्थियोंके मनोंपर पड़े बिना रह ही नहीं सकता। नागरिक जीवनकी परिस्थिति, साहित्य, नाटक, सिनेमा, घरेलू वातावरण और कितनी ही सामाजिक प्रथाएँ — इन सबका मिला-जुला एक ही असर होता है और वह है कामवासनाकी वृद्धि। जिन छोटे लड़कोंमे यह पाशविक प्रवृत्ति जग गई है, इन प्रभावोंके होते हुए उनमें इसके जोरको रोकना गैर-मुमकिन है। ऊपरी उपायोंसे काम नहीं चलनेका। यदि वयस्क और प्रौढ़ नई पीढ़ीके प्रति अपना कर्त्तव्य पूरा करना चाहते हैं तो उन्हें यह सुधार पहले अपनेसे ही शुरू करना होगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ९-९-१९२६

४०४. अनीतिकी राहपर

मेरे पास अंग्रेजी तथा देशी भाषाओंमें इस आशयके अनेक पत्र आये हैं कि में 'अनीतिकी राहपर' शीर्षक लेखमालाको हिन्दी, गुजराती और अंग्रेजी — तीनों भाषाओंमें पुस्तकाकार प्रकाशित करूँ। मुझे मालूम है कि १०–१२ चिट्ठियाँ तो सिर्फ उन्ही पत्र-लेखकोंकी माँग जाहिर कर सकती हैं। सम्भव है वास्तवमें समस्त समाजको पुस्तककी जरूरत न हो। यह समय नई पुस्तकें प्रकाशित करनेके लिए उपयुक्त नहीं है। लेकिन एक मित्रने इसका उपाय सुझाया है और सारे नुकसानकी भरपाई करनेकी हामी भरी है। इसलिए, जो सज्जन इन पुस्तिकाओंकी छपाई इत्यादिके लिए कुछ देनेकी अपनी बातपर अभीतक कायम हों तो वे कृपा करके अपना-अपना चन्दा भेज दें। यदि प्रतियाँ चाहनेवाले अपने नाम पहले ही से 'यंग इंडिया' के कार्यालयको सूचित कर देंगे तो प्रबन्धकको यह निश्चित करनेमें आसानी हो जायेगी कि पुस्तककी कितनी प्रतियाँ छपाना उचित होगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ९-९-१९२६

४०५. टिप्पणियाँ

आगामी कांग्रेस सभापति

श्रीयुत श्रीनिवास आयंगारको आगामी कांग्रेस अधिवेशनका सभापति चुननेकी बात पहलेसे ही पक्की थी। कांग्रेस कमेटियाँ एक कट्टर स्वराज्यवादीको ही चुननेके लिए बाध्य थीं। श्रीनिवास आयंगार एक लड़ाकू वीर होनेके साथ ही साथ आदर्शवादी भी हैं। उनमें सब्र नहीं है और उनका बेसब्री भरा जोश उन्हें प्रायः इतने गहरे पानीमें ले जाता है, जहाँ मामूली आदमीकी गति नहीं। वे किसी भी काममें बिना अधिक सोच-विचार किये ही कूद पड़ते हैं। अभूतपूर्व कठिनाईके अवसरपर ऐसे उत्तरदायित्वपूर्ण पदपर उनका चुनाव हुआ है। लेकिन श्री आयंगारको अपनेमें तथा अपने सदुद्देश्यमें विश्वास है। यह बात सर्वविदित है कि ईश्वर आत्मविश्वासीकी ही सहायता करता है। हम आशा करें कि वह श्री आयंगारकी भी सहायता करेगा। श्री आयंगारको कांग्रेसजनोंके अधिकसे-अधिक सहयोगकी जरूरत पड़ेगी। हमने निष्क्रिय भक्ति दिखाना तो सीख लिया है, लेकिन अब समय आ पहुँचा है, जब हमें सक्रिय भक्ति दिखाना भी सीखना होगा। अगर कांग्रेसजन अपनी नीति और अपने प्रस्तावोंको, जिन्हें स्वीकृत किये जानेमें उनका योग रहता है, कार्यरूप देंगे तो श्री आयंगारका काम कठिन होते हुए भी आसान बन जायेगा। जिस संस्थाको उन्नति करनी है

उसके सदस्योंको कमसे-कम इतना तो करना ही चाहिए। श्री आयंगारको जो यह बड़ा सम्मान मिला है उसके लिए मैं उन्हें बधाई देता हूँ। मैं उनके सामने जो असाधारण कठिनाइयाँ हैं उनमें भी उनके साथ सहानुभूति प्रकट करता हूँ। मैं ईश्वरसे प्रार्थना करता हूँ कि वह उन्हें उन कठिनाइयोंपर विजय पानेके लिए पर्याप्त बुद्धि और बल दे।

अनुकरणीय

चरखा संघके मन्त्रीके पास सूतका चन्दा भेजते हुए श्रीयुत हरिभाऊ फाटक लिखते हैं:

> **आज मैं श्रीमती अन्नपूर्णा गोरेका २५,००० गज सूत भेज रहा हूँ। वर्षा ऋतुके चतुर्मासमें, महाराष्ट्रकी कितनी ही महिलाएँ कोई व्रत लेती हैं। श्रीमती अन्नपूर्णाबाईने इस ऋतुमें १ लाख गज सूत कातकर चरखा संघको भेजनेका निश्चय किया है। यह सूत उनकी पहले महीनेकी किस्त है। वे मेरे मित्र श्रीधर पन्त शास्त्रीकी पत्नी हैं। दोनों पति-पत्नी अ० भा० चरखा संघके सदस्य हैं। वे सालभरका अपने सूतका पूरा चन्दा भेज चुके हैं। उनका कुटुम्ब व्यवसायी हैं। वे बाल-बच्चेदार हैं और गरीब हैं; और इसके अतिरिक्त उनकी आँखें खराब हैं। इसलिए, उनका यह उद्योग अवश्य ही ध्यान देने योग्य है।**

यह उद्योग निस्सन्देह ऐसा ही है। यह राष्ट्रप्रेमके बिना असम्भव है और चरखा-आन्दोलनके मूलमें गरीबोंके प्रति प्रेम, ईश्वर-भक्ति और स्वदेशप्रेम — ये सभी बातें हैं।

अछूतोंमें भी अछूत

अस्पृश्यताका अभिशाप 'अछूतों'में भी भिद गया है। और इस प्रकार हमारे यहाँ अस्पृश्योंमें भी अस्पृश्यताकी श्रेणियाँ हैं। ऊँची श्रेणीके अछूत निम्न श्रेणीके अछूतोंसे सम्पर्क नहीं रखना चाहते। एक थिया मित्र कालीकटसे लिखते हैं:

> **निम्न जातिके माने जानेवाले, शिक्षा और सामाजिक स्थितिमें काफी उन्नत और इस दृष्टिसे मलाबारके अन्य किसी भी समाजकी लगभग बराबरीके हम थिया लोगोंका कालीकटमें अपना एक मन्दिर है। श्री श्रीनारायण गुरुके जन्मदिवसके अवसरपर पंचम भाइयोंको भी मन्दिरमें प्रवेश करानेके प्रश्नपर विचार करनेके लिए एक सभा बुलाई गई थी। ज्यादातर लोगोंने इसका विरोध किया और प्रस्तावके समर्थकोंको तंग करते हुए वहाँ खूब गुंडागर्दी भी हुई। हमने पंचम भाइयोंके प्रवेशके पक्षमें मत दिये, किन्तु हमारी संख्या कम थी। इसलिए हमने इस मन्दिरका बहिष्कार कर दिया और हम पूजा करनेके लिए एक अन्य मन्दिरमें जाते हैं, जहाँ इस प्रकारका भेदभाव नहीं किया जाता। हमने इस मामलेमें अन्ततक लड़नेका संकल्प कर लिया है।**

मैं सुधारकोंके इस छोटे-से दलको बधाई देता हूँ। जिस अधिकारसे पंचमोंको वंचित रखा गया है, उसका स्वयं उपयोग करनेसे इनकार करके उन्होंने उचित ही किया है। जो न्यायका दावा करते हैं उन्हें शुद्ध होना ही चाहिए। थियोंको चाहिए कि वे दूसरोंके लिए ऐसी दीवार खड़ी न करें जिसे अपने लिए खड़ी करनेपर वे स्वयं तोड़ना चाहें। हमें वाइकोम सत्याग्रहसे यही शिक्षा मिलती है। इसे कदापि नहीं भूलना चाहिए। इसलिए सुधारकोंको सच्चे सत्याग्रहीकी भावनासे तथा क्रोधका परित्याग करके दृढ़ निश्चयके साथ यह संघर्ष जारी रखना चाहिए। इस प्रकार वे यथाशीघ्र अल्पसंख्यक न रहकर बहुसंख्यक हो जायेंगे। समयका प्रवाह उनके अनुकूल है।

झूठका अम्बार

यदि आज दुनियाके ज्यादातर अखबार बन्द कर दिये जायें तो इससे दुनियाका कोई नुकसान नहीं होगा, बल्कि शायद इससे उसे चैन ही मिलेगा। प्रायः सच्ची बातोंके बजाय अखबारोंमें झूठी गप्पें छपती हैं। ये विचार मेरे मनमें 'मैसेंजर ऑफ अमेरिका' नामक पत्रमें मेरी किसी कथित 'भेंट'की रिपोर्ट छपी देखकर उठे हैं। यह अमेरिकाकी दर्शन-सभाका मुखपत्र है। किसी दर्शन-सभाका मुखपत्र भी सत्यके बदले गप्पका ही प्रचार क्यों करता है, यह बात मेरी समझके बाहर है।

अगर उसमें मेरे थियोसॉफी विषयक विचार तोड़े-मरोड़े न गये होते तो मैं इस 'भेंट' पर कुछ भी ध्यान न देता।

इसलिए ऐसी गप्पोंका तो मुझे कोई खण्डन ही नहीं करना है कि 'मैं पुराने ढरेंके चरखेपर सूत कात रहा था' अथवा 'मेरी कोठीके बाहर आमके पेड़ हैं।' इससे भी बड़ी गप्प यह है कि हम "भारतीयोंको आत्मत्याग करनेके लिए नैतिक शक्ति अमेरिका अथवा अन्य बड़े राष्ट्रोंकी सहानुभूतिसे ही मिलती है।" मुझे इसे भी दरगुजर कर देना चाहिए।

हाँ, थियोसॉफी सम्बन्धी गप्पका खण्डन तत्काल करना चाहिए। बताया गया है कि अन्य बातोंके साथ-साथ मैंने यह भी कहा कि मेरी सहानुभूति थियोसॉफिकल सोसाइटीसे नहीं है। मैं उसका सदस्य तो अब भी हूँ, मगर उक्त आन्दोलनसे मुझे सहानुभूति नहीं है। जो-कुछ मैं कह सकता था, यह ठीक उसका उलटा है, क्योंकि थियोसॉफिकल सोसाइटीका सदस्य न तो मैं कभी रहा हूँ और न अब हूँ, किन्तु उसके "वसुधैव कुटुम्बकम्" और तज्जनित सहिष्णुताके सन्देशसे मेरी सहानुभूति सदा रही है और अब भी है। थियोसॉफिस्ट मित्रोंसे मुझे बड़ा लाभ पहुँचा है। मेरे अनेक मित्र थियोसॉफिस्ट भी हैं। श्रीमती ब्लैवट्स्की, डाक्टर बेसेंट या कर्नल ऑलकाटके विषयमें टीका करनेवाले कुछ भी क्यों न कहें, मानवजातिके प्रति उनकी सेवाका मूल्य हमेशा ही ऊँचा माना जायेगा। मेरे इस सभाके सदस्य बननेमें जो बाधा रही है, उसका कुछ-कुछ ठीक पता इस भेंटसे लगता है। वह है इस सम्प्रदायका गुप्त पक्ष — इसकी गूढ़ता। मुझे यह बात कभी नहीं जँची। मैं तो सर्वसाधारणमें ही रहना चाहता हूँ। किसी प्रकारका रहस्य जनतन्त्रीयताके भावको बाधा पहुँचाता है। किन्तु मैं इतना

तो मानता हूँ कि किसी भी बातके दो पक्ष तो होते ही हैं। धर्ममें कुछ रहस्य बनाये रखनेके सिद्धान्तके पक्षमें बहुत-कुछ कहा जा सकता है। हिन्दू धर्म तो इस दोषसे निश्चय ही मुक्त नही है। किन्तु मेरे लिए उसे स्वीकार करना आवश्यक नहीं है।

मैंने अपने मिलनेवालोंसे यह अनुरोध बार-बार किया है और एक बार फिर करता हूँ कि अगर उन्हें मुझसे मिलना हो और मेरे बारेमें कुछ छापना हो तो वे मुझसे हुई अपनी बातचीतका जो विवरण देना चाहते हों उसे सुधार और पुष्टि करनेके लिए मेरे पास भेज दें। वे इससे मुझपर अनुग्रह तो करेंगे ही, सत्यकी सेवा भी करेंगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ९-९-१९२६

४०६. बाल-विवाहके समर्थनमें

'यंग इंडिया' के एक पाठक लिखते है:

२६ अगस्त सन् १९२६ के 'यंग इंडिया' में आपके 'बाल-विवाहका अभिशाप' शीर्षक लेखमें यह वाक्य पढ़कर मुझे बहुत ही दुःख पहुँचा है कि जिसे आत्मसंयमसे कुछ भी सरोकार न हो और जो पापमें डूबा हो, वही यह कह सकता है कि कन्याके रजस्वला होनेके पूर्व ही उसका विवाह कर देना चाहिए और ऐसा न करना पाप है।

मेरी समझमें यह नहीं आता कि आप अपनेसे भिन्न राय रखनेवालोंको उदार दृष्टिसे क्यों नहीं देख सकते। कोई भी इतना तो अवश्य ही कह सकता है कि बाल-विवाहकी व्यवस्था देकर स्मृतिकार मनुने सरासर भूल की है। परन्तु मैं यह कहना अनुचित मानता हूँ कि जो वह बाल-विवाहका आग्रह करता है, वह 'पापमें डूबा हो।' यह कहना वादविवादकी शिष्टताकी मर्यादाओंका उल्लंघन करता जान पड़ता है। वास्तवमें मैंने बाल-विवाहके विरुद्ध ऐसी बात पहली ही बार सुनी है। जहाँतक मुझे मालूम है न तो कभी हिन्दू-समाज सुधारकोंने ऐसा कहा है और न ईसाई पादरियोंने। इसलिए, जब मैंने इस बातको महात्मा गांधीकी, जिन्हें मैं कमसे-कम प्रतिद्वन्द्वीके प्रति उदारतापूर्ण व्यवहार करनेमें सम्पूर्ण पुरुष मानता हूँ, लेखनीसे निःसृत देखा तब उससे मुझे कैसा धक्का लगा होगा उसकी आप कल्पना तो करें।

आपने तो एक-दोको नहीं, बल्कि प्रायः प्रत्येक हिन्दू स्मृतिकारको त्याज्य ठहराया है, क्योंकि जहाँतक मुझे मालूम है, प्रत्येक स्मृतिकार लड़कियोंके बाल-विवाहका आदेश देता है। आप कहते हैं कि लड़कियोंके बाल-विवाहका आदेश देनेवाले अंश क्षेपक मात्र है; किन्तु इसपर विश्वास करना असम्भव ही है।

वाल-विवाहकी रूढ़ी किसी विशेष प्रान्त या समाजतक ही सीमित नहीं है। वल्कि भारत-भरमें प्रचलित है और 'रामायण'के समयसे चली आती है।

मैं संक्षेपमें यह वतानेकी चेष्टा करूँगा कि किन कारणोंसे हिन्दू स्मृति-कारोंने वाल-विवाहपर जोर दिया होगा। उन्होंने यह इष्ट समझा कि साधारणतः प्रत्येक वालिका विवाहिता होनी चाहिए। यह लड़कियोंके सुख और शान्तिके लिए ही आवश्यक नहीं है, वरन् साधारणतः समाजके लिए आवश्यक है। यदि सभी लड़कियोंको विवाहित होकर रहना है, तो उनके लिए वर चुननेका काम लड़कियोंके माता-पिताओंको करना चाहिए, स्वयं लड़कियोंको नहीं। यदि यह काम लड़कियोंपर ही छोड़ दिया जाये तो नतीजा यह होगा कि वहुतसी लड़कियाँ विन व्याही ही रह जायेंगी — इसलिए नहीं कि वे विवाह करना नहीं चाहतीं, वल्कि इसलिए कि सब लड़कियोंके लिए उपयुक्त वर चुनना वहुत कठिन होगा। यह तरीका खतरनाक भी है, क्योंकि इससे अनाचर फैल सकता है और वे युवक जो वाह्यतः अच्छे मालूम होते है, भोली-भाली लड़कियोंको आचरण-भ्रष्ट कर सकते हैं और यदि वर ढूंढनेका काम माता-पिताओंको करना है तो लड़कियोंका व्याह कम उम्रमें ही कर देना होगा, क्योंकि जव वे सयानी हो जाती है, तव वे किसीके प्रेममें वँध सकती हैं और तव सम्भव है, वे माता-पिताओं द्वारा चुने हुए वरसे विवाह करना पसन्द न करें। लड़की वचपनमें ही विवाह कर देनेसे अपने पतिसे और पतिके परिवारसे समरस हो जाती है। अतः तव अपने पतिसे उसका मेल अधिक स्वाभाविक और अधिक परिपूर्ण होता है। कभी-कभी सयानी लड़कियोंके लिए, जिनके विचार और विशेष प्रकारके वन जाते हैं, नये घरमें पहुँचकर अपनेको तदनुरूप वनाना कठिन हो जाता है।

लड़कियोंके वाल-विवाहके विरुद्ध मुख्य आपत्ति यह है कि उससे लड़कियाँ तथा उनके वच्चे कमजोर हो जाते हैं। परन्तु यह आपत्ति निम्नलिखित कारणोंसे कोई वहुत समाधानकारक नहीं है: अव हिन्दुओंमें लड़कियोंके विवाह-की उम्र क्रमशः ऊँची होती जा रही है। लेकिन हमारी प्रजाति अधिकाधिक दुर्वल हो रही है। पचास या सौ वर्ष पूर्व हमारे देशके स्त्री-पुरुष अवसे साधारणतया अधिक हृष्ट-पुष्ट, स्वस्थ और दीर्घायु होते थे और उन दिनों लड़कियोंके वाल-विवाहकी प्रथा अधिक प्रचलित थी। देरसे व्याही जानेवाली शिक्षित लड़कियोंकी तन्दुरुस्ती उन लड़कियोंकी तन्दुरुस्तीकी वनिस्वत, जिन्हें कम शिक्षा मिलती है और जिनका विवाह छुटपनमें ही कर दिया जाता है, अधिक अच्छी नहीं होती। इन तथ्योंसे यह वहुत मुमकिन मालूम होता है कि वाल-विवाहसे शारीरिक अवनति उतनी नहीं होती, जितनी कुछ लोग समझते है।

आपको यूरोपीय तथा भारतीय दोनों समाजोंका अच्छा ज्ञान है। आप यह जरूर बता सकते हैं कि सब बातोंको देखते हुए भारतीय स्त्रियाँ अधिक पतिपरायण होती हैं या यूरोपीय स्त्रियाँ; गरीब तबकेके भारतीय अपनी स्त्रियोंसे अधिक दयालुताका बरताव करते हैं या यूरोपीय, भारतीय समाजमें क्लेशकारी विवाह कम होते हैं या यूरोपीय समाजमें और भारतीय समाजमें स्त्री-पुरुषके सम्बन्धकी शुद्धता अधिक होती है या यूरोपीय समाजमें। यदि इन पहलुओंसे यूरोपीय विवाहोंकी अपेक्षा भारतीयोंके विवाह अधिक सफल हैं तो लड़कियोंके बाल-विवाहको जो भारतीय विवाहकी पद्धतिकी एक विशेषता है, बुरा नहीं ठहराना चाहिए।

मैं यह नहीं मान सकता कि हिन्दू स्मृतिकार लड़कियोंका विवाह बालपनमें करनेका आदेश देते समय समाजके स्त्री-पुरुष दोनोंके सार्वजनिक कल्याणके सिवा और किसी विचारसे प्रेरित हुए थे। मैं समझता हूँ कि लड़कियोंका बाल्यावस्थामें विवाह करना हिन्दू समाजकी एक ऐसी विशेषता है जिससे अत्यन्त प्रतिकूल परिस्थितियोंमें भी उसको शुद्ध बनाये रखने और छिन्न-भिन्न होनेसे बचानेमें सहायता मिली है। शायद आप इस सबको ठीक न मानें, लेकिन क्या हम यह आशा नहीं रख सकते कि आप अपने इस विचारको त्याग देंगे कि वे सब हिन्दू स्मृतिकार, जिन्होंने कन्याओंके बाल-विवाहपर जोर दिया है, आत्मसंयम-शून्य और पापमें डूबे हुए थे।

आपने मद्रासकी जिस घटनाका हवाला दिया है, वह बड़ी विचित्र है। न्याय-मण्डलकी मान्यता यह थी कि उस लड़कीने आत्मघात किया है, लेकिन लड़कीने यह बयान दिया कि उसके पतिने उसके कपड़ोंमें आग लगा दी थी। इन परस्पर विरोधी स्थितियोंमें, जिन बातोंको आप निर्विवाद मानते हैं, उन्हें सचमुच निर्विवाद मानना बहुत मुश्किल है। तेरह वर्षसे कम उम्रकी लाखों लड़कियोंके विवाह हो चुके हैं, लेकिन किसी लड़कीने पतिकी निर्दयतापूर्ण काम-चेष्टाके कारण आत्महत्या की हो, ऐसी एक भी घटना पहले सुननेमें नहीं आई। संभवतः मद्रासकी इस घटनामें कुछ खास बातें हों और उस लड़कीकी मृत्युका मुख्य कारण बाल-विवाह न हो।

कविवर ठाकुरने ठीक कहा है — "कोई भी मनुष्य उन तथ्योंकी, जो छुपे-छुपे उसकी आत्माको चोट पहुँचाते हैं, कटुता कम करनेके निमित्त एक अनुकूल तत्त्वज्ञान सुगमतासे तैयार कर लेता है।" 'यंग इंडिया' के ये पाठक तो एक कदम और आगे बढ़ गए हैं। उन्होंने एक अनुकूल तत्त्वज्ञान ही तैयार नहीं किया है, बल्कि तथ्योंकी उपेक्षा की है और अपुष्ट बातोंकी नींवपर अपनी दलील खड़ी की है।

अनुदारताके आरोपके बारेमें मैं कुछ लिखना नहीं चाहता, यदि किसी दूसरे कारणसे नहीं तो महज इसीलिए सही कि मैंने दोषारोपण स्मृतिकारोंपर नहीं किया

है, बल्कि उन लोगोंपर पाप लगनेकी बात की है जो लड़कियोंका विवाह मातृत्वका भार सँभाल सकनेसे पहले ही कर देनेका आग्रह करते हैं। अनुदारताका प्रश्न तो तब उठता है जब किसी काल्पनिक व्यक्तिपर नहीं, बल्कि जीवित व्यक्तिपर अकारण कोई अशुद्ध भाव होनेका आरोप लगाये। परन्तु मैं पूछता हूँ कि क्या इस पत्र-लेखकके पास कोई ऐसा प्रमाण है, जिसकी बिनापर वह यह कह सके कि जिन स्मृतिकारोंने आत्मसंयमका उपदेश दिया, उन्होंने उन्हीं स्मृतियोंमें छोटी-छोटी बालिकाओंके विवाहकी भी आज्ञा दी? इसकी अपेक्षा क्या यह मानना अधिक उदारतापूर्ण न होगा कि ऋषिगण अपवित्रता और मानवके शारीरिक विकासके मूल नियमोंसे अनभिज्ञ नहीं हो सकते।

लेकिन यदि लड़कियोंके बालविवाहकी — कम उम्रके विवाहकी नहीं, क्योंकि इसमें तो २५के पूर्व किया गया हर विवाह आता है — आज्ञा देनेवाले ग्रन्थ भी प्रामाणिक पाये जायें, तो हमें चाहिए कि हम प्रत्यक्ष अनुभव और वैज्ञानिक ज्ञानको दृष्टिमें रखकर उनका त्याग कर दें। मैं लेखकके इस कथनकी सचाईपर सन्देह प्रकट करता हूँ कि लड़कियोंके बाल विवाहकी प्रथा हिन्दू समाजमें सर्वत्र प्रचलित है। अगर यह बात सच हो कि लाखों बालिकाएँ बचपनमें ही विवाहिता हो जाती हैं यानी पत्नियोंकी तरह रहने लगती हैं तो मुझे बहुत दुःख होगा। यदि हिन्दू समाजमें लाखों कन्याएँ ग्यारह वर्षकी अवस्थामें पति-समागम करती होतीं तो हिन्दू जाति कभीकी नष्ट हो गई होती।

इससे यह बात भी सिद्ध नहीं होती कि यदि माता-पिता कन्याओंके लिए वर खोजना जारी रखें तो कन्याओंका विवाह और वैवाहिक जीवनका प्रारम्भ भी जल्दी ही होना चाहिए। यह कहना तो और भी कम सत्य है कि यदि लड़कियाँ अपने लिए स्वयं पति चुनेंगी तो विवाहसे पूर्व प्रेमाचार या भ्रष्टाचार होना लाजिमी ही है। आखिर यूरोपमें भी तो विवाहसे पूर्व प्रेमाचार सर्वत्र प्रचलित नहीं है और हजारों हिन्दू कन्याओंके विवाह पन्द्रह वर्षकी आयुके बाद किये जाते हैं और उनके माता-पिता उनके लिए वरोंका चुनाव करते हैं। मुसलमान तो सदा स्वयं ही अपनी सयानी लड़कियोंके लिये पति चुनते हैं। यह बिल्कुल दूसरी ही बात है कि चुनाव स्वयं लडकी करती है या उसके माता-पिता; यह तो प्रथापर निर्भर है।

इस पत्रके लेखकने इस बातके समर्थनमें कोई सबूत पेश नहीं किया कि सयानी उम्रमें ब्याही हुई लड़कियोंकी सन्तानें बहुत छोटी अवस्थामें विवाहित लडकियोंकी सन्तानोंसे दुर्बल होती हैं। भारतीय तथा यूरोपीय दोनों समाजोंके मेरे अनुभवोंके होते हुए भी मैं उनके आचारोंकी तुलना करना नहीं चाहता। यदि थोड़ी देरके लिए यह मान भी लिया जाये कि यूरोपीय समाजका आचार हिन्दू-समाजके आचारसे निकृष्ट है, तो क्या उससे यह अनुमान निकालना ही स्वाभाविक हो सकता है कि उसकी इस निकृष्टताका कारण उनमें वयस्क विवाहोंकी प्रथाका होना है?

अन्तमें, मद्रासकी घटना पत्रप्रेपकको कुछ मदद नहीं पहुँचाती, प्रत्युत उनके द्वारा उसका उपयोग किये जानेसे तो यही सिद्ध होता है कि उन्होंने तथ्योंकी उपेक्षा

करके जल्दबाजीमें यह नतीजा निकाला है। अगर वे मेरे उस लेखको फिर उठाकर देखेंगे तो उनको पता चलेगा कि मैं अपने नतीजोंपर उन तथ्योंसे ही पहुँचा हूँ, जो सिद्ध किये जा चुके हैं। मेरे निर्णयपर मृत्युकी बातका असर नही पड़ता है। सिद्ध यह किया गया था (१) लड़की कम आयुकी थी, (२) उसमे कामेच्छा तो थी ही नही, (३) उसके 'पति' ने कामचेष्टामें निर्दयता बरती और (४) लड़की अब इस संसारमें नही है। लड़कीने आत्मघात किया तो बुरा किया, लेकिन यदि उसके 'पति' ने उसे इसलिए जला दिया कि वह उसकी पशुवृत्तिको सन्तुष्ट नहीं कर सकी तो यह और भी बुरा है। उस लड़कीकी उम्र तो खेलने-खाने और पढ़नेकी थी, पत्नीका बरताव करनेकी और अपने नाजुक कन्धोंपर गृहस्थीकी चिन्ताका भार उठानेकी या अपने 'स्वामी' की गुलामी करनेकी नही।

ये लेखक समाजमें एक प्रतिष्ठित पुरुष हैं। भारतमाता अपने उन बेटों और बेटियोंसे जिन्होंने ऊँचे किस्मकी शिक्षा पाई है, राष्ट्रके लिए सोचने-समझने तथा अधिक अच्छा कार्य करनेकी अपेक्षा करती है। हममें बहुतसी बुराइयाँ मौजूद हैं और वे, नैतिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक — सभी प्रकारकी हैं। उनके लिए धैर्य-युक्त अध्ययन, सपरिश्रम अनुसन्धान और सावधानीसे काम करनेकी, सत्यताकी और उनपर स्पष्टतासे विचार करनेकी तथा गाम्भीर्यपूर्वक और निष्पक्ष निर्णय करनेकी जरूरत है। और तब तो हममें, यदि जरूरी हो तो, पूर्व और पश्चिमका-सा मतभेद भी रह सकता है। परन्तु यदि हम सच्चाईकी गहराईतक पहुँचनेकी और फिर चाहे जो हो जाये, उसपर डटे रहनेकी कोशिश न करेंगे तो इसमें कोई शक नहीं कि हम अपने-अपने धर्म अपने देश और राष्ट्रीय हितको नुकसान पहुँचायेंगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ९-९-१९२६

४०७. श्रमका गौरव

उपरोक्त उद्धरण[1] श्रीयुत मधुसूदन दासके 'बिहार यंग मैन्स इन्स्टीट्यूट' के [सदस्योंके] सामने १९२४ में दिये गये भाषणसे दिया गया है। इस भाषणको मैं अपने पास इतने दिनों इसलिए रखे हुए था कि जब समुचित अवसर मिलेगा तब मैं इसके आवश्यक अंशोंका उपयोग करूँगा। भाषणकर्त्ताने जो-कुछ कहा है उसमें कोई नई बात नहीं है। परन्तु उनकी इन बातोंकी असल कीमत इसमें है कि मशहूर वकील होते हुए भी वे अपने हाथोंसे काम करना न केवल नफरतकी निगाहसे नहीं देखते, बल्कि उन्होंने स्वयं बड़ी उम्रमें हाथकी कारीगरी सीखी है और वह भी बतौर शौकके नहीं, बल्कि नौजवानोंको मेहनत-मशक्कतकी कीमत समझाने और यह बतानेके लिए कि अगर वे देशके व्यवसायोंकी ओर ध्यान नहीं देंगे तो इस देशका भविष्य

१. श्री मधुसूदनदासके भाषणका यह अंश यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

कुछ बहुत अच्छा नहीं होगा। श्रीयुत दासने कटकमें एक चर्मशाला खुलवाई है। यह कारखाना, कितने ही नवयुवकोंके लिए, जो उसके पहले महज अकुशल मजदूर थे, शिक्षाका केन्द्र बना हुआ है। मगर सबसे बड़ा उद्योग जिसमें करोड़ोंकी मेहनत दरकार है, सूत-कताई ही है। जरूरत इस बातकी है कि इस देशके किसानोंकी बहुत बड़ी संख्याको कोई एक और हुनर कहा जा सकनेवाला काम दिया जाये जिससे उनके हाथ और दिमाग दोनोंको तालीम मिले। उनके लिए सबसे अच्छी और सबसे सस्ती जो तालीम सोची जा सकती है, वह कताई है। यह सबसे सस्ती तो इसलिए है कि इससे तुरन्त ही आमदनी भी होने लगती है और यदि हमें भारतमे सार्वजनिक शिक्षाका प्रचार करना है तो प्राथमिक शिक्षा, लिखाई, पढ़ाई और हिसाबकी नहीं, बल्कि सूत कातने और उससे सम्बन्धित अन्य ज्ञानकी होगी। और जब इसके जरिये दिमाग और आँखोंकी पूरी तालीम हो चुकेगी तब कहीं बालक उक्त तीनों बातें सीखने योग्य होगा। मैं जानता हूँ कि यह बात कुछ लोगोंको तो असम्भव, और कुछको बिलकुल अव्यावहारिक मालूम होगी। मगर जो ऐसा सोचते हैं, वे हमारे करोड़ों भाई-बहनोंकी हालत नहीं जानते। उन्हें यह भी नहीं मालूम है कि हिन्दुस्तानके किसानोंके करोड़ों बच्चोंको शिक्षा देनेके क्या मानी हैं। और यह शिक्षा तबतक नहीं दी जा सकती, जबतक शिक्षित भारतवासी, जिन्होंने इस देशमें राजनैतिक जागृति फैलाई है, श्रमके गौरवको नहीं समझते और जबतक हरएक नौजवान चरखा चलानेकी कलाको सीखना और गाँवोंमें उसका पुनरुद्धार करना अपना परम कर्त्तव्य नहीं मानता।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ९-९-१९२६

४०८. कुएँसे निकले, खाईमें गिरे

जो प्रवासी उपनिवेशोंसे लौटकर कलकत्तामें रुके पड़े हैं उनकी स्थितिके सम्बन्धमें भारतीय साम्राज्यीय नागरिकता संघको दिया गया विस्तृत विवरण पढ़कर बहुत दुःख होता है। उससे पता चलता है कि २,००० से भी अधिक लौटे हुए प्रवासी कलकत्ताके आसपासके गन्दे स्थानोंमें पड़े हुए हैं। ये लोग फीजी, ट्रिनीडाड, सरीनम तथा ब्रिटिश गियानासे आये हैं। उन्हें अपनी जन्मभूमिको छोड़नेके लिए मजबूर करनेके कारणोंमें मातृभूमिके दर्शनोंकी लालसा तथा भारतके स्वशासन प्राप्त करनेकी उड़ती हुई खबर — दो मुख्य कारण हैं। किन्तु जब उन्होंने यह देखा कि गाँवोंमें उनके सम्बन्धी उन्हें स्वीकार करनेको तैयार नहीं हैं तो वे अब फिर उन्हीं स्थानोंमें वापस जाना चाह रहे हैं, जहाँसे वे आये हैं। अब वे कहते हैं, 'हमें भारतसे बाहर कहीं भी भेज दो।' इस बीच वे कलकत्तामें थोड़ा बहुत कमाकर बड़े कष्टोंमें जीवन बिता रहे हैं। 'वे सभी भूखके मारे हुए दिखाई देते थे और उनके कष्टोंका कोई पारावार न था।' उनमें से अधिकांश लोग उपनिवेशोंमें पैदा हुए हैं, इस तथ्यसे

उनके कष्ट और भी बढ़ जाते हैं। पाठक 'उपनिवेशोंमें उत्पन्न होनेका' पूरा अर्थ नहीं समझ पायेंगे। ये लोग न तो भारतीय हैं और न उपनिवेशीय। विदेशोंमें जहाँ ये जाते हैं वहाँ अपने असंस्कृत तथा भारतीयताको काफी हदतक भूल चुकनेवाले माता-पिताओंसे ये जो-कुछ सीखते हैं उतनी ही भारतीयता इनमें होती है। इस अर्थमें वे उपनिवेशीय भी नहीं होते कि वहाँ उनके उपनिवेशीय अर्थात् पाश्चात्य संस्कृतिमें प्रवेश करनेपर प्रतिबन्ध होता है। इसलिए उनकी स्थिति कुएँसे निकलकर खाईमें जा पड़नेवाले व्यक्ति-जैसी है। वहाँ उनके पास कमसे-कम कुछ पैसा और घर-जैसी चीज तो थी। यहाँ समाजमें उनकी दशा उन कुष्ठ रोगियोंके समान है जो अपने आस-पासकी भाषातक नहीं जानते।

इसलिए रिपोर्टमें सुझाव दिया गया है कि सरकार उन्हें ऐसे विभिन्न उपनिवेशोंमें वापस भेज दे जो उनके लिए सर्वाधिक उपयुक्त तथा उन्हें लेनेके लिए तैयार हों। नौसिखुए रंगरूटोंकी अपेक्षा उष्ण कटिबन्धीय उपनिवेश तो इन लोगोंको लेना अधिक पसन्द करेंगे। स्पष्ट रूपसे यह सरकारका ही कर्त्तव्य है; क्योंकि इस सम्बन्धमें विभिन्न उपनिवेशोंसे बातचीत वही चला सकती है। उसे यह कर्त्तव्य बहुत पहले ही पूरा कर लेना चाहिए था। साम्राज्य नागरिकता संघके मन्त्रीने सरकारसे निम्न अपील की है:

> फीजी, ब्रिटिश गियाना, ट्रिनिडाड तथा अन्य उपनिवेशोंसे लौटे हुए जो भारतीय प्रवासी इस समय कलकत्तेमें असहाय अवस्थामें पड़े हैं, भारतीय साम्राज्यीय नागरिकता-संघकी परिषदने इस सम्बन्धमें विशेष रूपसे अपना प्रतिनिधि मौकेपर भेजकर उसके जरिये तत्काल जाँच-पड़ताल की। मैं उस जाँच-पड़तालके प्रकाशमें भारत सरकार द्वारा तुरन्त विचार किये जानेके लिए निम्न सिफारिशें पेश करता हूँ:
>
> १. फीजीकी सरकारसे प्रार्थना करनी चाहिए कि वह मुक्त गिरमिटिया मजदूरोंकी निःशुल्क यात्राकी रियायतकी अवधि १९३० से बढ़ाकर १९३५ कर दे।
>
> २. ब्रिटिश गियानासे लौटे हुए जो सैकड़ों भारतीय प्रवासी इस समय कलकत्तेमें या अन्यत्र रह रहे हैं, उनमें से जो लोग वापस जानेके लिए उत्सुक हैं उन्हें भारत सरकार ५०० परिवारोंको ब्रिटिश गियाना भेजनेके लिए बनाई गई अपनी योजनामें शामिल कर ले।
>
> ३. भारत सरकारको तत्काल बम्बई, कलकत्ता और मद्रासमें प्रवासी डिपो स्थापित करने चाहिए। ये डिपो उसी आधारपर संगठित किये जायें जिस आधारपर कलकत्तामें १९२१ में संगठित और १९२३ में तोड़ी गई भारतीय प्रवासी मैत्री समिति (इंडियन इमिग्रान्ट फ्रेन्डली सोसाइटी) का निर्माण हुआ था। यह समिति प्रवासियोंके हकोंकी हर तरहसे देखभाल करती थी और इसका प्रबन्ध एक ऐसी स्थानीय समितिके अधीन था जिसमें सरकारी तथा

गैर-सरकारी दोनों तरहके लोग थे। इसे भारत सरकारसे पर्याप्त आर्थिक सहायता दी जाती थी।

इस तथ्यको दृष्टिगत करते हुए सैकड़ों भारतीय प्रवासियोंको लेकर एक और जहाजके अगले मास कलकत्ता पहुँचनेकी सम्भावना है। मेरी परिषद् आशा करती है कि भारत सरकार स्थितिकी गम्भीरताको महसूस करेगी और इस ढंगसे कार्य करेगी जिससे न केवल प्रवासियोंको वर्तमान कष्टोंसे राहत मिले बल्कि एक ही जगहमें उनकी संख्या भी न बढ़े; क्योंकि उस अवस्थामें उनके कष्ट और भी बढ़ जायेंगे।

इस समय तो इतना ही पर्याप्त है कि इन असहाय लोगोंको उक्त माँगी हुई राहत मिल जाये।

किन्तु निर्दोष मालूम पड़नेवाली इस अपीलसे व्यापक तथा मौलिक प्रश्न उठ खड़े होते हैं। यह छोटी-सी टिप्पणी रिपोर्ट द्वारा प्रकाशमें लाई गई विशेष परिस्थितियोंपर ही दी गई है। इसमें उन प्रश्नोंपर विचार नहीं हो सकता, क्योंकि उनसे वह स्पष्ट समस्या जिसपर तुरन्त कार्यवाही करनेकी आवश्यकता है, खटाईमें नहीं पड़नी चाहिए। फिर भी व्यापक और मौलिक प्रश्न ये हैं:

१. सम्पूर्ण प्रवास-नीति।

२. ब्रिटिश गियाना तथा फीजीका विशेष मामला।

३. अपीलमें उल्लिखित मैत्रीपूर्ण समितियोंका कार्यक्षेत्र।

४. बाहर जानेवाले और वापस आनेवाले प्रवासियोंके प्रति राष्ट्रका कर्त्तव्य।

इन प्रश्नोंपर विचारके लिए अधिक अनुकूल अवसरकी आवश्यकता है। इस समय जितना विचार किया जा सकता है उनपर उससे कहीं अधिक सम्पूर्ण रीतिसे विचार करनेकी आवश्यकता है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ९-९-१९२६

४०९. पत्र : बम्बई विश्वविद्यालयके पंजीयकको

आश्रम
साबरमती
९ सितम्बर, १९२६

प्रिय महोदय,

आपका १९२६ का पत्र सं० ८५३९, दिनांक ६ सितम्बर, १९२६ मिला। उसमें सूचित किया गया है कि सिंडीकेटने १९२६ की ऐशबर्नर पुरस्कार निबन्ध प्रतियोगिता-के लिए मुझे भी एक परीक्षक नियुक्त किया है। मुझे आपको यह सूचित करते खेद हो रहा है कि अन्य कारणोंकी बात जाने दीजिए, जिस ध्यान और सावधानीके साथ मैं उक्त परीक्षासे सम्बन्धित निबन्धोंकी जाँच करना चाहूँगा उसके लिए मेरे पास अबसे लेकर आगामी अक्तूबरतक एक क्षणका भी अवकाश नहीं है। इसलिए निवेदन है कि परीक्षकोंकी नामावलिसे मेरा नाम निकाल दिया जाये।

आपका विश्वस्त,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०९९१–ए)की माइक्रोफिल्मसे।

४१०. पत्र : आ० टे० गिडवानीको

आश्रम
साबरमती
९ सितम्बर, १९२६

प्रिय गिडवानी,

आपका पत्र मिला। यहाँ आनेपर श्री बसुका समुचित स्वागत किया जायेगा। उन्होंने अभीतक अपने आनेकी कोई सूचना नहीं भेजी।

जुगलकिशोरके बारेमें सारी बात मेरे दिमागसे उतर गई है। मैं क्षमाप्रार्थी हूँ, यदि वे किसी विशेष बातके सम्बन्धमें कोई शर्त न लगायें तो मैं उन्हें लेनेके लिए तैयार हूँ। मेरे कहनेका मतलब यह है कि क्या वे खादीपर विश्वास रखते हैं? क्या वे खादी विभागमें काम करनेको तैयार होंगे? उनको वेतनके रूपमें क्या चाहिए? क्या वे विवाहित हैं?

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११२७४) की माइक्रोफिल्मसे।

४११. पत्र: जोजेफ बैप्टिस्टाको

आश्रम
साबरमती
९ सितम्बर, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका ६ सितम्बरका पत्र[1] मिला। हिन्दू-मुस्लिम तनावके सिलसिलेमें एक दिन प्रार्थना-दिवसके रूपमें रखे जाने योग्य सद्भावनाका वातावरण मुझे अभी दिखाई नही पड़ता। प्रार्थना हृदयसे ही की जानी चाहिए। मन-मुटाव दूर करनेकी दिली ख्वाहिश होनी चाहिए। अधिक शोभनीय बात तो यह होगी कि प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने घरमें ही प्रार्थना करे।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्री जोजेफ बैप्टिस्टा
माथापकाडी
बम्बई

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० १२३८०) की फोटो-नकलसे।

४१२. पत्र: एस० डी० देवको

आश्रम
सबरमती
९ सितम्बर, १९२६

प्रिय देव,

आपका गत पांच तारीखका पत्र मिला। अहमदनगरके लोग मेरा सन्देश चाहते थे, सो मैंने भेज दिया है।

पंढरपुर आनेके बारेमें, क्या आपको यह मालूम नही है कि मैंने २० दिसम्बर तक कहीं बाहर जानेका निमन्त्रण स्वीकार न करनेका संकल्प कर रखा है? हां, कोई बिलकुल ही अप्रत्याशित घटना घट जाये तो बात दूसरी है। इसलिए आप जमनालालजी, राजगोपालाचारी या गगाधरराव देशपाण्डेको बुला सकते है। इन्हें ही

१. अपने पत्रमें बैप्टिस्टाने "भारतकी विभिन्न जातियोंके बीच शान्ति और सद्भावना बढ़ानेके लिए" नवम्बरका प्रथम रविवार, प्रार्थना दिवसके रूपमें मनानेकी बात लिखी थी।

क्यों, आप पण्डित मोतीलालजीको तथा अन्य अनेक नेताओंको, जिनको भी आप ठीक समझें, निमन्त्रित कर सकते हैं। आगामी वर्ष यदि आप मुझसे ऐसा आग्रह करेंगे तो आपको निराश नहीं होना पड़ेगा। इस वर्ष तो आप स्वयं ही समझ सकते हैं कि यह असम्भव है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एस० डी० देव
खादी प्रदर्शनी
अहमदनगर

अंग्रजी प्रति (एस० एन० १९६८१) की फोटो-नकलसे।

४१३. पत्र : देवराजको

आश्रम
साबरमती
९ सितम्बर, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आपसे खुद मुलाकात किये बिना, आपको बिलकुल ठीक-ठीक सलाह देना सम्भव नहीं है। परन्तु मोटे तौरपर नीचेकी हिदायतोंपर अमल करके देखा जा सकता है।

खुली हवामें रहें और सोयें। सादेसे-सादा, और सदा थोड़ी भूख बचाये रखकर बिना मसालेका भोजन करें। सूर्यास्तके पश्चात् भोजन न किया जाये। नमकसे परहेज करें, ताजे फल खूब खाइये और दूधमें थोड़ा पानी मिलाकर पीजिये। दूध गर्म करते समय उसे बहुत गाढ़ा मत कीजिए। हलका प्राणायाम करना चाहिए। शारीरिक श्रम थोड़ा-बहुत ही सही, नित्य करना चाहिए, अगर सम्भव हो तो एकान्तमें. . .[1] यदि आपको एकान्त सहन हो तो। अच्छे चरित्रवान् लोगोंके साथ बैठने-उठने तथा अच्छा साहित्य पढ़नेकी आदत डालें।

हृदयसे आपका,

श्री देवराज
वेगन मूवमेंट एक्सपेरीमेंट
डी० एस० ऑफिस
कराची

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९६८२) की माइक्रोफिल्मसे।

१. साधन-सूत्रमें यहाँ कुछ शब्द छूटे हुए हैं।

४१४. पत्र : बेचर भाणजीको

आश्रम
साबरमती
गुरुवार, भाद्रपद सुदी २ [९ सितम्बर, १९२६]

भाईश्री ५ बेचर भाणजी,

आपका पत्र मिला। आपने आठ वस्तुओंके प्रति आस्था प्रकट की है। मुझे उनमें कुछ भी दोष दिखाई नहीं देता। यदि इनके प्रति आपकी आस्था आपके हृदयमें घर कर गई हो और उसमें साकार हो रही हो तो आप सभी प्रकारके मानसिक दोषों और लालसाओंसे अवश्य मुक्त हो जायेंगे। जिस बातके प्रति धारणा पक्की हो और उसके प्रति श्रद्धा भी हो तो उसके लिए जी तोड़ और अथक प्रयत्न करना चाहिए — तपश्चर्या करनी चाहिए — और शरीरके संयम द्वारा उसे हृदयमें उतारते रहना चाहिए। यदि ऐसा किया जायेगा तो सफलता मिलकर रहेगी।

मोहनदासके वन्देमातरम्

मास्टर बेचर भाणजी
बरास्ता कुण्डला
अम्बा
काठियावाड़

गुजराती पत्र (जी० एन० ५५७३) की फोटो-नकल तथा एस० एन० १२२७५ से।

४१५. पत्र : भीखाईजी पालमकोटको

आश्रम
साबरमती
गुरुवार, भाद्रपद सुदी २, ९ सितम्बर, १९२६

प्रिय बहन,

आप तो मुझसे उम्रमें बड़ी हैं। पर आपके अक्षर और आपकी आकांक्षाएँ जवानोंको शोभा देनेवाली हैं। इसलिए अपना जो वर्णन आपने किया है उसे मैं समझ सकता हूँ। आपने अपने पुरखोंके बारेमें जो-कुछ लिखा है वह भी शानदार है और उनकी, आपकी तथा भारतकी शोभा बढ़ानेवाला है। यदि आप भारतीय संगीतकी सेवा कर सकतीं तो मुझे जरूर ज्यादा खुशी होती। लेकिन अगर पश्चिमकी कला आत्माका विकास करनेकी क्षमता रखती हो और कोई उसे सीखे तो भी

प्रसन्नताकी बात तो है ही। आपके विषयमें भी ऐसा है। मैं यही चाहता हूँ कि इस प्रयत्नमें आपको सफलता मिले। और अपने काममें आपने जो नाम कमाया है उसके अनुरूप सफलता मिले। यदि मेरा किसी अवसरपर बम्बई आना हुआ तो आप मिलनेकी कृपा अवश्य कीजिएगा।

श्रीमती भीखाईजी पालमकोट
६१, खम्बाला हिल
मलाबार हिल
बम्बई–६

गुजराती प्रति (एस० एन० १२२७६) की फोटो-नकलसे।

४१६. पत्र : जी० एन० कानिटकरको

आश्रम
साबरमती
१० सितम्बर, १९२६

प्रिय कानिटकर,

आपका पत्र और रजिस्टर्ड पार्सल मिला। आयन्दा पार्सलोंकी रजिस्ट्री न कराया कीजिए। मैंने ऐसी व्यवस्था की है कि पत्रिकाएँ यहाँ पहुँचते ही मुझे दे दी जायें। हमें चाहिए कि यदि हम एक धेला भी बचा सकें तो बचायें।

आपने विज्ञापनोंके बारेमें जो लिखा है उसका मैं ध्यान रखूँगा। आपने जो-कुछ किया है बहुत सन्तोषजनक है।

आप मुझसे ब्राह्मण-अब्राह्मण प्रश्नके सम्बन्धमें इस समय कुछ भी लिखनेको न कहें। फिलहाल उस सम्बन्धमें खामोश रहूँ तो कोई हर्ज होनेवाला नहीं है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्री जी० एन० कानिटकर
३४१, सदाशिव पेठ
पूना सिटी

अंग्रेजी पत्र (सी० डब्ल्यू० ९५९) से।
सौजन्य : जी० एन० कानिटकर

४१७. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

आश्रम
साबरमती
१० सितम्बर, १९२६

प्रिय सतीशबाबू,

आपका पत्र मिला। आपको इस समय किन शब्दोंमें सान्त्वना दी जाये या इस अवसरपर आपसे क्या कहा जाये, सो मुझे नहीं सूझता। मैं तो यही प्रार्थना कर सकता हूँ कि आपको शान्ति मिले। शरीर या स्नायुओंपर अधिक बोझ डालकर अपने स्वास्थ्यको कदापि न बिगड़ने दीजिए। अनिलको रोजाना बुखार क्यों आ जाता है? आपका अपना स्वास्थ्य बिलकुल ठीक क्यों नहीं रहना चाहिए? यह जानकर मुझे बहुत दुःख हुआ कि हेमप्रभा देवीको आश्रमका वातावरण अनुकूल नहीं आया। यदि वे बच्चोंके साथ यहाँ बनी रहती तो बहुत बेहतर होता और आप अपेक्षाकृत अधिक स्वतन्त्रताका अनुभव करते। मैं जानता हूँ कि आपकी देखभाल जितनी अच्छी तरह वे कर सकती हैं उतनी अच्छी तरह और कोई नहीं कर सकता। परन्तु सभी पतियोंको इस लाचारीपर विजय पानी पड़ती है। हिन्दू पत्नियाँ इस सम्बन्धमें अन्य समाजोंकी स्त्रियोंसे कहीं अच्छी और दृढ़तर स्थितिमें हैं, क्योंकि अपनी देखभालके लिए वे दूसरोंकी मोहताज नहीं रहतीं।

आपका,
बापू

अंग्रेजी पत्र (जी० एन० १५६१) की फोटो-नकलसे।

४१८. पत्र : महाराजा नाभाको

आश्रम
साबरमती
१० सितम्बर, १९२६

प्रिय महाराजा साहब,

आपने गत वर्ष २० सितम्बरको जो पत्र[1] मुझे लिखा था उसकी नकल तथा उसके साथ मेरे पुत्रके नाम लिखा हुआ आपका पत्र भी मिला। आपका पत्र मुझे मिला था, इसका पूरा स्मरण है। मेरा खयाल है कि मैंने मौलाना मुहम्मद अलीसे

१. इस पत्रमें महाराजा नाभाने इस बातकी शिकायत की थी कि गांधीजीने उनके आवेदनपत्रकी पहुँचतक लिखनेकी तकलीफ गवारा न की (एस० एन० १०९८९)।

कहा था कि आपके मामलेमे कांग्रेसके लिए कोई कारगर कदम उठा सकना मुमकिन नही होगा। सम्भव है कि उनसे उपरोक्त वात कह देनेके पश्चात् मैंने आपको पत्र न लिखा हो। परन्तु न लिखनेका कारण दिलचस्पी अथवा शिष्टताकी कमी नही थी। मेरे नाम आये हुए पत्रोंमें से शायद ही कोई ऐसा होगा जिसकी प्राप्ति मै सूचित न करूँ।

दूरके ढोल सुहावने होते हैं। मै आपको इस वातका यकीन दिला देना चाहता हूँ कि कांग्रेसका अध्यक्ष भारतका 'वेताज' वादशाह नहीं है। उसके हाथमें कोई सत्ता नहीं है। आप जैसी शक्तिकी उसमें कल्पना करते हैं, वैसी शक्ति उसमें नही होती। मैं जानता हूँ कि जव मैं कांग्रेस अध्यक्ष था तव मेरे हाथमें भी कोई शक्ति न थी। यदि मुझे ऐसा लगता कि आपकी मदद करना मेरे लिए जरा भी मुमकिन है तो मैं विना किसी संकोचके करता। परन्तु शक्ति मेरे पास न तव थी और न अव है।

मै आपको यह भी वतला दूं कि आपके मामलेसे सम्वन्वित कागजात मैंने आपका पत्र पानेके पूर्व ही पढ लिये थे और उसके वारेमे कई सिख मित्रोंसे वातचीत भी की थी। मैंने उन भाइयोंसे कह दिया था कि महाराजा साहवकी सहायता करना सिखोंके वसकी वात भी नही है और अगर वे सहायता करनेकी जरा भी कोशिश करेंगे तो आपका काम वननेके वजाय विगड़ेगा ही; साथ-ही-साथ उनके अपने आन्दोलनको[1] भी धक्का पहुँचेगा। मेरा खयाल तो अव भी यही है कि आपके मामलेको गुरुद्वारा आन्दोलनके साथ जोड़ना एक वड़ी भूल थी। और मैंने अपनी यह राय तव दी थी कि जव मैं सैसून अस्पतालमे रोग-शय्यापर था और सिखोंका एक प्रतिनिधि मण्डल मुझसे मुलाकात करने आया था।[2]

हृदयसे आपका,

हिज हाइनेस महाराजा साहव नाभा
"स्नोडन"
मसूरी पश्चिम

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०९९४) की फोटो-नकलसे।

१. देखिए खण्ड २४।

२. पत्रके सिरेपर सचिव द्वारा लिखा हुआ एक नोट इस प्रकार है: "चूँकि डाकमें भेज देनेके पश्चात् पत्रमें कुछ संशोधन किये गये है, इसलिए मैं पत्रकी संशोधित प्रतिलिपि भेज रहा हूँ।"

४१९. पत्र : एस० एस० मोटगीको

आश्रम
साबरमती
१० सितम्बर, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। ग्रहों और नक्षत्रोंका मानव समाजपर क्या प्रभाव पड़ता है, इसका अध्ययन मैंने नहीं किया है। इसलिए मैं आपके पहले प्रश्नका उत्तर देनेमें असमर्थ हूँ।

जब कोई व्यक्ति — पुरुष हो या स्त्री — अपनी वासनाओंके वशीभूत हो तब उसे एकान्त सेवन करना चाहिए, पूर्ण मौन धारण करना चाहिए और जबतक वासनाएँ शान्त न हो जायें तबतक किसी भी प्रवृत्तिमें नहीं पड़ना चाहिए। वासनाओंके बने रहनेतक सक्रिय जीवनसे बचनेके लिए पूर्णतया निराहार रहनेकी सलाह दी जा सकती है।

धार्मिक पुस्तकोंके वैज्ञानिक अध्ययनका केवल एक ही मार्ग है — थोड़ा-थोड़ा पढ़ा जाये और उसे भलीभांति हृदयंगम कर लेनेके बाद ही आगे बढ़ा जाये और जो बात अपनी नैतिक बुद्धिको न जँचे उसे कदापि ईश्वरीय शब्दकी भाँति ग्रहण न किया जाये।

कितने घंटे अध्ययन किया जाये इसके बारेमें कोई पक्का नियम बनाना सम्भव नहीं है। किसीके लिए चन्द मिनट ही पर्याप्त होते हैं और किसी दूसरेके लिए कुछ घंटे। प्रत्येक व्यक्तिको अपने आप मालूम कर लेना चाहिए कि वह कितना पढ़ और हजम कर सकता है। मस्तिष्कमें तथ्यों, तर्कों और सिद्धान्तोंको भर लेना बिलकुल निरर्थक है।

हृदयसे आपका,

एस० एस० मोटगी
नया बाजार
बीजापुर

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९६८४) की फोटो-नकलसे।

४२०. पत्र : आर० सूर्यनारायण रावको

आश्रम
साबरमती
१० सितम्बर, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। साथमें दलित वर्गोंके लिए आपके द्वारा तैयार की गई योजना भी। मुझे बड़ा दुःख है कि मैं उसमें आपकी सहायता नहीं कर सकता। कारण यही है कि आपकी संस्था आंशिक रूपसे सरकारी अनुदानसे चलती है। आप जो-कुछ कर रहे हैं, उसे मैं समझता हूँ और उसकी सराहना भी करता हूँ, परन्तु मैं उसमें हाथ नहीं बँटा सकता। जो सज्जन धनसे मेरी सहायता कर रहे हैं वे ऐसा इसी खयालसे कर रहे हैं कि मैं सरकारी संगठनोंसे कतई वास्ता नहीं रखता। इसलिए कहा जा सकता है कि मेरे कामका दायरा सीमित है और धनसे मेरी सहायता करनेवाले व्यक्ति भी गिने-चुने ही हैं। कोई तजवीज खुद कितनी ही अच्छी क्यों न हो, अगर वह सरकारकी सरपरस्तीमें चले तो उसकी मदद करनेको मैं किसीसे कुछ नहीं कह सकता।

कुछ समय पूर्व आपने जो पुस्तिकाएँ मुझे भेजी थीं वे मिल अवश्य गई थीं। अभीतक उन्हें पढ़ नहीं पाया हूँ।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत आर० सूर्यनारायण राव
सर्वेन्ट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी
कालीकट

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९६८६) की माइक्रोफिल्मसे।

४२१. पत्र: शौकत अलीको

आश्रम
साबरमती
१० सितम्बर, १९२६

प्यारे बड़े भाई,

आपका पत्र मिला। हेजाजकी समस्याके विभिन्न पहलुओं और उसकी पेचीदगियों पर न तो मैंने नजर रखी है और न मैं उनको समझ ही पाया हूँ। परन्तु चूंकि मेरा अकीदा है कि ईश्वरसे खौफ खानेवालोंको मुसीबतके बाद खुशी हासिल होती है, मैंने मान लिया है कि अन्तमें नतीजा अच्छा ही होगा।

खद्दर आन्दोलनकी ओरसे आपने जो अपील तैयार की है, उसके विषयमें आपका कथन मैंने देख लिया है। लेकिन जबतक आप अपना वादा पूरा न करेंगे, मुझे सन्तोष होनेवाला नहीं है।

जब आप यहाँ आनेको हों तब मुझे काफी पहलेसे ही इत्तिला भेजनेकी मेहरबानी करें, ताकि मैं दरवेशके लिए दही वगैरा जरूरी चीजें तैयार रख सकूँ।

हृदयसे आपका,

मौलाना शौकत अली
केन्द्रीय खिलाफत समिति
बम्बई

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९६८७) की फोटो-नकलसे।

४२२. पत्र: बी० एन० आप्टेको

आश्रम
साबरमती
१० सितम्बर, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला, धन्यवाद। आपके सुझाव मैंने समझ लिये हैं। आँकड़ों सहित विवरण प्रकाशित करनेका उद्देश्य इतना ही है कि खादीका जो कार्य हो रहा है उसके बारेमें लोगोंको मोटा-मोटा ज्ञान हो जाये। आपने जो जानकारी देनेकी बात सुझाई है उसमें से कुछ तो वास्तवमें अनुपलब्ध है। उदाहरणार्थ, एक घंटेमें पेशेवर कतैये कितना सूत कात लेते हैं, इसकी बात तो जाने दीजिए, यह भी पूरी तरह मालूम करना कठिन है कि १ घंटेमें धुनिये कितनी रुई धुन सकते हैं। हमारे पास जो बहियाँ

मौजूद हैं उनसे ही यह पता चला है कि औसत आमदनी कितनी हो सकती है। फी घंटा कितना सूत काता जा सकता है, इसकी जानकारी तो कतैये ही दे सकते हैं — और इन कतैयोंमें से अधिकांशको समयका कोई ठीक अन्दाज नहीं रहता और वे अपने फाजिल समयमें ही चरखेको हाथ लगाते हैं। इसलिए जितने प्राप्त हो सकते थे उतने ही आँकड़े दिये गये हैं। परन्तु ज्यों-ज्यों समय बीतता जायेगा, ज्यादा सही जानकारी और तफसील मिलने लगेगी।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत वी० एन० आप्टे
खादी कार्यालय
मालपुर
डोंडाइच

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९६८८) की माइक्रोफिल्मसे।

४२३. पत्र : द० बा० कालेलकरको

आश्रम
साबरमती
शुक्रवार, भाद्रपद सुदी ३, १० सितम्बर, १९२६

भाईश्री ५ काका,

आपने अपनी तबीयतके विषयमें जो पत्र स्वामीको लिखा था उससे तो मैं तनिक भी नहीं घबराया था। पर आपने मुझे जो पत्र लिखा है उसे पढ़कर मैं सचमुच घबरा गया। स्वामीके साथ मैं बात जरूर करूँगा। परन्तु जैसे जच्चाके पास बहुत-सी दाइयाँ इकट्ठी हो जानेसे प्रसव बिगड़ जाता है वैसे ही जब कोई व्यक्ति अत्यन्त प्रेम और समझदारीके साथ अपने मित्रका मार्गदर्शन कर रहा हो वहाँ दूसरे मित्रों-को दखल देना उचित नहीं। यदि उन्हें कुछ कहना हो तो वे अपनी बात कहकर चुप रहें। मेरा यही मत है। मैं मानता हूँ कि अनेक कारणोंसे आपकी तबीयतके बारेमें आपका मार्गदर्शन करनेका अधिकार मुख्य रूपसे स्वामीको ही है. और चूँकि स्वामी कुशल है इसलिए मैं निर्भय भी रहता हूँ। कुछ बातोंके बारेमें मतभेद हो सकता है; उनके बारेमें मैं साधारणतया कुछ कह देता हूँ पर आग्रह नहीं करता। जितना अपूर्ण चिकित्साशास्त्र है उतना अपूर्ण कदाचित ही कोई दूसरा शास्त्र होगा। और जहाँ बहुत-सा काम अनुमानके आधारपर ही चलता हो वहाँ किसी एक मार्ग पर जाते हुए मनुष्यके मनमें अपने आग्रहसे संशय उत्पन्न करना तो पाण्डेजीको दोनों दीनोंसे वंचित करने जैसा होगा। मसूरी इत्यादिका मुझे मोह नहीं है। हम गरीब हैं इसलिए हमें कहीं अपनी सीमा अवश्य बाँध लेनी चाहिये, ऐसा मैं अवश्य मानता हूँ। कहाँ और कैसे बाँधनी चाहिए, जो सबपर लागू हो सके ऐसा सामान्य नियम

तो बनाया नही जा सकता। आपके लिए क्या करना है इस सबके बारेमें मैं स्वामीके साथ बात कर लूँगा और अन्तमें वह जो कहेगा वही करूँगा। इस समय तो यहाँ हवा काफी ठण्डी है। बादल घिरे हुए हैं और नदीमें खूब पानी है।

तनसुखके पत्रका मुझपर कुछ असर नही हुआ। उस पत्रमें व्यक्त किये गये विचार अवकचरे हैं। पर बच्चोंको ऐसे विचार भी करनेकी स्वतन्त्रता अवश्य होनी चाहिए। समय पाकर इन भूलोंमे से कितनी तो अपने-आप सुधर जाती हैं।

काकासाहब कालेलकर
स्वावलम्बन पाठशाला
चिंचवड
(जिला पूना)

गुजराती प्रति (एस० एन० १२२७७) की फोटो-नकलसे।

४२४. पत्र : परमानन्द सैम्युअल्स लालको

आश्रम
साबरमती
११ सितम्बर, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला और 'एवर इन्क्रीजिंग फेथ' नामक पुस्तक भी। दोनोंके लिए धन्यवाद। मेरे पास अनेक परिचित और अपरिचित कृपालु मित्रों द्वारा भेंटके रूपमें भेजी गई इतनी अधिक चीजें आया करती हैं कि उनपर पूरी तौरसे ध्यान देना भी असम्भव हो गया है। जो साहित्य मेरे पास आता है, उसे पढ़नेके लिए मुझे एक क्षण भी नही मिल पाता। आपके द्वारा भेजी गई पुस्तक कब पढ़ पाऊँगा सो ईश्वर ही जानता है। मेरी कठिनाई यह है कि पढ़नेकी जितनी उत्कट इच्छा पहले रहा करती थी अब नही रह गई है। अब मनमें विचार और चिन्तन और प्रार्थना करनेकी ओर ईश्वर मुझे जो बुद्धि देता है उसके अनुसार काम करनेकी इच्छा है। दूसरोंके अनुभव यद्यपि मूल्यवान होते हैं पर वे आज मेरे काम नही आ सकते, क्योंकि मेरी धारणा है कि परमात्माने मेरा कार्य निश्चित कर दिया है। और उसीको करते रहनेके अतिरिक्त मेरे सामने और कोई विकल्प नही रह गया है।

हृदयसे आपका,

श्री परमानन्द सैम्युअल्स लाल
७, पंचमहल रोड
लाहौर

अंग्रेजी प्रति (एस एन० १९६८९) की माइक्रोफिल्मसे।

४२५. पत्र : लाला लाजपतरायको

आश्रम
सावरमती
११ सितम्बर, १९२६

प्रिय लालाजी,

देख रहा हूँ कि आपने अपने पर्यटनमें भी मुझे भुलाया नहीं, क्योंकि आपने 'गीता' का एक नन्हा-सा संस्करण तथा चार अन्य रत्न भी मुझे भेजे हैं। आपके हृदयको जिस भावने उपहारके लिए प्रेरित किया उस भाव तथा आपकी पसन्दगीके लिए मैं आपका आभारी हूँ। आशा है कि आप राजनीतिके राजमार्गपर अपनी यात्राओंके दौरान इस एक वेचारे इन्सान और उसकी खादीके लिए हमेशा प्रेम बनाये रहेंगे और याद रखेंगे कि वह हमेशा आपके हृदय-द्वारपर खड़ा हुआ कुण्डी खटखटा रहा है। आशा है आपके हृदय-द्वार मेरे लिए खुले रहेंगे।

आशा करता हूँ कि जलवायु परिवर्तनसे आपको लाभ हुआ होगा।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन १९६९०) की फोटो-नकलसे।

४२६. पत्र : बनारसीदास चतुर्वेदीको

आश्रम,
सावरमती
शनिवार, भाद्रपद शुक्ल ४ [११ सितम्बर, १९२६][1]

भाई बनारसीदासजी,

यह मेरा सन्देश :

फिजीमें भारतवासी शरावमें ज्यादेतर डूबे रहे। सुनकर मुझको वड़ा खेद होता है। ईश्वर उनको इस वदीसे वचा ले।

आपका,
मोहनदास गांधी

श्री वनारसीदास चतुर्वेदी
फीरोजावाद, (सं० प्रा०)

मूल पत्र (जी० एन० २५६५) की फोटो-नकलसे।

१. डाककी मुहरसे।

४२७. पत्र : नानाभाई भट्टको

आश्रम
साबरमती
शनिवार, भाद्रपद सुदी ४, ११ सितम्बर, १९२६

भाई नानाभाई,

तुम्हारा पत्र और तीनों निमन्त्रण-पत्र मिले। मैंने निमन्त्रण-पत्र पढ़ लिये हैं, उन्हें लौटा रहा हूँ। तुमने जो जवाब लिखा है, उसके बारेमें मुझे कुछ भी नहीं कहना है। इसलिए उसपर टीका करके तुम्हारा और अपना समय बरबाद नहीं करूँगा। भाई नरहरिके बारेमें तुमने जो किया है, ठीक ही किया है। पूजाभाईके पत्रकी नकलके साथ जो पत्र मैंने तुम्हें भेजा था उसकी पहुँच अभीतक प्राप्त नहीं हुई है। वह पत्र मिल तो गया ही होगा। तुमने अँगूठा ही कटवा डाला था, तब तो तुमने बड़े साहसका परिचय दिया है। मैं तो यही समझा था कि तुमने छोटा-सा चीरा लगवाया है। खैर, अब तो चलने-फिरने लायक हो गये होगे?

श्री नानाभाई
दक्षिणामूर्ति
भावनगर

गुजराती प्रति (एस० एन० १२२७८) की फोटो-नकलसे।

४२८. सत्याग्रह अथवा दुराग्रह

सत्याग्रहके अनेक रूप हैं। उनमें उपवास भी आ जाता है। एक सज्जनने सवाल किया है:

> एक आदमीको किसीसे अपनी रकम वसूल करनी है। लेनदार असहयोगी है, इसलिए अदालतमें नहीं जा सकते। देनदार धनके मदमें सुनता ही नहीं है। मामला पंचोंके सामने रखनेपर भी राजी नहीं होता। अब अगर लेनदार उसके घरपर धरना दे और उपवास करे तो क्या यह शुद्ध सत्याग्रह नहीं गिना जायेगा इसमें उपवास करनेवाला किसीकी हानि नहीं करता। रामराज्यके समयसे दिया हुआ पैसा वसूल करनेकी यह प्रणाली चली आती है। परन्तु आप तो इसे हठधर्मी और अविवेकमें गिनते हैं। यदि आप इसका पूरा खुलासा करें तो ठीक हो।

उपर्युक्त पत्र लिखनेवाले भाईका हेतु निर्मल है, यह मैं जानता हूँ। किन्तु इसमें भी मुझे कोई शंका नहीं है कि सत्याग्रहका ऐसा अर्थ करना भ्रान्तिपूर्ण है, सत्याग्रह व्यक्तिगत स्वार्थके लिए ठीक हो ही नहीं सकता। यदि हम उपवास करके पैसा वसूल करनेकी पद्धतिको बढ़ावा दें तो अनेक दुष्ट लोग इसका दुरुपयोग करने लगेंगे। आज भी देशमें बहुतसे लोग ऐसा करते हैं। उपवासका दुरुपयोग करनेवालोंकी बात लेकर भुक्त भोगियोंके उपवासको अनुचित बताना सही नही कहा जा सकता। किन्तु सच्चे और झूठेका निर्णय कौन करेगा? सभी अपनेको सच्चा कहेंगे। जिसे हमने न्याय्य समझा हो, वह अन्याय भी तो हो सकता है। इसलिए सत्याग्रहके अस्त्रका उपयोग परमार्थके लिए ही किया जा सकता है। स्वयं सत्याग्रहीको दुःख भोगने और धनकी हानि सहनेको तो तैयार ही रहना चाहिए। जब असहयोग शुरू किया गया था तब अदालतोंके बहिष्कारका लाभ उठाते हुए अप्रामाणिक आदमी असहयोगियोंका पैसा दबा बैठेंगे — यह भय तो था ही। उस समय हम लोगोंने यही माना था कि जोखम उठानेमें ही असहयोगकी खूबी है।

और फिर विरोधियोंके प्रति अनशन रूपी सत्याग्रह किया ही नहीं जा सकता। इस शस्त्रका उपयोग केवल हितके साथ ही और वह भी उसके हितके लिए ही किया जा सकता है। हिन्दुस्तान जैसे देशमें, जहाँ लोगोंमें दयाभाव भरा हुआ है, अनशन करके पैसा वसूल करना तो अत्याचार ही है। ऐसे मनुष्योंको मैं जानता हूँ कि जिन्होंने ऊबकर, केवल झूठा तरस खाकर पैसा दे दिया है। इसलिए इस देशमें सत्याग्रहके धर्मको जाननेवालेको चाहिए कि बहुत ही सावधानीसे काम ले। पचास आदमी जिसे अपनी सही लेनदारी मानते हों, उसे वे अनशन करके वसूल कर लें तो मैं इसे सत्याग्रहकी नहीं, दुराग्रहकी ही जय मानूँगा। सत्यका आग्रह करते-करते मर जानेमें ही सत्याग्रहकी जय है। वे जिस बातके लिए आग्रह करते हैं वह सफल हो चाहे न हो, इसके विषयमें सत्याग्रही निश्चिन्त रहता है; और यह बेफिक्री अपना लेना-पावना वसूल करनेके लिए किये गये अनशनमें नही हो सकती। इसलिए सभी पहलुओंसे व्यक्तिगत लाभके लिए किये गये अनशनमें मुझे तो अविनय और अज्ञानका ही आभास मिलता है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १२-९-१९२६

४२९. धर्म-संकट

एक सज्जन लिखते हैं[1]:

यह बिलकुल सम्भव है कि 'देशी मिलोंके कपड़ेका व्यवहार करनेकी अपेक्षा विलायती कपड़े पहनना अच्छा है'; वाक्य 'हिन्द-स्वराज्य' में है।[2] जिस बातको लेकर यह वाक्य लिखा गया था, उस सम्बन्धमें मेरे विचार जो सन् १९०८ में थे[3], वे आज भी हैं। उसमें जो कहा गया है वह केवल सिद्धान्तपर अवलम्बित है, कुछ परिस्थितियोंमें इस विचारपर अमल नहीं किया जा सकता, इसलिए हिन्दी आवृत्तिकी प्रस्तावनामें मैंने पाठकोंको सावधान कर दिया है।[4] और इस परिवर्तनपर भी मैं कायम हूँ। मिलोंके जालमें हम जितने फँस गये हैं, अगर उतने न फँसे होते और अगर यह प्रश्न होता कि हम नई मिलें खोलकर कल्पित स्वदेशी मालका व्यवहार करें या विदेशी मिलोंका माल मँगाकर उसका व्यवहार करें तो मैं विदेशी मिलोंके मालको ही पसन्द करता, क्योंकि मेरी यह मान्यता नहीं है कि दुनियामें कारखानोंकी प्रवृत्तिको बढ़ाया जाना चाहिए। मिलोंके व्यवसायके बिना भी कपड़ा बन सकता है; जितना चाहिए उतना बन सकता है, और हम यह भी देख चुके हैं कि इसमें उसकी बनिस्बत समय भी बहुत नहीं लगता। इससे मुझे ऐसा मालूम नहीं होता कि मिल-व्यवसायमें किसी प्रकारका परमार्थ और लोक कल्याण है।

किन्तु परिस्थिति इससे विपरीत ही है। हमारे देशमें बहुतसी मिलें हैं। इस समय मिलोंको बन्द करनेकी बात मालिकोंको समझाना सम्भव नहीं है। विदेशी कपड़ेका बहिष्कार इष्ट और आवश्यक है। यह हमारा धर्म है — हमारा अधिकार है। इस धर्मका पालन करनेमें, अपने सहज-सुलभ प्राप्त साधनोंका हमें उपयोग करना ही चाहिए। अगर हम ऐसा न करें तो यह हमारी समझकी कमी मानी जायेगी।

धर्म कोई ऐसी स्वतन्त्र वस्तु नहीं है जिसमें परिस्थितिके बदलनेसे परिवर्तन न हो। उत्तरी ध्रुवमें रहनेवालोंके लिए जो धर्म है, यदि भूमध्यरेखाके पास रहनेवाले भी उसका पालन करें तो शायद उसे अधर्म ही गिना जायेगा। स्वतन्त्र तो एक ही

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने गांधीजीसे यह बतानेका अनुरोध किया था कि भारतकी देशी कपड़ा मिलोंके बारेमें उनका रुख किस कारण बदला। गांधीजीने हिन्द स्वराज्यमें लिखा था कि देशमें कपड़ेकी मिलें खोलनेके बजाय कुछ समयतक मैनचेस्टरसे कपड़ा मँगाते रहना देशके लिए हितकर हो सकता है; किन्तु १९२१ में उनका रुख बदल गया।

२. पूनाकी एक सार्वजनिक सभामें बालकाका कानिटकरने अपने भाषणमें यह वाक्य कहा था।

३. हिन्द स्वराज्य, १९०९ में लिखा गया था।

४. पत्र-लेखकने १९२१ में प्रकाशित हिन्दी संस्करणकी भूमिकामें से यह अंश उद्धृत किया था, मिलोंके सम्बन्धमें मेरे विचारोंमें इतना परिवर्तन हुआ है कि हिन्दुस्तानकी आजकी हालतमें मैनचेस्टरके कपड़ेके बजाय हिन्दुस्तानकी मिलोंको प्रोत्साहन देकर भी हमारी जरूरतका कपड़ा हमारे देशमें ही पैदा कर लेना चाहिए।

धर्म है और वह सत्यके नामसे ज्ञात ईश्वरमें ही समाविष्ट हो जाता है। पराधीन और अत्यन्त परिमित शक्तिवाले मनुष्यका धर्म क्षण-क्षणमें बदला करता है; किन्तु उसकी भूमिका और आधार एक ही होता है — उसे हम चाहे सत्य कहें, चाहे अहिंसा कहें। इस भूमिकापर कायम रहते हुए परिवर्तन तो अनेक होते ही रहते हैं। ऐसा ही इन मिलोंके सम्बन्धमें समझना चाहिए। किन्तु जहाँ किसानोंके अपना खेत छोड़ संदूक जैसी छोटी-छोटी कोठरियोंमें नीति-अनीतिका विचार किये बिना कई कुटुम्ब रहें और मजदूर जहाँ बहुत-सी कुटेव सीखें, वहाँ खुशियाँ मनानेकी तो कोई बात ही नहीं है। धनिक लोगोंकी दृष्टिसे विचार करनेपर भी मिलोंमें हमें कोई ऐसी बात देखनेको नहीं मिलती जो हमें ऊँचा उठाये। धन इकट्ठा करने या उसे कुछ हिस्सेदारोंमें बाँट देने भरमें किसी प्रकारका आदर्श नजर नहीं आता, किन्तु जैसे एकांतिक दृष्टिसे विचार करनेपर काया बुरी वस्तु मालूम होती है, किन्तु अनिवार्य समझकर उसका उपयोग करना ही पड़ता है उसी प्रकार मिलों इत्यादिको भी आज अनिवार्य समझकर हम बरदाश्त करें। और अगर हो सके तो उनका उपयोग बहिष्कारके लिए करें। यदि उनका ऐसा कोई उपयोग न हो सके और वे बहिष्कारके पथमें बाधा रूप बनें तो उनका नाश ही इष्ट और आवश्यक होगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १२-९-१९२६

४३०. पत्र : विलयम डुलको

आश्रम
साबरमती
१२ सितम्बर, १९२६

प्रिय श्री डुल,

चूँकि श्री उमर जौहरीसे मिलनेकी उम्मीद थी, इसलिए मैंने आपके ५ जूनके पत्रकी[1] पहुँच अबतक नहीं दी थी। अब मैं उनसे मिल चुका हूँ। मैंने कुछ ही दिनों पहले ६,५०० रुपये दे दिये हैं और तभी आपको निम्नलिखित तार[2] भी भेज दिया था।

मुझे उम्मीद है कि आप जमानतनामोंको ठीक तरहसे पूरे कराके मुझे भेज देंगे। न्यासियों द्वारा यह बात स्वीकार की जानी चाहिए कि सोराबजीको जो धन-सम्पत्ति सौंपी जायेगी, उसमें सबसे पहली देयता इस ऋणकी ही रहेगी। कृपया बीमा पालिसी-

१. डर्बनकी "विलिस्टन और डुल" नामक सॉलिसिटरोंकी पेढ़ीके श्री डुलने अपने ५ जूनके पत्रमें गांधीजीको लिखा था कि सोराबजी अत्यन्त गम्भीर आर्थिक स्थितिमें पड़ गये हैं और अगर सोराबजीकी जीवन-बीमा पालिसीमें जमानतके आधारपर उन्हें रुस्तमजी जीवनजी, घोरखोदू न्यासकी ओरसे कुछ धन पेशगी दे दिया जाये तो उनके इस दिवालियेपनको दूर किया जा सकता है।

२. यह उपलब्ध नहीं है।

की सुपुर्दगी या स्वत्व-त्यागके लिए लिखा गया पत्र, विधिवत् बीमा-कार्यालयमें दर्ज करानेके बाद मुझे भेजें।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत विलियम डुल
मरे कोर्ट
३७५, स्मिथ स्ट्रीट
डर्बन, नेटाल

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०८०८) की फोटो-नकलसे।

४३१. पत्र : रेवरेंड डी० डब्ल्यू० ड्र्यूको

आश्रम
साबरमती
१२ सितम्बर, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका लम्बा पत्र[1] पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई। उसे पाकर पुराने दिनोंकी बहुत-सी मधुर स्मृतियाँ जाग उठीं और कितने ही प्यारे-प्यारे साथियोंकी याद हो आई। आप मेरे पुत्रसे मिलने गये और उसे प्रोत्साहन दिया, यह आपका सौजन्य है। मुझे खुशी है कि उसका काम आपको पसन्द आया।

आप मुझसे मेरी यहाँकी गतिविधियोंके बारेमें जाननेकी अपेक्षा नहीं रखते; मैं ऐसी धृष्टता भी नहीं करूँगा। 'यंग इंडिया' का मेरा सम्पादन असलमें उन मित्रोंको लिखी गई मेरी साप्ताहिक चिट्ठी ही है जो मेरी वर्तमान गतिविधियोंमें दिलचस्पी रखते हैं।

दक्षिण आफ्रिकी काण्डसे मुझे कुछ सदमा पहुँचा है। मैं इस बातके लिए कदापि तैयार नहीं था कि १९१४ में संघ सरकारकी ओरसे दिये गये वचनोंको इस तरह डंकेकी चोट भंग कर दिया जायेगा।

और अब चूँकि आपने पत्र-व्यवहार शुरू कर दिया है, मैं चाहूँगा कि आप जारी रखें। जब कभी भी आप अपने इस पुराने मित्रकी याद करना चाहें, इसे पत्र अवश्य लिखें।

हृदयसे आपका,

रेवरेंड डी० डब्ल्यू० ड्र्यु
फीनिक्स, नेटाल

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०८०९) की फोटो-नकलसे।

१. बारह वर्षोंकी चुप्पीके बाद २८ जुलाईको ड्र्यूने पत्र लिख कर विभिन्न विषयोंकी चर्चा करते हुए फीनिक्स प्रेसमें जा कर मणिलाल गांधीसे मिलनेकी बात भी लिखी थी।

४३२. पत्र : एम० मर्गारिजको

आश्रम
साबरमती
१२ सितम्बर, १९२६

प्रिय मित्र,

पत्रके लिए धन्यवाद। आपने जिस पुस्तकका उल्लेख किया है, वह मैंने नही पढ़ी है। मेरे और अन्य कई लोगोंके अनुभव आपके भेजे हुए उद्धरणोंसे मेल नहीं खाते। मेरा खयाल है कि लेखकके दृष्टिकोण और मेरे तथा मेरे मित्रोंके दृष्टिकोणमें फर्क है। जब ब्रह्मचर्यका पालन इस मिथ्या धारणासे प्रेरित होकर किया जाता है कि मूल प्रवृत्तिकी तुष्टिसे जो सुख मिलता है वह बड़ा ही घटिया दर्जेका होता है, तब वह "चिड़चिड़ेपन और प्रेमके ह्रासका कारण बन सकता है। लेकिन जब ब्रह्मचर्य-का पालन आत्म-साक्षात्कारके लिए, शक्ति अर्जित करनेके लिए और शारीरिक सुखके लिए नहीं बल्कि आत्माओंके मिलनको प्रेमका आधार मानकर किया जाता है तो यह मनको शान्ति और शीतलता प्रदान करता है और पति-पत्नीके सम्बन्धको पवित्र और इसीलिए सबल बनाता है। आपने जिन बुराइयोंका वर्णन किया है, उनमें से अधिकांश तो मेरे खयालसे प्रेम और सहवासके प्रति दोषपूर्ण दृष्टिकोणसे उत्पन्न होती हैं। मेरी योजनाके अनुसार पति-पत्नीको एक दूसरेसे अलग, अर्थात् अलग-अलग घरोंमें रहनेकी जरूरत नहीं है; लेकिन उन्हें निश्चय ही अपने-आपको एक ही कमरेमें और उसे बन्द करके साथ नहीं रहना चाहिए। दीर्घकालसे देखते चले आनेके कारण ही बिना किसी नैतिक उद्देश्यके पति-पत्नीके एकान्तमें रातें गुजारते जानेके भोंडेपनको हम नहीं देख पाते। ऐसा करनेसे हम पशुओंसे भी कम हो जाते हैं। पति और पत्नीका केवल विनयके साथ सन्तानोत्पत्ति-भरके लिए एकान्त-सेवन ठीक है। मैं जानता हूँ कि उस क्रियामें पाशविक आनन्द तो तब भी रहेगा ही, लेकिन उसे मैं वैध पाशविक आनन्द कहूँगा। अगर हम सिर्फ अपने विचारोंमें सुधार कर लें और फिर आजकलके प्रति-कूल आचरणके बावजूद अपने-आपको उन विचारोंके अनुरूप ढालनेकी कोशिश करें, तो मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि आत्मसंयम न केवल आसान बल्कि दुनियाकी सबसे स्वाभाविक चीज भी बन जायेगा। खूबसूरतसे खूबसूरत कोई लड़की मेरी बहन हो सकती है और अगर अपनी बहनको चूमनेकी प्रथा प्रचलित हो तो उसके अनुसार मैं उसे निश्चय ही चूमूँगा भी। लेकिन उस समय मेरे मनमें कोई वासना तो नहीं जगेगी। फिर पत्नीके साथ इससे भिन्न बात क्यों होनी चाहिए? लेकिन होती है; यह मेरा खुदका अनुभव है। उसका कारण मानसिक वृत्ति है। हम अपनी पत्नियोंको अपनी वासनाकी पूर्तिके लिए चूमते हैं और बहनों और बेटियोंको वासना-रहित प्रेमसे।

अगर खान-मालिक जीत गये तो उसका कारण यह नहीं होगा कि खान मजदूरों की सन्तान बहुत है; बल्कि यह होगा कि खान मजदूर अपने आपको नियन्त्रणमें रखना नहीं जानते। अगर हर खान मजदूर अपनी जातिके मूलोच्छेदपर तुल जाये, वह कोई सन्तान उत्पन्न न करे तो भी मैं नहीं कह सकता कि उसकी अवस्था सुधर ही जायेगी, तब उसमें कोई महत्त्वाकांक्षा नहीं रह जायेगी और वह अपनी मजदूरीमें वृद्धि नहीं चाहेगा। जो मानव-समुदाय उच्चतर जीवनको जानता ही नहीं, जो अपनेको संयमित करना नहीं चाहता और जो नागरिक-दायित्वोंसे बराबर बचता है, उसके भविष्यके बारेमें कुछ भी कहना कठिन है।

हाँ, आप याद रखें कि सन्तति-निग्रहके सम्बन्धमें हम दोनों सहमत हैं। लेकिन निग्रहके उपायोंके विषयमें हम एक-दूसरेसे इतने भिन्न हैं कि निष्कर्ष भी अलग-अलग ही निकलेंगे।

हृदयसे आपका,

श्री एम० मगरिज
'फॉरले'
उटकमण्ड

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९६९१) की फोटो-नकलसे।

४३३. पत्र : ऋषभदासको

आश्रम
साबरमती
भाद्र[पद] सुदी ७, १९८२, १४ सितम्बर, १९२६

चि० ऋषभदास,

तुम्हारा पत्र मिला। भाई दास्ताने जैसा कहें वैसा करना तुम्हारा धर्म है। पिताजी अपना कारोबार तुम्हारे लिए ही चला रहे होंगे। उससे हाथ खींच लेना तुम्हारा कर्त्तव्य है। मेरा यह निश्चित मत है कि यदि तुम उससे सम्बन्ध तोड़ लो तो तुम्हें पिताजीसे मदद नहीं लेनी चाहिए। तुम्हें अपनी और अपनी धर्मपत्नी दोनोंकी गुजर-बसरका रुपया खादी-संस्थासे लेना चाहिए। मित्र लोग यदि स्वयंमेव तुम्हारी कुछ आर्थिक सहायता करें तो खुशीसे ले सकते हो, वह मदद उनके द्वारा खादी-संस्थाको दी गई मददके समान ही है। तुम्हारी पत्नीकी तबीयत अच्छी होगी। तुम जो-कुछ काम हाथमें लो उसे निश्चिन्त भावसे करो।

द्वारा कांग्रेस खादी भण्डार
जलगाँव

गुजराती प्रति (एस० एन० १२२८०) की फोटो-नकलसे।

४३४. पत्र : पुरुषोत्तम पटवर्धनको

आश्रम
साबरमती
मंगलवार, भाद्रपद सुदी ७, १४ सितम्बर, १९२६

भाईश्री ५ अप्पा,

आपका पत्र मिला। भाई अब्दुल्ला यहाँसे जानेके बाद आपके पास ही गया है। अबतक तो काफी घनिष्ठ परिचय हो गया होगा। आपने फिरसे कच्चा भोजन शुरू कर दिया है, इसके सम्बन्धमें मेरा विरोध हो ही नहीं सकता। पर उसमें एक शर्त है। स्वास्थ्य बिगड़ना न चाहिए। कच्चे भोजनकी निर्दोषताका अनुभव तो मुझे भी खूब हो चुका है। परन्तु उसका प्रयोग शास्त्रीय ढंगसे और बड़े पैमानेपर होना चाहिए। बिना पकाया भोजन थोड़ी-थोड़ी मात्रामें करना चाहिए, इस सम्बन्धमें कोई शंका है ही नहीं। मुझ-जैसे लोग, जिनका हाजमा कमजोर हो गया है, क्या करें? दूधका स्थान ले सकनेवाली कोई चीज मेरे ध्यानमें नहीं आती।

नकली खादी न बेची जाये इसके सम्बन्धमें चरखा संघ अपने भण्डारोंमें तो चौकसी रख सकता है। पर दूसरे भण्डारोंके बारेमें वह क्या कर सकता है?

अस्पृश्यता निवारण सम्बन्धी कर्त्तव्य तो मोटे तौरपर बताया जा चुका है। जैसा व्यवहार तीन वर्ण चौथे वर्णके साथ करते हैं वैसा ही चारों वर्ण अस्पृश्योंके साथ करें। इसके बाहर जाकर यदि कोई व्यक्ति कुछ करे — जैसे उनके साथ भोजन आदि करना — तो वह अपनी मर्जी और अपनी जोखिमपर करे। दूसरे भी उनके साथ खाना शुरू कर देंगे और हमारी तरह पापके भागी होंगे ऐसा मानकर हम उनके साथ खानेसे न रुकें। क्योंकि अगर कोई उनके साथ रोटीका सम्बन्ध रखता है तो वह कोई पाप नहीं करता, बल्कि हम तो इसे पुण्य-कार्य समझकर करते हैं। छुआछूत-को दोष न मानें तो वर्ण-व्यवस्थामें साथके खानपान इत्यादिपर जो प्रतिबन्ध है वह उसका अनिवार्य अंग नहीं माना जायेगा और माना भी न जाना चाहिए।

मैं समझता हूँ कि बम्बईमें यदि भंगियोंके ट्राममें बैठनेपर प्रतिबन्ध लगे तो यह सचमुच अन्याय है।

जाति व्यवस्थामें भी तिरस्कारका भाव है। यदि अस्पृश्यता दूर हो जाये तो हिन्दू धर्ममें से तिरस्कारकी दुर्गंध मिट जायेगी। ऊँच-नीचकी भावना अस्पृश्यता रूपी रोगका फल और चिह्न है। आज जो संस्कार हमारे जीवनमें जड़ जमा चुके हैं वे पुरानी वर्ण व्यवस्थामें कदापि नहीं थे। यह तो हम अपने इतिहाससे मालूम कर सकते हैं।

यदि अब भी कुछ पूछनेको बाकी हो तो जबतक तुम्हारा समाधान न हो तब तक पूछते ही रहना।

बापूके आशीर्वाद

श्री पुरुषोत्तम पटवर्धन
(भाईश्री अप्पा)
श्री तिलक राष्ट्रीय शाला
रत्नागिरी

गुजराती पत्र (एस० एन० १२२८१) की फोटो-नकलसे।

४३५. तार : ए० ए० पॉलको

[१५ सितम्बर, १९२६][1]

ए० ए० पॉल
'इंटरनेशनल फेलोशिप कॉन्फ्रेन्स'
चित्तूर,

पत्र[2] मिल गया था। खेद है, नहीं आ सकता। सम्मेलनकी सफलताकी कामना करता हूँ। हम सब अन्तर्राष्ट्रीय भ्रातृत्व ही तो चाहते हैं। इसके बिना हम मनुष्योंकी तरह नहीं जी सकते।

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११३७६) की फोटो-नकलसे।

४३६. सन्देश : आफ्रिकी शिष्टमण्डलको

आश्रम
साबरमती
१५ सितम्बर, १९२६

संघ सरकारकी ओरसे जो दक्षिण आफ्रिकी शिष्टमण्डल भारत आ रहा है[3], अनेकानेक लोगोंके साथ स्वर मिलाकर मैं भी उसका स्वागत करता हूँ। हमें चाहिए कि हम उसके प्रति अधिकसे-अधिक सद्भावना प्रदर्शित करें; लेकिन हम खयाली

१. पॉल्के लिखे ६ तारीखके पत्रपर जवाबकी यह तारीख दी हुई है।

२. पत्रमें गांधीजीसे ८ से १० अक्तूबरको चित्तूरमें होनेवाले 'इंटरनेशनल फेलोशिप कॉन्फ्रेंस' में भाग लेनेका अनुरोध किया गया था। गांधीजीका १० जुलाईका पत्र भी देखिये।

३. यह १९ सितम्बर, १९२६ को भारत पहुँचा था।

पुलाव भी न पकायें। यह शिष्टमण्डल तो दिसम्बरमें होनेवाले सम्मेलनका सिर्फ एक अंश-भर है। उसके सदस्यगण कुछ कर सकनेका अधिकार लेकर यहाँ नहीं आ रहे हैं। वे तो यहाँ केवल यहाँका वातावरण समझनेके लिए आ रहे हैं। दक्षिण आफ्रिका और भारतके राजनीतिज्ञोंके सामने जो कठिन समस्या है, उसका समाधान अनेक परिस्थितियोंपर निर्भर करता है। शिष्टमण्डलका आना भी उनमें से एक है। इस अवसरका हमें अच्छेसे-अच्छा उपयोग करना चाहिए। हमें ऐसी स्थिति उत्पन्न करनी चाहिए, जिससे शिष्टमण्डल समस्याके सभी पहलुओंको देख-समझ सके। दूसरे शब्दोंमें हमें ऐसी स्थिति उत्पन्न करनी चाहिए जिससे वे सत्य, केवल वास्तविक सत्यको, जान सकें। दक्षिण आफ्रिकाके भारतीय अधिकारियोंका मामला खालिस न्यायपर आधारित है। इसलिए, इस समय जो दक्षिण आफ्रिकी राजनीतिज्ञ आ रहे हैं, उनके मौकेपर आकर स्थितिका निष्पक्ष अध्ययन करनेसे समस्याके समाधानमें मदद ही मिलेगी।

मो० क० गांधी

बॉम्बे क्रॉनिकल, १८-९-१९२६ तथा अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९६९२) की फोटो-नकलसे।

४३७. पत्र: वी० ए० सुंदरम्को

आश्रम
साबरमती
१५ सितम्बर, १९२६

प्रिय सुन्दरम्,

तुम्हारा साप्ताहिक उपहार फिर मिला। तुम्हारा प्रति सप्ताह मुझे तमिलके सरल वाक्य भेजते रहनेका प्रस्ताव है तो बड़ा आकर्षक; लेकिन चूंकि मेरे पास इस समय जितना काम है उसके अलावा और कुछ करनेका मेरे पास समय नहीं है इसलिए मुझे इस लोभका संवरण करना ही पड़ेगा।

तुम सबको सस्नेह,

तुम्हारा,
बापू

अंग्रेजी पत्र (जी० एन० ३१९४) की फोटो-नकलसे।

४३८. पत्र : भवानीदयालको

आश्रम
साबरमती
बुधवार, भाद्रपद शुक्ल ८ [१५ सितम्बर, १९२६][1]

भाई भवानीदयालजी,

आपका पत्र मिला है। मेरा उत्तर निम्नलिखित है :

(१) ना जी।[2]

(२) जोहानिसबर्गसे १३ मील दूर और बगैर लम्बे पट्टेसे जमीन देनेकी बात थी। उस जगहका स्वीकार करनेसे मैंने भारतवासियोंको रूक लिये थे। कारण स्पष्ट है।

(३) म्युनिसिपालिटीकी ओरसे मुझे एक कोड़ी भी नहीं मिली थी। परंतु म्युनिसिपालिटी जिन केसोंमें हार गई थी उसमें खर्चा म्युनिसिपालिटीको देना पड़ा था। भारतवासीमेंसे जो कुछ मिला था वह करीब सब जाहेर काममें दिया गया था।

(४) दोनों एसोसिएशन आखिर तक मौजुद थे और एक दुसरेसे स्वतन्त्र थे।

(५) जिस तरह किसीकी वंदना बलात्कारसे करना अधर्म है और सारा जगतकी वंदना स्वेच्छया करना धर्म है, इसी तरह उंगलियोंके लिये समझा जाय। हिंदुस्तानमें और अन्य देशोंमें कैदीओंके सिवाय और लोगोंसे भी उंगलिया ली जाती हैं। महादेवजीने नग्न-नृत्य किया था।

(६) फोटोका भी हमारे लोगोंके तरफसे विरोध किया गया था, और वह उचित था। मेरी दृष्टि फोटोकी बनिस्बत उंगलिया देना ज्यादह अच्छा है और शास्त्रीय है।

(७) वेस्टेड राइट्सके[3] संबंधमें आपने ठीक अर्थ निकाला है।

(८) आपके पुस्तककी मैंने उपेक्षा नहीं की है, परंतु मैंने पूरी पढ़ ली नहीं है। उसमें बहुतसी गलतिया है ऐसा मुझको . . .[4] गया है। उस बारेमें जिक्र करना अनुचित समझकर मैं शांत रहा हू। मुझको स्मरण तो ऐसा है कि आपने भी कुछ गलतियांका स्वीकार किया था, और पश्चात्तापका पत्र भी मुझको लिखा था।

आपका,
मोहनदास गांधी

मूल पत्र (एस० एन० १०९९०) की फोटो-नकलसे।

१. यह पत्र भवानीदयालके दक्षिण आफ्रिका सम्बन्धी ९ सितम्बर, १९२६ के पत्रके उत्तरमें लिखा गया था। देखिए परिशिष्ट ५।

२. प्रश्न था : क्या गांधीजीने जोहानिसबर्ग नगरपालिकाको भारतीय बस्तियाँ दे देनेके प्रस्तावपर अपनी स्वीकृति दे दी है?

३. मूलमें यह शब्द अंग्रेजीमें है।

४. पत्र यहाँ कटा-फटा है

४३९. पत्र : मथुरादास त्रिकमजीको

आश्रम
साबरमती
बुधवार, भाद्रपद सुदी ८ [१५ सितम्बर, १९२६][1]

चि० मथुरादास,

तुम्हारा पत्र मिल गया। श्रीमती पट्टणीका उत्तर आ गया है। उसे इसके साथ भेज रहा हूँ। तुम जब इच्छा हो तब बँगलेका कब्जा ले लेना।

गुजराती प्रति (एस० एन० १२२७९) की माइक्रोफिल्मसे।

४४०. टिप्पणियाँ

शाहाबादके स्कूलोंमें चरखा

शाहाबाद जिला बोर्डकी चरखा समितिके मन्त्री लिखते हैं:[2]

प्रदर्शनके समय मन्त्रीने एक रिपोर्ट पढ़ी, जिसमें से निम्नांकित अंश मैं यहाँ देता हूँ:[3]

जिला बोर्डके स्कूलोंमें चरखेका प्रवेश करानेके लिए शाहाबाद जिला बोर्ड बधाईका पात्र तो है, किन्तु इसे सफल बनानेके लिए अभी बहुत-कुछ करना बाकी है। क्या कते हुए सारे सूतकी मजबूती और समानताकी जाँच होती है? क्या वे लड़के-लड़कियाँ अपने-अपने चरखेकी मरम्मत करना जानते हैं? कातनेवालोंकी संख्याके लिहाजसे सूत काफी नहीं काता जा रहा है। इस तरह मनको समझा लिए जानेका खतरा है। वह तो बिलकुल ही न काते जानेकी अपेक्षा भी बुरा होगा।

हिन्दुस्तानी पाठ्यपुस्तकें

आजकल श्री ग्रेग शिमलाके समीप कोटगढ़में पहाड़ी बालकोंको श्री स्टोक्सके फार्ममें शिक्षा दे रहे हैं। इन्हीं श्री ग्रेगका एक पत्र मेरे पास आया है। उसमें से जो निम्नलिखित अंश उद्धृत किया जा रहा है उससे पता चलेगा कि हिन्दुस्तानी बालकोंके लिए पाठ्यपुस्तकें तैयार करना कितना कठिन है।

१. मथुरादास त्रिकमजी पंचगनीमें १९२६ में रहे थे।

२. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। यह विवरण २७ अगस्तको शाहाबाद जिलेकी प्राथमिक शालाओंके विद्यार्थियोंके कताई-प्रदर्शनके विषयमें था।

३. यहाँ नहीं दिये जा रहे हैं; इनमें विभिन्न शालाओंकी कताईकी प्रगतिको सूचित करनेवाले आँकड़े थे।

जिनका मेरे विद्यार्थियोंके अनुभवोंसे समंजस बैठता हो, गणित और भौतिकीकी ऐसी पुस्तकें बनानेमें मेरा काफी समय लग रहा है। सबकी-सब अंग्रेजी पाठ्यपुस्तकें — हिन्दुस्तानी पाठ्यपुस्तकें भी — शहरी लड़कोंके लिए ही लिखी हुई मालूम होती है। वे किताबें यह बात मानकर लिखी जाती है कि सब प्रकारकी मशीनों और कारखानोंमें बने उपकरणोंका ज्ञान लड़कोंको है। लेकिन यहाँके बालकोंने शायद मोटरगाड़ी, इंजिन, बिजलीके लैम्प, पम्प, नल इत्यादि यहाँतक कि बैलगाड़ियाँतक — नहीं देखे है। इस कारण भौतिकीकी और गणितकी पाठ्यपुस्तकोंकी भी अनेक कल्पनाएँ, चित्र, पारिभाषिक शब्द और उनका क्रम इन बालकोंके लिए मुश्किल बैठता है। उनमें उन बालकोंको रस नहीं आता और वे उन्हें सीख भी नहीं सकते। इसलिए मैं धीरे-धीरे हिन्दुस्तानके देहाती लड़कोंके लिए भौतिकी और गणितकी पाठ्यपुस्तकें तैयार कर रहा हूँ। हिन्दुस्तानके अधिकतर बालक गाँवोंमें रहनेवाले होते है, इसलिए मैं समझता हूँ कि ये पुस्तकें लाभदायक सिद्ध होंगी।

लेकिन श्री ग्रेगके पत्रसे कई बड़े-बड़े प्रश्न पैदा होते है। इंग्लैंड और अमेरिका जैसे नागरिक सभ्यता प्रधान, शोषणशील और धनिक देशोंके लिए जो ठीक है वह ग्राम-प्रधान दरिद्र और परदेशियोंके चंगुलमें फँसे हिन्दुस्तानके लिए ठीक नहीं हो सकता। अगर हिन्दुस्तानमें बहुत-सी पाठ्यपुस्तकें बनाई जायें तो बहुतसे देहाती बालकोंका शिक्षण साधन ही छिन जाये, क्योंकि वे इतनी पुस्तकें नहीं खरीद सकते। इसका अर्थ यह है कि हिन्दुस्तानमें पाठ्यपुस्तकें — खासकर नीचेकी श्रेणियोंमें पढ़ाई जानेवाली पुस्तकें — ज्यादातर शिक्षकोंके लिए होनी चाहिए न कि विद्यार्थियोंके लिए। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि अगर बालकोंको प्राथमिक शिक्षण पुस्तकों द्वारा देनेकी अपेक्षा जबानी ही दिया जाये तो शायद वह ज्यादा फायदेमन्द होगा। छोटी उम्रमें लड़कोंके ऊपर बारहखड़ी सीखनेका बोझा डालना और सामान्य ज्ञान मिलनेके पहले ही उनको पुस्तकोंके द्वारा शिक्षण देना, मानो सुनकर ज्ञान प्राप्त करनेकी उनकी शक्तिको छीनना है। उदाहरणके लिए क्या सात वर्षके बच्चेको पढ़ना सीख जानेतक 'रामायण'की शिक्षा नहीं दी जानी चाहिए? सामाजिक, आर्थिक अथवा राजनैतिक सभी शिक्षण-सम्बन्धी बातोंमें हिन्दुस्तानके चन्द लाख शहरी बच्चोंकी दृष्टिसे सोचनेपर हम जिन निष्कर्षोंपर पहुँचते है, गाँवोंमें रहनेवाले करोड़ों बच्चोंको ध्यानमें रखकर विचार करनेसे हम उन निष्कर्षोंपर नहीं पहुँचते। इसलिए यह स्पष्ट है कि श्री ग्रेगके इस प्रयत्नका परिणाम महत्त्वपूर्ण होगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १६-९-१९२६

४४१. विद्यार्थियोंका धर्म

लाहौरसे एक भाईने बड़ी बढ़िया हिन्दीमें एक करुणाजनक पत्र लिखा है। मैं उसके मुख्य भागोंका भावानुवाद नीचे देता हूँ:

> हिन्दू-मुस्लिम झगड़े, और कौंसिलोंके लिए चुनावकी भागदौड़ने असहयोगी छात्रोंका मन डाँवाडोल कर दिया है। देशके लिए उन्होंने बहुत त्याग किया है। देशसेवा ही उनका मूल मन्त्र है। आज उनका कोई कर्णधार नहीं है। कौंसिलोंके नामपर उनमें उत्साहकी लहरें नहीं उठ सकतीं और हिन्दू-मुस्लिम झगड़ोंमें भी वे नहीं पड़ना चाहते। इसलिए वे उद्देश्यहीन, बल्कि उससे भी बुरा जीवन बिता रहे हैं। क्या उनकी जीवन-तरीको यों ही बहने दिया जायेगा? कृपा करके यह भी याद रखें कि इस परिणामके लिए अन्तमें आप ही जिम्मेदार ठहरेंगे। यद्यपि नाममात्रके लिए उन्होंने कांग्रेसकी ही आज्ञा मानी थी; किन्तु असलमें उन्होंने आपकी ही आज्ञाका पालन किया था। तब क्या उन्हें रास्ता दिखाना आपका कर्त्तव्य नहीं है?

पानीका हौज हम भले ही बना दें, लेकिन क्या हम अनिच्छुक घोड़ेको वहाँ खींच ले जाकर पानी पीनेको बाध्य भी कर सकते हैं? मुझे इन शानदार नवयुवकोंसे सहानुभूति तो जरूर है, लेकिन उनकी इस अव्यवस्थितताके लिए मैं अपनेको दोष नहीं दे सकता हूँ। यदि उन्होंने पहले मेरी आवाज सुनी थी, तो आज भी उसे सुननेसे उन्हें कौन रोकता है? जिस किसीको सुननेकी परवाह हो उससे मैं चरखेका मन्त्र साधनेकी बात अनिश्चित स्वरमें नहीं कह रहा हूँ। लेकिन असल बात तो यह है कि १९२० में उन्होंने मेरी बात नहीं सुनी थी (और यह ठीक भी था), बल्कि कांग्रेस-की बात सुनी थी। यदि यह कहें तो उससे भी सही होगा कि उन्होंने अपनी ही अन्तरात्माकी आवाज सुनी थी। कांग्रेसकी आज्ञा उनकी इच्छाकी प्रतिध्वनि थी। वे उसके निषेधात्मक कार्यक्रमके लिए तैयार थे। कांग्रेसके कार्यक्रमका रचनात्मक भाग चरखा चलाना, जो अब भी कांग्रेसकी आज्ञा है — उनको कुछ जँचती सी नहीं मालूम होती। अगर बात ऐसी ही है तो फिर कांग्रेसके रचनात्मक कार्यक्रमका एक और हिस्सा बचा हुआ है — अछूतोंकी सेवा। यहाँ भी, देशसेवाके लिए मरनेवाले सभी विद्यार्थियोंके लिए जरूरतसे ज्यादा काम है। वे जान लें कि वे सभी, जो समाजकी नैतिक स्थिति ऊँची करते हैं, या जो बेकारीके रोगमें ग्रस्त करोड़ों आदमियोंको काम देते हैं, स्वराज्यके सच्चे निर्माता हैं। इससे विशुद्ध राजनीतिक कार्य भी अधिक सहज बनेगा। इस रचनात्मक कार्यसे विद्यार्थियोंके अच्छेसे-अच्छे गुण प्रकट होंगे। यह काम स्नातकों और उपस्नातकों — सबके लिए उपयुक्त है। इसे करना ही सच्चा स्नातक होना है।

लेकिन यह भी सम्भव है कि चरखा या अछूतोद्धार कोई भी उनके लिए जोश दिलाने योग्य काम सिद्ध न हो। ऐसी हालतमें उन्हें जान लेना चाहिए कि

वैद्यकी हैसियतसे मेरे पास कोई इलाज नहीं है। मेरे पास इने-गिने नुस्खे हैं। मैं तो मानता हूँ कि सभी बीमारियोंकी जड़ एक ही है और इसलिए उनका इलाज भी एक ही हो सकता है। मगर क्या वैद्यको उसकी मर्यादाओंके लिए दोष दिया जा सकता है; सो भी तब जबकि वह अपनी मर्यादा पुकार-पुकारकर बता रहा हो?

जिन विद्यार्थियोंके विषयमें ये सज्जन लिखते हैं, उनमें तो अपने जीवनका रास्ता खोज निकालने लायक शक्ति होनी ही चाहिए। स्वावलम्बन ही स्वराज्य है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १६-९-१९२५

४४२. मनोवृत्तियोंका प्रभाव

'यंग इंडिया' में सन्ताननिग्रहपर आपने जो लेख लिखे हैं, उनको मैं बड़ी दिलचस्पीसे पढ़ता रहा हूँ। मुझे उम्मीद है कि आपने जे० ए० हैडफील्डकी 'साइकॉलोजी ऐंड मॉरल्स' नामक पुस्तक पढ़ी होगी। मैं आपका ध्यान उस पुस्तकके निम्न उद्धरणकी ओर दिलाना चाहता हूँ:[1]

"विषय-भोगकी प्रवृत्ति स्वेच्छाचार उसी हालतमें कहलाती है जब यह नीतिकी विरोधी हो और निर्दोष आनन्द तब मानी जाती है जब यह प्रेमके रूपमें प्रकट हो।"

एक पत्र-लेखक द्वारा लिखे इस पत्रमें मनोवृत्तियों तथा उनके प्रभावके अध्ययनके लिए मुझे खासी सामग्री मिली है। जब मनुष्यका दिमाग रस्सीमें साँपकी कल्पना कर लेता है, तब वह उस कल्पनासे पीला पड़ जाता है। तब या तो वह भाग जाता है या उस कल्पित सापको मारनेके लिए लाठी लाता है। दूसरा आदमी किसी बहनको पत्नी भावसे देखता है, वह अपने मनमें पशुवृत्तिको जगाता है। जिस क्षण वह अपनी भूल जान लेता है, उसका वह विकार उसी क्षण शान्त हो जाता है। पत्र-लेखक द्वारा उल्लिखित बात भी ऐसी ही है। इसमें सन्देह नहीं कि जब "विषयेच्छाको भ्रमवश नीचे दर्जेका सुख मानकर संयम रखनेका प्रयत्न किया जाता है तब उससे अशान्तिकी उत्पत्ति और प्रेममें कमी आ जानेकी" सम्भावना होती है। लेकिन अगर संयम प्रेमबन्धनको अधिक दृढ़ बनाने, प्रेमको शुद्ध बनाने तथा एक अधिक अच्छे कामके लिए वीर्यको संचित करनेके अभिप्रायसे किया जाये तो वह अशान्तिकी अपेक्षा शान्तिमें ही वृद्धि करेगा और प्रेमके बन्धनको ढीला न करके उलटा मजबूत बनायेगा। जो प्रेम पशुवृत्तिकी तृप्तिपर आधारित है, वह आखिर स्वार्थपरता ही है और थोड़ा-सा खिचाव पड़नेपर टूट जा सकता है। फिर प्रश्न है कि यदि पशुपक्षियोंकी वासना-

१. अंशतः उद्धृत।

तृप्तिको आध्यात्मिक रूप नहीं दिया जाता तो मनुष्यकी वासना-तृप्तिको आध्यात्मिक रूप क्यों दिया जाना चाहिए। हम जो चीज जैसी है उसे वैसी ही क्यों न देखें? हम इसे स्वजातिको कायम रखनेकी बलात् आकृष्ट करनेवाली एक क्रिया क्यों न मानें। इसमें मनुष्य अपवाद स्वरूप है; क्योंकि वही एक ऐसा प्राणी है जिसे ईश्वरने मर्यादित स्वतन्त्र इच्छा दी है। और वह इस कारण स्वजातिकी उन्नतिकी दृष्टिसे पशुओंकी अपेक्षा उच्चतर उस आदर्शकी पूर्तिके लिए, जिसके लिए वह संसारमें आया है, भोगोंसे बचनेकी क्षमता रखता है। हम संस्कारवश ही मानते हैं कि सन्तानोत्पत्तिकी आवश्यकताके अतिरिक्त भी स्त्री-संग अनिवार्य और प्रेमकी वृद्धिके लिए इष्ट है। यह बहुतोंका अनुभव है कि केवल भोगके कारण किया हुआ स्त्री-संग न तो प्रेमको बढ़ाता है और न वह प्रेमको स्थायी बनाने या शुद्ध करनेके लिए आवश्यक होता है। बल्कि ऐसे उदाहरण दिये जा सकते हैं जिनमें इन्द्रिय-निग्रहसे प्रेम और भी दृढ़ हुआ है। इसमें कोई शक नहीं कि यह इन्द्रिय-निग्रह पति और पत्नीके बीच एक दूसरेकी आत्मिक उन्नतिके लिए स्वेच्छासे किया गया कार्य होना चाहिए।

मानव-समाज तो एक लगातार बढ़नेवाली चीज है; उसका क्रमशः आध्यात्मिक विकास होता रहता है। इस हालतमें उसके ऊर्ध्व गमनका आधार शारीरिक अभितृप्तिको दिन-प्रतिदिन अधिक वशमें रखते चले जानेपर ही निर्भर होगा। इस प्रकार विवाहको तो एक ऐसी धर्मग्रन्थि समझना चाहिए जो पति और पत्नी दोनोंको संयत करे और उनपर यह कैद लगा दे कि उनका शरीर-सम्बन्ध सदा अपने ही बीच तक सीमित होगा; सो भी केवल सन्तानोत्पत्तिके लिए और वह भी उसी हालतमें जब वे दोनों उसके लिए तैयार और इच्छुक हों। तब उक्त पत्रमें बताई गई दोनो हालतोंमें सन्तति-जननकी इच्छाको छोड़कर वासनाकी तृप्तिका और कोई प्रश्न उठता ही नहीं।

यदि हम उक्त लेखककी तरह सन्तानोत्पत्तिके अलावा भी स्त्री-संगको आवश्यक मानकर तर्क प्रारम्भ करें तब तो फिर उसके विरोधमें तर्कके लिए कोई गुंजाइश नहीं बचती। परन्तु संसारके हरएक हिस्सेमें सदा ही उत्तम पुरुषों द्वारा सम्पूर्ण संयम किये जानेके दृष्टान्त मिलते हैं और इसलिए उक्त मान्यताका खण्डन हो जाता है। यह कहना कि ऐसा संयम अधिकांश मानव-समाजके लिए कठिन है, संयमकी शक्यता और इष्टताके विरुद्ध कोई दलील नहीं मानी जा सकती। सौ वर्ष पहले जो बात मनुष्यके लिए शक्य न थी वह आज शक्य दिखाई देती है। और हमारे सामने असीम उन्नति करनेके निमित्त जो कालका चक्र पड़ा है, उसमें सौ वर्षकी गणना ही क्या है? अगर वैज्ञानिकोंका अनुमान सत्य है तो कहना चाहिए कि हमें आदमीका चोला तो अभी-अभी मिला है। इसकी मर्यादाएँ कौन जानता है? और कौन इसकी मर्यादाओंको निश्चित कर सकता है? निःसन्देह हमें रोज भला या बुरा करनेकी उसकी निस्सीम शक्तिके दर्शन होते रहते हैं।

अगर संयमकी शक्यता और इष्टता मान ली जाये तो हमें उसका पालन करनेके साधनोंको ढूँढ़नेकी कोशिश करनी चाहिए। और, जैसा मैं अपने एक पिछले

लेखमें[1] लिख चुका हूँ, अगर हम संयमसे रहना चाहते हों तो हमें जीवनक्रम बदलनेकी आवश्यकता है। लड्डू हाथमें भी रहे और पेटमें भी चला जाये यह कैसे हो सकता है? अगर हम उपस्थका संयम साधना चाहते हैं तो हमें अन्य इन्द्रियोंको भी संयमित करना होगा। अगर हाथ, पैर, नाक, कान, आँख और जिह्वाकी लगाम ढीली कर दी जाये तो उपस्थका संयम असम्भव है। अशान्ति, उन्माद और पागलपन भी, जिसका कारण लोग संयमको बताते हैं, देखा जाये तो अन्ततः अन्य इन्द्रियोंके असंयमसे पैदा हुए ही सिद्ध होंगे। कोई भी पाप और प्राकृतिक नियमोंका कोई भी उल्लंघन बिना दण्ड पाये बच नहीं सकता।

मैं शब्दोंपर झगड़ना नही चाहता। अगर आत्मसंयम प्रकृतिका ठीक उसी तरह उल्लंघन हो, जिस तरह गर्भाधानको रोकनेके कृत्रिम उपाय, तो ऐसा कहना ठीक हो सकता है। किन्तु मेरा खयाल तो तब भी यही बना रहेगा कि इनमें एक उल्लंघन कर्त्तव्य है और इष्ट है, क्योंकि उससे व्यक्तिकी तथा समाजकी उन्नति होती है और दूसरा उल्लंघन अनुचित है क्योंकि उससे उन दोनोका पतन होता है। ब्रह्मचर्य अति सन्तानोत्पत्तिको नियमित करनेके लिए एकमात्र और अचूक उपाय है। और सन्ततिकी वृद्धि रोकनेके लिए कृत्रिम साधनोंके उपयोगका परिणाम जाति-हत्या है।

अन्तमें, यदि खानोके मालिक गलत रास्तेपर होते हुए भी विजयी हुए तो इसका कारण मजदूरोंमें सन्तति-जननकी गतिका बहुत बढ़ना न होकर यह होगा कि मजदूरोंने अबतक इन्द्रिय संयमका पाठ नही सीखा है। इन लोगोंके बच्चे पैदा न होते तो उनमें अपनी अवस्था सुधारनेका उत्साह ही न होता और तब उनके पास मजदूरीमें वृद्धिकी माँग करनेका भी कोई कहने योग्य कारण न होता। क्या उनके लिए शराब पीना, जुआ खेलना या तम्बाकू खाना-पीना जरूरी है? क्या इसका यह कोई माकूल जवाब होगा कि खानोके मालिक इन्ही दोषोमें लिप्त रहते हुए भी उनके ऊपर हावी हैं? अगर खानोंके मजदूर पूँजीपतियोंसे अच्छा होनेका दावा नहीं करते तो उनको संसारकी सहानुभूति माँगनेका क्या अधिकार है? क्या वे यह सहानुभूति इसलिए चाहते हैं कि पूँजीपतियोंकी संख्या बढ़े और पूँजीवाद मजबूत हो? हमसे कहा जाता है कि हम प्रजातन्त्रके गीत गायें, क्योंकि संसारमें उसका बोलबाला हो जानेपर हमें अच्छे दिन देखनेको मिलेंगे। इसलिए लाजिम है कि हम स्वयं बड़े पैमानेपर उन्हीं बुराइयोंको न करें, जिनका दोषारोपण हम पूँजीपतियों तथा पूँजीवादपर करते हैं।

मुझे यह मालूम है और इसका मुझे दुःख है कि आत्मसंयम आसानीसे नहीं साधा जा सकता। लेकिन उसकी धीमी गतिसे हमें उद्विग्न नहीं होना चाहिए। जल्दबाजीसे कुछ हासिल नहीं होता। अधैर्यसे जनसाधारणमें या मजदूरोंमें अत्यधिक सन्तानोत्पत्तिकी बुराईका अन्त न होगा। मजदूरोंके, सेवकोंके सामने बड़ा भारी काम पड़ा है। संयमका वह पाठ उनको अपने जीवन-क्रमसे निकाल नहीं देना चाहिए जो मानवजातिके अच्छेसे-अच्छे धर्मप्रचारकोंने अपने अमूल्य अनुभवसे हमें पढ़ाया है। जिन

१. देखिए "जीवनदायी शक्तिका संचय", २-९-१९२६।

मौलिक सिद्धान्तोंकी विरासत उन्होंने हमें दी है, उनका साक्षात्कार आधुनिक प्रयोग-शालाओंसे कहीं अधिक सम्पन्न प्रयोगशालामें किया गया था। उन सभीने हमें आत्म-संयमकी शिक्षा दी है।

[अंग्रेज़ीसे]

यंग इंडिया, १६-९-१९२६

४४३. अनिवार्य भरतीका विरोध

एक विशिष्ट तदर्थ समितिने जिसका पता ११ ऐवे रोड, एनफील्ड, मिडिल-सेक्स, इंग्लैंड है और जिसके अवैतनिक मन्त्री श्री एच० रन्हम ब्राउन हैं, यूरोपमें निम्नलिखित निर्दोष घोषणापत्र[1] प्रचारित किया है:

> युद्ध कालमें सभी देशोंके लोगोंने निश्चय किया था कि सैनिकवादके जुएको सदाके लिए उतार कर फेंक दिया जाये। और जब शान्तिकी स्थापना हुई तब राष्ट्रसंघके रूपमें इस आशाका अंकुर फूटते देखकर उसका स्वागत किया गया। यह ध्यान रखना हमारा कर्त्तव्य है कि युद्धके भयानक कष्टोंकी पुनरावृत्ति न हो।
>
> हम माँग करते हैं कि सम्पूर्ण निरस्त्रीकरण तथा सभ्य राष्ट्रोंके मनसे सैन्यीकरण दूर करनेकी दिशामें कुछ निश्चित कदम उठाया जाये। इस दिशामें सर्वाधिक प्रभावकारी उपाय होगा अनिवार्य भरतीका सर्वत्र बन्द किया जाना। इसलिए हम राष्ट्रसंघसे माँग करते हैं कि वह सच्चे निरस्त्रीकरणकी दिशामें पहले कदमके रूपमें सभी देशोंमें अनिवार्य सैनिक सेवाको बन्द करनेका सुझाव दे।
>
> हमारा विश्वास है कि अनिवार्य रूपसे भरती की गई सेनाएँ और उनके पेशेवर अधिकारी शान्तिके लिए जबरदस्त खतरा हैं। अनिवार्य भरतीसे मानवीय व्यक्तित्वका ह्रास और स्वतन्त्रताका नाश होता है। बैरकोंका जीवन, सैनिक कवायद, आदेशोंका, चाहे वे कितने ही अन्यायपूर्ण और मूर्खतापूर्ण क्यों न हों, आँख मूँदकर पालन और हत्याकाण्डके लिए सैनिकोंका सुयोजित प्रशिक्षण जनतन्त्र तथा मानव-जीवनके प्रति व्यक्तिके सम्मान भावको समाप्त कर देते हैं।
>
> मनुष्योंको अपना जीवन देने या उनकी अपनी इच्छाके विरुद्ध अथवा अपने कार्यकी न्याय्यतामें विश्वास किये बिना, नरहत्याके लिए विवश करना मानवकी प्रतिष्ठाको कलंकित करना है। जो राज्य यह समझता है कि उसे

१. इसपर गांधीजी और कई अन्य प्रमुख भारतीय नेताओंके हस्ताक्षर थे।

अपने नागरिकोंको जबरदस्ती युद्धमें झोंकनेका अधिकार है वह शान्तिके समय उनके जीवनके मूल्य तथा उनकी सुख-सुविधाका कभी उचित ध्यान नहीं करेगा। इसके अतिरिक्त अनिवार्य भरतीके कारण सम्पूर्ण पुरुषवर्ग सरलतासे प्रभावित होनेवाली आयुमें ही आक्रामक सैनिक-भावनासे ग्रस्त हो जाता है। युद्धका प्रशिक्षण देनेसे लोग युद्धको अपरिहार्य ही नहीं वांछित भी समझने लगते हैं।

जबरदस्ती भरतीको सर्वत्र बन्द कर देनेसे युद्ध करना उतना आसान न रहेगा। जो देश जबरदस्ती भरतीको कायम रखता है, उस देशकी सरकारको युद्धकी घोषणा करनेमें जरा भी कठिनाई नहीं होती, क्योंकि वह सम्पूर्ण आबादीका मुंह सेनाको गतिशील होनेका आदेश देकर बन्द कर सकती है। जब सरकारोंको अपनी जनताकी स्वेच्छया दी गई स्वीकृतिपर निर्भर रहना पड़ता है तब उन्हें अपनी विदेशी नीतियोंमें सावधानी बरतना आवश्यक हो जाता है।

राष्ट्रसंघकी नियमावलिका पहला मसविदा बताते समय राष्ट्रपति विल्सनने[1] सुझाया था कि उससे सम्बद्ध सभी देशोंमें जबरदस्ती भरती अवैध करार दे दी जाये। यह हमारा कर्त्तव्य है कि हम उस मूल भावनाको पुनः जीवित करें, जिससे प्रेरित होकर राष्ट्र संघको जन्म दिया गया है। युद्धमें भाग लेनेवाले बहुतसे देशोंकी भावना यही है और उससे सम्बद्ध अन्य देशोंके बहुतसे राजनीतिज्ञ भी उसके समर्थक हैं। सर्वत्र जबरदस्ती भरतीको बन्द करके हम शान्ति और स्वतन्त्रताकी दिशामें निर्णयात्मक कदम उठा सकते हैं। इसलिए हम सभी सद्भावनापूर्ण स्त्री-पुरुषोंसे निवेदन करते हैं कि वे सभी देशोंमें एक ऐसा लोकमत तैयार करनेमें सहायता दें जो सभी सरकारोंको तथा राष्ट्रसंघको सैनिकवादसे संसारको मुक्ति दिलानेके लिए निश्चित कदम उठाने और राष्ट्रोंमें स्वतन्त्रताका नया युग लाने तथा परस्पर भ्रातृत्वकी भावना स्थापित करनेके लिए प्रेरित करें।

घोषणा-पत्रपर इंग्लैंड, फिनलैंड, फ्रांस, जर्मनी, भारत, स्वीडन, हॉलैंड, चैकोस्लावाकिया, बेल्जियम, स्पेन, स्विट्जरलैंड, डेनमार्क, आस्ट्रिया, जापान तथा नार्वेके सुप्रसिद्ध स्त्री-पुरुषोंके हस्ताक्षर हैं। सैनिकभावनाके उन्मूलनके लिए जबरन भरतीपर पाबन्दी लगाना निःसन्देह पहला कदम है। किन्तु सुधारकोंको भारी संघर्ष करना पड़ेगा, तभी राज्य वांछित दिशामें कदम उठायेंगे। अभी तो प्रत्येक राज्य अपने पड़ोसी राज्यसे डरता है और उसपर अविश्वास[2] करता है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १६-९-१९२६

१. संयुक्त राज्य अमेरिकाके राष्ट्रपति।

२. मूल लेखमें 'विश्वास' शब्द छपा है। इसका सुधार ७-१०-१९२६ के *यंग इंडिया*के अंकमें किया गया था।

४४४. खादी कर्मचारी मण्डलके सम्बन्धमें

अखिल भारतीय चरखा संघकी कार्यसमितिकी एक बैठक हालमें ही हुई थी। उसमें खादी कर्मचारी मण्डलकी स्थापना करनेके विषयमें चर्चा की गई थी। संघने उसकी योजनाका मसविदा बनानेके लिए एक समिति नियत की। उस योजनाको खादीके कार्यकर्त्ताओंमें प्रचारित करनेका सबसे अच्छा और सस्ता साधन है, उसे समाचारपत्रोंमें प्रकाशित कर देना। इसलिए उस योजनाके मसविदेका अनुवाद नीचे दिया जाता है। मुझे आशा है कि खादीमें रुचि रखनेवाले सभी कार्यकर्त्ता अपनी-अपनी विचारपूर्ण सम्मति, जितनी जल्दी हो सके, लिख भेजेंगे। मैं राष्ट्रीय विद्यालयोंके शिक्षकों और विद्यार्थियोंकी सम्मति खासकर माँगता हूँ। इस कर्मचारी मण्डलके विस्तारकी जबरदस्त गुंजाइश है। जो, केवल जीवन-वेतन लेकर करोड़ोंकी सेवा करनेके इच्छुक हैं, उन लोगोंको यह योजना आकर्षक और सन्तोषजनक मालूम होगी। शिक्षकों और विद्यार्थियोंकी सलाह समुचित योजना बनानेमें कार्यवाहक मण्डलको बड़ी उपयोगी सिद्ध होगी।

खादी कर्मचारी मण्डल

अखिल भारत चरखा संघके अधीन एक 'खादी कर्मचारी मण्डल' स्थापित होगा।

भविष्यमें कोई भी ऐसा आदमी इस मण्डलमें दाखिल न किया जायेगा, जिसे साबरमती सत्याग्रह आश्रम स्थित चरखा संघके शिक्षण विभागसे प्रमाणपत्र न मिला हो।

उम्मीदवारोंकी योग्यता

जिसकी उमर १६ सालसे कम हो, जिसे अपने प्रान्तकी भाषा और अंकगणितका काफी ज्ञान न हो, जो अपनी सच्चरित्रताका सन्तोषजनक प्रमाणपत्र न दे सके और जिनका स्वास्थ्य ठीक न हो ऐसे किसी व्यक्तिको तालीमके लिए भरती नहीं किया जायेगा।

शिक्षा

शिक्षाका क्रम दो सालसे कमका न होगा और उसमें नीचे लिखी बातें होंगी:

(क) बुनाईतक कपासकी सारी क्रियाएँ अर्थात् कपास चुनना, ओटना, धुनना, सूत कातना और बुनना।

(ख) अहिन्दी प्रान्तोंसे आनेवाले सभी उम्मीदवारोंके लिए हिन्दी या हिन्दुस्तानी भाषाका ज्ञान।

(ग) देशी और अंग्रेजी दोनों पद्धतियोंमें बहीखाता लिखनेका ज्ञान।

इन बातोंमें निपुणताका प्रमाणपत्र मिल जानेपर उम्मीदवारको किसी भी प्रान्तके खादी कार्यालयमें व्यावहारिक ज्ञान पानेके लिए भेजा जायेगा। वहाँ उसे एक सत्र

यानी कोई आठ महीने रहना होगा। वहांके खादी डिपोके प्रधानका सन्तोषजनक प्रमाणपत्र मिल जानेपर, अगर शिक्षाकालके भीतर ही उसका चरित्र व स्वास्थ्य न बिगड़ा तो वह खादी कर्मचारी मण्डलमें भरती कर लिया जायेगा।

इस प्रकार भरती किया गया कोई भी व्यक्ति, संघ द्वारा जिस किसी केन्द्रमें भेजा जाये, वहां जाकर काम करेगा।

उनका माहवारी वेतन होगा . . . रु०। चरखा संघ द्वारा खादी कर्मचारी मण्डलकी स्थापनाके बादसे यह मण्डल उनके वेतनमें समय-समयपर जो बढ़ती करना चाहेगा, कर सकेगा।

मण्डलमें जानेके इच्छुक हरएक प्रार्थीको, भरती होते समय मण्डलके बनाये हुए शर्तनामेपर हस्ताक्षर करने होंगे।

विविध

जो लोग मण्डलमें भरती होना नहीं चाहते वे भी शिक्षण विभागमें भरती किये जा सकेंगे। किन्तु मण्डलके उम्मीदवारोंको ही हमेशा तरजीह दी जायेगी।

तीन महीनेका एक अल्पक्रम भी होगा। यह उन लोगोंके लिए होगा जो केवल सूत कातना और उससे सम्बन्धित काम अर्थात् कपास ओटना, रुई धुनना और पूनियाँ बनाना सीखना चाहेंगे।

हरएक उम्मीदवारको, जिसे तालीमके लिए भरती करनेका निश्चय कर लिया गया है, अपने घरकी वापसीका किराया और ३ रु० जमा करना होगा। अगर वह किसी भी कारणसे हटा दिया गया तो उस समय उसकी वापसीके खर्चके लिए इसी रकमका उपयोग किया जायेगा।

वजीफा

शिक्षण विभागके व्यवस्थापकको जो पूरा सन्तोष दे सकेंगे कि वे अपने खाने-पीनेका खर्च नहीं बरदाश्त कर सकते उन उम्मीदवारोंको रहनेका स्थान और भोजन-खर्चके लिए १२ रु० वजीफा दिया जायेगा। उम्मीदवारोंके लिए जहाँ-कहीं स्वयं शिक्षण विभाग ही भोजनालय चला पायेगा वहाँ उम्मीदवारोंको कोई भी वजीफा नहीं मिलेगा।

विशेष अधिकार

समय-समयपर इस संविधानमें परिवर्तन और सुधार करने, उपनियम बनाने, सेवाकी शर्तें निश्चित करने, अनुशासनके नियम बनाने और संविधानमें ही जिन बातों-का खुलासा नहीं हो पाया है, उन सबका फैसला करनेका विशेष अधिकार चरखा संघने अपने हाथमें रखा है। जो पहलेसे ही चरखा संघकी सेवामें हैं, उन व्यक्तियोंके अधिकारोंमें इस योजनासे कोई फर्क न पड़ेगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १६-९-१९२६

४४५. पत्र : शौकत अलीको

आश्रम
साबरमती
१६ सितम्बर, १९२६

प्यारे वड़े भाई,

आपका पत्र मिला। मुझे खुशी है कि अपीलके विषयमें दिया गया मेरा उत्तर आपको पसन्द आया।

आप चाहें तो १७ तारीखको खुशीसे रवाना हो जायें, लेकिन जिस दिन आप पहुँचेंगे उसी दिन मुझे वम्बईके लिए चल देना होगा। मुझे दक्षिण आफ्रिकी शिष्ट-मण्डलके सिलसिलेमें वहाँ जाना पड़ेगा। मैं उसी रात वम्बईसे चल दूंगा और ट्रेनमें ही मौन रखूंगा। आपके यहाँ आनेपर आपके लिए दही, चोकरकी रोटी और हरी सब्जियोंका ठीक प्रवन्ध रहेगा। मैं चाहता हूँ, आप अगले सप्ताह आयें। लेकिन यदि आप अपने कार्यक्रमके अनुसार ही आ रहे हों तो कृपया अनसूयाबहनको तार दे दीजिए; वे मुझे सूचित कर देंगी। खास तरहकी रोटी तो आपके आ जानेके बाद ही तैयार की जायेगी। इसमें ज्यादा समय नही लगेगा, क्योंकि मैं सामान सब तैयार रखूंगा।

हृदयसे आपका,

मौलाना शौकत अली
वम्वई

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९६९३) की फोटो-नकलसे।

४४६. पत्र : प्राणजीवन मेहताको

आश्रम
साबरमती
भाद्रपद सुदी ९, १६ सितम्बर, १९२६

भाईश्री ५ प्राणजीवन,

मैंने आपको चि० जेकीके बारेमें एक पत्र लिखा है। इसके साथ उसका पत्र भी भेज रहा हूँ। लगता है आपने कामकाज करना शुरू कर दिया है। आपने अपने स्वास्थ्यका इतना काफी ध्यान रखा है कि आपसे यह कहनेकी जरूरत ही नहीं रह जाती कि हदसे ज्यादा काम मत किया कीजिए। जेकीको रुपये नियमित रूपसे भेजते रहें। उसे यहाँ आनेके लिए रुपये भेजे जायें या नहीं अथवा यहाँ आनेके लिए कहा जाये या नहीं इस सम्बन्धमें भी लिखें। हो सके तो जवाब तार द्वारा दें।

मोहनदासके वन्देमातरम्

श्री प्राणजीवन मेहता
१४, मुगल स्ट्रीट
रंगून

गुजराती पत्र (एस० एन० १२२८२) की फोटो-नकलसे।

४४७. पत्र : एस्थर मेननको

आश्रम
साबरमती
१७ सितम्बर, १९२६

रानी बिटिया,

तुमने अपने पत्रमें जिस तरहके रोमन कैथोलिक उपवासकी चर्चा की है वह वास्तवमें उपवास है ही नहीं। लेकिन उन लोगोंमें भी ठीक-ठीक उपवास रखनेकी एक प्रथा है या पहले थी। यों वे लोग व्रत रखते हैं अथवा रखा करते थे, हमारे लिए इस बातका कोई महत्त्व नहीं है। जबरदस्ती थोपे गये उपवास अथवा किसी भी चीजका कोई महत्त्व नहीं हो सकता। ईसासे सम्बन्धित प्रश्न पूछनेमें क्षमा माँगने-की कोई जरूरत नहीं है। 'न्यू टेस्टामेंट' के जो शब्द ईसाके कहे जाते हैं, उन सबपर मैंने अत्यन्त श्रद्धा और बारीकीसे विचार किया है और सब-कुछ ईसा मसीहके बारेमें विनयकी भावना रखकर पढ़ा है; फिर भी मुझे वास्तवमें उनके और अन्य महान धर्मगुरुओंके उपदेशोंके बीच कोई मौलिक अन्तर नहीं दिखाई पड़ा। तुम ईसा

मसीह और अन्य धर्मगुरुओंके बीच बहुत बड़ा अन्तर मानती हो। तुम्हारी इस बातको मैं अच्छी तरह समझ सकता हूँ; तुम ऐसा क्यों मानती हो मैं यह भी बतला सकता हूँ और मैं तुम्हारी इस मान्यताकी कद्र कर सकता हूँ। तुम्हें बचपनसे यही बताया जाता रहा है और इसीसे तुम जो-कुछ पढ़ती हो उसे पढ़ते समय तुम्हारा यह अव-चेतन विश्वास तो बना ही रहता है। मुझे, मेरे बचपनमें किसीने ऐसा भेद करना नहीं सिखाया था, इसलिए मेरे मनमें किसीके प्रति किसी भी तरहका आग्रह नहीं है। मैं ईसा, मुहम्मद, कृष्ण, बुद्ध, जरतुश्त और अन्य धर्मगुरुओंके प्रति, जिनके भी नाम गिनाये जा सकते हैं समान भक्तिभाव रख सकता हूँ। लेकिन यह विषय तर्क करनेका नहीं है; यह तो प्रत्येक व्यक्तिकी आन्तरिक श्रद्धा और भक्तिसे सम्बन्धित बात है। मैं नहीं चाहता कि तुम ईसाके प्रति अपनी एकनिष्ठ भक्ति छोड़ दो। लेकिन मैं चाहूँगा कि [अन्य धर्मगुरुओंके प्रति] निष्ठा रखनेकी जो दूसरी स्थिति है, तुम उसे समझो और उसकी कद्र करो।

मेननने रुपये-पैसेकी कठिनाईके बारेमें तुमसे जो कहा है, वह सच है। लेकिन तुम्हारा कहना भी सही है। यदि भगवान तुम्हारा मार्ग प्रशस्त कर देंगे तो तुम यहाँ आ जाओगी।

तुम्हारा,
बापू

माई डियर चाइल्ड तथा नेशनल आर्काइव्ज आफ इंडियामें सुरक्षित अंग्रेजी पत्रकी फोटो-नकलसे।

४४८. पत्र : फ्रैंसिसका स्टैंडेनैथको

आश्रम
साबरमती
१७ सितम्बर, १९२६

प्रिय बहन,

मुझे तुम्हारा पिछला पत्र[1] और हालका पत्र भी मिला। मैं पिछले पत्रकी[2] पहुँच देना चाहता था, परन्तु बहुत काम होनेसे पहुँच दे नहीं पाया। फिर भी स्वामी आनन्द और बादमें मीराबाईकी मार्फत तुमसे सम्पर्क तो रहा ही है। एक तो तुमने ऐसा कुछ किया ही नहीं है कि मैं नाराज हो जाऊँ; फिर मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि मैं आसानीसे नाराज होनेवाला व्यक्ति नहीं हूँ।

मैंने तुम्हारे पत्रोंमें सन्देहकी खासी गहरी छाया देखी। क्या तुमने अपने पत्रोंके रोके अथवा खोले जानेके बारेमें इतमीनान कर लिया है।[3] अगर ऐसा हो ही तो

१. २३ अगस्त, १९२६ का।
२. २२ मार्च, १९२६ का।
३. स्टैंडेनैथने अपनी डाकके यथासमय मिलनेके बारेमें सन्देह और चिन्ता व्यक्त की थी।

तुम्हें इस ओरसे पूरी तरह उदासीन हो जाना चाहिए। 'यंग इंडिया' की प्रति रजिस्टर्ड डाकसे मँगवानेके बजाय क्या साधारण डाकसे उसकी दो प्रतियाँ मँगवाना बेहतर नहीं रहेगा? एक प्रति प्रकाशनके बाद ही भेज दी जाये और दूसरी अगले सप्ताह, ताकि वह पहले या दूसरे हफ्तेमें मिल ही जाये। मेरा खयाल है कि डाक विभागको रजिस्टर्ड पत्रोंको रोकने अथवा खोलनेसे कोई मना नहीं कर सकता। अगर मैं तुम्हारी जगह होता तो मैं खुद उनसे कहता कि अगर इस तरह डाक मुझे जल्दी मिल सकती हो तो मेरे पत्र और पत्रिकाएँ खोलकर देख लिये जाया करें।

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०८१३) की फोटो-नकलसे।

४४९. पत्र : कुमारी हेलन हॉसडिंगको

आश्रम
साबरमती
१७ सितम्बर, १९२६

प्रिय "स्पैरो,"[१]

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारी सलाहके मुताबिक मैं उन जर्मन मित्रको जरूर ही कुछ भेज दूँगा। फुन्सियाँ तो मनका भ्रम मात्र थी और मसूरीकी ताजा हवाके कारण मन स्वस्थ हो गया; तो फुन्सियाँ भी जाती रही। देखता हूँ तुम वहाँ सचमुच प्रफुल्लित और आनन्दित हो। लगता है, तुमने सितम्बरके बाद भी वहाँ रहनेके लिए मन तैयार कर लिया है। कृपलानी और विद्यार्थी लोग इस बातका बुरा नहीं मानेंगे। तुम्हारी अनुपस्थितिके लिए मैं उनसे क्षमा माँग लूँगा; और यदि तुम्हारे इस पापकी गठरीको दूसरा कोई उठा सकता हो तो मैं इसे अपने सिर ले लूँगा। पास रहकर तुम्हारी फोड़े-फुन्सियाँ और कब्ज सम्बन्धी चें-चें से तो सुदूर मसूरीसे तुम्हारी चहक सुनना ज्यादा अच्छा है। मैं लेटिनकी उस कहावतमें विश्वास करता हूँ जिसका अर्थ है "तन चंगा तो मन चंगा"।

देवदाससे मालूम हुआ कि लखनऊमें तुम्हारा कोई गोद लिया बेटा है। मैं तुम्हें जोर देकर यही सलाह दूँगा कि जबतक सर्दी न पड़ने लगे, ठण्डा मौसम न आ जाये तबतक तुम अपने उस बेटेके पास जानेका लोभ संवरण करो। मैं तो यही चाहूँगा कि तुम जितने ज्यादा दिन मसूरीमें रह सकती हो, रहो, अथवा अपने बेटेसे कहो कि वह किसी अधिक ठण्डी जगहमें अपना घर ढूँढ़े और फिर तुम्हें वहाँ ले जाये।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९६९४) की फोटो-नकलसे।

१. गांधीजी इन्हें स्नेहसे "स्पैरो" कहते थे।

४५०. पत्र : पी० ए० वाडियाको

आश्रम
साबरमती
१७ सितम्बर, १९२६

प्रिय मित्र,

दादाभाई जयन्तीके अवसरपर दिये गये आपके भाषणकी प्रतिके साथ आपका पत्र मिला। मैंने भाषण पढ़ा। यों तो भाषण अच्छा है, लेकिन मुझे इसमें कोई मौलिकता दिखाई नहीं दी। और फिर आपने उसमें दादाभाईके बारेमें एक ऐसी बात सामने रखी है जिसका वे जीवित होते तो शायद खण्डन ही करते। दादाभाईका सबसे अधिक जोर तो अपने अन्तरको जगानेपर ही था। बाहरवालोंको समझानेकी बातको वे इतना महत्त्व नहीं देते थे।

आपकी इच्छानुसार मैं आपका भाषण वापस भेज रहा हूँ।

हृदयसे आपका,

श्री पी० ए० वाडिया
होरमज्द विला
मलाबार हिल, बम्बई

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९६९६) की फोटो-नकलसे।

४५१. पत्र : सेवकराम करमचन्दको

आश्रम
साबरमती
१७ सितम्बर, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मेरे उत्तर इस प्रकार हैं :

१. मैंने तो जॉर्ज मुलरका उदाहरण, जैसा मैंने सुना, वैसा ही पेश किया था। मैं विश्वास करता हूँ कि हृदयसे की गई प्रार्थनाका भगवान द्वारा सुना जाना सम्भव है — जिस तरह, कहते हैं, जॉर्ज मुलरकी प्रार्थना उसने सुनी। इसका मतलब यह नहीं कि जॉर्ज मुलर अपने प्रतिदिनका आहार पानेके लिए काम नहीं करते थे। उन्होंने प्रार्थना तो एक लोकोपकारी संस्थाके लिए की, जिसे वे चलाते थे। दूसरी दृष्टियोंसे उनका जीवन बड़ा कठिन था। लेकिन उनके बारेमें कहा जाता है कि उन्होंने भगवानके अलावा और किसीके आगे हाथ नहीं पसारा।

२. मैंने चमत्कारोंपर चमत्कारोंके रूपमें विचार नहीं किया है। न उनमें मेरा विश्वास है, न अविश्वास। मैं मानता हूँ कि उनका हमारे आचरणपर अनुकूल अथवा प्रतिकूल कोई प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए।

३. मैं समझता हूँ, यह बहुत सम्भव है कि हमारी जिन्दगीके दिन निश्चित हैं अर्थात् हमें कितनी साँसें लेनी हैं, यह निर्धारित रहता हो, लेकिन इस अवधिका नियमन करना और इस प्रकार स्पष्ट ही जीवनकी अवधि बढ़ाना सम्भव है। इस प्रश्नपर मैंने कोई अध्ययन या विचार नहीं किया है और न मैं इससे अपने मनको परेशान होने देता हूँ। इसलिए इस सम्बन्धमें मैंने जो-कुछ कहा है उसे आप मेरे निश्चित अनुभव अथवा विश्वासके रूपमें न लें। मैंने वही कहा है जो दूसरे लोग मानते हैं और मुझे भी ठीक लगता है।

४. निस्सन्देह इनकी[१] प्रकृति शीत है। किन्तु एक तरहसे ये उत्तेजक भी होते हैं। यों कमसे-कम बकरीके दूधसे तो इन दिनों मैं भी परहेज नहीं रख रहा हूँ। लेकिन मेरा यह विश्वास अब भी कायम है कि ब्रह्मचर्य पालनको आसान बनानेके लिए स्वास्थ्यको देखते हुए जब कभी उचित हो, दूध तथा उससे बननेवाली चीजें — जैसे दही आदि — से परहेज रखना ठीक है।

५. यह सही है कि अगर मैं सूर्यास्तसे पहले नहीं खा पाता तो फिर मैं भोजन करता ही नहीं हूँ। ब्रह्मचारीके लिए यह नियम बहुत अच्छा है।

६. मैं नियमपूर्वक टहलनेका व्यायाम करता हूँ। मैं अपनी आदतोंको नियमित रखता हूँ और भोजनकी किस्म और प्रकारका पूरा खयाल रखता हूँ, साथ ही अपनी अन्य इन्द्रियोंको भी नियन्त्रणमें रखता हूँ और इस तरह अपनी काम करनेकी क्षमता बनाये रखता हूँ।

७. सोमवार मेरा मौन दिवस होता है। उस दिन मैं कमसे-कम अंशतः तो 'यंग इंडिया' का सम्पादन करता ही हूँ, लेकिन ऑपरेशनके बादसे अब उस दिन उपवास नहीं रखता। जिन नौजवानोंका जीवन बहुत व्यस्त रहता है और इस कारणसे जो अपने भोजनकी किस्म और परिमाणका पूरा खयाल नहीं रख पाते, उनको मेरा यह सुझाव जरूर है कि वे हफ्तेमें कमसे-कम एक दिन उपवास करें। साप्ताहिक उपवास अगर ठीक तरहसे किया जाये तो वह सभी प्रकारके और विशेषकर दिमागी काम करनेमें बाधक होनेके बजाय सहायक होता है।

८. कोई भी अध्यापक अपने विद्यार्थियोंकी सबसे अच्छी सेवा इसी तरह कर सकता है कि वह हर दृष्टिसे आदर्श जीवन व्यतीत करे तथा विद्यार्थियोंके साथ पूरा-पूरा तादात्म्य स्थापित करे।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत सेवकराम करमचन्द
अध्यापक
एम० ए० बी० स्कूल
पुराना सक्खर

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९६९७) की फोटो-नकलसे।

१. दूध-दही आदि।

४५२. पत्र : बी० एन० मजूमदारको

आश्रम
साबरमती
१७ सितम्बर, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। धन्यवाद। तलाकका प्रश्न उठाकर हमें विषयको उलझाना नहीं चाहिए। विचारणीय प्रश्न तो यह है कि क्या विधवाको भी विधुरके समान अधिकार और स्वतन्त्रता होनी चाहिए और क्या कम उम्रकी जिस लड़कीके साथ, चाहे वह १५ सालकी भी क्यों न हो गई हो, लगभग बलात्कार किया गया हो और बादमें जो वर्तमान मिथ्या धारणाके अनुसार 'विधवा' हो गई हो, उसे विवाह अथवा यदि आप कहना चाहें तो उचित शिक्षा प्राप्त व्यक्तिसे पुनर्विवाह करनेका अधिकार दिया जाना चाहिए अथवा नहीं।

आप इस सिलसिलेमें किये गये बलात्कार शब्दके प्रयोगसे न चौंकें। मैं तो यह चाहता हूँ कि आप हमारे समाजमें जो-कुछ हो रहा है, उसे देखकर चौंकें। हम विधवाओंमें जिस पवित्रताका आरोप करते हैं, प्रमाणित हो गया है कि वह गलत है। आज गुप्त पाप हमारे समाजको नीचे गिरा रहा है। यह गुप्त पापाचार कभी-कभार प्रकाशमें आ जाता है। इससे हमें यह समझ लेना चाहिए कि वैधव्यके सम्बन्धमें हमारा पवित्रता, धर्म और नैतिकताकी दुहाई देना उचित नहीं है। मैं तरुणी विधवाओंके अत्यावश्यक पुनर्विवाहका नहीं, हिन्दू समाजमें आज पुरुषोंमें जो अमानुषिक भोगलिप्सा व्याप्त है उसका विरोध करता हूँ। आपने क्या कभी उन पुरुषोंके बारेमें गौर किया है जिनकी एकाधिक पत्नियाँ हैं? अथवा उन बूढ़ोंकी ओर ध्यान दिया है जिनके पैर कब्रमें लटके हुए हैं लेकिन जो ग्यारह-ग्यारह, बारह-बारह सालकी लड़कियोंसे विवाह कर लेते हैं। अभी कुछ ही दिन पहले पश्चिम और दक्षिण भारतमें ऐसे विवाह हुए हैं; और मुझे अच्छी तरह मालूम है कि समस्त भारतमें ऐसे विवाह होते रहते हैं।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत बी० एन० मजूमदार
सहायक इंजीनियर, पी० डब्ल्यू० डी०, बंगाल
२, चारनक प्लेस, कलकत्ता

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११६१८) की फोटो-नकलसे।

४५३. पत्र : गोपबन्धु दासको

आश्रम
साबरमती
१८ सितम्बर, १९२६

प्रिय गोपबन्धु बाबू,

आपका पत्र[1] मिला। आपने उडीसाका जो चित्र खींचा है, वह बड़ा दर्दनाक है। मगर मैं आपको यही सलाह दूँगा कि आप सहायता देते हुए चारों ओर न भटकें। हमें चाहिए कि हम विनम्रताके साथ अपनी मर्यादा पहचानें। हम देवता नहीं हैं। हम तो केवल कमजोर और तुच्छ मानवप्राणी हैं। कोई सरकार भी ऐसी नहीं है जो हमें सहायता देती हो, यहाँतक कि हमारी अपनी संस्था, कांग्रेस विच्छिन्न हो गई है। कार्यकर्त्ताओंकी सेनापर हमारा नियन्त्रण नहीं है। हम संगठनरहित बिखरे पड़े हैं। अलग-अलग व्यक्तिमात्र हैं। यदि हम अपनी इस मर्यादाको पहचान लें, तो हमें चिन्ता नहीं होगी और करने योग्य बहुत काम हमें मिल जायेगा। इस तरह अगर सामने उपस्थित इस समस्याको हम सीधेसे-सीधे रूपमें देखें तो उसका हल आसान है। आपको एक ऐसा क्षेत्र चुनना चाहिए जिसमें आप काम कर सकें। वहाँ रहकर आप उसका चतुर्मुखी विकास करें। आपसे अथवा संसारके किसी भी मनुष्यसे इससे अधिक कोई अपेक्षा नहीं की जा सकती। यदि आपने ऐसा किया तो इसका मतलब यह होगा कि आप समाजको जो-कुछ दे सकते थे, सो आपने अच्छेसे-अच्छे ढंगसे उसे दिया।

मैं चाहता हूँ कि आपके पास कोई आदमी भेज सकता। किन्तु दुर्भाग्यसे मेरे पास ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है जो वहाँ जाकर संगठन कर सके। यह एक मजबूरी है। आपको चाहिए कि आप स्वयं ही इस कार्यमें विशेष दक्षता प्राप्त कर लें। यदि आपके पास कोई कार्यकर्त्ता हो तो वह भी इस कार्यमें कुशल बने। गोविन्द बाबू क्या कर रहे हैं? और क्या वहाँ खादी विभागका अभीतक कोई भी प्रशिक्षित तथा कुशल व्यक्ति नहीं है?

उड़ीसाका विचार मुझे एक दुःस्वप्नकी भाँति परेशान करता है। इतना सुन्दर देश, और फिर भी गरीबीसे त्रस्त; अच्छे कार्यकर्त्ता रहते हुए भी इतना असहाय। बहुत ज्यादा घूम-फिर कर आप नाहक ही अपना स्वास्थ्य खराब न करें; बल्कि

१. गोपबन्धु दासने १० सितम्बर, १९२६ के अपने पत्रमें उड़ीसाकी बाढ़का विवरण लिखा था (एस० एन० १०९९२)।

स्वास्थ्यके सामान्य नियमोंका पालन करते हुए उसे ठीक रखें। कृपया मुझे वहाँ होनेवाली घटनाओंकी सूचना देते रहिएगा।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

पण्डित गोपबन्धु दास
बर्मन डाक बंगला
कटक

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० १०९९७) की फोटो-नकलसे।

४५४. पत्र : प्यारेलालको

आश्रम
साबरमती
१८ सितम्बर, १९२६

प्रिय प्यारेलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। सर हेनरी लॉरेन्स द्वारा उठाये गये प्रश्नोंके उत्तरमें तुमने जो टिप्पणियाँ मुझे भेजी है, मैं उन्हें अवश्य पढ़ जाऊँगा।

तुमने सिटी मैजिस्ट्रेटसे अपनी मुठभेड़का जो विवरण मुझे दिया है, वह विचित्र है; उसे पढ़कर बड़ा संताप हुआ। एक ही व्यक्तिमें व्याप्त अहंकार, अज्ञान और लालफीताशाहीका यह बड़ा अच्छा उदाहरण है।

मैं चाहता हूँ कि मथुरादास अब रसोइयेके बिना ही अपना काम चलाये। बाईकी पाठशालाका तुम्हारा वर्णन मेरे लिए आश्चर्यजनक नहीं है। गरीबोंके प्रति उत्कट सहानुभूतिके बिना चरखा चलानेकी आवश्यकता अनुभव करना असम्भव है।

मैं आज रातको एक दिनके लिए बम्बई जा रहा हूँ। सोमवारकी सुबह लौटूँगा। वहाँ मुझे दक्षिण आफ्रिकी शिष्टमण्डलके सिलसिलेमें जाना है। केवल महादेव ही मेरे साथ जा रहा है। अपने नये निवासमें पहुँच जानेपर उसका पूरा विवरण लिख भेजना।

तुम्हारा,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९६९९) की फोटो-नकलसे।

४५५. पत्र : आर० के० करन्थाको

आश्रम
साबरमती
१८ सितम्बर, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। अन्य लोगोके अनुभवोके आधारपर आपके द्वारा भेजी हुई जानकारी मैं 'यंग इंडिया' में तबतक प्रकाशित नही करना चाहता जबतक कि मैं स्वयं उसकी छानबीन न कर लूं। जो लोग इस तरह आसनादि करते है, उनसे मैं सम्पर्क बनाये हुए हूँ, लेकिन अबतक मैं उनके लाभके बारेमे उनसे निश्चयपूर्वक वैसा कुछ नही सुन पाया हू जैसा सौभाग्यवश आप सुन पाये है। आपका पत्र मैं खुद स्वामीजीके[1] पास भेज रहा हूँ, ताकि वे उसके बारेमे अपने विचार बता सके।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत आर० के० करन्था
ग्लेडहर्स्ट
सान्ताक्रूज
बम्बई

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९७०१) की माइक्रोफिल्मसे।

४५६. पत्र : स्वामी कुवलयानन्दको

आश्रम
साबरमती
१८ सितम्बर, १९२६

प्रिय भाई,

साथमें एक पत्र[2] भेज रहा हूँ। उसे पढ़कर अपने विचार लिखिये। पत्र-लेखक द्वारा बताई गई दिशामे यदि आपको कोई निश्चित परिणाम दिखाई दिया हो और आप उसकी ठीक-ठीक ताईद कर सकते हों तो कृपया लिख भेजिए। मेरे लिए वह बड़ा उपयोगी होगा, और मैं कुछ नौजवानोंसे ऐसे आसन करनेके लिए कहूँगा। यह

१. स्वामी कुवलयानन्द, देखिए अगला शीर्षक।
२. देखिए पिछला शीर्षक।

भी बतायें कि ये आसन बिना किसी व्यक्तिकी प्रत्यक्ष सहायताके किये जा सकते हैं या नहीं।

हृदयसे आपका,

स्वामी कुवलयानन्द
कैवल्य धाम
कुंजवन
डा० लोनावाला
[बम्बई]

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९७००) की फोटो-नकलसे।

४५७. पत्र : एस० नारायण अय्यरको

आश्रम
साबरमती
१८ सितम्बर, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आपके मित्रके लिए मैं केवल यही सुझाव दे सकता हूँ कि वे उत्तेजनासे बचें। वे चौबीसों घंटे खुली हवामें रहें। उन्हें चाहिए कि वे निरन्तर अपने तन और मनको पवित्र कार्य और पवित्र विचारमें लगाये रखें। उन्हें ऐसा हलका व्यायाम करना चाहिए जो अनावश्यक रूपसे थकानेवाला न हो। वे दालें न लें, चावल भी कभी-कभार ही खायें, मिर्च-मसालोंसे परहेज करें और रोज खाली पेट ठण्डे पानीमें कटि-स्नान करें। उन्हें निरन्तर भगवानसे प्रार्थना करनी चाहिए कि उनका हृदय शुद्ध रहे। उन्हें जल्दी सोना व जल्दी उठना चाहिए।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एस० नारायण अय्यर
२/१५, नमशिवाय मुडली स्ट्रीट
ट्रिप्लीकेन, मद्रास

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९७०२) की फोटो-नकलसे।

४५८. एक पत्र[1]

आश्रम
साबरमती
१८ सितम्बर, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आप बम्बईमें बिना किसी दिक्कतके कातना-धुनना सीख सकते हैं। इसके लिए आप श्रीमती अवन्तिका बाई, भाटवाडी, गिरगांव, अथवा श्री विट्ठलदास जेराजाणी, खादी भण्डार, प्रिंसेस स्ट्रीट बम्बई, अथवा श्री कोटक, खादी भण्डार, कालबादेवी, बम्बईको अर्जी भेज सकते हैं। और इस कलाको सीखनेके बाद आप बारडोली, अहमदाबाद आदिके खादी केन्द्रोंमें से किसी एकमें जा कर बुनाई सीख सकते हैं। लेकिन यदि आप कातने और धुननेकी कलामें विशेष योग्यता प्राप्त कर लें तो आपके लिए बुनाई सीखना अनावश्यक होगा, क्योंकि बुनकरोंकी जाति अभी नष्ट नहीं हुई है और आप जितना सूत कातेंगे वह सब आसानीसे बुनवाया जा सकता है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एम० एन० १९७०३) की माइक्रोफिल्मसे।

४५९. पत्र: नरहरि परीखको

शनिवार, १८ सितम्बर, १९२६

भाईश्री ५ नरहरि,

आपने अपने पत्रका जवाब नहीं माँगा है, परन्तु मैं तो लम्बा पत्र भेजना चाहता हूँ। आपने जो कदम उठाया है मेरी रायमें तो वह बिलकुल सही है। नानाभाईका दृष्टिकोण समझमें आता है। परन्तु मेरे लिए जिस प्रकार शिक्षाका अविभाज्य अंग गुजराती है उसी प्रकार खादी पहनना और सूत कातना भी है। इसमें मिशनरी-पनकी कोई बात नहीं है। तुम्हारे निर्णयके सम्बन्धमें मुझे धैर्य है; बहुत सी समस्याएँ अपने-आप सुलझ जाया करती हैं।

बापूके आशीर्वाद

श्री न० द्वा० परीख
लोकमान्य राष्ट्रीय विद्या मंदिर, सूरत

गुजराती पत्र (एस० एन० १९५५०) की माइक्रोफिल्मसे।

१. यह पत्र किसे लिखा गया है यह ज्ञात नहीं है।

४६०. टिप्पणियाँ

सनातन प्रश्न

'नवजीवन' के एक मुमुक्षु पाठक चाहते हैं कि उनके प्रश्नोंके उत्तर 'नवजीवन' में ही दिये जायें। इन प्रश्नोंका उत्तर देते हुए मुझे कुछ संकोच होता है। ऐसे प्रश्नों-का उत्तर 'नवजीवन' में देनेका अधिकार है कि नहीं, इसमें मुझे शंका है। फिर ये प्रश्न कुछ नये भी नहीं हैं। वे अनादि कालसे पूछे जाते रहे हैं। तथापि प्रश्नकर्ताके आग्रहको न मानना भी सम्भव नहीं है। इसलिए मैं उनके प्रश्नोंको उद्धृत करके उनके उत्तर देनेकी ढिठाई करता हूँ।

परमेश्वरका ध्यान धरना चाहिए या नहीं?

परमेश्वरके स्वरूपको बुद्धिके द्वारा जानकर उसे हृदयंगम करनेके लिए ध्यान धरना तो जरूरी ही है।

अगर ध्यान जरूरी हो तो उसकी प्रक्रिया क्या हो?

परमेश्वर निरंजन, निराकार और ध्यानसे भी परे है। निर्गुणकी साधना देह-धारियोंके लिए कठिन है। इसलिए उन्हें सगुण, व्यक्त रूपका ध्यान धरना चाहिये। इस युगमें और इस देशमें तो वह दरिद्रनारायणके रूपमें ही दिखाई देता है। इसलिए उसका ध्यान करनेका मार्ग दरिद्रोंकी सेवा करना ही है। दरिद्रोंकी सेवा अनेक रीतिसे हो सकती है। किन्तु भारतमें दारिद्र्यकी जड़ आलस्य और बेकारी है। इसलिए इस आलस्यको दूर करने और उन्हें निर्दोष काम देनेके लिए हमारा कर्त्तव्य है कि हम चरखा चलायें और उन्हें भी चरखा चलानेकी प्रेरणा दें। हमें प्रत्येक श्वासमें इस नारायणका उच्चारण करना और चरखेके प्रत्येक चक्करमें उस नारायणको सन्तुष्ट होता और हँसता देखना चाहिए।

ईश्वरका रूप कैसा है?

इस प्रश्नका उत्तर ऊपर आ गया है, इसलिए अब उसे देना जरूरी नहीं रहता। किन्तु मैं दोहराता हूँ कि अपना स्वरूप वह आप ही जानता है; या जो मनुष्य उसे जान भी सके हैं, वे उसका वर्णन नहीं कर सके हैं। वह शब्दोंसे परे है। उसका परिचय देने लायक भाषा अभी बनी ही नहीं है। इसीसे, हमें जैसा अनुकूल पड़ता है, उसे हम मत्स्य, वराह, नरसिंह और मनुष्य इत्यादिके रूपमें पूजते हैं। हम सभीका यह करना सही भी है और गलत भी। अपनी-अपनी निगाहमें हम सभी सच्चे हैं, विरोधीकी निगाहमें झूठे हैं और परमात्माकी निगाहमें सच्चे भी हैं और झूठे भी।

चरखा और आत्मशुद्धि

वेड़छीसे एक कार्यकर्त्ता लिखते हैं :[1]

जिसकी जैसी भावना होती है उसे उसके अनुरूप ही फल मिलता है। आजीविकाके लिए पत्थर तोड़नेवाले फरहादको शीरी मिली। हम चरखेके लिए जितनी शक्ति लगायेंगे चरखेमें उतनी ही शक्ति उत्पन्न हो जायेगी। ओंकार इत्यादि नामोंमें अगाध शक्ति तो है, किन्तु उसका कारण यह है कि उनके पीछे उच्चतम भावना और इतनी पर्याप्त तपश्चर्या रही है कि वे नाम फलदायी सिद्ध हो सके। वैसे ही अगर हम चरखेमें भी दीन-दुखियोंकी सेवा, जनशुद्धि और आत्मशुद्धिकी भावना भरेंगे, उसे सिद्ध करनेके लिए तपस्या करेंगे और आत्मबलिदान देंगे तो उसका फल मिलेगा — मिले बिना नहीं रहेगा।

वेड़छीमें कुछ ऐसी ही बात हुई है। शराबबन्दीका काम इसी प्रकार चलता है। शराबीसे अगर शराब छोड़नेके लिए कहे तो वह उसे समझेगा ही नहीं। उसके लिए तो वह एक अनजानी बोली ही होगी। मगर यदि हम उसके पड़ोसमें रहकर स्वयं उद्यम करके, उसे उद्यमका पदार्थपाठ सिखायें तो वह शराब छोड़ देगा। मालूम होता है कि वेडछीके शराबियोंके साथ भी ऐसा ही हुआ है। सभी स्थानोंमें इसी धैर्य और श्रद्धासे काम लिया जाये तो सफलता जरूर मिलेगी।

परन्तु मैं सभी कार्यकर्ताओंको एक चेतावनी देता हूँ। अभी सुधारका जो अंकुर फूटा है, अगर उसका निरन्तर सिंचन न होता रहा तो यह चार दिन हरा रहकर फिर सूख सकता है। लोगोंमें जो परिवर्तन हुआ है उसे स्थायी बनानेके लिए, वहाँ रहनेवाले कार्यकर्ताओंको डटकर एक जगह बैठ जाना होगा और फिर सचेत होकर बिना रुके अपना काम करते जाना होगा।

पुराना चरखा-गीत

बारडोली ताल्लुकेका एक निवासी लिखता है।[2]

इस गीतमें एक आध्यात्मिक अर्थ है। अर्थ इतना स्पष्ट है कि सहज ही समझमें आ सकता है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १९-९-१९२६

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने बताया था कि गुजरातके बारडोली ताल्लुकेमें गोधरा लोगोंने जबसे चरखा अपनाया है तबसे उनकी हालत कितनी बदल गई है।

२. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्रमें लेखकने एक बुढ़िया द्वारा सुनाया हुआ एक गीत दिया था जो साठ वर्ष पहले चरखा चलाते समय गाया जाता था और जिसे बुढ़ियाने अपनी माँसे सीखा था।

४६१. भेंट: 'नेटाल एडवर्टाइजर' के प्रतिनिधिसे[1]

[वम्बई
१९ सितम्बर, १९२६]

. . . उनका निश्चित मत है कि जनसाधारणकी दशामें सुधारकी आवश्यकता अधिकाधिक गम्भीर होती जा रही है; वे कहते हैं कि जिन दिनों मौसम खेतीके अनुकूल नहीं रहता सालके उस खासे बड़े अरसेमें किसान बेकार बैठे रहते हैं। उन दिनों अपनी आयमें वृद्धि करने और विदेशी वस्त्र निर्माताओं द्वारा भारतके शोषणको रोकनेके लिए उन्हें चरखा अपनानेके लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

विदेशी वस्त्र निर्माताओंको सूती कपड़ेके वदले प्रति वर्ष भारतसे ४०,०००,००० पौंड प्राप्त होता है। यदि लोग चरखेको अपना लें तो यह पैसा वच जाये।

उन्होंने स्वीकार किया कि विदेशी वस्त्र अथवा भारतमें मिलोंका वना कपड़ा घरमें कते तथा बुने हुए वस्त्रसे ज्यादा अच्छा और सस्ता है। लेकिन जब उनसे कहा गया कि क्या आपका आन्दोलन श्रमकी बचत करनेवाली बड़ी-बड़ी मशीनोंकी अपरिमित शक्तिका और बड़े पैमानेपर उत्पादनकी प्रणालीका विरोध करनेकी हद तक उतना ही असफल नहीं रहा है जितना इंग्लैंडमें अधिक श्रमिकोंको रोजगार देते रहनेके खयालसे श्रमकी बचत करनेवाली मशीनोंको नष्ट कर देनेवाला अभियान साबित हुआ था। तब उन्होंने इसे ठीक नहीं माना और कहा कि भारतका जीवन-दर्शन मेरे आन्दोलनको अवश्य सफल बनायेगा। (इसपर एक मिल-मालिकने यह प्रश्न किया "जब मिल-मजदूर, अपेक्षाकृत अधिक हल्का काम करके प्रतिदिन जितना कमा लेते हैं, हाथकताईसे उसकी एक तिहाई आय ही प्राप्त की जा सकती है, तब यह सफल कैसे हो सकता है?") प्रश्नोंके उत्तर देते हुए गांधीजीने कहा कि यह आन्दोलन "एक बड़ी गहरी धर्मभावना" से अनुप्राणित है; इस धर्मभावनाका कोई कर्मकाण्ड नहीं है, किन्तु साहित्य और सभाओंके द्वारा इसका प्रचार किया जाता है। उन्होंने कहा कि हाथकताईकी शुरुआत-भर करा देनेसे समाजपर बड़ा स्फूर्तिदायक प्रभाव पड़ा है और अन्ततः इस आन्दोलनके सफल हो जानेपर लोगोंमें जो आत्म-विश्वास पैदा होगा उससे स्पष्ट हो जायेगा कि इसका एक राजनीतिक महत्त्व भी है। . . .

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, ३-१२-१९२६

१. १८ सितम्बरको गांधीजी दक्षिण आफ्रिकी शिष्ट मण्डलके सदस्योंका स्वागत करनेके लिए वम्बईके लिए रवाना हुए थे। यह भेंट ताजमहल होटलमें सरोजिनी नायडूके कमरेमें १९ सितम्बरको हुई थी और इसका विवरण **नेटाल एडवर्टाइजर टाइम्सके** सम्वाददाता द्वारा भेजा गया था। जिसे बादमें हिन्दूने पूना, २१ सितम्बरकी तारीख डालकर उद्धृत किया था।

४६२. पत्र: सी० एफ० एन्ड्रयूजको

[१९ सितम्बर, १९२६][1]

प्रिय चार्ली,

'बम्बई समाचार' ने गलतीसे मुझे एन्ड्रयूज समझ लिया और सूचना प्रकाशित कर दी कि मैं बीमार हूँ और अनुमान लगाया कि मैं शिष्टमण्डलसे मिलने नही पहुँच सकूँगा। अगर तुम मुझसे सन्देश लेकर आये होते तो कितना अच्छा रहता? लेकिन यह एक अफवाह ही निकली। श्रीमती नायडूके कमरेमे मैंने शिष्टमण्डलके सभी सदस्योसे देरतक गपशप की। हम अधिकाशतः खद्दरपर बातें करते रहे। उन्होने जानना चाहा कि मैंने इतने भारी कपड़े क्यो पहन रखे है। इसके उत्तरमे मैंने उन्हे खद्दरपर अच्छा खासा उपदेश दे डाला — जिसे उन्होंने गहरी दिलचस्पीसे सुना। जहाँगीर कही नही दिखा। सर हबीबुल्लासे मिला और उनके साथ देरतक बातचीत की।

हाँ, मै शायद कल वहाँ आऊँ और कातकर तुम्हारा मन बहलाऊँ। तुम जब तक जाने लायक अच्छे नही हो जाते तबतक तुम्हे नही जाना चाहिए।

सस्नेह,

तुम्हारा,
मोहन

अंग्रेजी पत्र (जी० एन० २६३६) की फोटो-नकलसे।

४६३. तार: जमनालाल बजाजको

साबरमती
२० सितम्बर, १९२६

जमनालाल बजाज
श्री
बम्बई

ईश्वरको धन्यवाद। विस्तृत जानकारीकी बेचैनीसे प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

बापू

[अंग्रेजीसे]

पाँचवें पुत्रको बापूके आशीर्वाद

१. गांधीजी १९ सितम्बरको बम्बईमें शिष्टमण्डलसे मिले और अगले दिन अहमदाबादके लिए रवाना हो गये थे।

४६४. पत्र : ए० डब्ल्यू० बेकरको[1]

आश्रम
साबरमती
२१ सितम्बर, १९२६

प्रिय मित्र,

मुझे यह जानकर कि आप मेरे बारेमे सोचते ही रहते हैं, सुख हुआ। मुझे मालूम नही था कि आप नॉर्थ शैपस्टनमे रहने लगे है। मुझे उम्मीद है कि रमणीक समुद्र तटपर रहनेसे श्रीमती बेकरको लाभ हो रहा होगा। मैं आपकी इस बातसे सहमत हूँ कि सत्य एक.है, लेकिन हम उसे अपने-अपने धुँधले चश्मोसे और सो भी उसका एक अंश ही देख पाते हैं। दृष्टिकोणकी बहुलता इसका स्वाभाविक परिणाम है। लेकिन यदि सभी केन्द्रमें स्थित किसी एक ही सत्यसे परिचालित हो तो सूर्यसे निकलनेवाली किरणोंकी तरह सबको ठीक ही मानना चाहिए। लेकिन मै तर्क नही करना चाहता। हममें मतभेद हो सकते हैं परन्तु मै जानता हूँ कि हम सब एक ही दिशाकी ओर जा रहे हैं।

हृदयसे आपका,

ए० डब्ल्यू० बेकर
नॉर्थ शैपस्टन
नेटाल

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०८१५) की फोटो-नकलसे।

१. अपने २४ अगस्तके पत्रमें बेकरने कहा था कि आपने अपने पिछले पत्रमें सत्यके विभिन्न पहलुओं और इसलिए विभिन्न दृष्टिकोणोंकी बात की थी; किन्तु सत्य तो एक ही है, जैसे सौर मण्डलमें सूर्य एक ही है। उन्होंने यह भी पूछा था कि जैसे सूर्यसे पहले आकाशमें सूर्यके प्रकाशसे चमकनेवाले ग्रह हो सकते हैं क्या बुद्ध और कन्फ्यूशियस, ईसा-रूपी सूर्यके परमप्रकाशसे प्रतिबिम्बित वैसे ही ग्रह नहीं थे।

४६५. पत्र : हरदयाल नागको

आश्रम
साबरमती
२१ सितम्बर, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मुझे कहना पड़ेगा कि आपका खद्दर कार्यक्रम मुझे पसन्द नही आया। आप चाँदपुरमे बाहरसे कता सूत मँगवाकर अपने यहाँ खादी बुनवाते हैं। इससे आप खादीके कार्यको आगे नही बढाते। आप असलमे तो अपने छात्रोमे कताई-का प्रचार करना चाहते है। वे बुनकर भी शौकसे बने, लेकिन उन्हे वही बुनना चाहिए जो वे स्वय काते। यदि आप अपने छात्रोको केवल कातनेके काममे लगाये तो आपके पास जितनी रुई पड़ी है, वह सबकी सब वही खप जायेगी। इसके अलावा, चाँदपुरमे स्वेच्छया कातनेवाले कुछ लोग होने ही चाहिए। बंगालके अनेक भागोमें और हिन्दुस्तानके दूसरे हिस्सोमे भी, हालाँकि वहाँ कपास पैदा नही होती, लोग कताई करते है।

हृदयसे आपका,

बाबू हरदयाल नाग
चाँदपुर
बंगाल

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९७०४) की माइक्रोफिल्मसे।

४६६. पत्र : डा० सत्यपालको

आश्रम
साबरमती
२१ सितम्बर, १९२६

प्रिय डा० सत्यपाल,

आपका पत्र मिला। काश मै आपको अखबार निकालनेके इस उपक्रमसे रोक पाता। इससे बिलकुल कोई भलाई नही होगी। हमारे यहाँ पहले ही बहुत ज्यादा अख-बार है। मुझे यकीन है कि अखबारोंकी इस फौजमें, जो अब सिरदर्द बन गई है, एक और बढाकर आप राष्ट्रके कार्यको आगे नही बढायेगे। यदि आपके पास ईमानदार कार्यकर्त्ता है तो आप उनको ऐसी बाते लिखनेमे क्यो जुटा देना चाहते है जिन्हे आम जनता पहलेसे जानती है। वे जिस प्रकारका रचनात्मक कार्य कर सकते हैं उनसे वही

काम क्यों न कराया जाये? प्रत्येक कार्यकर्त्ता एक अखबारसे अधिक उपयोगी है। बेशुमार अखबारोंसे वातावरणमें जो उलझाव पैदा हो गया है, आप अपना अखबार निकालकर उसमें वृद्धि ही करेंगे। लेकिन यदि मैं आपको अखबार निकालनेसे रोक नहीं सकता तो कमसे-कम मुझे अपने मनकी करने दीजिए। इधर कुछ दिनोंमें मैं अखबारोंमें लिखना अस्वीकृत करता रहा हूँ। लेकिन उसका मुख्य कारण तो मेरे स्वास्थ्यका ठीक न होना है। मेरे पास जरूरतसे ज्यादा काम है। अगर मुझसे बन सके तो मैं कुछ दिनोंके लिए 'यंग इंडिया' व 'नवजीवन' के लिए भी लिखना बन्द कर दूँ। परन्तु वह तो मैं सोच भी नहीं सकता। लेकिन मैं तुम्हें कोई गौण कारण बताकर नही टालना चाहता —— यहाँ तो मुख्य कारण ही मुख्य है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९७०५) की फोटो-नकलसे।

४६७. पत्र : मुन्नालाल जी० शाहको[1]

साबरमती
भाद्रपद सुदी १५ [२१ सितम्बर, १९२६][2]

भाईश्री ५ मुन्नालाल,

आपका पत्र मिला। नवजीवन प्रकाशन मंदिरसे प्रकाशित पुस्तकोंकी सूची प्राय: 'नवजीवन' में प्रकाशित की जाती है। वेदोंमें गोहत्याका विधान है, मैं ऐसा न तो कहता हूँ और न ऐसा जानता हूँ। आश्रममें वेदमन्त्रोंका पाठ नित्य किया जाता है। मेरे बारेमें जो-कुछ कहा जाता है, उस सबपर विश्वास कर लेनेकी जरूरत नही है। जहाँ शंका हो वहाँ पत्र लिखकर मुझसे समाधान करा सकते हैं।

मोहनदास गांधी

श्रीयुत मोतीलाल नत्थूशाह
राजपाड़ा, गोटी मुहल्ला
बुरहानपुर,

गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ६९८९) की फोटो-नकलसे।
सौजन्य : मुन्नालाल जी० शाह

१. ऐसा लगता है कि यह मोतीलाल नत्थूशाहकी मार्फत भेजा गया था।
२. डाककी मुहरसे।

४६८. पत्र : रामेश्वरदास पोद्दारको

भाद्रपद शुक्ल १५ [२१ सितम्बर, १९२६][1]

भाई रामेश्वरदासजी,

आपका पत्र मीला है। हिं० न० जी० के करीब २५०० ग्राहक होंगे। स्वाश्रयी बनने के लीये और ५०० चाहियें। मुझे ठीक पता नहिं है महाराष्ट्रके कीतने होगे। लवाजम दूर करनेसे कुछ फायदा नही होगा। आप चिंता न करे, रामनाम नित्य जपें।

आपका,
मोहनदास

मूल पत्र (जी० एन० १६६) की फोटो-नकलसे।

४६९. मैसूरमें कताई

मैसूरके औद्योगिक विभागके प्रमुख श्रीयुत जेड० मक्काईने हाथ-कताईपर एक रोचक विवरण तैयार किया है। उसका साराश नीचे दिया जा रहा है।[2]

हिन्दुस्तानमें एक ही सार्वजनिक घरेलू धन्धा है। मैं उसके पुनरुद्धारको उत्तेजन देनेपर मैसूरके अधिकारियोंको साधुवाद देता हूँ। मै उन्हें अखिल भारतीय चरखा संघके अनुभवोसे लाभ उठानेकी सलाह दूंगा। प्रयोग और जाँचके द्वारा यह देखा गया है कि हाथ-कताईके साथ-साथ हाथ-ओटाईका काम भी शुरू कराना इष्ट है। उन जिलोंमें जहाँ कपास पैदा होती है, यह बहुत ही सहज है। जहाँ कपासकी खेती होती तो नही है, लेकिन उसे पैदा करना सम्भव है, वहाँ कपासकी खेतीको उत्तेजन देना चाहिए। कलके द्वारा ओटी हुई और दबाई हुई कपासका कस कम हो जाता है। और हाथकी ओटी हुई रुईकी बनिस्वत उसका हाथसे धुनना भी कही मुश्किल है। हिन्दुस्तानके कई हिस्सोमे कातनेवाले कपास ही लेते है। उन्हे अपनी रुई आप ही धुन लेनेके लिए भी प्रोत्साहित करना चाहिए। धुनना और कातना, दोनों क्रियाएँ करनेसे कातनेवालेकी आमदनी दूनी हो जाती है। हाथकते सूतकी ताकतको बढ़ानेके लिए रियासतको समय-समयपर सूतकी जाँच और उस जाँचका फल प्रकाशित करते रहना चाहिए। सच पूछें तो साराका-सारा काम शास्त्रीय रीतिसे किया जाना चाहिए। इसके लिए मैसूर-जैसे राज्यसे अधिक उपयुक्त भला दूसरा कौन राज्य हो सकता है?

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २३-९-१९२६

१. डाककी मुहरसे।

२. यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

४७०. निष्क्रिय प्रतिरोध, सही और गलत

अमेरिका एक बड़े पैमानेपर अन्तर्जातीय झगड़ोंका घर वना हुआ है। साहसी पुरुषोंसे भरी उस भूमिमें ऐसी सच्ची लगनवाले-स्त्री-पुरुष भी हैं जो इस मुश्किल मसलेको निष्क्रिय प्रतिरोधके ढंगसे हल करना चाहते हैं। एक ऐसे ही अमेरिकी मित्रने[1] मेरे पास 'इनक्वायरी' नामका एक पत्र भेजा है। उसमें निष्क्रिय प्रतिरोधके सिद्धान्तकी एक रोचक चर्चा है। इसमें जो उदाहरण दिये गये हैं उन्हें सम्भवतः निष्क्रिय प्रतिरोधकी श्रेणीमें रखा जा सकता है। मैं यहाँ तीन नमूने चुनकर देता हूँ:

> एक चीनी विद्यार्थीने सरकारी विश्वविद्यालयके अपने अनुभवका वर्णन किया। वह उस विश्वविद्यालयसे जल्दी ही स्नातक होनेवाला था। वहाँ किसीने भी उसका स्वागत प्रेमभावसे तो नहीं ही किया। हाँ, कुछ लोगोंने बादमें आगे बढ़कर उससे मित्रता अवश्य की। एकने तो उसे एक दिन सप्ताहके अन्तमें छुट्टीके दिन अपने घर निमन्त्रित भी किया। दूसरी ओर उसकी बगलकी कोठरीमें उसका जो एक सहपाठी रहता था, वह उसके लिए विशेष रूपसे दुःखदायी बन गया। वह कभी उसके दरवाजेपर अपने जूते फेंकता और कभी दूसरी शैतानी करता। जो अमेरिकी विद्यार्थी उसे अपनी माता और बहनसे परिचित करानेके लिए अपने घर ले गया था चीनी विद्यार्थीने उसे उसके प्रति तीव्र घृणा व्यक्त करते भी सुना। इसपर उसने निश्चय किया, मैं इसे सम्मान करना सिखाऊँगा और अपने लिए नहीं बल्कि अपनी प्यारी मातृभूमिके लिए।
>
> इसलिए उसने अपनी तरफसे खास कोशिश करके उससे दोस्ती की। वह रोज सवेरे उसे देखकर मुस्कराकर नमस्कार करता, अगर्चे शुरूमें उसे इसका जवाब भी नहीं मिलता था। लेकिन उसने मान-अपमानका खयाल नहीं किया, और उस पड़ोसी विद्यार्थीके प्रति सुखकर और उपयोगी बननेकी कोशिश की। जब कभी उसे पता चलता कि मेरे सहवासीका हाथ तंग है, तो वह उसे अपने साथ जब-तब सिनेमा देखनेका आमन्त्रण देता। वे धीरे-धीरे आपसमें ज्यादा बात करने लगे और उन्होंने देखा कि कई बातोंमें उनकी दिलचस्पी समान है। कुछ दिनों बाद इस अमेरिकी विद्यार्थीने उसे अपने घर निमन्त्रित किया।
>
> इसके बाद उस चीनीने बताया कि अब हम लोगोंमें गहरी मित्रता हो गई है और मैं कितने ही त्योहार और साप्ताहिक अवकाश उसके घर बिता चुका

१. यह एक भारतीय था। देखिए "भूल-सुधार", ७-१०-१९२६।

हूँ। मैं जानता हूँ कि जब विश्वविद्यालय छोड़कर जाऊँगा तो कमसे-कम मेरे एक मित्रको तो मेरा जाना अवश्य ही बहुत खलेगा।

एक 'रेल रोड ईसाई युवक सभा'के मन्त्री एक दिन १२ डेनमार्कवासियों-को सभा-भवनमें लाये। ये लोग रेलकी लाइनपर काम करते थे। इनके लिए सोनेके लिए कोई जगह नहीं थी। अंग्रेजी-भाषी लोग, जातीय विरोधके भावसे प्रेरित होकर इन विदेशियोंको यहाँ लानेपर ऐतराज करने और नाराजी जाहिर करने लगे। इन आगन्तुकोंमें एक बढ़िया संगीतज्ञ भी था। जब ये अमेरिकी अपने मन्त्रीसे ऐतराज कर रहे थे उसने अपना बाजा बजाना शुरू कर दिया। उसने उसमें बहुत सुरीली ध्वनि निकाली और उसका तुरन्त प्रभाव पड़ा। उन 'स्वदेशियों'के चेहरोंपरसे रोषका भाव जाता रहा और निन्दाके शब्द होंठोंपर ही रह गये। उनके दिल पसीज गये और वे उस रातको देरतक मुग्ध होकर उस विदेशीका बाजा सुनते रहे। पीटर राबर्ट्सकी 'नया प्रवास', मैकमिलन कं०, १९२२, पृष्ठ ३००।

एक्स, केलिफोर्नियामें एक जगह जापानियोंकी एक बस्ती है। कई साल हुए एक जमींदारने जमीनका एक खासा बड़ा टुकड़ा अन्य जापानियोंको बेचना चाहा। इसपर गोरे लोग यह सोचकर बहुत झल्लाए कि यों तो यहाँ जापा-नियोंकी बाढ़ ही आ जायेगी। उन्होंने सभाएँ कीं और मुख्य सड़कपर लिखकर टाँग दिया, "जापानियोंका यहाँ कोई काम नहीं है।"

वहाँके पुराने जापानी बाशिन्दोंने, जिनका गोरोंसे मेलजोल था और जो उनके किसान मण्डलके सदस्य भी थे, गोरोंसे बात की और अन्तमें वे इस बातपर सहमत हो गये कि वहाँ जापानियोंकी संख्याका और बढ़ना अच्छा नहीं होगा। इसपर उस वाक्यका रूप बदलकर "यहाँ और अधिक जापानियोंकी जरूरत नहीं है" कर दिया गया।

जिस आदमीने यह बात कही, उसका यह भी कहना है कि इससे उस समाजकी एकतामें वृद्धि हुई और वहाँके गोरों और जापानियोंके सम्बन्ध मीठे बने। इसका पता नीचेके उदाहरणसे लगता है।

उस स्थानके जापानियोंको जब पता चला कि अमेरिकाका धर्म-संघ पैसेकी तंगीमें है तो उन्होंने खास अपने जापानी धर्म-संघको चलानेके अलावा उसकी भी सहायता के लिए हर साल एक निश्चित रकम देनेकी इच्छा प्रकट की।

पहला उदाहरण तो सहज ही सच्चे निष्क्रिय प्रतिरोधकी कोटिमें आ जाता है। दूसरेमें निष्क्रिय प्रतिरोधका भाव उतना नहीं जितना समय-सूचकताका। तीसरा उदा-हरण, अगर बयान ठीक-ठीक किया गया हो तो कायरताका न सही, स्वार्थपरताका अवश्य कहा जायेगा। वहाँके जापानी बाशिन्दे, अपनी धन-सम्पत्तिको बचानेके लिए, अन्य जापानियोंपर प्रतिबन्ध लगानेके लिए राजी हो गये — बहुत सम्भव है कि यह नीति

उस समयके लिए सर्वोत्तम रही हो। हो सकता है कि इसीके अनुसार चलनेका परामर्श देना भी उचित रहा हो; किन्तु निःसन्देह इसे निष्क्रिय प्रतिरोध नहीं कहा जा सकता।

समाजके हितके लिए स्वेच्छासे ग्रहण किया गया संयम निष्क्रिय प्रतिरोध है। इसलिए यह एक उत्कट क्रियाशील और शोधक आन्तरिक शक्ति है। यह जब-तब निष्क्रिय प्रतिरोधकारीके स्थूल लाभके विरोधमें भी पड़ती है और इसके कारण उसके साम्पत्तिक सर्वनाशकी भी नौबत आ सकती है। इसकी जड़ आन्तरिक शक्तिमें है, निर्बलतामें कदापि नहीं। इसका प्रयोग भी ज्ञानपूर्वक ही किया जाना चाहिए। अतः निष्क्रय प्रतिरोध करनेवालेमें शारीरिक प्रतिकारकी शक्तिका होना भी निहित है। इसलिए अन्तिम उदाहरणमें जापानी लोगोंका व्यवहार निष्क्रिय प्रतिरोध तब कहा जा सकता था जब वे अपनी सारी दौलत खोकर भी भविष्यमें आनेवाले जापानियोंके अधिकार न बेचते। वे अत्याचारियोंके हाथों भयंकर कष्ट पाकर प्राण भी दे देते, किन्तु मनमें बदलेका भाव भी न लाते और इस प्रकार उनका हृदय द्रवित करते। यदि उन्होंने बिना कोई कष्ट सहे अपनी सम्पत्ति बचा ली तो यह सत्यकी विजय नहीं कही जा सकेगी। निष्क्रिय प्रतिरोधकी भाषामें अमेरिकी धर्म-संघको उसकी कठिनाईमें सहायता रिश्वत कही जायेगी; दान अथवा प्रेमका चिह्न कदापि नहीं।

आत्मत्याग और अपनी प्रच्छन्न शक्तियोंके ज्ञानके बहुत दिनोंके अभ्याससे ही निष्क्रिय प्रतिरोधका भाव उदय होता है। इससे मनुष्यका सारा जीवन सम्बन्धी दृष्टिकोण ही बदल जाता है। इससे पहलेकी धारणाएँ बदल जाती हैं, और बातोंका महत्त्व कुछका-कुछ हो जाता है। यदि एक बार इस शक्तिको वेग मिल गया और वह काफी तीव्र हो गया तो वह सारे संसारमें व्याप्त हो सकती है। आत्माकी बड़ीसे-बड़ी अभिव्यक्ति होनेके कारण यह सर्वोत्तम शक्ति है। इसका पूरा प्रयोग करनेके लिए यह आवश्यक नहीं कि सब लोगोंमें सविवेक निष्क्रिय प्रतिरोध करनेकी एक-सी शक्ति हो। जैसे केवल एक सेनापति अपने अधीनस्थ लाखों सिपाहियोंकी ताकतका उपयोग और प्रयोग करनेके लिए काफी होता है और वे सिपाही यह नहीं जानते कि वह उन्हें क्यों और किसलिए किसी स्थानमें रख रहा है, उसी प्रकार यदि निष्क्रिय प्रतिरोधकी शक्ति केवल एक ही आदमीमें हो तो वह भी काफी है। एक ही रामचन्द्रके बन्दर और भालू दशशीश रावणकी शस्त्र-अस्त्रोंसे सुसज्जित सेनाके छक्के छुड़ानेके लिए काफी थे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २३-९-१९२६

४७१. 'प्रार्थनामें विश्वास नहीं'

एक राष्ट्रीय संस्थाके आचार्यके नाम एक विद्यार्थीने एक पत्र लिखा है, जिसमें उसने उनसे अनुरोध किया है कि उसे प्रार्थनामें आनेके नियमसे मुक्त किया जाये। यह पत्र नीचे दिया जाता है:

> निवेदन है कि प्रार्थनामें मेरा विश्वास नहीं है क्योंकि मैं नहीं मानता कि ईश्वर-जैसी कोई वस्तु है जिसकी मैं प्रार्थना करूँ। मुझे अपने लिए ईश्वरकी कल्पना करनेकी जरूरत कभी नहीं मालूम होती। अगर मैं उसका अस्तित्व माननेके झंझटमें न पड़ूँ तथा शान्ति और साफदिलीसे अपना काम करता जाऊँ तो उसमें मेरा बिगड़ता भी क्या है?
>
> सामुदायिक प्रार्थना तो बिलकुल ही व्यर्थ है। क्या इतने लोग एक-साथ बैठकर किसी मामूलीसे-मामूली चीजपर भी अपना ध्यान जमा सकते हैं? क्या छोटे-छोटे अबोध बच्चोंसे यह आशा रखी जाती है कि वे अपने चंचल मनको हमारे महान् शास्त्रोंके जटिल तत्त्वोंपर मसलन आत्मा, परमात्मा और मनुष्य-मात्रकी एकात्मता इत्यादि बातोंसे सम्बन्धित गूढ़ भावोंपर एकाग्र करें। इतना जबरदस्त काम एक नियत समयपर तथा विशेष व्यक्तिकी आज्ञा पानेपर करना पड़ता है। क्या इस प्रकारकी किसी यान्त्रिक क्रिया द्वारा बालकोंके दिलोंमें उस कथित ईश्वरके प्रति प्रेम उत्पन्न हो सकता है? विभिन्न स्वभावके लोग कथित ईश्वरके प्रति इस तरह प्रेम रखें यह आशा रखना एक बड़ी ही नासमझीकी बात है। इसलिए प्रार्थनाको अनिवार्य नहीं बनाया जाना चाहिए। प्रार्थना वे करें जिनकी उसमें रुचि हो और जिनकी प्रार्थनामें रुचि न हो वे उसे न करें। बिना दृढ़ विश्वासके कोई काम करना अनीतिमूलक एवं पतनकारी है।

हम पहले इसमें व्यक्त अन्तिम विचारकी समीक्षा करते हैं: क्या नियमपालनकी आवश्यकता भलीभाँति समझनेसे पहले नियमपालन करना अनीतिपूर्ण और पतनकारी है? क्या स्कूलके पाठ्यक्रमकी उपयोगिता अच्छी तरह जाने बिना उस पाठ्यक्रममें दिये गये विषयोंका अध्ययन करना अनीतिपूर्ण और पतनकारी है? अगर कोई लड़का अपनी मातृभाषा सीखना व्यर्थ मानने लगे तो क्या उसे मातृभाषा सीखनेकी बाध्यतासे मुक्त कर देना चाहिए? क्या यह कहना ज्यादा ठीक न होगा कि एक लड़केको इन बातोंका ज्ञान ही नहीं होता कि उसे क्या विषय पढ़ना चाहिए और किन नियमोंका पालन करना चाहिए। अगर इस बारेमें उसकी खुदकी कोई पसन्द थी भी तो जब वह किसी संस्थामें प्रवेश लेनेके लिए गया तभी खत्म हो चुकी। किसी संस्था विशेषमें उसके भरती होनेका अर्थ यह है कि उसने उस संस्थाके नियमोंका पालन करना सहर्ष

स्वीकार कर लिया है। वह चाहे तो उस संस्थाको छोड़ भले ही दे, लेकिन जबतक वह उसमें है तबतक यह तय करना उसके अख्तियारके बाहर है कि उसे क्या पढ़ना चाहिए और कैसे पढ़ना चाहिए?

यह काम तो शिक्षकोंका है कि वे उस विषयको, जो विद्यार्थियोंको शुरूमें घृणा और अरुचि उत्पन्न करनेवाला मालूम हो, रुचिकर और सुगम बनायें।

यह कहना कि मैं ईश्वरको नहीं मानता, बड़ा आसान है; क्योंकि ईश्वरके बारेमें चाहे जो-कुछ कहा जाये — उसको ईश्वर बिना सजा दिये कहनेकी छूट देता है। वह तो हमारी कृतियोंको देखता है। ईश्वरके बनाए हुए किसी भी कानूनके खिलाफ काम करनेसे काम करनेवालेको सजा जरूर मिलती है, लेकिन वह सजा सजाके लिए नहीं बल्कि उसे शुद्ध करनेवाली और सन्मार्गपर चलनेके लिए बाध्य करनेवाली होती है। ईश्वरका अस्तित्व सिद्ध नहीं किया जा सकता और न उसे सिद्ध करनेकी जरूरत ही है। ईश्वर तो है ही। अगर हम उसका अनुभव नहीं करते तो इसमें हमारा ही अकल्याण है। उसे अनुभव करनेकी शक्तिका अभाव एक रोग है और वह किसी-न-किसी दिन दूर हो जायेगा — फिर हम उसे दूर करना चाहें या न चाहें।

लेकिन विद्यार्थीको इस विवादमें नहीं पड़ना चाहिए। वह जिस संस्थामें पढ़ता है, अगर उस संस्थामें सामुदायिक प्रार्थना करनेका नियम है तो उसे नियमपालनके विचारसे प्रार्थनामें शरीक तो होना ही चाहिए। वह अपनी शंकाएँ अपने शिक्षकोंके सामने आदरपूर्वक रखे। जो बात उसे नहीं जँचती, उसको उसपर विश्वास करना जरूरी नहीं। अगर उसके चित्तमें गुरुजनोंके प्रति आदर है, तो वह उनके बताए कामको उसकी उपयोगितामें दृढ़ विश्वास रखे बिना भी, भयके मारे या अशिष्टताके साथ नहीं, बल्कि इस निश्चयसे करेगा कि उसे करना सही है और यह आशा करेगा कि जो बात आज उसकी समझमें नहीं आती, वह किसी-न-किसी दिन जरूर आ जायेगी।

प्रार्थना करना याचना करना नहीं है, वह तो आत्माकी पुकार है — वह अपनी त्रुटियोंको नित्य स्वीकार करना है। हममें से बड़ेसे-बड़ेको मृत्यु, रोग, वृद्धावस्था, दुर्घटना इत्यादिके सामने अपनी तुच्छताका भान हरदम हुआ करता है। हम सदा मृत्युसे घिरे रहकर जीते हैं। यदि हमारे मंसूबे पल-भरमें मिट्टीमें मिल सकते हैं अथवा यदि एकाएक पलभरमें खुद हमारी हस्तीतक मिटा सकती है, तब हमारे अपने मंसूबोंपर अमल करनेका मूल्य ही क्या रहता है? लेकिन अगर हम यह कह सकें कि हम तो ईश्वरके निमित्त तथा उसकी इच्छाके अनुसार ही काम करते हैं, तब हम अपनेको मेरुकी भाँति अचल मान सकते हैं। तब तो सब-कुछ बिलकुल स्पष्ट हो जाता है। उस हालतमें नष्ट कुछ भी नहीं होता। नाशकी सारी क्रिया तब एक आभास ही होती है। केवल इसी अवस्थामें मृत्यु और विनाश अवास्तविक हो जाते हैं, क्योंकि मृत्यु या विनाश उस हालतमें एक रूपान्तर भर है — उसी प्रकार जिस प्रकार एक शिल्पी अपने एक चित्रको उससे उत्तम चित्र बनानेके हेतु नष्ट कर देता है और

जिस प्रकार एक घड़ीसाज अच्छी कमानी लगानेके हेतु पुरानी और रद्दी कमानी फेंक देता है।

सामुदायिक प्रार्थना बडी बलवती वस्तु है। इसमें हम जो-कुछ प्राय. अकेले नही करते, उसे सबके साथ करते हैं। लड़कोंको विश्वासकी आवश्यकता नही है। अगर वे महज अनुशासनके पालनार्थ ही सच्चे दिलसे प्रार्थनामें सम्मिलित हो, तो उनको प्रफुल्लताका अनुभव होगा। लेकिन अनेक विद्यार्थी प्रफुल्लता अनुभव नही भी करते और प्रार्थनाके समय, शरारत भी करते हैं। लेकिन तिसपर भी उनपर अप्रकट प्रभाव पडे बिना नही रह सकता। ऐसे लड़के भी होते है जो अपने प्रारम्भ-कालमे प्रार्थनामे केवल उपहास करनेके लिए ही शरीक होते है, लेकिन बादमें सामुदायिक प्रार्थनाकी विशिष्टतामे अटल विश्वास रखनेवाले बन जाते हैं। यह बात सभीके अनुभवमे आई होगी कि जिनमे दृढ विश्वास नही होता, वे सामुदायिक प्रार्थनाका सहारा लेते हैं। वे सब लोग जो गिरजाघरो, मन्दिरो और मस्जिदोमें इकट्ठे होते है, न तो कोरे धर्मोपहासी होते है और न पाखण्डी। वे ईमानदार लोग होते हैं। उनके लिए तो सामुदायिक प्रार्थना नित्य स्नानकी भाँति एक आवश्यक नित्य-कर्म है। ये प्रार्थना-स्थान कोरे अन्धविश्वासके सूचक ऐसे स्थान नहीं हैं जिन्हे जल्दीसे-जल्दी नेस्तनाबूद कर दिया जाना चाहिए। वे आघात सहते रहकर भी अब-तक मौजूद हैं और अनन्त कालतक बने रहेंगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २३-९-१९२६

४७२. स्वयंसेवकोंका धर्म

यह बताते हुए कि इस अनेक धर्मोवाले देशमे एक स्वयसेवकके लिए सर्वमान्य आचार ढूंढना कठिन है, एक पत्रलेखक स्वयसेवकके धर्मका इस प्रकार प्रवाहपूर्ण वर्णन करता है:[१]

इसमें से शब्दाडम्बर निकाल दे तो सार यह निकलता है कि यह सत्यधर्म हिन्दुत्व, इस्लाम, ईसाइयत आदि अगभूत हिस्सोंमें विभक्त हो जाता है, क्योकि अत्यन्त ईमान-दार तथा शुद्धचित्त हिन्दू, मुसलमान तथा ईसाई सत्यको क्रमश· हिन्दुत्व, इस्लाम तथा ईसाइयतके रूपमें ही देखेंगे, क्योंकि वे उन्ही धर्मोमें विश्वास रखते हैं।

अत. यह जानते हुए कि हम सभी कभी एक ही तरहसे नही सोचते और सदा सत्यके एक खण्डको ही और वह भी विभिन्न दृष्टिकोणोसे देखते हैं, पारस्परिक सहिष्णुता आचरणका सर्वोत्तम नियम है। सबकी अन्त.करणकी पुकार एक नही होती। अतः यद्यपि वह व्यक्तिगत जीवनके लिए एक अच्छा पथप्रदर्शक है, फिर भी अपने

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने कहा था कि स्वयंसेवकका धर्म सत्य—जो सब धर्मोका सार है होना चाहिए और उसे साम्प्रदायिकतासे दूर रहना चाहिए।

आचरणको सबपर लादना अन्य सभीकी 'अन्तःकरण' सम्बन्धी स्वतन्त्रतामें असह्य हस्तक्षेप करना है। इस शब्दका बहुत दुरुपयोग हुआ है। क्या सभी लोगोंके [जाग्रत] अन्तःकरण होता है? क्या मनुष्यभक्षी राक्षसके अन्तःकरण होता है? क्या उसे उसके अन्तःकरणके निर्देशके अनुसार आचरण करने देना चाहिए? उसका अन्तःकरण तो कहता है कि अपने साथी मानवको मारकर खा जाना उसका कर्त्तव्य है। अब व्युत्पत्तिके अनुसार अन्तःकरण अथवा विवेकका अर्थ है "सच्चा ज्ञान"। शब्दकोषके अनुसार विवेकका अर्थ है "अच्छाई और बुराईमें भेद करनेवाली तथा तदनुसार आचरणको प्रभावित करनेवाली आन्तरिक शक्ति।" इस प्रकारकी शक्तिकी सम्भावना केवल प्रशिक्षित व्यक्तिमें ही हो सकती है और प्रशिक्षित व्यक्ति वह है जो अनुशासनमें रहता है और जिसने अन्तःकरणकी आवाजको समझना सीखा है। किन्तु अत्यन्त विवेकशील व्यक्तियोंके विचारोंमें भी प्रामाणिक मतभेद होनेकी काफी गुंजाइश है। इसलिए किसी भी सभ्य समाजमें केवल पारस्परिक सहनशीलताके आचरणको ही नियम माना जा सकता है। इसे सभी लोग, चाहे उनका दर्जा कुछ भी हो और उन्होंने कैसा भी शिक्षण पाया हो, अपना सकते हैं और इसका आचरण कर सकते हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २३-९-१९२६

४७३. उत्तर महाराष्ट्रमें खादीकी फेरी

श्री बी० वी० दास्तानेने लिखा है कि ३१ अगस्तसे लेकर ७ सितम्बरतक श्री भरुचाने चालीसगाँव, पचोरा, भुसावल, अकोला और जलगाँवमें फेरी लगाकर ३,५९७ रुपयेकी खादी बेची है। इस कार्यमें स्थानीय कार्यकर्त्ताओंने उनकी सहायता की। उनका कहना है कि खानदेशका माल समाप्त हो गया है और यदि बाहरकी खादी भी शामिल की जाती तो वे और भी अधिक खादी बेच लेते।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २३-९-१९२६

४७४. लौटे हुए प्रवासी

जो लोग पहले फीजीके अधिवासी थे उन्हें ब्रिटिश गियाना भेजा जा रहा है। उन बदकिस्मत लोगोंको दुबारा निराशासे बचानेके लिए पण्डित बनारसीदास[1] चिन्तित हैं। मैं इसे समझ सकता हूँ। यद्यपि दोनों देशोंमें बड़ा अन्तर है फिर भी यह प्रयोग करने योग्य है, बशर्ते कि फीजीके लोग ब्रिटिश गियाना जानेके लिए तैयार हों और वहांकी सरकार यह जानते हुए भी कि वे लोग फीजीके रहनेवाले हैं, उन्हें ले ले। जहांतक उपनिवेशमें उत्पन्न प्रवासियोंका सम्बन्ध है, मुझे विश्वास है कि चाहे उन्हें रसोईघरमें बोली जानेवाली हिन्दुस्तानी ही क्यों न आती हो, वे उपनिवेशोंके सिवा अन्यत्र प्रसन्न नहीं रहेंगे। पण्डित बनारसीदासने जो महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठाये हैं, बादमें उनपर विचार करना जरूरी होगा।[2]

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २३-९-१९२६

४७५. 'मैं' और 'मेरे' का अभिशाप

दरभंगामें एक शान्ति सभामें दिये गये श्रीयुत सतीशचन्द्र मुखोपाध्यायके भाषणका संक्षिप्त रूप नीचे दिया जाता है। आशा है यह पाठकोंके लिए रुचिकर और लाभदायक होगा।[3]

अगर हम 'मैं' और 'मेरे' को धर्म, राजनीति, अर्थनीति इत्यादिसे दूर कर सकें, तो हमें तुरन्त ही मुक्ति मिल जाये और पृथ्वीपर स्वर्ग उतर आये।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २३-९-१९२६

१. यंग इंडियाके सम्पादकके नाम लिखे बनारसीदास चतुर्वेदीके पत्रके लिये देखिए परिशिष्ट ६।

२. बनारसीदास चतुर्वेदीने इस सम्बन्धमें पुनः लिखा और गांधीजीने फिर अपने विचार प्रकट किये। देखिए "लौटे हुये प्रवासी", ४-११-१९२६।

३. यहां नहीं दिया जा रहा है। इसमें वक्ताने कहा था कि देशमें इस समय जो असहिष्णुता और हिंसा फैली हुई है उसका कारण अधिकांशतः हमारी 'मैं' और 'मेरे' की भावना है; अतः अहिंसा, सत्य और ऐसे ही अन्य सद्गुणोंका खयाल रखे जानेपर ही सब धर्मोंमें सच्चा सद्भाव होना सम्भव है।

४७६. टिप्पणियाँ

आगरावासी बी० को उत्तर

न तो मैं मनमानी सीमा निर्धारित करता हूँ और न मैं कठोर शर्तें ही रखता हूँ, जिनमें फेरफार न हो सके। विधवाओंको भी वही स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए जो विधुरोंको मिली हुई है। यदि वैधव्यको शुद्ध रखना है तो पुरुषोंको और भी अधिक शुद्धता प्राप्त करनी होगी। आखिर विधवाएँ केवल पुनर्विवाह तभी कर सकती हैं जब पुरुष उनसे विवाह करनेके लिए तैयार हों। फिर भी यह सामान्य नियम बनाया जा सकता है कि जहाँ कोई विधवा संयमका पालन न कर सके वहाँ उसे पुनर्विवाहकी स्वतन्त्रता हो और उसका किसी प्रकारका तिरस्कार न किया जाये। क्या छिपकर पाप करनेकी अपेक्षा खुलेआम शादी कर लेना अधिक अच्छा नहीं है। बाल-विधवाओंके बारेमें तो मतभेद हो ही नहीं सकता। माता-पिताओंको उनका पुनर्विवाह कर देना चाहिए। यदि शूद्रोंमें पत्नियों और विधवाओंका जीवन जानवरोंसे अच्छा नहीं है — जिससे मैं बिलकुल इनकार करता हूँ और मैं दावा करता हूँ कि मैं उनके बारेमें कुछ जानकारी रखता हूँ — तो इसका दोष तथाकथित उच्च वर्णोंपर है। मालूम पड़ता है, आप इस नियमको भूल गये हैं कि जब एक अंग पीड़ित होता है तो सारे शरीरको कष्ट होता है। यदि एक शूद्र बुराई करता है तो उससे जैसे स्वयं उसको और उसके विशिष्ट वर्ण या उसकी विशिष्ट जातिको हानि पहुँचती है, वैसे ही उससे समस्त समाजको भी हानि पहुँचती है।

कुछ ही वर्ष पूर्व

श्रीयुत सी० बालाजीरावकी नोटबुकसे मैंने निम्नलिखित उद्धरण[1] चुने हैं। ये उन्होंने गिल्बर्ट स्लेटरकी पुस्तक "सम साउथ इंडियन विलेजेस" (दक्षिण भारतके कुछ गाँव) १९१८ (मद्रास विश्वविद्यालय, अर्थशास्त्रीय अध्ययन), से नकल किये हैं। ये उद्धरण मूल्यवान हैं, क्योंकि इनसे मालूम होता है कि हाथ-कताईके नष्ट होनेके कारण गाँववालोंको कितनी हानि उठानी पड़ी है। यदि इस उद्योगको पुनरुज्जीवित करनेकी कोशिशके लिए हमें पर्याप्त कार्यकर्त्ता उपलब्ध हो जायें तो इस क्षतिका परिमार्जन न किये जा सकनेका कोई कारण नहीं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २३-९-१९२६

१. यहाँ नहीं दिये जा रहे हैं। इनमें बताया गया था कि विभिन्न गाँवोंमें हाथकताई उद्योगके नष्ट हो जानेसे अन्य सहायक कुटीर उद्योगोंका ह्रास कैसे हो गया।

४७७. पत्र : सी० एफ० एन्ड्रयूजको

[२३ सितम्बर, १९२६ से पूर्व][1]

प्रिय चार्ली,

तुम्हारी पर्ची मिली। तार भेजनेकी कोई जल्दी नहीं है। यदि मुझे ढाई बजे गाड़ी भिजवा दो तो मैं दिन-भरका अधिकसे-अधिक काम निपटाकर तुम्हारे पास वहां लगभग साढ़े तीन बजे पहुँच जाऊँगा और करीब एक घंटा तुम्हारे पास रहकर चरखा कातनेके समयपर यहां वापस आ जाऊँगा, या तुम्हारे साथ बातचीत करते हुए ही कात लूंगा। मृदुला मेरे लिए अपना चरखा तैयार रखे। तुम्हें किसी भी हालतमें इधर-उधर भागदौड़ करने या अहमदाबाद छोड़नेमें जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए। तुम चाहे वहां आराम करो अथवा यहां — लेकिन तुम जबतक पूरी तरह स्वस्थ नहीं हो जाते तबतक तुम्हें बाहर निकलना नहीं चाहिए। शेष मिलनेपर।

सस्नेह,

तुम्हारा,
मोहन

अंग्रेजी पत्र (जी० एन० २६३७) की फोटो-नकलसे।

४७८. पत्र : सी० एफ० एन्ड्रयूजको

बृहस्पतिवार [२३ सितम्बर, १९२६][2]

प्रिय चार्ली,

यह कैसी शरारत? लेकिन ठीक ही है; तुम पूरी तरह आराम करो। पूरी तरह इस लायक न हो पाओ तो तुम्हें कल अथवा परसों रवाना होनेकी बात नहीं सोचनी चाहिए। यदि तुम कहो कि मैं सशरीर ही तुम्हारे पास आऊँ तो आऊँगा नहीं तो यही समझो कि शरीर यहां है, परन्तु आत्मा तुम्हारे सिरहाने बैठी तुम्हें देख रही है।

सस्नेह,

तुम्हारा,
मोहन

अंग्रेजी पत्र (जी० एन० २६३४) की फोटो-नकलसे।

१. यह पत्र २३ सितम्बरको लिखे गये पत्रसे पूर्व लिखा गया जान पड़ता है। देखिए अगला शीर्षक।

२. एन्ड्रयूज २६ सितम्बरको दक्षिण आफ्रिकाके लिए रवाना हो गये थे। पत्र उसके पहलेके बृहस्पतिवारको लिखा गया होगा। उस दिन २३ तारीख थी।

४७९. पत्र : एमिल रॉनिगरको

आश्रम
साबरमती
२३ सितम्बर, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मीराबहनने आपको जो पत्र लिखा है, वह मैंने नही देखा था। स्पष्ट है कि मेरे शब्दोका उसने जो अर्थ लिया वह मेरे मनमे नही था। मैं नही चाहता कि वह मेरे नामपर, मेरी ओरसे लिखे। लेकिन उसने मेरी बातोंका जो अर्थ लगाया था, उसको देखते हुए तो उसका आपको वैसा पत्र लिखना उचित ही था। आपको लिखा उसका वह पत्र मैंने सुना। उसमें मुझे तो ऐसा कुछ नही दिखा जिससे आप यह मान सके कि मैं आपसे नाराज हूँ। सच तो यह है कि आपकी प्रस्तावनापर मुझे अब भी कोई एतराज नहीं है, और फिर अब तो आपने स्पष्टीकरण भी दे दिया है और अपने रवैयेको भी स्वयं समझ लिया है।

मेरे विचारसे, प्रकाशकको कोई चीज प्रकाशित करते समय उसमें व्यक्त विचारोसे पूर्ण अथवा आंशिक असहमति प्रकट करने या उन्हें नरम करके पेश करनेका पूरा अधिकार है। यूरोपीय पाठक क्या पसन्द करेंगे या वे कौन-सी बातें ग्रहण कर सकेंगे, यह तो मुझसे ज्यादा आप ही जानते है। इसलिए मेरी बातोंको नरम करके पेश करनेका आपको पूरा अधिकार है।

'गाइड टु हैल्थ' में तो वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे मुझे भी कुछ दोष दिखाई देते है। अनूदित रूपमें मैंने उसे पूरी तरह नही पढ़ा है। इसमें शरीर रचनाके सम्बन्धमें जो तथ्य दिये गये है वे अन्य ग्रन्थोंसे लिये गये है। इस पुस्तकका एक ही महत्त्व है कि इसमे आत्माके स्वास्थ्यको मुख्य और शरीरके स्वास्थ्यको गौण माना गया है। मैंने ये अध्याय विशुद्ध रूपसे 'इंडियन ओपिनियन' के गुजराती पाठकोंके लिए लिखे थे। इसलिए मैं आपको आश्वस्त करता हूँ कि मेरे नाराज होनेका कोई सवाल ही नहीं था।

हाँ, एक बात मुझे पसन्द नही आती। गलत अनुवाद; और मूलके कुछ अंशोंका छोड़ दिया जाना। इसे मैं अक्षम्य मानता हूँ। जबतक प्रकाशक सम्बन्धित कृतिके लेखकसे इजाजत न ले ले या उसे सूचित न कर दे, तबतक उसे पुस्तकका कोई अंश छोड़ना नहीं चाहिए, उसे पूरा-पूरा छापना चाहिए। इसलिए मेरे लेखोंके प्रकाशनके सम्बन्धमें आपने जो-कुछ किया है, उसपर मेरे तनिक भी नाराज या क्रोधित होनेका खयाल आप अपने मनसे बिलकुल निकाल दीजिए।

हृदयसे आपका,

श्री एमिल रॉनिगर,
स्वैज़

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०८१९) की फोटो-नकलसे।

४८०. पत्र : कोण्डा वेंकटप्पैयाको

आश्रम
साबरमती
२३ सितम्बर, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र[1] मिला। मैं परिषदको जल्दीमें यह सलाह नहीं दूंगा कि वह आन्ध्र एजेंसी समाप्त कर दे। लेकिन मैंने महसूस किया है कि आप और सीताराम शास्त्री दोनोंके दिल बहुत जल्दी पसीज जाते हैं। मेरे विचारसे कोरी नरमदिली और अहिंसाकी आपसमें पटरी नहीं बैठती। सही अर्थोंमें और सचमुच दयालु बननेके लिए मनुष्यको कभी-कभी कठोर बनना पड़ता है। लेकिन मैं बड़े दुःखके साथ देखता रहा हूँ कि आन्ध्रमें 'स्वतन्त्रता' के नामपर लोग अनुशासनहीनता बरतते हैं। वहाँ सिद्धान्त-हीन लोगोंकी चलती है और वे बिना किसी भयके मनमानी करते हैं। ऐसा नहीं कि ऐसी बातें और स्थानोंमें नहीं हुई हैं, लेकिन आन्ध्रमें कदाचित् यह बुराई बहुत ज्यादा उभरकर सामने आई है। खादी आन्दोलन तत्काल सफल हो सकता है, बशर्ते कि हमें ऐसे अनुशासित कार्यकर्त्ता मिल सकें जिन्हें खादीमें अपार विश्वास हो और जिनके पास खादीके अलावा और कोई काम न हो। अगर आप समझते हैं कि आपको और सीताराम शास्त्रीको खादीपर ऐसी ही आस्था है और आप अवसर आनेपर काफी सख्तीसे काम ले सकते हैं तो आप शौकसे एजेंसी जारी रख सकते हैं। लेकिन अब आपको लोगोंकी टालमटोलकी बातोंमें नहीं फँसना चाहिए; न उनसे सुलह-समझौतेकी बातें ही करनी चाहिए और न लोगोंसे याचना ही करनी चाहिए। एजेंसीको ठीक व्यावसायिक ढंगपर चलाया जाना चाहिए। अगर आप यह सोचते हैं कि यहाँ आने और समस्त परिस्थितिकी चर्चा करनेसे कुछ फायदा होगा तो आप शौकसे यहाँ आ सकते हैं और अपने साथ सीताराम शास्त्रीको तथा जिसे आप चाहें अन्य किसी व्यक्तिको भी साथ ला सकते हैं।

उम्मीद है कि आपका स्वास्थ्य अच्छा है और आप घरेलू चिन्ताओंसे मुक्त हो गये हैं।

हृदयसे आपका,

कोण्डा वेंकटप्पैया गारू
गुण्टूर

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११२३९) की माइक्रोफिल्मसे।

१. वेंकटप्पैयाने सीताराम शास्त्रीको गांधीजी द्वारा दिये गये इस सुझावपर १८ सितम्बरको पत्र लिखकर खेद प्रकट किया था कि गुण्टूरकी खादी एजेंसीको बन्द किया जाये। उन्होंने यह आश्वासन दिया था कि निजी प्रयत्नों और देखभाल करनेसे स्थितिमें सुधार हो सकता है।

४८१. पत्र : जेड० एम० पैरेटको

आश्रम
साबरमती
२३ सितम्बर, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मैंने आपके लिए एक पत्र लिखा तो था, लेकिन फिर यह सोचकर फाड़ डाला कि बेजा लिखना आपके साथ न्याय नहीं होगा। मतलब यह कि मैं आपके साथ तर्क करने और आपको समझाने-बुझानेके बजाय कठिनाईसे बचनेके लिए आपकी इच्छाके आगे आत्मसमर्पण करने जा रहा था। मैं आपको बताना चाहता हूँ कि शराबबन्दीके कार्यके लिए आपको एक मुखपत्र चलानेकी कोई जरूरत नहीं। अगर आपके पास ईमानदार कार्यकर्त्ता हैं तो पत्र निकालनेका मतलब, तुलनात्मक दृष्टिसे देखनेपर उनके और आपके समयकी बरबादी होगी। मैंने यहाँ और दक्षिण आफ्रिका दोनों जगह शराबियोंके बीच काम किया है। क्या आप जानते हैं कि आप लेखों आदिके द्वारा उनतक कभी नहीं पहुँच सकते? वे एक तो पढ़ने-लिखनेसे बहुत दूर ही रहते हैं और अगर कुछ पढ़ते भी हैं तो उससे बिलकुल प्रभावित नहीं होते। अगर उनपर किसी बातका असर होता है तो वह यही है कि आप स्वयं उनके पास जाकर उन्हें शराब छोड़नेकी बात समझाय। तब शायद वे आपकी बात मान लें। अभी कुछ दिनोंसे मैं अखबार निकालनेके इच्छुक हरएक मित्रको, ऐसा न करनेकी सलाह देता आ रहा हूँ। मैंने उनके लिए लिखनेकी बातको भी माननेसे इनकार कर दिया है। और यदि मैं आपको अखबार निकालनेके इस उपक्रमसे विरत नहीं कर पाया तो आपके साथ भी मैं यही बरताव रखना चाहता हूँ। हो सकता है, आप अपने इस कामके लिए इतने प्रतिबद्ध हो चुके हों कि अब आपके लिए कदम पीछे हटाना असम्भव हो गया हो, या हो सकता है कि शराबबन्दीका काम आगे बढ़ानेके बारेमें आपके विचार मेरे विचारोंसे सर्वथा भिन्न हों। ऐसी स्थितिमें आपके अपने विचारों और उनपर आपके अमलके विरुद्ध मैं कुछ नहीं कह सकता। ऐसी हालतमें मैं तो केवल यही चाहूँगा कि मुझे मेरे ढंगसे काम करने दिया जाये और यदि हो सके तो मेरी इस भावनाकी कद्र भी की जाये।[1]

हृदयसे आपका,

डा० जेड० एम० पैरेट
सम्पादक
'पौर प्रभा'
कोट्टायम (दक्षिण भारत)

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९७०६) की माइक्रोफिल्मसे।

१. देखिए "पत्र : जेड० एम० पैरेटको", ७-१०-१९२६।

४८२. पत्र : नानालाल कविको

आश्रम
२४ सितम्बर, १९२६

भाईश्री ५ नानालाल कवि,

आपका पत्र मिला। इसके लिए कृतज्ञ हूँ। आपको वह पत्र मैंने पंचके रूपमें नहीं, एक प्रतिष्ठित मित्रके रूपमें लिखा था और आपसे सहायता माँगी थी। लेकिन देखता हूँ कि मैं आपको अपना मुद्दा नहीं समझा पाया हूँ; इसलिए अब आपको तकलीफ नहीं दूंगा।

मोहनदासके वन्देमातरम्

श्रीनिवास, सर जगमोहनदासका बँगला
नेपियन सी रोड, बम्बई

गुजराती पत्र (एस० एन० १९९५१) की माइक्रोफिल्मसे।

४८३. पत्र : लक्ष्मीदास तेरसीको

आश्रम, साबरमती
शुक्रवार, भाद्रपद बदी ३, [२४ सितम्बर, १९२६][1]

भाईश्री ५ लक्ष्मीदास,

मुझे आपके दो पत्रोंका उत्तर देना रहता है — एक ब्रिटिश मालके बहिष्कारके सम्बन्धमें और दूसरा दक्षिण आफ्रिकाके शिष्टमण्डलके सम्बन्धमें। मैंने आपकी बहिष्कार सम्बन्धी पत्रिका पढ़ी। आपने यह पत्रिका जिस साहससे लिखी है वह आपको शोभा देता है। लेकिन मैं आपकी दलीलसे प्रभावित नहीं हुआ हूँ। मैं ब्रिटिश मालके बहिष्कारको भले ही तात्त्विक दृष्टिसे न मानूं; परन्तु यदि वह व्यावहारिक दृष्टिसे शक्य अथवा उपयोगी हो तो उसे समझ अवश्य सकता हूँ। आप न तो उसकी शक्यता बता सके हैं और न उपयोगिता। इसके विपरीत आपकी पत्रिका पढ़नेके बाद ऐसा जान पड़ा कि व्यावहारिक दृष्टिसे भी ब्रिटिश मालके बहिष्कारकी उपयोगिता दिखाई नहीं देती। मैं उसके कारणोंमें जाऊँ, ऐसा तो आप नहीं चाहेंगे। आपसे मैं व्यावहारिक कदम उठानेकी अपेक्षा रखता हूँ। आप चतुर हैं; इसलिए मान लेता हूँ कि आप ऐसी चोट नहीं करेंगे जो व्यर्थ जाये। लेकिन आपकी यह चोट तो व्यर्थ ही है।

१. दक्षिण आफ्रिकी शिष्टमण्डलके उल्लेखसे मालूम होता है कि पत्र १९२६में लिखा गया होगा।

दक्षिण आफ्रिकाके प्रतिनिधि यहाँ आयें, ऐसा हमने अथवा जनताने चाहा है। यही दक्षिण आफ्रिकाके भारतीय भी चाहते थे। यदि हम अपने डेरेमें दुश्मनको भी बुलाते हैं तो हमारा स्पष्ट धर्म है कि हम उसकी आवभगत करे। गोलमेज परिषद[1] करनेका निश्चय यहाँके आन्दोलनके कारण ही किया गया है। ये लोग उसीके सम्बन्धमे यहाँ आ रहे हैं। अतः उनकी आवभगत करना हमारा धर्म है। हम उनका स्वागत करके उनके कानूनोंके बारेमें जो-कुछ कहना चाहते हैं उसे कहनेकी अपनी शक्तिमें वृद्धि ही करते हैं। उन्हें बुलानेके लिए केवल सरकारने कदम उठाया है और उससे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है हम ऐसा कहकर अपने दायित्वसे मुक्त नही हो सकते। यदि सरकार लोकमतके विरुद्ध कोई कदम उठाये तो उसके बारेमें यह तर्क अवश्य दिया जा सकता है। इसलिए मुझे आपका पत्र पढ़कर आश्चर्य हुआ। मैंने तो यही सोचा था कि उनका स्वागत करना हमारा स्पष्ट कर्त्तव्य है, आप इस बातको अवश्य समझ जायेंगे।

श्री लक्ष्मीदास तेरसी
बड़ाबाजार गेट स्ट्रीट
फोर्ट, बम्बई

गुजराती प्रति (एस० एन० १२२८३) की फोटो-नकलसे।

४८४. पत्र : जमनादास गांधीको

आश्रम, साबरमती
शुक्रवार, भाद्रपद बदी ३, २४ सितम्बर, १९२६

चि० जमनादास,

इसके साथ सामलदासका पत्र है। इसका मुख्य भाग बुआजीको पढाना। पत्रको सँभालकर रखना अथवा यहाँ भेज देना। मेरा खयाल है कि अभी फिलहाल तुम्हें अधिक कुछ नही करना है।

गुजराती प्रति (एस० एन० १२२८४) की फोटो-नकलसे।

१. दक्षिण आफ्रिकामें भारतीय प्रश्नपर गोलमेज परिषद केपटाउनमें १७-१२-१९२६ से १३-१-१९२७ तक हुई थी।

४८५. तार: राघवदासको

सावरमती

[२४ सितम्बर, १९२६ या उसके पश्चात्][1]

मैंने किसी चुनावके लिए कोई मजूरी नही दी और न ही मुझे इसका अधिकार है।

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११३३०) की फोटो-नकलसे।

४८६. पत्र: मोतीबहन चोकसीको

आश्रम

शनिवार, भाद्रपद वदी ४, [२५ सितम्बर, १९२६][2]

चि० मोती,

मुझे तुम्हारी लिखी साढे पाँच पक्तियाँ मिली। उनमे भी टेढ़ापन है। यदि उन्हे सीधी करे और फिर लिखें तो वे पाँच हो जायें। और उन पक्तियोमे जो अक्षर लिखे है वे तो मानो पचमेल है; कोई बड़ा तो कोई छोटा, कोई पतला तो कोई मोटा। फिर भी कैसा भी सही, वह पत्र तो है ही। इसलिए इतना अनुग्रह तो है ही। खूनकी जाँच करनेके वाद डाक्टरने क्या मत व्यक्त किया सो मुझे लिखना। तुमने पढ़ना फिर शुरु कर दिया, यह ठीक किया। प्रत्येक कार्यके लिए समय निर्धारित कर लेना चाहिए और उसका पालन दृढ़तासे करना चाहिए; इससे शारीरिक और मानसिक दोनो तरहका स्वास्थ्य सुधरता है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (एस० एन० १२१३५) की फोटो-नकलसे।

१. यह तार २४ सितम्बर, १९२६ को मिले राघवदासके तारके उत्तरमें दिया गया था। तारमें कहा गया था: गोरखपुरकी जनता जानना चाहती है कि क्या रघुपतिसहायके भाषणके अनुसार आपने चुनाव कार्यके लिए २५,००० रुपयेकी मजूरी दी है।

२. डाककी मुहरसे।

४८७. पत्र : मोहनलालको

आश्रम
शनिवार, २५[1] सितम्बर, १९२६

भाई मोहनलाल,

इसके साथ रामेश्वरदासजीका पत्र है। उनका पता 'धूलिया' है। उन्होंने जो पुस्तकें मँगवाई हैं वे अभीतक न भेजी हों तो उन्हें अब हमारी प्रकाशित समस्त गुजराती और हिन्दी पुस्तकें भेज देना तथा साथमें बिल भी। वे उनका मूल्य भेज देंगे। उन्हें वी० पी० भेजनेकी आवश्यकता नहीं है। पैसा तुरन्त न आये तो मुझे लिखना।

गुजराती प्रति (एस० एन० १२२८६) की माइक्रोफिल्मसे।

४८८. पत्र : रामेश्वरदास पोद्दारको

आश्रम
साबरमती
शनिवार, भाद्रपद कृष्ण ४, [२५ सितम्बर, १९२६][2]

भाई रामेश्वरजी,

आपका पत्र मिला है। पुस्तकोंकी तजवीज मैं करता हूँ। मनुष्यकी अशान्तिका समाधान धीरज और संतोषसे ही हो सकता है।

आपका,
मोहनदास

मूल पत्र (जी० एन० १८६) से।

१. साधन-सूत्रमें २६ तारीख दी गई है किन्तु शनिवार २५ सितम्बरको था।

२. डाककी मुहरसे।

४८९. कातनेवालोंकी कठिनाइयाँ

यज्ञ-रूपमें कातनेवाले एक सज्जन लिखते है :[1]

बात तो वाजिब है। चरखा संघको इसके लिए अलगसे एक मासिकपत्र निकालनेकी आवश्यकता नही है। 'नवजीवन' और 'यंग इंडिया' के द्वारा उक्त प्रकारकी मुश्किलोंका उपाय बताते रह सकते है। जिसे सूत कातने सम्बन्धी या कोई अन्य प्रश्न पूछना हो, वे अवश्य पत्र लिखे। उसका उत्तर 'नवजीवन' मे दिया जायेगा। दु.ख तो इस बातका है कि लोग तकलीफ सह लेते है; लिखते नही। इसके कई कारण होते है। कभी आलस्य, कभी लापरवाही और कभी इस बातकी चिन्ता कि इससे मेरे ऊपर बोझ पड़ेगा। यज्ञार्थ कातनेवालेको आलस्य और लापरवाही दोनोमे से कुछ भी शोभा नही देता और मेरे ऊपर तरस खानेका अर्थ है मुझपर तथा इस कामके प्रति अन्याय करना। मै स्वयं जिस प्रश्नको हल नही कर सकता, उसका हल दूसरोसे करानेका प्रबन्ध सहजमें ही किया जा सकता है। इसलिए जिसे भी कोई मुश्किल हो, वह नि.संकोच लिखे। सिर्फ एक शर्त याद रखे। साफ कागजपर स्याहीसे अच्छे अक्षरोंमे लिखें। जो कहना हो वहुत सक्षेपमे कहे; बहस इत्यादि न छेड़ें। पोस्टकार्ड या लिफाफेके ऊपर 'कताईके विषयमे' लिख देगे तो मुझे बड़ा सुभीता होगा।

ऊपरके पत्रके एक सवालका जवाब तो हम यही दिये दे रहे है। 'छीटा मारने' का अर्थ है हरएक तारको भिगो देना। कस यानी मजबूती बढानेके लिए यह क्रिया आवश्यक है। इससे २० फीसदीतक मजवूती बढते देखी गई है। इसलिए पानीका छीटा दिये विना, परेते परसे सूत उतारना नही चाहिए। इसके लिए सबसे सहज उपाय है, परेतेको पानीमे, ३ से ५ मिनटोंतक डुवा रखना और फिर हाथसे थपथपाकर सारे सूतको भिगो देना। इससे एक भी तार सूखा नही रहने पाता। परेतेमे रस्सीका उपयोग न करके यदि वह केवल लकडीका ही बना लिया जाये तो बहुत दिनोतक चलता है। रस्सी बार-वार पानीमे डुवाते रहनेसे मैली हो जाती है और सड़ जाती है। सूतको डुवानेके वाद तुरंत न उतार कर १२ घंटे चढ़ा ही रहने दे तो हरएक तारमें पानी प्रवेश कर जाता है। डुबाते समय सूत जितना छितरा हुआ हो, उतना ही अच्छा। डुबानेके बाद उसपर हाथ फेर देनेसे वह जल्दी भीग जाता है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २६-९-१९२६

१. यहाँ नहीं दिया गया है। पत्रमें सुझाया गया था कि अखिल भारतीय चरखा संघ कातनेवालोंसे अलग-अलग सम्पर्क रखे और उनकी समस्याएँ समझकर व्यक्तिगत तौरपर अथवा अपना विशेष मुखपत्र निकालकर उनका मार्ग-दर्शन करे।

४९०. अभिभावकोंकी जिम्मेदारी

एक शिक्षक लिखते हैं :[1]

ऊपरकी बातमें तत्त्व है, इसे तो सभी स्वीकार करेंगे। जब बच्चे बड़े हो जायें, उसके बाद पत्नीसे अथवा पत्नी मर जाये तो दूसरा विवाह करके उससे सन्तानोत्पत्ति करनेमें बच्चोंके मनपर बुरा असर पड़ता है, इसे तो सहज ही समझा जा सकता है। किन्तु यदि पिता आवश्यक संयमका पालन न कर सकता हो तो इतना तो करना ही चाहिए कि वह बड़े बच्चोंको अलग मकानमें रखे अथवा स्वयं ऐसे एकान्त कमरेमें रहे कि बच्चोंके देखने-सुननेमें कोई अनुचित बात न आये। इससे शिष्टताका बचाव तो हो ही जायेगा। बाल्यावस्था निर्दोष वातावरणमें बीतनी चाहिए किन्तु माता-पिता विलासके वशीभूत होकर बच्चोंके मनपर खराब छाप छोड़ देते हैं। बालकोंमें नीतिके विकासकी दृष्टिसे तथा उन्हें स्वावलम्बी बनानेके विचारसे वानप्रस्थाश्रमकी रूढ़िका प्रचलन होना चाहिए।

लेखकने शिक्षकोंके सामने जो सुझाव रखा है वह निःसन्देह योग्य तो है किन्तु जहाँ एक-एक वर्गमें चालीससे पचासतक विद्यार्थी हों और शिक्षकका विद्यार्थियोंसे पढ़ाने-लिखानेके सिवाय सम्बन्ध न आता हो, वहाँ यदि शिक्षक चाहे तो भी इतने बहुसंख्यक विद्यार्थियोंके साथ आध्यात्मिक सम्बन्ध कैसे स्थापित कर सकता है। इसके सिवाय जहाँ अलग-अलग छः-सात विषयोंको पढ़ानेके लिए छः-सात शिक्षक हों, वहाँ नीति-शिक्षणकी जवाबदारी कौन उठा सकता है?

अन्तमें ऐसे कितने शिक्षक प्राप्त हो सकते हैं जिन्हें अपने आचरणके बलपर बालकोंको नीतिके मार्गपर आरूढ़ करने अथवा उनका विश्वास प्राप्त करनेका अधिकार हो। इससे समूचे शिक्षणका प्रश्न सामने आ जाता है और यहाँ उसकी चर्चा नहीं की जा सकती।

समाज भेड़ोंके झुंडकी तरह बिना विचारे, बिना देखे चलता चला जाता है और कोई-कोई इसे ही प्रगति मान लेते हैं। किन्तु स्थिति इतनी भयंकर होते हुए भी हमारा व्यक्तिगत मार्ग तो सरल ही है। जो समझते हैं वे अपने-अपने क्षेत्रमें नीतिमत्ताका जितना प्रचार कर सकें उतना करें। पहले तो उन्हें स्वयं अपनेमें परिवर्तन करने पड़ेंगे। दूसरोंके दोष देखते हुए हम अपनेको अच्छा मान लेते हैं। यदि हम अपने दोषोंपर ध्यान दें तो देखेंगे कि हम कुटिल और कामी हैं। संसारका काजी बननेकी अपेक्षा अपना काजी बनना अधिक लाभदायी है। यदि हम ऐसा करें तो हमें अपने और दूसरोंके लिए सुमार्ग प्राप्त हो जाता है। 'आप भला तो जग भला' इस कहावतका यह भी एक अर्थ है। तुलसीदासने सन्तजनोंको पारसकी उपमा दी है। यह झूठी उपमा नहीं है। हम सबोंको सन्त बननेका प्रयत्न करना चाहिए। सन्त बनना

१. पत्र यहाँ नहीं दिया गया है।

अलौकिक मनुष्योका भाग्य ही नही है और वह गुण आसमानसे नही उतरता, बल्कि यह हरएक व्यक्तिका कर्त्तव्य है और यही जीवनका रहस्य है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २६-९-१९२६

४९१. तार : नेगापट्टम श्रमिक संघको

[२७ सितम्बर, १९२६ से पूर्व]

उल्लिखित मामलेमे सत्याग्रह गैरकानूनी।[1]

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २८-९-१९२६

४९२. पत्र : रोहिणी पूर्वैयाको

आश्रम
साबरमती
२९ सितम्बर, १९२६

तुम्हारा पत्र मिला। मैं तुम्हारी भील सेवा मण्डलके बारेमें लिखी रिपोर्ट अवश्य पढ़ूँगा।

क्या तुमने आश्रमके साथ अपना भाग्य जोडनेका निर्णय अन्तिम रूपसे कर लिया है? जब यह स्पष्ट है कि तुम्हें कमसे-कम अभी थोड़े समयतक कुछ कमाना चाहिए तब ऐसा कदम उठाना अविवेकपूर्ण होगा। अगर तुम आश्रममे रहनेके लिए आ भी जाती हो तो आश्रममें शुरूमें कुछ दिन तो यहां रहनेकी तुम्हारी योग्यता समझनी पडेगी। और तब भी तुम्हें कुछ प्रतिज्ञाएँ लेनी होंगी — जैसे सत्य, अहिंसा, गरीबी अर्थात् अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य, इत्यादि। जाँचकी यह अवधि समाप्त होनेपर इन सबका आचरण अनिवार्य बन जाता है। बडे भाईने जो चेतावनी दी है वह बहुत-कुछ सही है — विवाहके विचारसे नहीं बल्कि यहाँ जिस प्रकारका जीवन व्यतीत करना है, उसके विचारसे। यदि सादगी, गरीबी, सत्य और अहिंसाके विचार तुम्हारे हृदयमें घर कर गये हैं तो तुम्हें आश्रममें शामिल होनेसे कोई नही रोक सकता। लेकिन तुम्हे केवल आश्रम जीवनको आजमाकर देखनेके खयालसे यहाँ नहीं आना चाहिए। खद्दरकी मसहरी तैयार करनेकी जरूरत नहीं है। लेकिन यदि तुम्हे कोई मसहरी मिल जाये तो अच्छा ही होगा।

१. नेगापट्टममें रेलवे द्वारा सत्याग्रहके प्रस्तावपर स्थानीय रेलवे श्रमिक संघके अध्यक्षने गांधीजीकी सलाह मांगी थी।

प्रिंसेस स्ट्रीटके खादी भण्डारमें देखो, शायद मिल जाये; यों किसी भी मसहरीसे काम चल जायेगा।

हृदयसे तुम्हारा,

कुमारी रोहिणी पूवैया
द्वारा श्रीमती एस० एन० हाजी
मेरीन लाइंस स्टेशनके सामने
क्वीन्स रोड
बम्बई

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९७०७) की माइक्रोफिल्मसे।

४९३. टिप्पणियाँ

ताड़का रस निकालनेवालोंका संघ

एक पत्र-लेखकने कोचीनमें ताड़का रस निकालनेवालोंके संघकी स्थापनाके बारेमें निम्न रिपोर्ट भेजी है।[1]

त्रावणकोर और कोचीनमें ताड़ वृक्ष बहुत हैं। इन राज्योंमें ताड़का रस निकालनेका उद्योग बहुत बड़ा है। किन्तु यहाँ ताड़का रस स्वास्थ्यदायक उद्देश्यसे नहीं, बल्कि स्वास्थ्य और नैतिकताका नाश करनेके लिए निकाला जाता है; इसका दुरुपयोग खमीर उठाकर नशीली ताड़ी बनाकर बेचनेके लिए किया जाता है। इससे यूरोप तथा दक्षिण आफ्रिकामें अंगूरके बागोंके दुरुपयोगकी याद आ जाती है। सन्तरोंके सिवा और कोई ऐसा फल नहीं है जो स्वास्थ्यवर्धक गुणोंमें अंगूरोंसे तुलना कर सके। जो व्यक्ति ताजे अंगूर तथा थोड़ी-सी बिना चुपड़ी रोटी खाकर रहता हो वह कभी बीमार नहीं होता। किन्तु अंगूरोंकी फसलका उपयोग एक ऐसे मादक द्रव्यके बनानेमें किया जाता है जिससे प्रतिवर्ष इतने लोग मरते हैं जितने गोली और बारूदसे भी नहीं मरते; फिर भी वर्तमानमें लाभकी कोई आशा न रखकर तथा अपने उद्देश्यकी सचाईपर विश्वास रखकर फलाहारी लोग जो कोशिश कर रहे हैं वैसी ही कोशिश ताड़का रस निकालनेवालोंका संघ भी कर सकता है; बशर्ते कि वह निराशाओंसे निरुत्साहित न होकर काममें लगा रहे। ताड़ीका गुड़ बनाना एक बहुत ही अच्छा विचार है। यदि यह उद्देश्य सफल हो जाये तो ताड़ोंके इस प्रदेशमें नशाबन्दी रूढ़ हो जानेपर ताड़रस निकालनेवालोंको काम देनेकी समस्या अपने आप हल हो जायेगी। यह देखकर अत्यन्त दुःख होता है

१. यहाँ नहीं दी गई है। कुन्नांकुलम्‌में सभा बुलाकर यह संघ बनाया गया था। इसके सदस्य वे ही लोग हो सकते थे जो गुड़ बनानेके लिए ताड़का रस निकलते थे। १०२ लोगोंने शपथ ली कि वे ताड़ी बनानेके लिए ताड़का रस नहीं निकालेंगे। संघका उद्देश्य कोचीनमें जो लोग इस धन्धेमें लगे हैं, उनका नैतिक और सामाजिक सुधार करना था।

कि ब्राह्मण-शासित इस राज्यमें, जिसे प्रबुद्ध कहलानेका गौरव प्राप्त है, गुड़ तैयार करनेके लिए ताड़का रस निकालनेवालोंको सुविधाएँ नहीं दी जाती, बल्कि उनपर क्लेशकर नियम लागू किये जाते हैं।

शिक्षाकी धुरी

ऐसे समय जब कि शिक्षामें चरित्रनिर्माणकी अपेक्षा साहित्यिक ज्ञानपर अधिक जोर दिया जाता है प्राध्यापक जैक्सके 'सन्डे स्कूल क्रॉनिकल' मे प्रकाशित लेखसे उद्धृत निम्नलिखित उद्धरण पढना उपयोगी होगा।[1]

सुदूर तूतीकोरनमें

श्री के० नल्ल शिव पिल्ले लिखते हैं[2]

यदि स्वदेश वाल्यम् सघम्के सदस्य अपने कर्त्तव्यका पालन न करे तो मेरी चाहे कितनी भी सद्भावना हो व्यर्थ ही होगी। पत्रमे भाषाकी भूले देखकर हैरानी होती है। एक छोटी-सी संस्थाका विवरण देनेमे भी 'लगभग' शब्दके प्रयोगकी क्या आवश्यकता है? 'ज्यादातर छात्र कातते हैं' यह कहनेकी अपेक्षा उनकी ठीक संख्या दी जा सकती थी और यह बताया जा सकता था कि उनमें से प्रत्येक छात्र प्रतिदिन कितना समय कातनेमें देता है, कितना कातता है और उसका अक क्या आता है। 'लगभग २० चरखे' क्यो लिखे हैं, उनकी ठीक सख्या क्यो नही लिखी? 'कुछ पैसा लेकर कातते हैं', यह 'कुछ' क्यो? कितने कातते है, यह क्यो नही लिखा? उनकी मजदूरी क्यों नही बताई? क्या ये कातनेवाले जरूरतमन्द लोग है? 'लगभग ६० तौलियो' का क्या अर्थ है? ६० तो मोटी संख्या ही है। जो संस्था कामकाजी है उसे कामकी निश्चित सूचना देनी चाहिए और जो लोग खादीका काम करना अर्थात् सबसे गरीब और जरूरतमन्द लोगोकी सेवा करना चाहते हैं उन्हे कामकाजी ढंग ही अपनाना चाहिए। २० या १३ सदस्योकी ही सस्था एक अच्छी और भाग्यशाली संस्था होगी। यदि उसके ये २० या १३ सभीके सभी सदस्य ईमानदारी और मेहनतसे काम करें तो वह बडे पैमानेपर खादीके प्रचारका अच्छा केन्द्र बन सकता है। खादीका काम यदा-कदा जोरसे करना निरर्थक है। यदि भावनाप्रधान लोग कुछ दिन तेजीसे डटकर काम करे और फिर एकदम बैठ जायें, तो यह काम नही चल सकता। इस राष्ट्रीय आन्दोलनमे सकल्प और चारित्र्यकी दृढता सफलताके लिए अत्यावश्यक है।

अ० भा० चरखा संघ

इस मासके अन्तमें अ० भा० चरखा सघको काम करते हुए एक वर्ष पूरा हो जायेगा। जो अपना पिछले वर्षका सूतका चन्दा अभीतक पूरा-पूरा न भेज पाये हो, वे

१. उद्धरण यहाँ नहीं दिया गया है। इसमें कहा गया था कि विज्ञानने उन्नति तो की है, किन्तु उसका सदुपयोग कैसे किया जाये, यह समस्या हल नहीं की जा सकी है। अब शिक्षा और धर्म सम्बन्धी प्रवृत्तियोंका प्रयत्न अपने लक्ष्यपर, दायित्वपर पहुँचनेकी दिशामें किया जाना चाहिए।

२. यहाँ नहीं दिया गया है। इसमें तूतीकोरनके स्वदेश वाल्यम् संघम्के कार्यका विवरण दिया गया था।

सदस्य बने रहना चाहें तो उसे पूरा भेज दें। जो अगले साल भी सदस्य बने रहना चाहते हैं, उन्हे भी अपना नियत अंश जल्दी भेजना चाहिए। सूत अच्छा बटदार, एक-सा और पानीसे छींटा हुआ हो; इसपर जोर देनेकी जरूरत नही। सूत जाँचनेवालोने सूतको जाँचनेमें नरमी बरती है; लेकिन हमेशा तो नरमी नही बरती जा सकती। यह तो कातनेवालोंके लिए और राष्ट्रके लिए भी अहितकर होगा। इसलिए जैसे एक खराब सिक्का या कोई भी खराब सामान लौटा दिया जाता है, उसी तरह यदि खराब सूत आगेसे अस्वीकार कर दिया जाये तो सूत कातनेवालोंको आश्चर्य न करना चाहिए। सदस्योंको याद रखना चाहिए कि अ० भा० चरखा संघके पाँच वर्षका होनेपर उसके संविधानमें हो रहे संशोधनसे मिलनेवाले विशेषाधिकारको प्राप्त करनेके लिये उन्हें यह दिखाना होगा कि वे पाँच वर्षतक अ० भा० चरखा संघके लगातार सदस्य रहे हैं।

स्कूलोंमें तकली

बाबू प्रफुल्लचन्द्र सेनने दुआडण्डू राष्ट्रीय विद्यालय (बंगाल) की एक मासकी तकली-कताईके परिणामकी सही और विस्तृत रिपोर्ट अखिल भारतीय चरखा संघको भेजी है। स्कूलको उन्होंने हाल ही मे अपने हाथमें लिया है। हर कातनेवालेका नाम, उसने कितनी देरमें, कितना गज सूत काता तथा किस रफ्तारसे काता यह सब उन्होंने अपनी भेजी हुई तालिकामे दिया है। अगस्तमें २६ लड़कोंने १४३६८ गज सूत काता। इसका वजन ५६ तोला है और सूतके अंक ६ से ३० तक है। करीब ५० प्रतिशत सूत तानेके लिए ठीक है। सबसे अधिक रफ्तार औसतन ९० गज प्रति घंटा रही। महीनेमे सूत कातनेमे जिस लड़केने सबसे अधिक समयतक काता उसने १८ घंटे सूत काता। सबसे अधिक मात्रा १६२१ गज थी। केवल ४ लड़कोने १००० गज या उससे अधिक काता। इस प्रकार उन्होंने एक मासमे चरखा संघकी बाल शाखाके सदस्य बननेकी योग्यता प्राप्त कर ली है; लेकिन खद्दर पहनना सदस्य बननेकी अनिवार्य शर्त है। यदि अध्यापक और छात्र इसी तरह कातते रहे तो कोई कारण नहीं कि प्रत्येक छात्र वर्षके अन्ततक अपने वस्त्रोंके लिए पर्याप्त सूत न कात सके। मैं विश्वास करता हूँ कि यदि लड़कोको अभीतक अपनी रुई आप धुनना और उससे पूनियाँ बनाना न आता हो तो उन्हें कुछ समयमे वैसा करना सिखा दिया जायेगा।

प्रफुल्ल बाबूने तालिकाके साथ निम्नलिखित दिलचस्प पत्र भी भेजा है।[1]

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३०-९-१९२६

१. यहाँ नहीं दिया गया है। इसमें बताया गया था कि लड़के खराब चरखोंको छोड़कर जब तकलियोंपर सूत कातने लगे तो उसका क्या परिणाम हुआ। बच्चोंने इस परिवर्तनको खुशीसे स्वीकार किया था।

४९४. दक्षिण आफ्रिकाको

बेचैन और विशाल-आत्मा एन्ड्रयूज इतने प्रफुल्लित और कभी नही होते जितने ईश्वरकी खोज करते हुए या यो कहो कि मानव-सेवाके निमित्त यात्रा करते हुए होते है। बीमारी उन्हे त्रस्त नही करती। यदि कही श्रमजीवी कष्टमे होते है तो वे उनकी सहायताको दौड़ पड़ते है; अगर बाढ पीड़ितोको उनकी मददकी जरूरत होती है, तो वे उनके पास चले जाते है — चाहे वे ज्वरसे पीड़ित ही क्यो न हो। प्रवासी भारतवासी उन्हे हर वक्त अपनी मददके लिए तत्पर पाते है और अपना विश्वस्त पथप्रदर्शक मानते है। उनकी तबीयत ठीक नही थी। जब वे स्टोक्सके फार्ममे थे, तब उनको एक जहरीले कीड़ेने काट खाया था। लेकिन वे वहाँ पूरा आराम लेनेके लिए नही रुके; क्योकि शान्तिनिकेतनमे उनकी आवश्यकता थी। दक्षिण आफ्रिका जानेके पूर्व वे साबरमती आये। वे अच्छे तो पहलेसे ही न थे, यहाँ आकर उनकी तबीयत और भी बिगड़ गई। लेकिन वे दक्षिण आफ्रिकाकी यात्रा मन्सूख कैसे करते? वे अहमदाबादमे आतिथ्यशील श्री अम्बालाल साराभाईके यहाँ ठहरे थे। वहाँ दो चार रोज आराम करने पर उनकी तबीयत कुछ ठीक हुई। हालाँकि वे अब भी कमजोर है, तथापि वे दक्षिण आफ्रिकाके लिए रवाना हो गये है। जानेसे पहले वे एक लेख लिखकर रख गये है। यह अन्यत्र छपा है।[1]

यह उनका प्रेमपूरित कार्य ईश्वरकी खोज है। ईश्वरकी आज्ञाके पालनार्थ ही वे वहाँ गये है।

वे जानते है कि वहाँ जानेसे शायद हाथ कुछ न आये, लेकिन वे तो फकत काम करते है तथा उसके लिए मर मिटते है; वे तर्क-वितर्क नही करते। उनके लिए इतना काफी है कि दक्षिण आफ्रिकाके भारतवासी उनकी सहायता चाहते है और उन लोगोकी माँग न्यायपूर्ण है। वे उसपर विचार करनेके लिए नही रुकते कि काम छोटा है या बडा। वे किसी सत्यानुकूल और न्यायपूर्ण कामको छोटा नही मानते। और उनकी निगाहमें कोई भी व्यक्ति जिसे उनकी सेवाकी जरूरत है, तुच्छ नही है। ब्राह्मण हो या भगी, राव हो या रक, पूजीपति हो या मजदूर — अगर वह सत्य और न्यायके लिए लड़ रहा है — तो वे सभीकी समान भावसे सेवा करते है।

वे नाजुक मिजाज है। सदिच्छा रखनेवाले मित्रोने नम्रतापूर्वक उनकी आलोचना करते हुए कहा कि दक्षिण आफ्रिकासे आये हुए शिष्टमण्डलके हिन्दुस्तानमें रहते हुए उनको यही रहना चाहिए क्योकि प्रवासी भारतवासियोको तो उनकी आवश्यकता गोलमेज सम्मेलनसे पहले इतनी न होगी। उन्हे इस आलोचनासे पीड़ा हुई और उन्होने इस आलोचनाका उत्तर अपने उपर्युक्त लेखमें[2] दिया है। शिष्टमण्डलको उनकी दरकार नही

१. देखिए **यंग इंडिया**, ३०-९-१९२६।

२. श्री एन्ड्रयूजके लेखका सही शीर्षक 'ईश्वरकी खोज' है। उन्होंने इसमें अपनी दक्षिण आफ्रिकाकी यात्राका, जिसपर वे जा रहे थे, उल्लेख करते हुए लिखा था, मुझे निरुत्साहित करते हुए अभी कई लोगोंने

है। उसके पास बहुत काम है। हकीकत तो यह है कि शिष्टमण्डलको किसी प्रकारकी सलाह-सूचनाकी जरूरत नही है। इसके सदस्य बाजाब्ता गवाहियाँ लेनेके लिए नही आये हैं। वे तो बिना पूछताछ किये भारतमें तत्सम्बन्धी वातावरण समझनेके लिए आये है। यदि शिष्टमण्डलके सदस्य खुले दिलसे आये हों, तो वही काफी है। इसके विपरीत माननेका हमारे पास कोई कारण नही है। हमें उनके काममें दखल न देना चाहिए; उनकी अन्तरात्मा दखल दे तो दे। अन्तरात्मा तो तभी ठीक काम करती है जब उसे कोई दूसरा सुझाता-बताता नही है। आज उनकी अन्तरात्मा कसौटीपर चढ़ी है।

श्री एन्ड्रयूजकी दक्षिण आफ्रिकामें आवश्यकता है और वह भी तत्काल क्योकि प्रवासियोंको सहायककी फौरी जरूरत है। रायटरके तारसे मालूम हुआ है कि आफ्रिकी हिन्दुस्तानी उनकी बीमारीका हाल सुनकर बहुत घबड़ा गये थे। वे उनका एकमात्र सहारा नही तो मुख्य सहारा अवश्य है। उनके लिए अपना मामला तैयार करना जरूरी है। जितना समय शेष है उन्हें उतनेमे तैयारी कर लेनी चाहिए। और उनको इसीके लिए श्री एन्ड्रयूजकी जरूरत है।

उनको गोलमेज सम्मेलनके लिए उपयुक्त वायुमण्डल जरूर तैयार करना चाहिए। वे ही गोरे लोगो और हिन्दुस्तानियोके बीच एकमात्र जीवन्त शृंखला है। अगर दक्षिण आफ्रिकाका गोरा लोकमत भारतवासियोंके बिलकुल प्रतिकूल है, तो सम्मेलनसे कोई लाभ नही हो सकता। दक्षिण आफ्रिकाका लोकमत हमारे देशके लोकमतके समान नही है; क्योंकि उसके पीछे शक्ति है, उसके पास वोटोकी ताकत है। वहाँके लोकमतमें अपने मनकी कार्यनीति निर्धारित करानेकी शक्ति है। वह इंग्लैंडकी सरकारकी आज्ञा माननेसे इनकार कर सकता है। श्री एन्ड्रयूज कुछ हदतक उस लोकमतको पैदा कर सकते है तथा उसे कुछ हदतक अनुकूल बना सकते है। उनकी उपस्थितिसे ही नुक्ताचीनीकी तलवारें म्यानमे जा सकती है और विरोध शान्त हो सकता है। इस समय उनको निस्सन्देह दक्षिण आफ्रिकामें ही होना चाहिए।

गोलमेज सम्मेलनकी कार्यवाही आफ्रिकामे बसे हुए हिन्दुस्तानी लोगोके भविष्यपर असर डालनेमें ही समर्थ नही होगी, बल्कि दूसरे उपनिवेशोके बारेमे भी एशियाइयोसे सम्बन्धित नीतिपर अदृश्य रूपसे असर डालेगी। लेकिन प्रवासी हिन्दुस्तानी धोखेमे न रहें। श्री एन्ड्रयूजका इस प्रकार प्रभावशाली ढगसे बीचमे पड़ना उनके संघर्षके लिए अनिवार्य तो है, फिर भी उसकी अन्तिम सफलता तो स्वयं उनके ही ऊपर निर्भर

कहा है, वहाँ रंगभेदकी जड़ें मजबूत है और बाजारोंमें, रेलोंमें और सामाजिक कार्योंमें भारतीयोंसे हीन तथा शोषित जाति जैसा व्यवहार किया जाता है। जबतक यह हालत कायम है, तबतक वहाँ जानेसे क्या फायदा है? मैं इन सब बातोंको पूरी तरह जानता हूँ और मुझे इनका बहुत ही कडुवा और निकटका अनुभव है। फिर भी जब एक एशियाई विधेयक जो वापस नहीं लिया गया है, केवल स्थगित ही किया गया है, उनके सिरपर लटक रहा है, तब मुझे अपने सफल होनेका विश्वास होता है और आशा बँधती है, क्योंकि जैसे ईश्वर यहाँ हम भारतीयोंके हृदयोंमें है, वह वैसे ही वहाँ दक्षिण आफ्रिकाके लोगोंके हृदयोंमें भी बसा है और वहाँके डचों और अंग्रेजोंके हृदयोंमें तीव्र गतिसे प्रेम उत्पन्न कर रहा है। वह मुझे वहाँ साथीके रूपमें अवश्य ही मिलेगा।

है। संसारमे स्वावलम्बनसे बढ़कर और कोई अवलम्ब नही है। उन्हे चाहिए कि वे अपनी माँगें वाजिब रखे और उनपर मजबूतीसे अड़े रहे। वे जो-कुछ कहे एक होकर कहें। जो-कुछ करे एक होकर करे। वे सत्यसे तिल-भर भी न हटे। वे समझौतेमे आये हुए अपने हिस्सेकी बाते जरूर पूरी करे यानी सफाई और भवन निर्माण सम्बन्धी सभी नियमोका पालन करे और अपने उद्देश्यके हेतु सामुदायिक रूपसे एक समाज बने रहकर कष्ट झेलनेके लिए तैयार रहें। बिना मुसीबत झेले मुक्ति नही मिलती।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३०-९-१९२६

४९५. राष्ट्रीय शिक्षा

जो लोग राष्ट्रीय शिक्षामे दिलचस्पी रखते हैं, मै उनका ध्यान आचार्य आ० टे० गिडवानीके उस दीक्षात भाषणकी ओर आकर्षित करता हूँ जो उन्होने काशी विद्यापीठके छात्रोके सामने दिया है और जिसके मुख्य अंश मै अन्यत्र[1] प्रकाशित कर रहा हूँ। वे राष्ट्रीय शिक्षा या राष्ट्रीय शैक्षणिक संस्थाओसे हताश कदापि नही हे और छात्रोंकी निराशाको दूर करनेके लिए उन्होने सलाह दी है कि इन सस्थाओके अध्यापक उन्हीके समान उन विभिन्न राष्ट्रीय शिक्षण सस्थाओ तथा केन्द्रोकी तीर्थयात्रा करे जिनमे राष्ट्रीय स्नातक कार्य कर रहे हैं। आचार्य गिडवानीकी तरह मै भी आशावादी हूँ। किन्तु राष्ट्रीय संस्थाओकी भारी दुर्बलताओकी ओरसे मेरी आँखे बन्द नहीं है। इसी प्रकार जहाँतक मै जानता हूँ आचार्यजीने भी उनकी ओरसे आँखें बन्द नही की है। नई संस्थाओमे जैसा जीवट दिखाई देना चाहिए वैसा उनमे दिखाई नही देता। इन संस्थाओके अध्यापकोको राष्ट्रीय शिक्षामे तथा उन संस्थाओमे जिन्हे वे चला रहे है, अधिक विश्वास व्यक्त करना है। उन्होने अबतक जितना त्याग किया है उन्हे उससे भी अधिक त्याग करना है। मुझे विश्वास है कि जहाँतक संस्थाओके कमजोर होनेका सवाल है, उसका कारण अध्यापकोंमे विश्वास तथा आत्मत्यागका अभाव ही है। उन्हे मौलिक कार्य करनेका साहस दिखाना चाहिए। एक सम्मेलन बुलाकर समान प्रणाली और समान नीति निर्धारित करनेका प्रयत्न किया जा सकता है। किन्तु शायद यह ज्यादा अच्छा होगा कि प्रत्येक संस्था अपने खुदके मौलिक खाकेको आधार बनाये। हमारा देश इतना बड़ा और विविधतासे भरा है कि उसमे बहुत प्रकारके प्रयोग करना वाछित है। कुछ बाते ऐसी जरूर हैं जो सभी राष्ट्रीय संस्थाओंमे स्पष्ट रूपसे एक समान हैं। उनको यहाँ दुहरानेकी जरूरत नही है। अध्यापकोका विभिन्न संस्थाओकी तीर्थयात्रा करनेका विचार नि सन्देह उपयुक्त है, लेकिन पहले इस विचारको कार्यरूपमे परिणत करनेके लिए भी कुछ हदतक प्रेरणाप्रद विश्वासकी आवश्यकता है।

१. देखिए **यंग इंडिया**, ३०-९-१९२६।

झूठा दिखावा, आत्मप्रवंचना तथा रूढ़ियोसे चिपके रहना — सर्वत्र इन्हीका बोल-बाला है। शिक्षाके क्षेत्रमें देशके बच्चोंके भावी विकासका बीज निहित है। उसमे सत्य तथा अतिसाहसिक प्रयोगोंके अनुसार चलनेके लिए बड़ी ही प्रामाणिकता और निर्भयता-की आवश्यकता है। अवश्य ही इन प्रयोगोंको ठोस होना चाहिए और उन्हे गम्भीर विचारपर आधारित होना चाहिए तथा उनका अभिषेक त्यागपूर्ण जीवनसे किया जाना चाहिए। जिसके मनमें आये वही शिक्षामे इस प्रकारके प्रयोग नहीं कर सकता। शिक्षाका यह क्षेत्र ठोस प्रयोगोंके लिए काफी विस्तृत होनेके साथ-साथ बिना समझे-बूझे जल्दीमें कुछ कर बैठनेकी दृष्टिसे वैसा ही खतरनाक भी है जैसा गढे धनकी खोजमें पागल घूमनेवाले लोगोंका काम।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३०-९-१९२६

४९६. सार्वजनीन घरेलू धन्धा

बंगाल प्रशासनिक सेवाके सदस्य बाबू विजयविहारी मुकर्जीने बंगालके घरेलू धन्धोंपर एक पुस्तिका लिखी है। इसपर उन्हें कलकत्ता विश्वविद्यालयका वीरेश्वर मित्र स्वर्ण-पदक भी दिया गया है। बाबू विजयविहारीके नतीजे तो निर्जीव हैं, लेकिन उनके दिये हुए तथ्य तो देशके सभी हितचिन्तकोके लिए भली-भाँति विचार करने योग्य हैं। उनका महत्त्व और भी अधिक इसलिए है कि जो बात बंगालपर लागू होती है, वही बात प्रायः सारे हिन्दुस्तानपर भी लागू होती है।

> सन् १९२१ की मर्दुमशुमारीके अनुसार, बंगालके १,००० बाशिन्दोंमें केवल ६८ ही शहरोंमें रहते हैं। कलकत्ता, हावड़ा, चौबीस परगना और हुगली जिलोंके बाहर तीन शहर हैं जिनमें ३०,००० से अधिक आदमी रहते हैं . . . इसलिए यह कहना अयुक्त न होगा कि बंगालके अंग्रेजों द्वारा शासित प्रदेशके ४६,६९५,५३६ बाशिन्दोंमें, १३ लाखसे कुछ ही अधिक आदमी शहरी होंगे, बाकीके लोग मुख्यतः गाँवोंमें ही रहते हैं।

इसलिए लेखकका यह कहना स्वाभाविक है कि:

> देशके सम्मुख इस समय यही समस्या सबसे बड़ी है कि गाँवोंको कैसे उन्नत किया जाए और उनके बाशिन्दोंके लिए कमसे-कम उतनी सुख-सुविधाका निश्चित प्रबन्ध कैसे किया जाय जितनी कि भारत जैसे देशमें भी होना आवश्यक है, जहाँ थोड़ेमें ही काम चल जाता है, और गाँवोंको देशके राष्ट्रीय संगठनका एक जीवित अंग कैसे बनाया जाये? सर होरेस प्लन्केटने आयरलैंडके लोगोंसे कहा था कि हमें होमरूल (स्वराज्य)से पहले होम (घर) चाहिए। यह बात जितनी आयरलैंडपर लागू होती है, उतनी ही बंगालपर भी लागू होती है।

गाँवोंमें 'घर' की पुनःप्रतिष्ठा करनेके परम महत्त्वको स्वीकार करते हुए शासन विधिको बदलने या शासन विधिका इस समस्यापर जो असर पड़ता है उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। पुनर्प्रतिष्ठाकी इस योजनामें घरेलू उद्योग केवल सहायक ही नहीं बल्कि परमावश्यक है।

लेखकको यह दिखानेमें जरा भी कठिनाई नही पड़ी है कि निकट भूतमें ही हिंदुस्तान सुखी और उन्नत था। वे एल्फिन्स्टनका यह वाक्य उद्धृत करते हैं:

> **यूनानी यात्रियोंके भारतके उन हिस्सोंके वर्णनसे जहाँ वे गए थे, यही पता चलता है कि इस देशमें जनसंख्या वहुत थी और देश उन्नतिकी चरम सीमापर था।**

यह दिखानेमे उन्हे और भी कम कठिनाई पड़ी है कि इस समृद्धिका मुख्य कारण था हाथ-कताई और हाथ-वुनाईका एकमात्र गृहउद्योग। किन्तु आज हाथ-कताईके उद्योग-को पुनरुज्जीवनकी जरूरत है। हाथ-वुनाई भी एक महत्त्वपूर्ण उद्योग है किन्तु उसपर उतना ध्यान देना आवश्यक नही है।

आज देशमें कोई उल्लेखनीय सुख-समृद्धि है ही नही। तीन चौथाई लोग केवल कृपि-कर्मपर ही निर्भर हैं। ढाका और फरीदपुरमें खेती करने लायक जमीनमें ९२ फीसदी और मिदनापुरमे ७४ फीसदी खेती होती है। ऊपरके तीन जिलोमें फी आदमी औसतन .७२, .७३, .८४ एकड़ जमीन जोती वोई जाती है। अतः अव और खेती वढानेकी गुजाइश वहुत ही कम है। जिसका एकमात्र आवार खेती है, ऐसा कोई भी किसान एक एकड़से कम जमीनसे गुजारा नही कर सकता। सच्चा औसत तो ऊपर दिए गये औसतसे वहुत कम वैठता है, क्योकि इस हिसाबमें धनी जमीदारोकी वहुत वड़ी सीरे भी शामिल हैं।

> **इसलिए यह कोई ताज्जुवकी वात नहीं कि एक वड़े सरकारी अफसरको यह कहना पड़ा है कि इस देशमें आधे लोग यह जानते ही नहीं कि दो बार खाना किसे कहते हैं।**

अकाल-कमीशनने, १८७७–७८ में ही, इस स्थितिकी गम्भीरता यों वताई थी:

> **हिन्दुस्तानमें अकालोंका इतना सर्वनाशी प्रभाव पड़नेका एक मुख्य कारण और अकाल-पीड़ितोंको कुछ वास्तविक सहायता पहुँचानेमें सबसे वड़ी कठिनाई यह है कि अधिकांश लोग कृषिपर ही निर्भर हैं, और ऐसा कोई भी दूसरा धन्धा नहीं जिससे काफी लोगोंकी गुजर होती हो। नियमित वर्षा न होनेके कारणसे मेहनत मजदूरी करनेवाले सभी लोगोंको न केवल ऐसी खाद्य-सामग्रीका ही मिलना, जिसे खरीदना उनकी शक्तिके भीतर हो, बन्द हो जाता है, बल्कि उसे खरीदनेके लिए धन पैदा करनेका उनका एकमात्र रोजगार भी बन्द हो जाता है। कमिश्नरोंका कहना है कि इसकी पूरी दवा यह है कि कृषिके अलावा दूसरे ऐसे धन्धे भी शुरू किए जायें जिनपर मौसमकी भारी तबदीलियोंका कोई असर न पड़े।**

लेखकने यह भी दिखाया है कि अधिकांश किसानोंको सालमें सिर्फ चार महीने ही काम रहता है।

> **क्लर्क, सरकारी अफसर, वकील, डाक्टर, राजनीतिक नेता, शिक्षक और ये सभी लोग जिन्हें अंग्रेजी शिक्षा मिली है, सब मिलाकर भी, सारी आबादीके एक फीसदीके भी बराबर नहीं हैं।**

मैं कह चुका हूँ कि लेखकके नतीजे निर्जीव हैं। इस निर्जीवताका मूल कारण यह है कि उन्होंने सभी प्रकारके सम्भावित घरेलू उद्योगोंको इकट्ठा ले लिया है। गिनानेके लिए यह ठीक है। लेकिन इससे वह समस्या तो हल नही होती जिसे जल्दी ही हल करना जरूरी है। हममें से बहुतसे लोग और गाँवके काम करनेवाले प्राय. सभी, इतने उद्योगोंको देखकर ही घबरा जायेंगे। उनके लिए तो एक ही सार्वजनिक उद्योग होना चाहिए। अब इनमें से एक-एकको जाँचकर छोड़ते चलें तो हम अन्तमे इसी अनिवार्य नतीजेपर पहुँचेंगे कि अगर करोड़ोंके लिए कोई धन्धा है तो वह चरखा चलाना ही है; दूसरा नहीं। इसका मतलब यह नही है कि दूसरे धन्धोंका कोई महत्त्व नहीं है। वे बेकार हैं। सच पूछो तो व्यक्तिगत दृष्टिसे तो दूसरे ही धन्धोमे इससे अधिक आमदनी है। जैसे, घड़ी बनानेका धन्धा बहुत ही रोचक और आमदनी देनेवाला होगा। मगर आखिर इसमें कितने आदमी लग सकते है? क्या यह गाँवके करोड़ों आदमियोंके किसी कामका है? लेकिन अगर गाँवके वे ही आदमी, फिरसे अपने घर आबाद करके अपने पूर्व-पुरुषोंकी तरह रहना शुरूकर अपने बेकार समय का सदुपयोग करने लग जायें तो सभी धन्धे अपने आप ही जी उठेंगे। भूखे लोगोंके आगे तरह-तरहकी कच्ची भोजन सामग्री रखकर उनसे अपने मनकी चीज पसन्द करनेको कहना बेकार है। उनका क्या करें, वे यह सोच ही न सकेंगे, वे सम्भवतः सबसे अधिक लुभावनी चीजपर ही टूट पड़ेंगे और अन्तमें जानसे हाथ धो बैठेंगे। मुझे एक बारकी घटना याद है कि मैं भूखे लोगोंमें भोजन बाँटते समय मरते-मरते बचा था। मुझे पहले अपनी सुरक्षाकी व्यवस्था करके खानेको बन्द जगहमें रखना पड़ा था और मैं तब कहीं उसे बाँट सका था। हम जो बहुत कम प्रगति कर पाते हैं, इसका कारण यह है कि हम लोगोंके सामने धन्धोंकी एक बेतरतीब फेहरिश्त पेश कर देते हैं जब कि हमें जानना यह चाहिए कि सबके लिए केवल कोई एक ही धन्धा सम्भव है। शायद सभी उसे शुरू न करें। जिनमें ताकत हो और इच्छा हो वे बहुत खुशीसे कोई दूसरा धन्धा शुरू करें। किन्तु राष्ट्रकी शक्ति तो केवल कताईके एक ही धन्धेमें लगाई जा सकती है जिसे सभी कर सकते हैं और अधिकांश तो दूसरा कोई धन्धा कर ही नहीं सकते। एक बार देशका ध्यान इस उद्योगके पुनरुद्धारमें लग जानेके बाद हमें खद्दर बेचनेकी फिक्र नही करनी पड़ेगी। खद्दरको सर्वप्रिय बनानेके लिए आज जिस शक्ति और धनका उपयोग होता है, तब उनका उपयोग खद्दरको अच्छा बनाने और उसे अधिक तैयार करनेमें होगा। राष्ट्रकी वर्तमान जड़ताके कारण हम खद्दरके लाभोंको नहीं देख पाते और इसीलिए हम राष्ट्रव्यापी बड़े पैमानेपर कोई प्रयत्न नहीं कर पाते। इतना ही कहना काफी

नहीं है कि हमें अन्य धन्धोंके साथ-साथ हाथ-कताईको भी पुनरुज्जीवित करना होगा। कहना यह चाहिए कि अगर हमें गाँवोंमें घरकी पुनर्प्रतिष्ठा करनी है तो हम सभीको इसी मुख्य धन्धेपर ही ध्यान देना होगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३०-९-१९२६

४९७. पत्र : गोपबन्धु दासको

आश्रम
साबरमती
१ अक्तूबर, १९२६

प्रिय गोपबन्धु बाबू,

श्री एन्ड्रयूज जानेसे पहले आपको पत्र नहीं लिख सके, इसलिए वे मुझसे कह गये हैं कि मैं उनकी ओरसे आपको लिख दूं। वे उड़ीसाके प्रश्नपर मेरे साथ बातचीत कर चुके थे; वे जैसा मैंने आपको बताया था वैसा ही सोचते हैं।[1] मानता हूँ कि आपको मेरा वह पत्र तो मिला ही होगा और आप उसका भावार्थ समझ गये होंगे।

क्या आप अब पहलेसे अच्छे हैं?

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

पण्डित गोपबन्धु दास
"समाज" कार्यालय
पुटा, बी० एन० रेलवे

अंग्रेजी पत्र (सी० डब्ल्यू० ७७३९) से।
सौजन्य : राधानाथ रथ

१. देखिए पत्र : गोपबन्धु दासको, १८-९-१९२६।

४९८. एक पत्र :[1]

आश्रम
साबरमती
१ अक्तूबर, १९२६

प्रिय मित्र,

मेरा खयाल है कि चार्ली एन्ड्रयूज हम दोनोंको समीप लानेके विचारसे ही दक्षिण आफ्रिकाके लिए रवाना होनेसे पहले मुझसे कहते गये थे कि मैं आपको उनका समाचार लिख दूं। जब वे यहाँसे रवाना हुए, तब उनकी सेहत कोई खास अच्छी नहीं थी। मैं तो उन्हें कुछ और समयके लिए अपने साथ रखना चाहता था ताकि उनका स्वास्थ्य थोड़ा अच्छा हो जाये। परन्तु जिस स्टीमरमें जानेके लिए उन्होंने अपना स्थान सुरक्षित करवाया था उसे वह किसी भी हालतमें चूकना नहीं चाहते थे। उनका हृदय दक्षिण आफ्रिकाके दुःखी लोगोंके लिए बेचैन था। इसलिए मैंने उन्हें रोकनेका प्रयत्न नहीं किया।

उम्मीद है कि आप अच्छे होंगे।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९७०८) की फोटो-नकलसे।

४९९. पत्र : एच० एस० एल० पोलकको

आश्रम
साबरमती
१ अक्तूबर, १९२६

प्रिय हेनरी,

यह पत्र मिली और तुम्हारे दोनोंके लिए है, क्योंकि चार्ली अपनी आदतके मुताबिक मुझसे कहते गये थे कि मैं तुम दोनोंको उनका समाचार दे दूँ। वे शायद मुझसे तुम्हारे सामने इस बातकी ताईद कराना चाहते हैं कि भारतके प्रति उनका प्रेम आज भी उतना ही है जितना पहले था और भारतके लिए उनका प्रेम इंग्लैंडके प्रति उनके प्रेमसे जरा भी कम नहीं है; और उनका प्रेम मानवताके प्रति भी उतना ही व्यापक और गहरा है। वे जिस समय यहाँसे रवाना हुए उनकी तबीयत ठीक नहीं थी, लेकिन उन्होंने किसीकी नहीं सुनी। वे चाहते तो बड़ी आसानीसे पन्द्रह

१. पत्र किसे लिखा गया था; यह ज्ञात नहीं है।

दिन आराम करके दूसरे स्टीमरपर जा सकते थे; लेकिन उनका मन तो दक्षिण आफ्रिकाके लिए बेचैन था। इसलिए मैंने उनसे विशेष आग्रह नहीं किया।

मैं तुम्हारी 'गीता' की प्रतिका पूरा-पूरा उपयोग कर रहा हूँ। इसकी प्रतिलिपि नियमित रूपसे लगभग प्रतिदिन तैयार की जा रही है और काम पूरा होते ही यह अमूल्य ग्रन्थ बीमा और रजिस्ट्री कराके तुमको भेज दिया जायेगा।

तुमने 'गीता' की कुछ अन्य टीकाओंके बारेमें मुझे लिखा है। यदि मुझे कुछ दूसरी टीकाएँ मिलीं तो मैं तुम्हें उनके नाम लिख भेजूँगा।

मुझे उम्मीद है कि तुम दोनों और बच्चे, सैली, मॉड और माँ स्वस्थ एवं प्रसन्नचित्त होंगे। जैसा कि तुम जानते हो, कुछ महीने पहले देवदासका एपेंडिसाइटिसका ऑपरेशन हुआ था। वह इस समय मसूरीमें है और मजेमें है। रामदास अमरेलीमें खादीका काम देख रहा है।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९७०९) की फोटो-नकलसे।

५००. पत्र : एन्ड्रचूज बहनोंको

आश्रम
साबरमती
१ अक्तूबर, १९२६

प्रिय बहनो,

हालांकि मुझे आपके चेहरे याद नहीं पडते, लेकिन मुझे यह बात अच्छी तरह से याद है कि मैं १९१४ मे आपसे बरमिंघममे मिला था। आपके भाई चार्ली यहाँके लोगोंके अधिकाधिक प्रिय बनते जा रहे हैं। सच तो यह है कि वे जितने अंग्रेज हैं उतने ही भारतीय भी बन गये हैं। उन्होंने स्वेच्छया लोगोंकी सेवा करनेका जो व्रत लिया है, उसे पूरा करनेके लिए वे अब दक्षिण आफ्रिका जा रहे हैं। उनके दक्षिण आफ्रिका रवाना होनेसे पहले मैंने उनके साथ बड़े सुखके चन्द दिन बिताये थे। आपको जब भी फुर्सत मिले, आप मुझे इस पत्रके उत्तरमे एकाध पंक्ति अवश्य लिखें और बतायें कि आप कैसी हैं?

हृदयसे आपका,

एन्ड्रचूज कुमारियाँ
आर्डले
ब्रेज लेन, कोवेन्ट्री
इंग्लैंड

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९७१०) की फोटो-नकलसे।

५०१. पत्र : बापूभाईको

आश्रम
भाद्रपद बदी १०, १ अक्तूबर, १९२६

भाईश्री वापूभाई,

आपका पत्र मिला : मैं अपना जन्मदिन तो नही जानता। हाँ, चरखा द्वादशी[1] जानता हूँ। उस दिन सब लोग सारा दिन सूत कातें और रोज सूत कातनेकी प्रतिज्ञा लें तथा खादी न पहनते हों तो शुद्ध खादी पहननेकी प्रतिज्ञा ले।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजराती पत्र (एस० एन० १९९५२) की माइक्रोफिल्मसे।

५०२. तार : ए० आई० काजीको

[२ अक्तूबर, १९२६][2]

ठीक नहीं रहेगा।

काजी
कांग्रेस
डर्बन

गांधी

अंग्रेजी तार (एस० एन० १२०२४) की फोटो-नकलसे।

१. भाद्रपदके कृष्ण पक्षकी द्वादशी गांधीजीकी जन्मतिथि, जो गुजरातमें चरखा-द्वादशीके रूपमें मनाई जाती थी।

२. यह तार दक्षिण आफ्रिकी भारतीय कांग्रेसके अवैतनिक महासचिव ए० आई० काजी द्वारा गांधीजीको लिखे १० अक्तूबरके पत्रमें उद्धृत है। पत्रमें तारके दो तारीखको प्राप्त होनेका जिक्र है और उसमें संघ सरकारके शिष्टमण्डलसे गांधीजीकी भेंट तथा २० अक्तूबरको एन्ड्रयूजकी प्रस्तावित यात्राका भी उल्लेख है। श्री काजीने गांधीजीको पत्रके साथ श्रीमती सोफिया भायला बनाम परवाना अधिकारीके मामले के सम्बन्धमें दिये गये न्यायमूर्ति कार्टरके निर्णयकी प्रतियाँ भी भेजी थी। देखिए "दक्षिण आफ्रिकामें अनिश्चित स्थिति" ४-११-१९२६।

५०३. पत्र : लालताप्रसाद शादको

२ अक्तूबर, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र और पुस्तकें मिली। मैं अंग्रेजी पुस्तकको पढ़कर वापस तो तुरन्त कर दूंगा, लेकिन उसे पढनेमें मुझे थोड़ा समय लगेगा। मेरी कठिनाई जितना आप सोचते हैं, उससे कही ज्यादा वुनियादी है। लेकिन चाहे जितनी वुनियादी होनेके वावजूद वह उतनी गम्भीर नही है जितनी कदाचित् आप सोचते हैं। मैं गुरुकी खोजमें इसलिए हूँ कि अपनी अल्पज्ञताका ज्ञान मुझे नम्र वनाये हुए है और गुरुकी खोज प्रत्येक ईश्वरभीरु व्यक्तिके लिए एक वुद्धिसंगत आवश्यकता है। मनोवाछित गुरु मिले या न मिले, पर उसकी खोजका यह प्रयास अपने-आपमें एक उपलब्धि है और वह अपने-आपमें सन्तोपकारक भी है। कुछ लोगोंको अपना मनोवाछित गुरु मिल भी जाता है। लेकिन अगर उन्हे इस जन्ममे गुरु न मिल पाये तो यह कोई वहुत विचारणीय वात नहीं है। खोज पूरी निष्ठा और लगनके साथ की जाये, इतना ही काफी है। मैं निष्ठापूर्वक इस वातमे विश्वास करता हूँ कि यदि प्रयासमें ईमानदारी और दृढ़ता होगी तो जव भी मुझमें गुरुकी प्राप्तिकी पात्रता आ जायेगी तव मुझे गुरुके पास नही जाना पडेगा; मेरा गुरु स्वयं मेरे पास आ जायेगा। इसलिए मैं जैसा हूँ उसीमे मुझे सन्तोप है और शास्त्र ऐसे सन्तोपका यथेष्ट समर्थन करते हैं। इसलिए यदि मैं आपके सुझावके प्रति विशेप उत्साह प्रकट न करूँ और आगरा न जा पाऊँ तो मुझे उम्मीद है, आप इसे मेरी उदासीनता न मानेंगे। लेकिन अपनी यात्राके दौरान मुझे जव कभी आगरा जानेका अवसर मिलेगा तव मैं उस संस्थाको अवश्य देखना चाहूँगा जिसका आपने वर्णन किया है। मैं चाहता हूँ आप मुझे इसके वारेमें और जानकारी भी भेजे। आगरामे जो संस्था है उसके जैसी ही एक संस्था पवनामें भी है और उसके वारेमे मैं जानता हूँ। उसके वारेमें मैंने देशवन्धुसे काफी विस्तारसे वातचीत की थीं। उन्होने उसके वारेमें निस्सन्देह वहुत उत्साह प्रकट किया था। ठाकुरमे उसकी अत्यधिक आस्था थी और उनके प्रति सम्मान भाव होनेके कारण ही मैं जव पवना गया तो सत्सग मठमे जाकर ठाकुर, उनकी माँ तथा मठके निवासियोसे भी मिला था। लेकिन मुझे आपको यह वता देना चाहिए कि ठाकुरमें और उस संस्थामे मैंने जो-कुछ देखा उससे मैं तनिक भी प्रभावित नही हुआ। और फिर उसके वाद भी मैंने सस्थाके वारेमे जो-कुछ सुना है उससे मठके प्रति सम्मान पैदा नही होता। मुझे जो जानकारी दी गई है, हो सकता है, वह विलकुल गलत हो। लेकिन

मैंने उसके बारेमें जो-कुछ सुना है और जो-कुछ मैं जानता हूँ, वही मैं आपको बता रहा हूँ।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत लालताप्रसाद शाद
कायस्थ मुहल्ला
अजमेर

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९७११) की फोटो-नकलसे।

५०४. पत्र: आर० बी० ग्रेगको

आश्रम
साबरमती
२ अक्तूबर, १९२६

प्रिय गोविन्द,

मुझे 'गोल्डन डिलीशियस' सेबोंकी पेटी यथासमय मिल गई थी। सेबोंके पार्सलके लिए कृपया स्टोक्सको मेरी ओरसे धन्यवाद देना। वे खानेमें सचमुच बहुत स्वादिष्ट थे। देखनेमें वे 'गोल्डन' नहीं लगते थे। मैं उन्हें दाँतोंसे चबा नहीं सका, इसलिए मुझे तो वे पकाकर ही खाने पड़े। मैंने दो सेब खाए। बाकी सेब रोगियों और ऐसे व्यक्तियोंमें बाँट दिये गये जिन्हें आप और स्टोक्स भी उनके योग्य समझते।

मैं जानता हूँ कि अभी मैंने तुम्हारे पिछले पत्रोंका उत्तर नहीं दिया है। मैं तुम्हें काफी लम्बा पूरा उत्तर भेजना चाहता हूँ। इसीलिए मैं देर कर रहा हूँ। एन्ड्रयूज चले गये हैं। यात्राकी दृष्टिसे उनकी तबीयत कोई खास अच्छी न थी, लेकिन वे आसानीसे माननेवाले व्यक्ति नहीं हैं। इसलिए मैंने उनसे न जानेका विशेष आग्रह नहीं किया।

श्री आर० बी० ग्रेग
मार्फत श्री एस० ई० स्टोक्स
कोटगढ़
शिमला हिल्स

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९७१२) की फोटो-नकलसे।

५०५. पत्र : गोरक्षा मण्डल, वाईको

आश्रम
सावरमती
२ अक्तूबर १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। कृपया लिखे कि रुई कितने सदस्योंको और कितनी चाहिए; यह भी वतायें कि वे कितने अकका सूत कातते हैं। क्या वे कुशल कातनेवाले हैं? क्या वे सूतकी मजवूती और समानताकी साधारण परीक्षाओंमें उत्तीर्ण हो सकते हैं? क्या वे इतने गरीव हैं कि रुई नही खरीद सकते? क्या वे धुनाई जानते हैं? अगर नही तो उनके लिए पूनियाँ कौन वनाता है? इन सवका उत्तर पानेपर ही मैं किसी निश्चयपर पहुँच सकूँगा।

हृदयसे आपका,

गोरक्षा मण्डल, वाई

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९७१३) की माइक्रोफिल्मसे।

५०६. पत्र : मोतीबहन चोकसीको

[सावरमती]
भाद्रपद वदी ११ [२ अक्तूबर, १९२६][1]

चि० मोती,

तुम्हारा पत्र मिला। वहाँ सेवा करना तुम्हारा मुख्य धर्म है और उसमे तुम्हें पूर्ण सुख मिलेगा। अपने स्वास्थ्यकी चिन्ता रखना।

तुम्हे अपने अक्षर सुधारने चाहिए। आज मणिकी वर्षगाँठ थी। वह अपने-आप मेरे पास आकर ये तीन व्रत ले गई है, झूठ न वोलूँगी, शोर न करूँगी और सुवह चार वजे उठूँगी। वच्ची अपने व्रतोका पालन कवतक करती है, मुझे यह देखना है।

वापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (एस० एन० १२१३७) की फोटो-नकलसे।

१. डाककी मुहरसे।

५०७. मढडा आश्रम

मैंने लगभग एक वर्ष पहले 'नवजीवन' में[1] मढडा आश्रमके प्रबन्धकी ओर संकेत किया था, क्योंकि मेरे पास उसके बारेमें शिकायत आई थी। मढडा आश्रमके बारेमें मैंने भाई शिवजीके साथ पत्र-व्यवहार किया और उसके हिसाबकी जाँच करनेके लिए प्रतिनिधि भेजा। प्रतिनिधिने हिसाबकी जाँच की; लेकिन प्रबन्धकी कुछ बहियोंको, भाई शिवजीने ऐसा कहकर दिखानेसे इनकार कर दिया कि ये निजी सम्पत्तिके सम्बन्धमें हैं।

भाई शिवजीके चरित्रके बारेमें मेरे पास भारी आरोप आये। मैंने भाई शिवजीको उनसे अवगत कराया। उसकी उन्होंने जाँच करनेकी अनुमति दी। आरोप लगानेवाले सब उत्तरदायी व्यक्ति थे। इस बारेमें भाई शिवजी स्वयं मुझसे आश्रममें मिले। उन्होंने उन आरोपोंको स्वीकार किया। इससे मुझे गहरा आघात पहुँचा। मैंने भाई शिवजीको परिषद्से त्यागपत्र देने और उनके हाथमें जो संस्था थी उसे छोड़नेकी सलाह दी। उन्होंने त्यागपत्र तो दे दिया; लेकिन संस्था नहीं छोड़ी। मैंने परिषद्की कार्यकारी-समितिके आगे भाई शिवजीके साथ हुई बातचीत रखी और मेरे मतानुसार सार्वजनिक सेवकका क्या धर्म होता है, वह समझाया। मैंने सदस्योंसे प्रार्थना की कि वे मेरी बात किसीके आगे प्रकट न करें।

मुझे एक वक्तव्य समाचारपत्रोंमें देना ही चाहिए, यह बात मैंने भाई शिवजीसे कही। उन्होंने मुझे रोका और मुझसे मिलनेकी इच्छा व्यक्त की। मैंने उनसे बातचीत की। भाई शिवजीको लगा कि मैंने उनके साथ घोर अन्याय किया है। मैंने उन्हें शान्त करनेका प्रयत्न किया; किन्तु मैं उसमें असफल रहा। वे कहते हैं कि उन्होंने जो दोष स्वीकार किये थे, वे गुस्सेमें स्वीकार किये थे। वे मानते हैं कि उनके साथ बातचीत करते समय मैं उत्तेजित था। मैं उत्तेजित था इससे वे भी उत्तेजित हो गये और उन्होंने उलटे-सीधे उत्तर दिये। उनकी इस मान्यताके कारण मैंने उन्हें सुझाव दिया कि मैं इस मामलेको पंचोंके आगे रखनेके लिए तैयार हूँ। यदि पंच मेरा पक्ष सुनकर मुझे भ्रमित मानें और मुझे वैसा समझा सकें तो मैं अपनी भूल सार्वजनिक रूपसे स्वीकार करूँगा और क्षमा माँगूँगा। अगर मुझे पंचोंका निर्णय मान्य न हुआ तो भी यदि वे मुझे इस बारेमें चुप हो जानेके लिए कहेंगे तो मैं चुप हो जाऊँगा।

यह बात भाई शिवजीको स्वीकार नहीं हुई। उन्होंने मुझे पंचनामा लिख भेजा जिसपर हस्ताक्षर करनेसे मैंने इनकार कर दिया। इसलिए अब अपनी प्रतिज्ञानुसार मुझे उपयुक्त तथ्य प्रकाशित करने होंगे। मेरी ओरसे भाई शिवजीके प्रति कोई अन्याय न हो, इसलिए जितना सम्भव हो सका है मैंने उतना समय दिया और उनकी दलीलको

१. देखिए खण्ड २६, पृष्ठ ४४८-५०। शिवजी मढडा आश्रमके संचालक व व्यवस्थापक थे।

समझनेका प्रयास किया है। उनके मित्रोंने मुझे तीखे-मीठे पत्र लिखे है और भाई शिवजीकी निर्दोषताका समर्थन किया है। मैंने उन सव पत्रोंको ध्यानपूर्वक पढ़ा है। लेकिन मुझे खेदके साथ यह कहना ही चाहिए कि मेरे ऊपर उन पत्रोंका प्रभाव प्रतिकूल ही हुआ है। भाई शिवजीसे जव मैं मिला था तव मैं क्रोधमें अथवा आवेशमें था, इसका मुझे तनिक भी स्मरण नहीं। मुझे आसानीसे क्रोध नही आता। भाई शिवजीने मेरे पास जो स्वीकारोक्ति की थी वह आवेशमें की थी, ऐसी छाप भी मुझपर नही पडी है। मेरी मान्यता है कि मढडा आश्रम और खानगी मिल्कियत परस्पर इतनी मिली-जुली है कि उसका हिसाव दिखाना भाई शिवजीका धर्म था और है। भाई शिवजीने जो गम्भीर स्वीकारोक्ति की है वह उनके चारित्र्यके प्रति सन्देह उपजानेवाली है। इसमे जो दोप आता है वह किसी भी सेवकमें नही होना चाहिए।

जो मनुष्य विधवाओं, युवकों और युवतियोंका आश्रम चलाता है उसका आचरण सामान्य मनुष्योंकी अपेक्षा अधिक ऊँचा होना चाहिए। उसका जीवन खानगी नही रह सकता। जनताको उसके समस्त जीवनको जाननेका अधिकार है, ऐसा मेरा निश्चित मत है। और भाई शिवजी जनताके सेवक है और उन्होंने युवकों तथा युवतियों एवं विधवाओंका आश्रम चलाया है। मढडा आश्रममे अनेक प्रवृत्तियाँ चलती है। इसीसे मैंने भाई शिवजीके वारेमें की गई अपनी जाँचका आवश्यक अंश मात्र अत्यन्त दु:ख-पूर्वक, परन्तु कर्त्तव्य समझकर प्रकाशित किया है।

भाई शिवजी तथा उनके मित्रोंको इससे दु.ख पहुँचेगा। मैं उनको इतना ही विश्वास दिला सकता हूँ कि उन्हें मेरे इस लेखसे जो दु:ख पहुँचेगा उससे कही अधिक दु.ख मुझे उनके व्यवहारसे हुआ है और अव भी होता है। इस जगतमें मैं किसीको भी चरित्रहीन अथवा गिरा हुआ नही देखना चाहता। एक मनुष्यके भी पतनसे मुझे शर्म आती है। मै एक मनुष्यके पतनमे समाजका पतन मानता हूँ। यदि यह लेख लिखे विना काम चल सकता तो मै अवश्य चुप हो जाता। ऐसी वातोंमे मुझे चुप रहना ज्यादा प्रिय है। लेकिन हमेशा जो प्रिय होता है, वह मनुष्यको कहाँ प्राप्त होता है?

भाई शिवजीको मै अपना सच्चा मित्र मानता हूँ। मै यह लेख लिखकर ही अपना कर्त्तव्य पूरा हुआ नही मानता। उन्हें मैंने वहुत समय दिया है। यदि अव भी आवश्यक लगे तो उन्हे समय देनेके लिए मै तैयार हूँ। यदि मुझे भाई शिवजीका कोई भी मित्र मेरी भूल वतायेगा तो मैं उसका उपकार मानूँगा, अपनी भूल स्वीकार करूँगा और ऐसा करके प्रसन्नता अनुभव करूँगा।

यदि भाई शिवजी अथवा उनके कोई भी मित्र इस वारेमे उत्तरके रूपमे मुझे कुछ लिखना चाहेगे और यदि उनके लेख मर्यादित होगे तो मै उन्हें पूराका-पूरा प्रकाशित करूँगा। मै उनके मित्रोको इतना ही वताना चाहता हूँ कि यदि एक लाख मनुष्य किसी व्यक्तिको निर्दोप मानें और एक व्यक्ति उसके दोपका प्रतिपादन कर सके तो मेरे लिए एक लाखके प्रमाणपत्र निरर्थक है। मुझे अवतक जो पत्र मिले

हैं वैसे पत्र मुझे प्रकाशित करनेके लिए नहीं भेजे जाने चाहिए। मैं इस उद्देश्यसे ही यह चेतावनी देना आवश्यक समझता हूँ।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ३-१०-१९२६

५०८. सस्ती खादी

प्रान्तीय कमेटीके कोषाध्यक्ष श्री पूंजाभाई हीराभाई सूचित करते है कि ३ अक्तूबरसे १८ अक्तूबरतक रिची रोड, पाडा पोलमें स्थित शुद्ध खादी भण्डारमें खादीका सब माल घटे भावोंपर बेचा जायेगा। कुछ चीजोंके दामोंमे ५० प्रतिशतकी कमी की जायेगी; लेकिन जो कमसे-कम कमी होगी वह छः प्रतिशत होगी। काठियावाड़की मोटी खादी ८ आनेके बजाय ४ आने गज बेची जायेगी। कमीजो और कुर्तोंके लायक खादी ६ आनेके बजाय ४½ आने गज पड़ेगी। शाल और थैले दुपट्टे २¼ रु० के बजाय १¾ रु० के बिकेंगे: टोपियों बस्तों और निवाड़के दामोंमें १२½ प्रतिशत कमी की जायेगी। यह तो उनकी भेजी सूचीमें से कुछ वस्तुओंके बारेमें ही है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ३-१०-१९२६

५०९. पत्र: घनश्यामदास बिड़लाको

रविवार, भाद्रपद कृष्ण १२ [३ अक्तूबर, १९२६]

भाई घनश्यामदासजी,

आपका खत मीला है।

जब पू० मालवीजी और मेरी रायमें भेद होता है तब मैं निश्चयपूर्वक सलाह नहिं दे सकता हुं क्योंकी मेरा उनसे बड़ा पूज्य भाव है। मेरा तो दृढ़ विश्वास है की कौंसीलमें जाना कमसे-कम आपका कार्य नहीं है। परंतु यदि आपको आत्म-विश्वास है और पू० मालवीजी चाहते हैं तो आप जा सकते हैं। आरंभ कीया हुआ कार्यको सहजमें नहिं छोड़ सकते हैं। अब तो मेरी राय यह है की आपके मित्रोंको आप कुछ भी कहनेसे रोक दें। और यदि आपको बहुमति मीले तो आप चले जायं। बीचमेंसे नीकल जाना ठीक नहिं लगता है। आखरमें तो आप नीकल ही जायंगे। हां यदि आपके स्वास्थ्यके ख्यालसे पू० मालवीजी आपको मुक्ति दें तो बड़ा कल्याण होगा। स्वास्थ्यके ख्यालसे भी आपको एसेंबली या तो काउनसिलमें जाना मैं अनुचित समझता हुं।

आपने जो मुकावला कीया है उससे में सहमत नहि हु।
जमनालालजी यही है।

आपका,
मोहनदास

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ६१३६) की नकलसे।
सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला

५१०. पत्र : मूलचन्द अग्रवालको

सावरमती
३ अक्तूबर, १९२६

भाई मूलचंदजी,

आपका पत्र मिला है। शिक्षकोंका अभिप्राय इस कारण माँगा गया है कि जिससे राष्ट्रीय शिक्षालयोमे सीखनेवाले विद्यार्थियोको खादी सर्विसमें आनेका सुभीता हो जाय। आजकल तो शिक्षा सत्याग्रहाश्रमके द्वारा ही दी जावेगी। अनुभव वताता है कि एक वर्षमें वुननेतक की सव क्रिया और हिसाव-किताव रखना नहीं सीखा जा सकता है। वेतनकी रकम नहीं वतानेका हेतु यह है कि प्रत्येक मित्र अपनी राय स्वतंत्रतया दे सके।

खादी सर्विसमें पड़नेके वाद तो आठ घंटेका काम रहता है। विद्यार्थी अवस्थामें आश्रमके नियमोंके अनुकूल काम करना पड़ता है। गरीव उमेदवारोंको इतना दिया जाता है कि जिससे कपड़ोका खर्च भी निकल सके।

आपका,
मोहनदास गांधी

श्री मूलचंदजी
अध्यापक
ए० वी० स्कूल
मानपुर
सी० आई०

मूल पत्र (जी० एन० ८३०) की फोटो-नकलसे।

५११. पत्र: बनारसीदास चतुर्वेदीको

साबरमती
भाद्रपद कृष्ण १२ [३ अक्तूबर, १९२६][1]

भाई बनारसीदासजी,

आपका दूसरा लेख मिला है। आप मुझे बताइये कि कब मैंने कबूल किया था कि ५०० मजदूरोंको ब्रि० गियाना भेज देनेके प्रयोग करनेके बारेमें जो-कुछ मैंने कहा था वह मेरी गल्ती थी। मुझे इसका स्मरण नहीं है। मैंने जो-कुछ कहा है उस लेखको आप भेज सकें तो भेज दें। उसीके साथ आपके लेखको भी मैं प्रगट करूंगा।

आपका,
मोहनदास

श्री बनारसीदासजी चतुर्वेदी
फीरोजाबाद
ई० आई० आर०

मूल पत्र (जी० एन० २५६६) की फोटो-नकलसे।

५१२. पत्र: कल्याणजी वि० मेहताको

भाद्रपद वदी १४, १९८२ [५ अक्तूबर, १९२६][2]

भाईश्री ५ कल्याणजी,

मैंने आपको मणिभाईके विषयमें एक पत्र लिखवाया था। मैं चाहता हूँ कि आप उसका उत्तर तत्काल दे दें। इस सम्बन्धमें स्वयं मणिभाई भी चिन्तित हैं।

बापू

भाईश्री कल्याणजी विट्ठलभाई मेहता
स्वराज्य आश्रम
बारडोली

गुजराती पत्र (जी० एन० २६७९) की फोटो-नकलसे।

१. डाककी मुहरसे।
२. डाककी मुहरमें साबरमती, ६-१०-१९२६ है; लेकिन भाद्रपद बदी १४, ५ अक्तूबरको थी।

५१३. पत्र : पुरुषोत्तम पटवर्धनको[1]

भाद्रपद वदी १४, १९८२ [५ अक्तूबर, १९२६]

भाई अप्पा,

आपका पत्र मिला। कलेंडरकी कल्पना मुझे पसन्द है। कुछ विचार ये हैं:

हाथकते सूतकी, हाथसे बुनी खादी पहनना हमारा धर्म है क्योंकि उससे हमारे लाखों-करोड़ों भाईबहनोंको जो कोई धन्धा न मिलनेसे भूखों मरते हैं, जीविका तथा भोजन मिलता है।

सूत कातना हम सबका धर्म है, क्योंकि जबतक हम सूत नहीं कातेंगे तबतक भारतके गरीबोंको सूत कातनेपर और हमपर विश्वास नहीं होगा।

यद्यदाचरति[2] आदि।

सूत कातनेसे हम उद्यमी बनेंगे और सूतकी किस्म सुधरेगी जिससे अन्ततः सूत सस्ता होगा।

हमारे खादी पहननेसे विदेशी कपड़ेका बहिष्कार होगा और उससे हममें आत्म-विश्वास उत्पन्न होगा, हमारी शक्ति बढ़ेगी तथा देशके कमसे-कम ६० करोड़ रुपये देशमें बचेंगे।

इनके अतिरिक्त अन्य विचार आप स्वयं बना सकेंगे।

अब्दुल्ला भाई तो स्वास्थ्य ठीक होनेपर ही आयेंगे।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (एस० एन० १९९५३) की माइक्रोफिल्मसे।

५१४. पत्र : बलदेव शर्माको

आश्रम
साबरमती
६ अक्तूबर, १९२६

प्रिय मित्र,

आश्रमके अधीक्षकको भेजा गया आपका पत्र मैंने पढ़ा है। क्या आप जानते हैं कि आश्रममें मुख्य काम तो शरीर-श्रमका ही है? क्या आप निरन्तर चरखा कातने अथवा करघेपर काम करने या सफाई, जैसे कि सड़कें साफ करना, मैलेकी

१. अप्पा साहब पटवर्धन।

२. यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥ ३-२१, गीता।

बाल्टियाँ साफ करना आदि-आदि करनेको तैयार हैं? क्या आप ब्रह्मचारीका जीवन व्यतीत कर सकते हैं और क्या आप गरीबीमें जीवन बितानेकी प्रतिज्ञा ले सकते हैं? क्या आपका स्वास्थ्य अच्छा है? अगर इन प्रश्नोंके आपके उत्तर सन्तोषजनक हैं, मैं कहूँगा कि फिलहाल तो आश्रममें बहुत ज्यादा लोग हैं लेकिन जैसे ही आश्रममें स्थान होगा आपको जाँचके विचारसे भरती कर लिया जायेगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत बलदेव शर्मा
"अमृतधारा"
लाहौर

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९७१४) की माइक्रोफिल्मसे।

५१५. शाकाहार

पत्र-लेखकका जन्म एक मांसाहारी कुटुम्बमें हुआ है। उन्होंने मांस खानेके बारेमें माता-पिताके दबावको अभीतक तो नहीं माना है; किन्तु उनका कहना है:

> एक पुस्तकमें जो मेरे सामने है, स्वामी विवेकानन्दका इस विषयमें मत पढ़कर मेरा विश्वास डिग रहा है। स्वामीजी मानते हैं कि वर्तमान स्थितिमें हिन्दुस्तानियोंके लिए मांसाहार आवश्यक है और वे अपने मित्रोंको बिना हिचके मांस खानेकी सलाह देते हैं। वे तो यहाँतक कहते हैं—'अगर इससे तुम्हें कोई पाप भी लगे तो तुम उसे मेरे सिर डाल देना। मैं उसका फल भोग लूँगा।' मैं किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया हूँ। मेरी समझमें नहीं आता कि मांस खाऊँ या न खाऊँ।

दूसरेकी बातको प्रमाण माननेका ऐसा अन्धविश्वास दिमागकी कमजोरीका चिह्न है। अगर पत्र-लेखकका दृढ़ विश्वास हो कि मांस खाना अनुचित है तो फिर वे सारे संसारकी उसके विरुद्ध राय होनेपर भी क्यों डिगें? अपने विश्वास निश्चित करनेमें जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए; किन्तु एक बार निश्चित कर लेनेके बाद, बड़ीसे-बड़ी कठिनाई आनेपर भी दृढ़ रहना ही चाहिए।

मैंने स्वामीजीका लेख तो नहीं देखा है, किन्तु मुझे लगता है कि पत्र-लेखकने हवाला ठीक ही दिया होगा। मेरी राय सभी बखूबी जानते हैं। किसी भी देश या जलवायु और किसी भी स्थितिमें, साधारणतः जहाँ मनुष्योंके रहनेकी कल्पना की जा सकती है, मेरी समझमें हम लोगोंके लिए मांसाहार करना आवश्यक नहीं है। मेरा विश्वास है कि मनुष्य जातिके लिए मांसाहार अनुपयुक्त है। अगर हम पशुओंसे अपनेको ऊँचा मानते हैं तो फिर उनकी नकल करना हमारी भूल है। यह बात अनुभवसिद्ध है कि जिन्हें आत्मसंयम इष्ट हो, उनके लिए मांसाहार अनुपयुक्त है।

किन्तु चरित्र-गठन अथवा आत्मसयममे भोजनके महत्त्वको बहुत बड़ा स्थान देना भी गलत होगा। इनपर भोजनका प्रबल प्रभाव पड़ता है, अतः उसके सम्बन्धमे उपेक्षा न की जानी चाहिए। मगर जिस प्रकार भोजनमे किसी प्रकार सयम न रखना और सब-कुछ खाना-पीना अनुचित है, उसी प्रकार सभी धर्म-कर्मका सार भोजनमें ही मान बैठना भी, जैसा हिन्दुस्तानमें प्राय· होता है, अनुचित है। शाकाहार हिन्दू धर्मकी एक अमूल्य देन है। इसे पर्याप्त विचार किये बिना नहीं छोड़ना चाहिए। इसलिए इस भ्रमका सशोधन करना परमावश्यक है कि शाकाहारने हमें मन अथवा देहसे *दुर्बल बना दिया है या हम कार्यकी दृष्टिसे निष्क्रिय अथवा जड़ हो गये है*। हिन्दू धर्मके बड़े-बड़े सुधारक अपने-अपने जमानेके बड़ेसे-बड़े कर्मठ पुरुष हुए है। जैसे शकर या दयानन्दके जमानेका कौन पुरुष उनसे अधिक कर्मशीलता दिखा सका था?

लेकिन पत्र-लेखक भाईको मेरी बातको प्रमाण नहीं मान लेना चाहिए। आहार कोई ऐसी वस्तु नही जिसका निश्चय श्रद्धाके आधारपर करना पड़े। इसका फैसला सभीको अपने आप तर्कके आधारपर ही करना चाहिए। खासकर पश्चिमी देशोंमें शाकाहारपर विपुल साहित्य तैयार हो गया है। उसे पढ़नेसे हरएक सत्यशोधकको लाभ ही होगा। इस साहित्यके लेखकोंने कई प्रसिद्ध डाक्टर भी है। हमें यहां हिन्दुस्तानमे लोगोंको शाकाहार करनेके लिए कुछ कहना आवश्यक नहीं हुआ है, क्योंकि यहा तो यह अबतक एक उत्तम और प्रतिष्ठित बात ही मानी जाती रही है। खैर इन भाईके समान, वे दूसरे लोग भी, जिनका मन इस विषयमें डाँवाडोल हो, पश्चिमके देशोंमें इस बढते हुए आन्दोलनके साहित्यका अध्ययन-मनन कर सकते है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ७-१०-१९२६

५१६. वही पुरानी दलील

एक सज्जन हम लोगोंमें फैली हुई बुराइयों तथा जिन कृषि सम्बन्धी सुधारोको वे आवश्यक समझते है, उनका जिक्र करते हुए लिखते है।[1]

यह तो वही पुरानी दलील है। पत्र-प्रेषक महोदय यह बात भूल जाते है कि हिन्दुस्तानको अमेरिका और इग्लैंडकी तरह बनानेके लिए यह जरूरी है कि शोषण करनेके लिए हम कोई अन्य जातियां और देश खोजें। यह स्पष्ट है कि अबतक पश्चिमी राष्ट्रोंने यूरोपके बाहर ससारके सभी देश शोषणके लिए आपसमें बाँट रखे हैं और यह भी स्पष्ट है कि अब खोजनेके लिए कोई नये देश भी बाकी नही है। जो मुल्क पश्चिमी देशों द्वारा शोषित है, उनमें हिन्दुस्तान सबसे बड़ा देश है। निस्सन्देह पूर्वके

१. यहां नहीं दिया जा रहा है। इसमें लेखकने कहा था, हम अब आधुनिक सभ्यतासे, जिसमें जहाज, रेलें, मशीनें और बड़े पैमानेपर उत्पादन सम्मिलित हैं, बच नहीं सकते। अतः हमें उसे अपना लेना चाहिए।

देश जापानका भी इस लूट-खसोटमें भाग है। लेकिन यदि चीन और हिन्दुस्तान शोषित होनेसे इनकार कर दें तो इन शोषणकर्त्ता राष्ट्रोंका क्या हाल हो? अगर चीन और हिन्दुस्तान शोषित होनेसे इनकार कर दें तो उसके फलस्वरूप पाश्चात्य राष्ट्र और जापान मुसीबतमें पड़ सकते हैं, तब फिर हिन्दुस्तानके द्वारा पश्चिमकी नकलके फलस्वरूप उसकी दशा और क्या हो सकती है? निस्सन्देह पश्चिमी देशोंके उद्योग-वाद और परराष्ट्र शोषणकी हद हो चुकी है। अगर ये रोगग्रस्त लोग अपने दोषोंका इलाज करनेमें असमर्थ हैं, तो भला हम नौसिखिए उनसे किस प्रकार बच सकेंगे? हकीकत यह है कि यह औद्योगिक सभ्यता खालिस दोष ही दोष है; और इसलिए एक रोग है। हमको मनोहर शब्दों और फिकरोंसे भुलावेमें नहीं पड़ जाना चाहिए। मेरा तार या जहाजसे कोई विरोध नहीं है। वे अगर उद्योगवाद तथा उससे सम्बन्ध रखनेवाली दूसरी बातोंके सहारेके बिना कायम रह सकते हों तो रहें। वे स्वयं साध्य नहीं हैं। तार और जहाजके लालचमें हमें लूट बरदाश्त नहीं करनी चाहिए। ये मानव-जातिके स्थायी कल्याणके लिए किसी भी प्रकार अनिवार्य नहीं हैं। चूँकि हम भाप और बिजलीका उपयोग जान गये हैं, इसलिए हमें उन्हें उस समुचित अवसरपर, जब हम उद्योगवादसे बचना सीख जायेंगे, इस्तेमाल करनेमें समर्थ होना चाहिए। इसलिए हमारा प्रयत्न जैसे बने वैसे उद्योगवादको समाप्त करना है।

पत्र-लेखकने अनजाने ही उपाय सुझा दिया है; क्योंकि वे स्वीकार करते हैं कि जबकि अन्य अनेक राष्ट्रोंका नाम-निशान मिट गया, भारत अबतक जीवित है; और उसका कारण यह है कि वह अपनेको परिस्थितियोंके अनुरूप ढालता रहा है। अपनेको परिस्थितियोंके अनुरूप ढालना अनुकरण करना नहीं है। उसका अर्थ है खराब बातोंको छोड़कर अच्छी बातोंको आत्मसात् कर लेना। भारत अन्य सभ्यताओंके आक्रमणोंके तूफानोंके सम्मुख इस कारण टिक सका है कि वह अपनी जगहपर दृढ़तापूर्वक खड़ा रहा। यह बात नहीं है कि उसने परिवर्तन स्वीकार न किये हों। किन्तु उसने जो परिवर्तन किये, वे उसके विकासमें सहायक ही हुए। उद्योगवादको स्वीकार करनेका अर्थ सर्वनाशको निमन्त्रित करना है। हमारी वर्तमान तबाही निस्सन्देह असह्य है। यह घोर दरिद्रता मिट ही जानी चाहिए। लेकिन उसका इलाज उद्योगवाद नहीं है। बुराई बैलगाड़ियोंका उपयोग करनेमें नहीं है। वह है हमारे स्वार्थीपन और पड़ोसियोंके प्रति हमारी अनुदारतामें। यदि हममें पड़ोसियोंके प्रति प्रेम नहीं है, तो किसी भी प्रकारकी तबदीली — वह चाहे कैसी क्रान्तिकारी क्यों न हो — हमें लाभ नहीं पहुँचा सकती। और अगर हम अपने पड़ोसियोंके प्रति, यानी भारतके निर्धनोंके प्रति, प्रेमभाव रखते हैं, तो उनकी खातिर हम वही पहनेंगे जो वे हमारे लिए तैयार करते हैं। उनकी खातिर हम, जो परिस्थितिको जानते हैं, पश्चिमसे उसके बढ़िया कपड़े खरीदने तथा उन्हें गाँव-गाँव पहुँचानेके रूपमें नीतिभ्रष्ट व्यापार न करेंगे।

अगर हम गम्भीरता एवं दृढ़तापूर्वक विचार करेंगे तो देखेंगे कि और कोई तबदीली करनेके पहले सबसे बड़ी तबदीली विलायती कपड़ेका बहिष्कार और उसके

स्थानपर प्राचीन घरेलू उद्योग कताईकी स्थापना करना है। हमारा फर्ज है कि अगर हम उद्योगवादका विरोध करना चाहते हैं तो हम इस प्रकार अपने देशके प्राचीन कुटीर उद्योगको उसकी पूर्वस्थितिमें ला दें।

मुझे पूँजीका नही, पूँजीवादका डर है। हमें पश्चिमसे तो यही शिक्षा मिलती है कि सम्पत्तिको केन्द्रभूत न करो: यानी एक अन्य तथा अधिक भयानक प्रजातीय युद्धसे बचो। सम्पत्ति और श्रममें परस्पर विरोध होना आवश्यक नही। मैं ऐसे कालकी कल्पना अपने मनमें नही कर सकता जब कोई भी आदमी दूसरेसे अधिक धनी नही होगा। लेकिन मैं उस दिनकी कल्पना जरूर कर सकता हूँ जब धनिक लोग निर्धनोको लूटकर मालामाल होनेसे घृणा करेंगे और निर्धन लोग धनिकोसे डाह करना छोड़ देंगे। यह दुनिया कितनी ही निर्दोष क्यो न बन जाये, इसमें गरीब और अमीरका फर्क नही मिट सकेगा; लेकिन हम झगड़ों और कटुताको तो अवश्य ही दूर कर सकते हैं और वे हमें दूर करने भी चाहिए। ऐसे बहुतसे उदाहरण मौजूद हैं जिनमें अमीर और गरीब — परिपूर्ण मित्रताके साथ रहते पाये गये हैं। हमें ऐसे उदाहरणोंकी संख्या बढ़ानी-भर है।

भारतका भविष्य पश्चिमके उस खूनी रास्तेपर चलनेसे नही सुधरेगा, जिससे आज पश्चिम थका-सा मालूम होता है, बल्कि शान्तिके उस अहिंसा पथपर चलनेसे सुधरेगा जिसकी प्राप्ति केवल सादे और धार्मिक जीवनसे ही होती है। इस समय खतरा यह है कि कही भारतकी आत्मा नष्ट न हो जाये। उसके नष्ट होनेपर वह जीवित नही रह सकता। इसलिए वह आलसीके समान निरुपाय हो कर यह नही कह सकता कि "मैं अब पश्चिमके इस तूफानसे नही बच सकता।" अपनी और संसारकी भलाईके लिए उसे इस तूफानको रोकने योग्य शक्तिशाली तो बनना ही होगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ७-१०-१९२६

५१७. बालपत्नियोंके आँसू

'बंगालकी एक हिन्दू महिला' लिखती है।[1]

उक्त चित्र बिलकुल यथार्थ अथवा अत्युक्तिपूर्ण है या नही, सो तो नही कहा जा सकता किन्तु बात तत्त्वतः ठीक है। मुझे इसके समर्थनमें साक्षी या प्रमाण खोजनेकी जरूरत नही। मैं एक चिकित्सकको जानता हूँ। उनकी डाक्टरी खूब चलती है। उनकी पहली स्त्री मर गई है। उन्होंने एक इतनी छोटी उम्रकी कन्याके साथ शादी कर ली है जो उनकी बेटी-जैसी लगती है। वे दोनों 'पति-पत्नी' की भाँति

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। इसमें लेखिकाने गांधीजीको हिन्दू समाजकी विवाहिता बालिकाओंका पक्ष लेनेपर धन्यवाद दिया था और दस-दस सालकी दो बालिकाओंके उदाहरण दिये थे, जिनमें से एककी मृत्यु पतिके अत्याचारसे हो गई थी और दूसरीको उसके पतिने वासनाकी तृप्ति न करने देनेपर त्याग दिया था।

रहते हैं। मैं एक दूसरी मिसाल भी जानता हूँ जहाँ एक ६० वर्षके विधुर शाला-निरीक्षकने एक ९ वर्षकी कन्यासे विवाह किया था। हालाँकि सब लोग इस दुष्कृत्यको जानते थे और उसे दुष्कृत्य मानते भी थे, लेकिन वह अपने पदपर बना रहा और सरकार तथा जनता ऊपरी तौरपर उसकी इज्जत भी करती रही। मैं अपनी तथा अपने दोस्तोंकी जानकारीके आधारपर ऐसी और भी घटनाएँ गिना सकता हूँ।

उपरोक्त महिलाका यह कथन ठीक है कि हिन्दुस्तानकी स्त्रियोंमें किसी भी कुप्रथाके विरुद्ध युद्ध करनेकी शक्ति शेष नहीं रह गई है। इसमें शक नही कि समाजकी ऐसी स्थितिके लिए मुख्यतः पुरुष जिम्मेवार हैं। लेकिन क्या स्त्रियाँ सारा दोष पुरुषोंके माथे मढ़कर अपनी आत्माको हल्का रख सकती हैं? क्या पढ़ी-लिखी स्त्रियोंका स्त्रीवर्गके प्रति — तथा पुरुषोंके प्रति भी, क्योंकि वे उनकी जननी हैं — यह कर्त्तव्य नही है कि वे सुधारका काम अपने हाथमें लें? अगर विवाहके उपरान्त वे अपने पतियोंके हाथोंमें कठपुतलियाँ बन जायें और कम उम्रमें ही हीन निकलनेवाले बच्चे पैदा करने लग जायें तो वह शिक्षा जिसे वे पा रही हैं किस कामकी? वे मताधिकार प्राप्त करनेके लिए अवश्य लड़ती हैं। किन्तु इसमें न तो बहुत समय ही जाता है और न कुछ कष्ट ही होता है। वह तो उनके मनबहलावका साधन-भर है। लेकिन ऐसी स्त्रियाँ कहाँ हैं जो विवाहिता और विधवा बालिकाओंके बीच काम करें और जो तबतक न स्वयं चैन लें और न पुरुषोंको लेने दें जबतक बाल-विवाह असम्भव न हो जाये और जबतक प्रत्येक बालिकामें इतना साहस न आ जाये कि वह परिपक्व अवस्थामें अपनी ही पसन्दगीके वरके साथ विवाह करनेके सिवा शेष दशाओंमें विवाह करनेसे इनकार कर सकें?

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ७-१०-१९२६

५१८. इन्हें सन्तोष चाहिए

इस लेखमें वाक्पटुताकी बहार देखिए। 'स्वर्ण-सागरमें सुषुप्त' धनिकोंके ऊपर दो-एक आक्षेपोंको हटा देनेके अलावा, मैंने इसको और कहीं भी संक्षिप्त नहीं किया है।[1]

> मैंने आपका १६ सितम्बरका लेख "विद्यार्थियोंका धर्म" पढ़ा। आप अनिच्छुकोंका नेतृत्व नहीं करना चाहते। . . . आगे आनेवाले सुदिनोंकी याद करके सूत कातना सुखदायक मालूम होता है।
>
> इस बीच आपकी सेना दुःखी होकर अकाल पीड़ितोंके समान आधा पेट खाकर पड़ी-पड़ी जैसे-तैसे किसी प्रकार आलस्यसे जीवन बितानेपर विवश है।
>
> चरखेके लिए वायुमण्डल तैयार करनेकी दृष्टिसे कातनेमें ही सारा समय नहीं खप सकता। . . .मैं सोचता हूँ कि आपके मनके स्वराज्यमें लोगोंको काम

१. अंशतः उद्धृत।

और भोजनके बिना सड़ना नहीं पड़ेगा। हम आपकी शर्तोंपर काम करते हैं और इसलिए हमें आपसे सन्तोष माँगनेका अधिकार है। मैं 'यंग इंडिया' के पृष्ठोंमें इसके उत्तरकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ, क्योंकि जीवनका भार क्षण-क्षण बढ़ता जाता है।

ऐसा मालूम होता है कि पत्रलेखकको व्यंग-विनोदका अच्छा अन्दाज है और इसलिए उन्हें मुझसे सन्तोष पानेकी कोई खास जरूरत नहीं। लेकिन उन दूसरे अपरिवर्तनवादियोंकी जानकारीके लिए, जो शायद इन्हींकी-सी स्थितिमें हैं, किन्तु जिनमें कदाचित् इनके समान हास्यरसका सूक्ष्म ज्ञान नहीं है, मैं यह कहना चाहता हूँ कि अगर मैं किसी ताल्लुका बोर्डमें शिक्षक बनता तो, उसी स्थानपर अड़ा रहकर खद्दरका सन्देश सुनाता और उस स्थानको कोई ऐसा काम मिल जानेपर ही छोड़ता जो अपरिवर्तनवादियोंकी रुचिके अधिक अनुकूल हो, और वह भी उसी हालतमें जबकि मेरे नौकरी छोड़नेसे मेरे मालिकोंको कोई असुविधा न होती। कोई भी ईमानदार कार्यकर्त्ता अपने मालिकको न तो मझधारमें छोड़कर नया काम करेगा और न अपने वर्तमान कार्यकी आड़में कोई दूसरा काम करेगा। खैर, पत्रलेखक, बुनना सीखनेका अपना पाठ्यक्रम समाप्त कर सकते हैं। किसी भी अच्छे नक्शे बुननेवालेको १ रुपया रोजकी आमदनी होती ही है। अगर वे होशियार मोची हो जाते तो भी उतना पैदा कर सकते थे। जिसने चरखा आन्दोलनका भाव हृदयगम कर लिया है, उसे तो फिर कभी बेकारी अनुभव करनेकी जरूरत ही नहीं। क्या पत्रलेखकने चरखा-शास्त्रमें विद्वत्ता प्राप्त कर ली है? क्या वे ओटना और धुनना जानते हैं? अगर जानते हैं तो धुनाई और ओटाईसे वे अठन्नीसे लेकर एक रुपया रोजतक कमा सकते हैं। मगर अब हालमें ही खादी-सेवक-संघ बनने जा रहा है। जो गरीब होनेपर भी काम करनेके इच्छुक हैं वे उस सेवाके लिए लियाकत पैदा करनेपर अपना गुजारा कर सकते हैं। उन ईमानदार लोगोंके लिए इसमें उन्नतिके लिए अपार अवकाश है, जो शरीर-श्रम करनेसे नहीं घबराते, जिन्हें साधारण गुजर-खर्चसे ही सन्तोष है और धन या नामकी अभिलाषा नहीं है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ७-१०-१९२६

५१९. भूल-सुधार

२३वीं सितम्बरके 'नवजीवन' में "निष्क्रिय प्रतिरोध, सही और गलत" शीर्षक लेखमें मैंने लिखा था कि वह अखबार, जिसमें से मैंने उद्धरण दिये हैं, एक अमेरिकी मित्रने मेरे पास भेजा है। यह भूल थी। भेजनेवाले सज्जन हिन्दुस्तानी हैं और वे आजकल हिन्दुस्तानमें ही रहते हैं। उन्होंने मेरा ध्यान इस बातकी ओर खींचते हुए मुझे लिखा है कि 'अखबार आपके पास मैंने भेजा था; किसी अमेरिकी मित्रने नहीं। अलबत्ता वह स्वयं मुझे एक अमेरिकी मित्रसे मिला था'। मुझे अपनी इस अनजानेमें की गई भूलपर खेद है। मैंने उसको 'यंग इंडिया' के कागजोंमें रख दिया था और मैं यह भूल गया था कि उसके प्रेषक एक हिन्दुस्तानी भाई हैं।

एक छापेकी भूल

इसी लेखकने १६ सितम्बरके 'यंग इंडिया' में छपे "अनिवार्य भरतीका विरोध" शीर्षक लेखकी अन्तिम पंक्तिमें एक छापेकी भूल बताई है। भूल है, "ईच इज़ अफ्रेड एन्ड ट्रस्टफुल ऑफ हिज़ नेबर," इसमें 'डिस्ट्रस्टफुल' होना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ७-१०-१९२६

५२०. पत्र : जेड० एम० पैरेटको

आश्रम
साबरमती
७ अक्तूबर, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मैं आपका दृष्टिकोण समझता हूँ। लेकिन फिर भी मैं उसे अपना नहीं सकता। मेरा विचार शायद गलत हो, लेकिन मुझे दिन-प्रतिदिन यह एहसास होता जा रहा है कि ठोस सुधार करनेके लिए अखबारोंकी मदद लेनेपर जरूरतसे ज्यादा जोर दिया गया है। आपने अपने पत्रमें जिन-जिन चीजोंका जिक्र किया है वे सभी खामोशीके साथ अधिक संगठित और व्यवस्थित ढंगसे लगातार काम करके कहीं अधिक अच्छी तरह की जा सकती हैं। इसलिए मेरा आपसे यही अनुरोध है कि आप मुझसे कुछ लेखादि पानेका विशेष आग्रह न करें। इसमें मुझे कोई रुचि नहीं है। मैं आपसे यह भी कह दूँ कि मैं 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' का सम्पादन कार्य अब भी कर रहा हूँ, उसका कारण यही है कि यह कार्य पहलेसे ही मेरे हाथमें है अथवा इसे मुझपर लगभग थोप दिया गया था। लेकिन

अगर आज कोई मुझे इस तरहका कोई और काम आरम्भ करनेके लिए कहे, तो मैं साफ इनकार कर दूंगा। मैं चाहता हूँ कि आप मेरी कठिनाई समझें।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९७१५) की फोटो-नकलसे।

५२१. पत्र : डा० मुरारीलालको

आश्रम
७ अक्तूबर, १९२६

प्रिय डा० मुरारीलाल,

आपका पत्र मिला। आपके इस महान् दुःखमें मेरा हृदय आपके साथ है। मुझे मालूम नहीं था कि आपके भाईकी मृत्यु हो गई है। प्रत्येक सार्वजनिक कार्यकर्त्ताको प्रायः ऐसी कीमत चुकानी पड़ती है।

जहाँतक चुनाव सम्बन्धी कटुताकी बात है आप मुझे जितना शक्तिशाली मानते हैं उतना मैं नहीं हूँ। अगर मुझे लगता कि मेरा ऐसा करना उपयोगी सिद्ध होगा तो, विश्वास कीजिए, मैं किसीके अनुरोधकी प्रतीक्षा न करता। जैसे भी होता, मैं पण्डितजी और लालाजीको अपनी बात सुननेपर मजबूर कर देता। लेकिन मैं जानता हूँ कि मैं लाचार हूं, और इसलिए मैं कष्टको हँसते-खेलते सहन करता हूँ।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९७१६) की माइक्रोफिल्मसे।

५२२. पत्र : आर० गंगाधरनको

आश्रम
साबरमती
७ अक्तूबर, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मैं चाहूँगा कि आप समस्यापर एक दूसरे पहलूसे विचार करें। प्रकृतिने हमारे मार्गमें स्त्री-पुरुष भेदके द्वारा . . .[1] आसक्तिका जाल फैला रखा है। अगर हम इस आसक्तिके वशीभूत हो जाते हैं तो हम भौतिकतासे ऊपर नहीं उठ पाते, पर यदि हम इसपर विजय प्राप्त कर लेते हैं तो हम ऊँचे उठ जाते हैं। जिह्वा हमें स्वाद लेने और बोलनेके लिए दी गई है। लेकिन हम इसे जितना

१. साधन-सूत्रमें यह स्थान रिक्त है।

संयमित करते हैं उतनी ही हमारी स्थिति बेहतर होती है और यही बात प्रकृतिकी बहुत-सी चीजोंपर लागू होती है। इसलिए यह कहना गलत होगा कि अपनी ऐन्द्रिय वृत्तिपर अंकुश रखना प्रकृतिके नियमपर अन्धश्रद्धा रखना है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत आर० गंगाधरन
तोपिक निलयम्
वाइकोम

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९७१७) की फोटो-नकलसे।

५२३. पत्र : भवानीदयालको

आश्विन सुदी १, [७ अक्तूबर, १९२६][1]

भाईश्री ५ भवानी दयाल,

आपका पत्र मीला है। मेरा ख्याल ऐसा है की मैंने मेरा अभिप्राय भी भेज दीया है। परंतु भेजा भी है तो भी दुवारा लिखता हुँ।

पुस्तकमे असत्य निंदाका दोपारोपण मैंने किया था यह मेरी भूल थी। ऐसा पुस्तक आरंभसे आखरतक पड़नेसे मुझको प्रतीत हुआ। आपको मैंने अन्याय कीया इसलीये क्षमाप्रार्थी हुं। मैंने आपकी कीस पुस्तक पड़कर यह ख्याल कायम कीया था अब मुझे याद नहिं आता।

अब आपके पत्रका उत्तर देता हुं। ऐतिहासिक दृष्टिसे पुस्तकमे कई त्रुटीया हैं। सब हकीकत यथार्थ नहिं है। मैंने ऐतिहासिक दृष्टिसे उसे नहिं पड़ा। और इस दृष्टिसे पड़कर संशोधन करनेका मेरे पास समय भी नहिं है। बात यह है कि हमारेमे बहोत कम लोगोंको ऐतिहासिक दृष्टिसे लीखनेका महावीरा है। मैंने जो कुछ सत्याग्रह लड़ाई लीखा है वह भी ऐतिहासिक पुस्तक न माना जाय, मैंने मेरा अनुभव और स्मरण ही दीया है। इसलीये आत्मकथामें आपके पुस्तकका उल्लेख करना कठिन और अप्रस्तुत समझता हुँ।

आपका,
मोहनदास गांधी

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ८६५५) से।
सौजन्य : विष्णु दयाल

१. पत्रमें उल्लिखित **आत्मकथा**का प्रकाशन **यंग इंडिया**के १० दिसम्बर, १९२५ के अंकसे प्रारम्भ हुआ था, इसके बादकी अश्विन सुदी १, ७ अक्तूबरको थी।

५२४. एक गश्ती चिट्ठी

आश्रम
साबरमती
८ अक्तूबर, १९२६

मुझे आशा थी कि आप मुझे 'यंग इंडिया'में[1] प्रकाशित खादी-सेवाके नियमोंके मसविदेके बारेमें अपनी राय भेजेंगे। मैं उनको यथाशीघ्र अन्तिम रूपमें प्रकाशित करके उस योजनाको लागू करा देना चाहता हूँ। देरी सिर्फ आपकी सोची-विचारी राय मिलनेकी है। ये नियम १६ सितम्बर, १९२६ के 'यंग इंडिया' में प्रकाशित हैं। जहाँ कहीं जगह खाली रखी गई है, उदाहरणके तौरपर वेतनके बारेमें, वहाँ ऐसा जान-बूझकर किया गया है ताकि सभी स्वतन्त्र रूपसे अपनी बात कह सकें।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत च० राजगोपालाचारी	श्रीयुत डा० पट्टाभिसीतारामैया
,, राजेन्द्रबाबू	,, निरंजन पटनायक
,, गंगाधरराव देशपाण्डे	,, सतीशबाबू
,, कोण्डा वेंकटप्पैया गारू	,, वी० वी० दास्ताने

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १२०७२) की माइक्रोफिल्मसे।

५२५. पत्र : अम्बिकाप्रसादको

आश्विन सुदी २ [८ अक्तूबर, १९२६][2]

भाई अम्बिकाप्रसादजी,

आपका पत्र मीला है। हिंदु मुस्लीम बारेमें कुछ भी मार्ग दर्शक बात कहनेकी योग्यता मेरेमें अब नहिं है। इस बारेमें मेरा मौन ही मेरी सेवा है ऐसा मुझे प्रतीत होता है। इस लीये आप मुझे क्षमा प्रदान करें।

आपका,
मोहनदास गांधी

मूल पत्र (जी० एन० ७४८३) की फोटो-नकलसे।

१. देखिए "खादी कर्मचारी मण्डलके सम्बन्धमें", १६-९-१९२६।

२. पत्रमें उल्लिखित साम्प्रदायिक व राजनीतिक विषयपर १९२६में गांधीजीने मौन रहनेका निश्चय किया था।

५२६. तार : च० राजगोपालाचारीको

साबरमती
९ अक्तूबर, १९२६

राजगोपालाचारी
तिरुच्चङ्गोड (दक्षिण भारत)

आप कह सकते हैं कि जबतक आपका हृदय स्वीकार नहीं करता तबतक आप चुनाव-प्रचार आन्दोलनका संचालन नहीं कर सकते, न समर्थन कर सकते हैं क्योंकि चुनावोंको लेकर आपसी कलहके कारण दिन-प्रतिदिन कटुता बढ़ती जा रही है।

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १२०७२ ए०) की फोटो-नकलसे।

५२७. क्या यह जीवदया है'?–१

अहमदाबाद "जीवदया प्रचारिणी महासभा" की ओरसे मेरे पास एक पत्र आया है। उसके आवश्यक अंश मैं नीचे उद्धृत करता हूँ:

> . . . सेठजी द्वारा अपनी मिलमें लगभग ६० कुत्तोंको गोलियोंसे उड़वा देनेकी इस समय शहर भरमें बड़ी चर्चा हो रही है। बहुतसे दयालु सज्जनोंके हृदयोंको इससे बहुत सन्ताप हुआ है।
>
> हिन्दू धर्मशास्त्रोंमें किसी भी जीवको मारना निषिद्ध है। उनमें कहा गया है कि जीवोंको मारनेसे पाप लगता है। अब यदि इस भयसे कि पागल कुत्ता मनुष्यको काटेगा तो उससे मनुष्योंको हानि पहुँचेगी या अन्य अच्छे कुत्तोंको काटेगा तो पागल कुत्तोंकी संख्या बढ़ेगी, उन्हें मार दिया जाये तो हिन्दू धर्मशास्त्रोंके उपर्युक्त सिद्धान्तकी दृष्टिसे क्या आप इसे उचित मानेंगे? क्या आप ऐसा कह सकते हैं कि इससे उनकी हत्या करने या करवानेवालेको पाप नहीं लगता?
>
> हमारी सभाके (३ सज्जनोंके) शिष्टमण्डलने २८-९-१९२६ को मिलमें सेठजीसे मुलाकात की थी। उस समय बातचीतमें उन्होंने यह कहा कि 'एक

१. यह गांधीजीके गुजरातीमें लिखे गये आठ लेखोंमें से पहला लेख है, ये जिन तारीखोंमें नवजीवनमें छपे थे, उसी क्रमसे दिये गये हैं।

पागल कुत्तेने दूसरे अच्छे कुत्तोंको काट खाया। इसलिए आदमियोंकी सलामतीके लिए मैंने यह काम करना (कुत्तोंको मरवाना) उचित समझा।' इसके अलावा उन्होंने यह भी कहा, 'मैंने जिस दिन यह कृत्य किया, उस दिन रातको मुझे नींद नहीं आई। मैं दूसरे दिन सुबह महात्माजीसे मिला और सारी बात बताकर उनकी सम्मति पूछी।' महात्माजीने कहा, 'इसके सिवा और किया ही क्या जा सकता था?' क्या यह बात सच है? यदि आपने भी यही जवाब दिया हो तो हम लोग इसका क्या अर्थ समझें?

हम आशा करते हैं कि आप इसका समुचित स्पष्टीकरण करेंगे जिससे शहरमें फैली हुई यह चर्चा बन्द हो जाये और हिन्दू धर्मके ऊपर इस आघातसे एक प्रसिद्ध व्यक्तिका आदर्श उपस्थित हो जानेके कारण जीवदयाकी प्रगति अवरुद्ध न हो। और इसलिए यदि आपके विचार बताने योग्य हों तो उन्हें प्रकाशित करें।

यह भी सुननेमें आया है कि अहमदाबाद नगरपालिकाकी बैठकमें आवारा कुत्तोंको खस्सी करनेका प्रस्ताव पेश किया जानेवाला है। क्या यह उचित है? प्रकृतिके बनाये हुए किसी भी प्राणीको इस प्रकार खस्सी करनेमें धार्मिक दृष्टिसे क्या कोई दोष नहीं है? हम आशा करते हैं कि आप इस बारेमें भी सच्चा मार्ग यानी अपने विचार बतायेंगे।

मिल-मालिकका नाम अहमदाबाद तो जानता ही है; किन्तु 'नवजीवन' अहमदाबादके बाहर भी पढ़ा जाता है। इसलिए किसी सिद्धान्तकी चर्चा करनेमें जहाँतक हो सके नाम-ठाम न देनेकी अपनी प्रथाके अनुसार मैंने मिल-मालिकका नाम छोड़ दिया है। जीवदया सभाका उठाया हुआ यह प्रश्न कठिन है। जब यह घटना घटी तभी या उससे भी पहले, इसके तत्त्वकी 'नवजीवन'में चर्चा करनेका मैंने विचार किया था, लेकिन पीछे वह विचार छोड़ दिया। यह पत्र मिलनेपर तो इसकी चर्चा करनेका दायित्व और कर्त्तव्य मेरे ऊपर आ ही पड़ा है।

मिल-मालिकके साथ मेरा मधुर — अगर कह सके तो — मित्रताका सम्बन्ध है। उन्होंने कुत्तोंको मरवानेके बाद, मेरे पास आकर अपनी मनोव्यथा व्यक्त की थी और मेरी सम्मति पूछी थी। उन्होंने मुझसे कहा — "जब सरकार, नगरपालिका और पच लोग, कोई भी मेरा छुटकारा न कर सके, तब मुझे यह काम करना पड़ा।" जिस उत्तरका इस पत्रमें उल्लेख है, मैंने वैसा ही उत्तर दिया था।

बादमें विचार करनेपर भी मुझे अपना उत्तर उचित मालूम होता है।

पागल कुत्तोंको मार डालनेके सिवा, हम अपूर्ण मनुष्योंके पास कोई उपाय ही नहीं है। खून करनेपर उतारू मनुष्यको मारनेका धर्म-संकट कई बार अनिवार्य हो जाता है।

अगर हम शहरोंके आवारा कुत्तोंको रखनेका हठ करेंगे तो उनको हमें खस्सी करना पड़ेगा या फिर मारना होगा। आवारा कुत्तोंके विशेष पिंजरापोल रखना तीसरा

उपाय है। लेकिन वह उपाय, उपाय कहने योग्य नही है। लावारिस गायों-भैंसों तकके लिए भी जहाँ काफी पिंजरापोल नही, वहाँ आवारा कुत्तोंके लिए अलग पिंजरा-पोल खोलनेका विचार मुझे तो बहुत ही कठिन लगता है।

जीवोंको मारनेमें पाप लगता है, इस विषयमें हिन्दू धर्ममें मतभेद सुननेमें नहीं आता। मेरा तो ऐसा मत है कि सभी धर्मोंमें इस सिद्धान्तको स्वीकार किया गया है। सिद्धान्त ढूँढ़ निकालनेमें कोई मुश्किल नहीं होती; सारी मुश्किल केवल उसपर अमल करनेमें ही आती है। सिद्धान्तका अर्थ है अमुक विषयकी पूर्णता। किन्तु अमल करनेवाले हम मनुष्य अपूर्ण हैं। अपूर्णके द्वारा पूर्णका अमल होना अशक्य होनेके कारण, प्रतिक्षण सिद्धान्तके उल्लंघनकी नई मर्यादा बाँधनी पड़ती है। इसी कारण हिन्दू शास्त्रोंमें कहा गया है कि यज्ञार्थ की हुई हिंसा, हिंसा नहीं होती। यह एक अपूर्ण सत्य है। हिंसा तो सभी समय हिंसा ही रहेगी और हिंसा-मात्र पाप ही होगा। किन्तु जो हिंसा अनिवार्य हो जाती है उसे व्यवहार-शास्त्र पाप नहीं मानता। इसलिए व्यवहार-शास्त्रने यज्ञार्थ की गई हिंसाका अनुमोदन किया है और उसे शुद्ध पुण्यकर्म तक मान लिया है।

किन्तु अनिवार्य हिंसाकी व्याख्या नहीं की जा सकती; क्योंकि वह तो देश, काल और पात्रके अनुसार बराबर बदलती रहती है। एक कालमें जो बात क्षन्तव्य मानी जाती है, दूसरे कालमें वही अक्षन्तव्य। दुर्बल शरीरके मनुष्यके लिए पूरे जाड़ेमें शरीरकी रक्षाके लिए लकड़ी या कोयला जलानेमें होनेवाली हिंसा अनिवार्य हो सकती है; किन्तु भर-गरमीमें बिना-जरूरत जलाई गई आग स्पष्ट हिंसा है।

हमने जन्तुनाशक दवाओंका उपयोग करके विषैले कीटाणुओंका नाश करना धर्म स्वीकार कर लिया है। आप जन्तुनाशक दवाको जाने भी दें। बन्द कोठरीमें जहरीली हवा होती है। उसमें जहरीले कीटाणु होते हैं। उस कोठरीको खोलकर उसमें हवा और उजालेको दाखिल करके, हम जहरीले कीटाणुओंका नाश करते हैं। शुद्ध हवा, उत्तम प्रकारकी जन्तुनाशक दवा है।

ऐसे बहुतसे उदाहरण दिये जा सकते हैं। जो नियम ऊपरके उदाहरणोंमें लागू होता है, वही नियम पागल कुत्तोंको मारने या खस्सी करनेमें भी लागू होता है। पागल कुत्तेको मारना तो छोटीसे-छोटी हिंसा है। जंगलमें रहनेवाला, दयाका सागर कोई मुनि, पागल कुत्तेका नाश नहीं करता। उसके पास दूसरी ही रामबाण दवा होती है। वह अपने कृपाकटाक्षसे कुत्तेका पागलपन नष्ट कर देता है। किन्तु वे गृहस्थ शहरी क्या करें, जिन्हें शहर और अपने बालकोंकी रक्षाका धर्म सौंपा गया है, और जिनमें मुनिके आदर्श गुण तो नहीं हैं; किन्तु पागल कुत्तेको मारनेकी शक्ति है? अगर मारते हैं तो पाप करते हैं, नहीं मारते हैं तो महापाप होता है। वे पागल कुत्तेको मरवानेका अल्प पाप करके उसकी अपेक्षा महत् पापसे बचते हैं।

मैं अपनेको अहिंसामय मानता हूँ। अहिंसा और सत्य मेरे दो प्राण हैं। मैं यह मानता हूँ कि मैं उनके बिना जी नहीं सकता। किन्तु मुझे अहिंसाकी महान् शक्ति और मनुष्यकी पामरताका क्षण-क्षणमें अधिकाधिक स्पष्ट रूपसे अनुभव होता रहता

है। दयानिधि वनवासी मुनि भी पूर्णतः हिंसामुक्त नहीं हो सकता। वह अपने प्रत्येक श्वास-प्रश्वासमें हिंसा करता है। यह देह तो हिंसाका स्थान ही है। इसीलिए सर्वथा देह-मुक्तिमें ही मोक्ष और परमानन्द निहित हैं। इसीसे मोक्षके आनन्दको छोड़कर और सभी आनन्द अस्थिर हैं, सदोष हैं।

ऐसा होनेसे हमें हिंसाके कितने ही कड़वे घूंट पीने पड़ते हैं।

परन्तु यही तो आश्चर्य है, यही तो खेदकी बात है कि इस अहिंसा-प्रधान भूमिमें कुत्ते आदिका सवाल भी भयंकर रूप धारण कर सकता है। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि हम अज्ञानके वश होकर आज अहिंसाके नामपर हिंसा कर रहे हैं। पागल कुत्तों या उन कुत्तोंको, जिनके विषयमें यह भय है कि वे पागल कुत्तोंके संसर्गमें आ सकते हैं, मारनेमें पाप भले ही हो, लेकिन उनके अस्तित्वकी वास्तविक जवाबदेही हमारी और हमारे पंचोंकी है। पंच लोगोंको चाहिए कि आवारा कुत्तोंको यों ही नहीं भटकने दिया जाये। लावारिस कुत्तोंको खानेको देना पाप है, इसे पाप माना जाना चाहिए। यदि हम इन लावारिस कुत्तोंको मारनेका कानून बनायें तो उससे हजारों कुत्तोंकी जान बचा सकेंगे। यदि आवारा कुत्तोंको रोटी डालनेवाले जुर्माना देना स्वीकार करें तो भी आवारा कुत्तोंका उपद्रव मिट जायेगा।

जीवदया आत्माका एक महान् गुण है। थोड़ी चींटियों या थोड़ी मछलियों या थोड़े कुत्तोंको बचानेमें ही उसकी इतिश्री नहीं हो जाती; बल्कि उसमें पापतक होता है। मेरे यहां चींटियोंका उपद्रव है। उन चींटियोंके छिद्रोंपर आटा डालनेवाला व्यक्ति आटा डालकर पाप करेगा। चींटीको तो ईश्वर कण देगा। किन्तु उस व्यक्तिके आटा छींटनेसे मुझे और मेरे कुटुम्बको हानि पहुँच सकती है। कोई पंच-संघ कुत्तोंको पिंजड़ेमें बन्द करके मेरे खेतके पास छोड़कर स्वयं भले ही सुरक्षित हो जाये, किन्तु इस तरह कुत्तोंको बचानेका अर्थ होता है, मेरी जानको खतरेमें डालकर कुत्तोंको मारनेसे भी बहुत बड़े पापको मोल लेना।

जीवदयामें विचार, विवेक, उदारता, अभय, नम्रता और शुद्ध ज्ञानकी जरूरत है।

इस हिंसामय जगतमें अहिंसा रूपी तीखी तलवारकी धारपर चलना सहज काम नहीं है। यह धनसे सम्भव नहीं। क्रोध तो अहिंसाका वैरी है और अभिमान है उसे खा जानेवाला राक्षस। इस धर्मके पालनमें कितनी बार हिंसा, अहिंसा-सी जान पड़ती है।

इस जगतमें जो वस्तु जैसी दिखलायी पड़ती है, उसका स्वरूप वैसा ही नहीं होता और जिसका जैसा स्वरूप होता है, वह वस्तु वैसी ही दिखलाई नहीं पड़ती अथवा यदि कोई उसे यथार्थ रूपमें देख सकता है तो करोड़ों वर्षोंकी तपश्चर्याके बाद अन्तमें देख सकता और अनुभव कर सकता है। उसे बता तो कोई नहीं सका है और बता सकता भी नहीं।

या निशा सर्वभूताना तस्या जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः।।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १०-१०-१९२६

५२८. पत्र : वी० ए० सुन्दरम्‌को

१० अक्तूबर, १९२६

प्रिय सुन्दरम्,

मुझे तुम्हारा साप्ताहिक उपहार मिलता रहता है। कभी-कभी सावित्रीसे भी लिखनेको कहो।

तुम्हारा,
बापू

अंग्रेजी पत्र (जी० एन० ३१८१) की फोटो-नकलसे।

५२९. पत्र : कृष्णदासको

आश्रम
साबरमती
१० अक्तूबर, १९२६

प्रिय कृष्णदास,

मुझे गुरुजीसे ही तुम्हारे समाचार ज्ञात हुए। तुमने इधर कुछ समयसे मुझे कोई पत्र नहीं लिखा। क्या कारण है? मुझे अपने स्वास्थ्यके बारेमें विस्तारसे लिखो।

यहाँ इस समय लगभग ३० व्यक्ति मलेरियासे पड़े हैं। काकासाहबके पुत्र, शंकरको हल्का-सा मोतीझारा हो गया है और किशोरलाल फिर अपने पुराने मित्र दमाके शिकार बने हुए हैं। देवदास अभी मसूरीमें ही है।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११७२१) की माइक्रोफिल्मसे।

५३०. पत्र : बी० जी० हॉर्निमैनको

रविवार, १० अक्तूबर, १९२६

प्रिय मित्र,

अगर मैं यह कहूँ कि मेरा आपके नये पत्रके लिए कोई सन्देश भेजना ठीक नहीं होगा तो आशा है कि आप मुझे गलत नहीं समझेंगे।[1] बढ़ती हुई कटुताने मेरा मन दुःखी कर दिया है। समाचारपत्रोंकी बहुलताके साथ कटुता भी बहुत बढ़ती है। इसलिए पिछले कुछ दिनोंसे मैंने समाचारपत्रोंको, विशेषकर नये पत्रोंको, सन्देश भेजना बन्द कर दिया है। अभी दो सप्ताह पहले ही मैंने डा० सत्यपालको उनके नये उपक्रमके लिए सद्भावना सन्देश भेजनेसे इनकार कर दिया था।[2] संयुक्त प्रान्तके एक राष्ट्रवादी साप्ताहिकके साथ भी मैंने यही किया था। यदि ऐसे वक्त में अखबार आरम्भ करनेसे आपको विरत कर सकूँ तो मैं समझूँगा कि मैंने एक सच्चे मित्रका फर्ज निभाया है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ११०१०) की फोटो-नकलसे।

५३१. वसीयतनामा

१० अक्तूबर, १९२६

यह मेरा आखिरी वसीयतनामा है। इसके पहलेके मेरे सारे वसीयतनामे इसके द्वारा रद्द किये जा रहे हैं। मेरे पास मेरी अपनी कोई मिल्कियत नहीं है, फिर भी यदि मेरी मृत्युके बाद किसी वस्तुको मेरी निजी मिल्कियत माना जाये तो मैं सत्याग्रहाश्रमके ट्रस्टियों श्रीयुत् रे[वाशंकर] ज[गजीवन] झवेरी, ब[जाज] जमनालालजी, म[हादेव] देसाई, इ[माम साहब] अ[ब्दुल] का[दिर] बावजीर तथा छ[गन]लाल खु[शालचन्द] गांधीको अथवा मेरे मरणकालके समय और उसके बाद समय-समयपर जो ट्रस्टी होते रहेंगे उन्हें उसका वारिस नियुक्त करता हूँ। मैंने जो-जो पुस्तकें लिखी हैं, जो भी लेख लिखे हैं और इसके बाद जो-जो पुस्तकें अथवा जो लेखादि

१. हॉर्निमैनने १६ अक्तूबरको प्रकाशित होनेवाले इंडियन नेशनल हैराल्डके प्रथम अंकके लिए, गांधीजीका सन्देश मांगा था। उन्होंने यह भी लिखा था कि उनके पत्रकी नीति 'बिल्कुल राष्ट्रवादी होगी और वह भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसका समर्थन करेगा।' (एस० एन० ११००३)।

२. देखिए "पत्र : डा० सत्यपालको", २१-९-१९२६।

लिखूँगा उनका वारिस भी मैं उक्त ट्रस्टियोंको नियुक्त करता हूँ। मैं उन्हें अपनी मृत्युके बाद उन सारी हलचलोंके संचालनका भार भी सौंपता हूँ जिन्हे मेरे मरणके बाद मेरे नामसे चलाना आवश्यक हो जाये। साथ ही उक्त पुस्तकों और लेखों अथवा उनके स्वत्वाधिकारसे जो-कुछ आमदनी होगी तथा मेरी निजी मिल्कियतकी तरह जो-कुछ माना जायेगा उस सबका उपयोग उक्त ट्रस्टीगण सत्याग्रहाश्रमके उद्देश्योंको सफल बनानेकी दृष्टिसे इस रीतिसे करेंगे जो उन्हें उस कार्यकी दृष्टिसे योग्य जान पड़े। यदि न्यासियोंमें से कोई मेरे जीवित रहते हुए अथवा उसके बाद त्यागपत्र दे दे अथवा उसका शरीर छूट जाये तो बाकी बचे हुए ट्रस्टीगणोंको वह सब करनेका अधिकार है जो इस वसीयतनामेकी रूसे करना योग्य हो और यदि वे चाहे तो नये ट्रस्टीकी नियुक्ति भी कर सकते हैं। मैं इस वसीयतनामेमें संशोधन और परिवर्द्धन करनेका अधिकार अपने हाथमें रखता हूँ।

यह वसीयतनामा मैंने अपने होश-हवासमें और अपनी ही मरजीसे साबरमती सत्याग्रह आश्रममें; आषाढ़ सुदी ४, संवत् १८८२ को किया है।

मोहनदास करमचन्द गांधी

गवाह :
देसाई वालजी गोविन्दजी
छोटेलाल जैन

मूल गुजराती (एस० एन० १२२२०) की फोटो-नकलसे।

५३२. पत्र : चन्द्रशंकरको

आश्रम

आश्विन सुदी ४, १९८२, ११ अक्तूबर, १९२६

भाईश्री ५ चन्द्रशंकर,

आपका पोस्टकार्ड मिला। मुझे न तो प्रवृत्तिकी इच्छा है और न निवृत्तिकी। मुझे तो स्वराज्य लेनेकी भूख है और वह तीव्र होती जाती है।

मैं सम्राट् होता तो एक काम और करता। वह यह कि रोगको अपराध समझ रोगियोंको दण्ड देता और ऐसे रोगियोंमें आपका नाम सबसे पहले होता।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजराती पत्र (एस० एन० १९९५४) की माइक्रोफिल्मसे।

५३३. जाति-अभिमान

एक जर्मन भाईने, जो जाति-भेदको दूर करना चाहते हैं, यूरोपके गोरों द्वारा अबीसीनियाई और रिफ लोगोंके ऊपर किये जानेवाले अत्याचारोंपर और अमेरिकाके सयुक्त राष्ट्रमें हब्शियोंके साथ जातिकी उच्चता बनाये रखनेके नामपर अमेरिकामें रोज ही जो अन्याय किये जाते है, उनपर एक लेख भेजा है। उस लेखमें से ये तीन उदाहरण चुन कर देता हूँ:

> अभी-अभी कुछ ईसाई पादरी पवित्र भूमि (जेरूसलेम)की यात्रा करने गये थे। दक्षिण राज्योंके एक काले पादरी सज्जन भी जाना चाह रहे थे; किन्तु चूंकि पादरी उसे अपने साथ ले जाना नहीं चाहते थे, उसका भाड़ा लौटा दिया गया और क्षति-पूर्तिकी रकम चुका कर उन्होंने उससे छुटकारा पाया।
>
> दक्षिण कैरोलिना (संयुक्त राष्ट्र अमेरिका)में एक गोरेने एक मोटर गाड़ी चुरा ली। उसे चार सप्ताहकी कैदकी सजा मिली। उसी न्यायालयने बाइ-सिकिल चुरानेके जुर्ममें एक हब्शीको तीन सालकी कड़ी कैदकी सजा दी। गोरी बालिकापर बलात्कार करनेके अपराधमें डेलोवेयर (संयुक्त राष्ट्र अमेरिका)के एक हब्शीको फांसी दी गई; किन्तु अलबामा (संयुक्त राष्ट्र अमेरिका)में दो गोरोंको एक काली बालिकापर बलात्कार करनेके अपराधमें २५, २५ डालर (लगभग ७८ रुपया) जुर्मानेकी सजा दी गई।

अगर गोरा आदमी जाति-अभिमानके दोषका अपराध करता है तो हम जन्म-अभिमानका। अछूत कहे जानेवाले लोगोंके साथ हमारा बरताव, काले लोगोंके प्रति गोरोंके बरतावसे अच्छा नहीं है। इन उदाहरणोंको यहाँ देनेका मतलब यह है कि पश्चिमकी भौतिक उन्नतिसे उनके आचारमें कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ा है। आचार नीति ही आखिरकार किसी भी सभ्यताकी सही कसौटी है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १४-१०-१९२६

५३४. प्रश्नोत्तर

मैं सहर्ष एक प्रश्नावलीको[1] उत्तरों सहित दे रहा हूँ। जवाब लम्बे नहीं दे पाऊँगा, भले ही आलोचक महोदयको इनसे पूरा सन्तोष न मिले।

१. मैंने जिस बातका समर्थन किया है वह यह है कि जो माता-पिता अपनी लड़कियोंका विवाह कच्ची उम्रमें कर देनेका पाप करते हैं, अगर उनकी लड़कियाँ बालपनमें ही विधवा हो जायें तो उन्हें उनका विवाह करके अपने पापका प्रायश्चित्त कर लेना चाहिए।[2] अगर वे परिपक्व उम्रमें विधवा हों तो पुनर्विवाह करने या विधवा रहनेका निश्चय उन्हें स्वयं ही करना चाहिए। अगर मुझसे पूछा जाये कि इस सम्बन्धमें नियम क्या होना चाहिए तो मैं कहूँगा कि जो नियम स्त्रियोंके लिए हों वे ही पुरुषोंके लिए भी हों। अगर ५० वर्षका विधुर धृष्टतापूर्वक पुनर्विवाह कर सकता है तो उसी उम्रकी विधवाको भी वही अधिकार होना चाहिए। यह दूसरी ही बात है कि मेरी समझमें स्त्री और पुरुष दोनों ही इस अवस्थामें पुनर्विवाह करनेसे पापके भागी बनेंगे। यदि ऐसी किसी भी विधवा या ऐसे किसी भी विधुरका, जिसने सयाना होनेपर अपनी खुशीसे विवाह किया था, पुनर्विवाह करना पाप ठहराया जाने लगे तो मैं इस आशयके सुधारका समर्थन करूँगा।

२. इस विषयमें[3] मैंने जो-कुछ कहा है, उसका अर्थ यही है कि पंचम वर्ण नहीं रहना चाहिए। इसलिए अछूतोंको चौथे वर्णमें ही मिला देना चाहिए। चार वर्णोंका पुनर्गठन करना और उनमें कृत्रिम उच्चता-नीचताको दूर करना और उपजातियोंको समाप्त करना सुधारोंकी दूसरी ही श्रेणीमें आते हैं। सहभोजका अर्थ होता है एक ही थालीमें खाना। मैं अगर विल्गु सालोमन इस्माइल ऐंड कम्पनीका बनाया बिस्कुट खाता हूँ तो इसका अर्थ यह नहीं है कि मैं उनके साथ सहभोज करता हूँ।

३. मैं अपनेको सनातनी हिन्दू[4] इसलिए कहता हूँ कि मैं वेदों, उपनिषदों और पुराणों और सन्त-सुधारकोंकी कृतियोंमें विश्वास रखता हूँ। इस विश्वासके लिए मुझे हरएक वस्तुको जो शास्त्रके नामसे अभिहित हो, आप्त वचन माननेकी जरूरत नहीं है। नीतिके मूल सिद्धान्तोंका जिनसे विरोध होता है, मैं उन सभी बातोंका विरोध करता हूँ। मेरे लिए पण्डितोंकी सभी व्यवस्थाओं या व्याख्याओंको मानना आवश्यक नहीं है। फिर मैं अपनेको सनातनी हिन्दू तभीतक कहता हूँ जबतक साधारण हिन्दू

१. यहाँ नहीं दी जा रही है।

२. प्रश्न गांधीजीके १९-८-१९२६ के **यंग इंडिया**में प्रकाशित "दलित मानवता" शीर्षक लेखसे सम्बद्ध था।

३. इस प्रश्नमें लेखकने पूछा था कि जातीय सुधारोंमें अन्तर्जातीय सहभोजको भी स्थान क्यों न दिया जाये।

४. लेखकने गांधीजीके २६-८-१९२६ के **यंग इंडिया**के लेख "बालविवाहका अभिशाप" का हवाला देकर पूछा था, आप जब हिन्दू धर्म-शास्त्रोंको नहीं मानते तो अपने आपको सनातनी क्यों कहते हैं?

समाज मुझे सनातनी हिन्दू स्वीकार करता है। स्थूल रूपसे हिन्दू वह है जो ईश्वरमें विश्वास करता है, आत्माकी अनश्वरता, पुनर्जन्म, कर्म-सिद्धान्त और मोक्षमें विश्वास करता है और जो अपने दैनिक जीवनमें सत्य और अहिंसाका अभ्यास करनेका प्रयत्न करता है, और जो इसलिए अत्यन्त व्यापक अर्थमें गोरक्षा करता है, वर्णाश्रम धर्मको समझता तथा उसपर चलनेका प्रयत्न करता है।

४. स्वामी दयानन्द विषयक झगड़ेमें मुझे नहीं पड़ना चाहिए।[1]

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १४-१०-१९२६

५३५. शब्दोंका अत्याचार

२३ सितम्बरके 'यंग इंडिया' में प्रकाशित, मेरे लेख "प्रार्थनामें विश्वास नहीं" पर एक भाई लिखते हैं :

> उपर्युक्त शीर्षकके अपने लेखमें आप न तो उक्त लड़केके प्रति न्याय करते हैं और न एक महान् विचारकके रूपमें अपने प्रति। यह सच है कि उस विद्यार्थीके पत्रके सभी शब्द एकदम मुनासिब नहीं हैं, किन्तु उसके विचारोंकी स्पष्टताके विषयमें तो कोई सन्देह नहीं हो सकता। यह स्पष्ट मालूम होता है कि 'लड़का' शब्दसे जो अर्थ समझा जाता है, उस अर्थमें वह लड़का नहीं है। वह २० वर्षसे कम उम्रका हो तो मुझे बहुत आश्चर्य ही होगा। अगर वह कम उम्रका हो तो भी उसका इतना मानसिक विकास तो हो ही चुका है कि उसे यह कहकर चुप नहीं किया जा सकता कि 'बच्चोंको बहस नहीं करनी चाहिए।' पत्रलेखक बुद्धिवादी है; और आप हैं श्रद्धावादी। ये दोनों भेद युगों पुराने हैं और इनका झगड़ा भी उतना ही पुराना है। एककी मनोवृत्ति है—'मुझे कायल कर दो और मैं विश्वास करने लगूंगा।' दूसरेकी मनोवृत्ति है—'पहले विश्वास करो, पीछे कायल अपने आप ही हो जाओगे।' पहला अगर बुद्धिको प्रमाण मानता है तो दूसरा आप्तवाक्यको। आप ऐसा कुछ विश्वास करते हैं कि कम उम्रके लोगोंमें कुछ समयके लिए नास्तिकता आती है और फिर आगे-पीछे उनमें आस्था पैदा हो जाती है। आपके इस विचारके समर्थनमें स्वामी विवेकानन्दका प्रसिद्ध उदाहरण उपलब्ध है। इसलिए आप उस 'लड़के' को—उसीके लाभके लिए—प्रार्थनाका एक घूंट जबरन् पिलाना चाहते हैं। आपके विचारसे प्रार्थनाके दो हेतु होते हैं। पहला हेतु है प्रार्थनाके लिए

१. ९-९-१९२६ तथा २९-७-१९२६के **यंग इंडिया**में प्रकाशित "बालविवाहके समर्थनमें" तथा "अस्पृश्यता रूपी रावण" का हवाला देते हुए पत्रलेखकने लिखा था, क्या आपमें भी वैसी ही असहिष्णुता नहीं है जैसी आपने स्वामी दयानन्द और आर्यसमाजमें बताई है।

प्रार्थना अर्थात् अपनी तुच्छता, अशक्तता और ईश्वर कही जानेवाली उस कल्पित महासत्ताकी शक्तिमत्ता तथा दयालुताको स्वीकार-भर करना। दूसरा हेतु है उपयोगिता अर्थात् जिन्हें शान्ति या सन्तोषकी जरूरत है, उनका शान्ति और सन्तोषके लिए प्रार्थना करना। मैं पहले आपके दूसरे तर्कका ही खण्डन करूँगा। यहाँ आपने प्रार्थनाका विधान कमजोर आदमीके सहारेके रूपमें किया है। जीवनकी कठिनाइयाँ गम्भीर हैं और मनुष्योंकी विवेकबुद्धिको नष्ट करनेकी उनकी शक्ति ऐसी जबर्दस्त है कि बहुतसे लोगोंको कभी प्रार्थना और विश्वासकी जरूरत पड़ सकती है। उन्हें इसका अधिकार है; वे ऐसा करना चाहें तो जरूर करें। लेकिन प्रत्येक युगमें ऐसे कुछ सच्चे बुद्धिवादी हुए हैं और हमेशा होते रहते हैं — उनकी संख्या बेशक बहुत कम होती है — जिन्हें प्रार्थना या विश्वासकी जरूरत कभी नहीं होती। इसके अलावा लोगोंका एक वर्ग ऐसा है जो घोर नास्तिक भले न हो, मगर जो धर्मसे उदासीन अवश्य है।

चूँकि सबको अन्तमें प्रार्थनाकी सहायताकी आवश्यकता नहीं होती, और जिन्हें प्रार्थनाकी जरूरत मालूम होती है उन्हें प्रार्थना करनेका पूरा अधिकार है और सच पूछो तो जरूरत पड़नेपर वे प्रार्थना करते भी हैं, इसलिए उपयोगिताकी दृष्टिसे प्रार्थनाके लिए बलप्रयोगका समर्थन नहीं किया जा सकता। मनुष्यके शारीरिक और मानसिक विकासके लिए अनिवार्य शारीरिक व्यायाम और शिक्षण आवश्यक हो सकते हैं किन्तु नैतिक उन्नतिके लिए प्रार्थना और ईश्वरमें विश्वास वैसे आवश्यक नहीं हैं। संसारके कई बड़े-बड़े नास्तिक बहुत ही आचारवान मनुष्य हुए हैं। मैं समझता हूँ कि आप उनको भी अपनी तुच्छता प्रकट करनेके लिए प्रार्थनाकी जरूरत बतायेंगे। यह आपका पहला ही तर्क है। आपने इस नम्रताको बहुत अधिक महत्त्व दिया है। ज्ञानका सागर बहुत विशाल है और उसके सम्मुख बड़ेसे-बड़े वैज्ञानिकोंको भी अपना छोटापन स्वीकार करना पड़ता है। किन्तु सत्यकी शोधमें उन्होंने बहुत शौर्य दिखाया है। अपनी शक्तिके प्रति उनका विश्वास प्रकृतिके ऊपर पाई अपनी बड़ी-बड़ी विजयोंके समान दृढ़ है। अगर ऐसा न होता तो आज हम सिर्फ उँगलियोंसे जमीन खरोंच कर कन्दमूल खोदते फिरते; बल्कि अभीतक तो दुनियासे हमारा अस्तित्व ही मिट जाता।

हिम-युगमें, जब शीतसे लोग मर रहे थे, जिसने पहले-पहल आगका पता लगाया होगा, उससे आपकी श्रेणीके लोगोंने व्यंगमें कहा होगा — "तुम्हारी योजनाओंसे क्या लाभ? ईश्वरीय शक्ति और कोपके सामने उनका क्या उपयोग?" उसके बाद नम्र पुरुषोंके लिए इस जीवनके बाद स्वर्गके राज्यका वचन दिया गया। इसका तो हमें पता नहीं कि वह उन्हें सचमुच मिलेगा या

नहीं, किन्तु संसारमें तो उनके हिस्सेमें गुलामी ही आई है। अब हम प्रकृत विषयकी ओर मुड़ें। आपका दावा है कि "विश्वास करो। श्रद्धा अपने आप ही आ जायेगी"; यह बिल्कुल सही है, बेहद सही है । इस दुनियाकी बहुत-कुछ धर्मान्धताकी जड़ इसी प्रकारकी शिक्षामें मिलती है। अलबत्ता यदि लोगोंके दिमागमें ये बातें कोई काफी बचपनसे ही डालने लगे और उन्हें वही बात काफी दिनोंतक बार-बार कहता रहे तो उनका विश्वास किसी भी चीजमें जमाया जा सकता है। धर्मान्ध हिन्दू और कट्टर मुसलमान इसी प्रकार तैयार किये जाते हैं। दोनों ही सम्प्रदायोंमें ऐसे थोड़े आदमी जरूर होते हैं जो अपने ऊपर लादे गये इन विश्वासोंसे अप्रभावित रहते हैं। क्या आप जानते हैं कि अगर हिन्दू और मुसलमान अपने धर्मशास्त्रोंको परिपक्व बुद्धि होनेके पहले न पढ़ें तो वे उनके रूढ़ सिद्धान्तोंके प्रति ऐसे अन्धविश्वासी न बनें और उनके लिए झगड़ना छोड़ दें? हिन्दू-मुस्लिम दंगोंकी दवा है लड़कोंकी शिक्षासे धर्मको दूर रखना; किन्तु आप इसे पसन्द नहीं करेंगे, क्योंकि आपकी मनोरचना ही ऐसी नहीं है।

आपने इस देशमें, जहाँ साधारणतः लोग बहुत डरते हैं, साहस, कार्यशीलता और त्यागका अपूर्व उदाहरण दिखाया है। इसके लिए लोगोंके ऊपर आपका बहुत बड़ा ऋण है। किन्तु जब आपके कामोंकी अन्तिम आलोचना होगी, तब कहना ही पड़ेगा कि आपके प्रभावसे, इस देशकी मानसिक उन्नतिमें बहुत बड़ी रुकावट आई है।

अगर २० वर्षीय किशोर 'लडका' नही है तो कहना चाहिए कि फिर मैं 'लड़का' शब्दका सामान्यतः प्रचलित अर्थ नही जानता। असलमे मैं तो उन सभीको जो स्कूलमे पढने जाते हैं, उम्रका खयाल किये विना लडका या लडकी ही कहूँगा। मगर, उस सन्देहशील विद्यार्थीको हम लडका कहें या सयाना आदमी, मेरे तर्कपर उसका कोई प्रभाव नही पडता। विद्यार्थी, एक सैनिक-जैसा होता है (और सैनिककी उम्र ४० सालकी भी हो सकती है)। वह जब एक बार सैनिक अनुशासन स्वीकार कर लेता है और उसके अधीन रहना मान लेता है तब अनुशासनके विषयमे कुछ भी नही कह सकता। यह नही हो सकता कि सैनिक अपनी पल्टनमे शामिल भी रहे और उसे जो काम दिया जाये उसे करने या न करनेकी छूट भी रहे। उसी प्रकार कोई भी विद्यार्थी, चाहे वह कितना ही बड़ी उम्रका और बुद्धिमान क्यों न हो; एक बार किसी स्कूलमें दाखिल होते ही उसके नियमोंके विरुद्ध चलनेका अधिकार खो बैठता है। इसमें उस विद्यार्थीकी बुद्धिको कम कहने या उसकी बुद्धिकी अवगणना करनेका कोई सवाल नही है। अनुशासनका स्वेच्छासे पालन करना छात्रकी बुद्धिके लिए सहायता रूप है। किन्तु मेरे पत्रलेखक महोदयने शब्दोके अत्याचारका भारी जुआ स्वेच्छासे अपने कन्धेपर उठा लिया है। उन्हे काम करनेवालेके हर काममे, जो उसे पसन्द न पडे, 'बलात्कार' की गन्ध मिलती है। मगर बलात्कार और बलात्कारमे भेद होता है। स्वेच्छासे स्वीकृत अनिवार्यताको हम आत्मसंयम कहते हैं। हम उसे दृढ़तासे

अपनाते हैं और उसके सहारे अपना विकास करते हैं। किन्तु यदि कोई संयत करनेवाला नियम हमारी इच्छाके विरुद्ध हमारे ऊपर लादा जाये और वह भी इस नीयतसे कि उससे हमारा अपमान हो और मनुष्य या लड़कोंकी हैसियतसे हमारे मनुष्यत्वका अपहरण हो तो ऐसी अनिवार्यताका प्राणपनसे त्याग किया जाना चाहिए। सामाजिक संयम पालन करनेके नियम साधारणतः लाभदायक ही होते है और यदि हम उनका त्याग करते हैं तो स्वयं हानि हमारी होती है। पेटके वल रेंगनेजैसी आज्ञाओंका पालन करना नामर्दी और कायरता है। उससे भी वुरा है उन विकारोंके आगे झुकना जो दिन-रात हमे घेरे रहते हैं और हमें अभिभूत करनेके लिए तैयार रहते हैं।

किन्तु एक शब्द और पत्रलेखकको जकड़े हुए है। यह महाशब्द है 'वुद्धिवाद'! मुझे भी यह पूरी मात्रामे प्राप्त हुआ था। किन्तु अनुभवने मुझे इतना नम्र वना दिया है कि मैं वुद्धिकी विशिष्ट मर्यादाओंको समझ सकूँ। जिस प्रकार अस्थानमे रखे जानेसे कोई भी वस्तु कूड़ा गिनी जाती है, उसी प्रकार अपने अनुचित प्रयोगसे वुद्धि भी पागलपन कही जाती है। जिस शक्तिका जहाँतक अधिकार है, अगर हम उसका प्रयोग वहींतक करें तो सव-कुछ ठीक वना रहेगा।

वुद्धिवादी पुरुप प्रशंसनीय होते हैं। किन्तु वुद्धिवाद तव भयंकर राक्षस वन जाता है जव वह असीम शक्तिका दावा करता है। वुद्धिको ही सर्वशक्तिमान मानना, उतनी ही वुरी मूर्तिपूजा है जितनी ईंट या पत्थरको ईश्वर मानना।

प्रार्थनाकी उपयोगिताको तर्कसे किसने जाना है। इसकी उपयोगिताका पता अभ्यासके वाद ही चलता है। संसारकी गवाही तो यही है। जव कार्डिनल न्यूमेनने कहा था "मेरे लिए एक कदम ही काफी है", तव उन्होंने वुद्धिका त्याग नहीं किया था वल्कि प्रार्थनाको उससे ऊँचा स्थान दिया था। शंकर तो वुद्धिवादियोंमें श्रेष्ठ थे। संसारके साहित्यमें शायद ही ऐसी कोई वस्तु हो जो शंकरके वुद्धिवादसे श्रेष्ठ हो। किन्तु उन्होंने पहला स्थान प्रार्थना और भक्तिको ही दिया है।

पत्रलेखकने संसारमें होनेवाली क्षणिक और क्षोभकारी घटनाओंको लेकर एक सामान्य निष्कर्ष निकालकर उतावली की है। किन्तु इस संसारमें सभी वस्तुओंका दुरुपयोग होता है। ऐसा मालूम होता है कि मनुष्यके सभी कार्योपर यह नियम लागू होता है। इतिहासमें धर्मके कारण वहुतसे वड़े-वड़े अपराध हुए हैं। किन्तु इसमे दोप धर्मका नही है; मनुष्यके भीतरके दुर्दमनीय पशुत्वका है? अपने पशुपूर्वजोंका गुण अभी मनुष्यमें शेष है।

मैं एक भी ऐसे वुद्धिवादीको नहीं जानता जिसने कभी कोई भी काम शुद्ध विश्वासके वशीभूत होकर न किया हो, वल्कि जिसने सभी काम वुद्धिके द्वारा उनकी अच्छाईका निश्चय करके किये हों। किन्तु हम सव जानते हैं कि करोड़ों लोग अपना जीवन न्यूनाधिक व्यवस्थित रूपसे इसी कारण विता पाते हैं कि हम सवके वनानेवाले सृष्टिकर्त्तामें उनका अटल और अवोध विश्वास है। ऐसा विश्वास ही प्रार्थना है। वह लड़का, जिसके पत्रके आधारपर मैंने अपना लेख लिखा था, उस वड़े मनुष्य-समुदायमे

से एक है और मैंने वह लेख उसे और उसीके समान दूसरे सत्य-शोधकोको उनके पथपर दृढ करनेके लिए लिखा था; पत्रलेखकके समान बुद्धिवादियोकी शान्ति भंग करनेके लिए नही।

मगर वे तो उस मोडका ही विरोध करते हैं जो शिक्षक या गुरुजन संसारके युवकोंको देना चाहते हैं। मगर लगता है कि यह कठिनाई (अगर कठिनाई है तो) प्रभाव ग्रहण करने योग्य उम्रसे सम्बद्ध कठिनाई है और यह कठिनाई सदा बनी रहेगी। शुद्ध धर्मविहीन शिक्षा भी बच्चोंके मनको एक खास ढगका बनानेका प्रयत्न है। पत्र-लेखकने यह तो स्वीकार किया है कि मन और शरीरको एक खास तालीम और एक खास दिशा दी जा सकती है; पर आत्माकी, जो शरीर और मनके अस्तित्वको सम्भव बनाती है, उन्हे कुछ परवाह नही है। शायद उन्हे उसके अस्तित्वमे ही शका है। मगर इस अविश्वाससे उनका कोई काम नही सरेगा। वे अपने तर्कके परिणामसे बच नही सकते, क्योंकि कोई श्रद्धालु व्यक्ति उक्त पत्रलेखककी बातके आधारपर ही तर्क देकर यह क्यो न कहे कि जैसे लोग लड़कों और लड़कियोंके मन और शरीरपर असर डालते हैं वैसे ही उनकी आत्मापर क्यो नही डाला जाना चाहिए? सच्ची धार्मिक भावनाके उदय होते ही, धार्मिक शिक्षाके दोष लुप्त हो जायेंगे। धार्मिक शिक्षाको छोड देना वैसा ही है जैसे कोई किसान खेतका उचित उपयोग न जानता हो, अतः उसे बंजर पड़ा रहने दे और उसमे घास-पात उगने दे।

आलोच्य विषयके साथ महान् आविष्कारोकी बात करना जैसा कि लेखकने किया है, बिलकुल असंगत है। उन आविष्कारोकी उपयोगिता या चमत्कारितामें किसीको सन्देह नही है, स्वयं मुझे भी नही है। बुद्धिके समुचित उपयोगके लिए ये क्षेत्र सर्वथा समुचित थे। किन्तु उन प्राचीन लोगोने प्रार्थना और भक्तिकी मूल भित्तिको ही नही तोड़ डाला था। श्रद्धा और विश्वासके बिना जो काम किया जाता है, वह उस कागजी फूलके समान होता है जिसमे सुवास नही होती। मै बुद्धिको दबानेके लिए नही कहता, बल्कि स्वयं मानव बुद्धिको जिस वस्तुने पवित्र बनाया है, उसे स्वीकार करनेके लिए कहता हूँ।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १४-१०-१९२६

५३६. स्कूलोंमें तकली

मैं निस्संकोच होकर डोंडाइच (पश्चिमी खानदेश) की राष्ट्रीय पाठशालामें तकलीसे कताईकी प्रगतिपर, नीचे दी हुई व्यावहारिक रिपोर्ट पाठकोंके लाभार्थ प्रायः पूरी-पूरी दे रहा हूँ।[1]

स्कूलमें धुनाई शुरू करनेमें कोई देर नहीं करनी चाहिए।[2] किसी भी लड़के या लड़कीको तबतक पक्का कातनेवाला नहीं कहा जा सकता, जबतक उसे धुनना और पूनियाँ बनाना न आता हो। इसका तो कोई कारण ही नहीं है कि जबतक लड़के धुनना नहीं सीख लेते, तबतक शिक्षक ही उनकी रुई क्यों न धुन दे। राष्ट्रीय पाठ-शालाओंके शिक्षकगण अपनेको वेतनभोगी साधारण नौकर ही न समझें। वे राष्ट्रकी आर्थिक उन्नति और लड़कोंके नैतिक, मानसिक तथा शारीरिक उत्थानके न्यासी हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १४-१०-१९२६

५३७. खादी प्रदर्शनियाँ

खादी प्रदर्शनियोंमें बिहार विशिष्ट बनता जा रहा है। नीचे जमशेदपुरकी एक प्रदर्शनीकी, जो कि बिहारकी १४ वीं प्रदर्शनी है, बिलकुल हालमें आई हुई रिपोर्ट दी जा रही है।[3]

अहमदनगर (महाराष्ट्र) में भी एक सफल प्रदर्शनी की गई थी। यह ११ से १९ सितम्बरतक की गई थी। जो रिपोर्ट मेरे सामने है, उसमें लिखा है कि इस प्रदर्शनीमें सेठ जमनालाल बजाज, श्री बी० जी० हॉर्निमन, श्री खाडिलकर, श्री जमना-दास मेहता, श्री वी० वी० दास्ताने, श्री सी० वी० वैद्य, श्री शंकरराव लवाटे, श्री वामन-राव जोशी और डा० साठे भी आये थे। इनमें लगभग दस हजार दर्शक आये थे और ये सभी श्रेणियोंके थे। इसमें नगद बिक्री ४,००० रुपयेकी हुई।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १४-१०-१९२६

१. यहाँ नहीं दी गई है।

२. रिपोर्टमें कहा गया था, पिंजाई छात्रोंके कृषि कार्य समाप्त होनेपर एक मास बाद आरम्भ की जायेगी।

३. रिपोर्ट यहां नहीं दी गई है। इसमें १५ सितम्बरसे २३ सितम्बरतक बिहार खादी विभाग द्वारा जमशेदपुरमें आयोजित प्रदर्शनीका हाल दिया गया था। इसका उद्घाटन एफ० सी० टेम्पलने किया था। रिपोर्टमें उनका संक्षिप्त भाषण भी दिया गया था, प्रदर्शनीमें राजेन्द्र बाबू और कई अन्य प्रमुख लोग भी थे। कुल मिलाकर १०,००० लोगोंने प्रदर्शनी देखी थी।

५३८. सूतकी जाँच करनेकी सरल रीति

डोडाइच स्कूलके मुख्याध्यापक पूछते हैं कि सूतकी जाँच करनेका कोई सहज तरीका है या नहीं; यहां एक उपाय बताया जाता है:

कहींसे भी ४ गज सूत ले लो। उसकी दो फुट घेरेकी एक लच्छी बना लो। इसकी लम्बाई एक फुट बन जायेगी। इसे किसी खूंटीमें टांग दो, और सावधानी रखो कि उसके बल न खुलने पायें। दूसरे छोरपर तौलके बाट लटकाते जाओ और देखो कि कितने भारके बाद लच्छी टूट जाती है।

टूटी लच्छीको किसी बहुत बढ़िया कांटेपर तौलो। कोई १०० रत्तीका एक तोला होता है। अगर सूत कोई १८½ रत्ती हो तो सूत १ अंकका है। अगर सूतकी तौल १८ रत्तीसे कम हो तो उसकी तौलका १८ रत्तीसे जो सम्बन्ध होगा, सूतका अंक भी उतना ही होगा। जैसे मान लो कि उन ४ गज सूतका वजन ३ रत्ती है। अब १८ रत्ती, ३ रत्तीका ६ गुना है, इसलिए, सूतका अंक हुआ ६। अगर बहुत अच्छा कांटा और छोटे-छोटे बांट न मिल सकें, तो लच्छीकी लम्बाई ज्यादा गजोंकी रखी जा सकती है। अलबत्ता उसमें सूतका नुकसान अधिक न हो। (टूटे हुए सूतकी बत्तियां वगैरा बनाई जा सकती हैं।) लच्छीकी सुविधाजनक लम्बाई २१ गज या इसका गुणनफल जैसे ४२, ६३, ८४ गज होती है। नीचेका सूत्र याद कर लेना चाहिए।

७००० ग्रेन = १ पौंड या १ रतल = ३८ $\frac{८}{९}$ तोला
१८० ग्रेन = १ तोला
८४० गज सूत = १ अंटी

इसलिए:

७००० ग्रेन ÷ अंटीका वजन (ग्रेनमें) = सूतका अंक

या ३८ × $\frac{८}{९}$ तोला ÷ अंटीका वजन (तोलोंमें) = सूतका अंक

या $\frac{\text{गज} \times १०}{\text{तोला} \times २१६}$ = सूतका अंक

सूतका अंक निकल आया। अब मजबूती निकालनी है। वह इस दूसरे सूत्रसे निकलेगी:

$\frac{\text{३१५ तोला} \times \text{सूतकी लम्बाई}}{\text{अंक}}$ = सौ सैकड़े मजबूती

घेरा = २ लम्बाई

सूतकी असमानता निकालना :

अपनी अंटीमे से कहींसे भी ६ लच्छियाँ निकालकर उनके अंक निकालो।

सबके अंकोंको जोड़कर उनमें ६ का भाग दो। अब यह भागफल ही औसत अंक होगा।

अब सबसे ऊँचे और सबसे नीचेके अंकोंका अन्तर निकाल लो।

तब

$$\frac{\text{अन्तर} \times १००}{\text{औसत अंक}} = \text{प्रतिशत असमानता}$$

अब १०० में से असमानताका प्रतिशत घटा दो। यह समानताका फी सैकड़ा अंक होगा।

जैसे, ६ लच्छियोंके अलग-अलगके अंक है — १६, १८, १५, २०, २२ और १७। इनका जोड़ है १०८ और औसत अंक $\frac{१०८}{६}$ = १८

सबसे नीचा अंक है १५ और ऊँचा २२। इनका अन्तर है ७।

इसलिए $\frac{७ \times १००}{१८}$ = करीब असमानता हुई।

इसलिए १००–३९ = ६१ समानता हुई।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १४-१०-१९२६

५३९. पत्र : क्षितीशचन्द्र दासगुप्तको

आश्रम

साबरमती

१४ अक्तूबर, १९२६

प्रिय क्षितीश बाबू,

गोहाटी प्रदर्शनीके बारेमें मुझे आपका पत्र मिला। आपका पत्र मिलते ही मैंने समितिको तार[1] दिया कि क्या वह प्रदर्शनीमें मिलोंका और शक्तिसे संचालित करघोंका कपड़ा प्रदर्शित करनेके अपने निर्णयपर पुनः विचार करनेको तैयार है? उसने तार द्वारा मुझे जो उत्तर भेजा है वह यह है :

> मिल अथवा शक्ति संचालित करघेका बना कपड़ा प्रदर्शनीमें नहीं रख रहे हैं। सूचीमें इनका नाम लापरवाहीसे शामिल हो गया है। आवश्यक सुधार किया जा रहा है। — मन्त्री, कांग्रेस प्रदर्शनी।

१. यह उपलब्ध नहीं है।

मेरा खयाल है कि अब आगे कुछ करनेकी जरूरत नहीं।

मुझे उम्मीद है कि आप अच्छी तरहसे हैं। इधर कुछ दिनोंसे सतीशबाबूने मुझे कोई पत्र नहीं लिखा। मैं आशा करता हूँ, वे और हेमप्रभादेवी — दोनों अच्छे होंगे।

हृदयसे आपका

श्रीयुत क्षितीशचन्द्र दासगुप्त
२९, चरकडाँगा रोड
कलकत्ता

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११२४० ए०) की माइक्रोफिल्मसे।

५४०. पत्र : नॉर्मन लीजको

आश्रम
साबरमती
१४ अक्तूबर, १९२६

प्रिय मित्र,

आपके पत्र[1] और अदालतके सामने श्री तारिणीप्रसाद सिन्हा द्वारा दिये गये वक्तव्यके लिए धन्यवाद। आपकी 'केनिया' नामक पुस्तककी एक प्रति मेरे पास है। लेकिन यदि आप अपने हस्ताक्षरोंसे युक्त एक और प्रति भेज सकें तो मैं उसे मूल्यवान मानूँगा।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १२१७३) की फोटो-नकलसे।

५४१. पत्र : जुबेदा बानोको

आश्रम
साबरमती
१४ अक्तूबर, १९२६

मेरी कमसिन दोस्त,

तुम्हारी चिट्ठी अच्छी लगी। तुम्हें धीरे-धीरे अपनी लिखावट सुधारनी चाहिए। लेकिन तुमने जो-कुछ लिखा है वह एक दस सालकी लड़कीके लिहाजसे बुरा बिलकुल नहीं; खास तौरसे यह देखते हुए कि तुमने सिर्फ पिछले चार महीनोंसे अंग्रेजी पढ़ना शुरू किया है। मैं इस वक्त पढ़नेके लिए तुम्हें ऐसी कोई भी अंग्रेजी किताब नहीं सुझा सकता जिसे तुम अच्छी तरहसे पढ़ और समझ सको। मेरी तुम्हें यही सलाह है कि

१. देखिए परिशिष्ट ३।

तुम्हें देशकी भाषाके लिए जरिए जो मेरे खयालसे हिन्दुस्तानी है, भारतके बारेमें सब-कुछ जान लेना चाहिए। क्या तुम देवनागरी लिपि पढ़ सकती हो? अगर तुम पढ़ सकती हो तो मैं तुम्हें कुछ किताबें सुझा सकता हूँ।

मुझे उम्मीद है कि चरखा और खद्दरको अपनानेके बाद तुम उन्हें कभी नहीं छोड़ोगी।

हृदयसे तुम्हारा,

कुमारी जुबेदा बानो
मार्फत मंत्री
अंजुमन इस्लाम
इन्दौर

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९७१८) की माइक्रोफिल्मसे।

५४२. पत्र : डा० परशुरामको

आश्रम
साबरमती
१४ अक्तूबर, १९२६

प्रिय डा० परशुराम,

आपका पत्र मिला। मेरी तो यही सलाह है कि आप अपनी जगह वापस जाकर फिरसे अपना काम शुरू कर दें और वहाँ रहते हुए आपसे जो सेवा बन सके सो करें। और इसे बढ़ा-चढ़ाकर न देखें-दिखायें।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९७१९) की माइक्रोफिल्मसे।

५४३. पत्र : मीराबहनको

[आश्रम
साबरमती
१५ अक्तूबर, १९२६]

प्रिय मीरा,

बचा हुआ काम निपटानेके लिए मैंने मौन ले लिया है। मुझे खयाल नही था कि ग्लिसरीन जानवरकी चर्बीसे बनाई जाती है। परन्तु अब जब तुमने इसका जिक्र किया तो ध्यान आया कि यह बात मुझे मालूम थी। जानवरकी चर्बीसे बनी होनेपर भी तुम्हे इसे गलसुओमे लगाते रहना चाहिए। खाना और लगाना, दोनो एक ही बात नही। तुम शायद ऐसे साबुनको जिसमे चर्बी पड़ी होती है, लगाती तो हो लेकिन चर्बीका तुम भोजनमे उपयोग नही करोगी। इससे ज्यादा बाते फिर कभी। मुझे उम्मीद है कि तुम इस बातको लेकर परेशान नही रहोगी।

बापू

अंग्रेजी पत्र (सी० डब्ल्यू० ५१८७) से।
सौजन्य : मीराबहन

५४४. पत्र : आठवलेको

आश्रम
१५ अक्तूबर, १९२६

प्रिय मित्र,

अब मुझे आपके पत्रके सिलसिलेमे जमनालालजीका ब्योरेवार उत्तर मिल गया है। उससे पता चलता है कि आपने अपनी भूल स्वीकार करते हुए और उनको इतनी ज्यादा परेशानीमें डालने और तकलीफ देनेके लिए क्षमा माँगते हुए, पत्र लिखे है। जहाँ तक मैं समझता हूँ, जमनालालजीने आपको खुश करनेके लिए कुछ अधिक ही किया है। और पंचोने, जो आपकी ही इच्छासे नियुक्त किये गये थे, आपके खिलाफ फैसला दिया है। जमनालालजीने मुझे यह भी बताया है कि आपके सम्बन्धमें डा० मेहताके साथ न उनका कोई पत्र-व्यवहार हुआ है और न कोई और बातचीत ही। इसलिए मेरे लिए करनेको कुछ रह ही नही जाता।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत आठवले
सदाशिव पेठ, पूना शहर

अंग्रेजी प्रति : (एस० एन० १९७२०) की माइक्रोफिल्मसे।

५४५. पत्र : सतीशचन्द्र मुकर्जीको

आश्रम
साबरमती
१५ अक्तूबर, १९२६

प्रिय सतीश बाबू,

समझ-बूझकर संलग्न किये हुए कागजोंके[1] साथ आपका पत्र मिला। मुझे मालूम नहीं था कि कृष्णदास आपके पास नहीं है। मैंने यह सोचकर कि वह आपके साथ सीधे आपकी देखरेखमें कहीं है, उसके बारेमें कभी कोई चिन्ता नहीं की थी।

सच है कि हिन्दू-मुस्लिम समस्या अधिकाधिक जटिल बनती जा रही है। लेकिन जहाँ बस न चले वहाँ कोई करे भी तो क्या करे? मैं आशावादी हूँ क्योंकि ईश-प्रार्थनाके साथ-साथ चिन्तन-मननकी प्रभावशीलताके बारेमें मुझे बड़ा विश्वास है। जब कर्मके लिए उपयुक्त समय आ जायेगा तब ईश्वर हमें रोशनी दिखायेगा और हमारा पथ-प्रदर्शन करेगा। इसलिए मैं प्रार्थनापूर्वक स्थितिको देखता हुआ प्रतीक्षा कर रहा हूँ और किसी भी क्षण संकेत मिलते ही कर्मरत होनेके लिए प्रस्तुत हूँ।

कुमारी लिलियन एडगरने आपको जो कतरन भेजी है वह और 'नो मोर वार' से लिये गये उद्धरण दिलचस्प हैं। मुझे उम्मीद है कि मैं 'यंग इंडिया' में उन दोनोंका उपयोग कर सकूँगा। लॉर्ड ऑक्सफोर्डका लेख मैंने अभी नहीं पढ़ा। अपने स्वभावानुसार आपने अपने स्वास्थ्यके बारेमें कुछ नहीं कहा। आप किसी समय पत्रमें इतना तो लिख दीजिए कि आप पहलेसे अच्छे हैं। अब रोमाँरोलाँके भारत आनेकी कोई सम्भावना नहीं; कमसे-कम आगामी सर्दीके मौसममें तो बिलकुल नहीं। धीरे-धीरे बुढ़ापा उनपर हावी हो रहा है; उनका शरीर है भी बहुत नाजुक।

हृदयसे आपका

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११००६) की फोटो-नकलसे।

१. श्री मुकर्जीने अपने १२ अक्तूबर, १९२६ के पत्रके साथ जो कागजात भेजे थे उनमें १५ सितम्बर, १९२६ को लिपजिगके डा० कार्ले थीम द्वारा कृष्णदासको लिखे पत्रकी नकल; रस्किन कालेजके प्रधानाध्यापक द्वारा लिखित असहयोगके विषयमें 'एक क्वेकरके विचार' शीर्षक लेखकी टाइप हुई प्रति और कुमारी लिलियन एडगर द्वारा स्टेट्समैनके ३-१०-१९२६ के अंकमें लिखे एक पत्रकी कतरन थी।

५४६. तार : जमनालाल बजाजको

सावरमती
१६ अक्तूबर, १९२६

श्री
वम्वई

कमलाको[1] मामूली मलेरिया है मोतीझारा नही। हालत सुधारपर। चिन्ताकी वात नही।

बापू

पाँचवें पुत्रको वापूके आशीर्वाद

५४७. क्या यह जीवदया है ?–२

उक्त शीर्पकका लेख लिखते समय भी मै जानता था कि मै एक वड़ी भारी उपाधि मोल ले रहा हूँ, लेकिन वह अनिवार्य था।

मेरे पास रोप भरे पत्र आ रहे है। तीन भाई तो मुझसे रातको ऐसे समय मिलने आ गये जव जैसे-तैसे मुझे आरामकी साँस लेनेका समय मिला था। उन्होने उसमे भग करके और दया-धर्मको क्षणभर त्यागकर मुझसे अहिंसाकी चर्चा की। वे मुझसे जीवदयाके नामपर मिलने आये थे। अत. मै उनसे मिलनेसे इनकार कैसे कर सकता था ?

मै उनसे मिला। मैने उनमे से एक भाईमे क्रोध, कडवापन और धृष्टता देखी। उनकी मेरे मनपर ऐसी छाप पड़ी कि वे मुझसे समाधान पानेके वजाय मुझे शिक्षा देने आये है। मुझे सुधारनेका अधिकार सभीको है, किन्तु सुधारकोको मेरी न्यूनता तो समझ लेनी चाहिए। इन भाइयोने ऐसा नही किया था।

इसमे उनका दोप नही था, दोप अधीरताका था। अव तो यह दोष व्यापक हो गया है। अधीरता हिंसाका लक्षण है। ये भाई अहिंसाके समर्थक थे, इसलिए मुझे उनकी अधीरता खटकी।

वे जैन होनेका दावा करते थे। मैने जैनधर्मका कुछ अभ्यास किया है। मैने जैनधर्ममे अहिंसाका जुदा ही रूप देखा है। इस भाईमे मैने उसका विपरीत रूप देखा। जैनियोको कुछ अहिंसाका इजारा तो मिला नही है। अहिंसा किसी एक धर्मका लक्षण नही है। धर्म-मात्रमे अहिंसा है। उसका अमल सभी धर्मोमे एक समान नही होता।

१. जमनालाल वजाजकी पुत्री।

मुझे ऐसा नहीं लगा कि जैन लोग इस समय दूसरोंकी वनिस्वत अहिंसाका अधिक पालन करते हैं। जैनोंके साथ मेरा सम्बन्ध तो इतना पुराना है कि बहुतसे लोग मुझे जैन ही मानते हैं। महावीर दयाकी — अहिंसाकी — मूर्ति थे। मेरी इच्छा उनके भक्तोंको भी वैसा ही देखनेकी है। लेकिन मेरी वह इच्छा सफल नहीं होती।

छोटे जीवोंकी रक्षा करना अहिंसा-धर्मका एक आवश्यक अंग अवश्य है। मगर इसकी समाप्ति वहाँ नहीं हो जाती, उससे तो वह आरम्भ ही होता है। किन्तु रक्षाका अर्थ केवल न मारना ही नहीं है। जीवोंको कष्ट देना और जिन्हें बेमौत मरना पड़ेगा उनकी अनावश्यक उत्पत्तिमें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष भाग लेना भी हिंसा ही है।

कुत्तोंकी वृद्धि अनावश्यक है। आवारा कुत्ते समाजके लिए हानिकर हैं और उनकी संख्या बढ़नेसे समाजका जीवन जोखिममें पड़ता है — यदि हम चाहते हैं कि कुत्ते सुखसे रह सकें तो शहर या गाँवमें एक भी आवारा कुत्ता दिखाई नहीं पड़ना चाहिए। जिस प्रकार केवल पालतू गायें-भैंसे ही देखनेमें आती हैं, उसी प्रकार केवल पालतू कुत्ते ही देखनेमें आने चाहिए। जीवदया संस्थाओंको इस प्रश्नका धर्मसम्मत निर्णय करना चाहिए।

क्या आवारा कुत्तोंका पाला जाना सम्भव है? अगर वे पाले न जा सकें तो क्या उनके लिए पिंजरापोल बनाये जायें? अगर इन दोनोंमें से एक भी उपाय सम्भव न हो तो उन्हें मार देनेके सिवा मुझे कोई दूसरा उपाय दिखाई नहीं देता।

हम आँख मूँदकर, वस्तुस्थितिको देखकर भी अनदेखा करें तो इसमें न अहिंसा है, न विचार और न विवेक। जबतक कुत्तोंका उपद्रव रहेगा, तबतक वे मनुष्यके हाथों मरेंगे ही। मैं गृहस्थ-धर्ममें इसे अनिवार्य समझता हूँ। वे जबतक पागल न हो जायें तबतक राह देखना उनपर दया करना नहीं है। अगर कुत्तोंकी सभा की जा सकती होती तो वे क्या विचार करते, हम इसकी कल्पना उनकी तुलना अपने साथ करके कर सकते हैं। हम जैसे-तैसे जीते रहना कभी पसन्द न करेंगे। हममें से बहुत-से आदमी इसे पसन्द किये हुए हैं, किन्तु यह कोई सद्गुण नहीं है। चतुर मनुष्योंकी सभा ऐसा निर्णय नहीं करेगी कि मनुष्य परस्पर पागल या आवारा कुत्तेके समान बरताव करें। जिस प्रकार हम कुत्तोंके मालिक हैं, उसी प्रकार यदि कोई प्राणी हमारा मालिक हो तो हम उससे क्या आशा रखेंगे? हम क्या ऐसा न चाहेंगे कि वह हमें कुत्तेके समान रखनेके बजाय मार ही डाले तो अच्छा? हम आवारा कुत्तेको रोटीका एक टुकड़ा या जूठन देकर कुत्तोंकी जातिसे द्रोह और अपने पड़ोसियोंके प्रति हिंसा करते हैं।

स्वयं दुःख सहकर सभी कुत्तोंको जीने देना धर्म है; किन्तु वह धर्म उस गृहस्थके लिए नहीं है, जिसे जीनेकी इच्छा है, जो वंशवृद्धि करता है और जिसके ऊपर संसार चलानेका भार है। गृहस्थ तो कुछ कुत्तोंको ही जीवित रहने देनेका मध्यम मार्ग ग्रहण कर सकता है।

हम आज जिन प्राणियोंको पालते हैं, वे पहले जंगली थे। भैंस तो एक इसी देशमें पाली जाती है। जंगली प्राणियोंको पालनेमें पाप है, क्योंकि उनसे मनुष्य

अपना स्वार्थसाधन करता है। हम गायों-भैंसोंका जो पालन करते हैं, सो उनपर कुछ दया नही करते। हम उन्हें अपने स्वार्थके लिए ही पालते हैं और इसलिए गाय या भैंसको घूमते रहनेकी छुट्टी नही देते। वही नियम कुत्तोपर भी लागू होता है। इसी-लिए मेरा निश्चित मत यह हे कि अगर हम शुद्ध जीवदया-धर्मका पालन करना चाहते हो तो ऐसा कानून बनाया जाना चाहिए कि यदि कुत्ता किसीका हो, तो मालिक उसे अपने कब्जेमें रखे और एक निश्चित अवधिके बाद लावारिस पाये जानेवाले कुत्ते मार दिये जाये। यदि पंच लोग सचमुच कुत्तोके ऊपर तरस खाते हो तो उन्हें सारे कुत्तोको अपने कब्जेमे रखना चाहिए और जो उन्हे पालना चाहे वे उनमें बाँट दिये जाने चाहिए। किन्तु कुत्तोकी सार-सँभाल गायोकी तरह करना तो मुझे अशक्य मालूम होता हे।

कुत्तोको पालनेका एक शास्त्र ही है। पश्चिमके लोगोंने उसे तैयार किया है। उन्होंने कुत्तोको पालनेकी ठीक विधि ढूंढ़ी हे। उनसे वह सीखकर इस दोपकी निवृत्तिका कोई उपाय मिले तो तदनुसार व्यवहार करना उचित होगा। यह काम धीरज, विवेक और परिश्रमके बिना नही किया जा सकता।

इतना तो कुत्तोके विपयमे हुआ। किन्तु अहिंसा-धर्मका क्षेत्र विशाल है। मैं उसपर विशेप विचार फिर करूँगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १७-१०-१९२६

५४८. पत्र : जमनालाल बजाजको

आश्विन सुदी ११, १९८२ [१७ अक्तूबर, १९२६]

चि० जमनालाल,

गिरधारी कहता हे कि तुम्हारा स्वास्थ्य अभीतक अच्छा नही हुआ। यह बात ठीक नही हे। तुम्हे कही भी जाकर अपना स्वास्थ्य सुधार ही लेना चाहिए। तुम्हे एकान्तमे जाना चाहिए। तुम्हे अच्छी हवा चाहिए और साथमे योग्य साथी भी। तुम्हारी व्याधि शारीरिक एवं मानसिक है। तुम्हे कामका बोझ ज्यादा नही उठाना चाहिए।

कमलाकी चिन्ता करनेका कोई कारण नही है। जैसा बुखार दूसरोंको आता है वैसा बुखार उसे भी आ गया है। वह तो वर्धा, बम्बई या किसी भी जगह जानेके लिए तैयार है। परन्तु जबतक उसकी तबीयत अच्छी नही होती, तबतक उसे भेजनेकी इच्छा नही है; और जरूरत भी नहीं है। मैं उससे मिलता रहता हूँ। चिन्ता तो कमलाकी सासके बारेमें रहती है, क्योकि वह बहुत घबराती है; परन्तु वह अच्छी तो हो ही जायेगी।

तुम्हारा टहलना बराबर जारी है न? तुम्हें सुबह-शाम दोनों वक्त घूमने जाना ही चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (जी० एन० २८७३) की फोटो-नकलसे।

५४९. पत्र: देवचन्द पारेखको

आश्विन सुदी ११, १९८२ [१७ अक्तूबर, १९२६]

भाईश्री ५ देवचन्दभाई,

आपने उपजातियोंके सम्बन्धमें लिखे पत्रके बारेमें क्या किया?

अब न्यासीके रूपमें मढडा आश्रमका सार्वजनिक रूपसे कब्जा लेनेका काम आपको करना है।

बापूके वन्देमातरम्

गुजराती पत्र (जी० एन० ५७०२) की फोटो-नकलसे।

५५०. पत्र: बनारसीदास चतुर्वेदीको

आश्विन सुदी, ११, १९८२ [१७ अक्तूबर, १९२६]

भाई बनारसीदासजी,

आपका पत्र मीलनेको कई दिन हुए परंतु बहोत काम की भीड होनेके कारन मैं उत्तर न लीख सका। मैंने कब लीखा था कि मैंने ब्रिटीश गिआना ५०० आदमी भेजनेका कहा था उसमें कुछ गलती थी? वह लेख कहां है बतलाइये। उस लेख देखनेके लिये मैंने आपका पत्र छापनेका रोक रखा है।

आपका,
मोहनदास गांधी

मूल पत्र (जी० एन० २५७१) की फोटो-नकलसे।

५५१. भेंट: एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडियाके प्रतिनिधिसे[1]

अहमदाबाद
१७ अक्तूबर, १९२६

एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिने जब महात्मा गांधीसे दिसम्बर मासमें केपटाउनमें होनेवाले गोलमेज सम्मेलनके लिए नियुक्त शिष्टमण्डलके सदस्योंके चुनावके बारेमें पूछा तो उन्होंने कहा:

मेरा खयाल है, सदस्योंका चुनाव बहुत सोच-समझकर किया गया है। सर मुहम्मद हबीबुल्ला शिष्टमण्डलका नेतृत्व करें — यह विचार मुझे पसन्द आया है। शिष्ट-मण्डलको जिस पेचीदा सवालका हल ढूंढना है, श्री कॉर्बेटको उसका गहरा अनुभव है। यूरोपीय व्यापार जगतके प्रतिनिधि होनेके नाते सर डेरेल लिंडसेका दक्षिण आफ्रिकामें काफी प्रभाव होना चाहिए। श्री श्रीनिवास शास्त्रीके बिना यह शिष्टमण्डल बिलकुल अपूर्ण रह जाता। उन्हें उपनिवेश सम्बन्धी समस्याओंकी अच्छी जानकारी है। वे दक्षिण आफ्रिकाके राजनीतिज्ञोंको अच्छी तरहसे जानते हैं; और उनकी विद्वत्ता तथा कर्म-निष्ठापर तो कोई सन्देह हो ही नहीं सकता। सर फिरोज सेठनाको शिष्टमण्डलमें शामिल करनेका कारण भी आसानीसे समझमें आ जाता है। सर जॉर्ज पैडिसनने पिछले शिष्टमण्डलके कार्यको जिस सुयोग्यतापूर्ण ढंगसे किया था, उसे देखकर उनको इस शिष्टमण्डलमें शामिल करना अनिवार्य था। श्री बाजपेयीको उसका मन्त्री बनाना तो लगभग निश्चित ही था।

इसमें सन्देह नहीं कि शिष्टमण्डलमें जिनको शामिल किया जाना चाहिए था, कुछ ऐसे व्यक्ति शामिल नहीं किये गये हैं। लेकिन यह कोई विशेष महत्त्व की बात नहीं। इतना ही काफी है कि इस शिष्टमण्डलमें जिन लोगोंके नाम शामिल किये गये हैं, वे सबके-सब विभिन्न हितोंका प्रतिनिधित्व करनेवाले अच्छे और खरे व्यक्ति हैं। मैं चाहता हूँ कि इस शिष्टमण्डलको, भले ही हममें से कुछ लोगोंको यह अपर्याप्त और अपूर्ण जान पड़े, जनताका नैतिक समर्थन मिलना चाहिए। अभीतक सभी काम निर्विघ्न रूपसे होते आये हैं और मुझे तो पूरी आशा है कि आगामी सम्मेलनसे दक्षिण आफ्रिकामें रहनेवाले भारतीयों और भारत सरकारको भी अगर वह उन लोगोंकी स्थितिको सुधारनेकी दिशामें अपना कर्त्तव्य पूरा करती है — चैनकी साँस लेनेका मौका मिलेगा। जैसे-जैसे समय गुजरेगा, समझना चाहिए कि न्यायके पक्षको अधिक बल मिलता जायेगा, और न्याय पूर्णतः हमारे पक्षमें ही है।

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, १८-१०-१९२६

१. इस भेंटका विवरण अन्य दैनिक समाचारपत्रोंमें भी प्रकाशित हुआ था।

५५२. पत्र : जमनालाल बजाजको

आश्विन सुदी १२, १९८२, [१८ अक्तूबर, १९२६]

चि० जमनालाल,

मेरा कलका पत्र तुम्हें मिल गया होगा। यदि समय मिले तो प्रताप पण्डितका चर्मालय देख आना और उनसे पूछ आना कि वे अपना आदमी कब भेजेंगे।

डा० रजबअलीने कमलाकी जाँच अच्छी तरहसे की है। चिन्ताका कोई कारण नहीं। उसे उन्हींके इलाजमें रखनेका निश्चय किया गया है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (जी० एन० २८७४) की फोटो-नकलसे।

५५३. पत्र : डा० वरदराजुलुको

२० अक्तूबर, १९२६

प्रिय डा० वरदराजुलु,

यह पत्र श्री और श्रीमती नायडूके परिचयके लिए है। वे यहाँ अभी-अभी नेटालसे आये हैं और तीर्थोंकी यात्रा करना चाहते हैं।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी पत्र (जी० एन० ७१९३) की फोटो-नकलसे।

५५४. जटिल प्रश्न

एक बहनने, जिन्हें मेरी बुद्धि और सच्चाईपर कुछ भरोसा है, मुझसे चन्द पेचीदा सवाल पूछे हैं। उनका उत्तर न देना अच्छा होता, क्योंकि भय है कि उत्तर पढ़कर अपने स्वत्वोंकी चिन्ता करनेवाले कुछ पति महोदय कहीं क्रुद्ध होकर विवाद न खड़ा कर दें। लेकिन सम्भव है, वे मुझपर दया ही बनाये रहें; क्योंकि वे जानते हैं कि मैं स्वयं भी अपने स्वत्वोंकी चिन्ता रखनेवाला पति रहा हूँ और मैंने बीचमें कुछ खटपट होनेपर भी ४० वर्ष प्रसन्नतापूर्वक गृहस्थ जीवनमें काटे हैं।

इन प्रश्नोंकी मूल भाषा मराठी है। यहाँ उनका स्वतन्त्र अनुवाद दिया जा रहा है। उपयुक्त और सामयिक पहला प्रश्न यह है:

> क्या किसी पुरुष या स्त्रीको रामनामके उच्चारण मात्रसे, राष्ट्रीय सेवामें भाग लिये बिना, आत्म-दर्शन प्राप्त हो सकता है? मैंने यह प्रश्न इसलिए पूछा है कि मेरी कुछ बहनें यह कहा करती हैं कि उन्हें गृहस्थीका कामकाज करने तथा यदा-कदा दीन-दुखियोंके प्रति दया भाव दिखानेके अतिरिक्त और कोई काम करनेकी जरूरत नहीं है।

इस बातने केवल स्त्रियोंको ही नहीं, बहुतसे पुरुषोंको भी उलझनमें डाल रखा है और मैं भी इसके कारण धर्म-सकटमें पड़ा हूँ। मुझे यह बात मालूम है कि कुछ लोग सिद्धान्ततः काम और परिश्रम-मात्रको व्यर्थ मानते हैं। मैं इसे अच्छा सिद्धान्त नहीं कह सकता। अगर मैं यह स्वीकार करना ही चाहूँ, तो अपना ही अर्थ लगाकर उसे स्वीकार कर सकता हूँ। मेरी नम्र सम्मति तो यह है कि मनुष्यको फलका विचार छोड़कर विकासके लिए परिश्रम करना ही चाहिए। रामनाम या कोई ऐसा ही पवित्र नाम जरूरी है — महज उच्चारणके लिए ही नहीं, आत्मशुद्धिके लिए, हमारे प्रयत्नको सहारा देनेके लिए और ईश्वरसे सीधा मार्गदर्शन पानेके लिए। इसलिए रामनामका उच्चारण कभी परिश्रमका स्थान नहीं ले सकता? वह तो परिश्रमको अधिक बलयुक्त बनाने और उसे उचित मार्गपर ले जानेके लिए है। यदि परिश्रम-मात्र व्यर्थ ही है तब फिर घर-गृहस्थीकी चिन्ता क्यों की जाये और दीन-दुखियोंको यदा-कदा सहायता भी क्यों दी जाये? स्वय इस प्रयत्नमें ही राष्ट्र-सेवाका अंकुर मौजूद है। और मेरे लेखे राष्ट्र-सेवा मानव जातिकी सेवा है। यहाँतक कि कुटुम्बकी निर्लिप्त भावसे की गई सेवा भी मानव जातिकी सेवा है। इस प्रकारकी कौटुम्बिक सेवा राष्ट्र सेवाकी ओर ले ही जाती है। रामनामसे मनुष्यमें विरक्ति और समता आती है और रामनाम उसे आपत्तिकालमें भी कभी धर्मच्युत नहीं होने देता। मैं गरीबसे-गरीब लोगोंकी सेवा किये बिना या उनके हितमें अपना हित माने बिना मोक्ष पाना असम्भव मानता हूँ।

दूसरा प्रश्न यह है:

> हिन्दू-धर्ममें पतिपरायणता और पतिके प्रति पत्नीका सम्पूर्ण आत्म-समर्पण ही सर्वोच्च आदर्श माना गया है, फिर पति चाहे राक्षस हो चाहे साक्षात् प्रेमकी मूर्ति। यदि पत्नीके लिए यही रास्ता सही है, तो क्या वह पतिका प्रबल विरोध होते हुए भी राष्ट्रीय सेवाका काम कर सकती है? या उसका धर्म पति द्वारा निर्धारित सीमामें रहकर काम करते रहना ही है?

सीताको मैं आदर्श पत्नी और रामको आदर्श पति मानता हूँ। लेकिन सीता रामकी दासी नहीं थी या कहना चाहिए कि यदि सीता रामकी दासी थी तो राम भी उनके दास थे। राम सीताका बहुत ज्यादा खयाल रखते थे। जहाँ सच्चा प्रेम होता है, वहाँ जैसा प्रश्न पूछा गया है, वैसा प्रश्न उठता ही नहीं है। जहाँ सच्चे प्रेमका अभाव होता है, वहाँ प्रेम-बन्धन कभी नहीं होता। आजकलकी हिन्दू गृहस्थी एक अनूठी पहेली है। पति और पत्नी विवाहित होते समय एक दूसरेके बारेमें बिलकुल नहीं जानते। शास्त्राज्ञा, रिवाज तथा विवाहित दम्पतियोंका निष्कटक जीवन — ये

चीजें अधिकांश हिन्दू घरोंमें शान्ति बनाये रखती हैं। लेकिन जब पत्नी या पतिके विचार साधारणतः प्रचलित विचारोंसे भिन्न होते हैं, तब उनमें कलह होनेका भय उत्पन्न हो जाता है। पति तो अपनेको निरंकुश समझता है। वह अपनेको अपनी जीवन-सहचरीसे सलाह लेनेके लिए बँधा नहीं मानता। वह उसे अपनी मिल्कियत मानता है और वह बेचारी जो उसकी इस मान्यतामें विश्वास करती है, प्रायः अपनी आत्माको दबाकर रहती है। मैं समझता हूँ कि इस स्थितिसे उभरनेका रास्ता है। मीराबाईने मार्ग दिखा दिया है। जब पत्नी अपनेको गलतीपर न समझे और जब उसका उद्देश्य अधिक ऊँचा हो, तब उसे पूरा अधिकार है कि वह अपने मनका रास्ता अख्तियार कर ले और नम्रतासे परिणामका सामना करे।

तीसरा प्रश्न यह है:

> यदि किसी स्त्रीका पति मांसाहारी हो और स्त्री मांस-भक्षणको बुरा समझती हो तो क्या वह अपना इच्छित मार्ग अपना सकती है? वह प्रेममय उपायोंसे अपने पतिका मांसाहार या उसमें उसी तरहका कोई अन्य व्यसन हो तो उसे छुड़ानेका प्रयत्न करे या अपने पतिके लिए मांस पकाये और यदि वह आग्रह करे तो उसे कर्त्तव्य मानकर स्वयं भी मांस खाये? अगर आप कहें कि पत्नी अपना इच्छित मार्ग अपना सकती है तो उस सूरतमें जबकि घरमें एक तो बाध्य करे और दूसरा विद्रोह तब संयुक्त गृहस्थी क्योंकर चल सकती है?

इस प्रश्नका कुछ उत्तर दूसरे प्रश्नके उत्तरमें आ गया है। पतिके गुनाहोंमें पत्नीका साथी बनना लाजिमी नहीं है और जब पत्नी किसी बातको बुरा समझती है, तब उसमें सही रास्तेपर चलनेकी हिम्मत होनी ही चाहिए। लेकिन यह विचारते हुए कि गृहिणी-का काम तो घरका कामकाज सँभालना और इसलिए खाना पकाना भी है — ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार पतिका काम कुटुम्बके लिए धन कमाना है, उसके लिए मांस पकाना उस हालतमें जब दोनों पहले मांस खाते रहे हों, लाजिमी है। और अगर किसी शाकाहारी कुटुम्बमें पति मांसाहारी बन जाये और अपनी पत्नीको मांस पकानेके लिए मजबूर करे, तो पत्नी अपने कर्त्तव्य भावके प्रतिकूल इसके लिए बाध्य नहीं है। घरमें शान्ति अत्यन्त अभीष्ट वस्तु है। लेकिन इसे अपने आपमें एक ध्येय नहीं माना जा सकता। मेरे लिए तो विवाहित अवस्था भी अनुशासनकी वैसी ही एक अवस्था है जैसी कोई अन्य हो सकती है। जीवन कर्त्तव्य है — कर्त्तव्यकी शिक्षा पाने का काल है। विवाहित जीवनका मंशा यह है कि यहाँ और इसके बाद भी हम पार-स्परिक मंगलके कारण हों। उसका हेतु मानव जातिकी सेवा करना भी है। जब एक पक्ष अनुशासनके नियमोंका उल्लंघन करता है, तब दूसरेको हक हो जाता है कि वह बन्धनको तोड़ दे। यहाँ बन्धनके नैतिक उल्लंघनसे तात्पर्य है, न कि शारीरिकसे। इसमें तलाक नहीं आता। पत्नी या पति अलग भले हों — लेकिन उस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए, जिसके निमित्त वे विवाहित हुए थे। हिन्दू-धर्म पति पत्नीमें से प्रत्येकको एक दूसरेके बिलकुल समान मानता है। इसमें शक नहीं कि रिवाज कुछ और ही

पड़ गया है — कवसे पड़ा है, यह नहीं मालूम। लेकिन इसी प्रकार और कई दोप भी तो हिन्दू समाजमें घुस आये हैं, किन्तु यह मैं जरूर जानता हूँ कि हिन्दू धर्म प्रत्येक व्यक्तिको मोक्ष पानेके हेतु, जो जन्म पानेका एकमात्र कारण है, चाहे जिस मार्गका अनुसरण करनेकी पूरी स्वतन्त्रता देता है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २१-१०-१९२६

५५५. अहिंसाकी जटिल समस्याएँ

एक मिल मालिकने कुछ कुत्ते मरवा डाले क्योंकि उनमें से कुछ पागल हो गये थे और भय था कि वे किसी भी क्षण किसी कर्मचारीको न काट लें। किन्तु इससे अहमदावादके प्रभावशाली जैन समाजके कुछ सदस्य नाराज हो गये। उनमें वहुतसे मेरे भी मित्र हैं जो अहिंसाके विपयमें मुझे प्रामाणिक व्यक्ति मानते हैं। मुझे विवश होकर अनिच्छापूर्वक इस विवादमें पड़ना पडा है। अव यह अहमदावादकी गुजराती वोलनेवाली जनताका ही मामला नहीं रहा; वल्कि उससे आगे वढ गया है। इसलिए मैं यथासम्भव अहिंसाके विस्तृत क्षेत्रको लेकर जो लेखमाला[1] लिख रहा हूँ उसका अनुवाद करके 'यग इडिया' के पाठकोंको दे रहा हूँ। मुझे सन्देह नहीं कि 'यंग इडिया' के वहुतसे पाठक, जो अहिंसाके सिद्धान्त और विकासमें रुचि रखते हैं, इस लेखमालाके अनुवादका स्वागत करेंगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २१-१०-१९२६

५५६. अहिंसाके लिए कमर कसो

एक मित्रने न्यूयॉर्क (अमेरिका) के समाचारपत्र 'नेशन' में से काटकर एक कतरन भेजी है। उसमें यह लिखा है:

> कुछ दिन हुए (सन् १९२४ के अन्त या १९२५ के प्रारम्भमें) चीन देशमें रहनेवाले २५ अमेरिकी पादरियोंने पिकिंगके अमेरिकी राजदूतके पास निम्न-लिखित प्रार्थनापत्र भेजा था:
>
> निम्न अमेरिकी पादरी, चीन देशमें भ्रातृत्व और शान्ति-धर्मके प्रचारक वनकर आये हैं। हमारा काम है स्त्रियों और पुरुषोंको ईसाकी उस नई जीवन-विधिमें दीक्षित करना जिससे वन्धुत्वका प्रसार होता है और युद्धके अवसरोंका

१. देखिए "क्या यह जीवदया है?" १०-१०-१९२६, १७-१०-१९२६, २४-१०-१९२६ और ३१-१०-१९२६।

अन्त होता है। इसलिए हम अपनी हार्दिक अभिलाषा व्यक्त करते हैं कि हमारे या हमारी सम्पत्तिके रक्षार्थ किसी भी प्रकारका सैनिक दबाव, विशेष करके किसी भी विदेशी सैनिक शक्तिका उपयोग न किया जाये। अगर हमें कोई कानून न माननेवाले लोग कैद कर लें तो हमें छुड़ानेके लिए उन्हें रुपया न दिया जाये। यदि वे हमें मार भी दें तो उन्हें दण्ड देनेके लिए न तो फौज भेजी जाये और न उनसे दण्डस्वरूप धन माँगा जाये। हमने ऐसी स्थिति यह विश्वास करके ग्रहण की है कि न्याय और शान्तिकी स्थापनाका उपाय यही है कि हम सभी दशाओंमें सभी लोगोंको उनका सद्भाव प्राप्त करके प्रभावित करें। यहाँ तक कि उनका अन्याय भी सह लें और उनसे उसका बदला न लें।

अमेरिकी राजदूतने उत्तर दिया कि चीन देशमें अमेरिकियोंकी आवश्यकताके लिहाजसे ऐसी प्रार्थना असंगत है, इसलिए प्रार्थियोंके मामलेमें जरूरी मौकोंपर उचित कार्रवाई करनेमें कोई अपवाद न किया जा सकता है और न किया ही जायेगा।

यह ऐसे अवसरका उदाहरण है जब दो परस्पर विरोधी स्थितियाँ एक ही साथ उचित होती हैं। उन बहादुर पादरियोंके लिए दूसरी स्थिति सम्भव न थी, मगर इन दिनों इसे बहुत कम लोग स्वीकार करते हैं। क्या यह बात भी चीन देशके ही सम्बन्धमें नहीं है कि कोई ३० साल हुए पादरियोंका एक दल लॉर्ड सैलिसबरीके पास गया था और उसने उनसे यह प्रार्थना की थी कि आप हमें अनिच्छुक चीनियोंके पास अपना सन्देश पहुँचानेमें अंग्रेजी सरकारके तोप-जहाजोंकी सहायता दें? तब उन स्वर्गीय लॉर्ड महोदयको उनसे कहना पड़ा था, अगर आप अंग्रेजी सेनाका संरक्षण चाहते हैं तो आपको अन्तर्राष्ट्रीय दायित्वोंको भी मानना होगा और अपने धर्म-प्रचारके उत्साहको दबाना होगा। उन्होंने पादरियोंको याद दिलाई कि प्राचीन कालके पादरी पृथ्वीके दूरतम भागोंमें जाते थे, मगर वे सिवाय ईश्वरके और किसीसे रक्षाकी उम्मीद नहीं रखते थे और सदा अपनी जानके लिए खतरा मोल लेकर काम करते थे। न्यूयॉर्कके 'नेशन' में दिये हुए उदाहरणमें वर्णित ये पादरी इस समाचारके अनुसार पुरानी पद्धतिपर लौट गये हैं।

अमेरिकी सरकारकी स्थिति जबतक आज जैसी है, तबतक तो वह ऊपर जैसा जवाब ही दे सकती है। यह दूसरी ही बात है कि इस एक ही जवाबसे वर्तमान पद्धतिका दोष स्पष्ट हो जाता है। अमेरिकी सरकारकी प्रतिष्ठा, उसकी नैतिक ताकत पर नहीं, उसकी पशुशक्तिपर निर्भर है। किन्तु अमेरिकाके मान और नामकी कथित रक्षाके लिए उसकी सारी सैनिक शक्तिका संग्रह क्यों किया जाना चाहिए? अगर २५ अमेरिकी पादरी बिना बुलाये अपना सन्देश सुनाने चीन देशमें जायें और वहाँ मार डाले जायें तो इससे अमेरिकाके मानकी क्या हानि हो सकती है? उनके उद्देश्यकी पूर्तिके लिए शायद सबसे अधिक हितकर बात यही होगी। अमेरिकी सरकारका हस्तक्षेप तो कष्ट सहनके इस नियमकी पूर्तिमें बाधाका कारण ही बन सकता है। किन्तु अगर

वह आत्मसंयमसे काम ले तो उसका अर्थ होगा, उसके दृष्टिकोणमें पूर्ण परिवर्तन। आज नागरिकताकी रक्षाका अर्थ है, कौमी तिजारतकी रक्षा — इसका ही दूसरा नाम शोषण है। शोषणमें अनिच्छुक लोगोंपर अपना व्यापार बलात् लादनेके लिए शक्तिका प्रयोग पूर्व कल्पित ही है। इसलिए एक अर्थमें ये कौमें, मानो लुटेरोंका गिरोह बन गई हैं जब कि उन्हें स्त्री-पुरुषोंकी मनुष्य जातिके साधारण हितके लिए एकत्रित शान्त जमातें होना चाहिए था। इस दूसरी हालतमें उनकी ताकत गोले बारूदकी व्यवहार-निपुणतापर नहीं, उनकी ऊँची नीतिमत्तापर निर्भर करती है। उन २५ पादरियोंका काम पुन संगठित समाज या पुन.संगठित राष्ट्रोंकी एक धुंधली छाया है। मुझे यह नहीं मालूम कि वे अपने जीवनके सभी अंगोंमें अपने इस सिद्धान्तका पालन करते हैं या नहीं। मुझे यह बतानेकी जरूरत तो है नहीं कि अमेरिकी सरकार द्वारा उनकी इच्छाके विरुद्ध उनकी रक्षा करनेकी धमकी दिये जानेपर भी वे बदला लेनेके सभी प्रयत्नोंका जवाब दे सकते थे — बल्कि उन्हें विफल भी कर सकते थे। मगर इसका अर्थ है अपने अहंको बिलकुल मिटा देना। अगर किसीको शक्ति-मदका सामना करना हो तो वह आजके विशुद्ध पशु शक्तिके पुजारियोंके तरीकोंसे बिलकुल भिन्न तरीकोंसे ही किया जा सकेगा।

यह भी नहीं भूलना चाहिए कि आजकी पशु शक्ति-पूजाके पीछे एक तत्त्वज्ञान है और उसका एक इतिहास भी है। ये उसका समर्थन करते हैं किन्तु इससे ऐसे इने-गिने अहिंसावादी लोगोंको भयभीत होनेका कोई कारण नहीं है। अहिंसामें उनका अडिग विश्वास-भर होना चाहिए। किन्तु वे किसी तरह यह विश्वास ही नहीं कर पाते कि पशु शक्तिके बिना भी समाजका संगठन कायम रखा जा सकता है। केवल एक आदमी सारे संसारका विरोध कर सकता है तब फिर दो या अधिक आदमी मिलकर क्यों नहीं कर सकते? इसका जो जवाब दिया जाता है, सो भी मैं जानता हूँ। हम लोगोंमें जो क्रान्ति धीरे-धीरे हो रही है, उसकी सम्भावनाएँ केवल समय आनेपर ही प्रकट होंगी। जहाँ काम शुरू ही किया गया है, वहाँ फलका अन्दाज लगाना व्यर्थ-का प्रयास होगा। जिनका सिद्धान्तमें विश्वास होगा वे इसके उस प्रारम्भिक काममें ही भाग लेंगे, जिसका फिलहाल कोई प्रत्यक्ष परिणाम दिखाई नहीं पड़ सकता।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २१-१०-१९२६

५५७. चरखेका अर्थशास्त्र

एक मित्रकी प्रेरणासे मैंने 'आर्थिक दृष्टिसे खादी' विषयपर संक्षिप्त लेख[1] तैयार कराये थे। ये आकारमें बड़े थे और उन्हें तैयार करनेमें मेहनत भी बहुत लगी थी। मगर ये अभीष्टको देखते हुए बहुत बड़े जान पड़े और इसलिए उनको नये ढंगसे संक्षिप्त करना आवश्यक हो गया। कह सकते हैं, वे करीब-करीब नये सिरेसे ही लिखे गये हैं। इस प्रकार इन लेखोंपर दो मित्रोंने परिश्रम किया है। उनमें सुपाठ्य और संयुक्त स्वरूपमें 'खद्दरका अर्थशास्त्र' बताया गया है और इस रूपमें उनका प्रभाव एक मित्रको ही उन्हें देनेके बनिस्बत अधिक लोगोंपर पड़ सकता है। इसलिए वे इन पृष्ठोंमें क्रमशः तीन बारमें प्रकाशित होंगे। पहला हिस्सा इसी सप्ताहमें छप रहा है। सम्भवतः इस पत्रके पाठकोंको उनमें कोई नई बात न मिले। किन्तु संयुक्त अध्यायोंमें और संक्षेपमें उन्हें फुटकर तर्क एक जगह मिल जायेंगे।

खादीके आँकड़े

मैं समय-समयपर खादीके आँकड़ोंका सारांश प्रकाशित करता आ रहा हूँ। मुझे आशा है कि कार्यकर्त्ता सावधानीसे उनको पढ़ते होंगे। ये आँकड़े बहुत उपयोगी हैं और इनसे हमें खादीकी प्रगति और सम्भावनाएँ मालूम हो जाती हैं। इस उद्देश्यकी पूर्ति अन्यथा उतनी अच्छी तरह नहीं हो सकती। मुझे पूरी आशा है कि जिन लोगोंने अभीतक यह जानकारी न भेजी हो वे जल्दीसे-जल्दी भेजनेकी कृपा करेंगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २१-१०-१९२६

५५८. टिप्पणियाँ

भारतीय शिष्टमण्डल

सर मुहम्मद हबीबुल्लाके शिष्टमण्डलके सम्बन्धमें मैं अपना मत व्यक्त कर ही चुका हूँ। उनका चुनाव सावधानीसे किया गया है। मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि उनको जनताका आशीर्वाद प्राप्त हो गया है। विदेशोंमें रहनेवाले भारतीयोंके दर्जे-का प्रश्न शायद एकमात्र ऐसा प्रश्न है जिसपर सभी दल संगठित हैं। इस बारेमें हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी और अन्य लोग सभी एकमत हैं। यूरोपीय लोगोंका मत भी वही है जो भारतीयोंका मत है। सरकार लोकमतका समर्थन करती है। यदि

१. ये २१-१०-१९२६ और २८-१०-१९२६ के **यंग इंडिया**में "एक मात्र गृहउद्योग चरखा" शीर्षकसे छपे थे।

हम चाहते हैं कि न्यायकी जीत हो तो इस तरहकी एकताकी पूरी-पूरी जरूरत है। इस सहमतिका असर दक्षिण आफ्रिकाके लोकमतपर अवश्य होगा।

किन्तु हमारा यह ऐक्य विदेशोमें रहनेवाले भारतीयोंके दर्जेके प्रश्नतक ही सीमित नही रहना चाहिए। क्या यह इच्छा करना बेजा है कि यह एकता उन प्रश्नोंके बारेमें भी होनी चाहिए जो इतने ही स्वाभाविक और शुद्ध हैं? अथवा यह बात है कि एकता केवल उन्हीं प्रश्नोंके सम्बन्धमे सम्भव है जो स्थानकी दृष्टिसे एक होनेवाले लोगोंसे दूर पड़ते हैं? सच्ची एकता अपने आप होती है। दक्षिण आफ्रिकाके प्रश्नपर एकमत होनेके लिए कोई प्रयत्न नही करना पड़ा। इस बारेमें सभी लोगोने सहज-भावसे एक ही ढंगसे सोचा। दूसरे मामलोंके सम्बन्धमें भी एकता इसी तरह सहजभावसे होगी; किन्तु वह समय आनेपर ही होगी। मुझे आशा है, और मैं खयाल करता हूँ कि हममें से कई लोग इस एकताके जबतक आनेकी आशा या कल्पना करते है, वह उसकी अपेक्षा जल्दी ही आ रही है।

किन्तु हम फिर शिष्टमण्डलकी बातपर आयें। दक्षिण आफ्रिकाके प्रवासी शिष्ट-मण्डलसे और दक्षिण आफ्रिकी संघकी सरकारसे श्री सी० एफ० एन्ड्रयूजकी मार्फत सम्बन्ध कायम रखेंगे। प्रवासियोके सम्मुख जो यह अवसर आया है, उन्हें इसका अधिकतम लाभ उठाना चाहिए। उन्हें अपनी समस्त शक्तियोंको इकट्ठा कर लेना चाहिए। उनमें जो अच्छेसे-अच्छे कार्यकर्त्ता हों, उन्हे चाहिए कि वे सारी उपलब्ध सामग्रीको इकट्ठा करके श्री एन्ड्रयूजको सौंप दे। उन्हें शिष्टमण्डलकी मर्यादाओंको समझ लेना चाहिए और अपनी माँग मजबूतीसे मर्यादित रूपमे पेश करनी चाहिए। यदि वे सत्यपर आरूढ रहेंगे और उसके साथ-साथ मर्यादा, दृढता और एकताको बनाये रखेंगे तो जीत आसान हो सकती है।

कांग्रेस प्रदर्शनी

पहले प्रदर्शनियाँ अ० भा० कांग्रेसका एक अंग बन गई थी। किन्तु वे बादमे बन्द हो गईं। अहमदाबाद कांग्रेसके अवसरपर प्रदर्शनीकी प्रथा फिर शुरू की गई और तबसे उनमें बराबर सुधार होता आया है। इन प्रदर्शनियोमे खद्दर ही खास चीज रहा करती है। खद्दरके साथ-साथ उनमें उन सब हस्तक्रियाओका भी प्रदर्शन किया जाता है, जिनके द्वारा कपास परिवर्तित होकर खद्दरके रूपमे हमारे सामने आती है। इन प्रदर्शनियोंमे केवल उन्ही वस्तुओंको स्थान मिलता है जो शुरूसे आखिर तक हिन्दुस्तानमे ही बनाई जाती हैं। इसलिए इन प्रदर्शनियोके प्रबन्धकर्त्ताओने नाम-मात्रकी स्वदेशी घड़ियों या हारमोनियमोंको, जिनका प्रत्येक पुर्जा बाहरसे मँगवाया जाता है, प्रदर्शित नही करने दिया है। उन्होने मिलोंका तैयार किया हुआ सूत और कपड़ा रखना भी स्वीकार नही किया है। इन प्रदर्शनियोंका उद्देश्य तो यही है कि उन चीजोके उत्पादनको प्रोत्साहन मिले जिनकी बेकदरी की गई है और जो प्रोत्सा-हनकी पात्र हैं। शायद ही कोई मनुष्य ऐसी लकड़ियोके गट्ठरोंको प्रदर्शनीमे रखे, जिन्हें प्रत्येक व्यक्ति जानता है और जो हर किसीके इस्तेमालमे आती हैं। लेकिन ऐसे काठका प्रदर्शन किया जा सकता है जिसमे कोई ऐसी बड़ी खासियत है जिसे

लोगोंके ध्यानमें लानेकी जरूरत है। हम मामूली लकड़ियोंके गट्ठोंको निकाल देते हैं — किसी द्वेषके कारण नहीं, बल्कि इसलिए कि उनके रखनेसे देखनेवालोंका ध्यान बिलकुल सादी लकड़ी जिसे प्रचार और संरक्षणकी आवश्यकता नहीं है तथा ऐसी लकड़ीमें बँट जायेगा, जिसे लोगोंके सामने लाना चाहिए और संरक्षण देना चाहिए। इसलिए जब एक पत्र-प्रेषकने मेरा ध्यान इस ओर आकृष्ट किया कि असम कांग्रेस कमेटीने ऐसी वस्तुएँ प्रदर्शनीमें शामिल कर ली हैं जो पुतलीघरोंके सूतसे बनी हैं या मशीन-करघोंसे बुनी गई हैं, तब मुझे आश्चर्य हुआ। इस प्रकार गौहाटी कांग्रेसके अवसरपर की गई प्रदर्शनीमें विलायती सूत या कपड़ेतकको भी स्थान दिया गया। मैंने वहाँकी स्वागतकारिणी कमेटीके नाम तार भेजा।[1] पाठकोंको यह जानकर हर्ष होगा कि कमेटीने फौरन जवाबमें यह लिखा कि मिलके सूतकी चीज इत्यादि भूलसे लेली गई थीं और फौरन हटाई जा रही हैं।[2] मैं उक्त कमेटीके सदस्योंको इस भूलको कुबूल करने तथा सुधारनेमें तत्परता दिखानेपर बधाई देता हूँ। मैं यहाँ यह भी बता देना चाहता हूँ कि अन्य वस्तुओंका वर्णन भी इतना सन्दिग्ध और अनिश्चित है कि उसके अन्तर्गत करीब-करीब हरएक चीज शामिल की जा सकती है। यदि कांग्रेस प्रदर्शनियोंका हेतु यह हो कि उनसे लोगोंकी जानकारी बढ़े, वे शिक्षा पायें और झोंपड़ोंके धन्धोंको प्रोत्साहन दें तथा लोगोंको यह मालूम हो कि खद्दरके विकासकी शक्यता कितनी है, तो गत प्रदर्शनियोंकी बाँधी हुई मर्यादाका पालन कड़ाईके साथ करना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २१-१०-१९२६

५५९. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

२१ अक्तूबर, १९२६

प्रिय सतीशबाबू,

लगता है जैसे मुद्दतके बाद आपका पत्र मिला। मुझे शक तो था कि आपका हाल, जैसा मैं चाहता हूँ, शायद उतना अच्छा नहीं है। मैं कोई मदद कर सकूँ या नहीं, लेकिन आपको मुझे अपने दुःख-दर्दसे आगाह तो रखना ही चाहिये। अगर आप मुझे अपना सुख बता देते हैं तो दुःख भी मुझे जानने चाहिए। इसलिए मेहरबानी करके लिखिए कौन-सी अप्रत्याशित कठिनाइयाँ आ पड़ी हैं?

'इंगलिशमैन' से ली गई कतरन मैंने पढ़ी है। हम जानते हैं कि अभीतक खादी लोकप्रिय नहीं हो पाई है। जब हो जायेगी तब हम जो चाहते हैं उसे पानेमें देर नहीं लगेगी।

खादी सेवाके बारेमें आपके विचार मैंने नोट कर लिये हैं।

१ व २. देखिए "पत्र : क्षितीशचन्द्र दासगुप्तको", १४-१०-१९२६।

वरदाचारीने मुझसे कहा तो था कि मैं आपसे कपाससे सम्बन्धित अध्याय लिखनेके लिए कहूँ; लेकिन मैंने उससे कहा कि वह आपको परेशान न करे। मैं जानता था कि आप बहुत ज्यादा व्यस्त होंगे।

सभीको सप्रेम।

आपका,
बापू

अंग्रेजी पत्र (जी० एन० १५६२) की फोटो-नकलसे।

५६०. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

आश्विन सुदी १५, १९८२ [२१ अक्तूबर, १९२६]

भाई घनश्यामदासजी,

आपका पत्र मीला है। आप कहते हैं ऐसे आश्रम खोलनेका यह समय नहिं है। वायु बहोत गंदा है। कार्य करनेवाले न तेजस्वी हैं न चारित्रवान्।

आपका,
मोहनदास गांधी

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ६१३७) से।
सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला

५६१. पत्र : चिमनलाल गुलाबचंद वोराको

आश्विन सुदी १५, १९८२ [२१, अक्तूबर १९२६]

भाई चिमनलालजी,

आपका पत्र मीला है। षड्दर्शन समुच्चय ग्रंथ बोध, वेदांत इ० का निरीक्षण है। असल संस्कृत है। उसका अनुवाद गुजरातीमें प्रगट हुआ है। गुजराती पुस्तक वेचनेवालोंसे मीलना संभवित है। ग्रंथ कठिन है। उसमें केवल बुद्धिका प्रयोग है।

आपका,
मोहनदास गांधी

श्रीयुत चिमनलाल गुलाबचंद वोरा
श्रीमाली मोहल्ला
रतलाम[1]

मूल पत्र (जी० एन० ६३०१) की फोटो-नकलसे।

१. मूलमें पता अंग्रेजीमें दिया गया है।

५६२. पत्र : ब्रजकृष्ण चाँदीवालाको

साबरमती
आषाढ़ कृष्ण २, १९८२ [२३ अक्तूबर, १९२६]

भाई ब्रजकृष्ण,

तुमारा पत्र मीला है धर्म बहोत बारीक वस्तु है एकका धर्म दूसरा नहिं बता सकता है। आज हि एक श्लोक बहनोंको पढ़ा रहा था। उसका अर्थ यह है विद्वान सत्‌जन और रागद्वेषादिसे मुक्त जो कहें और जो हमारे हृदयका स्पर्श करे वही धर्म है, मै न विद्वान हुं न रागद्वेषादिसे रहित हुं। मैं साधु बननेकी कोशीष कर रहा हुं। मुझे ऐसा लगता है कि यदि तुमारे मे आत्मबल है तो तुमारे घरका त्याग करके सत्यके राहसे जो द्रव्योपार्जन हो सके वह करना और उसमे से यदि कुछ बचे तो भाईको भेट करना। इसमें तुमारी कुटुंब सेवा है। एकांतमे बेठकर हृदयके स्वामीसे पूछो और जो उत्तर मीले ऐसा करो।

बापूके आशीर्वाद

मूल पत्र (जी० एन० २३६९) की फोटो-नकलसे।

५६३. पत्र : तुलसी मेहरको

आश्विन कृष्ण २, १९८२ [२३ अक्तूबर, १९२६]

चि० तुलसी महेर,

तुमारे खत आते रहते है। स्वास्थ्य अच्छा रहता है जानकर मुझको आनंद होता है। यहां आजकल बीमारी ठीक रहती है। वहांकी आबोहवा कैसी रहती है? मत्र मीलकर कितने चर्खे चलते हैं?

बापूके आशीर्वाद

मूल पत्र (जी० एन० ६५२७) की फोटो-नकलसे।

५६४. तार: सर्वेन्ट्स ऑफ इंडिया सोसाइटीको

[साबरमती
२३ अक्तूबर, १९२६ या उसके पश्चात्][1]

सर्व इंडिया[2]
पूना शहर

क्या इस अफवाह में कोई सचाई है[3] कि शास्त्री बीमारीके कारण दक्षिण आफ्रिका जानेमें असमर्थ हैं?

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १२०२५) की फोटो-नकलसे।

५६५. क्या यह जीवदया है?—३

सेठ अम्बालाल द्वारा कराये गये ६० कुत्तोंके नाशको अनिवार्य समझने तथा उसे प्रकाशित करनेमें मैंने भूल भले ही की हो, लेकिन इस घटनासे अबतक तो मैं लाभ ही होता देख रहा हूँ। ऐसे प्राणियोंके प्रति हमारा क्या धर्म है यह हम अब शायद अधिक स्पष्ट रूपसे समझेंगे। अभीतक अयोग्य होते हुए भी, बिना समझे-बूझे, दम्भ और लोकलाजवश काम चलता आया है—अब इस विषयमें स्थिति कुछ अधिक स्पष्ट हो जायेगी।

लेकिन इसके लिए पाठकों तथा मेरे बीच कुछ और सफाई हो जानी जरूरी है। मेरे नाम इस विषयमें ढेरों पत्र आये हैं; उनमें से कोई मीठा, कोई तीखा और कोई कड़वा है। इन पत्रोंसे प्रतीत होता है कि मित्र भी सेठ अम्बालालके कार्यके विषयमें मेरा मत नहीं समझ सके हैं। मेरे दुर्भाग्यसे जीवनमें ऐसा हमेशा ही होता आया है। दक्षिण आफ्रिकामें, ऊपरी तौरपर देखनेसे सिद्धान्त विरोधी लेकिन हकीकतमें सिद्धान्तानुकूल किये हुए कार्यके हेतु; जो बादमें सही सिद्ध भी हुआ, मुझ निर्दोष होनेके

१. यह तार सी० एफ० एन्ड्रयूज द्वारा २० अक्तूबर, १९२६ को डर्बनसे प्राप्त एक तारके सिलसिलेमें था। श्री एन्ड्रयूजका तार २३ अक्तूबर, १९२६ को साबरमती पहुँचा था। उसमें कहा गया था "नेटाल विटनेसने लिखा है कि शास्त्री अचानक बीमार पड़ जानेके कारण आनेमें असमर्थ। क्या आपको कोई जानकारी है? भारतीय लोग चिन्तित।"

२. सर्वेंट्स ऑफ इंडिया सोसाइटीका तारका पता।

३. अफवाह सच नहीं थी। देखिए "पत्र: सी० एफ० एन्ड्रयूजको" २९-१०-१९२६।

बावजूद जिन्दगी तककी जोखिम उठानी पड़ी थी।' बारडोलीकी 'हिमालय' जैसी बड़ी 'भूल' की याद तो अभी ताजी ही है। बम्बई सरकारने मेहरबानी करके यरवदा जेलमें मुझे डाल दिया नहीं तो बहुत-सी लिखा-पढ़ी करनेकी परेशानी उठानी पड़ती। मुझे आज भी नहीं लगता कि बारडोलीके निर्णयमें कोई भूल थी। वरन् मैं उसे प्रौढ़ अहिंसा तथा मूल्यवान सेवाका एक कार्य मानता हूँ।

इन कुत्तोंके सम्बन्धमें अपने मतके बारेमें भी मुझे वैसा ही लग रहा है। मुझे लगता है कि अहिंसामय होनेका दावा करते हुए भी इस मतका समर्थन किया जा सकता है।

लेकिन शत्रु, मित्र और सुहृद् — सभी पाठकोंको धैर्य तो रखना ही चाहिए। शत्रुके रूपमें लिखनेवालोंने मर्यादा त्याग दी है; उनके पत्रोंमें अविनय और रोष भरा है। उन्होंने मेरी स्थितिको समझनेका प्रयत्न नहीं किया है। उन्हे मेरा मत असह्य लगा है। पत्र-लेखकोंके निकट या तो मैं सुधारक तथा शिक्षक हूँ या फिर वे स्वयं मुझे शिक्षा देनेकी इच्छा रखते हैं। यदि वे मुझे शिक्षक मानते हों तो उन्हें चाहिए कि वे विनय, शान्ति और श्रद्धापूर्वक मुझसे प्रश्न करें और जो मैं लिखूँ उसपर मनन करें; यदि वे मुझे शिक्षा देना चाहते हों तो उन्हें मेरे ऊपर ममता रखकर प्रेम तथा धीरजसे मुझे मीठे शब्दोंमें समझाना चाहिए। मैं क्रोध करके अपने संरक्षणमें रहनेवाले बालकोंको कुछ नहीं सिखा सकता। मैं उनके प्रति प्रेम रखता हूँ, उनका अज्ञान सहन करता हूँ और उनके साथ हँसता-खेलता हूँ, तब उन्हें सिखाता हूँ। मैं इसी सहनशीलता, इसी प्रेम और इसी विनोदकी आशा अपने क्रोधी शिक्षकोंसे करता हूँ। मैंने कुत्तोंके विषयमें अपना मत सद्भावनासे तथा अपना धर्म समझकर दिया है। अगर उसमें कोई त्रुटि हो तो मेरे शिक्षक मुझे धैर्यपूर्वक तर्कपूर्ण ढंगसे समझायें। अगर वे मुझपर क्रोध करेंगे या मुझसे अनेक प्रकारके अप्रस्तुत प्रश्न करेंगे तो उनकी बात मेरी समझमें कैसे आयेगी?

एक भाई मुझसे असमय मिलनेके लिए आये। मैं अतिशय कार्यव्यस्त रहता हूँ — यह बात वे जानते थे। उन्होंने मुझसे वार्तालाप किया, मुझे कटु बातें सुनाईं तथा मुझ पर क्रोध उतारा। मैंने उन्हें विनोदमें तथा विवेकपूर्वक जवाब दिया। उन्होंने वार्तालापको एक पत्रिकाके रूपमें छपवा लिया है; और उसे बेच रहे हैं। उसकी एक प्रति मेरे पास पड़ी हुई है। उसमें सत्यकी मर्यादा नही है — फिर विनय कैसे हो? उन्होंने मुझसे उस वार्तालापको छपवानेकी अनुमति नही ली और न मुझे उसे दिखाया ही। ऐसा करके वे मुझे क्या सिखा सकते है? जो सत्यको छोड़ता है, वह अहिंसाकी जड़ काटता है। जो क्रोध करता है, वह खून करता है। वह मुझे जीवदया कैसे सिखा सकता है?

लेकिन शत्रुतापूर्ण व्यवहार करनेवालों-सहित ये सब लोग मुझे आत्म-निरीक्षण करना सिखा रहे हैं। इससे मुझे यह देखनेका मौका मिलता है कि मैं क्रोधको

१. गांधीजीपर १९०८ में मीर आलम द्वारा किये गये हमलेकी ओर संकेत है। देखिए खण्ड ८, पृष्ठ ७४।

प्रतिक्रियासे बच सका हूँ या नहीं। और अगर मैं उनके क्रोधका मूल खोजता हूँ तो उसकी तहमें प्रेम ही पाता हूँ। उन्होंने मुझमें अपनी समझके अनुसार अहिंसाकी कल्पना कर ली थी। अब उनको अपनी कल्पनासे उलटा दिखाई देता है। वे मुझे महात्मा मानते थे इसीलिए वे मुझपर क्रोध करते हैं, वे लोगोंपर मेरा अपने अनुकूल प्रभाव पड़ता देखकर प्रसन्न होते थे। अब मैं उनको अल्पात्मा लगता हूँ। वे मेरे प्रभावको कुप्रभाव मानकर दुःखी होते हैं और चूँकि उन्होंने क्रोधको जीतना नहीं सीखा इसीलिए उनका यह दुःख क्रोधमें परिणत हो जाता है।

मैं उनके इस क्रोधका स्वागत करता हूँ, उसके पीछे जो भाव है, उसे मैं समझता हूँ। मैं उन्हें धीरजसे समझानेका प्रयत्न करूँगा। उस प्रयत्नमें सहायता करनेके लिए मैं उनसे विनती करता हूँ कि वे अपने क्रोधको शान्त करें। मैं उनके क्रोधको समझ गया हूँ। मैं सत्यका पुजारी तथा शोधक हूँ। यदि मुझसे भूल हुई होगी तो मैं उसे देख लूँगा और चूँकि भूलको कबूल करना मुझे प्रिय है, इसलिए उसे तुरन्त कबूल करके सुधार लूँगा। शास्त्रका वचन है कि सत्यवादी एवं सत्याचरककी भूलोंसे भी जगतको क्षति नहीं पहुँचती। सत्यकी महिमा ऐसी ही है।

मित्रों और सुहृदोंके लिए बस इतना ही कहूँगा.

मैंने आपके पत्र एक जगह रख लिये हैं। बहुतोंको तो मैं सामान्यतया व्यक्तिगत रूपसे उत्तर दे रहा हूँ। लेकिन इस विषयमें इतने लोगोंके और इतने लम्बे-लम्बे पत्र आये हैं कि उनका सविस्तार उत्तर देना असम्भव है। पत्रोंकी पहुँच दे सकनेका अवकाश भी मेरे पास नहीं है।

कुछ लेखक तो अपने पत्रोंको 'नवजीवन' में प्रकाशित कराना चाहते हैं। वे मुझे इस बोझसे मुक्त कर दें। मैं उनकी दी हुई दलीलोंका उत्तर यथाशक्ति और यथामति देनेका प्रयत्न अवश्य करूँगा। वे लोग इतने ही से सन्तोष मान लें। मैं उनसे इतनी ही प्रार्थना करता हूँ।

प्रस्तावना लम्बी हो गई है; किन्तु पाठक इसे आवश्यक समझकर क्षमा करेंगे। अब हम मूल विषयपर आयें — फिलहाल तो मैं प्राप्त पत्रोंके प्रश्नोंपर विचार करके ही सन्तोष मानूँगा।

एक भाई लिखते हैं:

> आप कुत्तोंको खाना देनेके लिए मना करते हैं, लेकिन मैं उनको बुलाने तो नहीं जाता — वे तो खुद-बखुद आ जाते हैं और खड़े रहते हैं। उनको कैसे मार भगायें? जब बहुत-से कुत्ते आ जायेंगे, तब देखा जायेगा। कुत्तोंको खाना देनेसे मनुष्यमें दयाभाव पनपता है और न देनेसे निष्ठुरता आती है। हम पापमें डूबे हैं, फिर हम जितना हो सके उतना धर्म क्यों न करें?

इस प्रकार दयापूर्ण दिखाई देनेवाले विचारोंके कारण ही हम लोग दया-धर्मके नामपर हिंसाको अनजाने ही बढ़ावा दे रहे हैं। लेकिन जिस प्रकार लौकिक राजाके कानूनके अज्ञानके कारण अपराधी दण्डसे बचता नहीं है, वही बात अलौकिक राजाके नियमोंके सम्बन्धमें भी लागू होती है।

हम जरा उक्त शंका करनेवालेके तर्कपर भी विचार करें। हम अपने घरपर भिखारीके आनेपर उसे रोटी देते हैं और समझते हैं कि हमने पुण्य किया। हम इस प्रकार बहुत हदतक भिखारियोंके सम्प्रदायको बढ़ाने, आलस्यको बढ़ावा देने और इस कारण अधर्मकी वृद्धि करनेमें निमित्त बनते हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि सच्चे भिखारियोंको मरने दिया जाये। जो अपंग या अपाहिज हैं, उनका पोषण करना समाजका धर्म है। लेकिन हम व्यक्तिगत रूपमें इस कामका उत्तरदायित्व न ले यह काम समाजके अधिकारी यानी प्रतिनिधि — स्वराज्य हो तो राजा — को करना चाहिए। इसके लिए संस्था हो और दयालु सज्जन ऐसी संस्थाको दान दें। यदि प्रतिनिधि पवित्र तथा ज्ञानवान् होगा तो प्रत्येक भिखारीको उसके बारेमें प्रयत्नपूर्वक पूछताछ करके, वह पात्र होगा तो, आश्रय देगा। ऐसा न होनेसे भिखारीके वेशमें चोर और लम्पट पुरुष पैसा कमाते हैं और देशमें भुक्खड़पन घटनेके बदले बढ़ता है।

जिस प्रकार भिखारीको खाना देनेमें पाप है, उसी प्रकार आवारा कुत्तोंको टुकड़ा डालनेमें भी पाप है — उसमें कुत्तोंके प्रति झूठी दया है, क्षुधापीड़ित कुत्तेको रोटीका टुकड़ा देनेमें उस कुत्तेका अपमान है। आवारा कुत्ते समाजकी सभ्यता या दयाके चिह्न नहीं हैं; बल्कि समाजके अज्ञान तथा आलस्यके चिह्न हैं।

जानवर अपने भाई-बन्द हैं। मैं इनमें सिंह, बाघ और अन्य पशुओंको भी गिनता हूँ। हम लोगोंको सिंह, सर्प आदिके साथ रहना नहीं आता — इसका कारण हमारी शिक्षाकी त्रुटि है। जब मनुष्य उनको अधिक अच्छी तरह पहचानेगा, तब वह इस तथ्यको जान लेगा और ऐसे जीवोंतकको पालना सीखेगा। आज तो मनुष्यने विधर्मी अथवा विदेशी मनुष्योंतकको अपनाना नहीं सीखा है।

कुत्ता तो वफादार साथी है। कुत्तों और घोड़ोंकी स्वामिभक्तिके चाहे जितने दृष्टान्त मिल सकते हैं। इसलिए हम जैसे अपने साथीको इधर-उधर भटकते फिरने नहीं देते, बल्कि उसे आदरपूर्वक रखते हैं, हमें वैसा ही कुत्तोंके बारेमें करना चाहिए। हम आवारा कुत्तोंके सम्प्रदायको बढ़ाकर कुत्तोंके प्रति हमारा जो दायित्व है, उससे मुक्त नहीं होते।

दूसरी ओर, अगर हम आवारा कुत्तोंके अस्तित्वको पाप समझते हैं और इस-लिए उनको खानेको नहीं देते, तो हम कुत्तोंकी सेवा करते हैं और उनको सुख देते हैं।

तब वह आदमी जो कुत्तोंके प्रति भी दयाधर्म पालना चाहता है क्या करे? उसे अपनी आमदनीमें से कुत्तोंका भाग निकालकर उसका उपयोग जानवरोंकी संस्थाओं-को सौंप देना चाहिए। अगर ऐसी संस्था शक्य न हो — और मेरा खयाल तो यह है कि शक्य होते हुए भी ऐसी संस्था है बहुत मुश्किल — तो व्यक्ति स्वयं एक या अधिक कुत्तोंको पालनेका प्रयत्न करे। अगर वह यह भी न कर सके, तो उसे कुत्तोंका प्रश्न छोड़कर अपने जीवदयाभावका अमल अन्य प्राणियोंके विषयमें करना चाहिए।

"लेकिन आपने तो उन्हें मारनेकी बात कही है?" इस प्रकारके प्रश्न अन्य पत्रलेखक — कोई आवेशमें और कोई प्रीतिसे — पूछते हैं। मैंने कुत्तोंके मारनेको कोई स्वतन्त्र धर्मकी तरह प्रस्तुत नहीं किया है; मैंने तो उसे आपद्धर्म ही

बताया है। मैंने परिस्थिति विशेषमें उसे धर्म कहा है। अगर कुत्तोंकी रक्षा राजा न करे, पच भी न करे, यदि लोग खुद भी उन्हें न पाल सकें और कुत्तोंसे दुःख पायें तथा उनकी भेंट चढ़नेके लिए तैयार न हों, तो उन्हें तथा अपनेको पीड़ा और भयसे मुक्त करनेके उपायकी तरह इसका अवलम्बन करें। यह कड़वा घूँट है, लेकिन मेरी अन्तरात्मा कहती है कि उसमें शुद्ध प्रेम और दया है।

कुत्तोंकी आजकी स्थिति हिन्दुस्तानके दुबले पशुओं तथा मनुष्यों-जैसी है। मेरा यह दृढ विश्वास है कि इस शोचनीय परिणामका कारण हमारी अहिंसा धर्मकी अनभिज्ञता — अहिंसाका हममें अभाव होना है। धर्मका फल पामरता, भुखमरी, दुष्काल इत्यादि हर्गिज नहीं है। अगर यह देश पुण्यभूमि हो तो आज हम जो दारिद्र्य अपने चारों ओर व्याप्त देखते हैं, वह दिखाई नहीं दे सकता था। कई उतावले और अधीर लोगोंने इससे यह सार निकाल लिया है कि अहिंसा धर्म ही झूठा है। मैं जानता हूँ कि अहिंसा धर्म झूठा नहीं है, बल्कि उसके पुजारी झूठे हैं।

अहिंसा क्षत्रियका धर्म है। महावीर क्षत्रिय थे। बुद्ध क्षत्रिय थे। राम, कृष्ण आदि क्षत्रिय थे। वे सब, थोड़े या बहुत, अहिंसाके उपासक थे। हम उनके नामपर भी अहिंसाका प्रवर्तन करना चाहते हैं। लेकिन इस समय तो अहिंसाका ठेका भीरु वैश्यवर्गने ले रखा है; इसलिए वह धर्म निस्तेज हो गया है। अहिंसाका दूसरा नाम है क्षमाकी परिसीमा। लेकिन क्षमा तो वीर पुरुषका भूषण है। अभयके बिना अहिंसा सम्भव नहीं हो सकती; हम लोग तो जीवदयातक नहीं जानते।

हम गायोंको बचा नहीं सकते, कुत्तोंको लातों और लाठियोंसे मारते हैं, उनकी एक-एक पसली दिखाई देती है। हमें इससे शर्म नहीं आती, लेकिन अगर आवारा कुत्ता मरता है तो हमें दुःख होता है। पाँच हजार कुत्ते भूखे तरसते फिरते रहें, जूठन और मैला खायें और मरें नहीं, यह सब अच्छा या उनमें से पचास मर जायें और शेष सुरक्षित रहें सो अच्छा? लाठी मारकर कुत्तेको बाहर कर देना तो पाप है ही। लेकिन यह दुःख न देख सकनेवाला व्यक्ति एक या अधिक कुत्तोंको गोली मारकर पुण्य करता है — यह बात समझी जा सकती है।

हमेशा ही प्राण लेना हिंसा नहीं है। या यों कहें कि अनेक अवसरोंपर प्राण न लेनेमें अधिक हिंसा है। मैं इसका विवेचन आगे चलकर करूँगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २४-१०-१९२६

५६६. पत्र : रॉबर्ट शैमल्डको

आश्रम
साबरमती
२४ अक्तूबर, १९२६

प्रिय शैमल्ड,

आपका अप्रत्याशित पत्र[1] पाकर अच्छा लगा। आपने मुझे ३० वर्ष पहलेके सुखद संसर्गकी याद दिला दी है। मुझे आपका और श्रीमती शैमल्डका चेहरा अच्छी तरह याद है।

मुझे आपको अपने यहाँके जीवनके बारेमें कुछ बतानेकी कोई जरूरत नहीं, क्योंकि वह तो एक खुली किताब ही है। मैंने आपके युद्ध सम्बन्धी घोषणापत्रको[2] पढ़ा। ऐसा घोषणापत्र आप ही लिख सकते थे। कृपया श्रीमती शैमल्डको मेरा नमस्कार कहिए।

हृदयसे आपका,

श्री रॉबर्ट शैमल्ड
३०८, द एयरटन
२११२ एफ० स्ट्रीट, एन० डब्ल्यू०
वाशिंगटन, डी० सी०

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०८३२) की फोटो-नकलसे।

५६७. पत्र : फैलिक्स वेलीको

आश्रम
साबरमती
२४ अक्तूबर, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मैं आपकी मासिक पत्रिकाके लिए कुछ लिखना पसन्द तो करता, लेकिन इस समय मेरे पास इतना ज्यादा काम है कि मैंने कुछ समयके लिए

१. १४ सितम्बरके अपने पत्रमें शैमल्डने लिखा था : आप प्रिटोरियामें हमारे [illegible] मिशनमें बहुत आया करते थे। हालाँकि इस बातको ३० वर्ष हो गये हैं, उन सुन्दर दिनोंकी याद हमारे मनमें अभी भी ताजी बनी हुई है (एस० एन० १०८१०)।

२. शैमल्डने अपने पत्रके साथ एक याचिका भी भेजी थी, जिसे उन्होंने बोअर-युद्धको और रक्तपात रोकनेकी दृष्टिसे १९०० में प्रिटोरियामें प्रकाशित कराया था; लेकिन उसका मिशनरियोंके अलावा दूसरे बहुत लोगोंने समर्थन नहीं किया था।

किसी भी पत्रिकाके लिए न लिखनेका निश्चय कर लिया है। अगर मुझे फुर्सत मिली और मुझे यथासमय याद दिलाई गई, तो बादमें मैं आपके लिए कुछ लिखूंगा। लेकिन हो सकता है कि ऐसी आशा करना व्यर्थ हो।

हृदयसे आपका,

श्री फैलिक्स वेली
होटल रिचमण्ड
जिनेवा (स्विटजरलैण्ड)

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०८३३) की फोटो-नकलसे।

५६८. पत्र : एल्स गिजेको

आश्रम
साबरमती
२४ अक्तूबर, १९२६

प्रिय मित्र,

बड़ौदा निवासी अपने मित्र श्री देशपाण्डेकी मार्फत आपका पत्र[1] पाकर मुझे बड़ी खुशी हुई। ईश्वरके प्रति कृतज्ञ हूँ कि मेरे लेख समार-भरके मेरे मित्रोंको राहत पहुँचानेवाले लगते हैं।

हृदयसे आपका,

कुमारी एल्स गिजे
बर्लिन, एस० डब्ल्यू० ११
प्रिन्ज उल्बर्ट — स्ट्रास ५

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९७२२) की फोटो-नकलसे।

१. २५ अगस्त, १९२६ के अपने पत्रमें कुमारी एल्स गिजेने *यंग इंडिया*में प्रकाशित गांधीजीके लेखोंके संग्रहको दिलचस्पीके साथ पढ़नेकी बात लिखी थी और यह भी लिखा था कि राष्ट्रीय आन्दोलनमें खद्दरका जो स्थान रहा है उसपर वह एक लेख लिखना चाहती है (एस० एन० १०८०४)।

५६९. पत्र: वधूमल मंघीरमलको

आश्रम
साबरमती
२४ अक्तूबर, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आपकी आपत्ति जानकर दुःख हुआ। मैं आपको केवल यही सलाह दे सकता हूँ कि आप परिस्थितिका बहादुरीके साथ सामना करे और उस स्त्रीकी कभी याद ही न करें जो किसी समय आपकी पत्नी थी। किसी स्त्रीका पति अन्य किसी स्त्रीके साथ रहने लगता है, तब स्त्री क्या करती है? वह तो चुपचाप उस स्थितिको स्वीकार कर लेती है और अपने तथाकथित पतिके साथ रहनेमें सन्तोष मानती है। आपको सेवा करनेकी जरूरत नही। आपको अपनी शक्ति उसके छोड़े हुए बच्चोंके लालन-पालनमे लगानी चाहिए।

हृदयसे आपका,

श्री वधूमल मंघीरमल
एरेटेड वाटार शॉपकीपर
सेहवान (बिहार)

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९७२३) की फोटो-नकलसे।

५७०. पत्र: नाजुकलाल चोकसीको

सोमवार, २४ अक्तूबर, १९२६

भाईश्री ५ नाजुकलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। वेला बहन और मोतीको पत्र भेज रहा हूँ। तुम इंजेक्शन अवश्य लगवा लेना। एक मनुष्य इंजेक्शन लगवानेके बाद मर गया, हम इससे कोई निष्कर्ष नहीं निकाल सकते। डाक्टरी चिकित्सा आरम्भ करनेके बाद डाक्टरपर विश्वास रखना ही उचित है। जबतक वह आशावान है हमें तबतक तनिक भी न डरना चाहिए। मोती मुझे यह बात बताना भूल ही गई। उसने इसकी चर्चा तो की कि तुमने इंजेक्शन नहीं लगवाये हैं। लेकिन तुमने मेरी सलाह पूछी है, उसने इस बारेमें कुछ नहीं कहा।

मुझे उसकी लापरवाही और सुस्ती दूर करना मुश्किल दिखाई देता है। मैं उतना समय नहीं निकाल सकता। यह बात तो मैंने पहले ही दिन की थी। उसे

अपने साथ रखूँ तो कदाचित् इस सम्बन्धमें कुछ किया जा सके। लेकिन वह स्वयं इसके लिए तैयार न होगी। मुझे दुःख है कि मैं उसे अपनी इच्छाके अनुसार समय नहीं दे सकता।

वेला बहनका रोग पुराना ही है। वे मेरी सलाहसे दूध और फलपर रहती हैं। इससे उनमें कुछ दुर्बलता भले आ गई थी, परन्तु उनका रोग तो हलका हो गया है। चिन्ताका कारण नहीं है। तुम्हारी जरूरत पहली चीज है, इसलिए तुम्हें जरूरत हो तो अवश्य लिखना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (एस० एन० १२१३८) की फोटो-नकलसे।

५७१. पत्र : मोहनलाल मंगलदास शाहको

आश्रम
२४ अक्तूबर, १९२६

भाईश्री मोहनलाल मंगलदास शाह,

आत्मसाक्षात्कारका अर्थ है समस्त जीवोंको अपने समान मानना। जीवनको सार्थक बनानेकी विधि अन्तर्यामी प्रभुसे पूछनी चाहिए।

ईश्वरकी प्राप्तिके लिए अपने-आपको भूल जाना चाहिए, फिर चाहे जीवन कल ही टूट जाये।

कार्यमात्र रामको अर्पण करनेसे उसका स्मरण प्रतिक्षण सहज ही होता है।

मौनव्रत सत्यकी खोजमें साधन रूप है। उसकी विधि यह है कि बोलकर या लिखकर कुछ न कहा जाये और यदि कुछ कहा जाये तो जितनेसे लोक-व्यवहार चल जाये उतना ही।

मोहनदासके वन्देमातरम्

मौन भवन
मु० अलीणा
ताल्लुका नडियाद

गुजराती पत्र (एस० एन० १९९५५) की माइक्रोफिल्मसे।

५७२. पत्र : भगवानजी पुरुषोत्तमको

२४ अक्तूबर, १९२६

भाईश्री भगवानजी

आपके पत्र मिले। समय मिलनेपर मैं 'नवजीवन' मे अस्पृश्यताके बारेमे लिखूंगा। कुत्तोके विषयमे मैं महाजनो-जैसा नही बरत सकता। इसीलिए मैंने कुछ परिस्थितियोंमे निश्चित मर्यादाएँ रखकर कुत्तोंको मारनेकी बात कही। कुत्तोंसे सम्बन्धित पाश्चात्य पद्धतिका अध्ययन करनेमे न मेरी रुचि है, न उसके लिए समय। अहिंसा उतना सीधा विषय नही, जितना आप सोचते है। यदि कुत्तोंको मारा जा सकता हो, तो पेड़-पौधोंने ही क्या पाप किया है? इस प्रश्नके भावार्थपर गम्भीरतासे विचार करनेपर पेड़-पौधोके साथ जो व्यवहार उचित लगे वही कुत्तोंपर लागू करे। अधिक विस्तार से 'नवजीवन' मे लिखूंगा।

बापूके आशीर्वाद

भाईश्री ५ भगवानजी पुरुषोत्तम
चरखा, वावराके रास्ते
काठियावाड़

गुजराती पत्र (एस० एन० १९९५६) की माइक्रोफिल्मसे।

५७३. भाषण : मजदूर संघ, अहमदाबादके वार्षिकोत्सवमें[1]

[२४ अक्तूबर, १९२६]

साल-भरतक किसी विशेप कारणसे ही बाहर जानेके मेरे नियमका ध्यान रखकर इस सभामें केवल प्रतिनिधि बुलाये गये है और सव कार्यकर्त्ताओंकी सार्वजनिक सभा नहीं की गई है। इसलिए हम जिन विषयोंकी चर्चा बड़ी सभामे नहीं कर सकते उनकी चर्चा इस छोटी सभामें कर सकेंगे। मेरा सार्वजनिक संस्थाओंके कार्य-संचालनका अनुभव ३५ वर्षोंका है और मेरा तो यह सामान्य स्वभाव बन गया है कि जितना पैसा मिलता है, मैं उतना खर्च कर देता हूँ, जोड़ता नहीं हूँ। हालाँकि खर्च आप जितना चाहें उतना कर सकते हैं किन्तु मेरा मत तो यह है कि यदि आप निश्चय करके एक करोड़ रुपया इकट्ठा कर लें तो अन्य संस्थाओंकी भाँति आपकी संस्थाका भी पतन होने लग जायेगा। इसके विपरीत आप लोग अपने देशके उत्थानके लिए

१. यह उत्सव गांधीजीकी अध्यक्षतामें आश्रममें हुआ था और गांधीजीने यह भाषण संघके मन्त्री श्री गुलजारीलाल नन्दा द्वारा १९२५ की रिपोर्ट प्रस्तुत करनेके पश्चात् दिया था।

जो रुपया खर्च करेंगे वह आपको चक्रवृद्धि व्याज सहित वापस मिल जायेगा। आप मिल-मालिकोंसे लाभांशकी माग करते हैं लेकिन उनका कहना है कि उनके पास लाभाश देनेके लिए धन नही है। मैं आपसे कहता हूँ कि जबतक आप लोग मद्यपान आदि दुर्गुणोको न छोड़ेंगे तबतक आपकी माँगका आपके मालिको या मैनेजरोपर कोई प्रभाव नही पड़ेगा। अपने कष्टोको दूर करनेका उपाय आप लोगोके ही हाथमें है। मिलोमें स्वराज्य लानेके लिए आपको अपने सब दुर्गुणोका त्याग करना पड़ेगा। आपको मिलोमे यह समझकर पूर्ण उत्साहसे काम करना चाहिए, मानो आप स्वय मिलोके मालिक हैं। आपको अपने सघको इस प्रकार सगठित करना चाहिए कि कोई भी मजदूर उसका सदस्य बने बिना न रहे। आपका सघ देश-भरमे प्रसिद्ध है; परन्तु इससे आपको फूल नही जाना चाहिए। यह सघ देश-भरमे उत्तम माना जाता है क्योंकि यह उतना सुव्यवस्थित है। परन्तु जबतक अपनी जानकारीमे आई हुई कमजोरियोको आप दूर नही कर लेते तबतक आपको चैनसे नहीं बैठना चाहिए। उन्नतिकी कोई सीमा नही होती।

[गुजरातीसे]

गुजराती, ३१-१०-१९२६

५७४. सन्देश : 'फॉरवर्ड' को

मैं 'फॉरवर्ड' को अपनी शुभ कामनाएँ भेजता हूँ। सुभाष बोस जैसे नौजवानोको बाकायदा मुकदमा चलाये बिना जितने दिनोतक जेलमे बन्द रखा जायेगा, उतनी ही तेजीसे हम अपने लक्ष्यकी ओर आगे बढ़ेंगे। स्वतन्त्रताका सघर्ष कोई खेल नही है। इस वास्तविक और कठोर सघर्षमे हमे अपने हजारो अच्छेसे-अच्छे साथियोकी बलि देनी पड़ेगी। और हमे यह कीमत चुकानेमे किसी प्रकारका आगा-पीछा नही करना चाहिए।

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

फॉरवर्ड, २५-१०-१९२६

५७५. पत्र : श्री और श्रीमती पोलकको

साबरमती
२६ अक्तूबर, १९२६

प्रिय हेनरी और मिली,

तुम्हारे पहले तारको पढ़कर ही मेरा मन बुरीसे-बुरी खबर सुननेके लिए तैयार हो चुका था; फिर भी इस समाचारसे मुझे बड़ा सदमा पहुँचा। दूसरा तार जिस समय मिला बा मेरे पास थी। वह कुछ बातचीत करने आई थी। वह समझ गई कि मुझे कितना गहरा सदमा पहुँचा है। उम्मीद है कि तुम्हें मेरे दोनों तार[1] यथासमय मिल गये होंगे। मैं जानना चाहता हूँ कि वे तार तुम्हें मिले या नही; क्योंकि मैं यह चाहता हूँ कि तुम यह समझ लो कि तुम्हारे इस दुःखमें मैं तुम्हारे साथ हूँ।

तुम जानते हो कि उसने[2] मुझे मेरे पत्रके उत्तरमें केवल एक ही स्नेहपत्र लिखा था। उस पत्रमें भी मुझे उसी अदम्य इच्छाशक्तिके दर्शन हुए जो मुझे जब वह मेरे साथ सोया करता था, तब दिखाई दिया करती थी। आत्माकी अमरतामें मेरा विश्वास पहलेसे ज्यादा दृढ़ हो गया है। इसलिए, मैं जानता हूँ कि उसका कुछ भी नष्ट नहीं हुआ है। "मृत्यु तो निद्रा और विस्मृतिकी एक स्थिति-भर है"[3] यह वाक्य तुम्हारे और मेरे लिए एक काव्योक्ति-भर नही है। वाल्डोके लिए यह जीवन उच्चतर जीवनकी अवस्थामें पहुँचनेकी एक सीढ़ी-जैसा ही था। ईश्वर तुमको यह दुःख सहन करनेकी शक्ति दे। शायद इस विचारसे तुम्हें सान्त्वना मिलेगी कि हम सबको उसी राह जाना है, जिसपर वाल्डो गया है।

हम सबके स्नेह सहित,

तुम्हारा,
भाई

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० १०८३४) की फोटो-नकलसे।

१. ये उपलब्ध नहीं हैं।
२. वाल्डो; पोलकका ज्येष्ठ पुत्र।
३. "डैथ इज़ बट ए स्लीप ऐंड ए फॉरगेटिंग"।

५७६. पत्र : सी० एफ० एन्ड्रयूजको

आश्रम
साबरमती
२६ अक्तूबर, १९२६

प्रिय चार्ली,

मैंने तुम्हारे तारका उत्तर[1] दे दिया है। शास्त्री निश्चय ही आ रहे हैं।[2]

आशा है कि तुम अच्छे हो। मैं तो बार-बार तुमसे यही कहूँगा कि 'किसी बातकी चिन्ता मत करो।' शिष्टमण्डल काफी अच्छा बन पड़ा है और लोगोंको वह प्रभावित कर सकेगा।

तुम्हारे सारे आदेश पूरे कर दिये गये हैं। मुझे 'मेट्रोपोलिटन' से तो सुन्दर उत्तर मिला है।

बेचारा हेनरी। मुझे अभी वाल्डोकी मृत्युका तार मिला है। मिली बहुत ज्यादा दुःखी होगी, लेकिन वह बहादुर है और जल्दी ही इस सदमेपर काबू पा लेगी।

तुम्हारा,
मोहन

[पुनश्च :]

जब तुम जोहानिसबर्ग जाओ तब श्रीमती पी० के० नायडूका पता लगाना। और यह भी मालूम करना कि उनका निर्वाह किस प्रकार हो रहा है? रामचन्द्रन राष्ट्रीय मुस्लिम यूनिवर्सिटी दिल्लीमें चरखा सिखानेके लिए गये हैं। शान्ति आजीविकाकी खोजमें सिंगापुर जा रहा है, क्योंकि वह उस लड़कीका खर्च जुटाना चाहता है जिसके साथ वह शादी करना चाहता है। देवदास अभीतक मसूरीमें, कृष्णदास बंगालमें और प्यारेलाल फिन हाल मथुरादासके पास है। हमारे हिस्से मलेरिया काफी मात्रामें आ जुटा है। लेकिन मरीज सुधारके मार्गपर हैं।

मो०

रेवरेंड सी० एफ० एन्ड्रयूज
डर्बन

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० १२०२५ ए) की फोटो-नकलसे

१. उपलब्ध नहीं है।

२. देखिए "तार: सर्वेट्स ऑफ इंडिया सोसाइटीको", २३-१०-१९२६ को या उसके पश्चात्की पादटिप्पणी।

५७७. पत्र : देवचन्द पारेखको

आश्विन बदी ६, १९८२ [२६ अक्तूबर, १९२६][1]

भाईश्री ५ देवचन्दभाई,

आगामी वर्षके लिए रुई इकट्ठी की जाये अथवा नही, इस बारेमे विचार कर लेना जरूरी है।

चि० जयसुखलालने[2] लिखा है कि यदि परिषद्‌के[3] साथ खादी-प्रदर्शनी भी करनी है तो उसकी तैयारी आजसे ही की जानी चाहिए। मैं भी यही मानता हूँ।

बापू

गुजराती पत्र (जी० एन० ५७०४) की फोटो-नकलसे।

५७८. पत्र : उदित मिश्रको

आश्रम

आश्विन कृष्ण ६, १९८२ [२६ अक्तूबर, १९२६]

भाई उदित मिश्रजी

आपका पत्र मीला है।

मेरा अभिप्राय है कि आजकलकी पाठशालाओंसे हमारे लड़कोंको हम बचा लें। अच्छा शिक्षक मिलनेसे उसको लड़कोंको सिपुर्द करनेसे अच्छा है। अवश्य अच्छी पाठशालाका लाभ अविक है।

जो-कुछ मैं हम सब आज हैं उसका बड़ा कारन पूर्वजन्म तो है हि।

जब मैं तीसरे दरज्जेकी गाड़ीमें मुसाफरी करता था तब मैंने कई वार मुसाफरों-ने विगाड़े हुए डब्बे दुरस्त कीये हैं। कीसीने इससे शर्मा कर विगाडको रोका है किसीने देखा तक भी नहि है।

राजेन्द्र बाबूके वहां मैं जब पहले गया तब वे पुरीमें थे। मेरा जानेका उनको पता भी न था, न मै उनको पहचानता था, नोकरने मेरे साथ अैसा बरताव किया जैसा अेक मिस्कीनके साथ कीया जाता है। मै मिस्कीनके लिबासमें था। नोकरका कोई दोष नहि था। चंद दिनोंके बाद राजेन्द्रबाबू मुझे मुजफरपुरमें मिले।

१. डाककी मुहर २७ अक्तूबरकी है।

२. जयसुखलाल गांधी, गांधीजीके भतीजे।

३. काठियावाड़ राजनीतिक परिषद्।

इन बातोंपर आप कुछ न लीखें। कमसे कम नाम ठाम देकर कुछ न लीखें।

आपका,
मोहनदास गांधी

श्री उदित मिश्रजी
बिडला पार्क[1]
बालीगज
कलकत्ता

मूल पत्र (एस० एन० १९९५८) की माइक्रोफिल्मसे।

५७९. पत्र : एस्थर मेननको

[साबरमती
२७ अक्तूबर, १९२६][2]

रानी बिटिया,

परिवारके नये सदस्यको मेरे आशीर्वाद। उम्मीद है कि तुम और बच्चा दोनों धीरे-धीरे स्वस्थ हो रहे होंगे। तुमने जो नाम सुझाये हैं उनमें सभी अच्छे हैं। नाम जितना छोटा हो, उतना ही अच्छा।

तुम्हारा,
बापू

माई डियर चाइल्ड तथा राष्ट्रीय अभिलेखागारमें सुरक्षित अंग्रेजी पत्रकी फोटो-नकलसे।

५८०. पत्र : लालन पण्डितको

आश्रम
२७ अक्तूबर, १९२६

भाईश्री ५ लालन,

आपके पत्र मिले। अन्तिम दो पत्रोंके उत्तर तो प्रसंग आनेपर 'नवजीवन' में प्रकाशित किये जायेंगे, लेकिन आजका पत्र तो विशेष रूपसे मुझे सम्बोधित करके लिखा गया है। मैंने इतने वर्षोंतक अपनी स्तुति सहन की है तो क्या अब थोड़ी निन्दा सहन नहीं कर सकता? मुझे किसी नये धर्मका प्रवर्तन नहीं करना है। हाँ,

१. मूलमें पता अंग्रेजीमें दिया गया है।
२. डाककी मुहरसे।

मेरे मनमें प्राचीन धर्मका पुनरुत्थान करनेकी अभिलाषा अवश्य है। लेकिन मेरी इस अभिलाषाको पूरा करना भगवानके हाथमे है।

मोहनदासके वन्देमातरम्

द्वारा सेठ छोटालाल मुल्कचन्द
हठीभाईकी वाहरकी वाडी
अहमदावाद

गुजराती पत्र (एस० एन० १९९५७) की फोटो-नकलसे।

५८१. टिप्पणियाँ

पत्रकार मित्रोंसे

मेरे पास देश-देशान्तरोंसे पत्र-पत्रिकाओंके लिए लेख लिखनेके आग्रहयुक्त पत्र आते रहते है। अव स्थिति ऐसी आ गई है कि मुझे या तो 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन'का सम्पादन कार्य छोड़ देना चाहिए, या फिर अन्य पत्रोके लिए लेख लिखनेकी वातसे शिष्टतापूर्वक इनकार कर देना चाहिए। किन्तु जवतक 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन'की ग्राहक संख्या काफी है और मेरे शरीरमे शक्ति मौजूद है तबतक मेरा इन पत्रोका छोड़ना अनुचित है और इसलिए मुझे मजवूर होकर दूसरे अखबारोके लिए लेख लिखना वन्द करना पड़ा है। सचाई यह है कि मुझमे ऐसी सामर्थ्य नही है कि मै चाहे जिस विषयपर जव चाहे लेख लिख दूँ। मेरा क्षेत्र वहुत सीमित है और जिन विषयोसे मै अच्छी तरह परिचित हूँ उनपर भी सदा मौलिक ढंगसे नहीं लिख सकता। मुझे ऐसी कोई भ्रान्ति नही है कि मेरे लेख सदा अच्छे ही होते हैं। इसके विपरीत, मै जानता हूँ कि प्राय: विना लिखी वातमे लिखी हुई या कही हुई वातसे ज्यादा वल होता है और वह ज्यादा सच्ची होती है। यही ज्यादा अच्छा है कि हम जो कहना चाहते हैं वह हमारे कामसे ही व्यक्त हो। आजकल क्षणजीवी साहित्य दिन दूना रात चौगुना वढ़ता जा रहा है और हमारे लिये एक सिरदर्द वनता जा रहा है। यदि मै इस साहित्यको वन्द या कम नही कर सकता तो मुझे इसे वढ़ानेमे तो सहायता नही ही देनी चाहिए।

चेतावनी

इधर कुछ दिनोंसे अनेक नवयुवक विना सूचित किये या बिना कोई अनुमति लिए ही सत्याग्रहाश्रममें कुछ दिन ठहरने या आश्रमवासी वननेके उम्मीदवारकी हैसियतसे दाखिल होने चले आते हैं। वे चाहे मेहमानकी हैसियतसे आयें, या उपरोक्त रूपसे उम्मीदवारकी तरह, उन सबको स्थान देनेकी इच्छा होते हुए भी, जगहकी तंगीकी वजहसे यह मुमकिन नही है कि प्रवन्धकारिणी इन सबको टिकानेकी कोशिश भी कर सके। आश्रम विलकुल भर गया और प्रबन्ध-विभागको मजबूरन् ऐसे मित्रों तकको,

जो पहलेसे ही इजाजत ले चुके थे और जो अपने ही खर्चपर रहना चाहते थे, फिलहाल न आनेके लिए लिखना पड़ा है। नवयुवकोंके लिए यह अनुचित है कि वे बिना इत्तिला दिये और बिना इजाजत लिए आये। गत पन्द्रह दिनोंमे ऐसे चार युवक आ चुके है। और इससे भी अधिक दु:खकी बात तो यह है कि वे वापसीका खर्चतक अपने साथ नही लाये थे। सबसे अन्तमे एक एम० ए० महोदय पधारे, जिन्होंने कहा कि मै आश्रममे बसने आया हूँ, लेकिन उन्होने मार्गमे अपना निश्चय बदल दिया और सोचा कि यहा कुछ दिन रहेंगे और आश्रमके जीवनका अध्ययन करेंगे। वे अपने साथ कोई परिचयपत्र नही लाये थे और उनकी गाँठमे इतना पैसा भी न था कि वे वापसी टिकट ले सकते। मुझे अपने हृदयमे कड़ाई लाकर कहना पडा कि वे आश्रममे पहलेसे आज्ञा पाये बिना ठहर नही सकते। मै नही समझ सकता कि सुशिक्षित नवयुवकोंको जिन्दगीका सामान्य शिष्टाचार और मेजबानीके कायदेतक क्यो नही मालूम है। मै जानता हूँ कि आश्रमके बारेमे कुछ गलतफहमी फैली है। बिना इत्तिला आनेवाले दर्शकोंने बताया कि वे तो यह समझते थे कि यह आश्रम ही सारे हिन्दुस्तानमे एक ऐसी जगह है कि जहा लोग बिना इजाजत पहुँच सकते है और जहा उनका हार्दिक स्वागत भी होता है। इस कारण नवयुवकोंको समझ लेना चाहिए कि आश्रम उनकी ऐसी आशाएँ कभी पूरी नही कर सकता और यह आश्रम एक साधारण मानव सस्था है जो कि अपने आदर्शोतक पहुँचनेकी चेष्टा कर रही है; पर जो ऐसा करनेमे बार-बार असफल होती रही है। आश्रमवासियोके बारेमे इतना ही कहा जा सकता है कि उन्होने उन आदर्शोतक, जिन्हे अपने सामने रखा है, पहुँचनेकी भरसक चेष्टा की है।

उपवासके बारेमें

बहुत नाप-तौलकर अपनी बात कहनेवाले, एक सज्जन लिखते है:

> मै आपके पत्रकी फाइल बड़ी श्रद्धा और सावधानीसे रखता हूँ। इस नाते मै आपका ध्यान आपके ३०-९-१९२६ के अंकमें छपी निम्न उक्तिकी ओर आकर्षित करता हूँ—'इस शस्त्र [उपवास] का उपयोग केवल हितूके साथ ही और वह भी उसके हितके लिए ही किया जा सकता है।'[1]
>
> किन्तु आपके पिछले लेखोसे लगता है कि इसका एक महत्त्वपूर्ण अपवाद भी है। जेलमें अपमानजनक व्यवहार किये जानेपर उपवास या भूख-हड़ताल करना भी सच्चा सत्याग्रह है, उदाहरणार्थ ऐसे मामलेमें जैसे अपमानजनक तरीकेसे खाना दिया जाना। मै चाहता हूँ कि आप "सत्याग्रह अथवा दुराग्रह" के

१. देखिए "सत्याग्रह अथवा दुराग्रह" १२-९-१९२६। मूल गुजराती लेख **नवजीवन**में प्रकाशित हुआ था। ३०-९-१९२६ के **यंग इंडिया**में उसका महादेव देसाई द्वारा किया गया अनुवाद प्रकाशित हुआ था। उक्त पंक्तियाँ इसी अनुवादसे दी गई है।

नीति-नियमोंके सम्बन्धमे एक प्रश्नकर्त्ताको उत्तर देते हुए इस बातको नजर-अन्दाज न करते।

यदि नापतौल कर बात कहनेवाले इन पत्र-लेखक द्वारा उद्धृत किया गया उदाहरण एक अपवाद है तो मैं ऐसे दूसरे कई उदाहरण उद्धृत कर सकता हूँ। मनुष्य प्रायश्चित्तके रूपमे, आत्मशुद्धिके लिए और स्वास्थ्य-सुधारके विचारसे उपवास कर सकता है। कदाचित् ऐसे और भी उदाहरण दिये जा सकते हैं। किन्तु पहले लेखमे मैंने सत्याग्रह सम्बन्धी उपवासकी मर्यादाएँ बताई है, अर्थात् मैंने यह बताया है कि जब आप, लोगोपर प्रभाव डालनेके लिए उपवास करे तब आपको क्या करना चाहिए। कथित अपवाद इस मामलेसे भिन्न है। वहाँ अपमान अनुभव किया गया था और उसके विरुद्ध आपत्ति की गई थी। "सत्याग्रह अथवा दुराग्रह" शीर्षक लेखमे ऐसे उपवासकी बुराईपर जोर दिया गया था कि जिसमें कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्तिको उचित अधिकार द्वारा प्राप्त अपनी वस्तु या राशि देनेपर विवश करनेकी दृष्टिसे इसका प्रयोग करे और जबकि वह दूसरा उस वस्तु या राशिपर उपवास करनेवालेका अधिकार स्वीकार न करता हो।

हिन्दू और हिन्दुत्व

एक पत्रलेखक जो 'यंग इंडिया' को बहुत धैर्य और लगनसे पढ़ता है, लिखता है:

> एक सहायक एक्जीक्यूटिव इंजीनियरके धर्म-सम्बन्धी प्रश्नके उत्तरमें आपने अपने १४-१०-१९२६ के अंकमे लिखा है: 'स्थूल रूपसे हिन्दू वह है जो ईश्वरमें विश्वास करता है, आत्माकी अनश्वरता मानता है, आदि।'[1]
>
> इसे पढ़कर मुझे यह लोभ हो गया है कि मैं आपके लगभग दो वर्ष पहलेके लिखे लेखको आपके सामने रखूँ। आपने २४ अप्रैल, १९२४के 'यंग इंडिया' के पृष्ठ १३६ पर[2] लिखा था: 'यदि मुझसे हिन्दू धर्मकी व्याख्या करनेके लिए कहा जाये तो मैं इतना ही कहूँगा — अहिंसात्मक साधनों द्वारा सत्यकी खोज। कोई मनुष्य ईश्वरमें विश्वास न करते हुए भी अपने-आपको हिन्दू कह सकता है। सत्यकी अथक खोजका ही दूसरा नाम हिन्दू धर्म है।
>
> इन दोनों उद्धरणोंमें अंशोंको रेखांकित मैंने किया है।

मुझे आश्चर्य है कि पत्र-लेखकको इन दोनों कथनोंमें भेद दिखाई नहीं देता। एकमे प्रत्यक्ष हिन्दूका उल्लेख है। ईश्वरके अस्तित्वको न मानना हिन्दुत्वका लक्षण नही है। करोड़ों हिन्दू ईश्वरमे विश्वास करते है। इसलिए यही कहा जा सकता है कि 'हिन्दू ईश्वरमे विश्वास करते है।' किन्तु एक मनुष्य ईश्वरमें विश्वास न करते हुए भी अपनेको हिन्दू कह सकता है। इस दूसरे लेखमे मैंने इसकी विस्तृत व्याख्या देनेका प्रयत्न किया है। पहले लेखमें मैंने बहुत हदतक सामान्य उदाहरण दिया है। इसलिए मुझे दोनों स्थितियोंमें कोई विरोध दिखाई नही देता।

१. देखिए "प्रश्नोत्तर", १४-१०-१९२६।

२. देखिए खण्ड २३, पृष्ठ ५१७।

चुंगीमें अवैध वसूली

एक यात्री अभी हालमें दक्षिण आफ्रिकासे लौटा है। उसने मुझसे पूछा कि चुंगीके महकमेमें अवैध रूपसे रुपया ऐंठनेकी जो बुराई है और जो एक नियम-जैसी बन गई है, क्या उसको समाप्त करना सम्भव नहीं है। यद्यपि उनके सामानमें चुंगीकी कोई चीज नहीं थी, फिर भी समयपर पीछा छुड़ानेके लिए उनको रिश्वत देनी पड़ी। मैंने उससे पूछा, "क्या आप इस मामलेमें काफी समय देंगे और कष्ट सहेंगे एवं जाँच करवायेंगे।" उसने कहा · "मैं ऐसा नहीं कर पाऊँगा।" सबकी सहज वृत्ति यही है और यही उस रिश्वतखोरीका कारण है जो चुंगी विभागमें ही नहीं, रेल विभागमें भी चल रही है। यह तो सच है कि यदि लोग अपनी शिकायतें दूर करवाना चाहते हैं तो उन्हें कुछ समयतक असुविधा भी उठानी चाहिए, फिर भी अधिकारियोंका कर्त्तव्य है कि वे जितना बने इस तरह जबर्दस्ती रुपया ऐंठनेकी इस रूढ़ प्रक्रियाको रोकें, जिनके कारण इन बेचारोंको कष्ट उठाने पड़ते हैं। यदि कुछ लोक-सेवी युवक जबर्दस्ती रुपया वसूली करनेकी इन घटनाओंके स्वयं शिकार बनें और इनकी सूचना उचित अधिकारियोंको दें, तो यह कोई बुरी बात न होगी। ऐसी कुछ घटनाएँ होंगी तो यह बुराई कम हो जायेगी। इसमें सन्देह नहीं कि इस बुराईको दूर करनेका एकमात्र उपाय यही है कि लोग रिश्वत न दें। जबतक ऐसे लोग हैं जो वाजिब चुंगीसे बचना चाहते हैं तबतक ऐसे चुंगी अधिकारी भी रहेंगे जो अपना मेहनताना माँगेंगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २८-१०-१९२६

५८२. किसानोंके लिए एक नियामत

कुछ मास हुए मद्रासके श्रीयुत रामचन्द्रनने जो कि कृषि-शिक्षामें स्नातक हैं, मुझे लिखा है कि आश्रमके लाभके लिए कूप-कोस (बैल लिफ्ट)का उपयोग कीजिए। उन्होंने विश्वासके साथ कहा कि इससे पैसे और मोट आदि खींचनेवाले पशुओंके श्रममें, खासी बचत हो जायेगी। इस ईजादसे मैं आकर्षित हुआ और मैंने श्री रामचन्द्रनको लिखा कि अगर आप स्वयं आ सकें और अपने तरीकेको कामयाबीसे जमा जाये तो हम एक कोस खरीद लेंगे। उन्होंने बड़ी तत्परता दिखाई और उसके फलस्वरूप, एक माससे अधिक हुआ, आश्रममें इस नई विधिसे काम लिया जा रहा है। आश्रममें, जिस किसीको कृषि-विद्याका जरा भी ज्ञान है, वह इस विधिसे पूर्णरूपेण सन्तुष्ट है। बात और पक्की करनेके लिए, मैंने उसे एक इंजीनियरको दिखाया। उसने भी यही कहा कि मेरी रायमें यह ईजाद निहायत मुकम्मिल और बहुत ही सूझ-बूझकी है। आविष्कर्त्ताने अपने आविष्कारके बारेमें यह कहा है:

> इस देशमें कृषि-योग्य भूमिकी ८० फी सैकड़ा भूमि ऐसी है जिसमें आबपाशी नहीं होती है; मुझे यकीन है कि कुओंसे पानी खींचकर आबपाशी की पद्धतिका

तेजीसे प्रसार करना ही हमारी कृषि-सम्बन्धी समस्याका सच्चा हल है। सूखी धरतीसे ३० रुपये फी एकड़से अधिक आमदनी नहीं होती, लेकिन कुएँसे आबपाशी करनेपर आमदनी फी एकड़ २०० रुपयेसे लेकर १,००० रुपयेतक होती है और साथ ही बहुतसे परिवारोंको बारहों महीने काफी काम भी मिलता रहता है। इसमें खास अड़चन यही है कि इसके लिए कीमती बैलोंकी एक जोड़ीकी जरूरत पड़ती है। बहुधा लगातार जुआ रखे जानेसे उनके कांधोंमें कोई तकलीफ हो जाया करती है, उनकी तन्दुरुस्ती बिलकुल बिगड़ जाती है और वे उतने उपयोगी नहीं रह पाते। इस कठिनाईको दूर करनेकी गरजसे, लगभग १४ वर्ष हुए, मैंने अपने प्रयोग प्रारम्भ किये थे, और अब अपनी इस छोटी-सी चीजको, जो कि सत्याग्रह आश्रममें अच्छी तरह चल रही है, जनताके सामने रखा है। यह एक मामूली कोस है जिसे चरस या मोट कवलाई भी कहते हैं। इसमें खासियत यह है कि ढालू सतहपर लोहेकी पटरियोंपर चलनेवाली एक गाड़ी है। यह गाड़ी जानवरके महज बोझसे ही चल पड़ती है। जिस प्रकार कोई मनुष्य १ घंटेमें पैदल केवल तीन मील ही चल सकता है, लेकिन पैरगाड़ीपर १२ मील फी घंटेकी रफ्तारसे जा सकता है, उसी प्रकार इस ट्रॉलीके कारण, मामूली तौरसे किये जानेवाले कामका चौगुना काम हो जाता है। रगड़में बचतकी वजहसे दोके बजाय एक ही जानवरसे साधारणतया उतना ही काम निकल आता है। और खींचनेमें जो शक्ति व्यर्थ जाती है, सो भी बच जाती है। वही एक जानवर, खींचनेकी मेहनतसे बच जानेके कारण फी घंटा दुगुना पानी खींचता है। इस प्रकार पानीकी मिकदार डोलकी शकल या माप ही से निश्चित नहीं होती. और न लगाये हुए जानवरोंकी संख्या या श्रमसे, बल्कि डोलके भीतरी घनफल और फी घंटे खींचे जानेवाले डोलोंकी संख्याके गुणन-फलसे होती है।

विशेषज्ञों द्वारा सारे हिन्दुस्तानमें यह बात जांची और लेखी जा चुकी है कि अच्छे बैलोंकी एक जोड़ी, जिनका मूल्य ३०० रुपयेसे ४०० रुपये है, २० फीटकी गहराईसे केवल १,६०० गैलन पानी फी घंटा खींचते हैं। अन्य स्थानोंकी भाँति आश्रममें भी मैं यह दिखा रहा हूँ कि किस प्रकार एक भैंसा (जिसे आश्रमने ३१ रुपयेमें खरीदा था) २,००० गैलन पानी फी घंटा खींचता है (प्रत्येक ३२ गैलनके [लगभग] ६० डोल)। कुएँकी गहराई ३४ फीट है। और पुराने तरीकेसे दो कीमती बैल १,००० गैलनसे कुछ ही ज्यादा पानी फी घंटे खींच सकते हैं (३० डोल प्रत्येक ३५,३५ गैलनके)। मैंने मद्रास कृषि और उद्योग विभागोंके २०से अधिक अफसरोंको गत ११ वर्षोंमें अपना बहुत-सा रुपया खर्च करके यह दिखाया है, और वे मान भी गये; लेकिन सब व्यर्थ ही हुआ। नागपुरमें जब मैं इस कोसका प्रयोग दिखा रहा था, तब डाक्टर क्लाउस्टनने

इस यन्त्रकी सादगी, परम उपयोगिता और पशुके प्रति दयाभाव — इन सब गुणोंको माना और बहुत पसन्द किया था।

५० फीटके ढ़ालके योग्य सामग्रीकी लागत २७५ रुपये होती है। लेकिन श्रीयुत रामचन्द्रन कहते है कि यदि यह कोस लोकप्रिय हो जाये तो मूल्य और कम किया जा सकता है। गहराईके खयालसे श्रीयुत रामचन्द्रन कहते है कि ३० फीटकी गहराईके लिए उसकी लागत २३० रुपये ही होगी और समुचित संगठन द्वारा यह कोस हिन्दुस्तानी किसानोंके लिए १५० रुपयेमे भी तैयार हो सकता है। मैंने उन्हे यह भी सुझाया है कि यदि पेटेंट-स्वत्व छोड़ दिया जाये या उसके जो पुर्जे अमुक स्थानपर अपने ही यहाँ तैयार किये जा सकते है, वे या तो बना या खरीद लिये जाये तो मूल्यमे और भी कटौती की जा सकती है। कोसके इस वर्तमान मूल्यमे एक भैंसेका मूल्य फर्ज कर ले, ३० रु० और जोड़ दे। तब भी कोसकी पूरी लागत ३०५ रुपयेसे अधिक न होगी। दो बैल ३०० रुपयेसे लेकर ४०० रुपये तकमे मिलेंगे। उनपर होनेवाला माहवारी खर्च तो आधा ही हो जायेगा। दो बैलोको पालनेमे ५० से ६० रु० लगेगे। लेकिन एक भैंसा २० से २५ रुपयेतक मे पाला जा सकता है। इस आविष्कारसे सबसे बड़ा लाभ यह है कि पशुओकी मेहनतमे बहुत बचत हो जाती है। और उससे भी बड़ा फायदा तो यह है कि भैंसे काममे लाये जा सकते है — वे अधिकांशतः अपनी अनुपयोगिताके कारण (अगर वे बूचड़खानोसे बच जाते है तो) यो ही भूखो मर जाते है।

इसलिए आश्चर्यकी बात तो यह है कि यह आविष्कार सरकारका ध्यान अपनी ओर क्यो नही खीच पाया। श्रीयुत रामचन्द्रनको उन अधिकारियोकी उदासीनतासे सख्त शिकायत है, जिन-जिनके पास उन्होने अपनी फरियाद पेश की है। लेकिन मैंने उनकी इन शिकायतोका खास जिक्र न करना ही अच्छा समझा। जो लोग चाहे आश्रम आकर इस कोसको सुबहके वक्त चालू हालतमे देख सकते हैं। चूँकि आजकल आश्रमको बहुत ज्यादा पानीकी जरूरत नही है, इसलिए कोस दिनभर चालू नही रखा जाता। लेकिन ८ बजेसे १० बजेतक तो हमेशा ही चला करेगा और स्वयं आविष्कर्त्ताकी देखरेखमे रहेगा, जो कि उसके विषयमे सारी बाते स्वय समझाया करेगे।

एक मित्रने पूना कृषि-प्रदर्शनीके सिलसिलेमे मुझे लिखा है:

> **मै यहाँ राशि-राशि कलों और औजारोंको देखता हूँ; इनमें से अधिकांश हम कभी इस्तेमाल ही नहीं कर सकते। मुझे वह चीज तो यहाँ दिखाई ही नहीं देती जो कि भारतवर्षमें मनुष्य एवं पशुके लिए महा उपयोगी है — यानी 'रामचन्द्रन् कोस'।**

मै कृषि-विद्याके बारेमे इतना अधिक तो नही जानता जितना कि उक्त मित्र अपने जोशको प्रमाणित करते हुए कहते हैं; लेकिन इतना कह सकनेके योग्य जरूर जानता हूँ कि इस कोसकी परीक्षा ऐसे प्रत्येक व्यक्ति द्वारा की जानी जरूरी है, जो भारतवर्षकी कृषि-सम्बन्धी समस्याओंमे दिलचस्पी रखता हो।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २८-१०-१९२६

५८३. शोकांजलियाँ

'हिन्दू' के भूतपूर्व सम्पादक, एस० रंगास्वामी आयंगारके निधनपर उनके परिवार और पत्रके कर्मचारियोंको लोगोंने समवेदनाके अनेक सन्देश भेजे हैं। मैं भी दिवंगत आत्माके प्रति अपनी शोकांजलि अर्पित करता हूँ। श्री एस० कस्तूरीरंगा आयंगारके निधनके बाद इतने कम समयमें ही श्री रंगास्वामीकी मृत्युसे भारतीय पत्रकार-जगतको एक भारी धक्का लगा है।

पाठकोंको यह जानकर बड़ा दुःख होगा कि श्री एच० एस० एल० पोलकका सबसे बड़ा पुत्र, वाल्डो उनका साथ छोड़ गया है।[1] सप्ताहके शुरूमें श्री पोलकने तार द्वारा उसकी गम्भीर अस्वस्थताकी सूचना दी थी। दो ही दिन बाद, दूसरा तार आया कि बच्चा नहीं रहा। मैं जानता हूँ कि श्री पोलक और श्रीमती पोलकको भारतके मित्रोंके रूपमें जाननेवाले अनेक पाठक माता-पिताकी हार्दिक वेदनामें उनके साथ समवेदना प्रगट करेंगे।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, २८-१०-१९२६

५८४. पत्र : सम्पादकको[2]

[२९ अक्तूबर, १९२६ से पूर्व]

आपने जिन साहित्यकारोंसे लेख आमन्त्रित किये हैं, मुझे उनकी पंक्तिमें बैठते हुए संकोचका अनुभव हो रहा था। यह दिखावटी विनय नहीं बल्कि मेरी आन्तरिक भावना है। मैं स्वीकार करता हूँ कि मैं इस कामके लिए इस दृष्टिसे भी अयोग्य हूँ कि मुझे उक्त सज्जनके विषयमें भी लगभग कुछ मालूम नहीं था जिन्होंने अपने मनसे मेरा विज्ञापन करनेका भार अपने ऊपर ले लिया था। कदाचित् आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि मैं अब भी उनके विषयमें उतना ही जानता हूँ, जितना अपने विषयमें लिखी गई उस पुस्तिकापर सरसरी निगाह डालनेके बाद जान सका हूँ। मुझे इतना काम रहता है कि जिन अन्य चीजोंको मैं पढ़ लेना चाहता हूँ उन्हें पढ़नेका मेरे पास समय नहीं रहता। इसलिए मैंने अभीतक उन सज्जनके किसी महान ग्रन्थका अवलोकन नहीं किया है।

[अंग्रेजीसे]
रोमाँ रोलाँ, पृष्ठ १६०

१. देखिए "पत्र: श्री और श्रीमती पोलकको", २६-१०-१९२६।

२. रोमाँ रोलाँ बर्थडे बुकके सम्पादकके नाम। पुस्तक १९२६ में रोटेपेलवेरलाग, ज्यूरिचसे प्रकाशित हुई थी।

५८५. पत्र: रोमाँ रोलाँको

साबरमती
२१ अक्तूबर, १९२६

प्रिय मित्र,

मीराने आपके सुन्दर पत्रका बहुत अच्छा अनुवाद कर दिया है।[1] मेरा खयाल है कि मैं पत्रकी भावना पूरी तरह समझ गया हूँ। अगर मुझे ऐसा लगता कि निमन्त्रण किसीके कहनेसे न दिया जाकर स्वयंस्फूर्त है तो मैं खुशीसे हेलसिंगफोर्स चला जाता। न जानेके दूसरे कारण भी थे। मैं अपने अन्तरके आदेशकी प्रतीक्षा करता रहा, लेकिन वह मिला नहीं। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि यह आदेश मिलने पर मैं उसकी अवहेलना नहीं करूँगा।

लगता है, आपकी पुस्तककी मेरी समीक्षा ठीक तरहसे उद्धृत नहीं की गई। मुझे मालूम था कि आपने जो-कुछ लिखा है, अपने गहनतम विश्वाससे प्रेरित होकर ही लिखा है।

मैं अपनी एक और चिन्ता भी दूर करना चाहता हूँ। आपको जो अलबम भेंट किया गया, उसमें मेरा भी योग है। कविवरने मुझे इस आशयकी खबर भेजी है कि 'आप अपनी ही इच्छासे मेरे प्रचारक बन गये हैं', मेरे इस कथनसे आपके मनको कुछ चोट पहुँची है। सिवा इसके और क्या कहूँ कि इन शब्दोंका प्रयोग मैंने आपके प्रति अपना स्नेह और आदर, और साथ ही आप-जैसे व्यक्तिका सम्मान पानेकी अपनी अयोग्यता दर्शानेके लिए ही किया था। और जब मैं कहता हूँ कि मेरे गुणोंका जो इतना ढोल पीटा जा रहा है वह मेरी समझमें नहीं आता तो कोई साधारण आदमी भले ही उसपर विश्वास न करे, लेकिन आप जैसा व्यक्ति तो उसे समझ सकता है। मुझमें झूठी नम्रता नहीं है।

मुझे यह आशा जरूर है कि किसी दिन[2] मैं सचमुच आपके दर्शन कर सकूँगा। आशा है, आपका स्वास्थ्य ठीक होगा।

शुभ कामनाओंके साथ,

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १२१७५) की फोटो-नकलसे।

१. मीरा बहनको लिखे पत्रकी तारीख २६ सितम्बर १९२६ थी, देखिए परिशिष्ट ७ (एस० एन० १२१७४)।

२. गांधीजी १९३१ में लन्दनमें द्वितीय गोलमेज परिषद्में भाग लेनेके बाद भारत आते समय रास्तेमें स्विट्जरलैंडमें रोमाँ रोलाँसे मिले थे।

५८६. पत्र : वी० एस० श्रीनिवास शास्त्रीको

[साबरमती]
२९ अक्तूबर, १९२६

प्रिय मित्र,

वजेसे आपके दक्षिण आफ्रिका जानेके निश्चयकी खबर पाकर मुझे बड़ी राहत मिली। एन्ड्रयूजने मुझे तार दिया था कि आपकी बीमारी और उसकी वजहसे शिष्ट-मण्डलमें आपके शामिल न होनेकी अफवाह फैली हुई है। उन्होंने यह भी बताया था कि इस अफवाहने हमारे देशभाइयोंको परेशानीमें डाल दिया है। अब आपके पत्रसे रहा-सहा संशय भी दूर हो गया। वजेका तार मिलनेके तुरन्त बाद मैंने एन्ड्रयूज-को तार देकर आश्वस्त कर दिया था।

मैं आपसे पूर्णतया सहमत हूँ कि सम्मेलनसे किसी बड़े परिणामकी आशा नहीं की जा सकती। लेकिन मुझे इतनी आशा तो है ही कि इससे भारतीयोंको दम लेनेका मौका मिल जायेगा।

आवारा कुत्तोंको मारनेके बारेमें मैंने जो विचार व्यक्त किये थे, उनसे अनेक लोग मुझसे विमुख हो गये हैं। लेकिन यह तो हमेशासे मेरी किस्मत ही रही है। मैं जानता हूँ कि यह तूफान भी पिछले तूफानोंकी तरह शान्त हो जायेगा।

मुझे उम्मीद है कि आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा और आप दक्षिण आफ्रिकाके कठिन दौरेमें भी इसे सँभाल रख सकेंगे। आपके शिष्टमण्डलमें होनेसे मुझे और एन्ड्रयूजको बहुत आशाएँ हैं। पता नहीं क्यों शिष्टमण्डलमें आपके सम्मिलित किये जानेकी बातसे मैं मनमें निश्चिन्त हो गया हूँ।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० १२०२८) की फोटो-नकलसे।

५८७. पत्र : के० विश्वेशनको

२९ अक्तूबर, १९२६

प्रिय मित्र,

आपकी भेजी कतरन मैंने पढ़ी। मैं भी मानता हूँ कि बिल्लीके प्रति की गई क्रूरता भयानक है और जिस राज्यमें दण्डोंका विधान है उसमें इसपर दण्ड दिया जाना सर्वथा उचित होगा।

श्रीयुत के० विश्वेशन
त्रिचनापल्ली
दक्षिण भारत

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११९५१) की फोटो-नकलसे।

५८८. पत्र : वी० एम० तारकुण्डेको

आश्रम
साबरमती
३० अक्तूबर, १९२६

प्रिय मित्र,

१. मैं प्रार्थना करते समय कोई चीज मांगता नहीं हूं बल्कि जो भी कुछ श्लोक और भजन मुझे उस समय अच्छे लगते हैं, मैं उनका ही मनन करता हूं।

२. ईश्वरके साथ मेरा सम्बन्ध प्रभु और शाश्वत बन्धनमें बंधे एक दासका है, और यह सम्बन्ध प्रार्थना-कालतक ही नहीं, आठों पहर बना रहता है।

३. मेरे लिए तो प्रार्थना अपने प्रभुमें लय हो जानेकी ललक है। अगर कोई व्यक्ति प्रार्थना नहीं करता तो स्पष्ट है उसके हृदयमें ऐसी ललक नहीं है, वह अपने आपको असहाय अनुभव नहीं करता और जब वह असहाय नहीं है तो उसे सहायताकी जरूरत भी नहीं है।

४. सर्वसाधारण द्वारा पैदा किया गया अन्न तो विशिष्ट वर्गके लोग केवल जरूरतकी भावनासे खाते हैं। लेकिन जब ये लोग खादी पहनना शुरू करेंगे तो उसमें सर्वसाधारणकी सेवा करने और उसके साथ तादात्म्य स्थापित करनेका भाव ही होगा।

५. वकीलों आदिसे कातनेके लिए कहने और उनसे कातनेकी अपेक्षा रखनेमें खयाल यह है कि वे स्वयं त्याग-कर्मके रूपमें कातें और लोगोंको कातनेके लिए प्रोत्साहित करें। श्रेष्ठजन जैसा आचरण करते हैं, साधारण-जन भी वैसा करते हैं। जन-समुदायको उसके हितके लिए और निठल्लेपनसे छुटकारा पानेके लिए कातनेकी

कोई व्यक्ति जितनी प्रेरणा दे सकता है, उतनी प्रेरणा मैं दे सकूँ, यही इच्छा मेरे कातनेका कारण है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत वी० एम० तारकुण्डे
१५१, कसबा पेठ
पूना शहर

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९७२४) की फोटो-नकलसे।

५८९. पत्र : के० वीरभद्राचार्यलुको

आश्रम
साबरमती
३० अक्तूबर, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आश्रममें सबको सवेरे चार बजे उठकर प्रार्थनामें शामिल होना पड़ता है। प्रार्थना सवा चारपर शुरू होती है। प्रत्येक आश्रमवासीसे सवेरे सात बजेसे शामको साढ़े चार बजेतक आश्रमका काम करनेकी आशा की जाती है। इस अवधिमें डेढ़ घंटेका अवकाश होता है। दूसरी प्रार्थनासभा शामको सात बजे होती है।

आश्रमकी मुख्य प्रतिज्ञाएँ हैं — ब्रह्मचर्य, सत्य, अहिंसा, खद्दर और अस्पृश्यता-निवारण।

भोजन शाकाहारी और सादा होता है। ज्यादातर लोग अपना खाना आप बनाते हैं। आहारमें जो परिवर्तन आवश्यक मालूम हुआ है वह है दूधका सेवन शुरू करना, तेलकी जगह घी खाना और फलोंके स्थानपर हरी सब्जियोंका सन्तुलित सेवन। सब्जियाँ बिना नमकके खाई जा सकती हैं।

कब्जसे बचनेके लिए आपको चावल नहीं खाना चाहिए; घी जितना सम्भव हो उतना कम लें, कटिस्नान करें, खूब व्यायाम करें और आपको चाहिए कि आप रातको खाली पेटपर मिट्टीकी पट्टियाँ रखें और सवेरे उठते ही नमक और नींबूके साथ या उसके बिना गरम पानी पियें।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत के० वीरभद्राचार्यलु
अध्यक्ष, श्री भारती विद्याश्रम
गोरिगिपुडी, पेदापुलिवरू, डा० खा०
गुण्टूर जिला

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९७२५) की माइक्रोफिल्मसे।

५९०. पत्र : मोतीबहन चोकसीको

आश्विन वदी ९, १९८२ ३०, अक्तूवर, १९२६

चि० मोती,

तुम्हारा पत्र मिला। मुझे अव निश्चिन्तता हो गई। यह कार्ड मिलनेपर मुझे लगा कि अव मुझे लक्ष्मीदाससे वात करनी चाहिए इसलिए मैंने उनसे वात की है। भगवान तुम्हें अपने निश्चयपर दृढ रहनेकी शक्ति दे। मुझे पत्र लिखनेका अभ्यास न छोड़ना। यहाँ बीमारी वहुत फैल गई थी; किन्तु अव कम हो रही है।

वापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (एस० एन० १२१३९) की फोटो-नकलसे।

५९१. क्या यह जीवदया है? — ४

अव हम इस विचारका विवेचन करें कि जीव-नाश धर्म हो सकता है या नहीं।

हम इस देहको टिकाये रखने लायक जीव-नाश तो करते ही हैं। उदाहरणार्थ हम वनस्पति आदिका और जन्तुनाशक पदार्थो द्वारा मच्छरों आदिका जीव-नाश करते हैं। साथ ही हम यह भी मानते हैं कि ऐसा करना अधर्म नहीं है।

यह तो अपने व्यक्तिगत स्वार्थके लिए हुआ। परमार्थके लिए भी हम हिंसक प्राणियोंका नाश करते हैं या दूसरोंके द्वारा करवाते हैं। सिंहादि जब गाँवोंके लोगोंको सताते हैं तब समाज उनका नाश करना अपना धर्म समझता है।

मनुष्य-वध भी धर्म समझा जा सकता है। यदि पागलपन या नशेमें कोई आदमी नंगी तलवार लेकर जो कोई नजर आये उसे काटता चला जा रहा हो और उसे जिन्दा पकड़ लेनेकी शक्ति किसीमें हो तो उसे जो आदमी मार सकेगा वह परोपकारी गिना जायेगा। अहिंसाकी दृष्टिसे उसे मारना सभीका धर्म है। हाँ, हम इसमें से एक प्रसंगको अपवाद मान सकते हैं। जो सत्पुरुष उसके नशेको उतार सके, वह उसे न मारे। किन्तु इस सीमातक सम्पूर्णताको पहुँचे हुए सत्पुरुषोंके धर्मका सवाल यहाँ नहीं उठाया जा रहा है; यहाँ तो हम समाजके धर्म और समाजमें रहनेवाले राग-द्वेषादि युक्त मनुष्योंके धर्मका विचार कर रहे हैं।

ऊपरके दृष्टान्तोंकी उपयुक्तताके विषयमें मतभेद सम्भव है। किन्तु अगर ये दृष्टान्त अपूर्ण जँचें तो हम दूसरे पूर्ण दृष्टान्तोंकी कल्पना कर सकते हैं। किन्तु जीव-नाशका एकांगी आचार किसी भी अवस्थामें धर्म-सिद्ध नहीं हो सकता।

सच्ची बात तो यह है कि अहिंसाका अर्थ केवल 'जीवोंको न मारना' ही नहीं है। क्रोध अथवा स्वार्थके वश किसी मनुष्यका अनिष्ट करनेके इरादेसे उसे दुःख देने या उसकी देहको हानि पहुँचानेका नाम हिंसा है। ऐसा न करना ही अहिंसा है।

वैद्य कड़वी दवा देता है। वह दुःख देता है; किन्तु हिंसा नहीं करता। यदि कड़वी दवा देनेके समय भी वह कड़वी दवा नहीं देता तो वह अहिंसा धर्मके पालनमें चूकता है। शल्यचिकित्सक अगर दुःख देनेके भयसे गले हुए हाथको नहीं काटता तो वह हिंसा करता है। जो मनुष्य अपने आश्रित बालकके ऊपर (जो उससे रक्षाकी आशा रखता है) आक्रमण करनेवाले खूनीको (अगर उसका उपद्रव दूसरी तरहसे न रोका जा सके) नहीं मारता, तो वह पुण्य नहीं बल्कि पाप करता है। वह अहिंसा धर्मका पालन नहीं करता, बल्कि मोहके वश होकर अहिंसाके नामपर हिंसा करता है। ऐसा होना है सामाजिक अहिंसा-धर्म।

अब हम अहिंसाके मूलकी खोज करें। उसके मूलमें निःस्वार्थता है। निःस्वार्थताका अर्थ है देहाभिमानका सर्वथा अभाव। किसी ऋषि या मुनिने देहाभिमान यानी देहाध्यासको लेकर किसी मनुष्यको छोटे-मोटे अनेक देहोंका नाश करते हुए देखा तो मनुष्यके गूढ़ अज्ञानको देखकर उसका हृदय काँप गया। उसने सोचा कि देहका आवरण होनेसे मनुष्य अपनेमें ही रहनेवाली अमर आत्माको भूल जाता है और आत्माके कल्याणकी साधनाके बजाय अपनी क्षणिक देहके स्वार्थको साधता है। इस प्रकार ऋषिने सर्वस्वके सम्पूर्ण त्यागकी आवश्यकता देखी। उसने देखा कि मनुष्य अगर आत्मा यानी सत्यका दर्शन करना चाहता है तो उसके लिए एकमात्र समुचित मार्ग है अपनी देहका त्यागकर देना। इसका अर्थ दूसरे जीवोंको अभयदान देना हुआ। यह अहिंसाका मार्ग है।

इस प्रकार विचार करें तो मालूम होगा कि पाप दूसरे जीवोंका नाश करनेमें, अपनी देहसे मोह करनेमें और अपनी क्षणिक देहके लिए दूसरे जीवोंका नाश करनेमें है। इससे आहारके निमित्त मनुष्य जीव-नाश करता है, उसमें देहाध्यास है और इसलिए वह हिंसा है। परन्तु मनुष्य उसे अनिवार्य समझकर करता है। किन्तु दुःखसे पीड़ित प्राणीकी देहका उसीकी शान्तिके लिए किया गया नाश अथवा अपने संरक्षित जनकी रक्षाके लिए किया गया अनिवार्य वध हिंसा-दोषमें नहीं गिना जा सकता।

इस विचारसरणीका बहुत दुरुपयोग हो सकता है। किन्तु उसका कारण विचार-दोष नहीं, वरन् देहके प्रति मोहवश अपने-आपको धोखा देनेके लिए जो भी बहाना मिल सके, फौरन उसका उपयोग कर लेनेका हमारा स्वभाव है। किन्तु इस दुरुपयोगके भयसे सत्यको छिपाकर अहिंसा-मार्गको स्पष्ट नहीं किया जा सकता।

इस विवेचनसे अहिंसा सम्बन्धी जो सार निकलता है, वह यह है:

(१) इस जगतमें कोई भी देहधारी कुछ हदतक हिंसा किये बिना अपनी देहको टिकाये नहीं रख सकता।

(२) (क) अपनी देहकी रक्षाके लिए (ख) अपने आश्रितकी रक्षाके लिए और (ग) कभी-कभी दुःखी जीवोंको शान्ति देनेके लिए सभी अनेक जीवोंका वध करते हैं।

(३) अहिंसाकी व्याख्याके अनुसार (क) और (ख) में थोडा बहुत हिंसा-दोष आता ही है। (ग) मे हिंसा-दोप बिलकुल नही है। इससे वैसा वध सर्वांशमें अहिंसा-पूर्ण है; किन्तु (क) और (ख) का हिंसापूर्ण होना भी अनिवार्य है।

(४) इसलिए (क) और (ख)मे निहित हिंसा, ऊर्ध्वगामी अहिंसावादी मनुष्य कमसे-कम परिमाणमें, जब उससे छुटकारा न मिल सके तभी और खूब समझ-बूझकर — दूसरे सब उपाय कर चुकनेके बाद ही — करेगा।

मेरा बताया हुआ कुत्तोका वध चौथे प्रकारकी हिंसा है। इससे जब वह अनिवार्य हो, उसके बिना काम चलता ही न हो तब वह सम्यक् विचारके बाद ही किया जा सकता है। किन्तु इस विषयमे मुझे शंका नही है कि जब वह वध अनिवार्य हो जाये तब उसे न करनेमें ही विशेष दोष है। इसलिए कुत्तोको मारना व्यापक धर्म तो नही हो सकता। मगर खास स्थितिमे खास अवसरपर, व्यक्ति विशेषके लिए वह आवश्यक हो सकता है।

अब इतना विचार करनेके बाद मेरे पास जो-कुछ पत्र आये है, मैं उनके प्रश्नोका सिलसिलेवार उत्तर देनेका प्रयत्न करता हूँ। कई भाई अपने पत्रोका व्यक्तिगत उत्तर मागते है और वह न मिले तो अपने विचार समाचारपत्रोंमें छपा देनेकी धमकी देते है। व्यक्तिश: जवाब देना मेरी शक्तिके बाहर है। जिनको जवाब देना उचित जान पड़ेगा उनको मैं इस पत्रके स्तम्भमे ही दे सकूँगा। जिन्हे दूसरे पत्रोमे इसकी चर्चा करनी हो, उन्हें रोकनेका मुझे जरा भी अधिकार नही है; इच्छा भी नहीं है। मैं पत्र-लेखकोंको यह याद दिला देना चाहता हूँ कि धर्म-चर्चामे धमकी या अधीरताके लिए कोई स्थान नही है।

एक भाई लिखते है:

> आपको ५७ वर्षकी उम्रमें कुत्तोंको मरवानेका धर्म कैसे सूझा? अगर पहले सूझ चुका था तो आप अबतक मुँहमें दही जमाये क्यों बैठे थे?

मनुष्यको सत्य जब सूझता है, वह उसे तभी बताता है। चाहे वृद्धावस्थामें सूझे, चाहे प्रसंग उपस्थित होनेपर। ऊपर बताई गई मर्यादाओमे रहते हुए प्राणियोको मारनेका धर्म तो मैं बरसो पहले स्वीकार कर चुका हूँ। प्रसग पड़नेपर मैंने उसपर अमल भी किया है। फिर हिन्दुस्तानके गाँवोमें अनजान, आवारा कुत्ते अगर भाग नही जाते तो उन्हें मार देना अबतक धर्म माना जाता है। गाँवोंमें लोग कुत्ते पालते है। वे कुत्ते दूसरे बाहरी कुत्तोंको भगा देते है; और अगर वे भागते नही है तो गाँवके कुत्ते उन्हे मार डालते है। ग्रामीण लोग ऐसे रखवाले कुत्ते जानबूझकर पालते है। ये गाँवोके कुत्ते केवल दूसरे कुत्तोको ही नही मारते, बल्कि चोरों इत्यादिपर भी हमला करते है। आवारा कुत्तोकी परेशानी तो सिर्फ शहरोंमें ही है और इसका एकमात्र उपाय उन्हें न रहने देना ही है। इसमें कुत्तोंका कमसे-कम नाश होता है और शहरोके लोगोकी रक्षा होती है।

एक दूसरे पत्र-लेखक लिखते हैं:

अहिंसा-जैसे मामलेमें तर्क-वितर्कपूर्ण चर्चा करके उक्त धर्म आप किसे सिखाना चाहते हैं?

इस उलाहनेमें कुछ सार है। मुझे किसीको कुछ सिखाना नहीं था। अवश्य ही मैं अहिंसा-धर्मका अभ्यासी और पालनकर्त्ता हूँ, इस कारण, प्रसंग आनेपर मुझे अपने विचार प्रकट करने ही पड़े। मैंने ऐसा अनुभव अनेक बार किया है कि धर्मचर्चामें न्याय-शास्त्र और तर्कका स्थान तो है; किन्तु बहुत कम।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ३१-१०-१९२६

५९२. पत्र: च० राजगोपालाचारीको

साबरमती
१ नवम्बर, १९२६

प्रिय च० रा०,

आपका छोटा-सा पत्र मिला। आपके लड़के जैसे बन रहे हैं उसे मैं समझता हूँ। जब लड़के बड़े हो जायें, तब उन्हें अपनी राह जाने देना चाहिए। अगर मैं आपकी जगह होता और नरसिंहराव खाईमें कूदनेपर उतारू हो जाता तो मैं उसे उसकी राह जाने देता; हाँ कूदनेमें उसे मेरी ओरसे कोई मदद न मिलती।

यह चुनाव तो अजीब गोरखधन्धा है। आपने इसमें न पड़कर अच्छा ही किया।

मैं कुनीनका कट्टर विरोधी हूँ। मैं आश्रममें इसका खुलकर उपयोग करता रहता हूँ। अलबत्ता मैं खुद इसे लेना पसन्द नहीं करूँगा।

भगवान जाने, मैं गोहाटी जाऊँगा या नहीं। लेकिन जाना पड़ सकता है। जानेका मन तो नहीं है। मुझे आश्रममें रहना चाहिए; उसका उपयोग मेरी समझमें आता है। फिर भी एक महीने पहलेसे कोई क्या अन्दाज लगाये!

आपका स्वास्थ्य अच्छा है? क्या आप एक बारमें ५० मील चल सकते हैं? क्या आप महादेव अथवा मेरे साथ कुश्ती लड़ सकते हैं? यह कसौटी बिलकुल वजा है।

बीमारी अब दूर हो रही है। सर गंगाराम और अन्य लोगोंसे मिलने तथा चरखेका प्रचार करनेको मैं आज एक दिनके लिए बम्बई रवाना हो रहा हूँ।

बापू

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० १९७२७) की फोटो-नकलसे।

५९३. पत्र : ककलभाई कोठारीको

आश्विन बदी ११, १९८२ [१ नवम्बर, १९२६]

भाईश्री ककलभाई,[1]

आपका पत्र मिला। यह 'नवजीवन'मे तो प्रकाशित नही किया जा सकता। भाई शिवजीने समाचारपत्रोमे प्रकाशनार्थ जो पत्र भेजा है, वह मैने अभी नही पढ़ा। उन्होंने मुझे उसकी एक प्रतिलिपि छापनेके लिए भेजी है। पढनेपर विचार करूँगा कि क्या किया जा सकता है। कच्छी-परिषद्में उन्होंने क्या किया यह भी मुझे आपसे ही मालूम हुआ है। मैने परिषद्के बारेमे कुछ नही पढा। सौराष्ट्रको इस सम्बन्धमे जो-कुछ करना उचित लगे सो करनेमें कोई आपत्ति नही जान पडती। सत्यकी खातिर उचित यह है कि कोई भी कदम आवेशमे अथवा उतावलीमे न उठाया जाये। यदि हम भयके कारण कुछ न करें तो वह असत्य होगा। दूसरा व्यक्ति कौन हो सकता है, इसका मै अन्दाजा नही लगा सका। जब मुझे जानकारी देना उचित जान पड़े तब देना।

मोहनदासके वन्देमातरम्

[पुनश्च :]

मुझे रामदासने अमरेली कार्यालयपर किये गये कुछ आक्षेपोकी सूचना दी है। यदि कोई आक्षेप वहा आये हो तो आप जाच करके मुझे उनकी सूचना दे।

मोहनदास

गुजराती पत्र (एस० एन० १९९६०) की माइक्रोफिल्मसे।

५९४. पत्र : डाह्याभाई म० पटेलको

आश्विन बदी १३, १९८२ [३ नवम्बर, १९२६]

भाईश्री ५ डाह्याभाई,

आपका पत्र मिला। आप मुझसे मिल जाये। मुझे जल्दी उत्तर देना चाहिए था; लेकिन मै कल गाडीमे पत्र नही लिख सका। क्षमा करे।

मोहनदासके वन्देमातरम्

भाईश्री डाह्याभाई म० पटेल,
ताल्लुका समिति, धोलका

गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० २६९७) से।
सौजन्य : डाह्याभाई म० पटेल

१. ककलभाई कोठारी, सौराष्ट्रके कांग्रेसी कार्यकर्त्ता और पत्रकार।

५९५. लौटे हुए प्रवासी[1]

सम्पादक,

'यंग इंडिया'

महोदय,

मैं स्वीकार करता हूँ कि उपनिवेशोंमें जन्मे भारतीयोंकी हिन्दुस्तानी भाषाकी जानकारीके बारेमें मेरा 'पक्का' अनुमान गलत निकला। . . .[2]

मुझे पूर्ण रूपसे निश्चय है कि फीजीसे लौटे हुए भारतीयोंको ब्रिटिश गियाना भेजनेसे उन्हें पुनः निराशा होगी। . . .

मैं आपको सन् १९२० की याद दिलाता हूँ जबकि आपने ५०० मजदूरोंको प्रयोगके तौरपर ब्रिटिश गियाना भेजनेकी अनुमति देनेकी भूल की थी। आपने मि० पोलक इत्यादिके द्वारा चेताये जानेपर उस भूलको स्वीकार भी किया था।[3] आप इस बार फिर वही भूल कर रहे हैं। ब्रिटिश गियानाकी आबोहवा खराब, दलदलमय है और फीजीकी अत्युत्तम। इसलिए फीजीसे लौटे भारतीयोंको वहाँ जीना दूभर हो जायेगा। . . . इसलिए मैं उनके ब्रिटिश गियाना भेजे जानेके कतई खिलाफ हूँ। आपके इस प्रयोगके विरुद्ध मेरी दलीलका आधार मानवीयताकी उच्चतर भावना है। . . . मेरा आग्रह है कि आप इस सारी चीजपर पुनः विचार करें और फीजीमें बसे भारतीयोंको एक बार फिर निराशा और विपत्तिमें न डालें।

आपका,
बनारसीदास चतुर्वेदी

उक्त पत्र मेरे पास कुछ दिन हुए आया था। मेरी कथित 'भूल-स्वीकृति' को मैं पक्के तौरपर जानना चाहता था। पण्डित बनारसीदास चतुर्वेदीने एक कतरन भेजी है, जिसमें प्रयोगस्वरूप आदमियोंको बाहर भेजनेके विषयमें कई वर्ष हुए मेरी किसीके साथ हुई मुलाकात दी हुई है। मेरी समझमें उसमें और इस वक्तकी मेरी रायमें कोई सम्बन्ध नहीं। मेरी राय तो केवल उन्हींसे ताल्लुक रखती है जो आज कलकत्तेमें शर्मनाक हालतमें दिन गुजार रहे हैं, जो अपने गाँवोंको न तो जाते हैं और न जाना ही चाहते हैं और जिनके वास्ते इस हालतको छोड़कर अन्य कोई भी हालत शायद

१. पत्र अंशतः दिया जा रहा है।

२. देखिए "लौटे हुए प्रवासी", २३-९-१९२६।

३. यह उल्लेख शायद "ब्रिटिश गियाना और फीजीके शिष्टमण्डल", ४-२-१९२० से पूर्व और "पत्र: डा० न्यूनन", ५-२-१९२० का है; देखिए खण्ड १७, पृष्ठ ९ और १६।

बेहतर होगी। मेरी रायमें अगर वे चाहें तो ब्रिटिश गियाना जा सकते हैं। ऐसा करनेमें उनका बहुत हर्ज भी न होगा। उनके जानेको और लोगोंके जानेका श्रीगणेश भी न समझना चाहिए। जो उपाय मैंने बतलाया है, वह फौरी है और वह शुरूमें कुछ सैकड़ो लोगोंसे ही ताल्लुक रखता है। ध्यान रहे कि मेरा बतलाया हुआ यह उपाय (फीजीसे लौटे हुए भारतीयोंको ब्रिटिश गियाना भेजना) उसी स्थितिमें लागू है जबकि अन्य सभी उपाय निष्फल हो जायें, कोई और चारा न रहे और सो भी तब, जब भेजनेके पहले खुद उन लोगोंकी सहमति ले ली जाये। इसलिए मुझे खेद है कि मैं अपनी दी हुई रायको बदल नहीं सकता। निस्सन्देह इस झगड़ेको हमेशाके लिए मिटा देनेवाला उपाय तो यह है कि भारतवासियोंको बाहर भेजनेके मामलेकी पूरे तौरपर जाँच हो तथा उसपर विचार किया जाये।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ४-११-१९२६

५९६. टिप्पणियाँ

चरखा संघके सदस्य

चरखा संघका नये सालके लिए चन्दा आ तो रहा है, मगर जिस तेजीसे आना चाहिए था, उस तेजीसे नहीं। उम्मीद यह की जाती है कि इस सालके सदस्य अपने सूतकी मजबूती, समानता और अंकको बढ़ानेपर विशेष रूपसे ध्यान देंगे। उनकी कोशिश एक निश्चित अंकका सूत कातनेकी ही होनी चाहिए, जिसमें एक ही अंकके सूतसे पूरा थान अच्छी तरह बुना जा सके। त्याग-कर्मके रूपमें काता गया यह सूत, निश्चय ही मजदूरीपर काते गये सूतकी अपेक्षा बहुत अच्छा होना चाहिए।

किन्तु एक भाई लिखते हैं:

> आप सूतमें सुधार करनेको लिखते हैं। आप सूतकी परीक्षाके यन्त्रोंकी भी बात लिखते हैं। तब क्या यह आवश्यक नहीं कि कातनेवाले सदस्योंको सूतके दोष बतलाये जायें, जिससे वे उनको दूर कर सकें।

जितना सूत आता है, यहाँ चरखा संघ उस सबकी जाँच करनेकी कोशिश करता है, किन्तु एक दिनमें तो कुछ ही बण्डलोंकी जाँच सम्भव है। जाँचे हुए सूतके फलकी खबर कातनेवालेको दे दी जाती है। मगर जो लोग जल्दीसे उन्नति करना चाहते हैं, उन्हें मैं जाँच करनेके यन्त्र घरपर ही बना लेनेको कहूँगा। इसमें न तो कुछ खर्च है, न कोई परेशानी। घरेलू परीक्षा यन्त्रको बनानेकी विधि इस पत्रमें समझाई जा चुकी है। अगर सदस्य यह बात याद रखें कि चरखा संघ गरीबोंका संघ है और वह केन्द्रीय कार्यालयपर कोई बड़ा खर्च नहीं कर सकता तो बड़ा अच्छा हो।

इंग्लैंडसे

ब्रिस्टलसे एक महिला लिखती है:

> इस पत्रके साथ चरखोंके लिए १ पौंडकी रकम भेज रही हूँ। चाहती हूँ कि १०० पौंडकी रकम भेज सकती। शायद आप नहीं जानते कि इंग्लैंडमें आपके भारको समझनेवाले कितने लोग आपको दुआएँ देते रहते हैं। वे सदा आपको अपनी स्नेहपूर्ण सद्भावनाएँ भेजकर सहायता करनेकी कोशिश करते रहते हैं।

इस प्रकारके पत्रोंका माहात्म्य दानमें आये हुए सिक्कोंकी संख्यासे नही चरखेमे निहित सत्यकी अनुभूतिसे कूता जाता है। चरखेका महत्त्व इस मान्यतामे है कि यह इंसानको हैवान बनानेपर तुली हुई प्रतिस्पर्धाकी प्राणलेवा होड़के स्थानपर सुनियोजित सहयोगकी भावनाको प्रतिष्ठापित करनेका प्रयास है; और यह व्यक्तिकी आत्माको उन्नत बनानेके साथ-साथ समूची मानवताको एक ऊँचे स्तरपर उठा देता है। यह आन्दोलन उसी हालतमें सफल हो सकता है जब संसार-भरकी पवित्रसे-पवित्र शक्तियाँ इस लक्ष्यकी पूर्तिके लिए एक हो जुट जाये। लेकिन इसकी पहल हिन्दुस्तानकी ओरसे ही होनी चाहिए। अगर ईश्वर, स्वदेशी और अपने लक्ष्यमे मेरा विश्वास न होता तो यह भारी बोझ मेरी आत्माको कुचल ही डालता। लेकिन मेरे मनमे विश्वास है और मैं अपना बोझ ईश्वरके विराट् कन्धोंपर डालकर निश्चिन्त हो जाता हूँ।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ४-११-१९२६

५९७. दक्षिण आफ्रिकामें अनिश्चित स्थिति

हालमे दक्षिण आफ्रिकासे मुझे कुछ ऐसे कागज मिले हैं जिनसे पता चलता है कि वहाँ रहनेवाले भारतीय प्रवासियोंकी स्थिति संकटापन्न है। व्यापारिक परवानोंकी समस्या तो वहाँ सदा ही बनी रहती है। शासनका शिकंजा दिन-प्रतिदिन कसता ही जा रहा है। अबतक नेटालमें काफी हदतक इस बातपर अमल होता था कि परवाना अधिकारियोंको अपनी मर्जीसे काम लेनेकी जो व्यापक शक्तियाँ प्रदान की गई हैं, उनके अन्तर्गत पहलेके परवानोंको हाथ न लगाया जाये। पहलेके परवानोंसे छेड़छाड़ केवल तभी की जाती थी जब बहुत ज्यादा गन्दगी हो या अफसरों द्वारा लगाई गई शर्तोको तोड़ा गया हो। किन्तु अब इस उचित नियमकी भी जब-तब अवहेलना की जाने लगी है। और परवानोंके नवीनीकरणमें मनमाने ढंगसे इनकार कर दिया जाता है। जो मामला मेरे पास भेजा गया है, वह दर्दनाक है और उसका सम्बन्ध श्रीमती सोफिया भायला नामकी एक वृद्ध महिलासे है। दक्षिण आफ्रिकी कांग्रेसके मंत्रीने इस मामलेका विवरण देते हुए लिखा है:

> इस गरीव महिलाके पाँच बच्चे हैं। परवाना अधिकारीकी सनकने उसे वरबाद कर दिया है। बहुत सम्भव है कि अपने साहूकारोंके हाथों जेल जानसे बचनेके लिए उसे दिवालिया कानूनकी शरण लेनी पड़े।

अपील अदालतके न्यायाधीशोंने इस गरीव स्त्रीसे सहानुभति तो व्यक्त की पर कुछ करनेमे असमर्थता प्रकट की, क्योकि कानूनके अनुसार वे परवाना अधिकारियोको विधानमण्डलो द्वारा दिये गये स्वयं निर्णय लेनेके अधिकारके प्रयोगमें कोई हस्तक्षेप नही कर सकते। उन्होंने कहा कि अपवाद तभी किया जा सकता है जब यह सिद्ध कर दिया जाये कि उन्होने रिश्वत ली है अथवा वे अपनी प्रदत्त शक्तियोका उपयोग करनेके योग्य नही। मुख्य निर्णयमें कहा गया है:

> इस महिलाके पास कई सालसे परवाना था, किन्तु अब परवाना अधिकारीने इसे परवाना देनेसे इनकार कर दिया है। ऐसा लगता है कि इस महिलाने एस्कोर्टकी नगर परिषदको वाजिव करकी रकमें अदा नहीं की थीं, इस कारण इसको परवाना देनेसे इनकार कर दिया गया। ऊपरसे देखनेसे ऐसा लगता है कि परवाना अधिकारीने, जो संयोगसे टाउन क्लर्क और नगर कोषाध्यक्ष भी है एवं अन्य पद भी सँभालता है, टाउन क्लर्क और नगर कोषाध्यक्षके रूपमें प्राप्त अपनी जानकारीके बलपर कुछ सख्तीसे काम लिया है। उसने परवाना अधिकारीके रूपमें कहा: "अच्छा, नगर परिषदसे, जिसका मैं नौकर हूँ, तुम्हारा झगड़ा है और तुमने उसे करकी वाजिव रकमें, जो तुम्हें अदा करनी चाहिए थी, अदा नहीं की हैं, इसलिए मैं तुम्हारे परवानेका नवीनीकरण नहीं करूँगा।" कोई भी इसे अन्यायपूर्ण ही मानेगा। यदि इस महिलाने उपनियम तोड़े थे तो कानूनी उपाय यह था कि उसपर मुकदमा चला कर तत्काल कार्रवाई की जाती अथवा यदि उसने कोई शर्तनामा तोड़ा होता तो उसपर कानूनके मुताबिक मुकदमा चलाया जाता।

इस प्रकार न्यायाधीश इच्छा रहते हुए भी इस स्पष्ट अन्यायका निराकरण नही कर सके। जव कानूनमें ही कोई दोष हो तो जवतक न्यायाधीश उस आधारपर त्यागपत्र न दे तवतक वह असहाय ही रहता है। किन्तु आजके जमानेमें किसीसे ऐसे साहसपूर्ण कार्यकी अपेक्षा नही की जानी चाहिए।

लेकिन सरकार तो अशक्त नही है। नगर परिषदोंमे भारतीयोका विरोध करनेवाले सदस्य व्यापारी हैं, अतः उनसे न्यायकी आशा नही की जा सकती। उनको जो शक्तियाँ प्राप्त हैं, वे उनका उपयोग सामान्यतः अपने विरोधियोंको कुचलनेके लिए करेंगे ही। किन्तु केन्द्रीय प्रशासन ऐसे स्पष्ट मामलोंमें निश्चय ही सहायता दे सकता है। यदि स्पष्ट कठोरताके ऐसे मामलोंमे भी न्याय न किया जाये तो गोलमेज परिषद् एक उपहासकी वस्तु बन जायेगी।

वर्गीय क्षेत्र विधेयकको[1] प्रस्तुत करनेका विचार सदाके लिए भले ही छोड़ दिया जाये, किन्तु उसके पीछे जो भावना है यदि वह भावना कायम रहे तो प्रवासियों-की स्थिति उससे अधिक अच्छी किसी भी तरह नहीं होगी जैसा विधेयकके पास होनेपर होती। थोथी जीत सचमुचकी हारसे ज्यादा बुरी होगी। इसका कारण यह है कि थोथी जीतके शोरगुलमें पीड़ितोंकी कष्टभरी पुकारको सुनकर भी कोई उनसे सहानुभूति प्रकट नहीं करेगा और उन्हें राहत नहीं पहुँचायेगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ४-११-१९२६

५९८. शुद्ध आचरणके लिए आग्रह

मेरे पास चुनावके सम्बन्धमें और प्रसंगवशात् कौंसिलोंकी सदस्यताके कांग्रेसी उम्मीदवार बननेके लिए ढेर-ढेर चिट्ठियाँ आ रही हैं। मैं अब उन्हें प्रकट करनेपर बाध्य हो गया हूँ।[2] विधान सभाकी सदस्यताके एक उम्मीदवार महाशय लिखते हैं:

> जब मैंने इस काममें हाथ डाला तब मुझे इस बातका बिलकुल ही भान न था कि यह मेरे लिए एक नाहक काम है। मेरे कार्यकर्त्ता झूठा प्रचार करते हैं। वे लोग मेरे जिन गुणोंका बखान करते हैं, वे मुझमें नहीं हैं। मेरे प्रतिद्वन्द्वी मुझे उन अवगुणोंकी खान बताते हैं, जो मुझमें कभी नहीं रहे। . . . मैं न्यायपूर्ण और सीधी लड़ाई चाहता हूँ।. . .क्या आप इस उलझनसे बाहर निकलनेका कोई मार्ग बता सकते हैं? या आप महज यही कहेंगे कि कौंसिलमें जाना ही गलत है और इसलिए मुझे बैठ जाना चाहिए? . . .

दूसरे सज्जन लिखते हैं:

> क्या आप सदाकी भाँति उन चालबाजियोंको जो कांग्रेसके ही नहीं आपके नामपर भी की जा रही हैं, रोक नहीं सकते?. . . अब यह प्रमाणित किया जा सकता है कि ये चालबाजियाँकी ही जा रही हैं; तब फिर आप मौन कैसे रह सकते हैं? आप चाहें तो मैं प्रमाण भी प्रस्तुत कर सकता हूँ।
>
> मेरे प्रान्तको ही ले लीजिए — जो दल कांग्रेसका समर्थन करनेमें लाभ देख रहे हैं (मैं और कोई शब्द प्रयोग करनेमें असमर्थ हूँ) कांग्रेसको बदनाम करनेमें जुटे हैं। खादी भी साथ-साथ बदनाम हो रही है — यहाँतक कि दोनों

१. १९२३ में प्रस्तुत इस विधेयकमें ऐसी व्यवस्थाएँ थीं जिनसे शहरी क्षेत्रोंमें एशियाई लोगोंको अनिवार्य रूपसे अलग बस्तियोंमें रखा जा सकता था। लेकिन अप्रैल १९२४ में दक्षिण आफ्रिकी विधान सभाके एकाएक भंग हो जानेसे विधेयक रद्द हुआ मान लिया गया था।

२. कुछ ही पत्र अंशतः दिये जा रहे हैं।

ही चीजें लोगोंको बहुत अप्रिय लगने लगी हैं। चाहे जहाँसे लोग बटोर लिये जाते हैं, उनके नामसे कांग्रेसकी सदस्यताका चन्दा जमा कर दिया जाता है और कांग्रेसकी शर्तको शाब्दिक रूपसे पूरा करनेके लिए उनको लपेटनेके वास्ते खद्दरके अँगोछे दे दिये जाते हैं। आप कमसे-कम इस नीचे गिरानेवाली पद्धतिके खिलाफ तो अपनी आवाज उठा ही सकते हैं। . . . क्या ऐसे लोग अथवा इनके प्रतिनिधि हमें स्वराज्य लेने लायक बना सकते हैं? आप कांग्रेससे अवकाश लें, चाहे न लें — हम लोग इतनी आशा तो करते ही हैं कि आप इन हरकतोंके खिलाफ अपनी कलम जरूर उठायेंगे?

तीसरे सज्जन लिखते हैं:

क्या आपको मालूम है कि कांग्रेसके सदस्य बनानेके लिए मेरे प्रान्तमें शर्मनाक हरकतें की जा रही हैं? एक चारित्र्यभ्रष्ट पुरुषने कुछ बदनाम औरतें इकट्ठी कर ली हैं। कमसे-कम एकके बारेमें तो मैं कह ही सकता हूँ और वह उनसे या कहिए, उससे कांग्रेसके सदस्य बनवानेका काम ले रहा है। वह घर-घर जाती है, लोगोंकी बुरीसे-बुरी प्रवृत्तियोंको उभारती है और सदस्य बना लाती है। क्या यह नैतिकतापूर्ण है? क्या यह विधिसंगत है? यदि इन तरीकोंसे सदस्य बनाये जायेंगे तो कांग्रेसका क्या मूल्य रहेगा?

क्या आप इस प्रकारकी स्त्रियों द्वारा कांग्रेसके सदस्य बनाये जानेको उचित ठहरानेके लिए तैयार हैं? यदि नहीं तो क्या आप इस बातको सरे आम कहेंगे?

एक चौथे सज्जनने समाचारपत्रोंमें से कतरनें काट कर भेजी हैं जिनसे जाहिर होता है कि उम्मीदवार लोग तथा उनके समर्थक साम्प्रदायिक भावोंको उभारते हैं। वे लिखते हैं:

हिन्दू-मुसलमानोंमें फूट तो है ही — लेकिन अब तो लोग प्रान्तीयता तथा जातीयताको भी साधन बनाने लगे हैं; यानी वोट देनेवालोंसे यह कहा जाता है कि अपने ही प्रान्त या अपने ही पेशेवालोंको उनकी योग्यता-अयोग्यताका विचार किये बिना, वोट दो।

एक पाँचवें सज्जनने कुछ कतरनें भेजी हैं, जिनमें ऐसे भाषण छपे हुए हैं जो मैं यहाँ उद्धृत नहीं कर सकता, क्योंकि वे प्रकाशनके सर्वथा अयोग्य हैं।

एक छठवें सज्जन लिखते हैं कि रुपये बाँटनेका यानी रिश्वतका बाजार गर्म है। वे आदमी जिनकी कहीं कोई पूछ न थी, आज लम्बी-लम्बी तनख्वाहें फटकार रहे हैं — सिर्फ इसलिए कि वे सभाओंमें बोल सकते हैं और इसलिए कि वे अपने जिलेमें कुछ प्रभाव रखनेवाले माने जाते हैं। उनकी निजकी कोई राय नहीं है। उनमेंसे कुछ तो यहाँतक बेशर्म हैं कि कह देते हैं कि हम तो एजेंट हैं और हम किसी भी नीतिका ढोल पीटनेको राजी हैं — उसी प्रकार जिस प्रकार कि वकील रुपयेके

लिए किसी भी मुकदमेकी पैरवी करनेको (मुकदमेकी नीति-संगतताके विचारको ताकमें रखते हुए) तैयार हो जाता है।

लोग मुझसे कहते हैं कि ये सब बातें संक्रान्तिकालमें किसी भी राष्ट्रमे होती ही है। इस बातमें कुछ सचाई तो अवश्य है। जब आम लोग कौन्सिलो इत्यादिके चुनावोंके प्रति बिलकुल उदासीन थे और जब चन्द लोग ही चुनाव लड़ने तथा संस्थायें चलानेमें दिलचस्पी लेते थे, तब गन्दगी ऊपर नही आ पाती थी। अब चूँकि लोगोकी एक बहुत बड़ी संख्या इन सार्वजनिक मामलोंमें हिस्सा ले रही है, ये बाते उभर कर सामने आ रही हैं। दुर्भाग्यसे, यदि मेरे सब पत्र-प्रेषक ठीक ही बात कह रहे है तो जो तलमें जमी रह गई हो, ऐसी कोई खराबी बची ही नहीं है, बल्कि कण-कण व्याप्त हो गई है। पर मैं समझता हूँ कि स्थिति इतनी खराब नही — खुद लोग गन्दगियोंसे बरी है और उपर्युक्त बातें सामान्यतया नहीं, बल्कि इने-गिने लोगोपर ही लागू होती है।

मैं नही जानता। मैं अखबार नही पढ़ता हूँ और न किसी और तरीकेसे ही यह जानता रहा हूँ कि मुल्कमें क्या हो रहा है। और इसी वजहसे मै अबतक अपने नाम आई हुई ऐसी ढेरों चिट्ठियोंपर ध्यान नही देता था; लेकिन इनमे से कुछ पत्र-प्रेषकोंको मैं जानता हूँ। सभी पत्र-प्रेषकोंने अपने नाम और पते पत्रोके साथ लिख भेजे हैं और कुछ तो मुझे और ज्यादा जानकारी देनेको तैयार है। उनमेंसे बहुतोंने, या कुछने, अपने पत्रोंके साथ अपनी बातोंके समर्थनमें अखबारोंकी कतरनें भी भेजी हैं। ऐसी हालतमे मुझे लगा कि इन सब चिट्ठियोंका सारांशतक न छापना अन्यायपूर्ण होगा। मैंने उन पत्रोंका सार ले लिया है और समस्त हिन्दुस्तानके सभी चुनाव कार्यकर्त्ताओंके विचारार्थ यहाँ पेश कर दिया है — वे कार्यकर्त्ता किसी भी पार्टीके हो सकते हैं। मैं खास तौरसे कांग्रेस कार्यकर्त्ताओंका ध्यान उनपर किये गये आक्षेपोंकी ओर दिलाता हूँ: उन्हें इतना अवश्य याद रखना चाहिए कि अब भी कांग्रेसका पहला सिद्धान्त कायम है; उसे बदला नही गया है। उस सिद्धान्तके अनुसार उनका कर्त्तव्य है कि स्वराज्य प्राप्तिके लिए वे शान्तिपूर्ण तथा वैध साधनोका प्रयोग करें। कांग्रेसके प्रस्तावके अनुसार उनके लिए लाजिमी है कि वे सभी कांग्रेस अधिवेशनोंके अवसरोंपर पूरी तरह शुद्ध खादीका ही इस्तेमाल करें। कांग्रेस कार्यकर्त्तागण कांग्रेसके प्रस्तावों या उसके सिद्धान्तके विरुद्ध आचरण न करें। और चूँकि मै गैर-कांग्रेसी लोगोंको ऐसा कोई हवाला देकर उनसे शुद्ध साधनोंका आग्रह नही कर सकता, इसलिए मैं चाहता हूँ कि वे स्वयं महसूस कर लें कि सार्वजनिक जीवनको शुद्ध बनाये बिना स्वराज्य प्राप्त करना असम्भव होगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ४-११-१९२६

५९९. लकीरके फकीर

एक सज्जन भावावेशपूर्ण भाषामें लिखते हैं:

मुझे लगता है कि आपके २३ सितम्बरके 'यंग इंडिया' में ईश-प्रार्थना और खासकर सामुदायिक प्रार्थनाके समर्थनमें लिखे गये सुन्दर लेखमें कुछ त्रुटि है। लेखके अन्तमें गिरजाघरों, मन्दिरों और मस्जिदोंका उल्लेख करते हुए आप कहते हैं कि "ये प्रार्थनाके स्थान कोरे अन्धविश्वासके सूचक ऐसे स्थान नहीं हैं जिन्हें जल्दीसे-जल्दी नेस्तनाबूद कर दिया जाना चाहिए। वे आघात सहते रहकर भी अबतक मौजूद हैं और अनन्त कालतक बने रहेंगे।"[1]

उक्त वाक्य पढ़नेपर मेरे मनमें सवाल उठा: आक्रमण किसके? निस्सन्देह इतिहास बताता है कि आस्तिकोंके परस्पर विरोधी सम्प्रदायोंने एक-दूसरेके आराधनालयोंपर जितने हमले किये हैं उतने नास्तिकों, ठट्ठेबाजों या धूर्तोंने नहीं। सच तो यह है कि आप जैसे हमलोंका उल्लेख करते हैं, यदि सभी नहीं तो वैसे अधिकांश आक्रमण ईश्वरके नामपर ईश्वरभक्त धर्मान्ध व्यक्तियोंने ही अपने ईश्वरकी महिमा बढ़ानेके लिए किये हैं। ऐसे उदाहरण गिनानेकी धृष्टता करना आपके इतिहासके ज्ञानकी तौहीन करना होगा।

मेरे मनमें दूसरा प्रश्न यह उठा: क्या यह सच, बिलकुल सच है कि ये आराधना-स्थल सब आक्रमणोंको सह पाये हैं? फिर वही उत्तर मिलता है, — कदापि नहीं। काशी (बनारस)का गंगा घाट देखिए — जहाँ सदियोंसे, यहाँ तक बुद्धके भी पहलेसे, विश्वनाथजीका मन्दिर चला आता था; लेकिन अब उसके स्थानपर उसी अपवित्र किये गये मन्दिरके खण्डहरपर बनी हुई एक आलीशान मस्जिद उस 'पवित्र नगर' के बीचोंबीच खड़ी है; सो भी किसकी आज्ञासे? एक 'जिन्दा पीर', 'सुलतान औलिया' यानी बड़ी पवित्रताके साथ रहनेवाले सम्राट् औरंगजेबके हुक्मसे और 'नास्तिक' अंग्रेजोंकी करतूतसे नहीं, बल्कि इब्नसऊद तथा वहाबियों जैसे बड़े दिग्गज आस्तिकोंकी करतूतसे हजाजमें (मुसलमानोंकी 'पवित्र भूमि' में) ईश्वराधनाके अनेक स्थान अभी-अभी भ्रष्ट किये तथा धूलमें मिला दिये गये हैं और उनके ऊपर हिन्दुस्तानी मुसलमान आज घड़ों आँसू बहा रहे हैं और जिनकी मरम्मत दुनियाके तमाम मुसलमान बादशाहोंमें से केवल एक निजाम (हैदराबाद) ने ही अपने रुपयेके बलसे करनेकी निष्फल चेष्टा की है।

१. देखिए "प्रार्थनामें विश्वास नहीं", २३-९-१९२६।

महात्माजी, क्या आपके निकट ये तथ्य निरर्थक हैं?

बिलाशक इन तथ्योंका अर्थ मेरे निकट बहुत-कुछ है। उनसे निस्सन्देह मनुष्य-की क्रूरता प्रकट होती है। लेकिन ये तथ्य मुझे संयत बनाते हैं। ये हमको चेतावनी देते हैं कि असहिष्णु मत बनो। ये मुझे असहिष्णुओंके प्रति भी सहिष्णु बनाते हैं। ये मनुष्यकी नितान्त महत्त्वहीनता जतलाते हैं और इस प्रकार उसे, अगर वह खुशीसे प्रार्थना नहीं करता — ईश-प्रार्थनाके लिए मजबूर करते हैं। क्योंकि क्या इतिहास इस बातका साक्षी नहीं है कि ईश्वरके सामने घमण्डीका सिर बार-बार नीचा हुआ है? ईश्वरके चरणोंमें उसने खूनके आँसू बहाये हैं और ईश्वरके चरणोंके नीचे पड़कर धूलमें मिलनेकी प्रार्थना की है? यथार्थमें किसी लकीरका फकीर बननेसे नाश और उसका अभिप्राय समझकर तदनुसार चलनेसे जीवनका संचार होता है।

पत्र-प्रेषकको जो कि 'यंग इंडिया' के नियमित और अध्यवसायी पाठकोंमें से हैं, अबतक जान लेना चाहिए था कि मेरे लिए, आराधनाके स्थान महज ईंट-चूनेसे बनी इमारतें नहीं हैं। ये तो केवल सत्यकी परछाइयाँ हैं। प्रत्येक बरबाद किये गये मन्दिर, मस्जिद या गिरजाघरके बदले सैकड़ों बन गये हैं। प्रार्थनाकी आवश्यकताके बारेमें तर्क करते समय यह सवाल उठाना बिलकुल बेमतलब है कि तथाकथित आस्तिकोंने अपने एतकाद (विश्वास) के खिलाफ काम किया है और अपनी पवित्रताके लिए प्रख्यात अनेक आराधना-स्थल धूलमें मिला दिये गये हैं। अगर मैं साबित कर सकूँ कि संसारमें ऐसे लोग हो गये हैं और आजकल भी हैं, जिनके लिए ईश-प्रार्थना जीवनके निमित्त रोटीकी जितनी ही जरूरी है तो मेरी समझमें इतना ही काफी है — दलीलके वास्ते तो काफी है ही। मैं अपने पत्रलेखक महोदयसे सिफारिश करता हूँ कि वे मस्जिदों, मन्दिरों, इत्यादिमें किसी दूसरेकी नजरमें पड़े बिना और पहलेसे बनी-बनाई धारणाओंको ताकमें रखकर जायें। वहाँ उनको पता चलेगा — जैसा कि मुझे चला है — कि उनमें कुछ-न-कुछ ऐसी बात जरूर है जो उन लोगोंके दिलपर छाप डालती है, जो उनकी कायापलट कर देती है, जो दिखावे या शर्म अथवा डरके मारे नहीं, वहाँ केवल उपासनाके लिए आते हैं। इसकी व्याख्या करना असम्भव है। खैर, कुछ भी हो, यह बात तो है ही कि शुद्ध मनवाले लोग वर्तमान तीर्थ-स्थानोंमें भी (जो कि गलतियों, मूढ़-ज्ञान और भ्रष्टाचार तकके केन्द्र बन गये हैं) जाकर पूजाके प्रतापसे अधिक शुद्ध होकर लौटते हैं। इसीलिए 'भगवद्गीता' में यह महत्त्वपूर्ण आश्वासन दिया हुआ है —

'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तान्स्तथैव भजाम्यहम्'

अर्थात्, "मैं मनुष्योंके उपासना भावके अनुसार ही, जिससे कि वे मेरी पूजा करते हैं, उनको फल देता हूँ।"

पत्र-लेखकने जो-कुछ लिखा है, वह निस्सन्देह हमारी वर्तमान त्रुटियाँ अवश्य जतलाता है और हमें इन्हें जल्दीसे-जल्दी हटा देना चाहिए। उनकी बात धर्मों या मजहबोंकी शुद्धिके लिए तथा दृष्टिको व्यापक बनानेके लिए एक अपील है। और वह अत्यावश्यक सुधार निश्चय ही शुरू हो रहा है। आज विश्वचेतना अधिक ऊँचे

स्तरपर है। और मैं कहूँगा कि उस सुधार तकके लिए, जिसे हम लोग चाहते हैं, प्रार्थना जरूरी है ताकि और अधिक आत्मशुद्धि प्राप्त की जा सके। प्रार्थनाके विना, मनुष्य-मात्रका सामान्य शुद्धीकरण, आपसकी सहिष्णुता तथा पारस्परिक सद्भाव सम्भव नही है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ४-११-१९२६

६००. अन्त्यजोंका पूजाधिकार

नीमच छावनीके एक भाई पूछते हैं :

> (१) अछूत, जिनको उच्च वर्णके हिन्दू अतिशूद्र भी कहते हैं, विष्णु भगवानका मन्दिर बनाने, विष्णुकी मूर्तिकी पूजा करने और मूर्तिको विमानमें विठाकर सरे बाजार निकालनेके अधिकारी हैं या नहीं?
>
> (२) क्या अतिशूद्र द्वारा पूजित विष्णुकी मूर्तिके दर्शन करनेसे वैष्णव नरकगामी होते हैं?

अब भी ऐसे प्रश्न पूछे जाते हैं, यही दु:खकी बात है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि अन्त्यज भाइयोंको विष्णु भगवान्की मूर्ति बाजारमे निकालने और विमानमें बिठानेका उतना ही अधिकार है जितना अन्य जातियोंको है। इसी तरह जो वैष्णव अतिशूद्र-पूजित मूर्तिकी पूजा करता है या उसके दर्शन करता है, वह पाप नहीं, पुण्य करता है। जान बूझकर ऐसी मूर्तिकी पूजासे बचनेवाला वैष्णव धर्मकी निन्दा करता है।

हिन्दी नवजीवन, ४-११-१९२६

६०१. पत्र : नाथुभाई नेमीचन्द पारेखको

साबरमती
[४ नवम्बर, १९२६][1]

भाई नाथुभाई,

मुझे आपके स्नेहपूर्ण पत्र मिलते रहते हैं। मैं आपको उत्तर नहीं देता, इससे आप यह न सोचें कि मैं आपके पत्रोंपर विचार नहीं करता। मैं इस बारेमें 'नवजीवन' में धैर्यपूर्वक चर्चा कर रहा हूँ। आप जैसे सरल हृदय भाइयोंका विरोध मुझे प्रिय है। मेरा उद्देश्य अवश्य ही यह तो नही है कि हम शीघ्रतासे कुत्ते मारनेमें जुट जायें। मेरे लेखमें जो विचार व्यक्त किये गये हैं वे नये हैं; इसलिए समझनेमें देर लगती है। फिर भी अन्ततः या तो आप-जैसे लोग समझ जायेंगे या मुझे अपनी भूल मालूम हो जायेगी।

बापूके आशीर्वाद

श्री नाथुभाई नेमीचन्द पारेख
कालीकट, मलाबार

गुजराती पत्र (जी० एन० ६२४८) की फोटो-नकलसे।

६०२. पत्र : जमनालाल बजाजको

गुरुवार, [नवम्बर ४, १९२६][2]

चि० जमनालाल,

पत्र मीला है। वैजनाथजीकी हुंडी भी मीली है। उनको उत्तर भेज दीया है। सोनीरामजी यहां है। उनकी तबीयत अच्छी नहिं है। कमलाने अपना निश्चय आखरमें बदल दीया और मेरे साथ ही वर्धा आनेका निश्चय कीया। मैं तो राजी हुआ। तबीयत तो अब अच्छी है। में एक दिनके लीये मुंबई गया था।[3] सर गंगाराम, कामथ, गंगुली, सर चुनीलालके[4] साथ बातें हुई। परिणाम जो हो सो।

बापूके आशीर्वाद

मूल पत्र (जी० एन० २८७५) की फोटो-नकलसे।

१ व २. डाककी मुहरसे।
३. २ नवम्बरको।
४. शाही कृषि-आयोगके सदस्य।

परिशिष्ट

परिशिष्ट १

नॉर्मन लीजका पत्र

ब्रैल्सफोर्ड
डरबीके पास
२९ जून, १९२६

प्रिय श्री गांधी,

मैं आपके पत्रके लिए अत्यन्त आभारी हूँ।

मेरे सामने एक बड़ी कठिनाई है। मैं उसके बारेमें आपकी सलाह लेनेको बहुत ही व्यग्र हूँ। कठिनाई यह है: 'इंडिपेंडेन्ट लेबर पार्टी' ने भारतके बारेमें आगे अपनाई जानेवाली नीति निश्चित करनेके लिए एक समिति नियुक्त की है; जिसका मैं एक सदस्य हूँ। 'इं० ले० पा०' असलमें 'लेबर पार्टी' का ही एक अंग है और इसमें दलके सबसे अधिक सक्रिय सदस्योंकी एक बड़ी तादाद मौजूद है। 'लेबर पार्टी' मे ही एक ऐसा वर्ग है जो नही चाहता कि दल अपनी परम्परागत नीतियोसे अलग कोई नीति अपनाये। उसके मुकाबले तो 'इ० ले० पा०' निश्चय ही साम्राज्य-विरोधी है। 'इं० ले० पा०' ने अबतक 'लेबर पार्टी' से नीतिके सम्बन्धमें जितने भी सुझाव दिये है, उनमें से अधिकांश 'पार्टी' ने अपना लिये है। परन्तु अब निकट भविष्यमें ही 'इं० ले० पा०' के विचारों और 'लेबर पार्टी' में मौजूद साम्राज्यवादके समर्थक विचारोमे संघर्ष ठन जायेगा। संघर्षकी उस स्थितिमें बहुत कुछ इस बातपर निर्भर करेगा कि हम अपनी नीतिको व्यावहारिक सिद्ध कर सकते हैं या नही। उदाहरणके लिए, यदि हमारे प्रतिपक्षी यह पूछने लगे कि 'एक ऐसी नीतिकी खातिर भारतमे रहनेवाले अंग्रेजोके साथ शत्रुता मोल लेनेसे क्या फायदा, जिसे भारतीय जनता खुद भी पसन्द नही करती और जिसपर वह अमल भी नही करेगी।' तब फिर 'लेबर पार्टी' मे उन लोगोंका ही बोलबाला रहेगा जो कहते है कि 'जबतक भारतीयोंमें थोडी और अक्ल नही आ जाती तबतक इसी तरह काम चलने दो।' और उसका मतलब यही होगा कि इस देशमे बननेवाली लेबर पथी सरकारे भारतके प्रति 'कंजर्वेटिव पार्टी' की सरकारोसे भिन्न कोई नीति अपनानेका औचित्य नहीं देखेंगी और इसलिए अगले कई वर्षोतक भाईचारेके सम्बन्ध स्थापित होनेकी कोई आशा नही रह जायेगी।

इन सब बातोंको ध्यानमे रखते हुए मुझे यह बात बड़ी जरूरी लगती है कि हमारी समिति सही निष्कर्षोपर पहुँचे। मैं आपसे पूछता हूँ कि वे सही निष्कर्ष कौनसे होने चाहिए। अगली 'लेबर' सरकारको भारतके सम्बन्धमें क्या करना चाहिए?

इसका एक सीधा-सा उत्तर यही मालूम पड़ता है कि उसे वही करना चाहिए जो खुद भारतीय चाहते हैं, और सचमुच हम लोगोंमें जो नासमझ हैं वे इस उत्तरसे सन्तुष्ट हो जाते हैं। पर मेरी तरहके लोग जो-कुछ अधिक समझते हैं, वे जानते हैं कि किसी भी देशके देशभक्तोंमें इस बातपर भी पूर्ण सहमति नहीं है कि उनके देशमें कौन से मुख्य-मुख्य राजनीतिक कदम उठाये जाने चाहिए। और भारतमें ये मतभेद अपेक्षाकृत कहीं अधिक गहरे और व्यापक हैं — यह बात बिलकुल साफ दिखाई देती है, और इसे देखकर चोट पहुँचती है। क्या यह स्थिति इस समस्याको असाध्य बना देती है? — मेरा मतलब इस देशमें हमारी अपनी समस्यासे है, आपके देशमे आपकी समस्यासे नही। मैं समझता हूँ कि इसका उत्तर देते समय हम दोनोंको ही यह बात स्वीकार करनी पड़ेगी कि पहलेके सभी राष्ट्रवादी आन्दोलनोंको तभी सफलता मिली जब किसी संगठनबद्ध संस्थाके लोगोंने स्वदेशकी स्वतन्त्रताके लिए त्याग करनेको तैयार जनताके एक विशाल समुदायका समर्थन पा लिया था। उदाहरणके तौरपर इटलीको लीजिए। उसे राष्ट्रीय स्वतन्त्रता तभी प्राप्त हो सकी जब कावूर और गैरीबाल्डीने इटलीके विशाल जन-समुदायको मेज़िनीकी नीतिसे विरत करके अपनी नीतिके पक्षमें कर लिया था। (मेरा अपना विश्वास है कि मेज़िनीकी नीति सही और कावूरकी गलत थी — पर यहाँ इस बातसे कोई मतलब नही।) विदेशोंके लोग भी स्वतन्त्रता प्राप्त करनेमें इटलीको इसीलिए सहायता दे सके कि वहाँ कुछ ऐसे गिने-चुने लोग मौजूद थे जिनको इटलीकी समस्त जनताका तो नहीं, पर हाँ उसके एक इतने विशाल समुदायका स्पष्ट समर्थन प्राप्त था कि वे इटलीके प्रतिनिधियोंकी हैसियतसे बात कर सकते थे। भारतमें तो अभी अनेकों वर्षोतक ऐसी स्थिति बननेकी कोई सम्भावना दिखाई नहीं पड़ती। ऐसी स्थितिमें भारतके मित्र क्या कर सकते हैं? जहाँतक मैं समझता हूँ, इसके दो ही उत्तर हो सकते हैं। वे अपनी ओरसे भारतके कुछ लोगोंके एक ऐसे समुदायको चुन सकते हैं, जिसके अपने कुछ निश्चित विचार हों और जिसने अपना कार्यक्रम इतना सोच-समझकर निर्धारित किया हो कि उसकी व्यावहारिकता पर काफी कुछ भरोसा किया जा सके। भारतके मित्रगण उस नीतिको अपनाकर फिर आशा कर सकते हैं कि ब्रिटेनमें समाजवादी विचारोंके लोगों द्वारा इस नीतिके अपना लिये जानेपर भारतकी जनता भी उसे बादमें धीरे-धीरे सर्वथा उचित समझने लगेगी और तब उसपर अमल किया जा सकेगा। या फिर वे अपनी ही एक नीति निर्धारित कर सकते हैं, एक ऐसा संविधान तैयार कर सकते हैं जिसपर उनकी रायमें अमल किया जा सकेगा और जिसे भारतके उन लोगोंका समर्थन भी शायद बादमें मिल जायेगा जिन्हें आज एक-दूसरेके प्रस्तावोंमें कुछ भी सराहनीय नहीं प्रतीत होता है। आप इन दोनोंमें से किसे पसन्द करते हैं? या ऐसा कोई तीसरा मार्ग भी है जो मुझे नही सूझता? इनमेंसे दूसरा विकल्प देखने में बड़ा धृष्टतापूर्ण मालूम पड़ता है, पर यह नही भूलना चाहिए कि इस देशके हम लोगोंको एक ऐसा अनुभव प्राप्त है जो अन्य देशोंके लोगोंको नहीं है। हमें लोकतान्त्रिक संस्थाएँ चलानेका ही नहीं, बल्कि अन्य देशोंके लिए संविधान तैयार करनेका भी अनुभव है।

आपने अलगसे एक प्रश्न उठाया है। उसके बारेमें अगर आप थोड़ी जानकारी और दे तो विशेषरूपसे आभार मानूँगा। आपने कहा है कि साम्प्रदायिक वैमनस्यकी जिम्मेदारी कुछ हदतक ब्रिटिश अधिकारियोंपर भी है। यह तो मेरी समझमें आता है कि बंगालके विभाजन जैसी प्रशासकीय कार्रवाईसे इस आगमे घी पड़ सकता है। परन्तु मेरी समझमें यह बिलकुल नही आ सकता कि सचमुच झगड़ेपर आमादा लोगोंको झगड़वानेके लिए सरकारका कोई अधिकारी क्या कर सकता था। ज्यादा बड़ा सवाल तो यह है कि हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच नफरत बढ़ानेवाले भारतके उन ब्रिटिश अधिकारियों — वे जो भी हों — अपने उन प्रतिनिधियोंकी उन हरकतोंको बन्द करानेके लिए एक लेबर पथी सरकार क्या कर सकती थी। स्पष्ट है कि वह अधिकाशमे उन अधिकारियोंको हटाकर उनके स्थानपर भारतीय स्वतन्त्रतासे सहानुभूति रखनेवाले व्यक्तियोंको तो नही रख सकती थी। वह इससे कम कठोर कार्रवाई और क्या कर सकती थी।

आप यदि इस पत्रका उत्तर लिखनेमें अपना समय और शक्ति व्यय करनेकी कृपा करें तो विस्तारसे मेरी एक-एक दलील लेते हुए चलनेका कष्ट न उठायें। मैंने तो आपको यह बतलाया है कि तथ्योंको देखकर मेरी अपनी क्या राय बनी है, सो भी इसलिए कि अपने उलझावको आपपर जाहिर करनेका कोई और तरीका था ही नही। मेरी इतनी ही प्रार्थना है कि आप इसका उत्तर लिखते समय बस यही सोचे कि अगर आप गांधी न होकर लीज़ होते, और ईश्वरने आपको कुछ ऐसे निर्णय करनेका दायित्व सौंपा होता, जिनपर किसी दिन ब्रिटिश सरकार अमल कर सकती है तो आप क्या करते। आप उन लोगोंके सामने ऐसी कौन-सी दलीलें पेश करते, जिनका बस यही इलाज है कि उनसे बहस न की जाये? और, यदि आप मेरी जगह होते तो किस नीतिकी पैरवी करते? कृपया एकदम, स्पष्ट, नपे-तुले शब्दोंमें लिखिये। आशा है बातकी यह ध्वनि आपको अखरेगी नही कि यदि आप मेरी जगह होते तो शायद इसी तरह सोचते जैसे मैं सोचता हूँ। यदि समूची मानव-जाति एक विशाल परिवार है, तो इसके सभी सदस्योंको अपने बीचके किसी मतभेदके कारण परस्पर सहायता करनेमें हाथ नही खीचना चाहिए।

हृदयसे आपका,
नॉर्मन लीज़

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० १२१६८) की फोटो-नकलसे।

परिशिष्ट २

नॉर्मन लीजका पत्र

ब्रैल्सफोर्ड
डरबीके पास
९ अगस्त, १९२६

प्रिय श्री गांधी,

आपके पत्रसे सचमुच आशा बँध गई है कि इस देशके समाजवादी विचारधाराके लोग आपकी सहायतासे यह समझनेमें सफल हो सकते हैं कि भारतके सिलसिलेमें उनका अपना क्या कर्त्तव्य है। परन्तु ऐसा मत समझिये कि मुझे 'इंडिपेन्डेन्ट लेबर पार्टीके' नेतृत्वका या उसके मार्ग-दर्शनका काम सौंपा गया है। मैं तो पार्टीके उन दस-बारह सदस्योंमें से एक हूँ जिनको थोड़ा विशेष अनुभव है और इसीलिए साथी-सदस्योंने उनसे कहा है कि वे पूरी समस्याकी छानबीन करके पता लगायें कि समूची पार्टीका क्या कर्तव्य है। मेरी अहमियत बस इतनी ही है। क्या आप इस बातकी अनुमति देंगे कि समितिके अन्य सदस्य भी आपके पत्रोंको इस शर्तपर पढ़ लें कि वे उनको प्रकाशित नहीं करायेंगे?

भारतके विभिन्न दलों और उनके कार्यक्रमोंके बीचके अन्तरका आपने जो स्पष्टीकरण दिया है, वह अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण है। उसने मेरे दिमागका एक उलझाव दूर कर दिया है। और लेबर सरकारको भारतमें जिस समस्याका सामना करना पड़ेगा उसे हल करनेके लिए आपने जो उपाय बतलाया है वह तो और भी महत्त्वपूर्ण है। आपका कहना है कि ऐसी सरकारको किसी एक ऐसे व्यक्तिको चुनना चाहिए जो सबसे पहले तो भारतकी विभिन्न विचारधाराओंके नेताओंसे परामर्श कर ले और उसके बाद ही यह निर्धारित करे कि उसका दल भारतमें किस प्रकारके संविधान और कार्यक्रमको लागू करनेका आग्रह करेगा। लोकमत इस बातका समर्थन नहीं करेगा कि इतना महत्त्वपूर्ण कार्य किसी एक ही व्यक्तिको सौंपा जाये। पर मैं समझता हूँ कि यदि तीन-चार व्यक्तियोंकी किसी समितिको यह काम सौंपा जाये तो किसीको भी कोई आपत्ति नहीं होगी। आपने जो हल सुझाया है (जो मेरे पिछले पत्रमें रखे गये दूसरे विकल्पसे मिलता-जुलता है) उसमें सचमुच बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ हैं, परन्तु उसकी एक बड़ी खूबी यह है कि वह एक वास्तविक हल है। उसके मार्गमें आनेवाली कठिनाइयाँ दो प्रकारकी हैं। हमारे देशमें समितियाँ प्रातिनिधिक होती हैं। वे मतोंकी विभिन्नताकी द्योतक होती हैं। परन्तु भारतके लिए एक संविधान तैयार करनेका काम जिस समितिको सौंपा जायेगा, उसमें तो एक ही विचारके सदस्य रखने होंगे। यदि उसके सदस्योंमें बड़े-बड़े मतभेद रहे तो समितिका काम ही ठप्प हो जायेगा। यह काम सौंपनेके लिए ऐसे व्यक्तियोंको चुनना पड़ेगा जो बस भारतकी आवश्यकताओं-

को ही महत्त्व दें और अन्य किसी भी विचारको कोई अहमियत न दे। पर ऐसे व्यक्ति चुनना लेवर-सरकारके लिए और भी कठिन होगा। पिछली लेवर सरकार तो भयके कारण हाथ-पैरतक नही हिला पाई। वह अपने शत्रुओसे ही नही अपने खुदके कार्यक्रमसे ही भयभीत थी। मै जानता हूँ कि लॉर्ड ऑलिवर भारतके सच्चे मित्र है। पर मुझे पूर्ण विश्वास है कि वे भी अब इस बातको निश्चय ही स्वीकार कर लेगे कि यदि तब उन्होंने सच्चे अर्थोमे एक जनतान्त्रिक सविधान तैयार करने — भले ही उसकी रूपरेखा — भर तैयार करने — और उसे स्वीकार करानेके लिए अपने मन्त्रि-मण्डलसे दृढतापूर्वक आग्रह करनेपर ही सब-कुछ दाँवपर लगा दिया होता, तो उन्होने बिलकुल ठीक काम किया होता। परन्तु यदि अगली लेवर सरकार भारतीय समस्या-के हलकी जिम्मेदारी ऐसे लोगोको सौप दे जो भारतीय समस्याका कुछ ऐसा समाधान खोजनेकी कोशिश करें जो केवल यही दो शर्तें पूरी करता हो कि सविधान अमलमें लाया जा सके और भारतका काफी बडा लोकमत उससे सन्तुष्ट हो जाये तो इंग्लैंडमे एक बवण्डर खड़ा हो जायेगा, इतना बड़ा बवण्डर कि आप भी उसका ठीक-ठीक अनुमान नही लगा सकते। यदि 'इं० ले० पा०' अपनी दलीलों और अपने प्रचारके बलपर बड़ी तेजीसे समूची 'लेवर पार्टी' को मानसिक रूपसे इसके लिए तैयार नही कर देगी, तो अगली लेवर सरकार भारतकी बागडोर किसी "निरापद्" किस्मके व्यक्तिको सौप देगी; और उस हालतमे यदि 'लेवर पार्टी' उस व्यक्तिसे यह अपेक्षा करेगी कि वह अकेले या एक-दो अन्यके साथ मिलकर भारतके लिए एक संविधान तैयार कर दे तो वह एक ऐसा संविधान ही चाहेगी, जो थोड़ी-बहुत बाते आबी-परदी मानकर अपेक्षाकृत कम कट्टर किस्मके साम्राज्य-वादियोंको अपने पक्षमें कर ले।

दूसरी तरहकी कठिनाई आपकी तरफसे पैदा होती है। आप इस बातको लगभग स्वीकार करते ही है कि यदि भारतमे लोकतान्त्रिक सरकारकी स्थापना की गई तो मुसलमान लोग उसके खिलाफ लड़ाई छेड़ देगे। मेरा अपना विश्वास है कि इस्लाम और लोकतान्त्रिकता एक दूसरेके साथ उसी प्रकार मिलकर नही खप सकते जैसे कि पानी और तेल। फिर क्या आप यह आशा करते है कि शेप भारतीय जनता अपनी राजनीतिक स्वतन्त्रताकी रक्षाके लिए उनके विरुद्ध खड़ी होगी? या यह कि ब्रिटिश सेनाको इसके लिए बुलाया जायेगा? दोनोमे से जो भी हो, इतना आपको स्वीकार करना पड़ेगा कि मुसलमानोका प्रतिरोध एक युद्धकी शक्ल अख्तियार कर लेगा, और इसका मतलब यह होगा कि अनेक निर्दोप व्यक्तियोंका खून बहेगा।

आपने एक सुझाव रखा है जो आपके खयालसे मुसलमानोका विरोध कुछ कम कर सकेगा। आपका सुझाव है — "शिक्षामें अधिमान्यता" देना, कुछ अधिक सुविधाएँ देना। क्या आप इसका खुलासा करेंगे। हमारे यहाँ इस देशमे एक योजना है, जिसके अन्तर्गत सरकारी कोपसे अनुदान पानेवाले माध्यमिक (अर्थात् अधिक उन्नत) स्कूलोमें एक बड़ी संख्या गरीब विद्यार्थियोंकी होनी चाहिए और उनको वहाँ निःशुल्क शिक्षा मिलनी चाहिए। क्या आपका आशय ऐसी ही किसी पद्धतिसे है? क्या आप

यह स्वीकार करेंगे कि संविधानमें कुछ ऐसी व्यवस्थाएँ कर दी जायें जिनके अनुसार प्रान्तीय सरकारें अपने प्रान्तमें मुसलमान जन-संख्याके अनुपातमें कुछ मुसलमान विद्यार्थियोंको इसी प्रकारकी "निःशुल्क जगहें" देनेपर बाध्य हों? और अन्तमें आपके सामने एक यह प्रश्न रख रहा हूँ, जो मेरे मस्तिष्कको बराबर झंझोड़ता रहता है और मैं जानता हूँ कि इसका कोई उत्तर हो नहीं सकता। वह प्रश्न यह है कि क्या अनुभवहीनताके कारण भारतीय जनता कुछ गलत किस्मके ऐसे लोगोंको ही अपने प्रतिनिधियोंके रूपमें नहीं चुन लेगी, जो वाग्मिताके बलपर जनताको धोखा देंगे और उनमें से कुछ अपनी-अपनी जेबें गरम करनेमें लगे रहेंगे? पहली किस्मके कई लोग हमारी 'लेबर पार्टी' तक में मौजूद हैं, हाँ, दूसरी किस्मके लोग कम ही हैं। बात बड़ी हास्यास्पद-सी है, पर यदि मुझे भारतको स्वशासन सौंपनेवाली समितिका सदस्य बना दिया जाये तो मुझे कुछ ऐसा लगेगा जैसे कि सारी योजना बिखर कर ढह जायेगी। लेकिन साथ ही मुझे यह भी लगेगा कि साहस रखनेसे सफलताकी भी थोड़ी सम्भावना है, इसलिए साहसपूर्वक आगे बढ़कर भारतीय जनताके कन्धोंपर कर्त्तव्यों और दायित्वोंका भार रख दो, उनको उनकी माँगसे भी अधिक कर्त्तव्य और दायित्व सौंप दो और उनसे कह दो कि वे वास्तवमें स्वतन्त्र नागरिकोंकी तरह काम करें। मेरा खयाल है कि अधिकांश आई० सी० एस० अधिकारी इस योजनापर अमल करनेसे इनकार कर देंगे। तब परीक्षाकी घड़ी सामने आ जायेगी। मुझे इस बातका पूरा भरोसा है कि विधान मण्डलों, प्रशासन और सरकारके कार्य-पालक विभागोंमें रिक्त होनेवाले पदोंका भार पूरी कार्य-कुशलताके साथ सँभालने लायक लोग भारतमें मौजूद हैं। पर क्या भारतीय जनता ऐसे लोगोंको ही चुनेगी, अन्य लोगोंको नहीं, या यों कहिये कि क्या भारतीय जनता ऐसे लोग इतनी पर्याप्त संख्यामें चुनेगी कि वे सरकारी मशीनको इतने सुचारु रूपसे चला सकें कि नये निरंकुश शासकोंको, किसी नये अकबर या नये कर्जनको पनपनेका मौका ही न मिल पाये?

आभार सहित आपका,
नॉर्मन लीज

[पुनश्च :]

मेरे लिये भारत आना सर्वथा असम्भव है। हाँ हमारे दलके अनेक कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण सदस्योंने, आपके सुझावके अनुरूप ही, यह पता लगानेका भरसक प्रयत्न किया है कि भारतीय जनता लेबर सरकारसे भारतमें क्या-क्या अपेक्षा रखेगी।

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० १२१७०)की फोटो-नकलसे।

परिशिष्ट ३

नॉर्मन लीज़का पत्र

२० सितम्बर, १९२६

प्रिय श्री गांधी,

आपके पत्रमे मुझे असहमत होने लायक कोई चीज नही मिली, हालाँकि ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और सामाजिक पर्यावरणका अन्तर सदा ही [व्यक्तियोके विचारोंमें] अपनी छाप छोड़ जाता है; मैं आपका अत्यन्त आभारी हूँ कि आपने मेरे प्रश्नोंपर विचार किया और उनके उत्तर देनेमे अपना समय लगाया। भविष्यमे जब भी कभी मुझे भारतीय समस्याओंको समझनेमे कोई उलझन महसूस होगी, मै आपसे सलाह लेनेमें सकोच नही करूँगा।

आपके एक शिष्य, तारिणी पी० सिन्हासे हाल ही मे मेरा परिचय हुआ है। इधर कुछ दिनोसे वे हमारे घरसे करीब ३० मीलकी दूरीपर रहनेवाले खनिकोके बीच घूम-घूमकर भाषण दे रहे थे। अभी दस दिन पहले किसी आपत्तिजनक भाषणके सिलसिलेमे उन्हे गिरफ्तार कर लिया गया था। गिरफ्तारीकी खबर मिलते ही मै उनसे मिलने गया था। उनका मुकदमा एक पखवारेके लिए मुल्तवी कर दिया गया है और वे लन्दनसे न्यायालयके लिए जाते समय हमारे घर आयेंगे। मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नही कि वे बरी कर दिये जायेंगे। लगता है कि पुलिसको उनके एक ही उस वाक्यपर आपत्ति थी, जिसमे उन्होंने देशभक्तिकी आलोचना की थी और इसमें जरा भी शक नही कि उन्होने उसका स्पष्टीकरण कर दिया था कि उन्होंने किसीके स्वदेश-प्रेमकी नही, बल्कि दूसरे देशोके प्रति घृणा और यहाँतक कि उनका अपमान करनेकी निन्दा की थी। उनकी गिरफ्तारीका वास्तविक कारण उनके साथ चलनेवाले एक बहुत ही नई उम्रके अंग्रेज द्वारा प्रयुक्त की गई भाषा मालूम पड़ती है। वह आदतन भद्दी गालियोंका प्रयोग करता था और खनिकोंको भी उकसाता था कि वे खान-मालिकोंकी शर्तोको मान लेनेवाले अपने खनिक-साथियोके लिए ऐसी ही गालियों भरी भाषाका प्रयोग करे। श्री सिन्हा यदि स्वयं भी अंग्रेज होते तो वे इस अंग्रेजके साथ एक ही मंचपर खड़े होनेसे तबतकके लिए इन्कार कर देते जबतक कि वह अधिक संयत ढंगसे न बोलने लगता। लेकिन मेरा खयाल है कि वह अंग्रेज अब अपने कामपर शर्मिन्दा है।

आपके आन्दोलनकी एक चीज ऐसी है जो हम पाश्चात्य देशोंके लोगोंको भी भाती है। वह है आपका यह विचार कि राष्ट्रीय आयमें सभी नागरिकोका भाग समान होना चाहिए और हमको अपना निजी खर्च अपने उक्त भागतक ही सीमित रखना चाहिए। मैं वर्षोंसे यही कोशिश कर रहा हूँ, पर अधिकतर असफल ही रहा हूँ। व्यक्तिगत कठिनाइयोके अतिरिक्त कुछ अन्य कठिनाइयाँ भी हैं; इस कारण

कि पारिवारिक खर्च ही सबसे बड़ी कठिनाई पैदा करता है और पुरुषोंकी अपेक्षा महिलायें हमेशा पुरानी लीकपर ही अधिक चलना चाहती हैं। और फिर मैं समझता हूँ कि किशोर-किशोरियोंपर यह सिद्धान्त लागू करना ठीक नही होगा, उनको तो समानसे कुछ अधिक भाग ही मिलना चाहिए। पर मुझे आशा है कि एक दिन कभी आयेगा जब इस देशमें ऐसे लोगोंका एक बड़ा समुदाय होगा जो ऊपरसे देखनेमे तो उन लोगोंकी तरह जीवन-यापन करेंगे, जिन्होंने कोई व्रत नही लिया है, पर अपना धन अपने ऊपर खर्च न करनेके लिए प्रतिज्ञा-बद्ध होंगे।

मुझे कुछ ऐसा याद पड़ता है कि श्री एन्ड्रचूजने कहा था कि मेरी पुस्तककी एक प्रति उन्होंने आपके पास भेजी है। मैंने उनको कई प्रतियाँ वितरणके लिए दी थीं। उसका नाम 'केनिया' है। परन्तु यदि आपको प्रति न मिली हो और यदि आप मुझे एक प्रति भेजनेका सौभाग्य देना चाहते हों तो कृपया मुझे बतलाइयेगा। आप मुझे उसपर अपने हस्ताक्षर करनेकी अनुमति दीजिये। हम सभी समाजवादी ऐसा ही करते हैं।

आपका भाई,
नॉर्मन लीज़

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० १२१७२) की फोटो-नकलसे।

परिशिष्ट ४

एक अपील

महात्माजी,

आप एक ऐसे व्यक्ति हैं जिसने अपने क्षुद्रसे-क्षुद्र अनुयायीके लिए भी कभी अपने द्वार बन्द नहीं किए। इसलिए आपसे अपनी बात कहनेके लिए हमने यह जो एक विचित्र-सा तरीका अपनाया है, इसपर आपको शायद आश्चर्य होगा, शायद आप कुछ रुष्ट भी हो उठें। अपनी बात सुनानेके लिए यह तरीका अपनानेके पक्षमे हमारे पास केवल एक ही दलील है — यह कि हमारी राष्ट्रीय राजनीतिकी वर्तमान दशा अत्यन्त शोचनीय बन गई है, राजनीतिक दल अनेक उपदलों और गुटोंमें बँट गये हैं, व्यक्ति और पूर्वग्रह परस्पर टकरा रहे हैं। जाहिर है कि आप इस सबसे बेखबर नहीं हैं, और देशकी वर्तमान दुखद स्थितिको देखकर आपका हृदय जितनी तीव्र पीड़ासे कराह उठता होगा उतनी पीड़ा अन्य किसी भारतीयको नहीं हो सकती। लेकिन जहाँतक हम सोच पाते हैं, हमें लगता है कि आप शायद एक बातसे अनभिज्ञ हैं और हम समाचारपत्रोंके माध्यमसे यह अपील करके आपका ध्यान उसीकी ओर सादर आकर्षित करना चाहते हैं। आप जिस चीजसे अनभिज्ञ हैं वह है आपके उन करोड़ों देशवासियोंके हृदयोंमें पैठी एक मूक व्यथा और व्यग्रता जो एक लम्बे अर्सेसे आपसे नेतृत्व पानेकी बाट देख रही है। आप ही एक भारतीय हैं, जिनको समूचे राष्ट्रके नेताके पदपर

प्रतिष्ठित होनेका सौभाग्य प्राप्त है और जिनपर सभी परस्पर जूझते समुदायोको पूरा भरोसा है और सरकार भी जिनका आदर करती है और जिनसे भय खाती है। आपके ये देशवासी किसी भी तरहसे अपनी भावनाये व्यक्त नही कर पाते। वे आपसे इसलिए अपील करते है कि आपने अपने आपको आत्मत्यागके जिस अनुशासनसे कस लिया है उसका वे सम्मान करते हैं। श्रीमान, आप इसे हमारी धृष्टता न मानें कि हम इस प्रकार उस मूक जनताके प्रतिनिधि बनकर आपके सामने आये हैं और आपसे उस बागडोरको फिर थामनेका अनुरोध कर रहे है, जिसे आपने स्वेच्छासे त्याग दिया था। हमे अनुमति दीजिए कि हम आपसे यह अपील कर सके, भारतकी मूक जनताके नामपर उन लोगोकी दुहाई देकर जिन्होने आपके मार्ग-दर्शनके कालमे बिना किसी आनाकानी या शकाके आपके आदेशोंका पालन किया था; अनुमति दीजिए कि हम स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातृत्वके उन पवित्र सिद्धान्तोके नामपर आपसे अपील कर सके जिनको आज सिर्फ इसलिए पैरो तले रौदा जा रहा हैं कि निराशा और विपत्तिके इन दुर्दिनोमें भी अपना मस्तक ऊँचा रख सकने और प्रतिक्रियावादके थपेड़ोंका मुँह मोड़ सकनेवाला जो एकमात्र व्यक्ति है, वही आज एक ओर अलग खड़ा है।

श्रीमान, यह अपील करनेके हमारे पास जो कारण मौजूद हैं उनसे आप परिचित नही हो सकते। आपने जबसे अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलनका सूत्रपात किया है, हम तब ही से आपके अनुयायी रहे हैं; और शासनकी वर्तमान व्यवस्थाके विरुद्ध आपके संघर्षके बुनियादी सिद्धान्तो परसे हमारा विश्वास अभी उठ नही गया है। आपके महान आदर्शके पालनेके लिए जिस कठोर आत्मानुशासन, अडिग आत्मत्यागकी आवश्यकता थी, उसके लिए देश शायद तैयार नही था। अपने देशवासियोकी अप्रस्तुत मन.स्थिति देखकर आपको घोर निराशा हुई और इसीलिए, आपने अकथनीय मानसिक पीड़ाके बावजूद यह फैसला कर लिया था कि चौरी-चौरा काण्डकी अनगिनत बार पुनरावृत्ति कराते हुए आगे बढनेसे तो कही अच्छा है कि बारडोलीसे आरम्भ हुए आन्दोलनको ही रद कर दिया जाये। श्रीमान, आपकी जेल-यात्राके साथ ही राष्ट्रीय एकताकी उग्र भावना और राष्ट्रीय स्वतन्त्रता प्राप्त करनेके दृढ़ सकल्पका ह्रास शुरू हो गया। आपकी रिहाई और उसके बादकी राजनीतिक घटनाओंकी सभीको बड़ी अच्छी जानकारी है, इसलिए उनको यहाँ दोहरानेकी जरूरत नही। लेकिन सकतेमे पड़ा राष्ट्र साँस रोककर प्रतिक्रियावादी शक्तियोको एकके बाद दूसरी विजय प्राप्त करते देखता आ रहा है; उसे लग रहा है कि आप देशको असाध्य अनौचित्यके अतल कूपमे गिरनेसे बचानेके लिए एकके बाद एक आत्मसमर्पण करते जा रहे है। ऐसे भी अनेक व्यक्ति हैं जो आपके उस उदात्त आत्माको कभी समझ ही नही पाये, जिसने जेलसे आपकी बिना शर्त रिहाईके दिनसे ही आपकी सभी गतिविधियोको प्रेरित किया है। लेकिन कहते हैं कि अब वह घड़ी आ पहुँची है जब आप अपनी मातृभूमिके प्रति अपने अपार प्रेमकी खातिर एक और बड़ा त्याग करे, अबतक आपने जितने त्याग किये हैं उनसे कही बड़ा एक त्याग और करें, अर्थात् आप अपने लिए हुए व्रतको त्याग दे। और हमारे इस उद्गारके पीछे केवल हमारी अपनी ही भावना नही है बल्कि उक्त शंकालु और ढुलमुल

लोगोंकी भावना भी है और उन लाखों लोगोंकी भावना भी है जो मूक तो हैं पर महत्त्वहीन नहीं हैं।

इस संकटकी घड़ीमें भारतीय जनताके निर्विवाद नेताको अपना स्व-आरोपित एकान्त त्याग कर बाहर आ ही जाना चाहिए। इसके लिए कुछ और भी अनिवार्य कारण गिनाये जा सकते हैं। हमारी जनता जिस प्रकारके विदेशी शासनमें कसमसा रही है, उससे देशकी आत्माको जो अकूत, अपार हानि हो रही है, उसके अतिरिक्त एक अनिवार्य कारण यह भी है कि भारतीय जनताके सामने आज अनगिनत ऐसे लक्षण प्रकट हो रहे हैं जिनको देखकर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यदि वह अपने अधिकारोंकी रक्षाका एक दृढ़ संकल्प नहीं कर लेगी तो विदेशी शोषकोंके लोभकी वेदीपर हमारे देशके हितोंकी बलि चढ़ा दी जायेगी। विधान सभामें अभी हालमे जो घटनाये घटी हैं उनसे हमें क्या सबक मिलता है? आशा है आप हमे इसका उल्लेख करनेके लिए क्षमा करेंगे। स्वराज्यवादियोंने नौकरशाहीकी अनुदार उपेक्षाके प्रति सम्मिलित रूपसे विरोध प्रदर्शन करनेके लिए सदन त्याग दिया था। उनकी अनुपस्थितिका लाभ उठाकर सरकारने देशके सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हितोंसे सम्बन्धित एक विधेयकको शीघ्रता-से स्वीकृत करानेकी धृष्टता की, लेकिन स्वराज्यवादियोंने मुद्रा विधेयकके अत्यधिक महत्त्वको समझा और ऐन उसी दिन विधान सभामें लौटकर सरकारकी चाल नाकाम कर दी। यदि सरकारको रोकने या नियंत्रित करनेवाले देशकी जनताके प्रतिनिधि नहीं रहेंगे, तो ऐसी अनगिनत चीजें है जिनमें नौकरशाही इस देशके हितोंको काफी बड़ी हानि पहुँचा सकती है और पहुँचायेगी। और यदि जनताके प्रतिनिधियोंमें पूरी तरहसे फूट पड़ गई — जैसा कि सभी अनधिकार नामधारी नेताओं और वक्ताओं द्वारा हालमें की गई दलको हथियानेकी कोशिशोंसे बिलकुल स्पष्ट दिखने लगा है — तो खतरा इस बातका भी है कि भावी विधान सभा और परिषदोंमें राष्ट्र-विरोधी लोगोंका ही भारी बहुमत हो जायेगा। परन्तु स्थितिका सबसे अधिक क्षोभकारी पहलू तो यह है कि वह भारी बहुमत वास्तवमें भारतीय जनताके एक बहुत ही छोटेसे भागका प्रतिनिधि होगा। इसलिए कि हमारा निश्चित विश्वास है कि देशकी जनता आज भी तन-प्राणसे राष्ट्रवादी ही है। उसे केवल एक ऐसे नेताकी आवश्यकता है जो अपने निजी हितोंका बिलकुल भी कोई खयाल किये बिना उसकी आकांक्षाओंके साथ एक-प्राण हो, उसपर होनेवाले अन्यायोंको महसूस करे और उनके संघर्षोंमें आगे रहे। श्रीमान, ऐसा नेता दुर्लभ हुआ करता है, लेकिन भारतका सौभाग्य है कि उसके पास एक ऐसा नागरिक मौजूद है, अर्थात् आप मौजूद हैं। श्रीमान, हम आपसे आपके ही देशके नामपर अनुरोध करते है, हम आजतकके भुगते हुए अन्यायोंका ही नहीं, उन अन्य अनगिनत अन्यायोंका वास्ता देकर भी आपसे अनुरोध कर रहे हैं जो हमें आगे भुगतने पड़ेंगे। हमारी विनती है कि आप अपना निवृत्तिका व्रत, आत्म-त्यागका अपना संकल्प त्याग दें और अपने देशकी पुकारपर कान देकर उसकी बागडोर सम्भाल लें। दूसरा कोई भी इस बागडोरको आपकी तरह नहीं सम्भाल सकता। हमारी यह विनती इस अन्धविश्वास और विवेकशून्य भावनासे प्रेरित नहीं हुई है कि संसारको

त्रस्त करनेवाली बुराइयोंका किसी दिन कुछ-न-कुछ भला परिणाम अवश्य निकलेगा। हम भलीभाँति जानते है कि देश कैसी घोर अव्यवस्थाके कूपमे गिर पड़ा है, परन्तु श्रीमान हमारा विश्वास है कि यदि आप इस पुकारपर कोई पहल करे तो देशके स्वातन्त्र्य सग्रामके लिए एक बार फिर धन और जनकी कोई कमी नही रह जायेगी।

हम ईर्ष्यावश या व्यक्तिगत कारणोसे कोई बात नही कहना चाहते। हमारी तनिक भी इच्छा नही है कि हम आपकी अनुपस्थितिमे या आपके निवृत्ति-कालमे किये गये किन्ही कामोके लिए किसी भी व्यक्ति या व्यक्तियोकी आलोचना, सराहना या निन्दा करे। हम समझते हैं कि देश अब ऐसे झझटोसे तग आ चुका है और पिछली बातोको भूल जानेके लिए तैयार है। परन्तु यह सम्पन्न करानेके लिए भी हमे एक सच्चा नेता चाहिए, ऐसा नेता जिसे स्वयं ईश्वरने नेतृत्वकी प्रतिभा दी हो। ऐसी प्रतिभा समाचारपत्रोके विज्ञापनो या सभा-मचो द्वारा किसी भी ऐसे व्यक्तिमे पैदा नही की जा सकती जिसे यह प्रकृतिसे ही वरदानमे न मिली हो। और यदि हमारा यह आग्रह आपको मान्य है और यदि आप कामके तरीकेके बारेमे दिये गये मात्र सुझावसे अप्रसन्न न हो, तो हम कहेगे कि पुनः बागडोर सँभालनेका काम आप यहाँसे शुरू करे कि स्वयं ही एक पूर्ण प्रतिनिधित्वपूर्ण सम्मेलन बुलाये —— ऐसा सम्मेलन जो व्यक्तियोका नही वल्कि इस देशको विरोधी गुटोंमे विभाजित करनेवाले सभी सिद्धान्तो या हितोका प्रतिनिधित्व करता हो। यह हमारा एक सुझाव भर है, अधिक कुछ नही। ऐसे सम्मेलनमे पण्डित मदन मोहन मालवीयके लिए भी काफी गुंजाइश है, सर अब्दुर रहीमके लिए भी है, श्री जयकर[1] और श्री पटेलके[2] लिए भी है। हमे मालूम है कि इधर कुछ दिनोसे हमारी राष्ट्रीय काग्रेसका ही एक विशेष अधिवेशन बुलवानेके लिए प्रचार किया जा रहा है। पर हम सादर निवेदन करते हैं कि ऐसा अधिवेशन जितना कि अभी असामयिक होगा उतना ही विफल भी। इसलिए कि काग्रेस संस्था तो अपने सविधान और प्रक्रिया-नियमोंसे बँधी हुई है। और उनका पालन करते हुए भावनाओ और विचारोंका नि.सकोच आदान-प्रदान नही हो सकेगा, जबकि आज साम्प्रदायिक वैमनस्यकी जड़मे मौजूद भ्रान्तियो और पूर्वग्रहोको दूर करनेका एकमात्र आसान तरीका ऐसा नि.सकोच वैचारिक आदान-प्रदान ही है। हमे इस बातका भी ध्यान है कि यदि आप हमारे इस सुझावके अनुरूप एक वास्तवमे प्रतिनिधित्वपूर्ण सम्मेलन बुलाये तो आप भी भर्त्सना-आलोचनासे सर्वथा अछूते नही रह पायेगे। परन्तु आपकी नीयतपर कोई शंका नही करता, आपका कार्य समुच शुद्ध-तम अर्थमे राष्ट्रीय होगा। और यदि बुरेसे-बुरा परिणाम ही निकला तो उसके कारण व्यक्तिगत गलत फहमियाँ या गलत बयानियाँ भी सामने आ सकती है; पर हम समझते हैं कि देशके हितोपर आनेवाली आँचको देखते हुए आप जैसी महान आत्मा उस सबसे अविचलित रह सकती है और उसे रहना ही चाहिए। हमने समूचे देशकी जनताकी अव्यक्त आकाक्षा आपपर प्रकट कर दी है। अब आप जो सर्वोचित समझे,

१. मु० रा० जयकर
२. विठ्ठलभाई पटेल

करें और हमें पूरा भरोसा है कि आप पूर्ण आश्वस्त रहेंगे कि हम अब भी आपके सर्वाधिक विनम्र तथा कर्त्तव्यपरायण अनुयायी हैं।

(डा०) सैयद महमूद
(दरबार) गोपालदास ए० देसाई
(डा०) सैफुद्दीन किचलू
बरजोरजी फरामजी भरूचा
लक्ष्मणदास रावजी तेरसी
नवरोजी एच० बेलगाँववाला
चन्दूलाल देसाई
श्रीनिवास वी० कौजल्गी
सैयद अब्दुल्ला बरेलवी
जयसुखलाल के० मेहता
आर० के० सिधवा
सोराब पी० कापड़िया

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, ६-९-१९२६

परिशिष्ट ५

भवानीदयालका पत्र

९ सितम्बर, १९२६

पूज्य महात्माजी,

सादर नमस्ते।

मै अभी यहीं हूँ। बीमार हो जानेके कारण डेप्यूटेशनके साथ दक्षिण आफ्रिका वापस न जा सका।

प्रवासी-भवनके लिए आपका आशीर्वाद मिला था। श्रद्धेय राजेन्द्रबाबूके हाथोंसे भवनका उद्घाटन हो जानेके बादसे पाठशाला और पुस्तकालयका काम नियमपूर्वक चल रहा है।

मै 'दक्षिण आफ्रिकामें चौदह वर्ष' नामकी एक पुस्तक लिख रहा हूँ। इसमें मै अपने समस्त अनुभवोंका सार देना चाहता हूँ। अतएव मैं आपसे निम्नलिखित प्रश्न पूछनेकी धृष्टता करता हूँ:

१. जोहानिसबर्गमें जो इंडियन लोकेशन था उसे म्युनिसिपैलिटीको दे देनेके लिए क्या आपने भारतीयोंको सम्मति दी थी?

२. 'इंडियन लोकेशन' छिन जानेके बाद क्या म्युनिसिपैलिटीने दूसरी जगह लोकेशन बसानेका विचार प्रकट किया था और क्या यह सत्य है कि आपने भारतीयोंको नई जगह मंजूर करनेसे मना किया? यदि हाँ तो इसका कारण?

३. क्या यह सत्य है कि लोकेशनके सम्बन्धमें म्युनिसिपैलिटीकी ओरसे आपको १६०० पौंड मिले थे? और क्या भारतीयोंसे भी कुछ मिला था?

४. जोहानिसबर्गमें जो 'ट्रान्सवाल इंडियन एसोसिएशन' था क्या उसीको मिटा कर 'ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन'की सृष्टि नहीं हुई?

५. यदि बलात् अँगुलियोंकी छाप देना अनुचित था तो स्वेच्छासे देनेमें उचित कैसे हो गया? इसमें मुझे बड़ा असमंजस जान पड़ता है। क्या संसारमें और भी

कही कैदियोंके सिवाय इस प्रकार अँगुलियोकी छाप लेनेका विधान है? यदि किसीके 'बलात्' करनेपर नग्न नृत्य करना अनुचित है तो क्या 'स्वेच्छा' से वैसा करनेपर उचित हो जायेगा?

६. यदि सरकार अनधिकारी भारतीयोंके प्रवेश रोकनेके अभिप्रायसे अँगुलियोंकी छाप लेना चाहती थी तो क्या 'फोटो' से यह उद्देश्य सिद्ध नही हो सकता जैसाकि पहचानके लिए अन्य सभी सभ्य देशोंका रिवाज है?

७. Vested Rights के सम्बन्धमें आपका यह वाक्य है कि "By vested rights I understand the right of an Indian and his successors to live and trade in the township in which he was living and trading. No matter how often he shifts his residence or business from place to place in the same township" क्या इसमें यह अर्थ नही निकलता कि यदि एक an व्यापारी या उसके उत्तराधिकारीका अमुक स्थानमें रोजगार करनेका अधिकार है तो उसी नगरमें बार-बार स्थान-परिवर्तन करनेपर भी उसका अधिकार सुरक्षित रहना चाहिए? इस वाक्यका क्या यह अभिप्राय नहीं होता कि जो व्यापार कर रहे है, उनके या उनके उत्तराधिकारियों के सिवाय "अन्य या नवीन" भारतीयोंका व्यापारका स्वत्व नहीं रहा? जहाँतक मै समझता हूँ कि vested rights से आपका मतलब 'तत्कालीन चालू हकोंकी रक्षा' होना चाहिए। किन्तु आपके स्पष्टीकरणसे क्या यही अर्थ निकलता है?

८. आपका 'दक्षिण आफ्रिकाका सत्याग्रह' मैंने अभी पढ़ा है; उसकी प्रस्तावनामें श्री राजेन्द्रबाबूका 'चम्पारनमें सत्याग्रह' नामकी पुस्तकका जिक्र तो है; किन्तु 'दक्षिण आफ्रिकाके सत्याग्रहका इतिहास' का कोई उल्लेख नही है। यदि मेरी पुस्तक अपूर्ण और अप्रामाणिक है तो केवल आपकी एक पंक्तिसे उसका प्रचार रुक सकता था और यदि उसमें लिखी हुई घटनाएँ प्रामाणिक है तो उसकी उपेक्षा क्यों की गई?

मैंने ऊपर जो आठ प्रश्न पूछे है उसकी चर्चा अभीतक होती है और मै भी भ्रममें पड़कर कई विषयोंपर ऊटपटाँग लेखनी चला चुका हूँ। अतएव इस पुस्तकमें मै अपनी सारी गलतियोंका संशोधन और उसके लिए पश्चात्ताप प्रकट करना चाहता हूँ। इसीलिए मै कुछ प्रश्न पूछनेकी धृष्टता कर रहा हूँ। आशा है कि आप मुझपर दया करके यथासम्भव शीघ्र ही उत्तर भिजवानेकी कृपा करेंगे। मै उपर्युक्त प्रश्नोंका कुछ विस्तारसे उत्तर चाहता हूँ। आपको हिन्दी लिखनेमें कष्ट होगा, यह मै जानता हूँ, किन्तु मुझे आशा है कि आश्रमके किसी हिन्दी-लेखकसे यह काम लिया जा सकता है।

कृपा दृष्टि बनी रहे।

आपका सेवक,
भवानीदयाल

मूल पत्र (एस० एन० १०९९०) की फोटो-नकलसे।

परिशिष्ट ६

बनारसीदास चतुर्वेदीका पत्र

फीरोजाबाद,
आगरा

मान्यवर,

९ सितम्बरके 'यंग इंडिया' में 'आउट ऑफ द फ्राइंग पेन' शीर्षकसे प्रकाशित आपके लेखमें कुछ बातें कही गई हैं, जिनका स्पष्टीकरण आपसे अपेक्षित है। आपने आई० आई० सी० एसोसिएशनके श्री वेजके प्रतिवेदनका एक अंश उद्धृत किया है, जिसमे इस बातको जोर देकर कहा गया है कि उपनिवेशोंमे वसे भारतीयोने दो कारणोंसे अपना जन्मप्रदेश त्याग था — (१) मातृभूमि जानेकी इच्छा और (२) यह अफवाह कि भारतको स्वराज्य मिल गया है। वापस आये इन प्रवासियोके सम्पर्कमे मैं पिछले छ: वर्षोंसे हूँ। इस अरसेमें और नही तो बीस बार अवश्य ही उनके घरोमे जाकर उनसे मिला हूँ। इन नाते मै कह सकता हूँ कि यह दूसरा कारण एक कोरी कल्पना है। श्री एन्ड्रूचूज और आपने जब मुझे इन प्रवासियोंकी देखभालका काम सौपा था, उस समय भी एक-दो लोगोंने मुझे यह कारण वतलाया था और मैंने इस सम्बन्धमे पूरी तरहसे जाँच-पड़ताल की थी और इसे विलकुल ही निराधार पाया था। जाहिर है कि मटियाबुर्जके कुछ चतुर लोगोंने श्री वेजको भटका दिया होगा।

भारत लौटे हुए इन प्रवासियोंकी कठिनाइयोंका जिक्र करते हुए आपने लिखा है: "यहाँ वे सामाजिक रूपसे बहिष्कृत जैसे है, क्योकि वे जनताकी भाषातक नही जानते।" सबसे पहले तो मैं यह स्पष्ट कर दूँ कि अधिकाश प्रवासी जनताकी भाषा जानते है। निश्चय ही, वे अपना आशय व्यक्त कर सकते हैं, यह दूसरी वात है कि उनकी हिन्दुस्तानी व्याकरणकी दृष्टिसे शुद्ध नहीं होती। मैंने खुद ही मटियावुर्जमे सैकड़ों प्रवासियोंसे हिन्दीमें बातचीत की है। मै इतनी बार मटियावुर्ज गया हूँ, पर मुझे वहाँ एक भी भारतीय ऐसा नही मिला जिसके वारेमें आपका यह कथन विलकुल सही उतरता हो कि "वे जनताकी भाषातक नही जानते।" मैं निश्चित तौरपर कह सकता हूँ कि उनमे से अधिकांशको वोलचालकी हिन्दुस्तानीकी अच्छी जानकारी है। हाँ, वे साहित्यिक हिन्दी या उर्दू नही जानते।

एक चीज और है जिसे भूलना न ही चाहिए। वह यह कि लौटे हुए भारतीयोमे से अस्सी प्रतिशत भारतके गाँवोंमें घुलमिल जाते हैं, और केवल वीस प्रतिशतसे कुछ कमको ही मटियावुर्जमें शरण लेनी पड़ती है। मटियावुर्जमे टिके इन लोगोको वसनेके अवसर कई बार दिये गये, पर वे हर वार मना करते रहे हैं। इसमे शक नहीं कि मटियावुर्जमें इस समय टिके इन प्रवासियोंमे से अनेक अपनी जातिके लोगो, जमीदारो और पुलिस तथा पण्डितोके अत्याचारोंसे पीड़ित रह चुके हैं, पर ये लोग लौटे हुए

प्रवासियोकी कुल संख्याका एक बहुत ही छोटा भाग हैं। इसलिए आपके कथनमें कुछ तरमीम जरूरी हो जाती है।

लौटे हुए इन प्रवासियोको आप किसी ऐसे सर्वाधिक उपयुक्त उपनिवेशमें भेजनेकी नीतिका अनुमोदन करते है, जो इन्हे स्वीकार करनेको तैयार हो। अभी इस समय तो ब्रिटिश गियाना ही इनको स्वीकार करनेके लिए तैयार है और भारत सरकार इनमें से कुछको वहाँ भेजनेके लिए तैयार भी है। और सचमुच कलकत्तामे एक स्टीमर पिछले कुछ दिनोंसे इनका इन्तजार भी कर रहा है। वह २० तारीखको चलेगा। क्या आप फिजीके भारतीयोको ब्रिटिश गियाना भेजनेकी नीतिका अनुमोदन करते है? मै यह प्रश्न इसलिए पूछ रहा हूँ कि मुझे आशका है कि कही भारत सरकार आपके इस बयानकी आड लेकर फिजीके भारतीयोको ब्रिटिश गियाना न भेज दे। इस समय मटियाबुर्जमें ब्रिटिश गियानामे लौटे प्रवासियोंकी सख्या ३०० से अधिक नही है जबकि फिजीसे लौटे प्रवासी ६०० से अधिक मौजूद है। मैने दस महीने पहले मटियाबुर्जमे जाँच की थी और इलाहाबादसे निकलनेवाले 'चाँद' मे अपने निष्कर्ष प्रकाशित कराये थे। मेरे इस लेखके कुछ अंश फिजी विधान परिषदके एक सदस्यने परिषदकी बैठकमें पढकर सुनाये थे और उन्होंने एक प्रस्ताव पेश किया था कि फिजीके इन ५०० लोगोंको फिजी बुला लिया जाये। प्रस्ताव स्वीकृत हो गया था और उसे परिषदके सदस्योंकी सर्वसम्मत राय मान लिया गया था। अब फिजीके गवर्नरने इस विषयको लेकर उपनिवेश-सचिवको लिखा है। इसलिए सम्भव है कि फिजीसे लौटे ये प्रवासी शायद फीजी वापस भेजे जा सकें।

मटियाबुर्जमे टिके प्रवासियोंकी इस समस्याके सम्बन्धमे आपने चार बुनियादी सवाल उठाये है. (१) प्रवास-नीति (२) ब्रिटिश गियाना और फिजीकी विशेष स्थिति (३) मैत्रीपूर्ण सस्थाओंके कामकी मर्यादा और (४) राष्ट्रका कर्त्तव्य। आपका कहना है कि कलकत्तामे ठहरे हुए प्रवासियोंकी अविलम्ब सहायताकी जानी चाहिए। और ब्रिटिश गियानासे लौटे प्रवासियोको वही वापस भेजनेकी आपकी बातसे तो मैं बिलकुल सहमत हूँ, पर फीजीके भारतीयोको ब्रिटिश गियाना भेजनेकी सलाह मै नही दे सकता, क्योंकि उसका जलवायु फीजीके मुकाबले बहुत ही खराब है। फिजीका जलवायु बड़ा अच्छा है। आपने जो चार प्रश्न उठाये है वे वास्तवमे परस्पर गुँथे हुए हैं और उनकी ओर तुरन्त ध्यान देना आवश्यक है। भारत सरकारके पत्रसे स्पष्ट है कि वह ब्रिटिश गियाना भेजनेके लिए ५०० परिवार भर्ती करना चाहती है। इसके अतिरिक्त अन्य उपनिवेशोसे भी प्रतिवर्ष हजारो भारतीय लौटते रहते है और मटियाबुर्जकी समस्या निस्सन्देह अस्थायी नही है, अभी लम्बे अरसेतक वह बार-बार सामने आती रहेगी। हमे यह भी याद रखना चाहिए। औपनिवेशिक सरकारें एक शरारत करती रही हैं — वे उनके कागजात भारत भेजती रही हैं। ये अभागे लोग उपनिवेशोमे अपने जीवनका सबसे अच्छा क्रियाशील समय बिताकर जब भारत लौटते है तो नैतिक और शारीरिक दोनो ही तरहसे बिलकुल बुझ चुके होते है और ऐसे लोग उपनिवेशोके लिए किसी भी तरह लाभप्रद निवासी नही हो सकते। हमे मालूम

है कि दो वर्षसे कुछ अधिक समय पहले इन लोगोंको एक बड़ी संख्यामें मॉरिशस भेजा गया था और उनमें से अधिकांशको मॉरिशस सरकारने अपने खर्चेपर भारत लौटा दिया था। इन लोगोंको फौरन मदद पहुँचानेकी चिन्तामें हमें प्रश्नका यह पहलू अनदेखा नहीं कर देना चाहिए कि इनमें से कितने लोग उपनिवेशोंके किसी कामके सिद्ध होंगे। हमारे कर्त्तव्यकी इतिश्री इतनेपर ही नहीं हो जाती कि जल्दीसे-जल्दी इनको किसी भी उपनिवेशमें भेज दिया जाये।

आवश्यकता इस बातकी है कि इसमें दिलचस्पी रखने और इनके लिए कुछ कर सकनेवाले सभी लोग इस पूरे प्रश्नपर बारीकीसे बहस-मुबाहिसा करें। ऐसा करने और कुछ सामान्य निष्कर्ष निकाल लेनेके बाद ही फिर सरकारसे उसका कर्त्तव्य पूरा करनेकी अपेक्षा की जा सकेगी। ऐसा बहस-मुबाहिसा शुरू करनेसे पहले इस बातकी गहरी जाँच-पड़ताल कर लेना जरूरी है कि ये लौटे हुए प्रवासी मटियाबुर्ज जानेसे पहले विभिन्न जिलोंमें किन परिस्थितियोंमें रहते थे।

आपका इत्यादि,
बनारसीदास चतुर्वेदी

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, २३-९-१९२६

परिशिष्ट ७

रोमाँ रोलाँका पत्र मीराबहनके नाम[1]

विलन्व (वाँ)
विला ओल्गा
२६ सितम्बर, १९२६

प्रिय बहन,

तुमसे, और इस बहाने तुम्हारे बापूसे, बात करनेके लिए एक घण्टा मैंने आखिर निकाल ही लिया।

मैं तुम्हारे आखीर जुलाईके खतका जवाब दे रहा हूँ और मैं एक बार फिर इस बातपर अफसोस जाहिर करता हूँ कि गांधी हैल्सिंगफोर्समें हुए ईसाई युवकोंके सम्मेलनमें शामिल नहीं हो पाये। इनमेंसे कई युवकों और खासकर के० टी० पॉलसे अपनी मुलाकातके बादसे तो मेरा अफसोस और भी गहरा हो गया है।

तुम सोचती हो कि गांधीके व्यक्तित्वके प्रति अपना लगाव दिखाना एक फैशनसा बन गया है, या यह कि गांधीके सिद्धान्तके प्रति एक ऊपरी या नन्हीं आसक्ति है। ऐसी कोई बात नहीं है; बिलकुल नहीं। इसका कोई सवाल ही नहीं

१. इसका अनुवाद मूल फ्रेन्चसे अंग्रेजीमें मीराबहन द्वारा किए गए अनुवादसे किया गया है।

उठता, लेकिन सच्चाई इससे अधिक अप्रत्याशित, पर निर्विवाद है और वह यह है कि यूरोपकी ईसाइयतको गाधीका व्यक्तित्व, उनका कर्म, उनका जीवनका तरीका और उनकी आस्था ही सबसे अधिक प्रेरणा देती रही है। ऐसी आशा न तुमको थी और न गाधीको ही; और महात्मा ऐसा कोई लक्ष्य लेकर चले भी नही थे। परन्तु महान कार्योंके परिणाम अप्रत्याशित निकलते हैं, और अक्सर ऐसा होता है कि उनके प्रभावका महत्त्व ईश्वरका काम करनेवाले इन महान व्यक्तियोंकी अपनी आशा और इच्छासे मेल खाता हुआ या उससे भी कही अधिक हो जाता है। इसलिए कि आखिर व्यक्ति ही तो कर्म नही करता, कर्त्ता तो ईश्वर ही है जो व्यक्तिके माध्यमसे कर्म करता है।

सच तो यह है कि यूरोपके ईसाइयोंकी नई पीढीने गाधीमे आजके विशुद्धतम ईसाईके दर्शन किये है (भले ही गाधीको इसकी जानकारी न हो) ऐसे इन्सानके दर्शन किये है जो धर्माचार्यो और पादरियोसे कही ऊपर उठकर ईसाके धर्मोपदेशोकी भावनाको लेकर चलनेवाली परम्परासे प्रत्यक्ष तादात्म्य स्थापित करता है।

इस प्रकार ईसाइयोके समक्ष उनके अपने धर्म-सिद्धान्तोकी व्याख्या करने और समझाने और पीड़ाजनक आशकाओ तथा अनिश्चयकी घड़ीमे उनका सही मार्गदर्शन करनेके कारण इन तरुण ईसाइयोपर गाधीका प्रभाव अत्यधिक व्यापक हो गया है।

बहुत मुमकिन है कि गाधीकी अपनी कोई ऐसी अभिलापा न रही हो। लेकिन मैं फिर कहूँगा कि ऊपरवाला, जो गाधीसे कही बड़ा है, उसकी यही इच्छा थी। और गाधी को भविष्यमे उसकी इस इच्छासे बच निकलनेका कोई अधिकार नही। इसलिए कि भारतमें उसका काम कितना ही अनुल्लंघनीय या अनिवार्य क्यों न हो, पर वह काम समूची मानवताके प्रति उसके कर्त्तव्यका एक अंग ही है और वह कर्त्तव्य उससे कही बड़ा है। और हिन्दूधर्ममें गाधीका अपना व्यक्तिगत विश्वास कितना ही गहरा क्यों न हो, लेकिन सारे धार्मिक विश्वासोमें सर्वश्रेष्ठ दिव्यतम विश्वासज्ञानका प्रचण्डतम आलोक, एक शाश्वत, चिरंतन तत्त्व वही है जो सभी धार्मिक विश्वासोंमें समान रूपसे व्याप्त है, वह नही जो ईश्वरको किसी वस्तु विशेप या स्थल विशेप मे ही देखता है और उसे हर कही समान रूपसे व्याप्त, सर्वव्यापक नही मानता। और जो ईश्वरकी वाणी सुनता है और ईश्वरके शब्दोको ही दोहराता है वह संसार के समस्त प्राणियोके उद्गारोको वाणी देता है।

अन्त करण और आस्थाकी समस्याका कोई हल तलाश न कर पानेकी दारुण व्यथा अब वर्तमान ईसाई समाजमे घुन लगाती जा रही है। ईसाइयोका कोई भी धर्माचार्य या धर्म-प्रवक्ता इस समस्याको हल करनेमे समर्थ नही है। इसकी एक बड़ी तीव्र अभिव्यजना मैंने रोम विश्वविद्यालयके एक प्राध्यापककी रचनाओमे देखी है। लुइगी त्राफेलीकी 'उबी क्रिस्टियानुस' और 'डोथिरीना डि क्राइस्टो' ('ईसाइयत कहाँ' और 'क्राइस्टका सिद्धान्त') दो पुस्तके मुझे हालमे मिली थी। निस्सन्देह, लेखकका अन्त.करण तीव्र व्यथासे बिधा हुआ है। वे शुरू ही इस घोषणाके साथ करते हैं कि ईसाने अपने पहले उपदेशमे ही जिस 'मेटानोइया' या 'आन्तरिक परिवर्तन'

या 'हृदय-परिवर्तन' की वात कही थी, उसका मतलव होता है कि सामान्य जीवनमें मनुष्य जिन मूल्योंकी सवसे ज्यादा कद्र करते हैं, उन मूल्योंका एकदम निराकरण-निग्रह किया जाये और उनका पूर्ण रूपान्तरण हो। आवश्यकता इस वातकी है कि आध्यात्मिक ज्ञानसे 'अप्रबुद्ध मानव' को उसके अज्ञानसे मुक्त करके सहज, प्रकृत अवस्थाने लाया जाये, इस वातकी नहीं कि आध्यात्मिक रूपसे 'प्रबुद्ध मानव' का पुनः संस्कार किया जाये, उसे नया वाना पहनाया जाये, क्योंकि वह ईश्वरके साम्राज्यमें तवतक प्रवेश नहीं पा सकेगा जबतक कि वह अपने सर्वोच्च, परम पुनीत कर्त्तव्यके लिए अपने छोटे-मोटे सांसारिक कर्त्तव्योंको त्याग नहीं देता और जवतक वह पूर्ण वननेकी अपनी अभिलापाकी वेदीपर सांसारिक सुखों या मायाके हर प्रकारके मोहको वलि नहीं चढ़ा देता। "इसलिए तू इतना पूर्ण वन जितना कि स्वर्गमें तेरा परम पिता है।" सांसारिक माया-मोहके लिए कोई गुंजाइश मत रहने दे। "सब कुछ त्याग दे और मेरे पीछे चल।"

लुइगी त्राफेलीने आध्यात्मिकता और सांसारिक मोहके वीच चलनेवाले इस सनातन संघर्ष, विरोधाभासका विश्लेषण करनेके पश्चात् उन सभी 'समझौतों' या 'मध्यम मार्गों' को कसौटीपर कसा जो ईसाई धर्माचार्य और आस्थावान कहलानेवाले धर्म-शास्त्री आध्यात्मिकता और सांसारिकताकी आपसमें पटरी वैठानेके लिए सुझाते हैं। तव लुइगी त्राफेली शोकार्त हो, अपने-आपसे पूछते हैं — "क्या अव भी ईसाइयोंका अस्तित्व कहीं है?" वे अन्तमे यही निष्कर्ष निकालते हैं — "नहीं, अव कहीं भी उनका अस्तित्व नहीं रह गया।" वे स्वयं स्वीकार करते हैं — "मैं ईसाई नहीं हूँ।" और वादमे कहते हैं — "मेरे अन्दर कमसे-कम इतना पाखण्ड तो नहीं कि मैं अपने आपको ईसाई वतलाऊँ, जैसा कि धर्माचार्य लोग ईसाके स्पष्ट आदेशके उल्लंघनके वावजूद करते हैं।"

यूरोप, वल्कि समूचा संसार (और विशेषकर वह देश जो सनातनी 'कैथोलिक' धर्मका गढ़ है, अर्थात् इटली), आज जिस सामाजिक संकटके दौरसे गुजर रहा है उसे देखते हुए यह प्रश्न और भी दुःखद एवं करुणाजनक वन जाता है।

इस समय इटलीमें राज्यकी शक्ति इतनी अधिक प्रभुता सम्पन्न हो गई है, इतनी निरंकुश हो गई है कि वह एकदम दानवी वनती जा रही है। हर वस्तु, हर मूल्य उसपर वलि चढ़ा दिया जाता है, धार्मिक विश्वास उसके पैरों तले रौंदा जा रहा है। व्यष्टिगत आत्माको तहस नहस किया जा रहा है। "सरकारी आज्ञा" का (उसे गढ़नेवाले एक या दो नेताओं द्वारा पारिभाषित रूपमें) विरोध करनेवालोंको कुचल दिया गया है, या कुचल दिया जायेगा। मुसोलिनीमें यह मानव-द्वेषी भावना कूट-कूट कर भरी हुई है। वही इस मतका प्रचार कर रहा है, जिसे लाखों इटालियन लोगोंने स्वीकार कर लिया है, जो थोड़े ही दिनोंमें समूचे यूरोप और अमेरिकापर (अमेरिका पर भी) निश्चय ही छा जायेगा।

और, इस घड़ीमें धार्मिक विश्वासके रहनुमा क्या कर रहे हैं? उनमें इतना साहस नहीं कि वे अपने अनुयायियोंसे कहें: "प्रतिरोध करो! अत्याचारके शिकार वनो!" और इस तरह उनको अकथनीय यातनाओंमें झोंक कर, उसकी पूरी जिम्मेदारी अपने

सिर ले सके। उनमेसे जो सबसे घटिया, मामूली दर्जेके लोग है वे अपनी आत्मिक शान्ति बनाये रखनेकी सोचते रहते है। और जो उनमे सर्वश्रेष्ठ, सर्वोत्तम किस्मके लोग हैं वे अपने मनमे उस वृद्ध टॉल्स्टॉयकी याद कर लेते है जो अपने शिष्योको अत्याचारका शिकार बनते देखकर व्यथित हो उठा था कि वह स्वयं अत्याचारका शिकार क्यों नही बन पाया। इसलिए कि सत्ता इतनी घूर्त होती कि वह प्रतिष्ठित एवं जाने माने व्यक्तियोके साथ नरमीसे और साधारण अज्ञातनामा व्यक्तियोके साथ कठोरतासे पेश आना जानती है। परिणाम यह है कि सभी लोग आध्यात्मिकता और सासारिक मायाके बीच एक मध्यम मार्ग, दोनोको निभाते चलनेका रास्ता खोजनेमे और इसीका उपदेश देनेमे लगे रहते है। यह मध्यम मार्ग वास्तवमे एक आन्तरिक असत्य है, मिथ्या कल्पना है, और इसीलिए आत्मा पतनोन्मुख हो जाती है।

तरुण लोग इसे समझते है। वे ईसाकी आवाज सुननेकी कोशिश करते है, जो उनसे कहे — "यह रहा तेरा कर्त्तव्य।" लेकिन आवाज कुछ कहती नही। वे यो ही बेसहारा रह जाते है। यही कारण है कि इतने सारे ईसाई युवक रहनुमाईके लिए गाधी की ओर देखते है।

— मेरी बहन तुम्हारा कहना है कि इन युवकोंको सही उत्तर देना मेरा काम है। . . . नही; यह मेरे बसकी बात नही। जरूरी यही है कि मै जैसा हूँ उसी रूपमे मुझे देखा समझा जाये, मुझमे किसी ऐसी आस्था, विश्वास, विचार या सद्कार्यको आरोपित न किया जाये जो मेरा अपना न हो।

मै ईसाई नही हूँ, मै गाधीवादी भी नही हूँ; किसी भी श्रुतधर्म या दिव्यसंदेशमें विश्वास नही करता। मेरी आत्मा पाश्चात्य रंगमे रंगी हुई है और मै प्रेम तथा सत्यनिष्ठाकी भावनासे सत्यकी खोजमे लगा हुआ हूँ। मैं स्वयं अपनेको और दूसरोंको भी, जो एक चीज समझाने-सिखानेकी कोशिश करता हूँ वह यह है: आप अपने विचारोको आचरणके द्वारा झुठलाएँ नही और आप जिस चीजमे मात्र विश्वास करते है, या जिसकी आशा करते है, उसके लिए कभी मत कहिए कि आप उसे जानते-समझते है; आप जिस सत्यको ठीक-ठीक और जितना जानते है उतना ही जाननेका दावा कीजिए; इससे अधिक कुछ नही; और आप किसी सत्यको समझ ले या न भी समझ पाये, फिर भी उसके प्रति अपना प्रेम और उसे समझनेकी अपनी शक्ति, अपना प्रयत्न संरक्षित रखिए। 'माइकेल एजुलोकी जीवनी' की अपनी प्रस्तावनामे मैंने लिखा है: "मनुष्य और जीवनको उनके यथार्थ स्वरूपमे ही देखो, ग्रहण करो, और जैसे वे है उसी रूपमे उनसे प्रेम करो और उनके प्रति आचरण करो . . ."

मैंने अपने लिए यही काम चुना है। मेरा यह भी काम है कि मै इस ससारमें मौजूद शक्ति और प्रेरणाके सभी स्रोतो, आलोक दे सकनेवाले सभी स्रोतोकी खोज करूँ और दूसरे सभी लोगोको उनकी जानकारी कराऊँ। वीरनायक सूरमा और सन्त ऐसे ही स्रोत है। मै कहता हूँ. "इन स्रोतोसे जितना ले सकते हो लो, आकंठ ग्रहण करो इनका रस!"

लेकिन मेरा यह काम नही कि मै किसी ऐसे धर्मकी दुहाई दूँ जिसमें मै विश्वास नही करता। जिनको धर्ममे विश्वास है, उनको ऐसी दुहाई देने दीजिए!

——अभी हमारे यहाँ एक बहुत ही खुशमिजाज अमेरिकी आये थे। वे ससारके सभी ख्यातनामा व्यक्तियोंसे मिलनेके लिए एक तूफानी दौरा कर रहे हैं। हर बड़े आदमीके लिए पाँच मिनट! उनका नाम है——बुकानन। वे सालके शुरूमे गांधीसे मिल चुके हैं, और बतलाते हैं कि गांधीके बारेमें मेरी पुस्तकके सम्बन्धमे गांधीने कहा था: "साहित्यकी चीज है।" नही, यह कहना सर्वथा उचित नही। कहना चाहिए कि "प्रेमकी चीज है।" सभी जानते हैं कि प्रेम बिलकुल ही यथार्थ स्वरूपको नही देख पाता। मेरी पुस्तकका वर्णन कई जगहोंपर गलत होगा। न भी कैसे होता? मुझे न भारतके सामाजिक पर्यावरणकी कोई जानकारी थी, न भाषाकी। मैंने तो एक महान जीवनके बारेमें चन्द पुस्तके पढ़नेके बाद अपनी कल्पनाके बलपर ही छ: से बारह महीनेमें असाधारण कौशलका एक काम कर डाला। पुस्तके भी ऐसी थी जो सुदूरके मेरे सर्वथा अपरिचित लोगोंने लिखी थीं। यह एक बहुत ही बड़ी धृष्टता थी। परन्तु प्रेमने मुझे कल्पना न करनेकी और अपने प्रेम-पात्र, अपने आनन्द और अपने उत्साहसे अपने यूरोपीय भाइयोंको वंचित रखनेकी छूट नहीं दी, मुझे विवश कर दिया। और इसमें, मैं समझता हूँ, मैं सफल रहा हूँ। हो सकता है कि कही-कही, और कई जगहोंपर, गांधीके चरित्र और विचारोंको पेश करनेमे मुझसे चूक हो गई हो। ऐसा सम्भव है और मैं क्षमा चाहता हूँ। पर मैं ऐसी स्थितिमें अकसर अपने-आपसे एक प्रश्न पूछा करता हूँ——ईसा यदि अपने सम्बन्धमें अपने शिष्यों द्वारा दिये गये वृत्तान्तोंको देखते तो क्या सोचते। सत्य या मिथ्या, जैसा भी हो, पर इतना निश्चित है कि मैंने "साहित्यकी चीज" नहीं लिखी थी। (साहित्यिक बन्धु मुझे अपनी पंक्तिमें बैठानेके सर्वथा उपयुक्त नहीं मानते।) मैंने तो जो भी लिखा, अपने हृदयका भार हलका करनेके लिए, अपने उद्‌गारोंको अभिव्यक्ति देनेके लिए ही लिखा है।

. . . हम काफी स्वस्थ हैं, यद्यपि मैं इधर एक पखवारेतक आंत्र-ज्वरसे पीड़ित रह चुका हूँ। मेडेलीन अभी कुछ समयके लिए बॉयसे आई थी। साथ-साथ टहलनेमे बड़ा आनन्द आया। अगस्तसे ही ग्रीष्मकी अपनी निराली एक छटा है।

भारतमे तुमको अपना घर जैसा महसूस हो रहा है——इसपर मुझे कोई आश्चर्य नहीं! क्या तुमने ही नही कहा था कि तुम्हारे शरीरमें खानाबदोश 'जिप्सियो' का रक्त है? तुमने देख लिया; हालकी शोधसे पता चला है कि 'जिप्सी' लोगोंका मूल वास-स्थान निश्चय ही भारत था। तुम जहाँसे चली थीं, वहीं लौट गई हो।

मेडेलीन और मेरी ओरसे स्नेह। बापूको आदरपूर्ण स्नेह——बावजूद इस तथ्यके कि अवस्थामें मैं उनसे बड़ा हूँ, परन्तु आत्माका शरीरसे भिन्न एक अपना काल-चक्र होता है।

तुम्हारा
रोमाँ रोलाँ

अंग्रेजी अनुवाद (एस० एन० १२१७४) की फोटो-नकलसे।

सामग्रीके साधन-सूत्र

गांधी स्मारक संग्रहालय, नई दिल्ली : गांधी साहित्य और सम्बन्धित कागजातका केन्द्रीय संग्रहालय तथा पुस्तकालय। देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३५९।

राष्ट्रीय अभिलेखागार (नेशनल आर्काइव्ज ऑफ इंडिया), नई दिल्लीमें सुरक्षित कागजात।

साबरमती संग्रहालय : पुस्तकालय तथा संग्रहालय, जिसमें गांधीजीके दक्षिण आफ्रिकी काल तथा १९३३ तकके भारतीय कालसे सम्बन्धित कागजात रखे हैं, देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३६०।

'गुजराती' : बम्बईसे प्रकाशित गुजराती साप्ताहिक।

'नवजीवन' (१९१९–१९३१) . गांधीजी द्वारा सम्पादित और अहमदाबादसे प्रकाशित गुजराती साप्ताहिक।

'फॉरवर्ड' : कलकत्तासे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'बॉम्बे क्रॉनिकल' : बम्बईसे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक ।

'यंग इंडिया' (१९१८–१९३१) : अहमदाबादसे प्रकाशित अंग्रेजी साप्ताहिक। सम्पादक, मो० क० गांधी, प्रकाशक, मोहनलाल मगनलाल भट्ट।

'सर्चलाइट' पटनासे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'हिन्दी नवजीवन' (१९२१–१९३२) गांधीजी द्वारा सम्पादित और अहमदाबादसे प्रकाशित हिन्दी साप्ताहिक।

'हिन्दू' : मद्राससे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी . स्वराज्य आश्रम, बारडोली।

'पाँचवें पुत्रको बापूके आशीर्वाद' : सम्पादक — काका कालेलकर; जमनालाल बजाज ट्रस्ट, वर्धा, १९५३।

'माई डियर चाइल्ड' (अंग्रेजी) : एलिस एम० बार्न्ज द्वारा सम्पादित; नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९५६ ।

'रोमाँ रोलाँ बर्थडे बुक' : प्रकाशक टोरोप्पल — बर्लेग, ज्यूरिच, १९२६ ।

तारीखवार जीवन-वृत्तान्त

(१५ जूनसे ४ नवम्बर, १९२६ तक)

१५ जून : गाधीजी सत्याग्रहाश्रम सावरमतीमे।

१९ जूनसे पूर्व : नेलौर आदि-आन्ध्र सम्मेलनको दिये गये सन्देशमें चरखेके प्रचार और अस्पृश्यता-निवारणके लिए कहा।

११ जुलाई : सारे भारतमें सभाएँ करके और जलूस निकाल कर चित्तरंजन दासकी वर्षगाँठ मनाई गई।

१५ जुलाई : कलकत्तामे हिन्दू-मुसलमानोंके दंगे फूट पड़े।

२६ जुलाई : लोकमान्य तिलककी पुण्यतिथिके अवसरपर गांधीजीने महाराष्ट्रको यह सन्देश भेजा कि खादी और चरखा स्वराज्यप्राप्तिके साधन हैं।

१५ अगस्त : गांधीजीने 'इंडियन डेली मेल' और 'इंडियन सोशल रिफॉर्मर' के सम्पादक नटराजनसे आश्रममे भेंट की।

१८ सितम्वर : दक्षिण आफ्रिकी शिष्टमण्डलका स्वागत करनेके लिए अहमदाबादसे वम्बई गये।

१९ सितम्वर : वम्वईमे 'नेटाल एडवर्टाइजर' के प्रतिनिधिसे भेंट। दक्षिण आफ्रिकी शिष्टमण्डलके मानमें आयोजित उद्यान-गोष्ठीमे शामिल हुए। रातको अहमदा-वादके लिए रवाना।

२० सितम्वर : अहमदावाद पहुँचे।

२६ सितम्वर : दक्षिण आफ्रिकाके प्रतिनिधियोंसे दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंके मसलेपर चर्चा की।

१० अक्तूवर : वसीयतनामा लिखा।

१७ अक्तूवर : गांधीजीने गोलमेज परिषदके लिए भारतीय शिष्टमण्डलके सदस्योंके चुनावके वारेमे एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडियाके प्रतिनिधिसे भेंट की।

२४ अक्तूवर : आश्रममें आयोजित मजदूर संघ, अहमदाबादके वार्षिक उत्सवमे भाषण।

१ नवम्वर : सर गगाराम और दूसरे लोगोंसे मिलनेके लिए अहमदाबादसे बम्बईके लिए रवाना।

२ नवम्वर : बम्वईसे अहमदावाद वापस आए।

शीर्षक-सांकेतिका

विविध

सांकेतिका

ख

फ

ब

भ

ष

स

ह

फ

ब